

Handwritten signature or initials in blue ink, possibly reading "E. T. G." or similar, with a horizontal line above it.

11 / - 1929

574

11 / - 1929





श्री नन्दसुन्दर

A-12 मालिका विद्या

१
॥ श्री कालिका ॥

—

—

આવૃત્તિ (1929)

જાગણી (1922)

આવૃત્તિ — આપત્તિ (1929)

कलकला - विश्वमेक
- विशाल भाव
- खतरा (दोनों)
- माइनेर

कलकला - स्वस्वती
- यन्त्राग

(प्रमाण) - इलाहाबाद - चान्द (1922)
- लीडर
- चान्द (35) 1930

कलकला - विश्वमेक

कलकला - सुभा

चौद (द्वारा) - 1922

$\left. \begin{array}{l} \text{हं प्रमाणक} \\ \text{निमाक} \end{array} \right\} \text{श्री लालबकिं ७ सहजल}$

1. मांसी अंग —

सा.वा.डी - अंक - नवम्बर, 1929 (वर्क - 8 इंक - 1)
पृष्ठ - 408, सा.लो - 15,000.

१०
काना जिना - अंक - मई, १९३०

कोना जिमा - अक - रु३, १९५०
(रु३ अक) - रु३, १९५०
(रु३ अक) - रु३, १९५०

कादल्य सुंक — श्री जी.पी. श्रीकांतव BALLO अथवा गोंड











चित्तौड़ की चिता

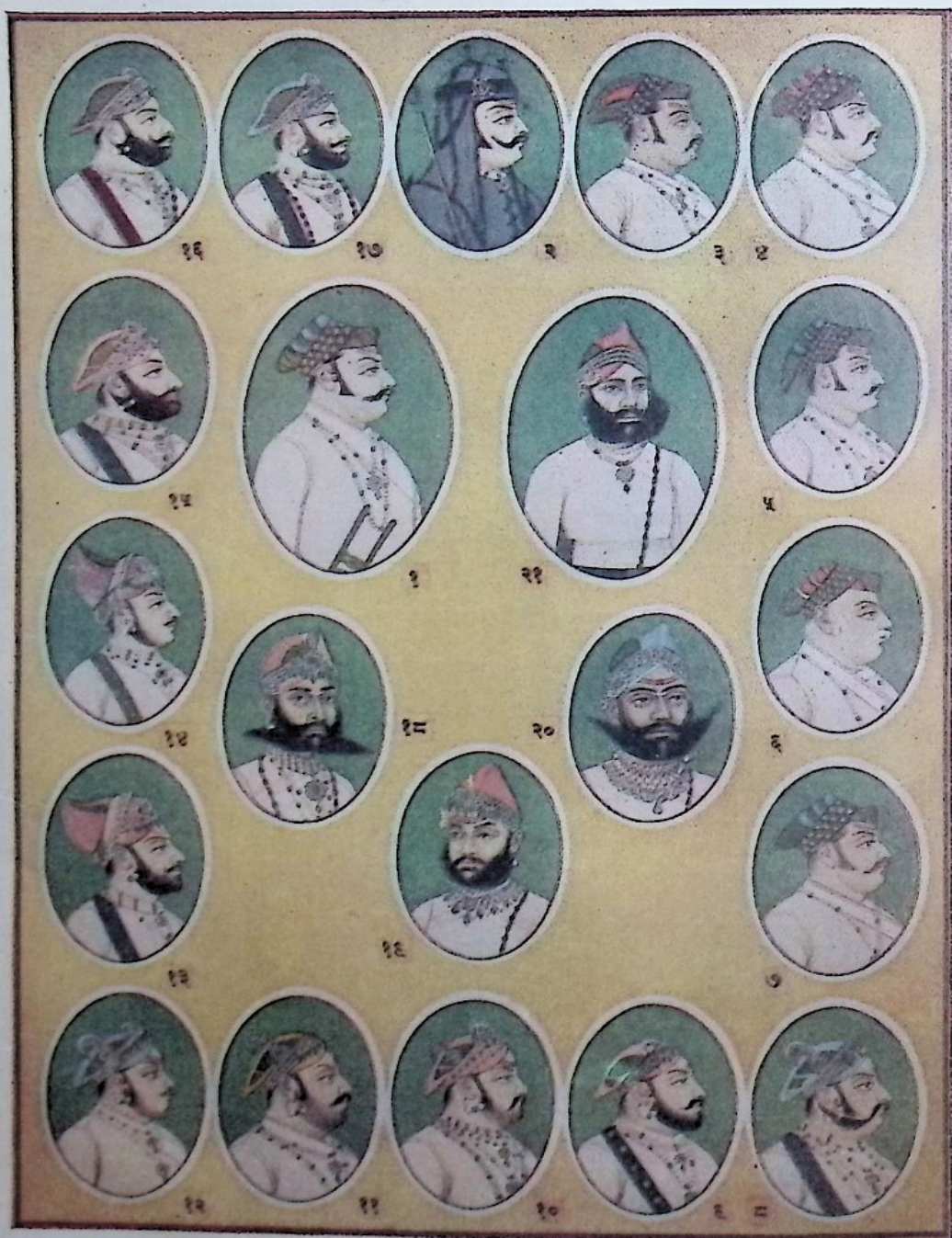
कविता की अनमोल पुस्तक

[रचयिता—प्रोफेसर रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

यह वह पद्यमय पुस्तक है, जिसे पढ़ कर एक बार उन लोगों में भी शक्ति का सञ्चार हो जाता है, जो जीवन से विरक्त हो चुके हैं। वीर-प्रसविनी चित्तौड़ की माताओं का यदि आप स्वार्थ-त्याग, देश-भक्ति तथा कर्म-निष्ठा का ज्वलन्त उदाहरण देखना चाहते हैं, यदि आप चाहते हैं कि भारत का मातृ-मण्डल भी इन वीर-भक्त-णियों के आदर्श से शिक्षा ग्रहण कर, अपने निरर्थक जीवन को भी उसी साँचे में ढाले; यदि आप चाहते हैं कि कायर बालकों के स्थान पर एक बार फिर वैसी ही आत्माओं की सृष्टि हो, जिनकी हुंकार से एक बार मृत्यु भी दहल जाया करती थी, तो इस वीर-रसपूर्ण ऐतिहासिक पुस्तक को स्वयं पढ़िए तथा घर की स्त्रियों और बच्चों को पढ़ाइए। कविता में ऐसी सुन्दर वीर-रस में भरी हुई पुस्तक हिन्दी-संसार में अब तक प्रकाशित नहीं हुई थी। “कुमार” महोदय की कविताओं का जिन्होंने ‘चाँद’ द्वारा रसास्वादन किया, वे इन कविताओं की श्रेष्ठता का अभी से अनुभव कर सकते हैं। सुन्दर छपी हुई पुस्तक का मूल्य केवल १।) ५०; स्थायी ग्राहकों से ॥३)

व्यवस्थापिका ‘चाँद’ कार्यालय,

चन्द्रलोक, इलाहाबाद



उदयपुर का राजवंश

सन्देश

भाइयो !

बम्बई, कलकत्ता के वैभव पर मत इतराओ ! उन गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं और लकड़क मोटरों पर मत गर्व करो, इनसे तुम्हारी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ सकती !!!

आओ, अपनी करोड़ों की सम्पत्ति लेकर देश को लौट आओ । मारवाड़ उजाड़, सुनसान, शुर्दा, स्मशान-वत् पड़ा है, उसे आबाद करो, उसमें कला-कौशल, व्यापार और उद्योग की बेगबती गड़ा बहा दो, तुम्हारे हाथ में करोड़ों की सम्पत्ति है, व्यापार की चमत्ता और योग्यता है, ईश्वरदत्त मुस्तेदी, धैर्य और सहिष्णुता है, दूले उस पुण्य-भूमि में बखेर दो । मारवाड़ सोता है, उसे जाग्रत करो, उसमें महालक्ष्मी की प्रतिष्ठा करो, उसके शासन में योग्य नागरिक की तरह अधिकार प्राप्त करो । तुम कलकत्ता-बम्बई में जस्टिस ऑफ़ दी पीस हों—पर तुम्हारी जन्म-भूमि ठिकानेदारों की स्वेच्छा-चारिता की गुलाम बन रही है । बीसवीं शताब्दी की कोई जाति इसे सहन नहीं कर सकती । उठो ! ऐसा करो, जिससे भारतवर्ष का प्राता मारवाड़, हिन्दुत्व का रक्त मारवाड़, पृथ्वी की महाजातियों का पवित्र मारवाड़, त्रिकट-अविष्य में आने वाले स्वाधीन भारत के नवीन-युग में अपनी जन्म-सिद्ध प्रतिष्ठा और स्थान का अधिकारी हो ।

माताओ और दादियों !

तुम हमारे रास्ते से हट जाओ । हमें क्रदम-क्रदम पर नामद और हास्यास्पद भूख भन बनाओ । हम अपने

भाग्य से युद्ध करने चले हैं, हम रुढ़ियों को कुचल कर युग-धर्म का अनुसरण करेंगे । “मेरे जीते जी ऐसा न होने पावेगा” ऐसा निकम्मा रोड़ा हमारे मार्ग में मत अड़ाओ । हमें दौड़ने दो, वह देखो, वह भयानक प्रवाह प्राचीन महासत्ताओं को कुचलता हुआ “उठो और जियो” की तूफानी गर्जना करता हुआ बढ़ा चला आ रहा है, तुम झूठे मोह-वश हमें रुढ़ियों के दलदल में फाँस रखोगी तो तुम्हारे यशस्वी वंश का वीज नाश हो जायगा !!!

बहिनो !

तुम अपने उन्मत्त मन, जाग्रत पतियों की सहधर्मिणी बनो ! पैर की जूतियाँ बनने के दिन गए । इस बेहूदे ध्वंश को और भदे घाँघरे को खात भार कर फेंक दो । हाय ! कैसे तुम खुशी से क़ैदी की तरह दिन काटती हो ? क्या तुम्हें याद है कि तुम्हारी माताओं और दादियों ने स्वाधीनता के नाम पर, धक्कती चिता पर अपने स्वर्ण-शरीर को राख कर दिया था ? तुम उस प्राचीन गौरव के नाम पर महाशक्ति का अवतार बनो । ध्वंश को फाड़ डालो, मत डरो कि कोई तुम्हें कुदृष्टि से देखेगा । सिंहनी पर शीदड़ दृष्टि नहीं डाल सकते, सूर्य की ओर देखने वालों की आँखें चौंधिया जाती हैं । तुम सूर्य के समान तेजस्विनी और सिंहनी के समान साहसी बनो ! परिश्रम, त्याग, सादगी, विद्या, विवेक और पवित्रता की तस्वीर बनो ! तुम्हारे नाम पर वह घर, वह ज्ञानदान बन्यो ।

जाय, जिसमें तुम जन्मी हो और जिसमें तुम सौभाग्य की चून्नी ओढ़ कर गृहलक्ष्मी बन कर गई हो। अपने पतियों को धर्मात्मा और त्यागी बनाओ, अपने पुत्रों को वीर और साहसी बनाओ। तुम मारवाड़ की देवी, मारवाड़ की आनख, मारवाड़ की बहू, मारवाड़ की जीवन-धन और मारवाड़ की प्राण हो, ऐसा कोई काम न करो कि मारवाड़ को लज्जित होना पड़े ! भारी-भारी गहने पहनने का बेहूदा मोह त्याग दो। एक कटार सदा पास रखो, बेखटके घर से बाहर बन्धु-बान्धवों के अहाँ जाओ, जो नीच ज़रा भी तुम्हारे अपमान का साहस करे, कटार से काम लो ! भारतवर्ष देखे कि मारवाड़ की सिंहनी कैसी होती है। विषय-वासना की गुलाम मत बनो, पतियों की अनुचित आज्ञा मत मानो। पति में व्यभिचार, मद्यपान, जुआ की बुरी आदतें हों, तो उसे बलपूर्वक ठीक करो, तुम उसकी उसी तरह स्वामिनी हो, जैसे वह तुम्हारा है। धर्मात्मा, सच्चरित्र पति की तन-मन से सेवा करो !

बंटियो !

विद्या तुम्हारा श्रृङ्गार है ; जितना पढ़-लिख सको, पढ़ो-लिखो, घमण्ड मत करो, घर के छोटे-बड़े सभी काम अपने हाथों से करने का अभ्यास करो, दिन में कभी न सोओ। नौकर को कभी मुँह मत लगाओ। ऐसे शब्द बोलो, जैसे फूल भड़ते हैं। माता-पिता, भाई सभी की मन से सेवा करो ! गुड़िया मत खेलो, हठ मत करो, गन्दी मन रहो, कम बोलो, अधिक सोचो।

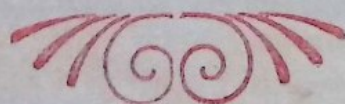
युवको !

बुजुर्गों की उन आज्ञाओं को मानने से इन्कार कर दो, जो अधर्म-सम्मत हों, तुम अपने को थोड़ा समझो, साहस, वीरता, त्याग और सेवा नस-नस में भर लो। पेट की चिन्ता में मत पड़ो, पेट तो कौवे-कुत्ते भी भर लेते हैं। तुमने क्या नहीं सुना 'नराँ मारवाड़'—अर्थात् मारवाड़ के मर्द प्रसिद्ध हैं, तुम वही मर्द हो। अगर तुम्हारे रहते पृथ्वी पर मारवाड़ी-पगड़ी का अपमान हुआ, तो तुम्हारा जीवन धिक्कार है ! जाओ, सीधे चित्ता-यत पर धावा बोल दो। देखो, जीवित जातियों के बच्चे किस तरह पृथ्वी पर जात मार कर आगे बढ़ा करते हैं। नहीं-नहीं, कला-कौशल सीखो, और अपने प्यारे मारवाड़ में आकर जीवन की फूँक फूँक दो ! ऐसे बनो कि मारवाड़ की आन-शान भारत में सबसे बढ़ी-चढ़ी हो जाय !!

पाखण्डियो !

मारवाड़ पर से अपना शनैश्चर हटा लो ! उसे पोथी-पत्रे, ग्रह-दशा और झूठे वहमों में मत फँसाओ। उसे सच्चे रास्ते पर आने दो—अपने पेट के लिए देश का नाश मत करो। देश में उजाला होने दो। तुम पाखण्ड छोड़ दो—ठोस योग्यता प्राप्त करो। सच्चा आत्म-सम्मान मन में रखो, पापी पेट के लिए पाप मत करो—ईश्वर तुम्हारा कल्याण करेगा।

—चतुरसेन वैद्य



ALL ABOUT

The MARWARI Number

The Leader

FRIDAY, OCTOBER 25, 1929

THE 'CHAND' SPECIAL NUMBER

By the courtesy of Mr. Saigal, we have received an advance copy of the special number of the CHAND (Marwari Ank). With this number the CHAND enters into its eighth year of existence. The CHAND, *among Hindi monthly magazines, occupies a notable place on account of its policy,* which during the last seven years has been to educate public opinion in favour of social reform. Not content with the propaganda it carries on in Hindi, the management has now decided to issue shortly CHAND in Urdu also, an announcement of which is made in the Hindi CHAND before us.

The special Marwari number, which is dated November, 1929, is a big volume containing about four hundred pages (almost equal to what an ordinary magazine gives in one year!) with about fifty cartoons, and as many coloured illustrations, as also several hundred other illus-

trations. There is a large number of readable and interesting articles and a few poems. The leading article which covers over sixty pages of this issue is a comprehensive survey of the Marwari community. It is a well-known fact that Marwaris belong to one of the richest communities in India. Marwar has produced some of India's best soldiers and kings. It is sad then to find that in spite of all this, most of the Marwaris are extremely conservative and antiquated in their outlook. The cartoons in the number are intended to bring out this aspect of Marwari life which needs improvement and radical change. The letterpresses of the cartoons are witty and penetrating and do great credit to the editors.

This number of the CHAND is in fact a comprehensive history of Marwar, its people, civilization, rise and fall. Every Indian and particularly the Marwari community, should be grateful to the enterprising editor-publisher, Mr. R. Saigal, for having brought out this special number. *We hope that it will be received by the Marwaris specially in the same friendly spirit in which it has been published.*

The Pioneer

SUNDAY, OCTOBER 27, 1929

CHAND (MARWARI ANK)

With this number (Marwari Ank) the CHAND enters into its eighth year of existence.

CHAND, among Hindi monthly magazines, occupies a notable place on account of its policy—which during the last seven years has been to educate public opinion in favour of social reform in

Indian society generally and Hindu society and improvement particularly.

is dated November 1929, is a big volume containing about four hundred pages, with about fifty cartoons, and as many coloured illustrations, as also several hundred other illustrations. There are

numerous very readable articles and a few poems.

The first article which covers over sixty pages of this issue is a comprehensive survey of the Marwari community.

The cartoons in this number endeavour to show those aspects of Marwari life which need overhauling

TRUE COPY

G. P. JAISWAL & Co.,

Public Accountants, Auditors, Liquidators, etc.

G. P. Jaiswal, G. D. A.,
Holder of Permanent
Unrestricted Auditor's
Certificate from the
Government.

Ref. No. 159/M29.

Allahabad,

18th Oct. 1929.

We have counted the printed copies of the CHAND and satisfied ourselves with the books maintained in the office and hereby certify that the circulation of the above Magazine exceeds 15,000 fifteen thousand for the month of November 1929.

(Sd.) G. P. JAISWAL & Co.,
Government Diplomaed Auditors,
British India.

3, City Road, Civil Lines,
Allahabad.

The Special Marwari number, which deserves hearty commendation.

This special number of CHAND

मारवाड़ी-अङ्क के सम्बन्ध में

लीडर

इलाहाबाद, शुक्रवार २५ अक्टूबर १९२६ ई०

मारवाड़ी-अङ्क

श्रीयुत सहगल जी के सौजन्य से हमें 'चाँद' के विशेषाङ्क (मारवाड़ी-अङ्क) की एक आगामी प्रति मिली है। इस अङ्क के साथ 'चाँद' अपने जीवन के आठवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। हिन्दी मासिक पत्रिकाओं में 'चाँद' अपनी नीति के कारण एक विशेष स्थान रखता है। विगत सात वर्षों में 'चाँद' की नीति समाज-सुधार के पक्ष में लोकमत को शिक्षित करने की रही है। केवल हिन्दी-भाषा के द्वारा प्रचार करने से सन्तुष्ट न होकर, 'चाँद' के सञ्चालक ने अपने पत्र को उर्दू में भी प्रकाशित करने का निश्चय किया है, जिस की सूचना हिन्दी-'चाँद' में, जो हमारे सामने है, दी गई है।

'चाँद' का 'मारवाड़ी-अङ्क' जो नवम्बर सन् १९२९ ई० का अङ्क है, एक विस्तृत पोथी है। इसमें लगभग ४०० पृष्ठ हैं (जितना एक साधारण पत्रिका एक वर्ष में देती है!) इसके अतिरिक्त ५० व्यङ्ग-चित्र, बहुत से रङ्गीन चित्र और कई

सौ सादे चित्र भी हैं !! इसमें बहुत से पठनीय तथा मनोरञ्जक लेख और कुछ कविताएँ हैं। सम्पादकीय विचार में, जो इस अङ्क के लगभग साठ पृष्ठों से अधिक में लिखा गया है, मारवाड़ी-समाज का व्यापक निदर्शन किया गया है। यह प्रसिद्ध बात है कि मारवाड़ी लोग भारतवर्ष की सब से धनी जातियों में से एक हैं। मारवाड़ को भारतवर्ष के कुछ सर्वोत्तम सैनिक और शासक उत्पन्न करने का श्रेय है। ऐसी दशा में यह दुःख की बात है कि मारवाड़ियों के विचार बड़े ही स्थिति-पालक और उन्नति-विरोधी हैं। इस अङ्क में जो व्यङ्ग-चित्र दिए गए हैं, उनसे मारवाड़ी-जीवन के उस भाग पर प्रकाश पड़ता है, जिसमें क्रान्तिकारी सुधार की आवश्यकता है। व्यङ्ग-चित्रों के नीचे जो पंक्तियाँ लिखी गई हैं, वे बड़ी ही सरस और सारगर्भित हैं तथा सम्पादकों की योग्यता का परिचय देती हैं।

'चाँद' का यह अङ्क वास्तव में मारवाड़ देश, इसके निवासी, इसकी सभ्यता तथा इसके उत्थान और पतन का एक विस्तृत इतिहास है। प्रत्येक भारतवासी, विशेषतः मारवाड़ी-समाज, को उत्साही सम्पादक और प्रकाशक श्रीयुत रामरखसिंह जी सहगल का कृतज्ञ होना चाहिए, जिन्होंने इस विशेषाङ्क का सम्पादन तथा इसे प्रकाशित किया

है। हम आशा करते हैं कि विशेषतः मारवाड़ी लोग इसका उसी मैत्री भाव से स्वागत करेंगे, जिस भाव से यह प्रकाशित किया गया है।

*

*

*

पायोनियर

२७ अक्टूबर, १९२९

मारवाड़ी-अङ्क

‘चाँद’ इस अङ्क (मारवाड़ी-अङ्क) के साथ अपने जीवन के आठवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है।

हिन्दी मासिक पत्रिकाओं में ‘चाँद’ अपनी नीति के कारण एक विशेष स्थान रखता है। विगत सात वर्षों में ‘चाँद’ की नीति भारतीय समाज में — विशेषतः

हिन्दू-समाज में—सुधार करने के पक्ष में लोकमत को शिक्षित करने की रही है।

प्रतिलिपि

G. P. JAISWAL & Co.,

Public Accountants, Auditors, Liquidators, etc.

G. P. Jaiswal, G. D. A.,
Holder of Permanent
Unrestricted Auditor's
Certificate from the
Government.

Ref. No. 159/M29.

Allahabad.

18th Oct. 1929.

हमने ‘चाँद’ की छपी हुई प्रतियाँ गिनी हैं तथा बही-खातों को देख कर भी अपना सन्तोष कर लिया है और हम इस पत्र के द्वारा यह तसदीक करते हैं कि नवम्बर सन् १९२९ के ‘चाँद’ का प्रचार १५,००० प्रतियों से अधिक है।

(हस्ताक्षर) जी० पी० जायसवाल एण्ड को०

गवर्नमेण्ट ऑडिटर्स

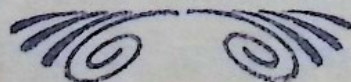
‘चाँद’ का ‘मारवाड़ी-अङ्क’ जो नवम्बर सन् १९२९ ई० का अङ्क है, एक विस्तृत पोथी है। इसमें लगभग ४०० पृष्ठ, करीब ५० व्यङ्ग-चित्र, बहुत से रङ्गीन चित्र तथा कई सौ सादे चित्र हैं।

इसमें बहुत से लेख हैं, जो बहुत ही रोचक हैं, तथा कुछ कवि-ताएँ भी हैं।

इसके प्रथम लेख में, जो इस अङ्क के साथ पृष्ठों से अधिक में लिखा गया है, मारवाड़ी-समाज का विस्तृत निरीक्षण किया गया है।

इस अङ्क के व्यङ्ग-चित्रों में मारवाड़ी-जीवन के उस अंश पर प्रकाश डाला गया है, जिसमें आमूल परिवर्तन और सुधार की आवश्यकता है।

‘चाँद’ का यह विशेषाङ्क हृदय से प्रशंसा करने के योग्य है!





*C. P. and Berar Government have also deleted from the approved list and is no longer approved by the U. P. Government and should not be purchased by any recognised institution of these Provinces.
No such news from Punjab yet.*

वर्ष ८,
खण्ड १

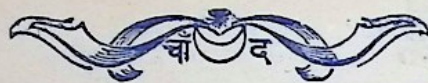
नवम्बर, १९२९

संख्या १,
पूर्ण
संख्या ८५

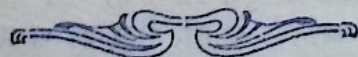
मारवाड़-भूमि

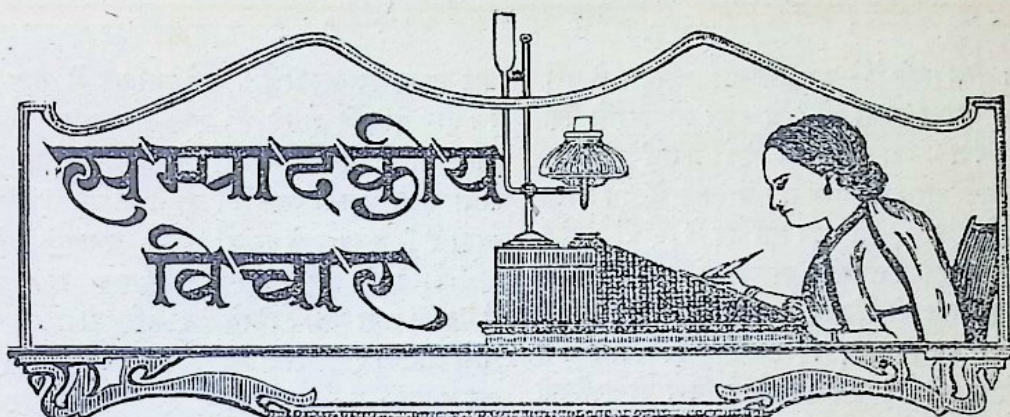
[प्रोफेसर रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

सुनती हूँ सुमधुर शब्दों में, अपना ही अपमान ।
पाप पास मेरे आते हैं, बन-बन कर वरदान ॥
झिपा हुआ मेरे आँसू में, मेरा ही आख्यान ।
किस समीर ने चुरा लिया है, मेरा गौरव-गान ?
अभिशापों की ध्वनियों में ही, मेरा ही सम्मान—
मुझे देख कर हँसता है—‘यह कैसा है अभिमान’ ?



कभी उठा था वायु-तरङ्गों में महिमा का राग ।
 लोट रहा था इन चरणों पर, विकल विश्व-अनुराग ॥
 त्याग, त्याग था, मेरी वीणा का वादन था त्याग !
 किन्तु लगी है उस वीणा में, कैसी भीषण आग ॥
 रुला रहा है कौन मुझे, गा-गाकर करुण विहाग ?
 जाग ! जाग !! मेरे मानस के वीर-भाव ! फिर जाग !!!
 जीवन-दर्पण में आशा का, बिम्ब दिखा अम्लान ।
 किया नारियों ने निज हाथों से अपना बलिदान ॥
 गौरव की गाथा का भवनों की प्रतिध्वनि में गान—
 खूब सुना था—देखा था आत्मा का अभ्युत्थान ॥
 वह गौरव का मान, स्वप्न-सा करती हूँ अनुमान !
 वह परिचित आकांक्षा बनती है मुझसे अनजान ॥
 कितना था वह प्यार देश पर, कितना था वह प्यार !
 पातिव्रत से होता था ललनाओं का शृङ्गार ॥
 कहती थी मुख के शब्दों को, वीरों की तलवार ।
 चकित बना देखा करता था, यह निर्बल संसार ॥
 किन्तु अरे ! मेरे वैभव की कैसी है यह हार !
 प्रेम, प्रेम है कलुषित चुम्बन का भीषण उपहार ॥
 जहाँ वासना की मदिरा से, मतवाली है चाह ।
 आह ! वही क्यों लेती है अब मेरे मन की थाह ?
 दो धनियों से गूँज रहा है भीषण वायु-प्रवाह ।
 निर्दयता का दाह और भोले मुख की मृदु आह ॥
 निर्बल को नत करने में है, सबलों का उत्साह ।
 नाम दूसरा है विक्रय का—(वह क्या ?) अरे विवाह ॥
 मेरे गौरव के बादल का, गया सरस-रँग लाल ।
 फैला मेरे वक्षःस्थल पर, काला रजनी-काल ॥
 अपने यश से ही आलोचित, झुकता मेरा भाल
 मेरी फिर से लाज रखेंगे, कब ये मेरे बाल ?
 'मारवाड़' का नाम रखेगा किस माता का लाल ?
 कौन सँवारेंगा फिर से, ये मेरे बिखरे बाल ?





नवम्बर, १९२६

मारवाड़



त सौ वर्षों तक मुगलों की दुर्धर्ष खूनी तलवार के सम्मुख खड़ा रहने वाला उद्-ग्रीव मारवाड़, आज सो रहा है !! हल्दीघाटी में जब सायँ-सायँ करके हवा चलती है और वे पुराने वृक्ष जब डालियाँ झुका-झुका कर उन वीर-आत्माओं को, जो सदा के लिए वहाँ विश्राम कर रही हैं, प्रणाम करते हैं, तब देखने वाले के मन में एक भय, एक वेदना का उदय होता तो होगा; पर वह तड़प, जो मारवाड़ की बपौती थी, कहीं देखने को भी नहीं मिलती।

वे मृत्यु के व्यवसायी—जीवित नर-सिंह—जिन्होंने जीवन के तत्व को समझा था; जो प्रकृत-आत्मतत्व के ज्ञाता थे; जो मरने से कभी न मरे; वृद्ध होने पर कभी पुराने न हुए; जो हास्य और क्रोध के अधिष्ठाता थे; दैन्य और रुदन जिनके पास न था—आज मारवाड़ के वे धनी-धोरी कहाँ हैं?

मारवाड़ के इस सिरे से उस सिरे तक चले जाइए—नगरों में, गाँवों में, जङ्गलों में, वनस्थली में, खेतों में, चाहे जहाँ—मारवाड़ सो रहा है। सारी पृथ्वी के राष्ट्र जाग रहे हैं—मारवाड़ सो रहा है! पृथ्वी की जातियाँ आत्म-शासन के स्वत्व पर जूमने की तैयारियाँ कर रही हैं—मारवाड़ सो रहा है। हाय रे यह नौद !!!

मारवाड़ के गाँव उजाड़ पड़े हैं, वहाँ भूखे, नङ्गे, फटे चिथड़े पहने हुए वीरों के वंशधर अपनी धूल-भरी दाढ़ी को अपने अस्थि-चर्मावशिष्ट शरीर पर सजाए जी रहे हैं! इनकी तलवारों को म्यान आज नसीब नहीं, वह गूदों में लिपटी जङ्ग खा रही हैं। वे बच्चे, जो अमर-कारनामे कर गए थे—मारवाड़ की गलियों में नङ्गे, भूखे, दीन-हीन, भुण्ड के भुण्ड फिर रहे हैं। इनका कोई नाथ नहीं, कोई धुरी नहीं, कोई रक्षक नहीं! लियाँ ऐसी सुन्दरी, स्वस्थ, मृदुभाषिणी, परिश्रमी, गृह-लक्ष्मी के सभी गुणों से भरपूर, पतिप्राणा, प्रेममूर्ति—अविद्या और कुसंस्कारों में जकड़ी—गन्दे, भारी-भारी घाघरों में फँसी हुई उसी तरह जीवन काट रही हैं, जैसे किसी किसान की भैंस, जिसे दूध के लोभ से खूब दाना-चारा दिया जाता है, और जो धुआँधार खा-पीकर बैठी-बैठी जुगाली किया करती है !! लोग कहते हैं—इनकी माताओं और दादियों ने जौहर व्रत किए थे! प्रत्येक गाँव के बाहर

सती-मठ दीख पड़ते हैं—क्या सचमुच मारवाड़ के घरों में सिंहनी दहाड़ा करती थीं? वे नाहर जो उन्होंने पैदा किए थे; क्या उनका बीज नाश ही हो गया?

मारवाड़ भारत का बाहु था। मारवाड़ के हाथ भारत की नैया के डौंड थे। हिन्दुत्व मारवाड़ के हाथों जीवित रहा। प्रतापी मुगल-साम्राज्य का ध्वंस हो गया। मारवाड़ के राजमुकुट अब भी दिप रहे हैं। पर उस अतीत विभूति के बल पर, यह सदा क्या रह सकता है? अतीत क्या जीवन दे सकता है? वर्तमान और भविष्य की सजीवनी जिस देश में नहीं, वह अतीत को लेकर रो सकता है—हँस नहीं सकता !!

परन्तु जातियों का रुदन ही क्या जातियों के जीवन की चरम-सीमा है—नहीं-नहीं। जातियाँ चाहे रोवें—चाहे मरें, पर उद्देश्य तो यही है कि वे हँसें और जिँएँ। मुगलों ने मारवाड़ को हँसने और जीने नहीं दिया। पर मारवाड़ जी तो गया—हँसने में सन्देह है—क्या मारवाड़ सोते-सोते हँसेगा? छिः !!

मारवाड़ ने जो अमर-ख्याति अपने भुज-बल से मुगल-साम्राज्य में पैदा की, लगभग वही ख्याति उसने धन-बल से ब्रिटिश राज्य में पैदा की है, इसमें सन्देह नहीं। वह तलवारों का राज्य था—तलवारों से मुक्ताबला किया गया। यह बनियाई का राज्य है, बनियाई से मुक्ताबला किया जा रहा है। यह सब तो ठीक है, पर उस जीवन में समस्त मारवाड़ के प्राण एकत्र थे और इस जीवन में वे छिन्न-भिन्न हैं—यही तो एक भयानक भेद है! मारवाड़ चौर-प्रसू है, वह नैसर्गिक युद्ध-भूमि है, मारवाड़ को उसी प्राङ्गण में अपने जीवन-मृत्यु की समस्याएँ हल करनी पड़ी थीं, परन्तु इस धन-युग में मारवाड़ की पृथ्वी नैसर्गिक सहायक नहीं। फलतः मारवाड़ को धन-केन्द्रों में विखरना पड़ा—लोग धन-कुबेर बने, पर इने-गिने—उससे मारवाड़ की श्रीवृद्धि नहीं हुई। बम्बई-कलकत्ते में मारवाड़ियों के राजप्रासाद हैं, परन्तु उनका गाँव उजाड़ पड़ा है। वे करोड़ों रुपए के व्यापार से मेन्वेस्टर, लक्का-शायर, चीन, जापान, शङ्घाई के जन-साधारण का पेट पाल रहे हैं! पर उनके गाँव के आस-पास के दरिद्र भूखे मर रहे हैं, बच्चे बेच रहे हैं! क्या इस बात पर कभी बम्बई-कलकत्ते के धनपतियों ने विचार किया है कि अब वृष्टि नहीं होती तब मारवाड़ की लाखों गाँव

विष्ठा खाकर पेट भरती हैं! सारे मारवाड़ में गाय-भैंस, बैल हीन नरल के हो रहे हैं। उन्हें अकाल-सुकाल कभी उत्तम तथा भर-पेट चारा नहीं मिलता। बड़े नगरों के पिंजरापोलों में क्या खाक है? तीर्थों में धर्मशालाएँ क्या करती हैं? मारवाड़ के लाखों मनुष्य अनावृष्टि होते ही बच्चों को बेचते हुए—मरते-गिरते समस्त उत्तर भारत में पेट की आग बुझाते फिरते हैं। यदि मोटरों में लड़ने वाले श्रीमन्त इन्हें अपना भाई न समझें; इनकी भूख से कष्ट न पावें; इनके दुख को न देखें; तो वे देश-भक्त कैसे? उनके जीवन में धर्म क्या रहा? क्या प्रातःकाल उठ कर जल्दी-जल्दी दो लोटे सिर पर डाल लेना—फिर आँख मूँद कर थोड़ी देर बैठ जाना—कभी-कभी एकाध ब्राह्मण को जिमा देना ही धर्म है? इन बेहोश और राष्ट्रभाव से रहित लोगों से कौन कहे?

एक वे राजा लोग थे, जो उस काल में मारवाड़ के धनी थे। जिन्होंने मारवाड़ की स्वाधीनता, हिन्दुत्व की रक्षा, स्त्रियों की मर्यादा के लिए जानें दीं, जवान बेटों को आँखों देखते लोहे की मार में मरवाया, पुत्रियों और पत्नियों को ज़िन्दा जला दिया, अन्त में स्वयं भी घाव खाकर अमर हुए। जिन्होंने धन-जन, मान-प्राण, पुत्र-पत्नी सब कुछ मारवाड़ पर न्यूँछावर कर दिए, उनके मुक्ताबले वे श्रीमन्त सेठ लोग, जिन्होंने अपने लिए बड़े नगरों में महल, बँगले, मोटर और सभी ऐश्वर्य एकत्र किए हैं, पर जिनके सामने मारवाड़ भूख-नङ्गा, अनाथ, हाय पेट! हाय पेट! रो रहा है—कहाँ तक प्रतिष्ठा और आदर के पात्र हो सकते हैं? क्या इस पर मारवाड़ के सपूत विचार करेंगे?

मारवाड़ में बहुत सी लोहे, सोने, चाँदी, ताँबे, अभ्रक, कोयले आदि की खानें गुप्त पड़ी हैं। कृषि की उन्नति का बड़ा भारी मैदान है। पशु-धन की वृद्धि का बड़ा सुयोग है। पञ्जाब और यू०पी० के गुड़, गेहूँ, रुई और तेलहन से माल तैयार करने को बड़े-बड़े कारखाने स्थापित करने के पूरे सुभीते हैं। मारवाड़ के धन-कुबेरों के पास रुपयों का अभाव नहीं। उनका करोड़ों रुपया सट्टे की जोखिम में लग रहा है, करोड़ों रुपया विदेशी व्यापार में, जिसमें उन्हें सिर्फ दलाली मिलती है। ये प्रसिद्धित मारवाड़ी लखपती विदेशी फ़र्माँ के 'दलाल' कहलाने में ज़रा भी लज्जित नहीं होते, पर यदि इनके मन में ग़ौरत पैदा हो जाय तो

ये लोग मालिक बन सकते हैं। मारवाड़ में सैकड़ों कल-कारखाने खड़े हो जायें। कोयले की खानें, तेल की खानें, धातु, उपधातु आदि अरबों की सम्पत्ति निकलने लगे ! बुनाई, कताई, तेल पेरना, तेल की वस्तु बनाना, इत्र आदि बनाना तथा शक्कर आदि के अनगिनती कारखाने खुल सकते हैं ; जिनमें मारवाड़ के धनी धन से और गरीब शरीर से जुट जायें। सबको भरपेट रोटी मिले, नगर-गाँव चमक उठें। लक्ष्मी का मेह बरसने लगे, अष्ट-सिद्धि तथा नवनिधि प्राप्त हों। हम कह सकते हैं, ऐसे कठिन परिश्रमी आदमी पृथ्वी भर में शायद ही कहीं मिल सकें, जैसे मारवाड़ में हैं। ये बेचारे समस्त उत्तर भारत में स्त्री-पुत्रों सहित कड़ी धूप में कुदाल चला कर पेट भरते हैं !!

यह सच है कि गरीब अमीरों के बिना नहीं जी सकते, पर यह भी सच है कि अमीर भी बिना गरीब के नहीं जी सकते। क्या मारवाड़ियों में ताता के जैसा माई का लाल एक भी नहीं ? गुजरात के श्रीमन्तों ने गुजरात को कल-कारखानों से भरपूर कर रखा है। क्या मारवाड़ पड़ा सोता रहेगा ? धन रहते भूखा मरेगा ? तब तो यही कहना होगा :—

पानी में भी मीन प्यासी, सुन कर किसे न आवे हाँसी।

यह निश्चय है कि मारवाड़ी चाहे दस-दस मोटरों पर लदें, चाहे बग्गई-कलकत्ते में चाँदी की ईंटों से मकान चुनावें, चाहे हीरे खायें और पन्ना वे तब तक प्रतिष्ठित नहीं हो सकते, जब तक मारवाड़ की पृथ्वी में वे जीवन, नवीनता, उत्साह और जवानी की तरङ्गें न पैदा कर देंगे।

वे राजपूत मारवाड़ के पति थे, ये वंशिक मारवाड़ के पुत्र हैं। पतियों के राज्य में मारवाड़ की भूमि सुहागिन की तरह रही। उन्होंने जीते जी उस भूमि का विछोह न सहा—वहाँ मरे, वहाँ जिए—वहाँ हीरा, मोती, पन्ना से शृङ्गार किया। मारवाड़ आज उन्हीं की बदौलत पृथ्वी के मेधावियों के लिए श्रद्धा की वस्तु हो गया है। आज यूरोप और अमेरिका का यात्री चित्तौड़ के किले का ध्वंस देख कर चण भर वहाँ खड़ा रह कर एक साँस छोड़ता है। कुम्भा के कीर्ति-स्तम्भ के सामने आदर से झुकता है। वे क्षत्रिय थे, उन्होंने किले-दुर्ग बनाए, जहाँ मारवाड़ के जीवन की रक्षा होती थी। आज वंशिक मारवाड़ के पुत्र

हैं, उन्हें विधवा माँ को इस तरह न भूलना चाहिए। उन्हें बड़े-बड़े कल-कारखाने, कला-कौशल के केन्द्र स्थापित करने चाहिए और मारवाड़ में सच्ची लक्ष्मी-पूजा अपने घर में बैठ कर करनी चाहिए। तभी मारवाड़ का कल्याण होगा—‘मारवाड़ी’ शब्द पृथ्वी भर में आदरणीय समझा जायगा, मारवाड़ के हाथ में समस्त भारत की सत्ता एक बार फिर आवेगी, अन्यथा नहीं !

* * *

मारवाड़ के महाराजा

मारवाड़ (राजस्थान) में १६ रियासतें और लावा व कुशलगढ़ नामक दो खुदमुखतार रियासतें (ठिकाने) हैं, जिनमें केवल एक रियासत टोंक मुसलमानों की है, शेष राजपूतों की हैं। इनमें से सर्व-प्रधान उदयपुर रियासत है, जिसमें गहलोत वंश के सीसोदिया राजपूतों की अमलदारी है। यह राजवंश लगभग वि० सं० ६२५ (ई० सन्, ५६८) से लेकर आज तक समय के अनेक हेर-फेर सहता हुआ उसी प्रदेश पर राज्य करता आ रहा है। इस प्रकार १३५० से अधिक वर्षों तक एक ही देश पर राज्य करने वाला संसार भर में शायद ही कोई दूसरा राजवंश होगा।* इस वंश से वर्तमान के अनेक नरेश अपना उद्भव मानते हैं।† यह रियासत १२,६६१ वर्ग मील में

* The Maharana of Udaipur is the representative of the most ancient ruling race in the world whether in the East or West.—Capt. Webb.

† यदि इन सबको फिर से उसी चित्तौड़ गढ़ में निमन्त्रित करके मदान् सङ्गठन का आयोजन किया जाय तो इसमें सन्देह नहीं कि क्षात्रशक्ति का पुनरुद्धार और प्रसार हो जाय और महाराणा भी के राष्ट्रीय झण्डे के नीचे नेपाल के सम्राट्, महाराजा कोल्हापुर, खासियर, साबन्तवाड़ी, मुघोल, विजयानगर (विजयनगर), धर्मपुर, भावनगर आदि के नरेश, जो अपने को गहलोत वंशज मानते हैं, सहर्ष आकर उसी चित्तौड़ गढ़ को मुशोभित कर सकते हैं, जहाँ से विपत्ति-काल में उनका विछोह हुआ है।

है। इस राज्य में १३,८०,०६३ मनुष्य बसते हैं। इस रियासत का खिराज २ लाख रुपए वार्षिक है। आस-दनी लगभग ११ लाख रुपए वार्षिक है। महाराणा की सलामी १६ तोपों की है। यह वंश प्रबल प्रतापी मुगलों के शासन-काल में बड़ी धीरता और शौर्य से जमा रहा और इसी कारण इसकी आज बड़ी प्रतिष्ठा है। वर्तमान नरेश श्रीमान् छत्तीस राजकुल-शृङ्गार हिन्दु-आसूर्य महाराजाधिराज महाराणा सर फ़तेहसिंह जी बहादुर, जी० सी० एस० आई० हैं।

दूसरी रियासत जैसलमेर है। जिसमें यादव वंश के भाटी राजपूतों की गद्दी है। इसका विस्तार १६,०६२ वर्ग मील है और ६७,६१२ मनुष्य बसते हैं। खिराज कुछ नहीं देते। वार्षिक आय ३,२६,११७ रुपया है। सलामी १५ तोपों की है। इस राज्य की नौवें शताब्दी में पड़ी थी। वर्तमान नरेश श्रीमान् महाराजाधिराज महारावल सर जवाहरसिंह जी बहादुर, के सी० एस० आई० हैं।

तीसरी रियासत जोधपुर है, जो राठौड़ों की गद्दी है। इसका विस्तार ३२,०१६ वर्ग मील है। जन-संख्या १८,४१,६४२ है। खिराज १ लाख ८ हजार दिया जाता है। वार्षिक आय १,५०,००,००० रुपया है। सलामी १७ तोपों की है। इस राज्य के मूल पुरा राव सिंहाजी राठौड़ थे, जिन्होंने सम्बत् १३०० के लगभग कन्नौज प्रान्त के बदायूँ स्थान से आकर यहाँ कब्ज़ा किया। वर्तमान नरेश मेजर राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजा सर उम्मेदसिंह जी बहादुर, के सी० एस० आई०, के सी० वी० ओ० हैं।

चौथी रियासत जयपुर है, जिसमें कछवाहों की गद्दी है। राज्य का घेरा १५,५७६ और जन-संख्या २३,३८,८०२ है। खिराज चार लाख रुपया है और वार्षिक आय ८५ लाख रु० के लगभग है। १७ तोपों की सलामी है। यह राज्य पहले आमेर के नाम से प्रसिद्ध था। इसकी उन्नति मुसलमानी काल में महाराजा सवाई मानसिंह के समय से हुई है। वर्तमान नरेश श्रीमान् महाराजा सवाई मानसिंह जी बहादुर (द्वितीय) हैं।

पाँचवीं रियासत बूँदी है, जो हाड़ा राजपूतों की है। इसकी जन-संख्या १,८७,०६८ और भूमि-विस्तार २,२३० वर्ग मील है। खिराज ८० हजार रुपया और वार्षिक आय

६,८३,६८० रुपया है। १७ तोपों की सलामी है। वर्तमान नरेश श्रीमान् महाराव राजा श्रीईश्वरीसिंह जी बहादुर हैं।

छठी रियासत कोटा की है, जिसमें हाड़ा (चौहान) राजपूतों की अमलदारी है। इस राज्य में ५,६८४ वर्ग मील भूमि है और ६,३०,०६० मनुष्य बसते हैं। इसका खिराज ४,८४,७२० रु० है और वार्षिक आय ४६,३४,२०० रुपए के लगभग है। तोपों की सलामी १७ है। वर्तमान नरेश श्री० लेफ़्टिनेण्ट-कर्नल महाराजा सर उम्मेदसिंह जी बहादुर, जी० सी० एस० आई०, जी० वी० ई० हैं।

सातवीं रियासत बीकानेर है, जो राठौड़ों की है। इसका विस्तार २३,३१५ वर्ग मील है और जन-संख्या ६,२६,६८५। खिराज नहीं देते। वार्षिक आय ७६,४२,३६६ रु० है। वर्तमान नरेश श्रीमान् महाराजाधिराज नरेन्द्र-शिरोमणि मेजर-जनरल सर गङ्गासिंह जी बहादुर, जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई०, जी० सी० वी० ओ०, जी० वी० ई०, के सी० वी०, एल्-एल्-डी०, ए० डी० सी० हैं। सलामी १७ तोपों की है।

आठवीं रियासत किशनगढ़ है, जो राठौड़ों की गद्दी है। ८५८ वर्ग मील में विस्तृत है और ७७,७३४ नर-नारी बसते हैं। खिराज कुछ भी नहीं है। आय लगभग ५ लाख रुपए वार्षिक है। यह रियासत महाराज कृष्णसिंह जी ने अकबर बादशाह से सं० १६६६ में पाई थी। वर्तमान नरेश महाराजा सर यज्ञनारायण सिंह जी बहादुर, के सी० एस० आई० हैं।

नवीं रियासत करौली की है, जहाँ यादव राजपूतों की गद्दी है। यह रियासत १,२४२ वर्ग मील में फैली है और १,३३,७३० नर-नारी इसमें बसते हैं। खिराज कुछ नहीं है। वार्षिक आय ७,६२,००० के लगभग है। सलामी १७ तोपों की है। यहाँ के नरेश श्रीमान् महाराजा सर भैरवपाल जी बहादुर हैं।

दसवीं रियासत सिरौही है, जो चौहानों की है। भूमि-विस्तार १,६६४ वर्ग मील और जन-संख्या १,८८,६३६ है। खिराज ७ हजार के अनुमान तथा वार्षिक आय १०,३०,३४६ रु० है। सलामी १२ तोपों की है। वर्तमान नरेश श्रीमान् महाराजाधिराज महाराव श्रीस्वरूपसिंह जी बहादुर, के सी० एस० आई० हैं।

ग्यारहवीं रियासत बूँदपुर है, जो गढ़लोचों की है।



बीकानेर-नरेश

मेजर-जनरल श्रीमान् महाराजाधिराज राजराजेश्वर नरेन्द्र-शिरोमणि महाराजा श्री० सर
गङ्गासिंह जी बहादुर, जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई०, जी० सी०
वी० ओ०, जी० बी० ई०, के० सी० बी०, ए० डी० सी०, एल्-एल् डी०

कौशिक जी की
चुनी हुई १६ सामाजिक कहानियों का सुन्दर संग्रह



लेखक —
श्रीविश्वम्भरनाथशर्मा कौशिक

मूल्य लागत मात्र—केवल ३। स्थायी ग्राहकों से २। रु०

बढ़िया सुन्दर कागज़ पर छपी हुई लगभग ५०० पृष्ठों की इस सुन्दर पुस्तक का

भूमि-विस्तार १,४४७ वर्ग मील और जन-संख्या १,८६,२७२ है। खिराज २७,३८७॥॥ दिया जाता है। वार्षिक आय ६,५८,००० रु० है। तोपों की सलामी १५ है। वर्तमान नरेश हैं श्रीमान् महाराज श्रीलक्ष्मणसिंह जी बहादुर!

बारहवीं रियासत प्रतापगढ़ है, जो गहलोतों की है। भूमि ८८६ वर्ग मील और जन-संख्या ६७,११४ है। खिराज १६,८८७॥॥ दिया जाता है और वार्षिक आय ४,६३,८०० रु० है। सलामी १५ तोपों की है। यहाँ के नरेश श्रीमान् महाराज सर रघुनाथसिंह जी बहादुर, के० सी० आई० ई० हैं।

तेरहवीं रियासत बाँसवाड़ा है, जो गहलोतों की है। इसका विस्तार १,६०६ वर्ग मील और जन-संख्या १,६०,३६२ है। खिराज ५ हजार रुपए वार्षिक तथा आय ५,३०,००० के लगभग है। सलामी १५ तोपों की है। वर्तमान नरेश श्रीमान् महाराज श्रीपृथ्वीसिंह जी बहादुर हैं।

चौदहवीं रियासत धौलपुर है, जो जाटों की है। इसका घेरा १२०० वर्ग मील, और जन-संख्या २,२६,७३४ है। वार्षिक आय १६ लाख के लगभग है, खिराज कुछ नहीं। तोपों की सलामी १५ है। वर्तमान नरेश श्रीमान् रईसउद्दौला, सिपाहदारउल्मुल्क महाराजाधिराज श्रीसवाई राना सर उदयभानसिंह लोकेन्द्र बहादुर, दिलेरजङ्ग जय-देव, के० सी० एस० आई०, के० सी० वी० ओ० हैं।

पन्द्रहवीं रियासत भरतपुर की है, जो जाटों की गद्दी है। भूमि-विस्तार १,६६३ वर्ग मील और जन-संख्या ४६,६४,३७० है। खिराज कुछ नहीं दिया जाता और वार्षिक आय ३५,००,००० रु० है। तोपों की सलामी १७ है। वर्तमान नरेश श्रीमान् महाराजा श्रीज्येन्द्रसिंह जी बहादुर हैं।

सोलहवीं रियासत अलवर है। इसमें कछवाहे राज-पूतों का राज्य है। इस राज्य का विस्तार ३,२२१ वर्ग मील और राज्य की जन-संख्या ७,०१,१५४ है। खिराज कुछ नहीं है। वार्षिक आय ३३,००,००० रुपए और सलामी १५ तोपों की है। वर्तमान नरेश श्रीमान् बीरेन्द्र-शिरोमणि "प्रभु" महाराजा सर जयसिंह जी बहादुर, जी० सी० एस० आई० हैं।

सत्तरहवीं रियासत टोंक है, जो पठानों की है। इसका भूमि-विस्तार २,५५३ वर्ग मील और जन-संख्या २,२७,८६८ है। खिराज कुछ नहीं दिया जाता। वार्षिक आय

२१,१०,३४२ रुपया है। १६ तोपों की सलामी है। वर्तमान नरेश श्रीमान् अमीनउद्दौला वज़ीरउल्मुल्क नवाब सर मुहम्मद इब्राहीमखली खाँ बहादुर, सोलेतजङ्ग; जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई० हैं।

अठारहवीं रियासत भालावाड़ है, जो भाला राजपूतों की गद्दी है। इसका विस्तार ८१० वर्ग मील और जन-संख्या ६६,१८२ है। वार्षिक आय ७,७६,३१० रुपया है। १३ तोपों की सलामी है। वर्तमान नरेश श्रीमान् महाराज राणा श्रीराजेन्द्रसिंह जी बहादुर हैं।

उन्नीसवीं गद्दी शाहपुरे की है, जो गहलोतों की है। भूमि-विस्तार ७०५ वर्ग मील और जन-संख्या ६५,१४२ है। वार्षिक आय ५,६५,२१८ रु० है, सलामी ६ तोपों की है। वर्तमान नरेश राजाधिराज सर नाहरसिंह, के० सी० आई० ई० हैं।

इन रियासतों की सम्मिलित भूमि एक लाख वर्ग मील है और इसमें ११ करोड़ के लगभग जन-संख्या पर केवल १६ व्यक्ति शासन करते हैं तथा प्रजा की कमाई में से २० करोड़ रुपया प्रति वर्ष पाते हैं!! ब्रिटिश-सरकार भी खिराज में १० लाख रुपया प्रति वर्ष प्राप्त करती है। इन राजाओं की दुर्दशा ब्रिटिश-साम्राज्य के हाथ से और इनकी प्रजा की दुर्दशा इन राजाओं के हाथ से कितनी घुरी तरह हो रही है, यह बात विचारने के योग्य है। इन राजाओं के पास न सैनिक शक्ति है, न सैनिक अधिकार हैं। ये केवल नाम के 'बहादुर' हैं और प्रायः ऐयाशी और सैर-सपाया ही इनके जीवन का ध्येय है। जो राजा पक्के सरकारी खुशामदी हैं—वे मजे में हैं। परन्तु जो ज़रा भी खड़तल हैं, वे मानों तपेदिक के शिकार हैं। न जाने कब उन पर सत्य का पञ्जा सवार हो जाय। इन दुर्दशा-ग्रस्त रियासतों और राज्यों का अस्तित्व २०वीं शताब्दी रहने देगी या नहीं, अब यही उत्सुकता से देखने योग्य विषय है।

राजा के छः अधिकार होने चाहिएँ—(१) सिक्का बालना, (२) विग्रह और सन्धि के अधिकार, (३) कानून-निर्माण, (४) कर-ग्रहण, (५) न्याय, (६) शासन।

ब्रिटिश-अधीनता में इन छः अधिकारों में से प्रथम तीन देशी राजाओं को असमान और अपूर्ण हैं। वे बाह्य तथा आन्तरिक शक्तियों से मैत्री नहीं कर सकते—इन राजाओं ने अपने सन्धि-पत्रों में स्पष्ट इस शर्त को

कौशिक जी की चुनी हुई १६ सामाजिक कहानियों का सुन्दर संग्रह

बढ़िया सुन्दर कागज पर छपी हुई लगभग ५०० पृष्ठों की इस सुन्दर पुस्तक का



मूल्य लागत मात्र—केवल ३) स्थायी ग्राहकों से २) रु०

लेखक —
श्रीविश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

भूमि-विस्तार १,४४७ वर्ग मील और जन-संख्या १,८६,२७२ है। खिराज २७,३८७॥॥ दिया जाता है। वार्षिक आय ६,५८,००० रु० है। तोपों की सलामी १५ है। वर्तमान नरेश हैं श्रीमान् महाराज श्रीलक्ष्मणसिंह जी बहादुर!

बारहवीं रियासत प्रतापगढ़ है, जो गहलोतों की है। भूमि ८८६ वर्ग मील और जन-संख्या ६७,११४ है। खिराज १६,८८७॥॥ दिया जाता है और वार्षिक आय ४,६३,८०० रु० है। सलामी १५ तोपों की है। यहाँ के नरेश श्रीमान् महाराज सर रघुनाथसिंह जी बहादुर, के० सी० आई० ई० हैं।

तेरहवीं रियासत बाँसवाड़ा है, जो गहलोतों की है। इसका विस्तार १,६०६ वर्ग मील और जन-संख्या १,६०,३६२ है। खिराज ५ हजार रुपए वार्षिक तथा आय ५,३०,००० के लगभग है। सलामी १५ तोपों की है। वर्तमान नरेश श्रीमान् महाराज श्रीपृथ्वीसिंह जी बहादुर हैं।

चौदहवीं रियासत धौलपुर है, जो जाटों की है। इसका घेरा १२०० वर्ग मील, और जन-संख्या २,२६,७३४ है। वार्षिक आय १६ लाख के लगभग है, खिराज कुछ नहीं। तोपों की सलामी १५ है। वर्तमान नरेश श्रीमान् रईसउद्दौला, सिपाहदारउल्मुल्क महाराजाधिराज श्रीसवाई राना सर उदयभानसिंह लोकेन्द्र बहादुर, दिलेरजङ्ग जय-देव, के० सी० एस० आई०, के० सी० वी० ओ० हैं।

पन्द्रहवीं रियासत भरतपुर की है, जो जाटों की गद्दी है। भूमि-विस्तार १,६६३ वर्ग मील और जन-संख्या ४६,६४,३७० है। खिराज कुछ नहीं दिया जाता और वार्षिक आय ३५,००,००० रु० है। तोपों की सलामी १७ है। वर्तमान नरेश श्रीमान् महाराज श्रीज्येन्द्रसिंह जी बहादुर हैं।

सोलहवीं रियासत अलवर है। इसमें कछवाहे राज-पूतों का राज्य है। इस राज्य का विस्तार ३,२२१ वर्ग मील और राज्य की जन-संख्या ७,०१,१५४ है। खिराज कुछ नहीं है। वार्षिक आय ३३,००,००० रुपए और सलामी १५ तोपों की है। वर्तमान नरेश श्रीमान् बीरेन्द्र-शिरोमणि "प्रभु" महाराज सर जयसिंह जी बहादुर, जी० सी० एस० आई० हैं।

सत्तरहवीं रियासत टोंक है, जो पठानों की है। इसका भूमि-विस्तार २,५६३ वर्ग मील और जन-संख्या २,२७,८६८ है। खिराज कुछ नहीं दिया जाता। वार्षिक आय

२१,१०,३४२ रुपया है। १६ तोपों की सलामी है। वर्तमान नरेश श्रीमान् अमीनउद्दौला वज़ीरउल्मुल्क नवाब सर मुहम्मद इम्राहीमखली खाँ बहादुर, सोलेतजङ्ग; जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई० हैं।

अठारहवीं रियासत भालावाड़ है, जो भाला राजपूतों की गद्दी है। इसका विस्तार ८१० वर्ग मील और जन-संख्या ६६,१८२ है। वार्षिक आय ७,७६,३१० रुपया है। १३ तोपों की सलामी है। वर्तमान नरेश श्रीमान् महाराज राणा श्रीराजेन्द्रसिंह जी बहादुर हैं।

उन्नीसवीं गद्दी शाहपुरे की है, जो गहलोतों की है। भूमि-विस्तार ७०५ वर्ग मील और जन-संख्या ६५,१४२ है। वार्षिक आय ५,६५,२१८ रु० है, सलामी ६ तोपों की है। वर्तमान नरेश राजाधिराज सर नाहरसिंह, के० सी० आई० ई० हैं।

इन रियासतों की सम्मिलित भूमि एक लाख वर्ग मील है और इसमें ११ करोड़ के लगभग जन-संख्या पर केवल १६ व्यक्ति शासन करते हैं तथा प्रजा की कमाई में से २० करोड़ रुपया प्रति वर्ष पाते हैं!! ब्रिटिश-सरकार भी खिराज में १० लाख रुपया प्रति वर्ष प्राप्त करती है। इन राजाओं की दुर्दशा ब्रिटिश-साम्राज्य के हाथ से और इनकी प्रजा की दुर्दशा इन राजाओं के हाथ से कितनी घुरी तरह हो रही है, यह बात विचारने के योग्य है। इन राजाओं के पास न सैनिक शक्ति है, न सैनिक अधिकार हैं। ये केवल नाम के 'बहादुर' हैं और आदम: देवाशी और सैर-सपाया ही इनके जीवन का ध्येय है। जो राजा सत्ते सरकारी खुशामदी हैं—वे मजे में हैं। परन्तु जो जरा भी खड़तल हैं, वे मानों तपेदिक के शिकार हैं। न जाने कब उन पर मृत्यु का पञ्जा सवार हो जाए। इन दुर्दशाग्रस्त रियासतों और राज्यों का अस्तित्व २०वीं शताब्दी रहने देगी या नहीं, अब यही उल्लुक्ता से देखने योग्य विषय है।

राजा के छः अधिकार होते चाहिए—(१) सिक्का बाजना, (२) विमह और सन्धि के अधिकार, (३) अल्प-निर्माण, (४) कर-ग्रहण, (५) न्याय, (६) शासन।

ब्रिटिश-अधीनता में इन छः अधिकारों के केवल तीन देशी राजाओं को सत्तम्य और बरतते हैं। ये बाह्य तथा आन्तरिक शक्तियों से देशी खाँ के समान—इन राजाओं ने अपने अधिकारों से सत्तम्य रूप से देश को

स्वीकार कर लिया है। शासन और न्याय की दशा भी ऐसी ही है। बहुत-सी रियासतें प्राण-दण्ड नहीं दे सकतीं, कोई नया कानून नहीं बना सकतीं—पद-खिताब तक नहीं दे सकतीं। कुछ को तो केवल प्रथम श्रेणी के मैजिस्ट्रेट के अधिकार प्राप्त हैं! अन्ततः सारवाङ्ग्य भर में ऐसी एक भी शक्ति नहीं है, जो ब्रिटिश-सरकार का कोई अप्रिय कार्य कर सके। रेज़िडेण्ट कठोर यम की तरह राज्यों में उपस्थित रहता है।

अकबर ने इन राजपूत-शक्तियों को मित्र बनाया था। उसके पुत्र-पौत्रों ने भी उसका अनुसरण किया। फलतः मुगल-साम्राज्य की नाँव जम गई। पर औरङ्गजेब ने गद्दी पर बैठते ही हठधर्मी शुरू की। वह भाग्यहीन जवानों में दक्षिण में लड़ता रहा और वृद्धावस्था में मरहटों से टक्करें लेता रहा और मरहटों को प्रबल योद्धा बना गया। उसके साथ ही मुगल-साम्राज्य ध्वंस हो गया। परन्तु-राजपूत शक्तियाँ उस समय भी स्वतन्त्र न हो सकीं। निरन्तर युद्ध और कलह इसके कारण थे। जयपुर और जोधपुर में यह नियम था कि उदयपुर की रानी का औरस पुत्र गद्दी पर बैठेगा। मरहटों ने अन्त में राजपूतों का विध्वंस कर दिया।

अङ्गरेज़ी शासन में प्रारम्भ से अब तक तीन प्रधान नीतियों का अनुसरण किया गया है :—

१—शान्ति से व्यापार करने के सुभीते प्राप्त करने की चेष्टा—जो सन् १८१३ तक रही।

२—जहाँ-जहाँ अधिकार हो गया उसकी रक्षा—अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं—१८१५ में यह नीति स्थिर हुई। इसका प्रचार वार्न हेस्टिंग्स ने किया। इन दिनों अमीरखाँ पिण्डारी ४० हजार लुटेरों को लिए देश भर में लूटता फिरता था। इन्हें टोंक और जावरे की नवाबी देकर शान्त किया गया। इस समय तक भरतपुर और अलवर से ही सन्धियाँ हुई थीं। अब धीरे-धीरे करौली, कोटा, जोधपुर, उदयपुर, बूंदी, बीकानेर, किराणगढ़, जयपुर, प्रतापगढ़, डूंगरपुर, जैसलमेर और बाँसवाड़ा के साथ सन्धियाँ करके इन्हें भी अधीन कर लिया गया।

३—इसके बाद ही सन् २७ का विद्रोह हुआ और भारत को महारानी विक्टोरिया ने खरीद लिया। इस समय जो तीसरी नीति निर्माण हुई, उसका मतलब यह

था कि सरकार और देशी राज्यों का लक्ष्य एक है, अतः उन्हें मिल कर सहकारी रूप में शासन करना चाहिए। फलस्वरूप गवर्नमेण्ट को भीतरी मामलों में भी हस्तक्षेप का अधिकार हो गया। पहले कुशासन होने पर चढ़ाई करके उसका राज्य सरकारी अमलदारी में मिला लिया जाता था, अब राजाओं को दण्ड मिलता है—भरतपुर और नाभा के उदाहरण ताज़े हैं। इस प्रकार देशी राजा सरकार के शत्रुओं के शत्रु और मित्रों के विवश-मित्र हैं!! उनकी फ़ौजी ताकतें सर्वथा नष्ट कर दी गई हैं, भीतरी-बाहरी सभी ख़तरे ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट के ऊपर छोड़े गए हैं। जो थोड़ी-बहुत सेना है, वह वास्तव में सेना नहीं कही जा सकती। न ये राजे स्वाधीनता से सिपाही भर्ती कर सकते हैं, न ये अपने युवकों को सैनिक शिक्षा ही दे सकते हैं। उनके शस्त्र निकम्मे, तोपें हल्की और खिलौना मात्र हैं। इसके सिवा ब्रिटिश-शक्ति को यह अधिकार प्राप्त है कि चाहे जिस राज्य में छावनी स्थापित कर दे—राज्यों को उसकी रसद का प्रबन्ध करना अनिवार्य होगा। रेल, डाक, तार आदि का प्रबन्ध सभी रियासतों में गवर्नमेण्ट के हाथ में है। इस प्रकार ये राजागण जो अपने को महाराजाधिराज कहते हैं—प्रजा के माँ-बाप बने हैं—वास्तव में ब्रिटिश-साम्राज्य के अधीन, आश्रित और अवलम्बित हैं। इन परकैच राजाओं में कितना दम है—यह गत महायुद्ध के अवसर पर पृथ्वी की महाशक्तियों ने देख लिया था!!!

महारानी विक्टोरिया से लेकर आज तक ब्रिटिश-प्रभुओं ने इन राजाओं के सम्बन्ध में जो उद्गार प्रकट किए हैं—वे इन घोषणाओं और इन भाषणों से प्रकट हैं :—

१

हम भारतवर्ष के राजाओं को इस घोषणा द्वारा विदित करते हैं कि ऑनरेबुल ईस्ट इण्डिया कम्पनी से की हुई उनकी सन्धियाँ (अहदनामे) और इक्करारनामे हम स्वीकार करते हैं। हम उनके पूरे तौर से पाबन्द रहेंगे और आशा करते हैं कि राजा लोग भी ऐसा ही करेंगे।

हम अपने राज्याधिकारों को बढ़ाना नहीं चाहते और वैसे ही अपने राज्य और अधिकारों पर भी दूसरों को



नाजायज़ सिद्धा न जमाने देंगे तथा साथ ही दूसरे देशी राज्यों पर हमला भी न होने देंगे। हम देशी राजाओं के अधिकार, मान और ऐश्वर्य का अपने ही अधिकारों की तरह आदर करेंगे और हमारी यह इच्छा है कि राजा लोग और हमारी प्रजा भी उस सुख और सामाजिक उन्नति के फलों को भोगें—जोकि आन्तरिक शान्ति एवं श्रेष्ठ शासन के बिना प्राप्त नहीं हो सकते।

—हर मेजेस्टी महारानी विक्टोरिया
(१ नवम्बर, सन् १८५८ ई०)

२

जब से मैं और अपनी पूजनीया माता भारत की प्रथम राजराजेश्वरी, स्वर्गीया महारानी विक्टोरिया के राजसिंहासन पर बैठा हूँ, तभी से मेरी इच्छा है कि उस परोपकारशील एवं न्यायपरायण शासन-प्रणाली को, कि जिससे वह भारतीय प्रजा की प्रेम-पूजा की पात्र बनी थीं, पूरी तौर से जारी रखूँ। भारत के सब राजाओं एवं प्रजा को मैं फिर विश्वास दिलाता हूँ कि हम उनके स्वातन्त्र्य का आदर करते हैं—उनके मान और अधिकारों की इज्जत करते हैं। उनकी उन्नति में हम अनुरक्त हैं, उनकी रक्षा में तत्पर हैं। उपर्युक्त वर्णन मेरे शासन का मुख्य लक्ष्य रहेगा और ईश्वर की दया से भारतीय राज्य और उसकी प्रजा को सुखों के शिखर पर पहुँचाएगा।

—हिज़ मेजेस्टी किङ्ग एडवर्ड सप्तम
(२३ जनवरी, १९०१ ई०)

३

पूजनीया महारानी विक्टोरिया ने शासन की बागडोर हाथ में लेने पर सन् १८५८ ई० में भारत के देशी नरेशों को एवं प्रजा को जो घोषणा की थी और मेरे पूज्य यशस्वी पिता ने ५० वर्ष बाद जिस महत्वपूर्ण फ़र्मान को फिर दुहराया था, शाही शासन के उसी परोपकारशील एवं उदार उद्देश्य के चार्टर (अधिकार-पत्र) का मैं भी भविष्य में बराबर पालन करूँगा।

—हिज़ मेजेस्टी किङ्ग जॉर्ज पञ्चम
(सन् १९१० ई०)

४

भविष्य में उत्पन्न होने वाले प्रश्न सहयोग और

पारस्परिक विश्वास की रीति से हल होंगे। मेरी पूर्व घोषणा में शाही बुजुर्गों द्वारा और मेरे द्वारा दिए हुए विश्वासों को दुहराया गया था और साथ ही भारत के नरेशों के अधिकार, स्वत्व और गौरव को पूर्णतया कायम रखने का मैंने अपना विचार भी प्रकट किया था। राजा लोग विश्वस्त रहें कि यह प्रतिज्ञा बराबर अटल रही है और रहेगी।

—हिज़ मेजेस्टी किङ्ग जॉर्ज पञ्चम

५

देशी रियासतों का ब्रिटिश-साम्राज्य से केवल ब्रिटिश-राजसिंहासन (सम्राट्) के नाते से ही सम्बन्ध नहीं है! वरन् इस बात से भी है कि वे उन भूमि-सम्बन्धी सामान्य विषयों में अधिकाधिक स्वार्थ लेते हैं, जिनसे वे और ब्रिटिश-प्रान्त समान सम्बन्ध रखते हैं।

—मॉटेगू चेम्सफ़र्ड सुधार-स्कीम
(सन्, १९१७ ई०)

हिज़ एक्सलेन्सी लॉर्ड चेम्सफ़र्ड वाइसराय ऑफ़-इण्डिया ने जोधपुर में २० नवम्बर, सन् १९२० ई० के राजदरबार में दिए हुए अपने भाषण में कहा था :—

“बुद्धिमान् नरेश को चाहिए कि समय के परिवर्तन की लहर के साथ-साथ उसके अनुकूल अपना राज्य-प्रबन्ध बनावे। उसे कोशिश करनी चाहिए कि अपने बाप-दादाओं की रस्मों का लिहाज़ रखते हुए अपना शासन पहले की अपेक्षा ज्यादा पब्लिक-राह पर निर्भर रखे और अपने तई यह निश्चय करे कि थोड़े से मनुष्यों के आराम और हुकूमत के लिए बहुतों की भलाई नष्ट नहीं की जावे। हालाँकि नावालिगी के वक्त में यह मुमकिन नहीं है कि राज्य-प्रबन्ध में बड़ा हेर-फेर किया जावे। फिर भी बहुत-कुछ किया जा सकता है, जिससे कि राजा और प्रजा के आपस में अच्छे विचार हों और सहायुभूति बढ़े। पब्लिक को जहाँ तक हो सके, कार्यों में शामिल रखा जावे तथा उनकी शिकायतों को ज़ाहिर करने के सुकम्मिल ज़रिए सुहैया किए जावें और उन शिकायतों को सही साबित होने पर, उनके दूर करने का यत्न किया जावे। कभी-कभी यह देखा जाता है कि राजधानी और उसके चारों ओर की आबादी पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है और किसान

लोगों के फायदे और भलाई की तरफ बहुत कम ख्याल होता है। रेवेन्यू का बन्दोबस्त करने का निश्चय बहुत बुद्धिमानी का है और मेरा विश्वास है कि इससे देहात के लोगों की ज़रूरतों और हौसलों को राज-प्रबन्ध के साथ घनिष्ठ तौर पर मिला दिया जायगा।”

हिज़ एक्सलेन्सी लॉर्ड चेम्सफ़र्ड (वाइसराय) ने बीकानेर में २६ नवम्बर, सन् १९२० ई० के दरबार में भाषण देते हुए इस प्रकार कहा :—

“भारत के नरेशों को शासन-कार्य का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने के अवसर मिलते हैं, इसलिए उनका कर्तव्य है कि स्वराज्य के मार्ग में वे अपने देशवासियों के पथ-प्रदर्शक बनें और उन्हें यह याद दिलाएँ कि यदि व्यक्तियों के अधिकार होते हैं तो साथ ही राष्ट्र के प्रति कर्तव्य भी होते हैं। स्वाधीनता, उच्चृङ्खलता (मनमानी) को नहीं कहते और अराजकता से देश की उन्नति नहीं होती। प्रजा-प्रतिनिधि-सभा (पार्लामेण्ट) में श्रीमान् (महाराजा साहब) ने बीकानेर के निवासियों को रियासत की नीति को च्योरेवार सीखने और उसकी खोज करने का अवसर दिया है और यदि वे राजनीति को वश में नहीं रखते तो कम से कम यह तो अवश्य समझते हैं कि वह उनसे छिपी नहीं है।

“स्वराज्य के जोश में बहुधा जिस बात पर ध्यान नहीं दिया जाता, उसको श्रीमान् ने अच्छी तरह समझ लिया है। वह यह है कि धीरे-धीरे आगे बढ़ना ज़रूरी है और अन्य कलाओं की तरह राज्य-कला भी सीखनी पड़ती है। जिस प्रकार इस संस्था का प्रारम्भ अच्छा हुआ है, उसी प्रकार यदि बुद्धिमानी से यह चलाई जायगी तो इससे बीकानेर-सरकार और बीकानेर के लोगों का परस्पर वास्तविक सम्बन्ध बढ़ जायगा और उस सम्बन्ध से मुझे विश्वास है कि आपके राज-घराने की निर्वलता नहीं होगी। रियासतों का भविष्य मनुष्यों और संस्थाओं—दोनों पर निर्भर है।”

हिज़ एक्सलेन्सी लॉर्ड कर्ज़न का कथन है कि :—

“कोई भी नरेश तुच्छता और जवाबदेही से बरी नहीं हो सकता तथा अपनी मनमानी नहीं कर सकता। जो हुकूमत उसके जिम्मे रखी गई है, अपने को उसके लायक साबित करे, न कि उसका बेजा इस्तेमाल करे। उसे अपनी

प्रजा का मालिक और नौकर दोनों होना चाहिए। उसे यह समझ लेना चाहिए कि उसकी आमदनी और माल, उसकी खुदगर्ज इवाहिशों के पूरी करने के लिए नहीं हैं, बल्कि उसकी प्रजा की भलाई के वास्ते हैं। उसका अन्दरूनी राज-बन्दोबस्त उस हद तक सुधार से बरी है, जहाँ तक कि वह सादिक या खरा है और उसका राजसिंहासन इन्द्रिय-लोलुपता का स्थान नहीं है, लेकिन अपने फ़र्ज़ की सख्त बैठक है। उसकी मूर्ति सिर्फ़ खेल के मैदान (पोलो) में, या घुड़दौड़ में, या यूरोपियन होटल में देखी जाने वाली चीज़ नहीं है। उसका असली काम, उसका राजकीय फ़र्ज़ अपने लोगों के साथ है। इसी पैमाने से मैं उसको जाँचूँगा। इसी कसौटी के ज़रिए वह आख़िर में बतौर राजनैतिक संस्था के नष्ट होगा या ज़िन्दा रहेगा। मेरा उद्देश्य तितली के जैसा नहीं है कि जो बेकाम एक फूल से दूसरे फूल पर उड़ती है, बल्कि काम करने वाली मधु-मक्खी से है कि जो अपना छत्ता बनाती है और खुद अपना शहद इकट्ठा करती है। ऐसे मनुष्य के साथ मेरी हार्दिक सहानुभूति और प्रशंसा है। वह अपनी प्रजा का प्यारा है और अज़रेज़-सरकार का भी प्यारा है, जिसका कि मैं प्रतिनिधि हूँ। हालाँकि यह बात मुश्किल है, लेकिन बड़ी ज़रूरी है कि पब्लिक और ख़ानगी ख़र्चों में साफ़-साफ़ भेद रक्खा जावे और यह याद रहे कि रियासत की आमदनी प्रजा की है, न कि नरेश की; और वह अगर एक शहल में उनसे ली गई है तो बहुधा दूसरी शकल में उन्हें वापस देनी चाहिए। अच्छे और बुरे नरेशों में फ़र्क़ क्या है? अच्छे नरेशों के लिए तो उपयोगिता, कीर्ति और यश का रास्ता खुल जाता है और बुरे राजा शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, और उनका विचार तक लोगों के दिमाग़ से उठ जाता है।

“किसी कामयाब नरेश की ज़िन्दगी ऐसी नहीं होनी चाहिए कि जिसमें ठहर-ठहर कर जोश के झोंके हों। कभी तो फुर्ती और भलाई की लहर हो और कभी उदासीनता में परिवर्तन तथा उतार हो।

“यह साफ़ है कि उनको ज़माने के ढङ्ग के साथ-साथ काम करना व चलना होगा। वे पिछड़ नहीं सकते और जो अनिवार्य उन्नति हो रही है, उसके लिए उनको भार-रूप भी न बनना चाहिए। शाही राज्य की शृङ्खला में वे कड़ियों के मानिन्द हैं। यह कभी नहीं होना चाहिए



स्वर्गीय श्रीमान् महाराज राना सर भवानीसिंह जी बहादुर, के० सी० एस० आई०,
एम० आर० ए० एस०, भालावाड़ (राजपूताना)



स्वर्गीय श्रीमान् कर्नल श्री० बृजेन्द्र सवाई महाराजा सर किशनसिंह जी बहादुर,
के० सी० एस० आई०, भरतपुर



श्रीमान् महाराजा सर उम्मेदसिंह जी बहादुर, के० सी०
एस० आई०, के० सी० वी० ओ०, जोधपुर



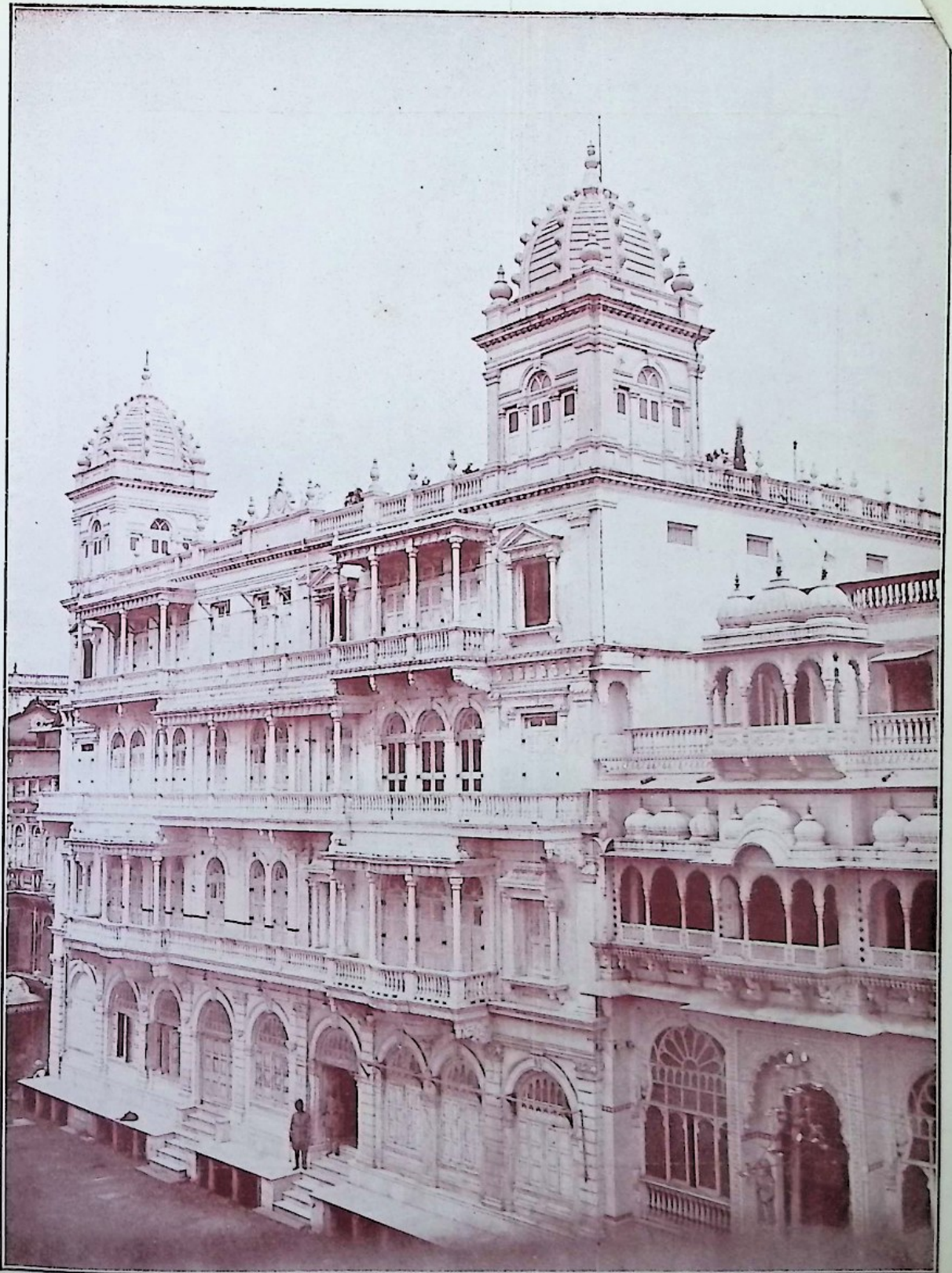
श्रीमान् महाराजा सर तुकोजीराव पेंवार, के० सी० एस० आई०, देवास (सीनियर)



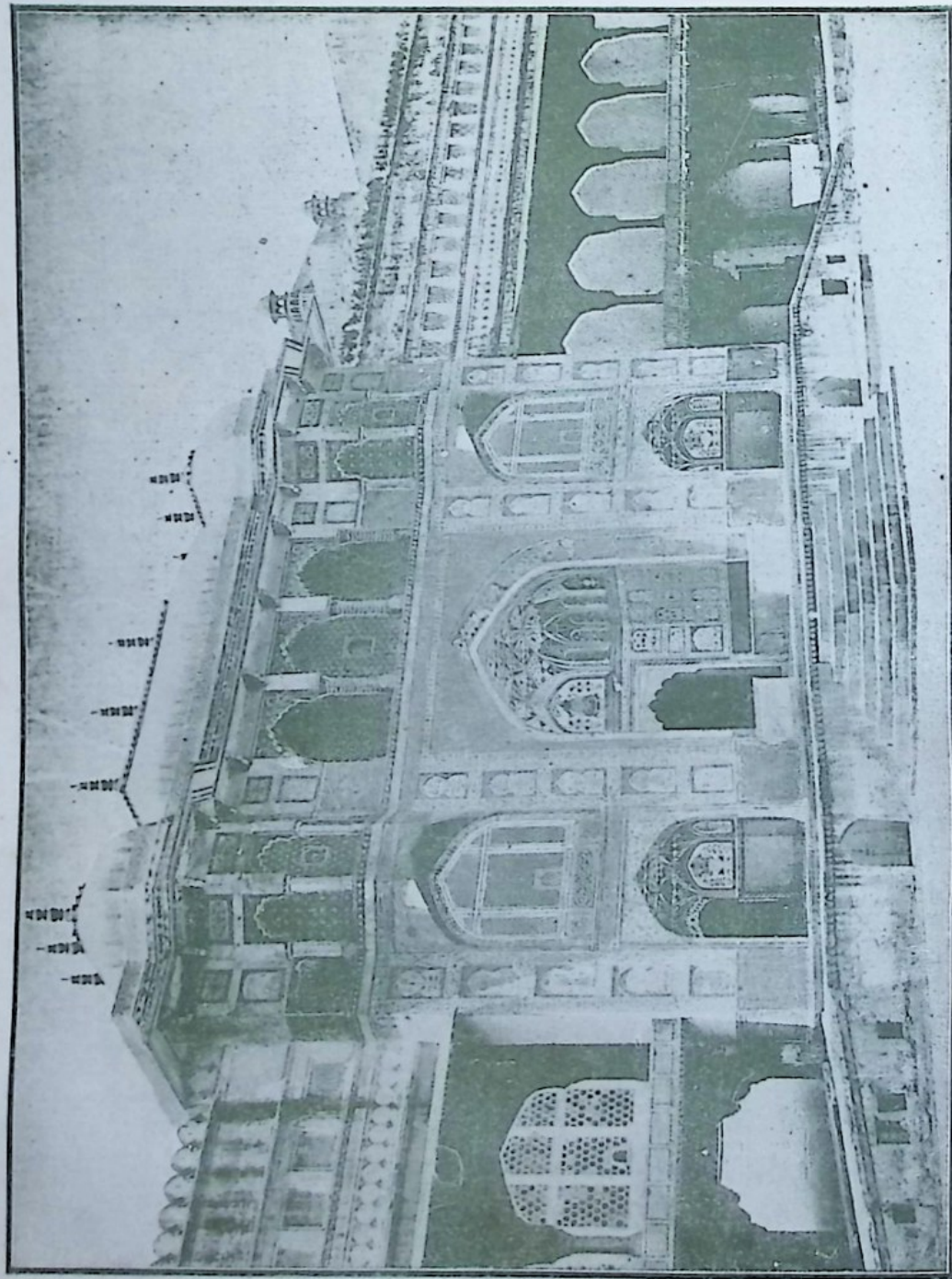
भोपाल महाराजा सर गुलाबसिंह जी बहादुर, के० सी० एस० आई०, रीवाँ



स्वर्गीय श्रीमान महारावल सर रघुनाथसिंह जी बहादुर, के० सी० आई० ई०, प्रतापगढ़



इन्दौर के धन-कुवेर सर हुकुमचन्द जी का राजमहल



आम्बेर (जयपुर) के महल का बाहरी दृश्य

कि ब्रिटिश-कड़ियाँ तो मज़बूत हों और देशी कड़ियाँ उनसे कमज़ोर या उनसे विपरीत हों।

“जैसे शृङ्खला लम्बी होती जाती है और उसके हर एक हिस्से पर ज़्यादा ज़ोर पड़ता जाता है, वैसे ही गुण और रेशों की समानता आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं है तो शृङ्खला टूट जायगी। इसलिए मेरा ख्याल है और मैं इस बात को देशी नरेशों पर जमा देने में ढील नहीं करता कि उन पर एक बहुत साफ़ और निश्चित फ़र्ज़ का भार है। वह सिर्फ़ उनके ख़ानदान व राज्य को सदा के लिए बनाए रखने का ही नहीं है। उन्हें इस पर सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए कि अपने ज़माने में बातें गुज़ार दी जायँ। उनका सिर्फ़ यह फ़र्ज़ नहीं कि शाही राज्य-प्रणाली में निश्चित स्थान उदासीनता से ग्रहण कर लें, बल्कि यह है कि उन पर जो उत्तरदायित्व और भार है, उसको सचेत और सबल सहयोग द्वारा पूर्ण करें।”

हिज़ एक्सलेन्सी लॉर्ड चेम्सफ़र्ड वाइसराय ऑफ़ इण्डिया ने देशी राज्यों के लिए चेतावनी देते हुए यह कहा है :—

“जिस हलचल के ज़माने में हम रहते हैं, उसे और गत कुछ महीनों की घटनाओं को देखते हुए यह भाव प्रबल होता है कि प्रजा के हित का ख़्याल रखे बिना स्वच्छन्दतापूर्ण राज्य करने में क्या-क्या ख़तरा है। दुनिया के अधिकतर देशों में इस ख़तरे के ख़्याल से ही किसी एक राजा के स्वच्छन्द अस्तित्व की जगह प्रजातन्त्र-राज्य की स्थापना हुई है। चूँकि ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट उनकी रक्षा करती है, इसलिए देशी राज्यों के नरेश अपनी प्रजा की भलाई पर निजी अस्तित्व बहुत ज़्यादा रखते हैं और इसलिए उसी प्रकार उनकी ज़िम्मेदारी ज़्यादा है।”

हिज़ एक्सलेन्सी लॉर्ड रीडिङ्ग वाइसराय ऑफ़ इण्डिया ने जोधपुर-नरेश को पूर्ण शासन-अधिकार देते हुए, २७ जनवरी, सन् १९२३ ई० को जोधपुर-दरबार में कहा था :—

“× × × शिष्टा में जैसी चाहिए, वैसी तरक्की नहीं हो सकती है। इस मद में ख़र्च बढ़ा कर प्रायः एक लाख रुपया किया गया है, तो भी राज्य की आमदनी की तुलना से ख़र्च कम है। महाराजा बहादुर को चाहिए कि वे इस विभाग की ओर विशेष ध्यान दें। क्योंकि शिष्टा के बिना राज्य की उन्नति नहीं हो सकती, और दरबार की यह

इच्छा कि मारवाड़-निवासी ही राज्य के ओहदों पर नियुक्त हों, तभी पूरी होगी जब शिष्टा के लिए पूर्ण सुप्रबन्ध किया जायगा। × × × शासन-कार्य अब जैसा कठिन और जटिल हो गया है वैसा कभी नहीं था। महायुद्ध के बाद से संसार में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है। पुराने विचार जाते रहे हैं। पुरानी प्रथाओं की कड़ी आलोचना हुई है। इस तरह की अशान्ति शुभ का ही लक्षण है, पर परिवर्तन का समय शासकों के लिए बड़ा कठिन है। जितने में लोगों के पूर्व-पुरुष सन्तुष्ट थे, उतने में अब लोग सन्तुष्ट नहीं होते। आपके सरदार और प्रजाजन भी वर्तमान युग की उन्नति की दौड़ में पीछे रहना पसन्द नहीं करेंगे। समय की गति से न तो आप ही पीछे रह सकेंगे और न अपनी प्रजा को ही रख सकेंगे। उनकी उच्च आकांक्षाओं पर ध्यान देना ही उचित होगा। तरह-तरह की कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी ज़रूर, पर दूर-दर्शिता, साहस और बुद्धिमत्ता से उनका सामना करने से वे आपसे आप दूर हो जायँगी। यदि आप लोगों के हित पर ही सदा दृष्टि रखेंगे और न्याय और सहानुभूति से राज्य करेंगे तो भविष्य में आपको कोई भय नहीं रहेगा।”

श्रीमान् भारत-सम्राट् महाराजाधिराज पद्मम जॉर्ज महोदय के पितृव्य ड्यूक ऑफ़ केनॉट ने, जो उनके प्रतिनिधि-रूप में काउन्सिलों और नरेन्द्र-मण्डल के खोलने के लिए फ़रवरी, सन् १९२० ई० में भारतवर्ष में आए थे, मद्रास कॉरपोरेशन के अभिनन्दन-पत्र का उत्तर देते हुए कहा था :—

“भारत जो बड़ी शीघ्रता से अपने उन्नति-मार्ग में आगे बढ़ रहा है, उसके लिए भी हमें कम गर्व नहीं है। अब पुराना ज़माना गया। अब फिर वह आने को नहीं है। इस समय जो-जो कार्य हो रहे हैं, उनसे कोई भी हाथ नहीं खींच सकता। सभी देशों में ऐसे लोग हैं जो सार्वजनिक कार्य से मुँह चुराते हैं। ये लोग चाहते हैं कि हमारा बपौती अधिकार सदा क़ायम रहे और सभी हमारे हाथ में रहें।”

हिज़ रॉयल हाईनेस दी ड्यूक ऑफ़ केनॉट ने प्रिन्सेज़ चैम्बर (नरेन्द्र-मण्डल) को खोलते समय अपने व्याख्यान में ८ फ़रवरी, सन् १९२० ई० को दिल्ली में कहा था :—

“सम्राट् (शाह-शाह) की यह इच्छा है कि हर एक सन्देश या शलत श्याल को दूर किया जाना चाहिए, और वह आप सब नरेशों से विश्वास रखते हैं कि आप लोग अपनी मातृभूमि की राजनैतिक उन्नति में अधिकतर भाग लेंगे ।”

भारत-सरकार के लॉ-मेम्बर स्वर्गीय लॉर्ड मैकॉले ने अपने एक प्रसिद्ध व्याख्यान में कहा है कि :—

“मेरा यह विश्वास है कि इस देश में (विलायत में) जितने राज्य-प्रबन्ध के सुधार हुए हैं, वे कदापि न होते, यदि उनके लिए उद्योग और आन्दोलन (एजिटेशन) न किया जाता । सत्य तो यह है कि आन्दोलन से और स्वराज्य से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है । क्या यूरोप और अमेरिका में दास-प्रथा का बन्द होना कभी सम्भव था, यदि उसके लिए घोर आन्दोलन न किया जाता । जैसे वृक्ष की वृद्धि के लिए जल और वायु की आवश्यकता है, उसी भाँति जाति-सुधार, राज्य-प्रबन्ध और अन्यान्य प्रबन्धों में सुधार के लिए घोर एवं अथक आन्दोलन की आवश्यकता है ।”

* * *

सच तो यह है कि यदि देशी नरेश भारतीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन में भाग लेना चाहें, अपनी प्रजा का सुधार करना चाहें, तो अपनी इस परवशता में भी बहुत-कुछ कर सकते हैं । उन्हें न युद्ध-सम्बन्धी भय है, न व्यय । पर खेद है, वे प्रायः अपना निश्चिन्त जीवन रञ्जरेलियों में खर्च करते हैं । न प्रजा की शिक्षा का प्रबन्ध, न नगर-सुधार, न व्यापार कला-कौशल का निर्माण ! जिस भूमि के राजा ऐसे धन-कुबेर हों, जो युद्धादि के भय से इतने उन्मुक्त हों, वे भी यदि अपनी प्रजा की भलाई की ओर ध्यान न दें तो इसे अभाग्य भारत का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए ! आप-दिन राजाओं की विलायत-यात्राओं के प्रसङ्ग आते हैं, जो निरर्थक होते हैं और उनका व्यय इतना होता है जितना राज्य भर की शिक्षा में भी वर्ष भर में खर्च नहीं किया जाता ! फलतः मारवाड़ की प्रजा शरीर, भूखी, सूखी, नङ्गी और निरीह है, जैसा कि पाठक इस अङ्क में अन्यत्र देखेंगे । अनेक राजाओं के जो भीतरी कुकर्म हैं, जरा ठण्डे दिल से उनका विवरण भी पढ़ लीजिए ।

स्वर्गस्थ जयपुर-महाराज ६५ वर्ष की उम्र में मरे । इनके रनवास में सात-आठ सौ स्त्रियाँ थीं । रायसाहब

मिट्टनलाल एडवोकेट ने राजस्थान-प्रजा-परिषद् में सभा-पति के आसन से जो स्पीच दी थी, उसमें उक्त महाराज की ३,००० स्त्रियाँ बताई थीं । श्री० रामनारायण चौधरी ने ‘मॉडर्न रिव्यू’ के एक लेख में इसी संख्या का समर्थन किया है । ये महाराज बेअन्दाज़ शराब पीते थे । बोतलें गटक जाना साधारण बात थी, सदा गर्क रहते थे । मरते समय इन्होंने अत्यन्त कष्ट पाया । जिगर बहुत खराब हो गया था—लकड़ा मार गया था—अङ्ग सूख कर लकड़ी हो गया था । डॉक्टर रॉबर्ट—जिन्होंने अन्त तक चिकित्सा की, इनकी दयनीय दशा प्रायः प्रकट करते थे । इनके मुख्य मर्जीदान बालाजी खवास थे, जो जात के दर्जी थे, तथा बाल-मित्र थे । इनका काम यह था कि रियासत भर में जो सुन्दरी स्त्री या कुमारी लड़की होती, ले आते और पर्दे में डाल देते । इनका मर्जीदान भँवरजी दर्जी था । प्रायः जयपुर नगर में उच्च जाति की कोई विधवा या सुहागिन स्त्री बदचलन हो जाती तो उसके संरक्षक बालाजी खवास के यहाँ अर्ज करते कि हमारी बहिन, बेटी या बहू का चाल-चलन ठीक नहीं है, वह हमारे कब्जे से बाहर है, सो आप उसे ड्योढ़ी में दाखिल कर लें । बालाजी, भँवरजी और एकाध नाजर (हीजड़े) को भेजते कि देखें वह सुन्दरी और कमसिन है या नहीं । यदि ठीक होती तो शाम को रथ भेज देते । सौ, दो सौ रु० ड्योढ़ियों में डलवाई की रिशवत लेते और पर्दा डाल कर ले जाते । ड्योढ़ी में रहने को एक कमरा मिलता । दूसरे दिन महाराज उससे मुलाकात करते । एक बार उसका ‘इस्तेमाल’ करते ! फिर जब आवश्यकता होती मँगा लेते । दूसरे पुरुष का दर्शन इन अभोगिनियों को दुर्लभ था । महाराज १०-१५ स्त्रियाँ प्रतिदिन अपने लिए चुनते थे । सप्ताह में एक बार जनाना दरबार होता । सब स्त्रियाँ इकट्ठी होतीं, उनमें से महाराज सप्ताह भर के लिए चुन लेते थे !!

दुर्गापुरा जयपुर से तीन-चार मील पर एक गाँव है, वहाँ खवास जी का बँगला था । वहाँ एक बड़ा भारी हौज़ था । वहाँ अक्सर महाराज जल-विहार को स्त्रियों सहित पहुँचते । बहुत सी मशक्कत पानी में छोड़ी जातीं, जिन पर नङ्गी स्त्रियाँ बैठ जातीं, आप भी नङ्गे होकर घुस पड़ते । फिर वहाँ न कहने और न वर्णन करने योग्य चेष्टाएँ खुलम-खुला होती थीं !!!

ड्योढ़ियों में जो औरतें होती थीं, उनके विभाग थे,

जिन्हें अखाड़ा कहा जाता था। प्रत्येक में ५०-६० स्त्रियाँ होती थीं। प्रत्येक पर एक प्रधान स्त्री होती थी। महाराज हुक्म देते, आज अमुक अखाड़े की १० औरतें बुलाओ, आज अमुक की !

महाराज की मृत्यु के बाद जब रीजेन्सी जयपुर में कायम हुई, तब बालाजी पर बहुत से मुकद्दमे चले। अन्त में इन्हें २ वर्ष की जेल हुई और कई लाख की स्टेट ज़न्त कर ली गई !

एक बड़े प्रसिद्ध महाराज अप्राकृत व्यभिचार के लिए प्रसिद्ध हैं। १-२ दर्जन मज़बूत जवान सदैव उनके साथ इसी मतलब के लिए रहते हैं। इस व्यक्ति ने अपनी रानियाँ अन्य पुरुषों को सौंप दी हैं ! हाल ही में एक रानी के पास अंधेरे में एक पुरुष भेजा गया। पीछे जब बत्ती खोली गई तो रानी ने भाई को अपने साथ पाया ! महाराज के लिए यह मानों बड़ी दिक्कत थी, वे खिल-खिला कर हँस पड़े। पर रानी को आत्म-घात करके ग्लानि और लज्जा से परित्राण पाना पड़ा। एक बहुत बड़े व्यक्ति का कहना है कि महाराज में यह बुरी आदत एक प्रख्यात लाट साहब की कृपा से पड़ी थी। एक रानी को आवू में ए० डी० सी० की सेवा में जाने का आदेश दिया गया, उसके इनकार करने पर उसे ऊपर से गिरा कर मार डाला गया। आप किसी को नौकर रखेंगे तो पहले फ़ोटो मंगा लेंगे। एक व्यक्ति को हम जानते हैं, जो इसी योग्यता से बिना पढ़े-लिखे ही एक बड़ा ऑफ़िसर बना दिया गया है। के एक राजा साहब भी आपकी कृपा से जागीर भोग रहे हैं। ये महाशय मेयो कॉलेज से ही उनके हथ्ये चढ़े थे। ३-४ वर्ष की बात है कि आपने जोधपुर से एक सुन्दर रावराजा साहब को ए० डी० सी० बना कर बुलवाया। वे बेचारे ७-८ महीने में ही पीले पड़ गए और खून मूतने लगे—रोगी होकर भाग खड़े हुए। के एक एफ़० ए० फ़ेल कायस्थ साहब, जो भूखे मरते थे, इस योग्यता की तुफ़ैल से दो-ढाई सौ का वेतन पा रहे हैं !!

एक मारवाड़ के महाराज, जो थोड़े दिन पूर्व युवा अवस्था में मरे हैं, दिन भर पड़े सोते थे, रात भर वेश्याओं के कोठों पर घूमते थे। आपने १० पड़दायतें डाल ली थीं—तीन पातरें, पाँच गोलिण्ड (दासियाँ), तीन ब्राह्मणी और एक-दो अन्य थीं। जब वे मरे तो वे सब किले पर चढ़ा दी गई और राज-नियम के अनुसार सड़ती रहीं। जब.....

रीजेण्ट बन कर आए तब उन्हें छुट्टी दी गई। ये महाराज एक बार दिन-दहाड़े एक सुसलमान रँगरेज़ की सुन्दरी लड़की को उठा कर मोटर में डाल कर ले गए। ५-६ दिन रख कर १५-२० हजार रूपए के साथ लौटा दिया। ये भाग्य-हीन अल्पवयस्क महाराज एक वेश्या के कोठे पर इन्फ़्लु-एन्ज़ा में पूना शहर में रोगी हुए और घर में आकर मरे !

एक रियासत की घटना है, एक सज्जन ने साहसपूर्वक अपने हस्ताक्षरों से सन् १९१६ में एक दरख्वास्त राज्य के एक उच्च अज़रेज़-ऑफ़िसर को दी। उसका आशय यह था :—

“अमुक व्यक्ति अमुक महकमे का चार वर्ष पूर्व ऑफ़िसर था। उसकी अधीनता में जो लोग थे वे उसी के सम्बन्धी आदि थे। जिन्हें वह जैसे चाहता, काम में ले आता था। वह शहर में से औरतें लाता और अपना मतलब गाँठने के लिए अपने महाराज की सेवा में पेश करता। उसके मरने के बाद उसका लड़का भी यही धन्धा करता रहा। और उसे भी वही ओहदा दिया गया। फलतः अधिक स्त्री-प्रसङ्ग से जवान राजा की मृत्यु हो गई!

“मेरा यह कहना अत्युक्ति नहीं है और बड़ी आसानी से इसकी जाँच की जा सकती है। श्रीमान् महाराजा... और महाराज इसके स्वयं साक्षी हैं। जो इसे, इसके बाप को और इसके खानदान तथा कारनामों को भली-भाँति जानते हैं।

“कहते हैं, वर्तमान महाराज.....दशहरे की छुट्टी में जब.....से आए थे तब उन्होंने साफ़ कह दिया था कि “.....महकमे के नौकर-चाकरों को हमारे पास मत आने दो, क्योंकि इन लोगों की वजह से राज-परिवार नष्ट-भ्रष्ट होता है।” जबकि राजा लोग इस तरह भ्रष्ट हों तो प्रजा भी उनका अनुसरण करके अवनति के गर्त में गिरती है ! जो आदमी इस प्रकार राजाओं को भ्रष्ट करता है, उसका राज्य के कर्मचारियों पर पूरा रुआब गालिब रहता है और वह अपने फ़ायदे के लिए उनसे सब कुछ करा लेता है। यही नहीं, किन्तु ऐसे लोग राजा की दुर्बलता के अवसरों पर अपना मतलब गाँठ लेते हैं, जिसका कभी-कभी बड़ा भयानक परिणाम होता है।”

इस अर्ज़ी पर हलचल मच गई थी, और यह चुपचाप फ़ाइल में छिपा कर रख दी गई। जिसे किसी तरह

देखने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इसके तीन वर्ष बाद जब प्रधान गवाह महाराजा.....की मृत्यु हो गई, तो लेखक पर मुकद्दमा चलाया गया और जिन पर आरोप था वही जज बन कर बैठे! लेखक ने वीरतापूर्वक मुकद्दमा बला किया। वह उन औरतों को गवाही के लिए कोर्ट में लाया—और भी गवाहियाँ पेश कीं, पर उस पर १०० जुर्माना किया गया। अपील करने पर ५०० और कर दिया गया। आप सोच सकते हैं कि इन नीच चेष्टाओं के विरुद्ध आवाज़ उठाना भी कितना भयानक है!

एक और महाराज ने एक पासवान रख छोड़ी थी। उससे एक मन्दिर में मुलाकात हो गई थी। यह स्त्री ओसवाल जाति की थी। उस समय के दीवान साहब को भी उसी की आज्ञा लेनी पड़ती थी। रानियों से अधिक उसकी शक्ति थी। महाराज सदैव किले से उसके मकान तक बड़े ठाट-बाट से सवारी पर आते थे। जब महाराज की सवारी निकलती तो एक चमार जूतों से अपना मुँह ढक लेता था। जब उससे कारण पूछा गया तो उसने कहा—“ऐसी स्त्री के पास इस तरह खुल्लमखुल्ला जाना शर्म की बात है। महाराजा नहीं शर्माते, मुझे तो लाज लगती है।” महाराज ने सुना तो शर्मा गए। बाज़ार का रास्ता छोड़ दिया और गली में होकर जाने लगे। जागीरदारों को उसकी सवारी में पीछे जाना पड़ता था।

एक महाराज हैं, जिनकी आयु इस समय ७२ के लगभग है, वे अब तक अप्राकृत व्यभिचार करते हैं। एक दारोगा (जिसका चित्र हमने ‘चाँद’ में छापने को मँगाया था, परन्तु कुछ सोच कर नहीं छपा) इस सुकर्म को सम्पादन करता है। भङ्गन की एक १३-१४ वर्ष की लड़की पर आपने बलात्कार किया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। आपके राजकुमार खास तौर से इसीलिए आपसे नाराज़ हैं !!

एक महाराजा ने दिल्ली से २ हजार ५० मासिक पर एक वेश्या किराए पर ली। ५-६ मास बाद उस पर घोर श्ल्याचार किया गया। ज़रा-ज़रा से अपराधों पर उस पर १०-२० मनुष्य ‘उतारने’ (!!!) की सज़ा दी जाने लगी—वह वहाँ से मौक़ा पाकर भाग आई। उसके हाथ एक चित्र पड़ गया था। इस चित्र में वह वेश्या, महाराज और उनके सरज़ीवान एक और व्यक्ति—तीनों नग्न कुचेष्टा कर रहे हैं। यह चित्र एक मुसलमान-मित्र की माक़ूत दो हजार में

उसने एक प्रख्यात मुसलमान-लीडर को बेचा और उन्होंने महाराज को उस चित्र का कॉपीराइट छब्बीस हजार में बेच दिया !!

उस वेश्या से हमने परिचय करके सब बातें पूछी हैं। उसके वर्णन बड़े रोमाञ्चकारी हैं। उसे इतना सदमा इस राजा के दुष्ट बर्ताव से हुआ कि वह सब कुछ त्याग कर अब एक हिन्दू सद्गृहस्थ के घर में बैठ गई है!

एक ठाकुर साहब जन्म-नपुंसक थे। साठ वर्ष के होने पर भी आप अप्राकृत व्यभिचार करवाते थे। शान के लिए आपने एक वेश्या रख छोड़ी थी।

एक महाराज-कुमार जन्म-अपाहिज हैं, नीचे का धड़ मारा गया है, किसी मतलब के नहीं—घर में रानियाँ हैं, रण्डियाँ भी नौकर हैं और व्याह करने की तैयारियाँ भी हैं। कहाँ तक ये उदाहरण दिए जायँ—पाठक इतने ही से सन्तोष करें।

एक बड़ी रियासत के प्राइम मिनिस्टर साहब हैं, जो भारत-सरकार के पूरे पिटू हैं और बड़ी भारी दुम लगाए बैठे हैं। ये अपनी कारगुजारी से ३० के क़र्क की योग्यता से १५ सौ तक पहुँच गए। इन्होंने युवक महाराज को लड़कों से अप्राकृत कुकर्म का शौक़ लगाया। पीछे कुत्सित दृश्य के फ़ोटो उतरवा कर क़ब्ज़े में किए। वे फ़ोटो रेज़िडेण्ट को दिखा कर महाराज को नालायक ठहराया—अधिकार छिनवाए—और उन्हें विलायत भिजवा दिया। पीछे आपने खुले हाथों प्रजा की बहु-वैधियों को पकड़ना, सतीत्व लूटना, अनेक अनीतियों से धन बंदोरना शुरू किया। अन्त में महारानी से भी कुत्सित सम्बन्ध कर लिया। महाराज के लौटने तक महारानी का पूर्ण पतन हो चुका था। महाराज ने लौट कर विवश दूसरा विवाह किया। उन्होंने महाराजा को डरा-धमका कर अच्छी जागीर अपने नाम लिखा ली। लाखों रुपए की ज़मींदारी ब्रिटिश-राज्य में ख़रीद ली। अब बैठे चैन की वंशी बजाते हैं। इस समय कम से कम डेढ़ करोड़ रुपए का माल पास है !!

* * *

कहावत है—‘तपे सो राजा और राजा सो नर्क।’ इस कहावत में एक गम्भीरता है। राजा होना मनुष्य-शरीर की चरम सीमा की ऐहिलौकिक इच्छित वस्तु है। राजा



पद-सेवा

सेठानी—आरे हाथ सँ पग चौपवासँ रहाने धियोई केन पड़े है !
नीकर—मैं थारी नस पिछाणें हूँ ।



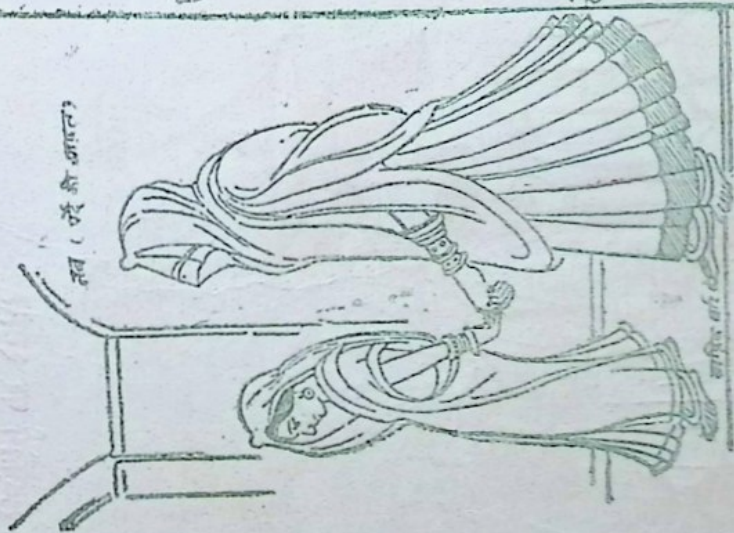
उवटण

सेठानी—जोर सँ मल रे
नीकर—थायें लचको पड़ जाली ... ला ...



ग्रहस्थ की गाड़ी दलदल में—

Chanchal



हम (देर के काम)

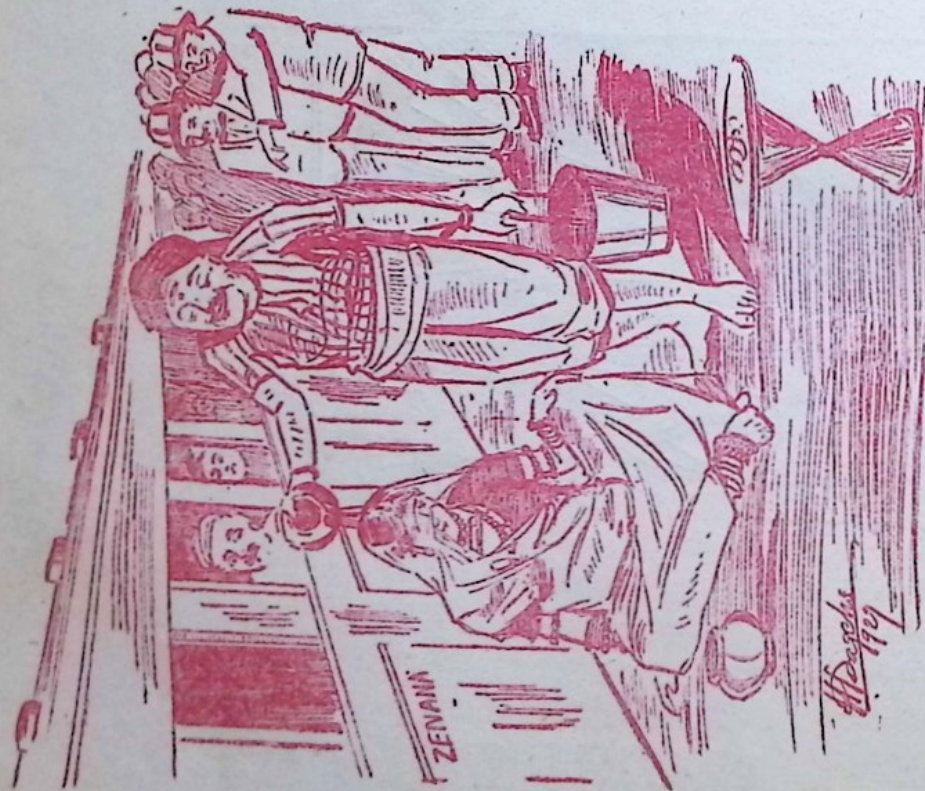


हम (देर के काम)

जब वह बन कर आई थी !

अब सास बन कर !!

सौदा



पुटफ़ॉर्म पर स्नान

सेठ जी—महाराज ! जल्दी करो, गाड़ी ने सीढ़ी दे दी...
अङ्कुरेज़ दर्शक—कैसा गधा आदमी है—शौच को ऐसा बेपर्द कर रक्खा है !



सौदा

कन्या का खरीददार—१० हजार तो घणा है, कहीं तो कम करो—इतरो
मैंगो सोदो क्याँ न पड सी ?
कन्या का पिता—१० हजार की तो भहारी छोरी री एक-एक आँख
दे—समझा !!

को लोग लोकोत्तर समझते हैं। उसके अधिकार और रहन-सहन भी लोकोत्तर ही होते हैं।

जिस समय राजत्व की रचना हुई थी, वह समय ऐसा था कि बिना लोकोत्तर व्यक्तित्व धारण किए कोई राजा हो ही नहीं सकता था। राजा उस समय सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति ही हो सकता था। उसमें योग्यता, शक्ति, त्याग और श्रेष्ठता के हृदय दर्ज के गुण होने आवश्यक थे। ये ही गुण उसे राजा बनाए रखते थे। दिलीप के विषय में कालिदास लिखते हैं :—

सेना परिच्छदस्तस्य द्वयमेवार्थसाधनम्
शास्त्रेष्कुण्ठिता बुद्धिः सौर्वी धनुषि चातता ॥

अर्थात्—सेना और सब सामग्री तो उसकी सजावट मात्र थी। काम करने वाली वस्तु तो उसके पास दो ही थीं, एक तो शास्त्रों में न रुकने वाली बुद्धि, और दूसरे चढ़ा हुआ धनुष !!

अत्यन्त प्राचीन काल के राजाओं के शौर्य और प्रताप को जब हम पुराणों और महाभारत में पढ़ते हैं तो हमारी आँखों में धँधेरा आता है। हम चूहे से डरने वाले मर्द और स्त्रियों के महाप्रभु-वीर यह कभी कल्पना भी नहीं कर सकते कि पृथ्वी को कम्पायमान करने वाले और रक्त की नदी में महा-फाग खेलने वाले व्यक्ति भी कभी उत्पन्न हुए थे। मुगलों के अन्तिम काल तक हमने राजपूताने की हवा में उच्च-कोटि का वीरत्व देखा था। पर आज उसी देश का ऐसा भयानक पतन होगा, यह कौन जानता था ?

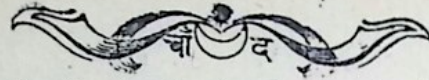
परन्तु यदि विवेचना की दृष्टि से देखा जाय तो हम कहेंगे कि अब वीर बनने की हवस रखना मूर्खता है। सामाजिक बन्धनों और उत्कर्षों ने व्यक्तिगत जिम्मेदारियों को बहुत ही अनावश्यक बना दिया है। अब यदि मनुष्य वीर बनने की अपेक्षा प्रबन्धक बन सके तो वह अपने जीवन में सफलता प्राप्त करेगा। यों तो वीरता एक आभूषण है, परन्तु सफलता का एक ही मार्ग है—वह है प्रबन्धक बनना। प्रत्येक साधारण पुरुष आज इस बात को अपने जीवन में महसूस करता है।

सर्व-साधारण का यह नियम राजाओं पर भी लागू हो सकता है। वीरों पर वीरों ने शासन किया, अब व्यवहार-कुशलता और प्रबन्धकों पर व्यवहार-कुशल और प्रबन्धक

शासन करें। हम साहसपूर्वक कह सकते हैं कि जिस राजा ने वीरता की—अकड़-पुंठ की—उसने अपने मार्ग में काँटे बोए, परन्तु जिन्होंने प्रबन्ध-चातुर्य और व्यवहार-कुशलता का परिचय दिया—बन गए। यह एक गम्भीर-सत्य है।

हमें प्रायः राजाओं से वास्ता पड़ता रहा है। और चिकित्सक की हैसियत से हमें उनके न केवल अन्तःपुर तक सँ जाने के अवसर मिले हैं, प्रत्युत उनके गुप्त-रहस्यों को भी जानने के अवसर आए हैं। और इसके बाद हमें अपनी यह राय क़ायम करनी पड़ी है कि आज राजाओं का जीवन सर्व-साधारण से कहीं अधिक पतित, चिन्ता-युक्त, अशान्त और अपमानपूर्ण है। निस्सन्देह इन नर-वरों की इस दुरवस्था की एक हद तक जिम्मेदार अङ्गरेज़ी सरकार की वह नीति है, जिसकी भित्ति अब तक भारत के प्रति अविश्वास, सन्देह और अमित्रता के विचार हैं ! हम बार-बार यह अनुभव करते हैं कि सरकार भारत-वर्ष के इन निस्तेज राजाओं के साथ यद्यपि अपेक्षाकृत अधिक निकट रहती है, पर उसी तरह, जैसे सँपेरा साँप के निकट रहता है, या सरकस में सिंह के पिंजड़े के पास खिलाड़ी रहता है। प्रति क्षण की व्यर्थ सतर्कता और नीरस मित्रता हम नहीं समझते कि सच्चा विश्वास और सङ्गठन उत्पन्न होने देंगी। हमें यह कहते ज़रा भी सन्देह नहीं होता कि अकबर और जहाँगीर के साथ, और औरङ्ग-ज़ेब के भी साथ हिन्दू-राजाओं का जैसा घनिष्ट आत्मीयता का सम्बन्ध था—अङ्गरेज़ी सरकार के साथ वैसा नहीं है। मराठों के प्रबल प्रताप के समय—पानीपत की तीसरी लड़ाई से प्रथम—मुगलों की जो दशा हो गई थी, और उस समय हिन्दू-राजाओं ने मुगलों के तख्त की रक्षा के लिए जैसी चेष्टाएँ की थीं—यदि कभी अङ्गरेज़ी सरकार की वह दशा हो जाय तो हमें विश्वास है कि उसे देशी नरेशों से वह सहायता न मिलेगी ! और इसका कारण है अङ्गरेज़ी सरकार का यह शूठा गर्व कि वह समझती है कि हम सिर्फ़ अपनी ही सुठमर्दी, शक्ति और योग्यता से भारत पर अधिकार रखते हैं। भारत के राजाओं तक के सहयोग की भी हमें ज़रूरत नहीं है।

यह बड़े ही दुःख की बात है कि देशी नरेशों में अपनी शान-शौकत दिखाने और ऐश करने तथा थोथे खुशामदियों पर विश्वास कर उन्हीं की सोहबत में रहने



की बुरी आदत पड़ गई है। बहुत कम ऐसे राजा हैं जो योग्य साथियों के बीच रहते हैं।

सबसे बड़ा शौक जो राजाओं को लगा है, वह विलायत-यात्रा का है। यह दिन पर दिन बढ़ता जाता है। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है कि देशाटन करना सबसे बढ़ कर योग्यता सम्पादन और अनुभव बढ़ाने का उपाय है। शिक्षा और अनुभव के लिए यूरोप जाना बुरा नहीं है, परन्तु देखा गया है कि प्रायः अनुभव के स्थान पर मौज उड़ाना और बेअन्दाज़ प्रजा का धन फूँकना ही इन यात्राओं का उद्देश्य होता है। पिछले दिनों में जोधपुर-नरेश और पटियाला-नरेश विलायत गए हैं। जोधपुर-नरेश १८ लाख रुपया खर्च कर आए! डेढ़ लाख रुपए की तो एक मोटर ले आए हैं। दूसरे महाराज भी लगभग इतना रुपया खर्च कर आए और कुत्तों की एक फ़्लटन साथ ले आए हैं। यह भी मालूम हुआ कि श्रीमती महारानी साहबा जोधपुर, लन्दन के बाज़ारों में बेअन्दाज़ निकम्मी वस्तुएँ खरीदती थीं, जिनसे लन्दन वाले भी चकरा गए थे। पटियाला-महाराज अपने जवाहरात दिखा कर लोगों को हैरान करते थे!!

क्या इन तमाम आडम्बरों से यूरोप के लोगों पर शान गाँठी जा सकती है? जहाँ का प्रत्येक बच्चा यह जानता है कि अन्ततः ये अङ्गरेज़ी साम्राज्य के साधारण सेवक हैं और आज्ञाकारी हैं। अपनी तो हम कह सकते हैं कि यदि हम राजा होते तो हमें तो यूरोप के किसी आदमी को भी मुँह दिखाने का साहस न होता। जहाँ का भङ्गी भी हमारे यहाँ के राजा की अपेक्षा अधिक स्वच्छन्द और मानवीय अधिकारों से युक्त है!

इन निकम्मी और हास्यास्पद यात्राओं से इङ्ग्लैण्ड के वर्तमान युवराज की यात्राओं का मुकाबला करना चाहिए। पिछले दिनों जब वे भारत में आए थे तब भारत ने देखा था कि राजाओं की यात्राएँ कैसी होनी चाहिए। उनके उद्देश्य और उनके डङ्ग कैसे होने चाहिए। कैसी विषम बात है कि अखबारों में हमारे राजाओं के तो खर्च हुए रुपयों की गिनती छपती है और प्रिन्स ऑफ वेल्स की यात्रा के मीलों की गिनती छपती है। इङ्ग्लैण्ड की सम्पन्न प्रजा पढ़ती है कि उनके भविष्य राजा ने इतने हज़ार मील की यात्रा की और देश-देशान्तर के नगरियों ने उनके दर्शन किए, मिले, एक दूसरे के स्नेह

का विनिमय हुआ। परन्तु हमारे देशी राज्यों के शरीब, दुखी प्रजागण पढ़ते हैं—‘हमारे महाराज हमारी शरीब कमाई में से इतने लाख रुपए फूँक आए। अब बेगार, केमाली और देखों की भरमार होगी।’ क्या यह दुःख का विषय नहीं है कि राजागण दया और उदारता के नाते यह समझें कि उन्हें अपनी दीन-दुखी प्रजा के पसीने की गाढ़ी कमाई को ऐश-इशरत में खोने का कोई अधिकार ही नहीं है। तन्दुरुस्ती के लिए विलायत जाने की बात अत्यन्त हास्यजनक है। जहाँ सदा कोहरा, बदली और गीलापन रहे वहाँ पर्वतराज हिमालय की प्यारी गोद छोड़ कर जाना कैसी अनोखी बात है! जहाँ करोड़ों लोग जी रहे हैं, वहाँ राजा भी अवश्य जी सकते हैं!!

* * *

मारवाड़ी-साहित्य

साहित्य मानव-जीवन के रीढ़ की हड्डी है। जिस देश और प्रान्त का साहित्य पुष्ट और उच्च होगा, उस देश का मानव-समाज भी उतना ही उच्च और पुष्ट होगा। साहित्य मनुष्य के जीवन में वह विकास उत्पन्न करता है, जो उसे साधारण प्राणी की हैसियत से ऊपर उठा कर मनुष्यत्व की चरम सीमा तक पहुँचा देता है। पृथ्वी के इतिहास में साहित्य का प्रभाव अमोघ है। साहित्य ने महाजातियाँ निर्माण की हैं, साहित्य ने महाजातियों का विध्वंस किया है। साहित्य ने मुर्दों को ज़िन्दा बनाया है, और साहित्य ज़िन्दों को मुर्दा बनाता है।

साहित्य की मूल-भित्ति है हृदय, और उसके विकास के प्रभाव का स्थल है मस्तिष्क। हृदय में आन्दोलन उत्पन्न करके मस्तिष्क की सूक्ष्म विचार-धाराओं को सञ्चालन करना साहित्य का कार्य है। यही तो मानव-जीवन का उत्कर्ष है—पशु और मनुष्य में यही तो अन्तर है। पशु साधारण शरीर की आवश्यकताओं का अनुभव करके जीवन की सभी चेष्टा करता है, परन्तु मनुष्य मस्तिष्क की विचार-धाराओं से आन्दोलित होकर जीवन की उन प्रक्रियाओं को भी करता है, जिनसे वास्तव में उसकी शरीर-सम्पत्ति का कोई वास्ता ही नहीं है। इसलिए किसी भी समाज या जाति का साहित्य देख कर हम सरलता

से इस बात का अनुमान लगा सकते हैं कि वास्तव में वह जाति मनुष्यत्व की योग्यता में क्या दर्जा रखती है। सच पूछा जाय तो साहित्य वास्तव में मनुष्यत्व की कसौटी है। और केवल कसौटी ही नहीं, वह जातियों के उत्थान और पतन का एक प्रबल कारण भी है। साहित्य जातियों को वीर बनाता है। साहित्य ही जातियों को क्रूर, नीच, कमीना, पापी, पतित बनाता है। इसलिए प्रत्येक जाति के विद्वानों के ऊपर इस बात का नैतिक भार है कि वह अपने साहित्य पर कठोर नियन्त्रण कायम रखें, उसे जीवन से भी उच्च, पवित्र एवं आदर्श बनाए रखें।

मारवाड़ का अब से १०० वर्ष पूर्व तक का साहित्य महाजातियों के सजने योग्य साहित्य है। अब से १०० वर्ष पूर्व तक मारवाड़ भारतवर्ष की सशक्त भुजा के स्थान पर था—वह मर्दों की पृथ्वी थी। वहाँ मर्द पैदा होते थे। उन मर्दों ने मुट्ठी भर की संख्या में साम्राज्यों और सम्राटों के तूफानी हमलों का ऐसा सफल और वीरत्वपूर्ण मुकाबला किया था कि जिनकी गाथाएँ पृथ्वी की कोई भी जाति आदरपूर्वक गान कर सकती है। एकतन्त्र शासन की प्रबल चट्टानें वहाँ ७०० वर्षों तक टकराईं और अन्त में चूर-चूर हो गईं। यह उन दिनों की बात है, जब मारवाड़ में असली राजपूत जीवित थे। उन दिनों मृत्यु ही उनका व्यवसाय था। वही उनकी जीवन-क्रीड़ा और विलास था। उन दिनों चारण और भाट उनके दरबार में रहते थे। जब युद्ध-यात्रा में वे वीरों के आगे धौंसे की गर्जना और डङ्के की चोट की ताल पर गम्भीर और ओज-भरे स्वर में उन वीरों के पूर्वजों के कृत्य सुनाते थे, प्रत्येक जवान के आगे आकर उनके पिता-प्रपिता और रमणियों तक के उत्सर्ग के साखे गाते थे; तब प्रत्येक वीर का रक्त गरम होकर उसकी नसों में बहने लगता था। उत्कर्ष की हवस उनके मन में उठती थी। नसें फड़क उठती थीं और उनकी तलवार विकराल हो जाती थी। उन शस्त्रहीन बूढ़ों की वाणी में जो बल था, वह हज़ारों तलवारों, लाखों भालों और शस्त्रों से कहीं उत्तम था। वीरत्व की वह कुञ्जी थी। वीरत्व का वह मार्ग था। वीर उसी की डोरी पर आगे बढ़-बढ़ हाथ मारते थे, मरते थे, और अपने पीछे की सन्तानों को एक उदाहरण दे जाते थे। वे बृद्ध साहित्यिक अपनी आँखों देखे उस शौर्य की ऐसी कड़क कविता रचते थे जो जीवित मूर्ति के समान होती थी। उस कविता को

वे शान्ति के दिनों में अपने शरीर कोपड़ों में बैठे अपने बच्चों को सिखाते थे। वही बच्चे बड़े होकर अपने पिता के स्थान पर आगे बढ़ कर राजपूत मात्र के कर्णधार बन कर, उनके आगे उस मृत्यु-पथ पर तारुण्य-नृत्य करते बढ़ते थे, जो उन्हें अमर कर देता था।

धौंसे की धमक और कड़खे की ताल पर रणरङ्ग की होली खेलने वाले वे वीर—जिनके लिए जीवन और मृत्यु खेल था—प्रकृत वीर, सहिष्णु, संयमी और स्वाभाविक योद्धा थे। वे दिल्ली के प्रबल प्रतापी मुगल-तुर्क के समुख मित्र और शत्रु दोनों ही रूपों में अलौकिक बने रहे। जहाँ मुगलों के इतिहास में सत्तावन के भाग्यहीन दिनों में मुगल-शाहजादों ने अङ्गरेजों के गोइन्दे बन कर शाही खानदानों की मिट्टी में मिलवाया, जहाँ बङ्गाल के नवाबों का जानदार घराना घर के कुत्तों और गधों की नमकहरामी से नष्ट हुआ, वहाँ इन वीर-राजपूतों का गत १५ सौ वर्षों के भारतीय राजतन्त्र में नमकहरामी और विश्वासघात से रहित, प्रकृत वीरता का जो निर्मल जातीय चरित्र मिलता है, वह राजनीति के परिदृश्यों के लिए आश्चर्य का विषय है। यही मारवाड़ आज भी इस बात पर गर्व कर सकता है कि पर्वों में रहने वाली महिलाओं ने जातीय उत्कर्ष में अपना स्थान पृथ्वी भर में सर्वोत्तम बनाया था। जिनकी वीरता, त्याग, तेज और उत्सर्ग की गाथाएँ ऐसी भारी और अच्य ऐतिहासिक वस्तु हैं, जिन पर किसी भी देश की स्त्री-जाति गर्व कर सकती है।

परन्तु वे मृत्यु के व्यवसायी अपने पीछे आज कैसी सन्तान छोड़ गए हैं, यह बात आँख वाले ही जान सकते हैं। निकट-भविष्य में जो क्रान्तिवाद की भयानक आँधी आ रही है, हमें भय है कि वह साम्राज्यवाद के साथ ही इस कलुषित राजवंश को विध्वंस करेगी। गौरव गँवा कर जीने की अपेक्षा इस तरह नष्ट होना तो बहुत सुन्दर बात है। परन्तु वह वीरता, जिसकी अमर-कथा अब भी भारत के भाग्यहीन सिर को ऊँचा करती है, क्या मूल तक नष्ट हो जायगी? ऐसा तो पृथ्वी-तल के इतिहास में हुआ ही नहीं। यूरोप की क्रान्तियों ने राजकुमारों को विध्वंस कर दिया। नेपोलियन बोनापार्ट के प्रतापी जनरलों के पोते आज पैरिस में बैरिस्टर बन गए हैं, महासमर के बादशाह और शाहजादे आज व्यापार कर रहे हैं;

परन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या यूरोप का युद्ध-जीवन नष्ट हो गया? यूरोप की रक्त-पिपासा क्या थम गई? नहीं।

यह तो जातियों का स्वभाव है। सात्विक क्रोध प्रत्येक वीर पुरुष की भृकुटी में सजने योग्य वस्तु है। वेद में लिखा है—“मन्युरसि मन्युम्मयि धेहि” अर्थात्—‘हे परमेश्वर आप साक्षात् क्रोध हैं—ज़रा सा क्रोध मुझे भी दीजिए।’ यह क्रोध मनुष्य में तब तक बना ही रहेगा, जब तक कि वह सर्वथा मनुष्यत्व से पतित न हो जाय।

आज मारवाड़ के वे असंख्य गरीब-अमीर परिवार, जिन्होंने अपने इन नेताओं की अधीनता में पीढ़ियों तक रक्त की होली खेली थी, आज बम्बई, कलकत्ता, कराची और समस्त एशिया-खण्ड के छोटे-बड़े स्थानों में पेट की चिन्ता में बिखर गए हैं! धनपतियों ने वहाँ ऐश्वर्य के सामान जुटा लिए हैं, शेष भीख माँगते, खिद-मतगुज़ारी करते और पापी पेट की ज्वाला बुझाते फिरते हैं! मारवाड़ के कुम्हार अपना शुद्ध व्यवसाय छोड़ कर १५-२० रु० में जूटे वर्तन माँजने की नौकरी करते फिरते हैं। मारवाड़ के बनियों के बेटे छोटी-छोटी मुनीमी, गुमाश्त-गीरी करने को लगबी-लम्बी यात्राएँ निरन्तर करते रहते हैं और जीवन भर खी-बच्चों से दूर रहते हैं! बम्बई-कलकत्ते जैसे शहरों में इन सब लोगों को सूअर और कुत्तों के रहने योग्य मकान मिलते हैं और जानवर के समान कदन्न खाने को मिलता है। तिस पर गर्मी, सूज़ाक, छय, क्षीणता की बीमारी पल्ले पड़ती है। साल में १००-२०० रुपए कठिनाई से बचाते हैं, उसे लेकर देश जाते और दो सहीने में उसे फूँक-फाँक कर हाथ हिलाते फिर वहीं भाग जाते हैं, मानो मातृ-भूमि उनके लिए तत्ता तवा है। वह मातृ-भूमि, जिसके लिए मारवाड़ के पूर्वजों ने सिर कटाए, स्त्रियों को जीते जलाया और जिसे त्यागना मृत्यु से बढ़ कर कष्टकर था! इस स्थल पर बीकानेर के महाराज रायसिंह-सम्बन्धी एक घटना हमें स्मरण आती है—एक बार बादशाह के आदेशानुसार उन्हें दक्षिण में युद्ध के लिए जाना पड़ा था। वहाँ जङ्गल में कहीं उन्हें फोग का पौधा दीख पड़ा। यह पौधा मारवाड़ में बहुत होता है, ऋतु घड़े से उतर पड़े और उससे लिपट कर रोने लगे। रोते-रोते आपने कहा :—

तू स देशी रूखड़ा, मैं परदेशी लोग।
महाँ ने अकबर तेड़ियाँ, तू क्यों आयो फोग॥

“प्यारे फोग! तू तो मेरे देश का पौधा है, यहाँ तो हम परदेशी हैं? मुझे तो अकबर की आज्ञा से लाचार यहाँ आना पड़ा है—तू यहाँ कैसे आया?” मातृ-भूमि की इस भक्ति का क्या मूल्य लगाया जाय? तभी तो प्राण देना उस काल के पुरुषों के लिए कठिन न था!

परन्तु गरीब मारवाड़ के असंख्य गृहस्थ कर भी क्या सकते हैं। देश छोड़ कर दूर-दूर नगरों में नारकीय जीवन व्यतीत करने को छोड़, उनके लिए चारा ही क्या है? जब उनके अधीश्वर, जिनके पूर्वजों ने प्राणों की शतरंज खेली थी, आज वेश्याओं के घर शराब और पाप की धूँट पी रहे हैं। जब ग्रीष्म की प्रचण्ड दुपहरी में घोड़े की पीठ पर लोहा लेने वालों के वंशधर अपनी निरीह अधम प्रजा को लूटों में झुलसती छोड़ शिमले की ठण्डी हवा के झोंके खाकर अध-नङ्गी मिसों के साथ थिरक-थिरक नाच कर जीवन धन्य कर रहे हैं—तब? उनकी प्रजा, जिसके उत्तरदायित्व का उन्हें ध्यान ही नहीं—परवा भी नहीं, यदि पतित और दुखी न बने तो क्या हो?

यह सब आदर्शों के नष्ट हो जाने का कारण है। आज ऐसे उच्च आदर्शों और प्रतिष्ठित गौरव से पतित होकर मारवाड़ी-जाति ऊपर से नीचे तक जो नष्ट हो रही है, उसका मूल कारण उसका साहित्य है! हम यहाँ पर मारवाड़ का कुछ वह साहित्य पेश करते हैं, जिसने मारवाड़ की इज्जत को कायम रखा था।

प्रसिद्ध घटना है कि महाराणा प्रताप एक बार भूख से रोती हुई राजकुमारी को देख कर मर्माहत हो गए और बादशाह से सन्धि का प्रस्ताव किया। उसमें उन्होंने बादशाह को अपना अभिमान शब्द ‘तुर्क’ न लिख कर, ‘बादशाह’ लिखा। इस पर अकबर ने बीकानेर-नरेश पृथ्वी-राज से कहा कि अब तो प्रताप हमें बादशाह कहता है, और सन्धि-पत्र की चर्चा की। इस पर सन्देह प्रकट करके पृथ्वीराज ने महाराणा को इस विषय में पत्र लिखने की आज्ञा ले ली। पत्र में आपने दो दोहे लिखे, वे इस प्रकार हैं :—

पातल जो पतशाह, बोले मुख हूँ ता बपण।
मिहिर पछिम दिस माँह, ऊगे कासप राव उत॥

पटकूँ मूँछा पाण, के पटकूँ निज तन करद ।
दीजे लिख दीवाण, इण दो महली बात इक ॥

अर्थात्—“आपके मुख से ‘बादशाह’ शब्द निकलना उतना ही असम्भव है, जितना सूर्य का पच्छिम में उगना । हे महाराणा ! कृपा कर लिख कर भेजो कि मैं मूँछों पर ताव दूँ या छाती कूटूँ ?” महाराणा का चण भर को निस्तेज हुआ शौर्य इतने ही से जाग्रत हो गया । उन्होंने लिख भेजा :—

तुरक कहासी मुख पतौ, इण तन सूँ इकलिङ्ग ।
ऊगे जाँही ऊगसी, प्राची बीव पतङ्ग ॥
खुसी हूँत पीथल कमध, पटको मूँछा पाण ।
पछतरण है जैते पतौ, कलमा सिर के बाण ॥
साँग मूँड सहसी सको, समजस जहर सवाद ।
भड़ पीथल जीतो भलाँ, बैण तुरक सूँ वाद ॥

अर्थात्—“श्रीएकलिङ्ग (इष्टदेव) मेरे मुख से तो ‘तुरक’ शब्द ही कहलावेंगे । सूर्य जहाँ उदय होता है वहाँ पूर्व में उगेगा । हे वीर राठौर ! जब तक प्रताप की तलवार यवनों के सिर पर मँडरा रही है, तब तक तुम खुशी से अपनी मूँछों को ताव दो । प्रताप शस्त्र का धाव खाएगा, पर शत्रु का यश न सुनेगा । पृथ्वीराज, तुर्क के विवाद में तुम्हारी जय हो !” कितना ज़बरदस्त वाक्य है !

प्रताप के विषय में एक चारण-कवि मारवाड़ की खी-जाति को सन्देश देता है :—

माई एहा पूत जण, जेहा राण प्रताप ।
अकबर सूतो औंध के, जाण सिराणें साँप ॥

अर्थात्—“अरी माताओ ! ऐसा पूत जनो, जैसा प्रताप है । जिसके नाम से सम्राट् अकबर सोता हुआ चमक उठता है, मानो सिरहाने साँप आ गया हो ।”

इस महावीर की मृत्यु पर एक कवि ने लिखा था :—

अस लेगो अण दाग, पाघ लेगो अण दागी ।
गैरा आड़ा गबड़ाय, जिको बहतो धुर बामी ॥
नव रोजे नह गयो, न गौ आतसाँ नवली ।
न गौ भरोखाँ हठे, जेठ दुनियाण दहली ॥
गहलौत-राण जीती गयो, दसण मूँद रसना डसी ।
नीसास मूँक भरिया नगन, नो सुतशाह प्रताप सी ॥

अर्थात्—“हे गहलौत राणा ! न तो तेरा घोड़ा दागा गया, न तेरी पगड़ी झुकी, तैने बाएँ कन्धे से राज्य के धुरे को बहन किया । न तू नौरोज़ में गया, न हरम में, न भरोखों के नीचे । तेरा सिक्का दुनिया में वैठ गया, तू विजयी हुआ । तभी तो तेरी मृत्यु का सम्वाद पाकर बादशाह ने आँसू टपकाए, दाँतों से जीभ काटी और सिसकारी भरी !!!”

अब एक गीत सुनिए, जो चारण द्वारिकादास का बनाया है । इस गीत में सेना का रमणी से रूपक बाँधा गया है । हम गीत का मर्म ही विस्तार-भय से यहाँ देते हैं :—

“सबल और सुघर सेना रूपी यह सहेली कैसी प्यारी है, जो वर को चाहती है । इसने चार रङ्गों की (जिरह-वस्त्र की) चोली पहन रखी है । महाराज अभयसिंह इस पर रीझ गए हैं । इसने छत्तीसों (शस्त्रों) से शृङ्गार किया है । टोप ही इस नायिका का घँघट है, इस यवन-नायिका पर महाराज मुग्ध हैं । और इसके लोभ से (रण में) उसे कण-कण कर दिया है । पाखर ही नूपुर है, जिसे बजाती वह नृत्य करती है । सरबलन्द (अहमदाबाद का सूबेदार) की इस सङ्गिनी को खूब ही छिन्न-भिन्न किया गया है । यह गजगामिनी सब कुछ लुटवा कर लौट रही है.....।”

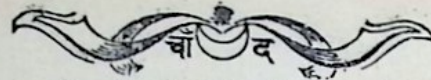
*

*

*

मारवाड़ के ईश्वरदास जी मायल एक बार गायों की रक्षा करते हुए युद्ध में काम आए थे, उनकी वीरता का वर्णन एक कवि इस प्रकार करता है :—

माँटी पणो जिसो जाणता मोहिल,
जालम साय बहतौ जड़ो ।
डारण आण ऊभो देद-वत,
इशरीयो सरदारौ अड़ो ॥ १ ॥
ठाहर पग माँडो ठकराला,
हूँ आयो सुण बाहर हको ।
मो ऊभा अतरी छै मालम,
सालम धन ले जाय न सको ॥ २ ॥
मुजरो छै पारख मरदा रीं
बिखमी ऊत्त खन्न-बाद बिसेकी ।



आवो खाग भटकाँ ईसर सुँ ।
 दोय-दोय बट का देखो ॥ ३ ॥
 धड़ लड़ियो-भिड़ियो खग धाराँ ।
 चित्त हंस जाय विमाणाँ चढ़ियो ।
 सारे साथ कियो मिल सुर जो,
 पुरजो-पुरजो होय पड़ि के ॥ ४ ॥
 पड़ियो पछाँ लिए धन पेलाँ ।
 ऊमाँ थकाँ न दीदी एक ।
 चव ती खूँरो धेनु घिर चाली ।
 टूक-टूक ऊपर पग टेक ॥ ५ ॥

१—जैसा कि मोयलों के विषय में प्रसिद्ध है—ईश्वर-
 दास वैसा ही योद्धा और रास्ता चलने वालों का सहायक
 है। यह देश का बेठा जोरावर ईश्वरदास आ खड़ा हुआ
 है। हे सरदारो! अब इससे लड़ो।

२—हे ठाकुरो, बाहर का हाँका सुन कर मैं आया हूँ।
 अब आप अपनी जगह पर खड़े रहो। मेरे खड़े रहते
 सालम की गायों को आप ले जा नहीं सकते।

३—आपको मुजरा (प्रणाम) करता हूँ। मर्दों की
 परीक्षा बड़ी देदी है। यदि राजपूती है तो आओ, ईश्वरदास
 की तलवार के भटके लो और दो-दो टुकड़े होते देखो।

४—रण में धड़ लड़ा और खड्ग-धारा से जुटा, मन
 और जीव विमान में जा चढ़े। सब सद्ध ने कहा—
 ईश्वरदास टुकड़े-टुकड़े होकर गिरा और देवताओं में
 जा मिला।

५—वह पीछे गिरा, पहले गाएँ छीन लीं। एक भी
 नहीं जाने दी। वे उसके शरीर के टुकड़ों पर पैर रखतीं
 और खुरों को खून में टपकाती थीं।

* *

महाराणा साँगा और बाबर में जो युद्ध हुआ था,
 उसमें वीरमदेव साँगा की सहायता को गए थे। उस
 युद्ध में मेड़तिया रत्नसिंह और रायपाल मारे गए थे।
 उसका एक काव्य सुनिष्ट :—

विहँसी विड़देत कमँध अतली बल,
 लहो छत्तीसाँ भुजाँ बल लेव,
 राजा रावल राण सुरड़ताँ,
 दोगण हट किया वीरमदेव ॥ १ ॥

पत मेड़ तो समर पत साहाँ,
 अरियाँ मुँह मोड़ताँ उखेद
 वीरमदेव आवताँ वाँसे ।
 उमरावाँ पावी उम्मेद ॥ २ ॥
 द्राटक धर खाटक दूदावत ।
 धड़च मुगल मार खमधार ।
 दश शंसाँ नोशंस दुसङ्गल
 वीस शंस हुवो तिणवार ॥ ३ ॥
 जोधा हरी जोधरिण जूटो,
 जवानाँ ऊबल तो जमजाल ।
 पीले खाल हूत पालट ताँ,
 राव राठौड़ थियो रिछपाल
 खन रायमल बन्धवर है रिण,
 समबड़ भूप दाख्यो ओ शाप ।
 साँगा राण कुशल घर आवे,
 योह वीर मदे तणो प्रताप ॥

१—जहाँ विरद धारण करने वाले अतुल्य राठौड़ों का
 विध्वंस हुआ, जहाँ छत्तीस राजवंश के भुजबल का गर्व
 खर्ब किया गया—जहाँ राजा रावल और राणा पीछे हटे,
 वहाँ वीरमदेव ने शत्रुओं को रोका।

२—शादी के युद्ध में शत्रुओं का मद भञ्जन करने
 वाला मेड़ते का वीरमदेव है। उसके आते ही उमरावों
 को आशा बँध गई।

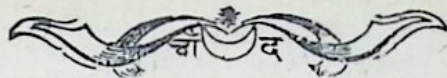
३—दूध का पुत्र वीरमदेव शत्रु का विजेता, भूमि का
 विजेता, शत्रु को मारने वाला, सीसोदिया तथा राठौड़ों
 वीस सहसा हुआ।

४—दूदावत रत्नसिंह और रामपाल दोनों खेत रहे।
 साँगा राणा कुशलता से घर आया। यह वीरमदेव का
 प्रताप है।

* * *

अकबर ने जब चित्तौर पर चढ़ाई की, तब महाराणा
 उदयसिंह तो गोमूँदा गाँव में थे, किले की रक्षा का भार
 राठौड़ जयमल मेड़तिया के ऊपर था। वही सेना का
 सेनापति था। अकबर की गोली खाकर वह मरा, तब
 चित्तौड़ फ़तह हुआ। इस सम्बन्ध का एक काव्य सुनिष्ट :—

ज्वै राव जैमल चीतोड़ मत चल चालै ।



हेड़ हूँ अरी दलन दूँ हाथै ।
ताहरै कमल पग चढ़ै नह ताइयाँ,
साहरै कमल जे खराँ माथै ॥ १ ॥
धड़क मत चत्रगढ़ जोधहर धीर पै ।
गूँड गोरी दलाँ करूँ गज-गाह ।
भुजारूँ मूँक जुध कमल कमलाँ मिलै ।
पछै तो कमल पग दिए पतसाह ॥ २ ॥

१—राव जयमल कहते हैं—हे चित्तौड़ ! चलायमान
मत हो । मैं तुम्हें शत्रु के हाथ न दूँगा, उसे मार भगा-
ऊँगा । जब तक मेरे कन्धे पर मस्तक है, शत्रु तुम्ह पर पैर
न रख सकेंगे ।

२—मैं जोधा का वंशज हूँ । तू दहले मत, मैं मुसल-
मानों की सेना का विध्वंस करूँगा । पहले मेरा मस्तक
कट-कट कर महादेव की रूपडमाल में मिलेगा, तब बाद-
शाह तुम्ह पर पैर देगा ।

* * *

सिंह के समान पराक्रमी जयमल सहस्रों योद्धाओं
की इच्छा पूर्ण करके शत्रु को छुका कर मरा । तब किता
बादशाह के हाथों आया ।

* * *

बादश औरङ्गजेब की आज्ञा से राठौड़ महाराज
जसवन्तसिं जी जब दक्षिण विजय करने चले तब चारण
ने कहा था :—

दिलीनाथ अवरङ्ग करहूत बीड़ो दियौ,
विदारा वाजिया सुसुर वाजा ।
दिखवणी मुहम सीलौ हुए दिवाकर ।
रोस छायाँ दिखण मुहक राजा ।

“बादशाह ने महाराज को अपने हाथ से पान का
बीड़ा देकर गाजे-वाजे से विदा किया । दक्षिण की मुहिम
में सूरज भी शीतल हो जाता है* परन्तु महाराज (क्रोध
से) और भी तप गए ।”

* * *

अब हम मारवाड़ के वर्तमान काव्य और कवि-भाव-
नाओं को पेश करते हैं, ठाक धैर्य से सुनें ।

मारवाड़ की यह जसिद्ध कहावत है कि ‘बड़ी बड़

* दक्षिणायन में सूर्य शीतल हो जाता है ।

बड़े भाग, छोटे दूल्हो सदा सुहाग’ अब इस बड़े भाग्य
का एक रूपक भी सुनिए । एक छोटी सी पुस्तक किसी
भालीराम नामक व्यक्ति की रचना है—नाम है “ख्याल
छोटे कन्ध को ।” इस पुस्तक को प्रकाशित करने का पुण्य
जयपुर के त्रिपौलिया बाजार के बुकसेलर कन्हैयालाल ने
कमाया है । इसका मूल्य दो आना है ।

अब सुनिए पुस्तक में वर्णित कथा का हाल—स्त्री
युवती है और पति बालक है । स्त्री को यौवन, अशिक्षा
और सोहबत—सबने मिल कर कामान्ध कर दिया है ।
एक दिन उसने पतिराज को पकड़ लिया और कहा :—

भँवर जी ताबेदार थारी ।

मनस्या पूरन करो हमारी ।

मैं हूँ ताबेदार तिहारी सुन सासु का जाया ।
आवो नाहीं पास मेरे थाने किन सौकन भरमाया ।
लाग्यो दाव आज मेरो इब करस्युँ मन का चाया ।
करस्युँ मन का चाया, सदा रङ्ग माणस्याँ ।
मेरी सेज सुरकिया चतुर थाने जानस्याँ ।

“हे प्यारे ! मैं तुम्हारी ताबेदार हूँ । हमारी इच्छा
पूर्ण करो । हे मेरी सास के पुत्र ! सुनो तो ! तुम मेरे
पास भी नहीं फटकते । तुम्हें किस सौत ने बहकाया है ?
आज तो मेरा दाव लग ही गया है, अब तो मनचीती
करूँगी । ज़रूर करूँगी । रँगरेलियाँ खेलूँगी । मेरी सेज
पर.....तब तुम्हें चतुर समझूँगी ।”

अब पति-श्रेष्ठ का उत्तर सुनिए :—

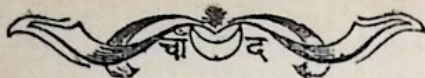
चाची देखे खड़ी स्हारी ।

डुपटो छोड़ जाण दे री ।

मुखड़ो खोल खड़ी आँगन में जरा नहीं सरमावे ।
होय रही जोवन में अन्धी कोई नजर नहीं आवे ।
धीरे बोल सुणें घर का तू मत ना देर लगावे ।

“अरी चाची देख रही है, डुपट्टा छोड़, जाने दे ।
आँगन में मुँह खोले खड़ी है, तुम्हें शरम नहीं आती ? ऐसी
जोवन में अन्धी हो रही है कि कुछ भी नहीं दीखता ।
अरी धीरे बोल, घर के लोग सुन रहे हैं । जाने दे, तुम्हें
देर हो रही है ।”

धर्मपत्नी की तक्ररीर सुनिए :—



चाची सुणों तुम्हारी म्हाला दो-दो दीपक जोवे ।
सज सिनगार सेज में पीव सङ्ग बाँहा घाल कर सोवे ।
जोवन बील्यो जाय हमारो मन भीतर स्यूँ रोवे ।

... ..
रालुँ तारा गिणू पिया जी म्हेल मैं ।

“सुनो जी, तुम्हारी चाची दो-दो दीप जलाती है,
और श्रृंगार करके पति के सङ्ग.....। हमारा तो जोवन
ही बीता जा रहा है और मेरा मन भीतर से रो रहा है ।
.....मैं रात भर तारे गिनती हुई पड़ी रहती हूँ ।”

पति जी फ़र्माते हैं :—

पाके बिना आम सुण ह्वाली चुसणे में नहीं आवे ।
चातुर मजा पका कर ले सुण मूरख तोड़ गँवावे ।
सारी कसर काड़ दूँगा तूँ क्यूँ इतनी घबरावे ।

... ..
लाय लग्या सुन कुआ खूदता है नहीं ।

“अरी बावली ! बिना पके आम थोड़े ही चूसा जाता
है । चतुर लोग उसे पका कर खाते हैं और मूरख कच्चा
ही तोड़ डालते हैं । घबरावे मत, सारी कसर निकाल
दूँगा ।.....कहीं आग लगने पर तत्काल ही कुआँ थोड़े
ही खोदा जाता है ।”

पत्नी जी की दलील सुनिप :—

पाके आम पाल में दीयाँ या सोचो मन माँय ।
सोच बिना सङ्ग बालम तुम हो समझण के नाय ।
हो तैयार मरद सच मानो पड़ा नार की छाया ।

... ..
सङ्ग पोड़ पिया सेजा में कैसी भार हो ।

“अजी सोचो तो सही, बिना पाल में दिए कहीं आम
पकता है ? तुममें कब समझ आवेगी । सच मानो, स्त्री
की छाया पड़ने ही से मर्द तैयार होता है.....हे
प्यारे ! सेज पर.....देखो कैसी बहार आती है ।”

अस्तु, सब युक्तियाँ विफल हुईं । अभागिनी मदमाती
को छोड़ कर बाल-बलम दूकान को भाग गए । अब
पड़ोसिन आई । उससे बाल-पति की बातचीत चली ।
जरा उसकी बानगी देखिए :—

कामदेव कोप्यो काया विच दीनी आग लगाय ।
फाटे बदन मरद बिन मेरो नैना नीर समाय ।

... ..

बिन खेवटियाँ अधबीच भूले नाव ज्यू ।

... ..

जोड़ी को कोई यार मिला दे, मैं समझाऊँ तोय ।

... ..

मैं ताबेदार थारी जतन कोई कीजिए ।

“शरीर में कामदेव कुपित हो रहा है, उसने आग
लगा दी है । मरद के बिना मेरा शरीर फटा जाता है ।
आँखों के आँसू तक जल गए । मैं बिना खेवट की नाव
की तरह मँझधार में भूल रही हूँ । मेरी बात सुन, कोई
बराबर की जोड़ी का यार मिला दे । चाहे जो भी यत्न
कर—मैं तेरी ताबेदार होकर रहूँगी ।”

पड़ोसिन की सिखावन सुनिप—तजुबें की कही है :—

जरा धीरज राखो होसी हुसियार थारो बालमो ।
प्यारी समझ बूर का लाडू खाकर तू पिसतावे ।
जोवन गयाँ यार छिटकावै ना कोई उमर निभावे ।
.....मैं देखूँ समझाय थारे पीव कूँ ।
कँतण सी काया है तेरी रूप दियो करतार ।
बड़े घरों में जन्म तुम्हारे लीज्यो आप विचार ॥
पर पुरुषा ने अदब दिखावै ओछे कुल की नार ।

... ..

यारी करे खुवारी प्यारी सत जायाँ पत जाय ।

लाख रुपए के माणसी सा कीमत घट जाय ।

“थोड़ा धीरज धर, तेरा पति भी होशियार हो जायगा ।
समझ कर देख, बूर का लड्डू खाकर पड़तावेगी ।
जोवन बीतने पर यार भाग जाता है, उम्र कोई नहीं
निभाता ।..... मैं तेरे पति को समझा दूँगी ।
कुन्दन के समान तेरी काया है—कैसा रूप विधाता ने
दिया है । फिर बड़े घर में जन्म दिया, इस बात को तो
सोच ? पर-पुरुष को ओछे कुल की स्त्रियाँ शरीर दिखाती
हैं ।.....यारी में खूबारी होती है, सत हारने से
पत जाती है । और लाख रुपए की मनुष्य की कीमत
उतर जाती है ।”

बहुरानी फ़र्माती हैं :—

जोवन दिन घालै बालम नादान सङ्ग सोवे नहीं ।
बालम कै व्यापो नहीं सुन ले कामदेव तन माँय ।
कैसे समझायो समझे... ..



गोट जीभवा वाली

पुढ़ी भहारी ऊजरी जी कई पजो सटवा सूँट । पेसी तो जाहूँ कुमारी जी कई रेंदुवा वाली स ।
गूजरी गजरा मैंगवा दो, नेवरी तोका घबवा दो, अरज करे । सिरदार भैर भाले मोटा मैंगवा दो ।

आधी सुनो सुनारो, आधा सोरो दीपक जल ।
सब निमग्न होय ते सोय नम्र सीमा बाल कर सोये ।
मोमय सीमा जग हमारे का नीतर सँ रोये ।

रातें आधा निपु पिना जी मेल में ।

"सुनो जी, सुनारो काशी, ये-सी-सी-सी बालाजी है,
सोय नम्र सीमा बाल कर सोये । मोमय सीमा जग हमारे का नीतर सँ रोये ।
..... मैं रात कर काँ रोये, सुनो सीमा सुनो है ।"
पति जी कहते हैं :-

पाके बिना आधा सुन, इसी सुन में नहीं आये ।
आधा बाल सीमा जग से मुक्त मूरत सोई लाये ।
आधी बाल आधा सुन, मैं नूँ हामी पवराये ।

आप लग्या सुन सुधा सुधा है नहीं ।

"पति बावली ! बिना पके धान मोड़े ही चूसा जाता है । अगर जोय उसे पका कर खाते हैं और मुक्त कला ही सोय पावते हैं । यमलो जल, आरी बाल निमग्न होय । अभी धान सामे पर आधा की सुनो मोड़े ही सोया जाता है ।"

पति जी की वलीय सुनिप :-

पाके धान पाल में दीपों या सोयो मन भाँव ।
जिस जग नम्र सीमा सुन हो समझ के भाव ।
जि बिना पका कर मोड़े ही खाए की जग ।

सब सोय सीमा जग में ही है, पति जी ।

"पति जी की वलीय सुनिप :- पति जी की वलीय सुनिप :-
जिस जग नम्र सीमा सुन हो समझ के भाव ।
जि बिना पका कर मोड़े ही खाए की जग ।
..... मैं रात कर काँ रोये, सुनो सीमा सुनो है ।"

पति जी की वलीय सुनिप :- पति जी की वलीय सुनिप :-
जिस जग नम्र सीमा सुन हो समझ के भाव ।
जि बिना पका कर मोड़े ही खाए की जग ।
..... मैं रात कर काँ रोये, सुनो सीमा सुनो है ।"

पति जी की वलीय सुनिप :- पति जी की वलीय सुनिप :-
जिस जग नम्र सीमा सुन हो समझ के भाव ।
जि बिना पका कर मोड़े ही खाए की जग ।
..... मैं रात कर काँ रोये, सुनो सीमा सुनो है ।"

बिना सेवटियों अधवीच भूले जान व्यू ।

कोही को कोई नार भिला दे, मैं समझाऊँ तोय ।

मैं समझाऊँ आरी जतन कोई कीजिए ।

"मरी में कामदेव कुपित हो रहा है, उसने काम
लगा दी है । मरु के बिना देश मरीर फटा जाता है ।
आँखों के दौड़ लक जल गये । मैं बिना सेवट की भाव
की लक मैं लक में लक रही हूँ । मेरी बात सुन, कोई
बाला की सीमा का पार भिला दे । पावे जो भी यम
जग — मैं मेरी लक देकर रहूँगी ।"

पति जी की वलीय सुनिप :- तब की कही है :-
जरा धीरज राखो होसी दुसियार आरी बाला ।
प्यारी समझ मूर का लाह, खाकर तू पिनतावे ।
जोवन गयो यार जितकाने ना कोई उमर निभावे ।
..... मैं देखूँ समझाय आरे पीय के ।
मैं लक की लाह है तेरी कद दियो करतार ।
मैं पति में जगम तुम्हारी लीजो आप बिचार ।
पर मुक्या ते अरु दिखारै आँखें कुल की नार ।

आरी करे सुवारी प्यारी सत जायों पत जाय ।

लाह रूप के भावगी सा कीमत पत जाय ।

"पति जी की वलीय सुनिप :- पति जी की वलीय सुनिप :-
जिस जग नम्र सीमा सुन हो समझ के भाव ।
जि बिना पका कर मोड़े ही खाए की जग ।
..... मैं रात कर काँ रोये, सुनो सीमा सुनो है ।"
पति जी की वलीय सुनिप :- पति जी की वलीय सुनिप :-
जिस जग नम्र सीमा सुन हो समझ के भाव ।
जि बिना पका कर मोड़े ही खाए की जग ।
..... मैं रात कर काँ रोये, सुनो सीमा सुनो है ।"

पति जी की वलीय सुनिप :-

जोवन दिन पाले बालन नादान सज्ज सोवे नहीं ।

बालन के व्यापों नहीं सुन ते कामदेव तन भाँव ।

मैं समझायो समझो, ... !



गोट जीमवा चाली

पड़ी म्हारी ऊजरी जी कई पजो सटवा सँट । ऐसी तो चालू घूमती जी कई रँडुआ छाती कूट ।
गूजरी गजरा मँगवा दो, नेवरी तोड़ा घड़वा दो, अरज करूँ । सिरदार भँवर म्हाने मोटर मँगवा दो ।

अबलाओं पर अत्याचार

इस पुस्तक में भारतीय स्त्री-समाज का इतिहास बड़ी रोचक भाषा में लिखा गया है। इसके साथ स्त्री-जाति के महत्व, उससे होने वाले उपकार, जाग्रति एवं सुधार को बड़ी उत्तमता और विद्वत्ता से प्रदर्शित किया गया है। पुस्तक में वर्णित स्त्री-जाति की पहली अवस्था, उन्नति एवं जाग्रति को देख कर हृदय छुटपटा उठता है और उस काल को पुनः देखने के लिए लालायित हो जाता है ! इसमें वर्तमान स्त्री-समाज की करुणाजनक स्थिति का सच्चा और नम्र-चित्र चित्रित किया गया है। मू० २॥), स्थायी ग्राहकों से १॥३=)

विदूषक

नाम ही से पुस्तक का विषय इतना स्पष्ट है कि इसकी चर्चा करना व्यर्थ है। एक-एक चुटकुले पढ़िए और हँस-हँस कर दोहरे हो जाइए, इस बात की गारण्टी है। एक विशेषता इस पुस्तक में यह है कि सारे चुटकुले विनोद-पूर्ण और चुने हुए हैं। कोई भी चुटकुला पढ़ कर अगर दाँत न निकल पड़ें तो मूल्य वापस ! मू० १), स्थायी ग्राहकों से ॥)

मुगल दरबार-रहस्य

उपनाम

अमृत और विष

यह ऐतिहासिक उपन्यास मुगल-दरबार-रहस्य के आधार पर लिखा गया है। यदि नूरजहाँ के शासन-काल के दाँव-पेच देखना हो; यदि देखना हो कि हिन्दुओं के खिलाफ मुसलमानों के शासन-काल में कैसे-कैसे भीषण पडयन्त्र रचे जाते थे; यदि मुसलमान-बादशाहों की काम-पिपासा, उनकी प्रेम-लीला और विलासिता का नम्र-चित्र देखना हो तो इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास को अवश्य पढ़िए। बहादुर राजपूत-नव-युवकों की वीरता का भी आदर्श-नमूना आपको इसमें मिलेगा। जुलेखा नामधारिणी एक हिन्दू-महिला की वीरता, साहस और राजनीतिक दाँव-पेच की सत्य घटनाएँ पढ़कर आपको दाँतों तले उँगली दबानी पड़ेगी, उस समय का सारा इतिहास बाइस्कोप के तमाशे की तरह आपकी आँखों के सामने नाचने लगेगा। यह एक ऐतिहासिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसे एक मनोरंजक उपन्यास के आवरण में पढ़कर प्रत्येक स्त्री-पुरुष, बच्चा और बूढ़ा अपनी ज्ञान-वृद्धि कर सकता है। मूल्य केवल ५) ६०; स्थायी ग्राहकों के लिए ३॥) मात्र !

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय; इलाहाबाद

जोबन बीत्यो जाय म्हारो ज्यों दरखत की छाँय ।
तू कहनो मेरो मान जहर बिस खा मल्ल ।

... ..

मैं बूढ़ी हो जास्यँ जद मेरो परण्यों होसी जुज्यार ।
पीछे नहीं सेज मैं सुनले सङ्ग सोवण की भार ।
यूही जोबन जाय म्हारो जीतव है धरकार ।

... ..

ऐसो बिरछ कोई न देख्यों जिसके हवा न लागे ।
डाही गई तोवी तू नित सोवे खसम के सागे ।
सार काम वणवै तेरो मन भीतर स्यँ जागे ।
मन भीतर स्यँ जाएँ भूठा ज्ञान दे ।
तू ल्या मद छकियो छैल पक्या फल खान दे ।

“जोबन उमड़ रहा है—उस नादान के सङ्ग..... ।
उसके तो अङ्ग में कामदेव जमा ही नहीं । समझाए से
समझेगा क्या ? मेरा जोबन दरखत की छाँह के समान
बीता जाता है । तू मेरा कहा कर, नहीं मैं विष खा लूँगी ।
जब मैं बूढ़ी हो जाऊँगी, तब मेरा खसम जवान होगा,
तब सेजों पर.....क्या रास मिलेगा ? मेरा जोबन तो
यों ही गया—मेरे जीवन को धिक्कार है । अरी ! ऐसा
कौन सा वृक्ष है जिसे हवा न लगी हो ? तू भी तो बूढ़ी
हो गई, पर नित्य खसम के साथ.....सब काम कराती
है । तेरे मन में भी तो हूक उठती है । सब कुछ जानती
है । मुझे क्यों भूठा ज्ञान देती है ? तू तो एक छैल-
छबीला ला दे और पका फल खाने दे ।”

खूसट का जवाब सुनिष्ट :—

इश्क रोग और खाँसी मद ये छिपता नहीं कोय ।
सासु सुणें तुम्हारी निकमो मिले उलभो मोय ।
... ..पड़ूँ ना बीच में ।
जाण-बूझ कुण भाटो पटके कीच में ।

“इश्क, खाँसी और नशा छिपाए नहीं छिपता ।
तुम्हारी सास सुनेगी तो व्यर्थ मैं मुझे उलाहना मिलेगा ।
मैं बीच में नहीं पड़ती । जान-बूझ कर कौन कीच में
पत्थर मारे !”

बहू जी ने तीर मारा :—

दावण जरद दुरगोटे को लम्पी बीच लगाऊँ ।
कासी जी को सुरख ओढ़णो ताजा भाण उढाऊँ ॥

... ..

कोई ल्या मद छकियो मिला सेज रँग मानस्यँ ।
“पीला लँहगा, दुहरा गोटा लगा कर और गोखरू
टाँक कर तुम्हें दूँगी । और लाल बनारसी ओढ़ना मँगा कर
उढाऊँगी । तू किसी छबीले छैल को लाकर.....!”

कुटनी ने जवाब दिया :—

तेरी खातर छैल भँवर मैं घराँ बुलाय ।
सायर सुघड़ बुद्धि को सागर देख खुशी हो जाय ।
चौबारा में बात करो मैं दूँगी पिलँग बिछाय ।

... ..

मैं दे पैरो देस्यँ बैठी घर के बारणे ।

“अच्छा तेरी खातिर मुझे मन्ज़ूर है । मैं ऐसे छैल
को अपने घर बुला रखूँगी जो कवि, सुघड़ और बुद्धि-
मान् हो, देखते ही खुश हो जायगी । चौबारे में मैं पलँग
बिछा दूँगी और घर की दहलीज़ पर बैठ कर पहरा दूँगी ।”
बहू कहती है :—

पिङ्गल कोक पढ्यो मद छकियो उत्तम कुल को होय ।
बीस-तीस के बीच अवस्था रेवे लुगाई दोय ।
करस्यँ प्रीति डल्लूँ नहीं प्यारी होनी होय सो होय ।
... ..किसी से ना डल्लूँ ।

मैं मूरख नर की सेज भूल पग न धल्लूँ ।

“काव्य और कोकशास्त्र का ज्ञाता उत्तम कुल का
हो, बीस-तीस के बीच उन्न हो, दूसरी लुगाइयाँ.....।
उससे प्रीति करूँगी, किसी से डरूँगी नहीं । पर मैं
मूर्ख पुरुष की सेज पर भूल कर भी पैर नहीं रखने की ।”

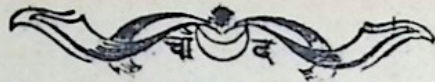
खूसट कहती है :—

ऐसो सायर एक नर घर में मेरे आवे ।
चौदह विद्यानिधान नहीं पर तिरिया सँ बतरावे ।
ज्ञानवान धनवान अकलवर ना वह इश्क कमावे ।

... ..

तेरी उसकी एक सरीसी शान है ।

“ऐसा ही एक पट्टा मेरे यहाँ आया करता है । वह
चौदह विद्या का ज्ञाता है । पर-खियों पर आँख भी नहीं
उठाता—ज्ञानी, धनी, बुद्धिमान् है—वह इश्क के फन्दे
में भी नहीं फँसा है—तेरी उसकी एक सी रास है ।”



मदमाती स्त्री की भयानक स्त्री-बुद्धि देखिए :—
या लेजा पोसाख हमारी जा उस दोस्त पास ।
मेरो नाम भूल उस आगे मत देई परकास ।
बूझे तो कह देई बिकाऊ या पोसाख ।
या देखो पोसाख गरज हो लेण की ।
है कँवरानी के मन में बिलकुल देण की ।

“अच्छा मेरा यह घाघरा उस यार के पास लेजा । पर मेरा नाम भूल कर भी ज़ाहिर न करना । पूछे तो कह देना यह घाघरा बिकाऊ है । लेने की गरज हो तो देख लो । कँवरानी ने दिल में इसे दे डालने की ठान ली है ।”

घाघरा देख कर कोकशाख के ज्ञाता छैल जी फ़र्माते हैं :—

पोसाख जनानी यह मस्तानी है किस नार की ।
या पोसाख पहरने वाली नहीं सहर में नार ।
सोला आँगल नेफो जिसमें नाड़ो जालीदार ।

... ..

.....है किसको दामण नाँव बता उस नार को ।

“यह घाघरा किस मस्तानी का है । इसे पहनने वाली स्त्री तो शहर में है नहीं । जिसमें सोलह अङ्गुल का नेफ़ा है.....उस स्त्री का नाम तो बता, जिसका यह दामन है ।”

कुटनी कहती है :—

पोसाख बिकाऊताजा नहीं बारात किसी ने देख ल्यो ।
कहना नहिं बात किस आगे सुणिए आप हुजूर ।
बीकानेर स्थूँ आई सुन्दरी यौवन में भरपूर ।
नाजुक बदन चम्पक बदनी मुख पर बरसे नूर ।
.....या पहरन वाली छोटे कन्ध की नार है ।
मरे घर पदमणी बैठी मतना देर लगावे ।

... ..

माल अजूबा चालो मुफ्त दिरादू ।

“अजी हुज़ूर ! यह पोशाक बिलकुल अच्छी है । और बिकाऊ है । किसी से कहने की बात नहीं है । यह मदमाती सुन्दरी बीकानेर से आई है यह छोटे कन्ध की स्त्री है । चलो अब देर मत करो, यह मेरे घर बैठी

है—चलो मिला दूँ । और यह अनोखा, अच्छा माल मुफ्त दिलवा दूँ ।”

इसके आगे का वर्णन न करना ही उचित है । पुस्तक के भयानक विपैले प्रभाव को बुद्धिमान् उपरोक्त उद्धरणों से समझ लेंगे । पुस्तक-लेखक मर्मज्ञ और अनुभवी है—उसकी कलम में प्रवाह है—यह मानना पड़ेगा, पर यह प्रवाह कैसे उसकी लेखनी ने प्राप्त किया है ? क्या थोथी कल्पना से ? लेखक की यह हैसियत नहीं कि नसों को झुभित करने वाला भाव-प्रवाह कल्पना की उड़ान पर बहा सके । भाव और भाषा का ऐसा प्रबल प्रवाह और बल एक ऐसे भयानक सत्य-रहस्य को प्रकट करता है, जिसे सुन-पढ़ कर उस समाज के प्रत्येक व्यक्ति को काँप जाना चाहिए, जिस समाज में यह पुस्तक अनपढ़ स्त्रियाँ और युवक नित्य पढ़ते हैं, और लाखों की संख्या में इन नाशक और शरतहीन जीवनो को उत्पन्न करते हैं ।

अब इससे भी अधिक भयानक—कमीनी और धिनौनी एक पुस्तक का परिचय लीजिए । इसका नाम है “काकी जेठूत का ख्याल” । प्रकाशक जयपुर का वही कन्हैयालाल बुकसेलर है । पुस्तक में काकी (चाची) और जेठ के पुत्र (भतीजे) के पाप की अपवित्र और कानों को असह्य कथा है । पुस्तक का प्रारम्भ इस प्रकार से है—

थारी लटक चाल पर वारी जी मारा साँमरिया जेठूत ।

“मेरे सलोने भतीजे ! तेरी बाँकी चाल पर मैं लोट-पोट हूँ ।”

भतीजा—

काकी बड़िया और भौजाई माय बराबर लागे ।
तिरछा नैन चलावो थाँ तो देख्याँ काया जागे ।

“काकी और भौजाई माता के समान होती हैं, पर तुम तो ऐसी तिरछी नज़र फेंकती हो कि देखते ही उत्तेजना हो जाती है ।”

काकी—

थाँकी काया जागे तो म्हेँ हाजर ऊभी आय ।
और साख सब भूठा जाणो दूध पावे सो ही माय ।
लाज शरम सब छोड़ केस मारी तन की तपत बुभाय ।

“अजी, तुम्हें उत्तेजना होती है तो मैं भी तो हाज़िर

खड़ी हूँ। और माँ तो वही है जो दूध पिलाती है। बाकी रिश्ते भूठे हैं। हया, लिहाज छोड़ कर मेरे तन की तपन बुझाओ।”

भतीजा—

तन की तपन बुझाऊँ कैसे सुन काकी मेरी बात। ऐसा काम किया सुँ मारे परथम लाजे जात। जीव धड़धड़िया रयोस मारो थर-थर काँपै गात।

“तन की तपन कैसे बुझाऊँ काकी जी! ऐसे काम करते पहले-पहल बड़ी ही शर्म मालूम देती है। दिल धड़कता है और शरीर काँपता है।”

काकी—

हाथ उठाव धरो छतियाँ पर मुख सूँ काटो गाल। पाँव पकड़ ले चल्छूँ म्हारा भँवर पिलँग पर चाल। कारज सारा जीव कास थे खावो मोकला माल।

“हाथ उठा कर.....पर धरो, मुख से.....काटो। मेरे छैल चल, पलँग पर तो चल, तुम्हें पाँव पकड़ कर ले जाऊँगी। मेरी मनचीती कर दे, फिर खूब माल खिलाऊँगी।”

भतीजा—

माल खवाया मोकलास थे कही काकी किए बात। कितना यार किया थाँ काकी ओजु बुझी नहीं खाज।

“माल खिलाने की एक ही कही काकी जी! तुमने कितने ही तो यार किए, पर तुम्हारी.....नहीं मिटी!”

काकी—

म्हारी खाज बुझा जेठूता जरा सरम नहीं राखी। और किसी सूँ प्रीत होवे तो परमेश्वर साखी। तू छैलो जेठूत कहीजे मैं नाजुकड़ी काकी।

“मेरी.....बुझाने की बात कहते भतीजे जी तुम्हें लाज नहीं लगी। जो मैंने और किसी से प्रीति की हो तो बस ईश्वर ही साखी है। बस, तू छैल भतीजा और मैं नज़ाकत की पुतली काकी।”

भतीजा—

चौकस होसी चौबटे सरे आप होवो बदनाम। दादा जी के मालम पड़सी म्हासूँ छटसी गाम।

“काकी! ऋजीता ज़रूर हो जायगा, दादा को मालूम पड़ गया तो मुझे गाँव छोड़ कर भागना पड़ेगा।”

काकी—

थासूँ गाम छड़ावन वारा नहीं शहर में कोय। रात पड्योँ सेजों के माँही लिपट रहीजो सोय। काको थारो जन्म राँडियो बात कहूँ थाँ आगे। वारा बरस परण्या ने होगए वा सूँ खाज नहीं भागे।

“तुम्हें गाँव छोड़ने वाला शहर में कौन है? बस रात होते ही पलँग पर आकर.....तेरा काका तो जन्म का ही जड़ा है—तो तुम्हारे सामने बात ही खोल दूँ। बारह बरस व्याह को हो गए, उससे.....नहीं मिटती।”

भतीजा—

प्रीति करो तो सुनो काकी जी इतनो करो करार। करना तो डरना नहीं सर है खाँडा की धार। साँच कहो काकी जी थारे नहीं पेट में पाप। लोग आय भरमासी थाने बदल जाओला आप।

“सुनो काकी जी, इस बात का वचन दो कि प्रीति करो तो फिरना नहीं, करना तो डरना नहीं। इस काम में सिर तलवार की धार पर रहता है। सच कहो—तुम्हारे पेट में पाप तो नहीं है। लोग तुम्हें बढकावेंगे, तुम बदल तो न जाओगी?”

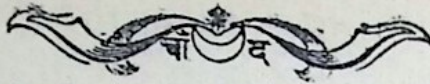
काकी—

म्हें तो नहीं जेठूता बदलूँ म्हागी है एक बात। थाँ के म्हाँ के बीच रामजी धरूँ हाथ पर हाथ। परण्या ने तो लात मार दूँ मैं तिरिया की जात।

... ..

मुख पर बरसे नूर सवाया सजुँ फेर सिरगार। अत्तर अङ्ग लगाय केस मैं कीनी सेज तैयार। मैं हूँ थाँ की खीस थे पुरव जन्म भरथार।

“भतीजे! मेरी बात पत्थर की लकीर है—बदलेगी नहीं। मेरे तेरे बीच भगवान् हैं। मैं हाथ पर हाथ मारती हूँ। खसम को तो मैं लात मार देती हूँ—मैं तिरिया की जात हूँ। मेरे मुख पर नूर बरस रहा है। फिर मैं नए धिरे से पिङ्गार रुडूँगी। बाजों में हुनग उगा कर



सेज तैयार करूँगी। तू मेरे पूर्व-जन्म का भरतार है और मैं तेरी स्त्री हूँ।”

लेखक कितना बेहया है—यह पाठक समझ गए होंगे। पर वह कितनी नीची और कमीनी भाषा आगे लिखता है—हम अत्यन्त दुःख से उनका नमूना आगे देते हैं। पुस्तक का कथानक ही काफ़ी पापपूर्ण और गन्दा है। पर लेखक की शैली के सामने वह कुछ नहीं। सुनिष्, काकी कहती है :—

धीरे रँग माणों कोमल जीव है जेठूता म्हारो ।
रँग तो माणया सेजा मायने सङ्का मत राखो ।
एक अरज जेठूता थासूँ सुण सुगणी के पीव ।
धीरे-धीरे माणजो सरे नाजुक मारो जीव ।
मचका मारे मत कमर लचकावती ।
बेदरदी थाँने जरा दया नहीं आवती ।
काचू बाँदू कटकटीस ने छतियाँ बनी अनार ।
सेजा माँणों सायवाँस मारे भर जोबन की बहार ।

इन पंक्तियों को स्पष्ट न करना ही उचित है। सुयोग्य भतीजे के कुकर्म का फल आया—उसे देखकर आप क्रमाँते हैं :—

प्रीत छिपाई न छिपेस थारो ऊँचो आयो पेट ।
ऊँचो आयो पेट के सेजाँ सोवसी ।
थारी कमर तणों बन्देज कटीलो होवसी ।
थारी छतियाँ ढीली होय के मेलों वेवसी ।
भर जोबन की बहार फेर नहीं रेवसी ।

“प्रीति छिपी न रही। तुम्हारा पेट तो ऊँचा बंद आया। अब कैसे सोओगी। तुम्हारी कमर तन गई, बन्द ढीला हो जायगा। तुम्हारी.....ढीली होकर लटक जाएँगी। जोबन की यह बहार फिर न रहेगी।”

काकी—

तुरत फुरत माजूफल दाबू दूणोरे बन्देज ।
काठो होवे राम त्योस मारो सुई सरीको बेज ।

... ..

मन में होय निसङ्क भँवर रँग माणजो ।

“कौरन माजूफल का प्रयोग कर लूँगी, दूना..... होगा। सुई के समान.....कठिन.....फिर निश्चिन्त होकर..... करवा।”

इसके बाद पीहर जाकर प्रसव की तैयारी होती है। मारवाड़ में प्रथम प्रसव पीहर में करने की चाल है। वहाँ भतीजे बिना इस नायिका को चैन नहीं आता और वह दाई से सब भेद बताती है। वह अतिशय नग्नभाषा में प्रसव के बाद अपने गुप्ताङ्गों के शिथिल होने पर खेद और भतीजे की विरक्तता का भय सा प्रकट करती है।

कमीनी दाई के वाक्य भी सुनने योग्य हैं :—
टावर हुवो सवायो आसी सेजाँ माहिं सवाद ।

... ..

टावर हुयाँ बाद देवेलाँ माजूफल को पाटो ।
फायो भर दारु को दाबू गाव मिलेगो थाँका ।
काठो होवे रामत्योस जाणे अमर सुई को नाको ।

“अरी, बच्चा होने पर तो सवाया स्वाद आता है। घबरावे मत, बालक होने के बाद माजूफल का पाटा चढ़ा दूँगी। और शराब का फ़ाया धर दूँगी। तुरत घाव भर जायगा, और.....सुई के नाके के समान.....।”

अब इससे भी अधिक अश्लील और फूहड़ भाषण दाई और कुलदा काकी का पढ़िए। अभी सौर समाप्त भी नहीं हुआ कि—

काकी—

दाई बुलावो जेठूत ने पड़दा के माँही ।
वा बिन घड़ी न सुहावे मारो लहर-लहर जिव जाय ।
“अरी दाई ! ज़रा भतीजे को भीतर बुला दे। उसके बिना घड़ी भर नहीं सुहाता—मेरे मन में हिलोरें उठती हैं।”

दाई—

जणती बगत काडात तुँतो सोवा तणों तलाक ।
वे दिन आज भूलगी नाचण जरा सबूरी राक ।

“अरी नटनी ! जनते समय तो तैने ऐसा काम न करने की क्रसमें खाई थीं। वह इतनी जल्दी भूल गई ? ज़रा तो सत्र कर।”

कुलदा—

किस विध रहे सबूरी दाई जोबन फोड़ा घाले ।
सुता बिना सहेज में मारे चसक पेट में चाले ।

“अरी सत्र कैसे हो ? जोबन क्या टिकने देता है।
.....बिना पेट में चसक उठ रही है।”

दाई—

चाले चसक पेट में नायण ले अजमाँ की धूणी ।
काचो घाव मिल्यो बिन प्यारी खाज चालसी दूणी ॥

“अरी तो नटनी ! अजवायन की धूनी ले ले । कचा
घाव बिना मिले.....।”

कुलटा—

दूणी खाज हमारे चाले नहीं मुश्किल है थॉने ।
सोना तणों बाँकडो देऊँ यार बुलादे छाणे ॥

“मेरे.....चलेगी तो तुम्हे क्या दुखेगा । चुपके से
यार को बुला दे, तुम्हे सोने का बाँक दूँगी ।”

दाई—

छाने प्रीत छिपे नहीं नायण आखर होय फजीत ।
बड़ा घरों में आणों-जाणों मारी जाय परतीत ॥

“अरी वेश्या ! ऐसी बातें क्या छिपी रहती हैं ? अन्त
में फ़ज़ीता होता है—मेरा बड़े घरों में आना-जाना है,
विश्वास उठ जायगा ।”

अन्त में सौरि-गृह में भतीजे साहब पधारते हैं ।
चाची का प्रस्ताव सुन कर आप क्या सुभाषण करते हैं—
पाठक, मन की घृणा रोक कर वह भी सुन लीजिए !

भतीजा—

जेजन जाणों सुन्दरी स मारो सेज रमणरो चाव ।
टपक-टपक टोपी पड़ेस थारे अजुँ मिल्यो नहिँ घाव ॥

“सुन्दरी !.....का चाव तो मेरे भी मन में है ।
परन्तु तुम्हारा घाव तो पुरा ही नहीं, रक्त की बँदें.....।”

कुलटा—

घाव मिल्यो हे सायवाँ स माने अणछेड़ी परमाण ।
मन में मती अँदेशो राखो निसङ्ग सेज रँग माण ॥

“अरे साहब ! घाव तो अछूती के समान हो गया
है, मन में सन्देह मत करो—वेखटके.....।”

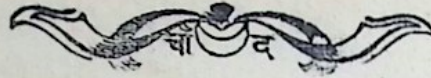
यह घृणित दृश्य यहाँ से दूर होना ठीक है । इस
पुस्तक का जो संस्करण हमारे सम्मुख है, वह २० हजार !!
की संख्या में छपा है और आमतौर से इस पुस्तक का
मारवाड़ी युवक-युवतियों में प्रचार है । हमने इस
पुस्तक को बड़े चाव से गाते और चार दोस्तों को पढ़
कर सुनाते मारवाड़ी-युवकों को देखा है । पुस्तक के

लेखक और प्रकाशक को इस गुनाह की कानूनन् और
समाज द्वारा भी जो सज़ा मिलनी चाहिए, उस पर
अभी विचार न करके, हम प्रथम की भाँति फिर इस
तथ्य पर पहुँचते हैं कि यह गन्दी पुस्तक केवल कल्पना
नहीं है । हम अगले नोट में बतलाएँगे कि ये गृह-व्यभि-
चार वास्तव में ऐसे ही अश्लील रूप में अधिकांश मारवाड़ी-
परिवारों में अपरिमित संख्या में फैले हुए हैं और वहीं
इसके कारणों पर भी प्रकाश डाला जायगा, अस्तु—

अब एक और पुस्तक की चर्चा सुनिए—यह भी
जयपुर के एक बुकसेलर ने प्रकाशित की है, उसका नाम
है ईसरलाल बुकसेलर । यह भी तिरचौलिया बाज़ार में है ।
पुस्तक का नाम है “दो गोरी का बालमा” । शायद सभ्य-
जगत् तिरस्कार और क्रोधपूर्वक यह सुनेगा कि इस
शिक्षा और पुनरुत्थान के युग में भी मारवाड़ के धनी-
मानी और प्रसिद्ध व्यक्ति तक अनेक छियाँ को एक-साथ
व्याहते हैं । राजा लोग तो अनेक रानियाँ बिना लज्जित
हुए रखते ही हैं । सर्व-साधारण में भी ऐसे लोगों की
कमी नहीं ! भारत के प्रख्यात धनी-मानी इन्दौर के एक
सेठ ने पिछले दिनों ही एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह
किया था । इसलिए लेखक को लिखने का यह मसाला
भी मिल गया । पाठक, इस ग्रन्थ-रत्न का भी मुलाहजा
करके अपनी आँखें धन्य कीजिए !

एक पुरुष-पुङ्गव दो छियाँ व्याह लाए हैं । वे अपने
सुखमय जीवन का इस प्रकार वर्णन करते हैं :—

छैल छबीलो बालमा स दो गोरी का भरतार ।
परणी लायो कामणी स मैं घणौँ रूप की नार ।
ढोल्यौँ ऊपर पौढ़ता स मैं दो गोरी के लार ॥
एक तो पहले कामणीस मैं दूजी परण कर ल्याया ।
नई नार के वास्ते मैं घणी लुटाई माया ।
लाया चञ्चल कामणीस मैं साहूकार का जाया ॥
पैली की तो दमड़ीस या दूजी चातुरङ्ग नार ।
दिल में बसी खुशी है म्हारे देख-देख दीदार ।
गादी तकिए सोवतास मैं खूब उड़ाऊँ बहार ॥
एक तो फुलका पोवतीस रे दूजी करे पकवान ।
हाजर तो एक रहे दूसरी थार परोसे आन ।
बैठी गोद जिमावतीस वो तिरिया चतुर सुजान ॥



तरह-तरह का भोजन लावे दूजी जल की भारी ।
 पहली खूब करे मनबाराँ दूजी लागे प्यारी ।
 एक तो पङ्खा ढोरती दूजी देवे पान-सुपारी ॥
 एक तो सेज बिछावती स वा दूजी दीपक जोवे ।
 खूब करे सिलागार सेज में अधर पलंग पर सोवे ।
 सूरत गोरी देखनेस रे मारुँ का मन मोवे ॥
 आजू-बाजू खड़ी कामनी रहे सेज के माई ।
 मौज करुँ रङ्ग ढोलियाँ ऊपर सोच-फिकर ले नाई ।
 टैल बन्दगी खूब करे है भला घरों की जाई ॥
 दोनों तिरिया देखने स म्हारो हरखे दिया अपार ।
 खुशी बहुत है दिल के माँही सामल जो नर-नार ।
 ढोलियाँ ऊपर पौढ़तास मैं दो गोरी के लार ।

* * *

यह अभाग्य पुरुष-पशु कितनी मोहक और उत्तेजक भाषा में मनुष्य के मन को विचलित करने के लिए दो स्त्रियों के सुख को वर्णन करता है । पाठक समझ सकते हैं कि युवकों का मन इन्हीं पंक्तियों से कितना चलायमान हो सकता है और स्त्रियाँ अपने जन्मसिद्ध आत्म-तेज और आत्माधिकार के प्रति कितनी कधी बन सकती हैं । इसके बाद इस लेखक ने दोनों स्त्रियों की कलह सिर्फ पति के सङ्ग करने के लिए फूहड़ भाषा में दिखा कर पृष्ठ समाप्त किए हैं ।

एक ऐसी ही पुस्तक "दस मासियाँ" नामक जयपुर के बुकसेलर ईसरलाल ने छपाई है । जिसमें एक भले घर की बहू, जिसका पति छोटी उम्र का है, पानी भरने जाती है और किसी यार को पक्का कर दर्द के बहाने वैद्य बना कर बुलाती है । ननद सब भेद जान कर भी दोनों के व्यभिचार का प्रबन्ध कर देती है ।

पाठकों ने बहुधा प्रतिष्ठित घरों की मारवाड़ी-महिलाओं को सरे-बाज़ार आम रास्ते पर गाली या सीठने गाते देखा होगा । वे कैसी-कैसी गालियाँ गाती हैं, दो-चार नमूने सुनिए । ये गालियाँ व्याह-शादियों के अवसर पर या समझी-समझिन आदि के मिलने पर गाई जाती हैं :—

नाथूराम जी वाली लाइली थारे टेक्यो छै ।
 थाने ले गयो धोरा माय सगी जी थारे टेक्यो छै ।
 सेजा में लकड़ो छै ।

धोरो हो गयो सौँकड़ो ये थारे टेक्यो छै ।
 थाने ले गयो क्यारा माय सगी थारे टेक्यो छै ।
 सेजा में लकड़ो टेक्यो छै ।
 क्यारा-क्यारा लाल गए थारे टेक्यो छै ।
 थाने ले गया भरोखा माय सगी थारे टेक्यो छै ।
 सेजा में सगी थारे टेक्यो छै ।
 अजब भरोखा गिर पड्यो ये थारे टेक्यो छै ।
 थारे ख्याल रयो कड़माय सगी थारे टेक्यो छै ।
 सेजा में लकड़ो टेक्यो छै ।

* * *

‘पीतम’ सङ्ग सेजाँ खेलो ।
 लाज सरम सब ऊँची मेलो, नाथूराम जी वाली है ।
 नखराली तू छन्द गाली में छैली ।

* * *

गाल कचौरी ऊपर भोरी मुख में वीड़ा दे लो ।
 मिस्सी काली होटा लाली, हिचकी आवो थे चूस लो ।
 नाजुक छाती जोबन माती घूमत हाथी अलबेला ।
 आज महलाँ करस्याँ सहला ।

* * *

लाइली महलाँ मौज उड़ावे छै ।
 ओहो रे अजब प्यारी हुस्न लुटावे छै ।
 चन्द्र वदन सो मुखड़ो है, विजली को सो टकड़ो है ।
 काणों तो घूघट काड़े.....।
 भरोका में भोला देकर सेना में समभावै ।

* * *

थाने यार बुलावे छै ।
 भाँगड़ली घुटवावे छै ।
 भर-भर प्याला पावे छै ।
 फूलाँ सेज बिछावे छै ।

... ..
 अङ्ग के लिपटी आवे छै ।
 ऊँची टाँग उठाके.....
 आसन अलग जमावे छै ।

... ..
 सिसकारी कर कर कर,.....

नायण निचली हो गई छै ।
मूडों ढाक कर सो गई छै ।
* * *
कै तो नायण नीचे आओ ।
नहीं तो यार ने महल बुलावो.....
जोवन गयो कोई ना आसी ।
मोती सो पानी ढर जासी ।
फिर नायणी मन में पछतासी ।

... ..
भौंगड़ली रँग बूँटी छाणो ।
पिलँग पर मौजा माँणो ।
... ..
.....ने जल सूँ धोओ ।
टाँग पसारो सीधा सोओ ।
... ..
चड़र-चड़र चूमको मच के
उछल-उछल कर ऊँची उचके ।
लचक-लचक कर कम्मर मचके
हाँफत जैसे लधौ मजूर ।
... ..
अब तो धाप गई.....

* * *
थे तो पहरो जी नाथूराम जी का नखरो घाघरौ ।
नौ गज को छै ।
थारो घाघरो में दरजी को बोल्यो,
टँकी लगाऊँ, टुँकी लगाऊँ—करये मरवानी अधर
थारो घाघरो नौ गज को छै ।
थारा घाघरा में सोनी को बोल्यो,
चोट लगाऊँ चोट लगाऊँ ।
करये मरवानी अन्दर घलावणी ।

* * *
आज करो आशिक सँग प्यार ।
ठण्डो होय कलेजा नार ।
नाथूराम जी वाली है नखराली
याराने भालो दे चाली ।

पायल पग में करें पुकार ।
फिरे रात को गलियाँ माँई ।
यारों सूँ मुहव्वत ठहराई ।
नैणा सूँ मत मार निजार ।
घर को खाँविद टिकट लगावे ।
छैला ने घर माँय बुलावे ।
नार रत्ती नहीं करे उधार । आज०

* * *
दान आप जोवन को देयो इस्यो ।
काम सुकरत कर लेवो ।
... ..
.....ऐसी दशा हो जासी थारी ।
बुढ़ापा के माय खाल तूँ धणी कुटासी थे ।
कह्या मान चेतन समझावे ।
घड़ी-घड़ी क्यू नाइ हिलावे ।
कहे यार नारायण फेर ।
काँई धान भरासी ये ।

इतने नमूने काफ़ी हैं । इतना कह देना और आवश्यक है कि जयपुर के वही कन्हैयालाल जी इस किस्म की गालियों की भी कई पुस्तकें प्रकाशित कर चुके हैं ।

* * *
एक और पुस्तक का मुलाहज़ा कीजिए । पुस्तक का नाम “छैला दिलजान” है और प्रकाशक जयपुर के वही ईसरलाल ! इसमें एक खी सज-धज कर जल भरने जाती है और किसी परदेशी को पीहर का व्यक्ति बता, घर लाकर व्यभिचार कराती है । भाषा का नमूना देख लीजिए :—

आई मैं नाजुक नखरादार जी जल भरण सागर पार ।
मैं नाजुकड़ी कामणी सरे पाणी भरवा आई ।
अणी पिणवट के ऊपर मैं साथणियाँ ने लाई ।
सागर का मैं जल भरूँस काँई देखें लोग-लुगाई ।

... ..
सास ननद को जोर जरा नहीं चाले म्हारे आगे ।
प्रीतम म्हारो भोलो-भालो डर कर दूरो भागे ।

कयो नहिं मानूँ सुसरा को देवरिया नादान ।
म्हारे बोले सामनेस मैं तुरत पकड़ लूँ कान ।

* * *

अब कुछ ऐसे गीत और माँड, जो बहुत प्रसिद्ध हैं और ग्राम तौर से समस्त मारवाड़ में गाए जाते हैं तथा पुस्तक रूप में बहुतायत से विकते हैं—उनके नमूने पेश किए जाते हैं :—

अमलौं * में रेन गँवाई ढोला, पिय दारुड़ी † ।
म्हारे जोवन भोला खाय, हठीलो बेगो आजो रे ।

... ..

फूल गुलाबी पोमचो पड़्यो वीरंगी होय ।
मैं मेरी माके लाड़ली कद मुकलावो ‡ होय ।
जी उमराव थे तो लेवा वेग पधारो मेरी जान ॥
बैंगण तो काचा भला पाका भला अनार ।
प्रियतम तो पतला भला मोट जाट गँवार ।
जी उमराव थारी चाल पियारी लागे मेरी जान ॥
साजन खाई काकड़ी मैं खायो खरबूज ।
साजन राखी जाटणी मैं राख्यो रजपूत ।
जी मराव थारी चलगत..... ॥
आँगण पड़ियो काचरोलावण सुँ गुड़ जाय ।
बिना अकल को सायवो सेजाँ सु उठ जाय ।
जी उमराव चतुर हो थे क्यूँ मोये छिटकाई मेरी जान ॥
काची कली अनार की पाकण द्यो दिन चार ।
खाजाँ लागे खाँड़सी अन्त पराई नार ।
ओजी सिरकार थे तो काच्या ने मत तोड़ो मेरी जान ॥
जैपुर के बाजार में पड़्यो पेमली वोर ।
नीची होय उठावती गया कमर में जोर ।
ओ उमराव म्हारे रात्यूँ चसका चाले म्हारी जान ॥

* * *

ऊपर जो थोड़े से नमूने दिए गए हैं, इनकी कुछ हैसियत नहीं है। ऐसी गन्दी अस्वस्थ छोटी-छोटी पुस्तकें प्रत्येक शहर में लाखों की संख्या में विक रही हैं और बालक-जवान, स्त्री-पुरुष, युवक-युवतियाँ उन्हें बड़े

चाव से पढ़ते हैं। इसका फल क्या होता है—यह प्रत्यक्ष है। मारवाड़ी-समाज के युवक-युवतियाँ घोर अन्धकार में डूब रहे हैं। ऐसी धनी और सम्पन्न जाति इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के नैसर्गिक उत्थान से इतनी वञ्चित है कि देख कर आश्चर्य होता है। सुजन माता-पिता इस बात की बड़ी एहतियात रखते हैं कि उनके बच्चे और गृहस्थ की स्त्रियाँ गन्दी सोहबतों से बचें। परन्तु उन्हें शायद यह मालूम नहीं है कि ये छोटी-छोटी पुस्तकें एक-एक वेश्या और एक-एक बदमाश की सोहबत से कम नहीं। कितने युवक-युवतियाँ इन जहरीली पुस्तकों को छाती से लगाए बिप के घँट पिया करते हैं—यह तो सोचना चाहिए।

गवर्नमेण्ट इन पुस्तकों को ज़ब्त करने और इन निर्लज्ज प्रकाशकों को जेल भेजने की ज़रूरत नहीं समझती। उसकी समझ में तो वही साहित्य ज़ब्त होने के योग्य है, जिसे पढ़ कर मनुष्य वीर बनते हैं। पर जिस साहित्य को पढ़ कर जातियाँ लम्पट, कायर, कामुक, आवारा और कुमार्गी बनती हैं—वह तो सरकार की दृष्टि में निकम्मी वस्तु हो ही नहीं सकता। कुछ यह बात नहीं है कि ऐसे साहित्य पर मुकद्दमा चलाने के योग्य कानून नहीं। पर कानून तो मतलब ही से चलाया जाता है ! दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, कानपुर—भारत भर के चाहे भी जिस प्रान्त के बड़े-छोटे शहरों में बुकसेलरों की दूकानों की तलाशियाँ ली जायें—मनों ऐसा साहित्य बरामद हो जायगा। मारवाड़ के धनी-मानी सेठ धर्मशालाएँ बनवाने, सदावत-बटवाने आदि-आदि कामों में पुण्य समझते हैं, पर ऐसी पाप की भूमि पुस्तकों को नष्ट करने की तरफ उनका ध्यान नहीं। इसका क्या अर्थ समझा जाय ? क्या उन्हें मालूम है कि इन छोटी-छोटी किताबों का उनकी नस्ल पर क्या प्रभाव पड़ रहा है ?

इसके लिए ज़रा उर्दू-साहित्य पर विचार करना चाहिए, जिसका जन्म और उत्थान मुगलों के वैभव के साथ हुआ। धीरे-धीरे उर्दू-साहित्य शृङ्गार, उन्माद, मद्य और प्रेम का अथाह समुद्र बन गया। इसमें समस्त मुगल-जाति, मुगल-साम्राज्य, मुगल-तख्त, मुगल-राज्य-सत्ता, मुगल-वंश; उनका यश, वैभव और अस्तित्व सब डूब गया !! वह उर्दू-साहित्य, जिसमें शराब, साक्री और माशुक्र को छोड़ कर, कुछ भी नहीं रह गया था, मुगल-

* जफ़ीम का नशा † शराब ‡ गौना ।



सेठ जी—सुण पे ! सुण पे !! भ्दारी वीदणीं, अरी ओ मदनलाल री नई मा !!!
दुल्हन—बचाओ ! कोई बचाओ ; आ पापी भ्दारी ईजत



जीमनवार

“चालें शा

“आगला तो उठवाओ



आप से गई जहान से गई !!



हर-हर महादेव !!



सेठ जी—इन कङ्गलों ने जान खा ली !



सभा में.....!



एकान्त में.....!!

अमल तू उदमादिया सेणाँ हन्दा सेण ।

या बिन घड़ी अन आवडे फीका लागे नेण ॥

अर्थात्—अक्रीम, तेरा नशा आने पर शरीर में चैतन्यता आ जाती है। तू मित्रों का मित्र है। तेरे बिना मुझे पल भर पैन नहीं पड़ता और तेरे नशे के बिना नेत्र फीके प्रतीत होते हैं।



अमल अरोगो ठाकराँ !

(ठाकुरों की ब्याह-शादी में अक्रीम का घोलुका, एक-दूसरे की हथेली पर से चाटा जा रहा है)



मनिहार

सेठानी—आ बहायती बूढ़ी तो तू घर्णाईं चोखी ल्यायो, पण कइंक थोड़ी है, भूहारे हाथ में फँसगीं।

मनिहार—सरकार, फँस कर बैठने ही से तो मज़ा आता है ! घबराइए नहीं, मैं बहुत आहिस्ते से उतार दूँगा, तकलीफ़ ज़रा न होने पावेगी।

साम्राज्य के विध्वंस का कारण हुआ ! मुगलों के जिन वंश-प्रणेताओं की पत्नियों ने घोड़े की पीठ पर बच्चे जने थे, उनके वंश की शाहजादियाँ ११ साल और शाहजादे १५ साल की उम्र में प्रेम-पाठ पढ़ने, उसका अभिनय करने और उसमें मरने लगे थे। शराब और हरामखोरी मानों उर्दू-साहित्य की मूर्तिमान् प्रतिमा थी, उसने मुगलों को नामर्द, रोगी, राज्य-व्युत्त और कर्तव्य-विमूढ़ बनाया !!!

यही हाल मध्य काल के संस्कृत-साहित्य का है। पुराणों को लीजिए—प्रत्येक देवता को व्यभिचार-लित बताया गया है। ब्रह्मा का स्वपुत्री-गमन, विष्णु का वृन्दा से व्यभिचार, कृष्ण का गोपी-विहार, महादेव का कुत्सित रूप में स्त्रियों के निकट जाना, ऋषियों में पराशर का कुमारी धीवर-कन्या से नाव में व्यभिचार, कुन्ती का अनेक देवताओं से सन्तान उत्पन्न करना आदि-आदि।

इस साहित्य का प्रभाव यह हुआ कि मनुष्यों के मन व्यभिचार की ओर झुक गए। अनायास ही उन्होंने सोचा कि यह तो साधारण सी घटना है। जब ऐसे बड़े-बड़े महात्मा, देवता ऐसा काम करते आए हैं तो हम क्या हैं ? आप झ्याल तो करें कि किस प्रकार ऐसी बातों से कुप्रवृत्ति मन पर जम जाती है। कृष्ण-गोपी-रमण के अश्लील से अश्लील काव्य स्त्री-पुरुष बेखटके पढ़ते, विचारते हैं ! झ्याल तो करिए, आचार्य का अपने में कृष्ण की भावना बनाना और स्त्री-मात्र में गोपी-भाव की शिक्षा देना, स्त्रियों के हृदय में क्या भाव पैदा करेगा ? गोविन्दभवन का भयानक और कुत्सित काण्ड इसी का प्रभाव था। परन्तु इस भयानक पाप के भण्डाफोड़ को इस तरह चुपचाप सह लेना इस बात का प्रमाण है कि मारवाड़ी-समाज बहुत दूर तक गिर कर नामर्द बन चुका है। पृथ्वी की सभी जातियाँ स्त्रियों की मर्यादा और आबरू के लिए प्राण देती आई हैं। यह एक अनोखा उदाहरण है कि ऐसे भयानक व्यभिचारी और व्यभिचार के अड्डे का इस तरह खुल्लम-खुल्ला भण्डाफोड़ हो जाय और सारी मारवाड़ी-जाति चुपके से इसे पी जाय ! इस भाव की जितनी निन्दा की जाय, थोड़ी है !!

स्त्रियाँ प्रायः मौलिक भावनाओं से परिपूर्ण हुआ करती हैं, फिर हृदय के स्वाभाविक गुण—दया, लज्जा,

परोपकार, त्याग, प्रेम, स्वभावतः ही उनमें अधिक होते हैं। इसलिए उन तक साहित्य पहुँचाना बहुत ही उत्तरदायित्वपूर्ण है। यदि गन्दे हाथों का साहित्य स्त्रियों तक पहुँच गया तो स्त्रियाँ देवी के स्थान पर खुशी से राक्षसी हो जाएंगी।

प्रत्येक जाति को और झास कर मारवाड़ी-जाति को ऐसे साहित्य की ज़रूरत है—जो उसे बलवान् बनावे, वीर, साहसी, त्यागी, बलिदान को उत्कण्ठित और नम्र बनावे। वीरता मानव-जीवन की रीढ़ की हड्डी है। राजपूताने के इतिहास में ११ वीं से १८ वीं शताब्दी के अन्त तक ज़बरदस्त वीरतामूलक साहित्य का पता चलता है। वह इतना है कि आज भी वह समस्त भारत को वीर बना सकता है।

अन्त में हम यही कहेंगे कि वीर, कर्मठ और पवित्र बना सके, ऐसे साहित्य के प्रचार में करोड़ों रुपया खर्च करना ही वर्तमान समय में सबसे बड़ा दान—सबसे बड़ा पुण्य है।

* * *

गुप्त-व्यभिचार

“आपके देश में व्यभिचारियों के लिए सरकार की ओर से क्या दण्ड नियत है ?”—यह प्रश्न स्पाटा के जीराडिस से बातचीत करते हुए उसके एक विदेशी मिहमान ने पूछा।

जीराडिस ने जवाब दिया—मेरे मित्र ! हमारे देश में व्यभिचार है ही नहीं।

मिहमान ने फिर पूछा—फिर भी यदि कोई व्यभिचार कर बैठे तो उसको क्या सज़ा मिलती है ?

जीराडिस ने जवाब दिया—अगर कोई व्यभिचार कर बैठे तो उसका इतना लम्बा बैल, जोकि टेरेटस पहाड़ की चोटी पर खड़ा होकर यूजिटस नदी का जल पी सके, छीन लिया जाता है।

विदेशी ने आश्चर्य से कहा—भला कभी इतना लम्बा बैल भी दुनिया में हो सकता है ?

जीराडिस ने मुस्करा कर कहा—यदि ऐसा लम्बा

बैल मिलना असम्भव है तो स्पार्दा में व्यभिचार का मिलना भी असम्भव है !

विदेशी इस जवाब से चुप हो गया। पर हर एक को यह कौतूहल हो सकता है कि आखिर स्पार्दा में ऐसे कौन से कानून थे, जिनके कारण स्पार्दा की ऐसी दशा थी कि वहाँ व्यभिचारी का मिलना ही असम्भव था। परन्तु हम जब स्पार्दा के ऋषि लाइकरगस के कानून और समाज-नियन्त्रण की ओर ध्यान देते हैं, तो हमारा आश्चर्य निवृत्त हो जाता है।

ऐसी ही एक घटना का उल्लेख हमें उपनिषदों में मिलता है। कैकय-देश के राजा अश्वपति ने एक यज्ञ किया था। उसमें शाल, सत्ययज्ञ, इन्द्रयज्ञ, जन्-कुण्डल आदि ऋषि ऋत्विक् बनाए गए थे। उद्दालक-आरुणी उस काल में उसके राज्य में होकर गुज़रे। राजा ने यह समाचार सुना तो वह दौड़ कर ऋषि के पास गया और कहा—

“मेरे राज्य में न चोर हैं, न व्यभिचारी हैं, न शराबी हैं, न ऐसा है जो अग्निहोत्र न करता हो, न मूर्ख हैं—फिर क्यों नहीं आप मेरे राज्य में आते हैं?” शतपथ ब्राह्मण और छान्दोग्य-उपनिषद् में इस कथा को पढ़ कर आज हमें—जिनकी सामाजिकता की नस-नस में व्यभिचार घुस गया है—आश्चर्य होता है।

यह बात तो हमें स्वीकार करनी पड़ेगी कि पृथ्वी की सभी जातियाँ व्यभिचार-दोष में लिस हैं। प्राचीन इतिहास में भी इसकी बहुतायत देख पड़ेगी। पर इसीसे यह बात नहीं कही जा सकती कि व्यभिचार की यह प्रवृत्ति मनुष्य-समाज के लिए क्षम्य है। निस्सन्देह पशुओं में व्यभिचार नहीं है। यद्यपि विद्वान् पुरुष सहवास-कर्म को पशु-कर्म कहते हैं, पर यदि देखा जाय तो वह वास्तव में मनुष्य-कर्म ही है। मनुष्यों में यह घृणित-प्रथा जितनी ज़ोर पर है, उतनी किस पशु-जाति में है? पशुओं को अपने ऋतु-काल का यथार्थ ज्ञान है, और केवल गर्भ-धारण ही उनके लिए इस क्रिया का कारण-रूप हो सकता है। परन्तु मनुष्य-जाति ने तो इसका इतना दुरुपयोग किया है कि उसकी प्रजनन शक्ति ही कुण्ठित हो गई है।

हमें बहुत दुःख है कि हम मारवाड़ी-समाज के

जीवन पर विचार करते हुए व्यभिचार जैसे गन्दे विषय पर ख़ास तौर से विवेचन करने को विवश हुए हैं। मारवाड़ी-समाज का गृह-व्यभिचार एक ऐसा भयानक कुकर्म है कि इसे जितनी जल्दी समूल नष्ट किया जाय, उतना ही उत्तम है। इस गृह-व्यभिचार को आठ बातों ने उत्पन्न किया है।

१—बाल-विवाह, २—घृद्ध-विवाह, ३—बड़े शहरों का रहन-सहन, ४—विदेश में एकाकी पुरुषों का दीर्घ-काल तक रहना, ५—पर्दा, ६—अविद्या और कुसंस्कार, ७—कुरीतियाँ, ८—अनुकरण।

बाल-विवाह एक भयानक पाप है—ऐसा पाप, जिसका प्रतिशोध या प्रायश्चित्त किसी भी दशा में होना शक्य नहीं है। इन्सान के जानी दुश्मन, तन्दुरुस्ती के हलाहल ज़हर, सदाचार के भारी विरोधी बाल-विवाह ने जब से संसार की मुकुट हिन्दू-जाति में अपना पैर बढ़ाया है तभी से चौपट कर दिया है। मुकुट की मणि, मुकुट से गिर कर पैरों से कुचली जाने लगी है। और सबसे ज़्यादा अक्रसोस की बात तो यह है कि इस भोग और हैजे से भी भयानक रोग का अभागे हिन्दू—ख़ास कर मारवाड़ी सदा आनन्द से स्वागत करते रहे हैं और कर रहे हैं !!

इसके भयङ्कर परिणाम को लिखते सचमुच लेखनी थरांती है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हमारी सारी इज़्ज़त, तमाम आवरु, सारा बड़प्पन और हमारे शिर की पगड़ी तक इस डायन प्रथा ने धूल में मिला दी है। कहाँ तक हम रोवें, इसके भयङ्कर नतीजे को देख कर सारे शरीर में हजारों बिच्छू काटने जैसा दर्द होता है। १५ वर्ष के बच्चे और ६-१० वर्ष की बालिका जिस देश में माँ-बाप बन कर इस महान् पद को कलङ्कित करें, उस देश का क्यों न सत्यानाश हो जाय? पकने से पहले ही जिसके खेत को कुचल कर बर्बाद कर दिया गया है उस कम्बख़्त किसान की बदनसीबी का भी कुछ ठिकाना है? जिसके फूल खिलने से पहले ही मसल कर मोरियों में फँक दिए गए हों, उसके दुर्भाग्य पर शत्रु को भी दया आवेगी !

आपने क्या देखा नहीं है? छोटे-छोटे बच्चे दूल्हा-दूल्हिन बन कर विवाह करने चले हैं। बच्चे ने धोती पहनना नहीं सोखा, लड़की रोकर रोटी माँगती है, और वे उस नादानी की उम्र में गृहस्थ की ज़बरदस्त गाढ़ी में

अपने ज़ालिम माँ-बापों द्वारा जोत दिए जाते हैं। बड़े अभाग्य बच्चों को ही ऐसे ज़ालिम माँ-बाप मिलते हैं, जिनकी वह खुशी, उस क़साई की ख़शी से किसी प्रकार कम नहीं है, जो उसे अपने सामने तड़पते जानवर को देख कर होती है !!

विवाह की बात तो दूर रही, उनके संस्कारों में भी यही विपैली स्पष्ट भरी जाती है—क्यों वेदा ! कैसी वह लावेगा ? गोरी या काली ! वेदा योंही तोतली वाणी से कह देता है 'ताती' माँ-बाप ही-ही करके हँस देते हैं, बच्चा भी ताली बजा-बजा कर, हँस कर बारम्बार 'ताती-ताती' पुकारता है। बच्चा हँसी को समझता है, हँसी की वजह को नहीं। बच्चों को खुशी ही चाहिए, जिस बात को सुन कर सभी हँसते हैं, उसी बात को बार-बार कहना बच्चे को अच्छा लगता है। जन्म से ही कुसंस्कार का प्रभाव रहता है। दियासलाई में मसाला लगा रहता है, विवाह होते ही रगड़ने मात्र की देर है। रगड़ा लगा कि फक से सारी शक्ति भस्म हो गई, जीवन की आशाएँ धूल में मिल गईं। न तो उसे संसार का तजरबा है और न उसमें प्रबल प्रवाह में ठहरने की शक्ति ही है, और न उसे भविष्य का ज्ञान ही है। हो कहाँ से, उसे ऐसा करने का अवसर ही नहीं दिया गया। वह अनाथ संसार की तपती भट्टी में भस्म होने को फंक दिया जाता है, शोक !!! इसके भयानक परिणाम को क्या हमें बताना पड़ेगा ? उसे कौन नहीं जानता ? सारा भारत इस आग में तप रहा है। तमाम समुदाय में जो यह आग भड़क रही है—दिन-रात, नोन-तेल की चिन्ता में जो यह अमूल्य जीवन जर्जर हो रहा है—हमारा जीवन जो विषम हो रहा है—सदा मौत की भीख जो हम माँगते हैं—इन सबका कारण क्या है ? यह दुःख कहाँ से हमारे ऊपर आया है ? इन सबका उत्तर है—बाल-विवाह।

लड़के-लड़कियों के बाल-विवाह, विषय-भोग की अधिकता और व्यभिचार की प्रवृत्ति से मनुष्यों में वीर्य की कमी और निर्बलता आ गई है, जिससे एक तो गर्भ-स्थिति ही कम होती है, दूसरे गर्भ रह भी जाय तो क्षीण हो जाते हैं, अथवा सन्तान होकर तुरन्त मर जाती है। जो भाग्य से बच भी रहे तो यह दशा है कि अत्यन्त निर्बल, निस्तेज, स्वर फटे बाँस के जैसा, सूरत बन्दर जैसी

प्रमेह की बहुतायत, स्मरण-शक्ति का नाश, कम-बहु, आँखों के अन्धे, चरमों के खरीदार, सदा के रोगी, वैद्य-डॉक्टरों के यार, चुपड़ी रोटी खावें तो खट्टी डकार, पाव भर दूध पीवें तो दस्तों की भरमार, किसी को बादी का विकार, सुटापे की भरमार, तोंद के भार से चलना दुश्वार—पेट लटकना, घुटने पकड़ कर उठना, बोलने में हाँपना, धमकी से काँपना—किसी का पेट पटक रहा है, कमर कमान हो रही है—गालों में गढ़े, आँखें भीतर बैठें—कोस भर मार्ग चलना महाभारत की लड़ाई, और नीचे से कोठे पर चढ़ना पहाड़ की चढ़ाई है। यह जवानी की दशा है !! यह हमारी खिलती फुलवारी का नमूना है। बुढ़ापे की दशा को तो आप समझ ही लें—बुढ़ापे का स्थाप्य अब जवानी में ही भुगत जाता है। अब ३४ वर्ष का पुरुष बूढ़ा कहाता है। आप ही कहिए, ऐसे स्त्री-पुरुषों के वंश कैसे चलेंगे ? मित्रो ! इसी से पीढ़ी दर-पीढ़ी सन्तान कम होती जा रही है !!

बचपन ही से काम-कला को भड़का कर जिनकी मनोवृत्ति गन्दी कर दी गई, वे अपने बच्चों के रुधिर में इस विपैले प्रभाव को उतार देते हैं, जिससे उनकी सन्तान बचपन ही से विषयी, लम्पट और अधर्मी हो जाती है—उनकी जड़ में उत्पन्न होते ही कीड़ा लग जाता है—और जब वे फलते-फूलते, अपनी सुगन्ध को संसार में फैलाते, अपने प्रताप से भूमण्डल को कँपाते—उससे प्रथम ही मुरझा कर संसार से उठ जाते हैं। उनकी हार्दिक, स्नायविक, मानसिक दुर्बलता उन्हें अधम और नीच बनाए रखती है।

हमारे शरीर में उत्साह नहीं है—बल नहीं है—साहस-वीरता नहीं है—और दुनिया के किसी भी फल को भोगने में चमत्ता नहीं है। ये सब सङ्कट बाल-विवाह द्वारा ब्रह्मचर्य का नाश करके ही क्या हमने मोल नहीं लिए हैं ?

हमारी नस्ल बर्बाद हो गई, ज़िन्दगी घट गई, तन्दुरुस्ती मिट्टी में मिल गई—रह गई हड्डी की ठडरी, रह गई अधमरी देह। इसका कारण क्या है ? वही तुम्हारे ज़ालिम माँ-बापों का प्यार—और वही वह देखने की लालसा !!! पन्द्रह-सोलह वर्ष की उम्र हुई है, बच्चा स्कूल में ऊँचे दर्जे पर पहुँचा है, दिमागी मेहनत का

ज़ोर—उधर गौना होकर भी आ गया। बच्चे की जान पर बलैया लेने वाली उसकी माँ आँचल पसार कर, दाँत निकाल कर, गिड़गिड़ा कर कहती है—हे विश्वनाथ बाबा ! हे काली भवानी ! हे चौराहे की चामुण्डा ! अब तो पोते का मुँह दिखा दे। यही नहीं, उसकी तैयारी भी होने लगी—दोनों को एक कोठरी के अन्दर बन्द कर दिया गया। इधर दिमागी मेहनत, पढ़ने का ज़ोर, उधर खाने की तज़्जी, घी-दूध का काम नहीं, उधर पोते बनाने की लालसा, इन सब में बच्चा पिस मरा, हाड़ की ठठरी रह गई। माँ कहती, है 'अजी, देखो बच्चे को क्या हो गया है ? पीला पड़ता जाता है—किसी सैयद-वैयद की छाया तो नहीं पड़ गई है ? किसी शाह साहब को ही दिखलाओ !' बाप देवता बोल उठे—'पढ़ने में मेहनत है, अब हम स्कूल न भेजेंगे—बहुत पढ़ गया है—इतना तो हमारे यहाँ कोई पढ़ा भी नहीं था।' बस सब हो गया—तालीस का द्वार बन्द हो गया। अन्त में जल्दी ही 'राम-राम सत्य' बुल गई। जब कली खिलने के दिन आए थे—जब उसकी सुगन्ध फैलनी थी—हाय ! उससे पहले ही कुचल डाला गया—मसल डाला गया—सो भी प्यार करने वालों के हाथों से ! उस पर न्योछावर होने वालों के हाथों से ! तब वही माँ-बाप छाती पीट कर रोते हैं, हाय बेटा ! अन्धों की लकड़ी छिन गई ! तब उनका रोना आकाश फाड़ता है। वे अभागो नहीं जानते कि उन्हीं के नापाक हाथ उन मासूम और बेगुनाह बच्चों के खून से रंगे गए हैं। उन्हींने अपने वंश का नाश किया है, उन्हींने अपने पैर में कुल्हाड़ी मारी है। कोई शक्ति है, जो उनके दामन से उस खून के दाग को छुड़ा सके ?

अभागो ! क्या अब भी चेत न होगा। ज़ालिमो ! राज़ब है, घर में अपना ही खून करते तुम्हें कैसे बन आता है ? जिनके वंश में तुम पैदा हुए हो, जिनका खून तुम्हारे शरीर में बह रहा है, उनकी वाणी तुम सुनते, उनकी आज्ञाओं को तुम पालन करते, तो तुम भी वैसे ही रहे होते, तुम्हारा सर्वनाश तुम्हारे ही सामने न होता, तुम्हारा जीवन तुम्हारे देखते ही देखते विषमय न बनता, और जिन फूलों की सुगन्ध ही तुम्हारी बड़ी खुशी थी, वे फूल, वे तुम्हारे हृदय के रत्न, वे तुम्हारे आँखों के तारे—तुम्हारे प्यारे बच्चे, यों अकाल में काल के गाल में न जाते !

तुम महा अभागे रहे ! हाँ, हजार बार अभागे हो ! जो अपने रत्न को, अपने सर्वस्व को, अपनी सम्पत्ति को, यों पैरों से कुचल कर फेंक दे, उससे अधिक अभागा और कौन हो सकता है ? उस अभागे की सूखता पर एक बार नहीं, हजार बार, लाख बार धिक्कार है। भाइयो ! तुम्हें दया का बड़ा अभिमान है, पर सच तो यों है कि तुम्हारे बराबर संसार में कोई क़साई और क्रूर नहीं है। छोटे-छोटे भुनगे, चाँटी, मकोड़े, कौवे, कुत्ते आदि प्राणियों के लिए तुम्हारे पास दया का भण्डार भर रहा है। पर अपनी सन्तानों पर यह जुल्म ! कि उनकी सारी आशाओं को कुचल कर, उनकी उठती जवानी पर कुछ भी तरस न खाकर, उन्हें हाय ! ऐसी बुरी मौत मार रहे हो कि क़साई गाय को भी न मारेगा। क़साई गाय को एक ही हाथ में साफ़ कर देता है, वह बेचारी दुःख से छूट जाती है। पर तुम एक-एक वर्ष की दूध-पीती कन्याओं को विधवा बना कर पापों की नदी बहा रहे हो, उन्हें रोम-रोम में विष पैदा करने वाले दुःख-सागर में ढकेला करते हो, जीते जी दुःखाग्नि में डाल कर भून रहे हो, उनके तड़पने को देख कर पुण्य की उत्पत्ति समझ रहे हो, और इतना होने पर भी तुम्हारा पत्थर का कलेजा नहीं पिघलता ? तुम्हारी छाती पर साँप नहीं लोट जाता ? ये लाखों विधवाएँ तुम्हारी छाती पर सूँग दल रही हैं—कोई चुपचाप सर्द आह भर कर भारत को रसातल पहुँचा रही हैं और कोई कहार, धीवर, क़साई के साथ मुँह काला करके हिन्दू-वंश की नाक कटा रही हैं। फिर भी तुम ऋषि-सन्तान कहलाने की इच्छा रखते हो ? अब भी तुम्हें अपने रक्त और वंश का अभिमान है—तो शर्म है और लाख-लाख शर्म है !!

अपने बुजुर्गों को तो देखो ! जो लोग दीन-दुखियों का आर्तनाद सुन कर भोजन और भजन छोड़ देते थे, और दुःखी जन का दुःख दूर करके जलपान करते थे, या जान खो देते थे। हाय ! आज उनकी सन्तान ऐसी अधर्मी हो गई ! करोड़ों विधवाओं की बिलबिलाहट और हाहाकार सुन कर भी तुम्हें सुख की नींद आती है ! जिनकी छाती पर सिला रक्खी रहे, आठों पहर जवान विधवा-कन्या चुपचाप कलेजे का खून पिया करे, उनकी आत्मा फूट-फूट कर रोती रहे—और उन धर्म-धुरियों के हलक़ में मज़े से छत्तीसों व्यञ्जन सरक जायें !

पहचानने से प्रथम ही जिसका एकमात्र जीवन का आधार जगत् से उठ जाय—वह शरीर अभागिनी तुम्हारे पास ही इस अंधेरी दुखभरी दुनिया में चक्की पीस-पीस कर, कुत्ते भी न खायेँ ऐसे सूखे टुकड़े खाकर दिन काटे—सुअर भी न रहें, ऐसी सड़ी-मैली कोठरी में रहे—बीमार पड़ने पर बिना सहाय भूखी-प्यासी तड़प-तड़प कर मर जाय—पर तुम्हारे इत्र-फुलेल और कलकल पोशाक में कुछ भी कसर न रहे ! उनके लिए तुम्हारे हृदय में राई-रत्ती भर भी सहानुभूति न रही ! अधर्मियो ! मुसलमान-ईसाई और क़साई जिन पर तरस खाते हैं—पथर-हृदय ज़हाद को भी जिन पर करुणा हो जाती है—उन दुखियाओं पर तुम दयालुओं—दया के अभिमानियों, को तनिक भी दया नहीं आती। जो लोग अपने को अहिंसा-धर्मधारी समझ रहे हैं—जो लोग दयावान् ऋषि-मुनियों की सन्तान होने का अभिमान रखते हैं, उन्हीं की दया का यह दृश्य है ? यह उनकी सभ्यता का नमूना है ? क्या यह सब घोर पाप नहीं है ? क्या ऐसे अत्याचार किसी दूसरी जाति में बता सकते हो ? क़साई को सबसे अधिक क्रूर, निर्दयी कह कर तुम घृणा करते हो, गाली देते हो, और उनका मुँह नहीं देखना चाहते। पर वे तुमसे अधिक धृष्टित नहीं हैं। बिना सींगों की गायों पर—अपनी बहिन-बेटियों पर—उनकी छुरी कदापि नहीं उठती। हिंसक पशु, पक्षी, सिंह, भेड़िया आदि भी स्त्री-बच्चों पर दया करते हैं। स्त्रियों को सभी ने अबध्य माना है। जङ्गली जाति भी स्त्री को नहीं सताती। पर हिन्दू-जाति के सुपूत, विशेषतः मारवाड़ी, उन्हीं का गला घोट कर अपने लिए स्वर्ग का द्वार खोल रहे हैं !! मनु कहते हैं :—

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्यासु तत्कुलम्।

अर्थात्—“जिस कुल में स्त्रियाँ शोकित रहती हैं, वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है।” हमें आश्चर्य है कि इतने घोर पाप करने पर भी हिन्दू-जाति अब तक कैसे रह गई—वह क्यों न डूब गई—क्यों न राजब का पहाड़ उस पर टूट पड़ा ? पर अब यह पाप अन्तिम सीमा तक पहुँच चुके हैं—इसके ज़हरीले फल फलने लगे हैं; देखिए :—

(१) लाखों घराने निर्बंश हो गए—बड़े-बड़े घरों में ताले ठुक गए।

(२) बहुत से स्त्री-पुरुष कज़ाली के कारण धर्म से पतित होकर ईसाई-मुसलमान हो गए।

(३) व्यभिचार के कारण भी लाखों स्त्री-पुरुष हिन्दू-जाति से टपक-टपक कर गिर रहे हैं।

(४) बिरादरी के पञ्चों के अनुचित वर्ताव से सताए हुए कितने ही स्त्री-पुरुष धर्म को लात मार कर विरोधी हो बैठे हैं। क्योंकि आजकल के चौधरी और पन्च थोड़ी-थोड़ी बातों पर जाति से निकाल फेंकने में ही बहादुरी समझते हैं—पुचकार कर सुधारना तो सीखे ही नहीं।

(५) अनाथ बालक-बालिकाओं का निरादर होने से वे भी भूखे-प्यासे रह कर ईसाई-मुसलमानों की शरण में जाते हैं।

(६) दहेज की महा भयङ्कर कुरीति से सताई हुई ३०-३० वर्ष की क्वारी रहने वाली कन्याओं में से बहुत सी लड़कियाँ कुसङ्गवश या मन के उद्देग के कारण घर से भाग जाती हैं।

(७) विधवाओं की खेप की खेप हिन्दू-जाति की छाती पर सिर पटक रही है।

अब आप देखें कि आपके घर में कैसा विपैला पौधा उगा है। जब वृक्ष छोटा होता है, तो ज़रा से हवा के झोंके से या ज़रा सी धूप से मुर्झा जाता है, परन्तु ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है—टढ़ तथा स्थायी बनता जाता है। बच्चों की भी वही दशा है। छोटी उम्र के बच्चों पर ज़रा सी भी सदी-गर्मी का भरपूर असर होता है और वे रोगी होकर प्रायः मर जाते हैं। ज्यों-ज्यों वे बड़े होते जाते हैं, उनके रंग-पुष्टे टढ़ होते जाते हैं, उनके शरीर में सहन-शक्ति की वृद्धि हो जाती है, और वे रोग तथा उसके प्रबल धक्के को सहन कर सकने योग्य हो जाते हैं। यही कारण है जो इतनी बड़ी तादाद बाल-विधवाओं की दीख पड़ती है—इन सब पापों की जड़ बाल-विवाह है। इन सब बातों को सुन-समझ कर भी जो तुम बाल-विवाह की सत्यानाशी प्रथा के पक्षपाती रहे तो हम कहेंगे कि साँप को गले लटकाए फिरते हो—पल्ले में आग बाँध कर रुई के गोदाम में घुसते हो !!

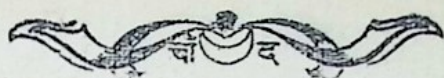
वृद्ध-विवाह संसार के सभी देशों और जातियों में होते हैं, पर बराबर की जोड़ी मिला कर; मोती के समान अबोध बालिकाएँ इस तरह नहीं हाँक दी जातीं जैसे निकम्मी गाएँ कसाई को हाँक दी जाती हैं। नौ-दस वर्ष की बालिकाएँ ५०-६० वर्ष के पुरुष को पति समझें, यह कैसी वीभत्स बात है। रियासतों के रईस, राजे, सेठ तो ऐसा गुनाह करते ही हैं, सर्व-साधारण में भी यह बात आम तौर से प्रचलित है। दरिद्रता, स्वास्थ्य के नियमों की अनभिज्ञता, असंयम, पर्दा, अल्पायु में प्रसव—ये सारी बातें मिल कर मारवाड़ में स्त्रियों की मृत्यु की अधिकता को बढ़ा देती हैं। बहुत कम वृद्धा स्त्रियाँ मारवाड़ में होती हैं। यदि पञ्जाब और गुजरात से मारवाड़ की स्त्रियों की आयु को मिलाया जाय तो इस भयानक त्रुटि का पता लग जायगा। दूसरा-तीसरा विवाह तो मारवाड़ में करने वाले अनगिनती पुरुष मिल जावेंगे—चौथा और पाँचवाँ विवाह भी होता ही है। रईसों और राजाओं के विवाहों की संख्या तो न गिनाना ही अच्छा है।

ये विवाह समाज की जड़ में कैसा कुल्हाड़ा लगाते हैं, इस बात पर विचार करना चाहिए। ४० या ४५ वर्ष का एक पुरुष १३-१४ वर्ष की कन्या से विवाह करेगा; क्योंकि उच्च जातियों में विधवा-विवाह होना भीषण पाप माना जाता है। उधर १३-१४ वर्ष की कन्या कुमारी रह गई तो मुहल्ले और गाँव में हल्ला मच जाता है। आम तौर से सारे मारवाड़ में कन्याएँ १० से १४ वर्ष के भीतर अवश्य ब्याह दी जाती हैं। १४ वर्ष की आयु विवाह की चरम सीमा है। इस सीमा को उल्लङ्घन करने वाला शायद ही कोई साहसी पिता होगा, जो लोका-पवाद और बिरादरी का मुक़ाबला कर सकता हो। ऐसी अवस्था में ४०-४५ वर्ष के पुरुष जब १४ वर्ष की बालिकाओं को पत्नी बना कर घर में घुसते हैं, तब पहली बात तो यह होती है कि बालिका बराबर की उम्र का जोड़ा पाकर जितनी प्रफुल्ल और उत्साहित होती उतनी नहीं हो सकती—उसके हृदय की कली नहीं खिल पाती। पति के स्थान पर मित्र मिलने की आवश्यकता है, जिससे दिल खोल कर प्रेम किया जाय। प्रेम की नैसर्गिक धारा के लिए प्राकृत आयु की बड़ी आवश्यकता है। विपम अवस्था का व्यक्ति यदि पैतृक परिजन हो तो भी बालिका उससे

दिल खोल कर बात नहीं कर सकती। पर यह तो बिल-कुल गैर-व्यक्ति होता है। फलतः भय, लज्जा, सङ्कोच और उदासीनता स्थायी रूप से उसके हृदय में घर कर बैठती हैं। क्योंकि सहेलियाँ और अनुभवी स्त्रियाँ उसे बता देती हैं कि तेरा पति बराबरी का नहीं है। फिर वह थोड़ा-बहुत तो स्वयं भी समझती है और शीघ्र ही अधिक भी समझ जाती है।

दूसरी भयानक बात यह होती है कि यदि बराबर के बालक से विवाह हो तो दोनों को एक सरीखी लज्जा, आनन्द, उद्रेक आदि होते हैं। प्रायः ३-४ वर्ष उनका सङ्गम नहीं हो पाता। प्रेम को प्रणय के रूप में पकने के लिए, परस्पर परिचय घनिष्ठ होने के लिए, आकांक्षा का उदय होने के लिए यह काल बहुत है। यूरोप की जातियाँ विवाह से प्रथम यह महत्वपूर्ण कार्य कर लेती हैं। बाल-विवाह में विवाह की रस्म बीत जाने पर यह होता है। पर विपम-विवाह में बालिका को ऐसा अवसर नहीं मिलता—खूबसूरत पति शीघ्र ही इच्छा पूरी करना चाहता है। उसकी लिप्सा भड़की रहती है—मन लम्पट रहता है—वह बड़ा निर्लज्ज, छट और पाशविक प्रवृत्तियों का गुलाम होता है। इस उम्र में ऐसा नीच बिना हुए, कोई व्यक्ति कच्ची आयु की बालिका से विवाह कर ही नहीं सकता। फलतः वह भयभीत बालिका बिना ही कामो-द्रेक के, बिना परिचय और प्रेम हुए, केवल भय सहित उस भाग्यहीन पापी की विषय-वासना का शिकार हो जाती है। उसे सदा के लिए प्राकृत आनन्द से, जो स्त्री के लिए प्राणों से भी बहुत मूल्यवान् है, वञ्चित रहना पड़ता है।

तीसरी बात यह होती है कि इस उम्र में लोग अठारह-बीस वर्ष की आयु के युवक के समान प्रेम-रस में मग्न, बेफ़िक्र और लजीले तो होते ही नहीं। जहाँ नई उम्र के युवकों को ८-१० वर्ष तक अपनी पत्नियों के दिन में दर्शन तक होने दुर्लभ रहते हैं और शब्द तक सुनना तथा उँगली तक देखना कठिन है, वहाँ बड़ी आयु के पति अपनी लिप्सा जीर्ण होने पर ठण्डे पड़ जाते हैं और फिर क्रोध, शासन और अनेकों प्रकार की चिड़-चिड़ाहट उन भाग्यहीन बालिकाओं पर उतरती है, जो अपने अस्वाभाविक और अविकसित जीवन में बचपन से



एकदम बुझगीं में कुदा दी जाती हैं ! किसी कवि का यह शेर उन पर कबता है :—

तिफलीं गई, अलामते पीरी अयाँ हुई ।

हम मुन्तज़िर ही रह गए अहदे शबाब के ॥

इस प्रकार पति के ऊपर विरक्ति, प्रेमाभाव और भय उनके हृदय में स्थिर हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि वे पति से झूठ बोलती हैं, बातें छिपातीं, और पीछे छिप कर छोटे-बड़े दुष्कर्म और पापाचार करने लगती हैं !!

* * *

अब मारवाड़ी-परिवारों में नौकरों के अपरिमित अधिकारों की बात सुनिए। हमने पञ्जाब, यू० पी०, गुजरात, महाराष्ट्र और बङ्गाल के गृह-सेवकों का मारवाड़ के गृह-सेवकों से मिलान करते हुए अध्ययन किया है। मारवाड़ के नौकर अधिक धृष्ट, घर-घुसने और स्त्रियों के आज्ञाकारी होते हैं। यदि सेठ और सेठानी दोनों दो भिन्न-भिन्न आज्ञाएँ दें, तो शर्तिया यह बात है कि नौकर सेठानी की आज्ञा पूरी करने की चेष्टा करेगा। मारवाड़ के बड़े घरों की स्त्रियों को हमने अपनी आँखों से पुरुष-नौकरों से तेल या पीठी शरीर पर लगवाते देखा है !! बहुधा स्नान करते समय नौकर पानी डालता है, वस्त्र पहनने में मदद देता है, काँचली (चोली) प्रायः दर्ज़ी सीते हैं और स्त्रियाँ बड़े चाव से सिलवाती हैं। इस प्रकार नौकरों का साहस बढ़ जाता है—मर्यादा भङ्ग हो जाती है—वे धृष्टता करने लगते हैं। बड़े-बड़े नगरों में, छोटे घरों में नौकर रात को ऐसी जगहों पर सोते हैं, जहाँ से स्त्रियों का यथेष्ट पर्दा नहीं हो सकता। फिर बहुत स्त्रियाँ तो नौकरों से पैर भी दबवाती हैं !!!

इन नौकरों को अपनी अभिरुचि पूरी करने का एक बहुत बड़ा सुयोग यह मिल जाता है कि सेठ जी बहुत कम दिन में घर आते हैं। प्रायः दूकान में तमाम दिन बैठना ही पड़ता है। रात को बहुत देर तक हिसाब ठीक करना पड़ता है। दूसरे, बड़े-बड़े नगरों में बड़े-बड़े सेठ भी—उनको छोड़ कर, जिन्होंने स्वयं हवेलियाँ खड़ी की हैं—छोटे-छोटे घरों में गुज़र करने का अभ्यास रखते हैं। सजावट और आराम की तरफ भी उनका ज़्यादा ज़्याला

नहीं रहता, इसलिए घर उन्हें आकर्षित भी नहीं करता। निठली स्त्रियाँ खूब तर माल तोड़ती हैं, नौकरों से हँसी-ठट्टा करती हैं, सेवाएँ कराती हैं, और फिर अज्ञान, प्रज्ञाद, आयु, और परिस्थिति—सब उन्हें अतल-पाताल में ले डूबते हैं। इस प्रकार पुण्य-स्थान में पाप की नदी बहती है।

* * *

नौकरों के सिवा सम्बन्धी-गण—यहनेऊ, ननदेऊ, देवर आदि सामाजिक रीति से कुत्सित हँसी करने का प्रकट और व्यभिचार करने का गुप्त अधिकार रखते हैं। ऐसी अवस्था में स्त्री की कम आयु, पति पर विरक्ति, भय और अभाव उसके मन में पति पर कुरुचि और इन युवकों पर प्रेम उत्पन्न कर देता है। ये उन्हें ले डूबते हैं। इन युवकों में सौतेले बेटे से लेकर भाइयों के मित्र, चचा और भतीजे तक होते हैं ! काम का उन्माद, मूर्खता के थपेड़ों और वासना की आँधी में फिर रिरिते का ज़्याला नहीं रहता; क्योंकि रिरिता नाम का है वास्तव में सब से बड़ी बात आयु की विषमता है—वह स्वाभाविक रीति से पतन में गिराने वाली होती है।

* * *

इन सबके ऊपर व्यभिचार के पथ-प्रदर्शक एक और लोग हैं, वे हैं ब्राह्मण-युवक—चाहे वे रसोइए हों या धर्म-गुरु, पुरोहित हों अथवा योंही पूजा-पाठ करने वाले। ब्राह्मणों का मारवाड़ी-समाज पर असाध्य अधिकार है। मूर्ख और पतित ब्राह्मणों पर सारे भारतवर्ष की हिन्दू-जाति की श्रद्धा हो गई है; पर मारवाड़ के ब्राह्मण कोरे निरन्तर रसोइए होने पर भी पूज्य बने हुए हैं—वस्तु यह कहा जा सकता है कि समस्त मारवाड़ी-जाति ब्राह्मणों की अन्ध-गुलाम है। हम समझते हैं कि हमारी यह बात बहुत सज्जनों को कड़वी लगेगी, पर खेद है कि इसे वापस करने के स्थान पर हम इस बात को दुहराते हैं। ये ब्राह्मण-युवक जो सौ में से २-४ अच्छे पढ़े होते हैं—शेष साधारण पढ़े होते हैं—दान-दक्षिणा लेने, पूजा-पाठ करने, ग्रह-सुहृत् बताने, आशीर्वाद देने, गङ्गोदक या तुलसीदल देने—चाहे भी जिस कारण से अबाधरूप से चाहे भी जिस मारवाड़ी-परिवार में जा सकते हैं। न इन्से पर्दा, न बचाव—ये हाथ देखते हैं और गुप्त बातें ज्योतिष की आड़ में बताते हैं—गुप्त बातों में, सन्तान होगी कि

नहीं, पति वश में होगा या नहीं—भी शरीर रहती हैं। इन समझदार मूखों को भोजन और पाप दोनों ही अनायास प्राप्त हो जाते हैं। ये धर्म के बहाने कृष्ण-राधा के प्रेम के गन्दे भाव अपनी पापी आँखों द्वारा स्त्रियों में बखान करते हैं—विधवाएँ तो खास तौर पर चाहे जितनी देर तक इनकी सेवा में रह सकती हैं। ये अयोग्य आदमी घण्टों स्त्रियों के बीच में बैठे मठोले मारा करते हैं, और अवसर पर गृह-वधू या कन्या को पतित कर डालते हैं। रसोइयों को और भी अधिक सुयोग प्राप्त होता है। वे नहाते, खाते, स्त्रियोचित गृह-कर्म करते दिन-रात स्त्रियों में रहते हैं। ये प्रायः युवक, अनपढ़, उजड़ू होते हैं; इनकी एक महा वेद्वदी आदत यह होती है कि प्रायः स्त्रियों में नज़्मे फिरा करते हैं। जाँघें खुली रहती हैं, लँगोटे से कुछ ही झ्यादा कपड़ा लपेटे रहते हैं। इनमें जो थोड़ा-बहुत पढ़ना जानते हैं, वे गन्दी किताबें ज़ोर-ज़ोर से पढ़ा करते हैं और अप्रासङ्गिक रीति से स्त्रियाँ उसे चाव से सुनती रहती हैं। ये नीच प्रायः कुमारी कन्याओं को बहानों से फुसला लेते हैं और उनमें काम-दीपन करने की चेष्टा करते हैं। मूर्ख लोग स्थान के अभाव से कन्याओं को उनके निकट ही अरचित सुला देते हैं !

बड़े शहरों में तो बहुत से परिवार एकत्र रहने से कोई न कोई दुरचरित्रा विधवा मकान में बनी ही रहती है, जो अनायास ही ऐसा पाठ इन अभागिनियों को पढ़ा कर अपने रज़ में जमा लेती है।

* * *

यह हुई सधवा अवस्था में व्यभिचार में फँसने की रीतियाँ। ये स्त्रियाँ लाज़िमी रीति से कोई चढ़ती जवानी में, कोई चढ़ी में, कोई ढलते-ढलते विधवा हो जाती हैं। विधवा हो जाने से बहुत बन्धन कट जाते हैं। छुट्टा तो पहले ही बढ़ जाती है। अब उसका दुरुपयोग होने लगता है। प्रथम यदि कोई गुप्त-प्रेमी होता है, तो अब वह खुल खेलता है। कभी-कभी तो बड़े-बड़े घरों में इन पातकों के फल फला करते हैं। के एक बड़े घराने में दो-चार आदमी चुपचाप इसी अपराध में मार डाले जाते हैं। एक सेठ साहब ने ६७ वर्ष की उम्र में १२ वर्ष की बालिका से व्याह किया था और व्याह के छः

महीने बाद मर गए—उनके मरने के डेढ़ वर्ष बाद बालिका को प्रथम बार रजोदर्शन हुआ। इस विवाह का सारे नगर ने विरोध किया था, और सेठ जी का साठ हज़ार रुपया इसमें खर्च हुआ था। यह असहाय बालिका ज़हर देकर मार डाली गई और स्थानीय डॉक्टर साहब ने पाँचों घी में करके मामला रफ़ा-दफ़ा कर दिया !

* * *

प्रायः ऐसा होता है कि मारवाड़ी-पुरुष व्यापार के लिए दूर देश में चले जाते हैं। यह बात धनी-निर्धन सभी के लिए है। उनकी स्त्रियाँ निरन्तर १०-१५ वर्ष तक देश में अकेली उसी कुसंस्कार में रहती हैं। साल में महीने-बीस दिन के लिए पुरुष आते हैं और चले जाते हैं ! गाँव में दुरचरित्रा स्त्रियों का अभाव नहीं होता। आस-पास के अनेकों रईस-नारीब पराई बहू-बेटियों की ताक में रहते हैं। वे प्रलोभन भिजवाते हैं और अन्त में पतित करते हैं। ऐसे सहस्रों उदाहरण हमें मालूम हैं !!

* * *

पदों के विषय में हम दूसरी जगह लिख चुके हैं। अधिकांश बुराइयों और पाप की जड़ यह पदों है। इस पदों की ओट में बड़ी-बड़ी बेपर्दगियाँ होती हैं। अविद्या और कुसंस्कार यों तो स्त्री-जाति में भारत के दुर्भाग्य के साथ-साथ घुस गया है, पर मारवाड़ी-महिलाओं में सबसे अधिक है। मारवाड़ भर में (मारवाड़ से अभि-प्राय राजपूताना प्रदेश भर से है) ५० लाख के लगभग स्त्रियाँ हैं, जिनमें २० हज़ार से भी कम स्त्रियाँ साधारण पढ़ी-लिखी हैं। यदि यूरोप या अमेरिका में यह कहा जाय कि भारत में एक ऐसा भी प्रान्त है जहाँ की स्त्रियों की जन-संख्या ५० लाख है और उनमें फ़ी हज़ार ४ स्त्रियाँ कुछ पढ़ी हैं, तो एकाएक वहाँ की स्त्रियों को विस्वास होना कठिन है। अमेरिका में करीब ४ करोड़ स्त्रियाँ हैं, इनमें से ५ लाख तो अध्यापिकाएँ और प्रोफ़ेसर हैं। इंग्लैण्ड में १॥ करोड़, फ़्रान्स में १॥ करोड़ और जर्मनी में ३। करोड़ स्त्रियाँ हैं—इनमें से २ फ़ी सदी अनपढ़ हैं। ये स्त्रियाँ इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकती कि ५० लाख अनपढ़ स्त्रियाँ कैसे भेड़-बकरी की तरह अपनी आयु काटती होंगी ? अविद्या के अन्धकार में पढ़ी इन बेचारी स्त्रियों को पदों की क़ैद ने भयानक रीति से अन्धा कर दिया है। पर



जोधपुर का राजवंश

परिचय अन्यत्र देखिए



नहीं, पति वश में होगा या नहीं—भी शरीर रहती हैं। इन समझदार मूर्खों को भोजन और पाप दोनों ही अनायास प्राप्त हो जाते हैं। ये धर्म के बहाने कृष्ण-राधा के प्रेम के गन्दे भाव अपनी पापी आँखों द्वारा स्त्रियों में बखान करते हैं—विधवाएँ तो खास तौर पर चाहे जितनी देर तक इनकी सेवा में रह सकती हैं। ये अयोग्य आदमी घरों में स्त्रियों के बीच में बैठे मठोले मारा करते हैं, और अक्सर पर गृह-वधू या कन्या को पतित कर डालते हैं। रसोइयों को और भी अधिक सुयोग प्राप्त होता है। वे नहाते, खाते, स्त्रियोचित गृह-कर्म करते दिन-रात स्त्रियों में रहते हैं। ये प्रायः युवक, अनपढ़, उजड़ होते हैं; इनकी एक महा बेहूदी आदत यह होती है कि प्रायः स्त्रियों में नज़रे फिरा करते हैं। जाँघें खुली रहती हैं, लँगोटे से कुछ ही झ्यादा कपड़ा लपेटे रहते हैं। इनमें जो थोड़ा-बहुत पढ़ना जानते हैं, वे गन्दी किताबें जोर-जोर से पढ़ा करते हैं और अप्रासङ्गिक रीति से स्त्रियाँ उसे चाव से सुनती रहती हैं। ये नीच प्रायः कुमारी कन्याओं को बहानों से फुसला लेते हैं और उनमें कामेक्षीपन करने की चेष्टा करते हैं। मूर्ख लोग स्थान के अभाव से कन्याओं को उनके निकट ही अरक्षित सुला देते हैं !

बड़े शहरों में तो बहुत से परिवार एकत्र रहने से कोई न कोई दुश्चरित्रा विधवा मकान में बनी ही रहती है, जो अनायास ही ऐसा पाठ इन अभागिनियों को पढ़ा कर अपने रङ्ग में जमा लेती है।

* * *

यह हुई सधवा अवस्था में व्यभिचार में फँसने की रीतियाँ। ये स्त्रियाँ लाज़िमी रीति से कोई चढ़ती जवानी में, कोई चढ़ी में, कोई ढलते-ढलते विधवा हो जाती हैं। विधवा हो जाने से बहुत बन्धन कट जाते हैं। धृष्टता तो पहले ही बढ़ जाती है। अब उसका दुरुपयोग हो लगता है। प्रथम यदि कोई गुप्त-प्रेमी होता है, तो वह खुल खेलता है। कभी-कभी तो बड़े-बड़े घरों में इन पातकों के फल फला करते हैं। के एक बड़े घराने में दो-चार आदमी चुपचाप इसी अपराध में मार डाले जाते हैं। एक सेठ साहब ने ६० वर्ष की उम्र में १२ वर्ष की बालिका से व्याह किया था और व्याह के छः

महीने बाद मर ३० को प्रथम बार रजो ने विरोध किया था, इसमें खर्च हुआ था। मार डाली गई और स्थ में करके मामला रफ़्ताना

* * *

प्रायः ऐसा होता है कि मारवाड़, लिपू दूर देश में चले जाते हैं। यह बात सभी के लिए है। उनकी स्त्रियाँ निरन्तर तक देश में अकेली उसी कुसंस्कार में रहती हैं। महीने-बीस दिन के लिए पुरुष आते हैं और चले हैं ! गाँव में दुश्चरित्रा स्त्रियों का अभाव नहीं है आस-पास के अनेकों रईस-नारीब पराई बहू-बेटियाँ तक में रहते हैं। वे प्रलोभन भिजवाते हैं और अन्त पतित करते हैं। ऐसे सहस्रों उदाहरण हमें मालूम हैं

* * *

पदों के विषय में हम दूसरी जगह लिख चुके हैं अधिकांश बुराइयों और पाप की जड़ यह पदा है। इस पदों की ओट में बड़ी-बड़ी बेपर्दगियाँ होती हैं। अविद्या और कुसंस्कार यों तो स्त्री-जाति में भारत के दुर्भाग्य साथ-साथ घुस गया है, पर मारवाड़ी-महिलाओं सबसे अधिक है। मारवाड़ भर में (मारवाड़ से अति प्राय राजपूताना प्रदेश भर से है) ५० लाख स्त्रियाँ हैं, जिनमें २० हजार से भी कम स्त्रियाँ लिखी हैं। यदि यूरोप या अमेरिका में भारत में एक ऐसा भी प्रान्त है ज संख्या ५० लाख है और उनमें पड़ी हैं एकाएक वहाँ की स्त्रिका में करीब

..... करोड़ ये स्त्रियाँ इस ५० लाख अनपढ़ स्त्रियाँ अनपढ़ स्त्रियों का दती होंगी ? अविद्या पड़ी इन बेचारी स्त्रियों को पदों की क्रै रीति से अन्धा कर दिया है। पर



जोधपुर का राजवंश

परिचय अन्यत्र देखिए

नवीन संस्करण छप गया !!

एक
क्रान्तिकारी
उपन्यास

मानिक-मन्दिर

[ले० श्री० मदारीलाल जी गुप्त]

[प्रस्तावना-लेखक—श्री० प्रेमचन्द जी]

यह वही क्रान्तिकारी उपन्यास है, जिसकी सालों से पाठक प्रतीक्षा कर रहे थे, ऐसी सुन्दर पुस्तक की प्रस्तावना लिख कर प्रेमचन्द जी ने इसे अमरत्व प्रदान कर दिया है। श्री० प्रेमचन्द जी अपनी प्रस्तावना में लिखते हैं :—

“उपन्यास का सब से बड़ा गुण उसकी मनो-रञ्जकता है। इस लिहाज़ से श्री० मदारीलाल जी गुप्त को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। पुस्तक की रचना-शैली सुन्दर है। पात्रों के मुख से वही बातें निकलती हैं, जो यथावसर निकलनी चाहिए, न कम न ज्यादा। उपन्यास में वर्णनात्मक भाग जितना ही कम और वार्त्ताभाग जितना ही अधिक होगा, उतनी ही कथा रोचक और ग्राह्य होगी। ‘मानिक-मन्दिर’ में इस बात का काफ़ी लिहाज़ रखा गया है। वर्णनात्मक भाग जितना है, उसकी भाषा भी इतनी भावपूर्ण है कि पढ़ने में आनन्द आता है। कहीं-कहीं तो आपके भाव बहुत गहरे हो गए हैं और दिल पर चोट करते हैं। चरित्रों में, मेरे विचार में, सोना का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक हुआ है और देवी का सर्वान्न सुन्दर। सोना अगर पतिता के मनोभावों का चित्र है, तो देवी सती के भावों की मूर्ति। पुरुषों में ओझार का चरित्र बड़ा सुन्दर और सजीव है। विषय-वासना के भक्त कैसे चञ्चल, अस्थिर-चित्त और कितने मधुर-भाषी होते हैं, ओझार इसका जीता-जागता उदाहरण है। उसे अपनी पत्नी से प्रेम है, सोना से प्रेम है, कुमारी से प्रेम है और चन्दा से प्रेम है; जिस वक्त उसे सामने देखता है, उसी के मोह में फँस जाता है। ओझार ही पुस्तक की जान है। कथा में कई सीन बहुत मर्मस्पर्शी हुए हैं। सोना के सिद्धी हो जाने का और ओझार के सोना के कमरे में आने का वर्णन बड़े ही सनसनी पैदा करने वाले हैं, इत्यादि।” सजिन्द पुस्तक का मूल्य २॥॥ २० ! नवीन संशोधित संस्करण अभी-अभी प्रकाशित हुआ है !!

गुदगुदी

पुस्तक क्या है, हँसी का खज़ाना है। श्रीवास्तव महोदय ने इस पुस्तक में कमाल कर दिया है। एक-एक चुटकुला पढ़िए और हँस-हँस के दोहरे हो जाइए, यही इस पुस्तक का संचित परिचय है। बालकों तथा स्त्रियों के लिए विशेष मनो-रञ्जन की सामग्री है। मू० केवल ॥॥ ; स्था० ग्रा० से ॥॥ ; दो संस्करण हाथों हाथ विक चुके हैं ! तीसरी बार छप कर तैयार है।

व्यवस्थापिका ‘चाँद’ कार्यालय, इलाहाबाद

पर्दा केवल दिखाने के लिए है। वे गन्दे गीतों को बड़े चाव से और बड़े समारोह से सैकड़ों पुरुषों के बीच में बैठ कर तथा सड़कों पर गाती रहती हैं और ज़रा भी सङ्कोच न कन्याओं का करती हैं, न पुरुषों का। ये गन्दे गीत प्रत्येक सज्जन पुरुष के मस्तक को नीचा करने वाले हैं, और मारवाड़ी-समाज इसके लिए जितना अधिक शर्म, करे उतना ही कम है !!

यह बात तो साफ़ है कि इसके लिए केवल स्त्रियाँ दोषी नहीं ठहराई जा सकतीं। पुरुष ही सच्चे दोषी हैं। हम साहसपूर्वक यह कह सकते हैं कि भारत भर की जातियों में मारवाड़ की स्त्रियाँ स्त्रियोचित गुणों से नैसर्गिक रीति से विभूषित हैं। उनके बराबर निरभिमान और तल्लीनता से पति-सेवा करने वाली, घर के छोटे-बड़े धन्यों में प्रेमपूर्वक परिश्रम करने वाली, मृदुभाषिणी, कोखवती, कम-झूँच, लजीली, सुन्दर, स्वस्थ और बुद्धिमती स्त्री भारत के किसी प्रान्त में नहीं पैदा होतीं। हमारे इस कथन पर अन्य प्रान्त की बहिनें नाराज़ न हों, हम यह बात बहुत गम्भीरतापूर्वक कहते हैं। परन्तु कुसंस्कार और अविद्या ने उन्हें अधोगति में डाल रक्खा है। जब मारवाड़ की माताएँ जागृत होंगी—भारत की पराधीनता की बेड़ियाँ खनाखन टूटेंगी। मारवाड़ की माताओं ने देश को जिन्दा रक्खा था और अन्त में रक्खेंगी। आवश्यकता उनकी अविद्या, कुसंस्कार और दुर्भावनाओं को दूर कर देने की है। और इसके लिए आवश्यकता है पुरुषों को अपने व्यापार, वैभव आदि की तरफ़ से ध्यान हटा कर साहसपूर्वक समाज का भीतरी सुधार करने की।

* * *
हिन्दू-संस्कृति में छोटा भाई बड़े भाई की पत्नी को माता के समान मानता-जानता रहा है। लक्ष्मण जैसे यतिवर ने सीता के चरण ही देखे थे—मुख नहीं देखा था। परन्तु मारवाड़ी-संस्कृति कहाँ तक पतित हुई है, ज़रा ध्यान से सुनिए। मारवाड़ में एक गीत 'काँगसियो' के नाम से प्रसिद्ध है। प्रायः वसन्त, वर्षा आदि में जब दो-चार स्त्रियाँ एकत्र बैठती हैं, तब यह गीत वे बड़ी मौज से गाती हैं ! ज़रा सुनिए :—

म्हारा भँवर को काँगसियो जिठाणीये,
किस विद आयो थारी सेज।

ना म्हें थारे घरे गया दोराणीये,
ना म्हें लियो छै बुलाय।
भाभी के देवर लाड़लो दोराणीये,
आया-आयो ढलती सी रात।
भाभी आणो-जाणो छोड़ यो,
मारु जीवो मर जाऊँ जहर विष खाय।
मरस्यों तो जास्यो जीव सँ,
मारुणीये भाभी म्हारे जीवड़ा को हार।
नखराली भाभी म्हारे सेजाँ को सिणगार।
“ऐ जिठानी जी ! यह मेरे पति का कच्चा तुम्हारे पलँग पर कैसे आया ?

“हे देवरानी ! न तो मैं तुम्हारे घर गई और न हमने उसे बुलवाया। लेकिन भाभी का प्यारा देवर स्वयम् उतरती रात को आया था ?

“(इस पर देवरानी ने पति से कहा) अजी भाभी के यहाँ आना-जाना छोड़ दो, नहीं तो मैं विष खाकर मर जाऊँगी।

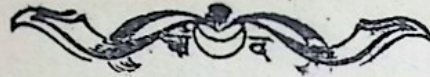
“(पति ने कहा) मर जाओगी तो जी से जाओगी, भाभी तो मेरे प्राणों का हार है, वह नज़रेदार भाभी मेरी सेज का सिङ्गार है।”

ऐसा ही—बल्कि इससे भी कुत्सित भावपूर्ण एक और गीत सुनिए। यह गीत ‘ननदोई का गीत’ कहा जाता है :—

महमद घड़्यो ओ जी ननदोई जी,
रखड़ी की साई बालम से लगाई।
धीमा-धीमा बोलो ओ जी नणदोई।
बाई जी सुनेजा देगा म्हाने गाली।
बाई जी सुने तो पड्या सुनवाद्या,
आपा रँग माणा प्यारी सालायेली।
जाणों छो तो माणों ओ जी नणदोई,
बाताँ क्यो बखाणों प्यारा नणदोई

“अजी ननदोई जी, हमें एक महमद (आभूषण) बनवा दो। रखड़ी (बोर) की सटपट तो बालम से मैंने लगा लो है।

“अजी ननदोई जी ! ज़रा धीरे-धीरे बोलो, बाई जी सुन लेंगी तो गालियाँ देंगी।



“वाई जी सुनेगी तो सुनने दो—प्यारी सलहज जी आओ.....करे” ।

“अजी ननदोई जी ! यही इरादा है तो.....पर प्यारे जी तुम बातें क्यों बनाते हो ?”

विचारशील पुरुष देखेंगे कि ये गीत भले घर की बहू-बेटियों के गाने के योग्य हैं ? इन्हें गाने से कैसी कुप्रवृत्ति पैदा होती है ? जिन सज्जनों की बहू-बेटियाँ ऐसे गीत गाती हैं—क्या वे सज्जन इसमें अपनी बेइज्जती ज़रा भी नहीं समझते ? गायन और प्रमोद स्त्रियों के भूषण हैं—वे करें—पर ऐसा, जैसा कि प्रत्येक आबरूदार स्त्री को करना चाहिए ।

* * *

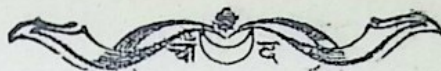
ब्रह्मचर्य का अभाव

सं सार में रह कर, जीवन के कठिन संग्राम में हमें शारीरिक, आत्मिक, मानसिक सब प्रकार का बल खर्च करना पड़ता है । यह बल ब्रह्मचर्य द्वारा ही हम सञ्चय कर सकते हैं—ब्रह्मचर्य को छोड़ इस अनुष्ठान का अन्य सुयोग नहीं है । ब्रह्मचर्य के द्वारा यदि हम वह बल इकट्ठा न कर सकें तो खर्च कहाँ से करेंगे ? जिसकी पैंजी नहीं है—गाँठ खाली है, वह क्या खर्च करेगा ? आज जो हमें जीवन-निर्वाह के सामान जुटाए नहीं जुटते—बात-बात में मुहताजी रहती है और पल भर को भी शान्ति नहीं मिलती उसका कारण केवल यही है कि ब्रह्मचर्य की आवश्यक प्रथा का हमने लोप कर डाला है । हमारा शरीर रोगी क्यों ? ब्रह्मचर्य के अभाव से । सन्तान क्यों नहीं होती ? ब्रह्मचारी न रहने और कच्चा वीर्य फेंकने से ! सन्तान क्यों होकर मर जाती या दुर्बल रहती है ? ब्रह्मचर्य नष्ट करके वीर्य कमज़ोर कर दिया ! शरीर क्यों हो ? कुछ सीखा नहीं, जल्दी गृहस्थ हो गए । दुखी क्यों हो ? इसलिए कि तन पर, मन पर, आत्मा पर जो बोझ है वह अधिक है । तन, मन, आत्मा इनका बल ब्रह्मचर्य से मिलता, उसे पालन नहीं किया । एक-दो मनुष्य नहीं, सारा भारत निर्बल है, इसका भी कारण ब्रह्मचर्य का अभाव है । ब्रह्मचारी बन कर विद्या पढ़ने से आत्मिक बल बढ़ता है—आत्मा बलिष्ठ होने से मनोवृत्ति गन्दी नहीं होने पाती—

विशुद्ध मनोवृत्ति होने से शारीरिक बल कुचेष्टाओं द्वारा खरिडत न होकर संरक्षित रहता है । व्यक्तियों का समुदाय ही समाज है, जब हमारी आत्मा और शरीर बली हैं तो समाज भी बली है । ब्रह्मचर्य के भक्त प्राचीन आचार्यगण अपने बल का अखण्ड प्रताप जगत् के सामने रख गए हैं—और ब्रह्मचर्य-अष्ट हमारा भी बल जगत् के सामने है । जो है सो सब जानते हैं—कहना-सुनना व्यर्थ है ।

सच तो यों है कि हमारी आरोग्यता, आयु, सौन्दर्य, ऐश्वर्य और हमारी सारी भावी कामनाओं का जो मूल है, एक मात्र इसी के अनुष्ठान करने से हमारी धार्मिक और नैतिक सारी मनोकामनाएँ पूरी होंगी । ब्रह्मचारी ही आदर्श-सन्तान पैदा करके उन्हें योग्य पुत्र बना सकता है । उत्तम सन्तान की कामना करने वाले को उचित है कि वह ब्रह्मचारी बने और पूर्ण-ब्रह्मचारी बने । ब्रह्मचर्य का नियम पालन करने से हमें अधिकाधिक विद्या-प्राप्ति का बड़ा अवसर मिलता है । विद्या क्या है ? शास्त्र क्या है ? यही सब सहानुभावों के सच्चे तजुबे हैं, उन्हें देख कर, समझ कर हम जानते हैं कि इस अगम्य संसार की गति कैसी है । किस काम को किस प्रकार करके क्या हानि-लाभ होगा । ईश्वर, माता, पिता, पुत्र, स्त्री व धर्म इन सबको जानने ही के लिए ब्रह्मचर्य की सृष्टि है । हमारे सामने जीवन का, सुख-दुःख का, लाभ-हानि का, साहस, वीरता और परोपकार का जो बृहत् भवन खड़ा हो सकता है, ब्रह्मचर्य ही उसकी नींव है । यह जो हमारे सामने धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चतुर्वर्ग प्राप्ति का महान् वृत्त, है ब्रह्मचर्य ही उसका मूल है । अगर हम चाहते हैं कि हमारा भवन दृढ़ बने, अगर हम चाहते हैं कि हमारा उद्देश्य-वृत्त आँधी के बड़े-बड़े झोंकों से भी न उखड़े तो हमें चाहिए कि पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करके कृत-कृत्य हो जायँ ।

मनुष्य-जीवन का उद्देश्य बड़ा गहन है । संसार में आकर उसे न केवल अपना ही उद्धार करना होता है, वरन् समस्त प्राणियों का अधिपति बन कर जगत् पर शासन करना होता है । महान् शक्ति प्राप्त किए बिना शासन नहीं हो सकता ! और शक्ति सम्पादन का एक ही उपाय है—वह ब्रह्मचर्य है । मनुष्य की उन्नति का मार्ग बड़ा प्रशस्त है, वह मोक्ष तक खुला पड़ा है । इस-



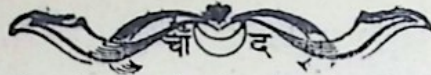
लिए मनुष्य चाहे तो बहुत-कुछ कर सकता है। अपनी गहन मेधा-बुद्धि से, प्रबल बाहुबल से, सारे संसार को अपनी झलक दिखा सकता है। प्राचीन काल में भीष्म, भीम, कृष्ण, राम, लक्ष्मण आदि महानुभाव और शुक, व्यास, कपिल आदि मुनिगण इसके उत्कृष्ट प्रमाण हैं। इन सबमें ब्रह्मचर्य का बल था, उसीसे वे दुर्जय योद्धा और अन्तर्दृष्टि वाले हो गए थे। कोई ब्रह्मचर्य-भ्रष्ट वैसी कामना करे तो कैसे वहाँ तक पहुँच सकता है ?

जब द्वार का युद्ध हुआ, तब जरासन्ध, कालयवन, कंस, शिशुपाल आदि अधर्मियों के अत्याचार के दौरे-दौरों का बाज़ार इतना गरम हो गया था कि प्रजा में हाहाकार मचा हुआ था। उनके उत्कृष्ट बल और प्रभाव को देख कर किसी की भी उनके आगे सिर उठाने की हिम्मत नहीं हुई। पर कृष्ण ने बारह ही वर्ष की अवस्था से उनके आगे सिर उठाया, उनके गर्व को तोड़ा और निरन्तर परिश्रम करके यत्न, युक्ति और बल से उनका मूलोच्छेद करके धर्म-राज्य की नींव स्थापित की। इतना करते हुए भी किसी ने उन्हें घबराते या उदास नहीं देखा, वे सदा आनन्दकन्द रहे। दुःख मानो जगत् में उनके लिए था ही नहीं। द्वारिका में जब शल्य के साथ उनका घोर युद्ध हो रहा था, उस आपत्तिकाल में भी द्यूत-सभा में द्रोपदी के वस्त्राहरण के समय उसकी रक्षा करना कृष्ण नहीं भूले ! कुरुक्षेत्र में युद्ध की अग्नि भड़कना चाहती है; खून के प्यासे योद्धा जान पर खेल कर समर-भूमि पर डटे हैं; भीषण दृश्य सम्मुख है जिसके ध्यान से रोंगटे खड़े हो जाते हैं; बाप, बेटे, भाई, दादा सब अपने ही आत्मीयों के रक्त से हाथ रँगने को पागल हो रहे हैं; सभी हतचेत हैं; सभी उन्मत्त हैं; हिंसा और स्वार्थ की अग्नि सभी के हृदय में प्रचण्ड वेग से धधक रही है। उन सबको देख कर अर्जुन धनुष पटक देता है, दुःख में भर कर कृष्ण से कहता है—महाराज मेरे हाथ से धनुष खिसका पड़ता है, चमड़ी जली जाती है, मन में उद्देग आ रहे हैं, मैं खड़ा भी नहीं रह सकता। अपने स्वजनों को मार कर अपना श्रेय मैं नहीं चाहता। जिनके लिए हम राज्य, धन चाहते हैं, वे ही प्राणों का मोह छोड़ कर मरने पर डटे हैं ! ये गुरु हैं, ये चाचा हैं, ये भतीजे हैं, ये भाई हैं, ये सम्बन्धी हैं; ये सब हमें मारने को तुले हुए हैं, यह सब जान कर भी हे मधुसूदन ! इनको मार कर हम

त्रिलोकी का भी राज्य नहीं चाहते। अर्जुन का ऐसा मोह देख कर कृष्ण मन ही मन हँसे। उनका मन तब भी पूर्ण-शान्त था; स्तब्ध था; और इसी कारण ऐसी गढ़बढ़ के समय में भी कृष्ण ने बड़े शान्त-भाव से गीता का महोप-देश अर्जुन को दिया। यह क्या साधारण बात है ? बिना ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा के ऐसा धैर्य ! ऐसी अन्तर्दृष्टि; ऐसी स्थिरता आ सकती है क्या ? कभी नहीं !

और चलो, मर्यादा-पुरुषोत्तम के ऊपर भी एक दृष्टि दो। उनका धैर्य, शान्ति, त्याग और दृढ़ता विचारते ही हृदय आनन्द से गद्गद हो जाता है। कैसा चित्र है—एक ओर प्रबल पराक्रमी दुर्जय रावण खड़ा है, लङ्का-सा कोट, समुद्र-सी खाई, बड़े-बड़े शूर-वीर जिसके रक्षक, जिनका काम ही हिंसा और कुटिलता है। कुम्भकर्ण-जैसा भाई, इन्द्रजीत-जैसा पुत्र सहायक है। दूसरी ओर क्या है ? अकेले राम हैं, नङ्गा शिर है, नङ्गे पैर हैं, केवल हृदय में अपूर्व साहस और आत्मिक बल है। बस विजय की यह उपयुक्त सामग्री है। ऐसा मारा कि रावण का नाम-लेवा और पानी-देवा भी न बचा। सच है, ब्रह्मचर्य की बड़ी महिमा है।

जिस समय चन्द्रिय मदोन्मत्त होकर धर्म की मर्यादा को उल्लङ्घन कर चले थे, उन्हें अपने प्रबल-प्रताप से नाथने वाले परशुराम, और हिरण्यकश्यपु को केवल नाखूनों से चीर फँकने वाले नृसिंहदेव—ये सब पूर्ण-ब्रह्म-चर्य के ही प्रताप से अपना अटल आतङ्क संसार-पट पर मढ़ गए हैं। जिस भीष्म ने एक बार श्रीकृष्ण को भी प्रतिज्ञा-भङ्ग करा कर चुग्व कर दिया था कौन नहीं जानता कि वे आदर्श ब्रह्मचारी थे ? रावण के पुत्र मेघनाथ का जिसने हनन किया, उस केशरी का नाम कौन नहीं जानता ? सुलोचना बड़ी पतिव्रता स्त्री थी, उसी के पातिव्रत्य-धर्म के बल से मेघनाथ अजेय हो गया था। उसके पास खबर पहुँची कि मेघनाथ मारा गया, तो उसने एकदम विश्वास करने से इनकार कर दिया। उसने कहा—राम में क्या शक्ति है कि मेरे पति को पराजित करे ? जो बारह वर्ष नौद मार कर अखण्ड ब्रह्मचारी रहेगा वही कहीं उन्हें पराजित कर सकेगा ? नहीं तो मेरे पति का बाल बाँका करने वाला किसी माता ने नहीं जन्मा है। उसकी प्रचण्ड मूर्ति, और तीक्ष्ण वाणी सुन कर दास-



दासी भय से थर-थर काँपने लगे। उसका क्रोध सीमा से बाहर हो गया। उसे अपने पति की मृत्यु पर बिल्कुल विश्वास नहीं था। तब एक दासी ने हाथ बाँध कर कहा—देवी! सत्य ही लक्ष्मण ने आज उनका बंध कर डाला है। बस, लक्ष्मण के नाम में ही बिजली का प्रभाव था। उसे सुनते ही सुलोचना का लाल मुख पीला पड़ गया, आँखों का प्रकाश बुझ कर अँधेरा छा गया, उदर मुख नीचे झुक गया—“हाँ, तब तो मैं निश्चय विधवा हुई”—यही उसके मुख से निकला, और मूर्च्छिता हो, धरती पर गिर गई। उसे लक्ष्मण के ब्रह्मचर्य पर उतना ही विश्वास था जितना अपने पतिव्रत-धर्म पर!! और क्यों न हो? लक्ष्मण यती थे भी इसी प्रशंसा के योग्य? जिस समय राम सीता की तलाश में ऋष्यमूक पर्वत पर आते हैं, उस समय सुग्रीव कुछ आभूषण पहचानने को उन्हें देता है। उन्हें राम, लक्ष्मण को दिखा कर पहचानने को कहते हैं। पर लक्ष्मण क्या उत्तर देते हैं! सुनो :—

कैयूरं नैव जानामि नैव जानामि कुण्डलम् ।

नूपुराण्यैव जानामि नित्य पादानि वन्दनात् ॥

“इन बाजूबन्दों को नहीं जानता क्योंकि कभी उनको नहीं देखा और न इन कुण्डलों को ही पहचानता हूँ। हाँ उन बिजुवों को जानता हूँ, क्योंकि चरण-वन्दना करती बार नित्य देखा करता था।” यह लक्ष्मण यती के वाक्य हैं जो भाभी के लिए उन्होंने कहे थे। वे वीर मेघनाथ क्या, समस्त विश्व को विजय कर सकते थे। सच है ब्रह्मचारी को क्या दुर्लभ है!

वाल्यावस्था से जिनको बड़े-बड़े सिद्ध मुनियों में उच्चासन मिलता था ऐसे प्रबल दिव्य-ब्रह्मचारी व्यास-पुत्र शुकदेव का नाम सभी हिन्दू जानते होंगे। जिस समय वे पिता के आश्रम से निकल कर, विरक्त होकर वन को चले, मार्ग ही में गङ्गा पार करनी पड़ी। तब कितनी ही नग्न नहाती स्त्रियाँ ने उन्हें देखा और नहाती रहीं। पर जब व्यास वहाँ उन्हें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पहुँचे तो स्त्रियों ने एक-दूसरे पदां कर लिया। व्यास बड़े चकित हुए। पुत्र-शोक तो भूल गए और कहा—“देवियो, यह क्या बात? पुत्र शुकदेव तुम्हारे बीच से निकल गया, पर तुमने पदां नहीं किया? और मैं बृद्ध हूँ, तुम सब मेरी पुत्री हो, फिर शुक से क्या पदां?” स्त्रियों ने मुस्करा कर भक्तिपूर्वक

व्यासदेव को प्रणाम किया और कहा—“देव! ऐसा कौन है जो परन्तप व्यास को न जानता हो! ऐसे तत्वदर्शी के दर्शनों से सच्ची शान्ति मिलती है। परन्तु हे शान्ति-धाम मुनि! शुकदेव युवा है तो क्या हुआ, वह जानता ही नहीं कि हम स्त्रियाँ हैं और किस काम में लाई जाती हैं। और आप सब-कुछ होने पर भी हमें जानते हैं, हमारा उपयोग भी जानते हैं, इसीसे हमने आपसे पदां किया है, आप क्षमा करें।” अहा! ऐसे ब्रह्मचारी युवा की ऋषि पूजा न करें तो किसकी करेंगे? ऋषि क्या, वह ब्रह्मचारी त्रैलोक्य पूज्य है। हा! कब उनका पद-रज भारत के मल्लक पर फिर नसीब होगा?

पूज्यपाद शङ्कराचार्य ने अखण्डित ब्रह्मचर्य का अनाधारण प्रभाव जगत् को दिखा दिया है। उनकी अगम्य बुद्धि-वैलक्षण्य का पता उपनिषद्, व्यास-सूत्र, गीता आदि गहन पुस्तकों पर भाष्य देख कर लगता है, जिनमें किसी से भी खण्डन न किए जाने वाले अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। जिस समय समस्त जगत् में वेद-विरोधी जनो का प्रबल राज्य था और संसार का शिर जिनके लिए उस समय झुक गया था, उसी समय इस धुरन्धर और विद्वान् तेजस्वी ब्रह्मचारी ने उनके बल को तोड़-मरोड़ कर ऐसा दलित किया कि आज तक कोई उसे न जोड़ सका। कहना नहीं होगा कि यह सब ब्रह्मचर्य के बल ही से था।

दूर कहाँ जायँ? जिस समय समस्त भारत में घोर खलबली मची थी, वैदिक-धर्म का तैल रहित दीपक टिमटिमा रहा था, ढेर के ढेर हिन्दू धड़ाधड़ मुसलमान-ईसाई हो रहे थे, हिन्दुओं के शिखा-सूत्र पर घोर आपत्ति आने को थी, अविद्या का अन्धकार प्रबल था—ठीक उसी समय एक प्रभावशाली व्यक्ति ने उस बहते हुए प्रभाव में एक ऐसी ठोकर लगाई कि सारा संसार चकित हो गया। वह वीर ‘कार्य’ न साधयामि शरीरं वा पातयामि’ कह कर कर्म-चेत्र में कूट पड़ा। गति का प्रभाव एकदम फिर गया। मरी हिन्दू-जाति जी उठी, जी ही न उठी, वरन् इस योग्य हो गई कि शत्रुओं का मुँह नोड़ मुकाबला कर सके। इस यति का नाम उद्यानन्द स्वामी था। उन्नीसवीं सदी का सारा संसार एक स्वर से हमारी हाँ में हाँ मिला कर इस ब्रह्मचारी के प्रबल प्रतापी धक्के को स्वीकार करेगा।

ब्रह्मचारियों की हमने इतनी महिमा गाई है। इसका अन्त कहीं नहीं है। हमें यही कहना है कि इन सबके हमारे जैसे ही हाथ, पैर, मुख, बुद्धि थी। अन्तर था तो इतना ही कि वे सब ब्रह्मवर्च-व्रत पर आरुढ़ थे और हम व्रत-भङ्ग हैं। इसलिए संसार में वे अमर हो गए और हम कौबों, कुत्तों की मौत मर रहे हैं! ऐसी आवश्यक प्रथा का नाश होना किसको न अखरेगा? जिसे जातिव्यवस्था का अभिमान है, जिसमें वंश-मर्यादा की प्रतिष्ठा है, जिसके मन में पूर्वजों के अनुकरण करने के हौसले हैं, वह इस अमूल्य पथ से ऋषि-सन्तान को भ्रष्ट देख कर कैसे जीवित रह सकता है? कैसे उसे चैन पड़ सकता है? उसकी छाती पर विषैला छुरा खुपा पड़ा रहे और उसे चैन पड़े, यह कैसे हो सकता है? बाल-विवाह की निकृष्ट प्रथा द्वारा ब्रह्मचर्य का लोप कर, विद्याभ्यास में बाधा डाल, समस्त बुद्धि का ही मूलोच्छेद किया जा रहा है। हाय! यह बड़े ही सङ्कट की बात है। ईश्वर हमें सुबुद्धि दे!

प्राचीन काल में गुरुकुलों की सुन्दर परिपाटी देश भर में थी। ये गुरुकुल एकान्त वनों में होते थे, इनके आचार्य पूर्ण विद्वान्, जितेन्द्रिय और तपस्वी होते थे। राजा और रत्न सबके बालक यहाँ एक समान भाव से रहते और विद्यार्थ्ययन करते थे। कृष्ण और सुदामा की अपूर्व मैत्री इन्हीं गुरुकुलों की बढौलत हुई थी। यहाँ नागरिक जीवन की दुर्गन्ध और निकम्मे दृश्य देखने को न मिलते थे। यहाँ वचन से भरपूर जवानी तक लड़के-लड़कियाँ आनन्द, उरसाह और शान्ति से शरीर और आत्मा को पुष्ट बनाते थे। और फिर वे सच्चे गृहस्थ बन कर जीवन के चार फल धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति करते थे। ऋषि दयानन्द ने संस्कार-विधि में उपनयन संस्कार के समय ब्रह्मचारी को जो सुन्दर उपदेश किया है, वह इस प्रकार है :-

“तू आज से ब्रह्मचारी है। नित्य सन्ध्योपासना किया कर। भोजन से पूर्व शुद्ध जल का आचमन किया कर। दुष्ट कर्मों को छोड़, धर्म किया कर। दिन में शयन कभी मत कर। आचार्य के अधीन रह कर नित्य साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ने में पुरुषार्थ किया कर। एक-एक वेद साङ्गोपाङ्ग पढ़ने के लिए १२ वर्ष—कुल ४८ वर्ष चाहिए। जब तक

तू पूरे तौर से वेदों को न पढ़ ले, अखरब्रह्म ब्रह्मचारी रह। आचार्य के अधीन धर्माचरण में रहा कर। परन्तु यदि आचार्य अधर्म और मिथ्या उपदेश करे तो उसे कभी न कर। क्रोध और मिथ्याभाषण मत कर। आठ प्रकार के मैथुन—स्त्री का स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्य-भाषण, सङ्कल्प, अध्यवसाय और क्रिया-निवृत्ति से बचा रह। भूमि में शयन करना, पलंग पर न सोना। गाना, बजाना, नृत्य, गन्ध, अञ्जन, अति स्नान, अति भोजन, अति निद्रा, अति जागरण, निद्रा, लोभ, मोह, भय, शोक, कुविचार मत ग्रहण कर। रात्रि के चौथे पहर में जाग। नित्य-क्रिया स्नानादि से निवृत्त हो ईश-प्रार्थना और उपासना नित्य किया कर। मांस, रुखा-सूखा अन्न, मद्य मत सेवन कर। तेल मत मल। अति खट्टा, तीखा, कपैला, चार और रेचक द्रव्य मत सेवन कर। नित्य युक्ति से आहार-विहार करके सुशील और थोड़ा बोलने वाला बन, तथा सभा में बैठने योग्य गुण ग्रहण कर।”

क्या ही अच्छा हो कि देश भर के माता-पिता और गुरु अपने बच्चों को इन उपदेशों पर चलाने की चेष्टा करें।

पर्दा

अत्यन्त प्राचीन काल में, जब मनुष्य-जाति आज की तरह सम्य नहीं हुई थी और वस्त्रों का निर्माण नहीं हुआ था—तब मनुष्य पशुओं की तरह नङ्गे रहते थे। शुभ्र-आकाश के नीचे प्रकृति-देवी की गोद में वस्त्र-रहित विचरण करना, फल-मूल खाना, उस काल के स्त्री-पुरुषों का स्वाभाविक जीवन था।

धीरे-धीरे मनुष्यों के हृदयों में भावुकता उत्पन्न होने लगी और शरीर को सजाने तथा कृत्रिम रीति से रँगने की रीति चली। उन्होंने रत्न-विरज्जी मिट्टी से शरीर को रँगना शुरू किया। बाद में उन्होंने गोदने गुदवा कर शरीर पर स्थायी रङ्गीन चिन्ह अङ्कित करने भी सीख लिए।

इसके बाद उन्होंने यह पसन्द किया कि केवल रत्न लगाने की अपेक्षा पत्तियों, वृक्षों की छालों, पशु-चर्मों से शरीर को जहाँ-तहाँ से ढक लिया जाय, जिससे बाढ़े

जब ये आवरण उतार दिए जायें और चाहे जब बदल लिए जायें।

इस समय तक 'गुप्ताङ्ग' की तरफ किसी का ध्यान न था। पुरुष और स्त्रियाँ प्रायः टाँग, सिर एवं गर्दन को विविध वस्तु लपेट कर ढकते और सजाते थे—गुप्ताङ्गों को प्रायः खुला छोड़ देते थे। परन्तु शीघ्र ही उन्होंने देखा कि शरीर में उपस्थित अशुद्धि अधिक कोमल है और उसकी रक्षा की खास तौर से आवश्यकता है। इसके सिवा मल-मूत्र विसर्जन करना भी एक ऐसी आवश्यकता थी, जिसे मनुष्य विचारशील होने के कारण एकान्त में करना उचित समझने लगे। सर्वत्र मल-मूत्र विसर्जन करने से घृणा उत्पन्न होने का भय था। फिर उन अङ्गों को शुद्ध करना भी आवश्यक था। इन सभी बातों के कारण इन अङ्गों को गुप्त रखने, ढकने आदि की तरफ मनुष्य-समाज का ध्यान बढ़ चला।

लज्जा अब तक उत्पन्न नहीं हुई थी। पर यह बात अनुभव से देखी गई कि इन अवयवों को यत्न से ढकने पर काम के वेग को उत्तेजना मिलती है। इस अवै-सर्गिक उत्तेजना के प्रादुर्भाव ने स्त्री-पुरुषों में गुप्ताङ्गों को यत्नपूर्वक ढकने की रीति के साथ ही 'लज्जा' का भी समावेश कर दिया। इसके बाद ही वस्त्रों की कड़ी आवश्यकता ने वस्त्रों का आविष्कार करा दिया, और मनुष्य-जाति सभ्यता के युग में एक कदम आगे बढ़ी।

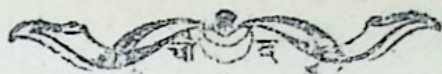
सभ्यता के इस प्रथम-चरण-काल में स्त्रियों का स्थान पुरुषों से श्रेष्ठ था। शारीरिक बल में वे पुरुषों के समान थीं। आज भी ब्रिटिश कोलम्बिया के आदिम निवासियों की स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही शिकारिणी होती हैं। तस्मानिया में मछली पकड़ने और ऊँचे-ऊँचे दरवाजों पर चढ़ने में पुरुष स्त्रियों का मुकाबला नहीं कर सकते। प्रायः पृथ्वी भर में प्राचीन जातियों की स्त्रियाँ आवश्यकता पड़ने पर युद्ध में लड़ी हैं। अफ्रीका के काङ्गो-प्रदेश की मछली जाति की स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही मजबूत होती हैं और उतना ही बोझ ढो सकती हैं। उत्तर अमेरिका और न्यूग्राइना की असभ्य जाति की स्त्रियाँ आज भी दो पुरुषों के बराबर काम करने की शक्ति रखती हैं। अरब, कुर्दिस्तान और रूस की अर्द्ध-सभ्य जातियों की स्त्रियाँ पुरुषों के बराबर कृषि और पूरी सामर्थ्यवान् होती हैं।

यह हुई शरीर-सम्पत्ति की समानता की बात। अब उपयोगिता को लीजिए। उपयोगिता की दृष्टि से प्राचीन-काल में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ बड़ी-बड़ी थीं। पुरुष केवल शिकार मारने, मछली पकड़ने एवं युद्ध करने के उपयोगी थे; परन्तु स्त्रियाँ सभ्यता के सभी आवश्यक पदार्थों की, जो आगे चल कर उद्योग-धन्धे और व्यापार के विशाल रूप में परिवर्तित हुए—एकमात्र अभिभावक थीं। मकान बनाना, चटाई बनाना, चमड़े के वस्त्र तैयार करना, भोजन पकाना, खेती करना, नाव बनाना, सूत कातना, कपड़े बुनना और बर्तन बनाना आदि सारे ही धन्धे उस युग में स्त्रियों को करने पड़ते थे।

धीरे-धीरे स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक चतुर, सहिष्णु और कर्मठ होने के कारण युद्ध और आखेट से हट कर अपनी पूर्ण शक्ति से उपरान्त कला-कौशल में लग गईं। कला-कौशल पर उनका पूर्ण प्रभुत्व हो गया। चँकि स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक शान्ति-प्रिय थीं, इस कारण वे धीरे-धीरे घरेलू होती गईं। मानवीय सभ्यता ने इस प्रकार दूसरे युग में प्रवेश किया।

परन्तु कृषि और कला-कौशल ने मनुष्य-समाज को स्थायी रूप से एक स्थान पर रहने को विवश किया। उन्होंने घर बनाए। धीरे-धीरे घर अधिकाधिक पक्के, स्थायी और विशाल होते गए, और चँकि एक जगह बैठ कर विविध कारीगरी की वस्तुएँ बनाना स्त्रियों का कार्य था—वे उन घरों में अधिक देर तक स्थिर रहने लगीं। पुरुष अब भी शिकार और युद्ध के उपयोगी थे; इसलिए वे अग्रणी बन रहे। फलतः स्त्रियाँ पुरुषों से शरीर-सम्पत्ति में दुर्बल और कोमल बनती गईं। साहस के कार्यों की कमी से वे नाज़ुक होने लगीं।

मातृत्व अर्थात् प्रसव की स्वाभाविक विशेषता ने उन्हें और भी कमजोर बना दिया। इस प्रकार स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा धीरे-धीरे कमजोर और घरेलू बनने लगीं। इस युग में बराबर युद्ध होते थे, और वे अब केवल पुरुषों के हाथ में रह गए थे। इस प्रकार पुरुष स्त्रियों के रक्षक बन गए। स्त्री और पुरुष अब दो भिन्न-भिन्न धाराओं में थे। घर और बच्चों की सँभाल स्त्रियों पर ही थी। सम्पत्ति का उत्तराधिकार भी स्त्री को ही प्राप्त था—इससे वे और भी घरेलू बन गईं। यह सभ्यता का तीसरा युग था।



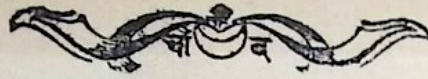
अब विस्तृत समाज का विस्तार हुआ—नगर बनने और बसने लगे, युद्धों की अपेक्षा नागरिक जीवन अधिक पसन्द किया जाने लगा। पुरुषों ने राष्ट्रों का निर्माण किया, उद्योग-धन्यों को व्यापार से मिला कर उसमें नया चमत्कार पैदा कर दिया। धीरे-धीरे साधारण युद्ध बन्द हुए। पर पुरुष जो बलवान् और उद्दण्ड बन गए थे और स्त्रियाँ जो परिश्रमी और सहिष्णु बन गई थीं—तथा शरीर, सम्पत्ति खो चुकी थीं—उनका परस्पर का सम्बन्ध असमान हो गया। पुरुष स्त्रियों का स्वामी बन गया और स्त्रियाँ अपने सौजन्य और स्वभाव की मृदुता के कारण पुरुषों के अधीन हो गईं। स्त्रियों का अब एक यह काम भी प्रधान हो गया कि वे पुरुषों को अधिक आराम दें। अब पुरुषों से स्त्रियों का स्थिर सम्बन्ध होना भी आवश्यक हो गया और विवाह-सूत्र की रचना हुई—तब स्त्री 'पत्नी' और पुरुष 'पति' बना।

'पति' 'पत्नी' का नैतिक सम्बन्ध बहुत काल तक ऐसा रहा जिसमें स्त्रियों को सम्मानयुक्त अधिकार और मनुष्योचित एवं नागरिक स्वातन्त्र्य प्राप्त था—यह सभ्यता का चौथा युग था। परन्तु प्रभुत्व मिट्टी का भी बुरा होता है! पुरुष के प्रभुत्व के आगे स्त्रियों का सिर झुका कि झुकता ही चला गया। उनके जीवन-क्रम ने उनकी शारीरिक और मानसिक विकास-शक्ति को दबा दिया। अन्ततः स्त्रियाँ पुरुषों की सम्पत्ति बन गईं। ऐसी दशा में वे अधिक सावधानी से रक्खी जाने लगीं। एक-एक पुरुष अनेक स्त्रियों का स्वामी बन गया। वह उन्हें बेच सकता, गिरवी रख सकता, जुए में दाँव पर लगा सकता एवं मरने पर उन्हें जीवित अपने साथ चिता पर जला सकता, कूब में गाड़ सकता था। यह भयानक एकाधिपत्य स्त्री, माता, पुत्री, परिजन आदि में फट पड़ा। सर्वत्र स्त्रियाँ भयानक रूप से पुरुषों की ऐसी सम्पत्ति बन गईं जिनका कोई स्वतन्त्र जीवन ही न था। सम्पत्ति और पुत्रियों का पति के घर जाना, इन दो विषम घटनाओं ने स्त्रियों की तरफ से पुरुषों को और भी सतर्क कर दिया, और उनके अधिकार बड़ी कड़ाई और दूरदर्शिता से सुदृढ किये जाने लगे।

जब स्त्रियों की ऐसी पतित दशा हो गई तो उनका सम्मान भी जाता रहा। वे एक प्रकार से बिना उड़्र आज्ञाकारिणी दासियाँ बन गईं। तब समाज ने उनका

नैतिक-तिरस्कार करना शुरू कर दिया। पुरुषों की आत्मिक उन्नति में स्त्रियाँ बाधक समझी जाने लगीं। पुरुष को पुरुष से खींच कर नरक में ले जाने वाली स्त्रियाँ समझी जाने लगीं। बड़े-बड़े नीतिकार और पण्डितों ने निर्लज्ज बन कर यहाँ तक कह डाला कि—“ये स्वभाव ही से अविरवासिनी, चरित्रहीन, चञ्चल और मूर्ख होती हैं। इन्हें सदा डण्डे के जोर से रखना चाहिए—ये कभी स्वतन्त्र न होने पावें।” पृथ्वी भर की सभी जातियों ने यथा—भारत, चीन, जापान, रोम, ईरान, यूनान ने स्त्रियों के विषय में एक ही राय गढ़ ली कि उन्हें सदैव दबा कर रक्खो। जापान की संस्कृति में स्त्रियों के लिए कड़ा पहरा है। भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों को स्त्रियों का मुख तक देखने की आज्ञा नहीं दी थी। मनु महाराज उन्हें खूब कड़ाई से वश में रखने की सम्मति देते हैं। भगवान् दत्तात्रेय तो उन्हें मदिरा ही बताते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं—उन्हें ढोल की तरह पीटना चाहिए। वे अन्धे, काने, कुबड़े, अपाहिज, कोढ़ी, कामी, लुच्चे—सभी प्रकार के पति को स्त्री का पूज्य बताते हैं। उनकी राय-शरीफ में ऐसे बद-माश और अयोग्य पतियों का अपमान करने पर भी स्त्री नरक को जाती है। मसीह कहते हैं—स्त्रियों को अपने आपको उसी प्रकार पुरुषों को समर्पण करना चाहिए, जैसे परमेश्वर को—क्योंकि पुरुष स्त्री का स्वामी है। मुहम्मद साहब फर्माते हैं—स्त्रियाँ मूर्तिमती दुर्बलता हैं। शेक्स-पियर कहता है—ओ व्यभिचारिणी, तेरा नाम ही स्त्री है! जर्मनी का प्रसिद्ध दार्शनिक शॉपनहार कहता है—ऐसी कोई बुराई नहीं, जो स्त्रियाँ न कर सकती हों। महान् और पूज्य पुरुषों के इन विधानों ने स्त्रियों के समस्त अधिकार छीन लिए और स्त्रियों को दबा कर, छिपा कर हर तरह सुरक्षित रखने की पूरी-पूरी चेष्टा सब तरफ से की जाने लगी। यह सभ्यता का पाँचवाँ युग था।

मुँह ढकना या पर्दा, इन्हीं अन्यायपूर्ण बातों के आधार पर निर्माण हुआ; यद्यपि प्राचीन असभ्य जातियों में भी मुख ढकने के उदाहरण पाए जाते हैं। न्यू-गाइना टापू की आदिम जातियों में रजस्वला होने के बाद से विवाह होने तक लड़कियों का मुख ताड़ की पत्तियों से ढक दिया जाता था, और सिवा निकट सम्बन्धियों के उनसे कोई नहीं मिल सकता था। क्रोमिया में रजस्वला पर्व में रक्खी जाती थीं और सिवा



स्त्रियों के उनके पास कोई नहीं जा सकता था। यही बात जापान, फॉर्केशस, उत्तरीय अमेरिका की असभ्य जातियों में भी थी। आयुर्वेद में भी रजस्वला के लिए ऐसे ही कठोर आचरण लिखे हैं। हम नहीं जानते कि उन सब बातों का वैसा अद्भुत प्रभाव पड़ता है या नहीं, जैसा कि वहाँ लिखा है। परन्तु रजस्वला को अपने पति तक का मुख देखने का निषेध आयुर्वेद में है।

वह अस्थायी पर्दा मालूम होता है—नवीन आवश्यकताओं ने उसे स्थायी बना दिया। एक रोमन लेखक का कहना है कि प्राचीन काल में यूनानी लोग स्त्रियों को पर्दे में रखते थे। उन्हें निमन्त्रणों या मेलों में जाने का निषेध था और न वे अन्य पुरुषों से मिल सकती थीं।

प्रसिद्ध रोमन विद्वान् प्लिनी, जो मसीह से २३ वर्ष बाद पैदा हुआ था, एक घटना का वर्णन करता है कि एथेन्स के नागरिकों का चरित्र भ्रष्ट करने के अपराध में एक सुन्दरी पर अदालत में मुकदमा चलाया गया। जब उस पर विचार होने लगा तो उसके वकील ने हठात् उसके मुख का पर्दा हटा दिया! उस असाधारण सौन्दर्य के कारण ही उसे निर्दोष मान लिया गया और छोड़ दिया गया। मन्चूरिया, मङ्गोलिया और चीन में स्त्रियाँ पर्दे में रहती थीं। कोरिया में यह रिवाज था कि रात्रि में एक घण्टा बजता था, तब सब पुरुष घरों में घुस जाते थे और स्त्रियाँ बाहर निकल आती थीं। दिन में उन्हें यदि निकलना होता तो एक बुर्जा पहनना पड़ता था। चीन और कोरिया में विवाह-वेदी पर कन्या धँघट निकाल कर आती थी।

वाल्मीकि-रामायण और महाभारत में ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनसे पता लगता है कि प्रतिष्ठित स्त्रियाँ उस काल में पर्दा करने लगी थीं। वे आम तौर से बाहर नहीं आती थीं। शकुन्तला भी धँघट काढ़ कर दुष्यन्त के दरबार में गई थी। ये सारे प्रमाण ईसा के जन्म के लगभग भारत की पर्दा-प्रथा को प्रकट करते हैं।

ईरान प्रथम अनेक सरदारों में विभक्त था। वे परस्पर लड़ते और एक दूसरे की सुन्दरी स्त्रियों को छीन कर उन्हें कड़े पहरे में किलों में रखते थे। धीरे-धीरे ये किले हरम बन गए। प्रोजों की उत्पत्ति भी ईरान से हुई है। यह बात मुहम्मद साहब के जन्म से पहले की है।

पश्चिम इतिहासज्ञ पुत्रारी का कहना है कि अरब में

पर्दा न था—उसका चलन चञ्चेज़ ख़ाँ ने चलाया, जो मङ्गोल था और बौद्ध मतवादी था। टर्की में भी मङ्गोलों के कारण पर्दा चला। मङ्गोलों ने अरब, ईरान और स्पेन तक अपने राज्य कायम किए थे।

मिथ की स्त्रियाँ नाक के नीचे मुँह ढकती थीं और बातें सबसे करती थीं। जापान और इङ्ग्लैण्ड में एक शताब्दी पूर्व तक स्त्रियों के पर्दे का ज्वाला रक्खा जाता था।

वेद का मत भारतीय दृष्टि से सबसे बड़ा महत्व रखता है। वेद आर्यों के प्रारम्भिक उत्कर्ष का द्योतक है। ऋग्वेद से यह पता लगता है कि उस काल में आर्य पर्दा नहीं करते थे। विवाह-काल में वर-वधू स्वयम् वचन-आवद्ध होते थे। विवाह-पद्धति इस विषय की साक्षी है। पर भारत में पर्दा दो हजार वर्ष के लगभग से किसी न किसी रूप में रहा है, यह बात हम स्वीकार करते हैं। यह बात हमें स्वीकार करनी पड़ेगी कि कवि ने अपनी भाषा में यदि किसी प्राचीन कथा का वर्णन किया है, तो उसमें उसने अपने काल की सभ्यता का पुट तो अवश्य ही दिया है। जैसे कालिदास शकुन्तला को धँघट में छिपी हुई लिखता है, जिससे प्रकट होता है कि उस समय यहाँ पर पर्दा-प्रथा का अस्तित्व था। उपनिषदों, रामायण और महाभारत में हमें इस बात के भी यथेष्ट प्रमाण मिलते हैं कि यद्यपि स्त्रियाँ एक प्रकार से अन्तःवासिनी होती थीं, पर वे आजकल की तरह पिंजरे की अभागिनी बन्दिनी नहीं! ब्रह्मवादिनी गार्गी का याज्ञवल्क्य से सम्वाद, कैकेयी का घोर युद्ध में जाना, सीता का वन-गमन, विराट का भरी सभा में द्रौपदी का परिचय इस बात का द्योतक है। शङ्कराचार्य ने स्त्रियों से शास्त्रार्थ किया था, मेगस्थनीज़ ने भी स्त्रियों को युद्ध करते और खुले मुँह घूमते देखा था।

उपरोक्त सारी बातों पर विचार करने पर हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि स्त्रियों के प्रति तुच्छता के भाव उत्पन्न होने पर, तथा पुरुषों के उन्हें अपनी सम्पत्ति समझने के कारण, उनकी रक्षा के लिए जो-जो उपाय करने पड़े—पर्दा उनमें से एक है। वर्तमान पर्दा-काल में जैसे कि कुछ स्त्रियाँ बिना पर्दे के दीख पड़ती हैं, प्राचीन काल में भी ऐसा ही हाल था।



बागों में चाली

अक्सर जब बागों में चाली । बागों में जो हाथ खरोरी धारे सेवक ने बाँटो ।
 हाथी भेवर जी को भावजों जी कई सुई कतरनी हाथ ।
 चाली सीबजो कोचजी जी कई फरे भेवर जी को हाथ जो रक्त रहिया सेवर जी ।
 जयपुर लावो लो सेवर लावजो ।
 गहरी पम्पी प्यारी जी, भेवर जीसो लो सेवक लावजो ।



बागाँ में चाली

नवल बन बागाँ में चालो । बागाँ में की दाख चरोरी धारे सैंया ने बाँटो ।
 दरजी भेंवर जी को भायलो जी कई सुई कतरनी हाथ ।
 आछी साँवजो काँचली जी कई फरे भेंवर जी को हाथ जी रङ्ग रसिया भेंवर जी ।
 जयपुर जाओ तो घेवर लावजो ।
 म्हारी घणी प्यारी जी, घेवर जीमो तो सेजाँ आवजो ।

जननी जीवन

स्त्रियों के लिए अनमोल पुस्तक

पुस्तक की उपयोगिता नाम ही से प्रकट है। इसके सुयोग्य लेखक ने यह पुस्तक लिख कर महिला-जाति के साथ जो उपकार किया है, वह भारतीय महिलाएँ सदा स्मरण रखेंगी। घर-गृहस्थी से सम्बन्ध रखने वाली प्रायः प्रत्येक बातों का वर्णन पति-पत्नी के सम्वाद-रूप में किया गया है। लेखक की इस दूरदर्शिता से पुस्तक इतनी रोचक हो गई है कि इसे एक बार उठाकर छोड़ने की इच्छा नहीं होती। पुस्तक पढ़ने से "गागर में सागर" वाली लोकोक्ति का परिचय मिलता है।

इस छोटी सी पुस्तक में कुल २० अध्याय हैं; जिनके शीर्षक ये हैं :—

(१) अच्छी माता (२) आलस्य और विलासिता (३) परिश्रम (४) प्रसूतिका स्त्री का भोजन (५) आमोद-प्रमोद (६) माता और धाय (७) बच्चों को दूध पिलाना (८) दूध चुड़ाना (९) गर्भवती या भावी माता (१०) दूध के विषय में माता की सावधानी (११) मल-मूत्र के विषय में माता की जानकारी (१२) बच्चों की नींद (१३) शिशु-पालन (१४) पुत्र और कन्या के साथ माता का सम्बन्ध (१५) माता का स्नेह (१६) माता का सांसारिक ज्ञान (१७) आदर्श माता (१८) सन्तान को माता का शिक्षा-दान (१९) माता की सेवा-शुश्रूषा (२०) माता की पूजा।

इस छोटी सी सूची को देख कर ही आप पुस्तक की उपादेयता का अनुमान लगा सकते हैं। इस पुस्तक की एक प्रति प्रत्येक सदगृहस्थ के घर में होनी चाहिए। साफ़ और सुन्दर मोटे कागज़ पर छपी हुई इस परमोपयोगी सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १॥; स्थायी-ग्राहकों से ॥३॥ मात्र !

‘चाँद’ कार्यालय, इलाहाबाद

घरेलू चिकित्सा

[ले० अनेक सुविख्यात डॉक्टर, वैद्य और हकीम]

‘चाँद’ के प्रत्येक अङ्क में बड़े-बड़े नामी डॉक्टरों, वैद्यों और अनुभवी बड़े-बूढ़ों द्वारा लिखे गए हजारों अनमोल नुस्खे प्रकाशित हुए हैं, जिनसे सर्व-साधारण का बहुत-कुछ मङ्गल हुआ है, और जनता ने इन नुस्खों की सचाई तथा इनके प्रयोग से होने वाले लाभ की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। मोटे चिकने कागज़ पर छपी हुई पुस्तक का मूल्य केवल ॥॥ है। स्थायी-ग्राहकों से ॥२॥ मात्र !

उपयोगी चिकित्सा

[ले० प्रोफेसर पं० धर्मानन्द जी, शास्त्री आयुर्वेदाचार्य]

इस पुस्तक को आद्योपान्त एक बार पढ़ लेने से फिर आपको डॉक्टरों की खुशामदें न करनी होंगी—इस पुस्तक में रोगों की उत्पत्ति का कारण, उसकी पूरी व्याख्या, उनसे बचने के उपाय तथा इलाज भी दिए गए हैं। रोगी की परिचर्या किस प्रकार करनी चाहिए इसकी भी भरपूर व्याख्या आपको मिलेगी। स्त्रियों के लिए तो यह पुस्तक बड़े काम की है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १॥; स्थायी ग्राहकों के लिए १॥२॥

परन्तु हमारे विचार का तो यह विषय ही नहीं। उपरोक्त विवरण हमने सिर्फ़ इसलिए दिया है कि जिससे हमारे पाठकों को इस बात की कुछ धारणा हो जाय कि किस तरह स्त्रियों को इस अत्याचार के लिए राज़ी किया गया है। आज नौबत यहाँ तक आई है कि स्त्रियाँ स्वयं इस क्रैद और अपमान को त्यागने में सज्जोच करती हैं!

आज पृथ्वी की उन जातियों ने पर्दा फाड़ फेंका है, जिन्होंने इसे पृथ्वी पर प्रचारित किया था। पर्दे को फाड़ते ही तुर्कों की प्रचण्ड शक्ति उदय हो गई है। मिश्र इस पर्दे के पाप से अपनी महिलाओं का उद्धार करके उन्हें नवीन जीवन दे रहा है। अफ़ग़ानिस्तान के साहसी राजा ने पीढ़ियों से पर्दे की अभ्यस्त महारानी को सारे यूरोप में स्वच्छन्द वायु लगने के लिए उन्मुक्त करके संसार को चकित कर दिया और उस सिद्धान्त के लिए पैतृक सिंहासन को भी लात मार दी। चीन और कोरिया की स्त्री-समाज ने पर्दा चीर कर देश की स्वाधीनता के युद्ध में बराबरी का भाग लेना शुरू कर दिया है। सीरिया में सहस्रों वर्ष की पिछड़ी जातियों ने पर्दे की विनाशकारी कुप्रथा को कुचल डाला है। फिर भारतवर्ष की माताओं पर यह जुल्म कब तक? बालिकाओं पर यह जुल्म कब तक? पत्नियों और बहिनों पर यह जुल्म कब तक होता रहेगा?

भारतवर्ष में हिन्दू-मुसलमान सभी जातियों में पर्दे का रिवाज है। परन्तु मुसलमानों ने पर्दे में भी एक सौन्दर्य, व्यवस्था और पद्धति निकाल ली है। हिन्दुओं में भी अन्य जाति की स्त्रियाँ जो पर्दा करती हैं, उनमें एक सलीका होता है। परन्तु हमें दुःख से कहना पड़ता है कि मारवाड़ी-परिवारों में पर्दा भी ऐसा भद्दा है कि ईश्वर ही रक्षा करे। पाठक इस अङ्क में पर्दे की बीसों बानगी देखेंगे। बहुधा मारवाड़ी-माताएँ और बहिनें बारीक धोतियाँ पहनना पसन्द करती हैं। धोतियों की खपत उत्तर भारत में मारवाड़ी-जाति को छोड़, शायद ही किसी जाति में इतनी अधिक हो। ऐसी बारीक धोती पहन कर आम-घाटों पर नहाना, स्टेशन के प्लेटफ़ॉर्मों पर नहाना बहुत ही लज्जास्पद है। फिर मारवाड़ी-महिलाएँ प्रायः चोली या काँचली ही पहनना यथेष्ट समझती हैं, उसके ऊपर कोई ऐसा वस्त्र, जो भुजाओं तथा कमर, पेट आदि अङ्गों को ढीक-ढीक ढक ले, नहीं पहनतीं। प्रायः ऐसा होता है कि

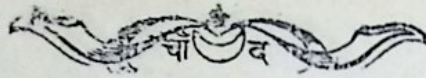
जो महिलाएँ बहुत बारीक साड़ियाँ पहनती हैं, वे भीतर मोटे कपड़े का पेटीकोट, क़मीज़, ब्लाउज़ आदि अवश्य पहनती हैं। इन भीतरी वस्त्रों का मारवाड़ी-महिलाओं में बहुत कम रिवाज है। फलतः बारीक वस्त्र में से समस्त शरीर दीखता रहता है। रङ्गीन वस्त्रों और गोटे आदि चमकीली सजावटों का प्रचार भी मारवाड़ी-समाज में बहुत अधिक है। इस प्रकार का भड़कीला वेश, तिस पर बारीक वस्त्र, वास्तव में किसी भी प्रतिष्ठित महिला के लिए दोषपूर्ण समझा जाना चाहिए।

मारवाड़ी-समाज में मुँह पर कपड़ा डाल लेना ही यथेष्ट समझा जाता है—पेट या कमर यदि उघड़े रहें तो परवा नहीं। प्रायः मारवाड़ी-महिलाओं के पेट अनायास ही उघड़े रहते हैं और दृष्टि को अतिशय असम्यक्तापूर्ण प्रतीत होते हैं।

प्रसिद्ध मारवाड़ी घाघरा इस बीसवीं शताब्दी में जीवित है—यह देख कर आश्चर्य की सीमा नहीं रहती! इतना भारी, इतना बेडव, इतना बड़ा, फिर लम्बाई में इतना ऊँचा कि आधी टाँगें साफ़ दीख पड़ें !! वास्तव में बड़े-बड़े नगरों में, जहाँ महिलाएँ सम्य पुरुषों की दृष्टि में आदर की वस्तु समझी जाती हैं, हास्यास्पद है।

इस घूँघट के बीच से बोलना, गालियाँ गाना, पुरुषों से हँसी करना इस पर्दे का दूसरा रुझ है। हमने अजमेर में स्वयं यह लीला देखी है। वहाँ सील-ससमी का मेला होता है, जिसमें प्रातःकाल ही से सहस्रों स्त्रियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के खाने के सामान लेकर एक त्रास बाज़ार में दूकानों और मकानों के चबूतरों पर टिढ़ी-दल की तरह आ बैठती हैं। बाज़ार रङ्गीन हो जाता है। थोड़ी देर के बाद सगे-सम्बन्धी या ग़ौर-आदमी भी टोलियाँ बना कर, सज-धज कर, पान कचरते हुए जा पहुँचते हैं—और खड़े हो जाते हैं। स्त्रियाँ गालियाँ गाती हैं और वे सुनते हैं—प्रसन्न होते हैं। एक बार पुष्कर-महात्मेय में हमने देखा कि ऐसे ही एक दल में शामिल एक प्रतिष्ठित दीवान-बहादुर सेठ, जिनकी उम्र ७५ वर्ष की थी, मेले पहुँचे और खड़े-खड़े गालियाँ गवाने लगे। अकस्मात् पोते जी भी अपने दल-बल सहित वहाँ पहुँच गए और 'अरे उठे दादा जी साब ऊभा छे' कह कर दूसरी ओर को खसक गए!

मेवाड़ में हमने देखा है कि जब कोई मेहमान—खास कर जमाई—आता है, तब उसे बाड़ा में ले जाकर



ठण्डाई पिलाई जाती है। वहाँ गाजे-बाजे के साथ १०-२० स्त्रियाँ और १०-२० पुरुष जाते हैं। भङ्ग पीकर ढोल की ताल पर स्त्रियाँ नाचती हैं—सहस्रों लोग देखते हैं। बीच चौक में प्रतिष्ठित घरों की महिलाओं को नाचते हमने मालवे के क्रस्त्रों में देखा है। यह सब पर्दे और घूँघट के भीतर ही होता है—इस घूँघट और पर्दे पर लाख बार धिक्कार है !

यदि कोई ग़ैर-मारवाड़ी सज्जन मारवाड़ी भाइयों की शादी या शमी की जीमनवार (दावत) में पहुँच जायें तो देखने योग्य दृश्य दीख पड़ता है। जगह-जगह से दस-दस, पाँच-पाँच स्त्रियाँ गीत गाती आती हैं और मुण्ड बना कर बैठ जाती हैं। न वस्त्रों का झ्याल है, न आबरू का। नवयुवक उन्हें परोसते समय मज़ाक़ करते हैं—मज़ाक़ भी क्रोश—और मज़ा लूटते हैं। परसने वाले का प्रश्न होता है—“घालूँशा ?” अर्थात्—साहब ! डाल दूँ। ‘घालू’ शब्द का अर्थ प्रवेश कराना भी है ; और ‘शा’ शब्द प्रायः स्त्री-पुरुष सभी के लिए प्रतिष्ठा-सूचक है। उपरोक्त द्विअर्थक बात सुन कर स्त्रियाँ मुँहतोड़ जवाब देती हैं—“आगला तो उठवा द्यो !” अर्थात्—आगे का तो उठने दो। नमूने के लिए यही काफ़ी है।

इन उदाहरणों से यह बात बिना सङ्कोच के मान ली जा सकती है कि इस पर्दे के बीच में लज्जा का प्रश्न नहीं है—रीति-रिवाज का प्रश्न है। लोग प्रायः यही कहते हैं कि यह छुट कैसे सकता है ? कैसे ग़ैर-मर्दों के सामने हमारी स्त्रियाँ निकलेंगी ? लोग क्या कहेंगे ? गुण्डे और लुच्चों की बन आवेगी। इन भाइयों को हमारा यह उत्तर है कि यदि स्त्री तेजवती हो और उसमें स्वावलम्बन हो तो लुच्चे-गुण्डों की मजाल उसका अपमान करने की नहीं हो सकती। एक स्त्री, जो घूँघट काढ़े चुपचाप मूढ़ की तरह चली आ रही है, गुण्डे यदि उसे छेड़ें तो वह सिवा इसके कि सब कुछ चुपचाप सहे जाय, कुछ नहीं कर सकती। परन्तु हमारा तो यह कहना है कि हमें अपनी स्त्रियों का घूँघट ही नहीं उघाड़ना है, बल्कि उनकी कलाइयों में से भारी-भारी गहने भी उतारने हैं—और उनके स्थान पर एक मज़बूत चाबुक देना है। इस चाबुक की उन्हें ज़रूरत है। किसी गुण्डे द्वारा अपमानित होने पर प्रत्येक महिला को यही उचित है कि शपाशप चाबुक उसके मुँह पर जड़ दे और

विश्वास रखे कि सहस्रों पुरुष फिर उसके साहस की तारीफ़ करेंगे। रही यह बात कि घर के और बाहर के लोग देखेंगे, यह केवल मानसिक दुर्वलता है—देखते तो हैं ही, पर कुछ देखते हैं कुछ नहीं। इस देखने में हानि क्या है—यह सोचना चाहिए।

पर्दा तन्दुरुस्ती का कितना घातक है, इसे यदि बुद्धिमान् विचार कर देखेंगे तो समझाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। प्रत्येक पुरुष, हकीम-डॉक्टरों का गुलाम हो रहा है—हिस्टीरिया, खून का पतला पड़ना, मन्दाग्नि, बवासीर, प्रदर, प्रसूत आदि अनेक रोगों की जड़ पर्दा है—पर्दे के रहते स्त्रियाँ पनप नहीं सकतीं !

अधिक उम्र की स्त्रियों को तो घूँघट की आदत पड़ जाती है, पर बालिकाएँ विवाहिता होकर जब बहू बन के ससुराल जाती हैं तब एकदम घूँघट का भयानक दम-घोट पींजरा उनके लिए जान लेने वाला बन जाता है। शायद लोगों को यह पता नहीं कि मारवाड़ी-समाज में नई बहूएँ सास के सामने भी घूँघट निकाल कर आती हैं तथा बोलने का भी हुक्म उन्हें नहीं होता। कैसे दुःख और अविचार की बात है कि माता-पिता के घर को त्याग कर कच्ची अवस्था की बालिकाएँ सास-ससुर के घर जाती हैं, तब उचित तो यह था कि सास उन्हें पुत्री के समान स्वच्छन्दता, प्यार और स्वाभाविक तौर से रखे। इसके विरुद्ध मुँह और वाणी पर ताला जड़ दिया जाता है। बेचारी गूँगी-बहरी बनी रहती हैं। प्रश्न का उत्तर उन्हें टक्कारे से देना पड़ता है। वृद्धा स्त्रियाँ और पुरुष समझते हैं कि घूँघट उठा दिया जाय तथा बोलने की स्वाधीनता दे दी जाय तो मर्यादा नष्ट हो जायगी। यदि पुत्रियाँ अपने माँ-बाप के सामने खुले दिल से बातें करती हैं तो क्या मर्यादा नष्ट हो जाती है। इस मर्यादा के भी अद्भुत पैर हैं। किसी भी बात का, चाहे कितनी भी नम्रता से जवाब देने से मर्यादा टूट जाती है। भोजन करते समय कोई जेठ या ससुर आगया, तो घूँघट चाहे जितना लम्बा हो, पर यदि आगन्तुक को भेड़िया या सिंह समझ कर तत्काल हाथ न सिकोड़ लिया तो मर्यादा भङ्ग हो गई ! मार्ग चलते जान-पहचान का कोई व्यक्ति मिल जाय तो घूँघट चाहे जितना लम्बा हो, पर पीठ फेर कर खड़ी न हुई तो मर्यादा गई। परन्तु घर के कटारों, धीवरों, नौकरों के सामने नज़्मी बहाना, उनसे शरीर पर पानी डलवाना, घाटों पर नग्न-

जैसी अवस्था में नहाना, विसाती, चूड़ी वाले, फेरा वाले, आदि से मुँह खोल कर चुहल करना—इनमें मर्यादा भङ्ग नहीं होती। यह कैसी अद्भुत सभ्यता है कि किसी बात के पूछने पर यदि मुख से उत्तर दिया जाय तो असभ्यता, पर पाँच सेर का सिर हिला दिया जाय, या हाथों से सङ्केत कर दिया जाय तो सभ्यता के अनुकूल !

कहाँ तक कहा जाय, यह तो मानना पड़ेगा कि मारवाड़ी-माहलाओं का प्रवास करने से दूसरे प्रदेश की महिलाओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा है—और पदों का वह रूप अब नहीं रह गया है, जो अब से १५-२० वर्ष प्रथम था। बम्बई-कलकत्ता में देखा गया है कि प्रायः मारवाड़ी-पगड़ी को देख कर ही घूँघट काढ़ा जाता है—अन्य पुरुषों से नहीं ! हम देखते हैं कि समय अपना काम कर रहा है। जाति के बुद्धिमानों को यह बात सोच कर अपना कर्तव्य प्रथम से ही स्थिर कर लेना चाहिए।

ऐ देश के बुद्धिमान पुरुषो ! यदि तुम देश की रक्षा करने वाले फौलादी बच्चों की नस्ल चाहते हो, तो उन बच्चों की इन पदों की बेड़ियों में बँधी स्त्रियों से आशा न करो। तुम्हारे बच्चों के सिर की चोटियाँ उड़ कर माथे की माँगें बन गईं; वीर युवक ज्ञानाने होगए; बढ़िया धुली कमीज पहन कर, चुनी बारीक धोती लटका कर, सूखे गालों को तेल से चिकना करके वे पतली छड़ी लेकर निकलते हैं। यही देश के युवक हैं ? यही हिन्दू-जाति के घृल के बीच का गूदा हैं ? इन्हीं के बल पर तुम संसार की आँधी और तूफानों के झोंकों को सहने की हिम्मत रखते हो

यह माँग, यह ज्ञानाने फ्रैशन के कपड़े, यह नज़ाकत की चाल, यह भावपूर्ण बातों के ढङ्ग, यह मगज़ में घुसी हुई आँखें, यह निस्तेज चेहरा, यह मुराँ जैसी पतली गर्दन, यह पिचके गाल, यह आब रहित दाँत, यह मुँह जैसी सूखी छाती, और यह नली जैसी बाहें ! ऐ देश के बुजुर्गों ! बूढ़ो ! पिताओं ! भले आदमियों ! सोते हो या मर गए हो ? जीते हो या कुछ शक्ति बची है ? कुछ शिरत हो तो इन बच्चों की सूरत देखो। ये ज्ञानाने-जवान तुम्हारे घरों में क्या शोभा दे रहे हैं ?

इसी हवा-मिट्टी में, इसी सूरज-चाँद के प्रकाश में, इसी आकाश की छाया में, इसी पुबय-धरती पर, अब से

कुछ प्रथम जो जवान उत्पन्न हुए थे उनका कुछ और ही नज़र था। नाहर जैसी छाती, तस अङ्गारे जैसी आँखें, सूर्य के समान मुँह, व्याघ्र के समान कमर और हाथी जैसी चाल थी।

वैसे बच्चे क्या तुम उन औरतों से पैदा कराना चाहते हो, जिन्हें तुमने बम्बई-कलकत्ते के घृणित, अँधेरे, गन्दे जेलघानों में जीवन भर के लिए बन्द कर रक्खा है—जो दो पतली चपातियाँ तब हज़म कर सकती हैं, जब डॉक्टर का डेढ़ रु० का नुस्खा पी लें ? भाइयो, तुम्हारे वंश-नाश के लिए तो बाल-विवाह ही काफ़ी था—इन बचपन में ज़बरदस्ती पाल में पकाई हुई अभागिनी स्त्रियों की, जिन्हें निर्दयता और मूर्खता से इन बड़े शहरों की जेल-जैसी हवेलियों में बन्द कर दिया गया है, क्या आवश्यकता थी ? यह तो मानो समस्त जाति के आत्मघात की तैयारियाँ हैं !!

इस सम्बन्ध में महात्मा गाँधी का एक जोरदार लेख, जो अभी उनके 'यङ्ग इण्डिया' में प्रकाशित हुआ है, अत्यन्त उपयोगी होने से यहाँ दिया जाता है :—

“मद्रास की सुप्रसिद्ध समाज-सेविका डॉक्टर मुथु-लक्ष्मी रेड्डी ने मेरे आन्ध्र देश वाले एक भाषण के बारे में एक लम्बा पत्र लिखा है। उसमें से नीचे लिखा उपयोगी अंश यहाँ दिया जाता है।

‘बैजवाड़ा से गुन्तूर तक के अपने प्रवास में आपने समाज-सुधार की तात्कालिक आवश्यकता के बारे में, और साथ ही हम लोगों की रात-दिन की आदतों के आवश्यक सुधार के बारे में जो बातें कही हैं, उसका सचमुच मुझ पर गहरा असर पड़ा है। मैं आप से नम्रतापूर्वक निवेदन करती हूँ कि एक डॉक्टरी धन्ये के अनुभव-प्राप्त व्यक्ति की हैसियत से मैं आपके साथ पूरी तरह सहमत हूँ। मगर साथ ही नम्रतापूर्वक यह भी कहना चाहती हूँ कि अगर शिक्षा द्वारा समाज-सुधार, स्वच्छता और जनता का आरोग्य आदि शुभ परिणामों की आशा रखी जाती है, तो कहना चाहिए कि स्त्री-शिक्षा ही इसकी सफलता का एकमात्र उपाय है। क्या आप यह अनुभव नहीं करते कि वर्तमान सामाजिक स्थिति में बहुत कम स्त्रियों को शिक्षा का, शरीर और मन के सम्पूर्ण विकास का और अपने व्यक्तित्व को प्रकट करने का मौक़ा दिया जाता है ?



‘क्या आप यही मानते हैं कि सामाजिक रुढ़ियों के भार से स्त्रियों के व्यक्तित्व को निर्व्ययतापूर्वक कुचल दिया जाता है? क्या बाल-विवाह द्वारा उनका शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक—तात्पर्य सब तरह का विकास मूल में ही नहीं रोक दिया जाता है? क्या बालिका-बहुओं और बालिका-माताओं की वेदना का, क्या विधवाओं और त्यक्ताओं के अपार दुःखों का शीघ्र ही कोई उपाय करने की आपको ज़रूरत नहीं मालूम पड़ती? क्या हिन्दू-समाज की उस रिवाज को क़ायम रहने देना या उसकी उपेक्षा करना उचित है, जिसके कारण निर्दोष हिन्दू-बालाएँ पतन की ओर ढकेल दी जाती हैं?’

‘प्राचीन भारतवर्ष की मैत्रेयी, गार्गी और सावित्री जैसी महिलाओं में शूरता और धैर्य का जो तेज था, स्वतन्त्र विचार करने और ज़िम्मेदारी के कामों को हाथ में लेने की जो शक्ति थी, और जो शक्ति आज भी ब्रह्म-समाज, आर्य-समाज अथवा थियोसफ़ी जैसे उदार सम्प्रदायों की (इन सम्प्रदायों से मतलब उस हिन्दू-धर्म से है, जो निरर्थक रुढ़ियों और विधि-विधानों के मल्लमट से मुक्त हो चुका है) बहुतेरी स्त्रियों में पाई जाती है, वह तेज और वह शक्ति कतिपय अपवादों को छोड़ कर, भारत की शेष सारी स्त्रियों में इन सामाजिक अत्याचारों के कारण ढूँढ़े नहीं मिलती—उसका एकदम लोप हो गया है। क्या आप इसे अनुभव नहीं करते?’

‘क्या इस हालत में इन तमाम सामाजिक कुरीतियों के, जो हमारी राष्ट्रीय निर्बलता और हमारे वर्तमान अधःपतन की मूल कारण हैं, नाश या सुधार का कोई मार्ग बहुत शीघ्र ही ढूँढ़ निकालने की लगन, हमारे राष्ट्रीय दल के लोगों में—मेरा मतलब महासभा के सदस्यों से है—नहीं होनी चाहिए? क्या उनका यह भी कर्तव्य नहीं है कि लोगों को समझाएँ कि मर्द, स्त्रियों को गुलामी के बन्धनों से, जिनमें आज वे जकड़ी हुई हैं, मुक्त करें, जिससे स्त्रियाँ पूरी तरह अपने शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास की सिद्धि के लिए प्रयत्न कर सकें और शूरता तथा ज्ञान के उदाहरण पेश कर सकें। और इससे भी आगे बढ़ कर पुत्रियों और माताओं के बाते भारत के भावी शासकों की आदतों और उनके चरित्र को सुसंस्कृत बनाने, उसका निर्माण करने और

उनकी रहनुमाई करने का अपना कर्तव्य पूरी और अच्छी तरह पाल सकें?’

‘अगर महासभा के सदस्य स्वतन्त्रता को सारे राष्ट्र का और फलतः व्यक्ति-मात्र का जन्मसिद्ध अधिकार मानते हों और चाहे जो क्रीमत देकर भी इस अधिकार को पाने का वे निश्चय कर चुके हों, तो क्या यह उनका कर्तव्य नहीं है कि वे स्त्रियों को उन कुरीतियों के बन्धन से मुक्त करें, जो उनके सर्वाङ्गीण विकास में बाधा डालता है और जिसे वे स्वयम्, अगर चाहें, भली-भाँति कर सकते हैं। हमारे कवियों, सन्तों और ऋषियों ने बार-बार इसी बात पर ज़ोर दिया है—इसी का गुण-गान किया है। स्वामी विवेकानन्द ने एक जगह कहा है कि—जो राष्ट्र या जो जनता स्त्रियों का सम्मान नहीं करती, वह न कभी महान् हुई है, न भविष्य में होगी!’

‘आपकी सन्तान जिस बदतर हालत में है, उसकी ख़ास वजह यह है कि आप शक्ति की इन सजीव प्रतिमाओं के प्रति ज़रा भी आदर-भाव नहीं रखते। जो स्त्रियाँ जगन्माता की साक्षात् मूर्तियाँ हैं, अगर आप उनका उद्धार नहीं करते हैं, तो बाद रखिए कि आपके उद्धार का कोई दूसरा मार्ग है ही नहीं। तामिल प्रान्त के प्रतिभाशाली स्वर्गीय कवि भारती के विचार भी इन्हीं भावनाओं से गूँज रहे हैं। अतएव आशा है, आप अपने प्रवासों में पुरुषों को स्वातन्त्र्य का यह सीधा और अच्छा मार्ग ग्रहण करने का उपदेश देने की कृपा करेंगे।’

डॉक्टर मुथुलक्ष्मी को पूरा-पूरा अधिकार है कि वह महासभा वालों से इस ज़िम्मेदारी को उठा लेने की आशा रखें। बहुतेरे महासभावादी इस ओर व्यक्तिगत या सामुदायिक प्रयत्न कर भी रहे हैं और अच्छे उझ से, बड़े पैमाने पर कर रहे हैं। लेकिन इस बुराई की जड़, ऊपर से देखने में जितनी दिखाई देती है, उससे कहीं ज़्यादा गहरी है। इसमें अकेले स्त्री-शिक्षा का ही दोष नहीं है, हमारी सारी शिक्षा-प्रणाली में ही सड़न घुस गई है। किसी एकाध रीति-रिवाज को दोष देना ही काफ़ी नहीं है। जिस कुरीति को दूर करने की ज़रूरत दीपक के समान स्पष्ट है, उसके विरुद्ध खड़े होने, सुद्धोषणा करने से जो जड़ता हमें रोकती है, मना करती है, वह जड़ता ही हमारी बड़ी से बड़ी बैरिन है। उक्त पत्र में जो दोष गिनाए गए हैं, वे सिर्फ मध्यम-श्रेणी के लोगों

में, यानी नगर-निवासियों में—भारत के करोड़ों निवासियों में से मुश्किल से १५ फी सदी लोगों में—है। देहात में बसने वाली जनता में न बाल-विवाह है, न विधवा-विवाह का निषेध है। यह सच है कि उनके विकास में बाधक होने वाली दूसरी बुराइयाँ उनमें जरूर हैं। जड़ता तो दोनों में एक सी है। वास्तविक आवश्यकता तो यह है कि देश की शिक्षा-प्रणाली में सम्पूर्णतः कायापलट कर दी जाय और एक ऐसी शिक्षा-प्रणाली तैयार की जाय, जो करोड़ों की संख्या में बसने वाली प्रजा के लिए अनुकूल हो। जिस प्रणाली में बड़ी उम्र के मनुष्यों की तालीम को बालकों की तालीम के समान ही महत्व नहीं दिया गया है, वह प्रणाली निरर्थक कही जा सकती है। और जिस प्रणाली में देश-भाषाओं को उनका जन्म-जात अग्रस्थान नहीं मिला हो, कहना चाहिए कि उसने इस समस्या को छुआ तक नहीं है। यह काम हमें आज-कल के शिक्षित-वर्ग की मदद द्वारा ही करना है, फिर भले ही यह वर्ग चाहे जैसा क्या न हो। अतएव बड़े पैमाने पर सुधार करने के पहले शिक्षित-वर्ग की मनोदशा के बदलने को जरूरत है। और मैं डॉक्टर मुथुलक्ष्मी का कह देना चाहता हूँ कि भारत में जो थोड़ी-बहुत पढ़ी-लिखी बहिन इस समय हैं, उन्हें पाश्चात्य सभ्यता की चोटी से भारतवर्ष के मैदानों में उतर आना पड़ेगा। पुरुषों ने स्त्रियों की जो उपेक्षा की है, उनका जो वुरूपयोंग किया है, उसके लिए उन्हें दोष देना जरूरी है, मगर सुधार का रचनात्मक कार्य तो उन्हीं बहिनों को करना पड़ेगा, जो भ्रम का त्याग चुकी हैं और जिन्हें इस दुर्गति का झ्याल हो आया है। आप स्त्रियों की आज़ादी, उनके उद्धार का प्रश्न लीजिए; देश की स्वतन्त्रता, अस्पृश्यता-निवारण और जनता की माली हालत के सुधार आदि किसी सवाल को उठाइए; आखिर ये सब एक सवाल में मिल जाते हैं। और वह सवाल है ग्राम-प्रवेश। देहात में जाकर रहना और ग्राम्य-जीवन की पुनर्घटना करना, नहीं, सच पूछा जाय तो उसकी कायापलट करना!

*

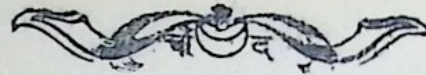
*

*

कलकत्ते के हेल्थ-ऑफिसर डॉक्टर फ्रेक ने सन् १९२३ की वार्षिक रिपोर्ट में बताया था कि १५ से २० वर्ष की अवस्था की लड़कियाँ यक्ष्मा-रोग से लड़कों की अपेक्षा

प षे गुना अधिक मरती हैं। उनका कहना है कि लड़कियाँ पदों की ज़ेद में हवा न मिलने से मर जाती हैं। डॉक्टर फ्रेक की इस रिपोर्ट पर 'मॉडर्न रिव्यू' ने लिखा था—“डॉक्टर फ्रेक ने कोई नई बात नहीं कही है। आप उनसैकड़ों में से एक हैं, जो ऐसा ही अरण्य-रोदन करते हैं और जिनकी सच्चाई की धर्म और परमात्मा के पवित्र नाम पर अवहेलना की जाती है! यद्यपि भारत में ऐसे आदमी कम मिलेंगे जो किसी भलाई, सच्चाई, या आदर्श के लिए अपने जीवन की आहुति दे सकें, किन्तु उन लोगों की कुछ कमी नहीं है, जो कि बेहूदा रुढ़ि और व्यर्थ के रिवाजों को बनाए रखने में सदा आगे रहते हैं। लोगों से कहिए कि आग्रो मिल कर देश को सुखी करें, और समृद्ध बनावें।.....ऐसा यत्न करें जिससे देश में छोटी आयु के विवाह न हों, बाल-विधवा न हों, मनुष्य अछूत न रहें, परमात्मा से रहित केवल ईंट-पत्थर और मिट्टी के मन्दिर न हों, किसी के प्रति अन्याय, अत्याचार न हो, देश में वे बुराइयाँ न रहें, जिनसे राम और अशोक की भूमि वारन हेस्टिंग्स की भूमि बन गई है। इसके उत्तर में लोग मज़ाक करने लगेंगे और वक्ता को अकेला छोड़ देंगे। हाँ, यदि अपने पूर्वजों के नाम से कोई बात कही जाय, तो लोग आँखें मूँद कर व दिमाग को ताला लगा कर पीछे हो लगे और जहाँ कहेंगे, चल देंगे। समय के साथ किए गए इसी असहयोग ने, और हमेशा पीछे की ओर देखने की इसी वृत्ति ने, हम भारतीयों को उन्नति की दौड़ में पछाड़ दिया है। आश्चर्य नहीं, अस्पताल के चौर-फाड़ के कमरों की सफाई भी गाय के गोबर और मूत्र से करना ही ये लोग पसन्द करें.....।”

‘मॉडर्न रिव्यू’ के इस कथन को कौन सुनेगा? प्यारी माताओं और बहिनो! ये मर्द कहते हैं कि तुम स्वयं पदों को छोड़ना नहीं चाहती हो—क्या यह सच है? तुम किस अपराध में जन्म-जैद भुगत रही हो? किस पाप के बदले ज़बान रहते गँगी बनी हो? उठो, तुम देश के बच्चों की माँ हो। देश चाहता है तुम नाहर बच्चे पैदा करो, देश को नाहर बच्चों की जरूरत है। तुम इस पदों को स्वयं धीर कर फेंक दो—अपना अधिकार स्वयं प्राप्त करो। नया जीवन, नया रूप, नई भावना लेकर—ओ मारवाड़ की माताओं! तुम फिर उसी रूप में खड़ी हो जाओ, जिस रूप में तुमने प्रतापी मुग़ल-साम्राज्य के



घाब खाने के लिए अपने बच्चों की छातियों की दीवार बनाई थी !!!

#

#

#

वैवाहिक कुरीतियाँ

वाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और कन्या-विक्रय आदि ऐसे दोष हैं जो जगत्-विलयात हैं—किन्तु मारवाड़ी-समाज में कुछ ऐसी कुरीतियाँ विवाह-सम्बन्धी और भी हैं, जिनका पता शायद संसार को नहीं है। यह तो स्पष्ट है कि जहाँ मूर्खता, स्वार्थ, अन्ध-परम्परा और रूढ़ियों की दासता होती है, वहाँ जो कुछ अनर्थ न हो, वह थोड़ा है। यद्यपि ये बातें पाठकों को विनोद-जैसी प्रतीत होंगी, पर वास्तव में हैं लज्जा के योग्य। सुनिष्ट — विवाह के पहले १५-२० दिन तक वर-कन्या अपने-अपने घर घोड़े पर चढ़ कर नगर-परिक्रमा बाजे-गाजे के साथ करते हैं। आगे-आगे वर या कन्या (अपने-अपने घर) घोड़े पर या अन्य वाहन पर सवार होते हैं, पीछे-पीछे स्त्रियाँ गीत गाती चलती हैं। गैस के हण्डों की रोशनी, अङ्गरेजी बाजा आदि साथ रहता है। इस अनावश्यक और भद्दी रिवाज में सबसे अधिक दोष तो फ़ज़लख़र्ची का है। साथ ही स्त्रियों को व्यर्थ में जो नगर-प्रदक्षिणा करनी पड़ती है उसको तो क्या कहें !

प्रायः विवाह बिलकुल अवैदिक रीति से होते हैं। अधिकांश में पुरोहित 'पढ़-पठ्यर' होते हैं—और वे भिन्न-भिन्न प्रकार के नाज तथा अन्य पदार्थ, रङ्ग-विरङ्गी मिट्टी की हाँडियों में भुर कर रख देते हैं। उनके नाम भिन्न-भिन्न देवताओं पर रखे जाते हैं। अबोध बालिका को वस्त्रों में लपेट कर और वर को सिर के ऊपर एक ताज़िया (?) रख कर तथा मुख पर घोड़े के जैसा तोवड़ा लटका कर, बैठाया जाता है। वर की अन्य पोशाक भी किसी ज़नख़े-जैसी विचित्र, रङ्गीन, गोटा लगी हुई होती है। हल्दी-रोली से उसका मुँह लीप-पोत कर बाक़ी कसर और पूरी कर दी जाती है। उन कल्पित देवताओं के सम्मुख वर-कन्या को हाथ में हाथ देकर बैठा देते हैं। हाथ में हाथ देने की पद्धति में भी विचित्रता है। मेंहदी गीली करके उस पर दोनों का हाथ जमा देते हैं। फिर पुरोहित बड़-

बड़ाते हैं, और बीच-बीच में चिल्लाते हैं—'कन्यादान हो रहा है साहब !' लोग, इष्ट-मित्र, स्त्री-पुरुष यथासामर्थ्य दान करते हैं। कभी-कभी तो यह क्रिया घण्टों में समाप्त होती है। सङ्कोचशील बेचारी कन्याएँ दम घोट कर, बड़ी कठिनाई से बैठी रहती हैं। लुच्चे साथियों की सलाह से वर, कन्या के हाथ को कभी-कभी इतने ज़ोर से दबा देता है कि ग़रीब तलमला उठती है। शाख़, चचा, गोत्रोच्चार, दान-दक्षिणा आदि की ऐसी भड़-भड़ पड़ जाती है कि कुछ समझ में नहीं आता। भीख माँगने वाले स्त्री-पुरुष, जिनमें ब्राह्मणों की अधिकता रहती है, और जो पास-पड़ोस के गाँवों से आ इकट्ठे होते हैं, बड़ा भारी हो-हल्ला मचाते रहते हैं। प्रायः विवाह आधी रात के बाद शुरू होता है। अकारण ही इतनी देर कर दी जाती है। चौधरी, पञ्च बड़-बड़ कर बातें बनाते हैं—वर-कन्या के पिता भीगी बिड़ी या अपराधी की तरह चुप बैठे रहते हैं !

सबसे अनेखी बात तो यह होती है कि बारात को भोजन कराना या आतिथ्य करना बेटी वाला अपना कर्तव्य नहीं समझता। बेटे वाले को बारात के भोजन का स्वयम् प्रबन्ध करना पड़ता है। बारात प्रायः व्यर्थ कई-कई दिन तक पड़ी रहती है। बिदा करने के लिए झुशामंद होती रहती है—तब कहीं बिदा की जाती है। जहाँ एक तरफ़ कन्या का पिता बारात का आतिथ्य करना अपना कर्तव्य नहीं समझता, वहाँ उसे और बेचारे बेटे वाले को भी तमाम ग्राम की विरादरी को एक या दो भोज देने पड़ते हैं। इन भोजों में ५-५ हजार स्त्री-पुरुष तक इकट्ठे हो जाते हैं। जिस दिन यह भोज होता है फिर उस दिन कोई अपने घर चूल्हा नहीं जलाता।

विवाह का यह तो उद्देश्य ही नहीं है कि वर-कन्या समान गुण, कर्म तथा स्वभाव वाले हों—वहाँ यह देखा जाता है कि अच्छा घराना है, अच्छा दान-दहेज आवेगा, जाति में इज़्ज़त बढ़ जायगी। बालक-बालिकाओं की जन्म-पत्रियाँ अलबत्ता बड़ी गम्भीरता से 'जोशी बाबा' के द्वारा मिलवा ली जाती हैं। बाबा जी मीन-सेख-मकर-कुम्भ - ऊँगली पर गिन कर, मेल मिला कर 'घणो चोख्यो छै' कह देते हैं। उसी आधार पर विवाह हो जाता है। वर-कन्या को देखने की ज़रूरत शायद ही पड़ती है। कन्या दिखाना तो कन्या के पिता के लिए अतिशय अपमानजनक बात है। धनी घर के बालक के लिए धनी कन्या

खोजी जायगी—गुण से कोई वास्ता नहीं। हमारे एक मित्र, जो अजमेर-निवासी हैं, युवक हैं और विचारशील प्रतीत होते थे—घरों मग्न चाटते थे। जब उनकी पत्नी की अपमृत्यु गृह-कलह के कारण हुई तो हमने सलाह दी कि अब अधिक नहीं तो योग्य कन्या तो तलाश करो, जिससे जीवन सुखी हो। फलतः यह कार्य हमें ही सौंपा गया। एक योग्य सुशिक्षिता विदुषी कन्या मिल भी गई। देखने गए—कन्या सामने आ बैठी। पर वह सम्बन्ध न हो सका। कारण, लड़की का घर घर के योग्य धनी घर न था। वे कहीं गाँव से एक उजड़ बच्ची को बाँध लाए, एक ही वर्ष में उसे अन्न-क्षय हो गया और चल बसी! सेठ जी फिर तीसरी ले आए! हाल ही में हमने सुना कि उन्होंने अपनी सुशील पुत्री का व्याह, जिसकी आयु १५ वर्ष की है, ४० वर्ष के तीजुआ-चपरगाट के साथ कर दिया। जब हमने पूछा तो निलम्बता से अपनी कठिनाइयों के क्रिसे गा दिए। ऐसा घर कहाँ मिलेगा—यह सबका निचोड़ था।

गरीब लड़के का व्याह मारवाड़ में एक भयानक समस्या है। चार-पाँच हजार रुप बिना विवाह कैसा? कन्या के घर का पानी पीने में इन लुच्चे पिताओं का धर्म धिगड़ता है। पर हजारों की थैली चुपचाप गटक जाते हैं! मारवाड़ में जहाँ धनी बूढ़े दूल्हा बने फिरते हैं, वहाँ निर्धन युवक कारे बहुत बड़ी संख्या में देले जाते हैं!!

प्रथम तो गरीब के यहाँ सम्बन्ध होता ही नहीं। यदि हो गया और कहीं वह एकाएक गरीब हो गया तो आक्रत है। विवाह तो उसे उसी शान से करना ही पड़ेगा—चाहे शरीर का मांस बेच कर करे। ज़रा किसी नेगाचार में कमी हुई—दान-दायजा कम हुआ—कपड़े-लत्ते पसन्द के न दिए—तो उसके खूब ही धुरें ठड़ाए जाते हैं!

सगाई वास्तव में वाग्दान का रूप है। नियमानुसार तो वचन देने के सिवाय इसमें कुछ और आडम्बर न होना चाहिए। पर सगाई होते ही वर-पत्न वाले कन्या-पक्ष को अपना कर्जदार समझते हैं—हर बहाने कुछ भाँसने की कमीनी तक में लगे रहते हैं। फिर भी सदैव कृतज्ञता और बुराई! विवाह और सगाई के बीच में जितना अधिक समय रहता है, उतना ही अधिक खर्च समझना चाहिए।

सगाई की रस्म इस प्रकार है—प्रथम 'मुद्दा'—जिसमें

कोई खर्च नहीं, फिर 'टीका'—इसके साथ बहुत सा धन, वस्त्र, सामान दिया जाता है। राजा-महाराजाओं के यहाँ तो टीके का खर्च लाख, दो लाख तक पहुँचता है, जो प्रथम ही तय कर लिया जाता है। सगाई हुई कि लेन-देन शुरू—ज़रा कहीं कमी हुई कि "कचोला" निकाला गया।

सगाई के बाद लड़की वाला लड़के वाले के पास 'हरा-भरा' भेजता है। इसमें फटादि होते हैं। पहले इसमें दो-चार आने के साग-पात होते थे, पर अब तो सैकड़ों रुप के फल दिखो-कलकते से मँगाए जाते हैं और साथ ही नगद-नारायण भी होते हैं। इसके बाद 'आँगी-मेवा' का वेढव मामला है। इस सम्बन्ध 'आँगी' में २-४ हजार तक खर्च हो जाता है। सैकड़ों फालतू वस्त्र, आभूषण, खिलौने, जो बस्तों में पड़े सड़ते हैं, इस अवसर पर दिए जाते हैं। यह काम नाक की रत्ता के भय से सदा हैसियत से बड़ कर किया जाता है। नहीं तो बेचारे की नाक भट से कट कर नीचे आ पड़े! बेटी वाला गहनों का ठेका तो साफ़-साफ़ शब्दों में ठहरा लेता है। इन गहनों को वह कल्प-वृक्ष समझता है। बचपन से इस गहने के प्रेम ने मारवाड़ी-स्त्रियों को गहने का अत्यन्त दास बना दिया है!!

सम्बन्ध होने पर दोनों समधी एक दूसरे के शत्रु हो जाते हैं! यदि प्रथम वे मित्र थे—खूब मिलते-जुलते थे—तो अब मिलना-जुलना कतई बन्द; क्योंकि मिलने का मूल्य देना-लेना पड़ता है। एक गाँव, एक मुहल्ले में रहने पर भी कभी-कभी जब मिलते हैं, फ़ीस चुकानी पड़ती है। यदि फ़ीस के रुप जेब में नहीं, तो मुँह फेर कर चल दंगे—'जय गोपाल जी की' भी न करेंगे। यदि समधी की मिलनी न हो तो वह समधी से बात न करेगा—उठ कर चल देगा। विवाह के अवसर को छोड़ कर—न विवाह से पहले और न पीछे—बेटे का बाप बेटी के पिता के घर भोजन नहीं कर सकता। लड़की के सम्बन्धी मिलने पर बालक का पन्ना भरते हैं। बारम्बार यह रीति होती रहती है।

अब विवाह का श्रीगणेश होता है। प्रथम विवाह 'हाथ लेना' की रीति से कार्य शुरू होता है। इसमें विवाह-खर्च का खाता खोल दिया जाता है। फिर लड़के-लड़की को हलद्वान चढ़ाते हैं—झैर, यह तो भारत-ज्यापिनी

रीति है और इसका सम्बन्ध वैद्यक-शास्त्र से भी है। पर इस अवसर पर मारवाड़ियों में कुछ कुरीतियाँ भी होती हैं। वर को हँसली पहनाई जाती है और उसके हाथ में लोहे का छद्दा पहनाया जाता है, जो भूत-प्रेत से उसकी रक्षा करता है। प्रायः विवाह से प्रथम वर का पिता लड्डू बनवा कर नगर में बटवाता है। तराजू लेकर लड्डू तोलते समय का दृश्य देखने योग्य होता है; क्योंकि यदि किसी के पास कम पहुँचा तो वह बड़ी अकड़ के साथ उसकी चर्चा करेगा। यही काम कन्या वालों को भी करना पड़ता है!

प्रायः ऐसा होता है कि धनी ज़्यादा दिन का हलद-वान करते हैं—गरीब कम दिन का। इसका कारण खर्च की आक्रांति है। धनियों के घर उन दिनों उनके सगे-सम्बन्धी भोजन करते हैं। और भी बहुत से भोजन-भट्ट इकट्ठे हो जाते हैं। इस बीच में कोई-कोई वेश्या का नाच, सिनेमा, नाटक आदि करवाते हैं, (अब यह प्रथा कम हो रही है) जिसमें भयानक फ़ज़ूल-खर्ची होती है!

वर की वेश-भूषा का ज़िक्र तो हम कर ही चुके हैं। 'काजल' प्रायः भाभियाँ दिया करती हैं, जिसमें प्रायः अश्लील व्यवहार हो जाते हैं। भाभियाँ प्रायः निर्लज्ज-हास्य के साथ देवर के काजल लगाती हैं। देवर उससे भी ज़्यादा निर्लज्ज ठग से उसे भाभी के घाघरे से पोंछने का प्रयत्न करता है। अनेक स्थानों पर वर को हाथी-घोड़े पर चढ़ाने से प्रथम गधे पर चढ़ाने का नियम है, पर अब प्रायः गधे को लात से दूर देते हैं। वारात को अधिक से अधिक संख्या में ले चलने के लिए बड़ी चेष्टा की जाती है। साथ में वागवहारी, आतशबाज़ी की वाहियात फ़ज़ूल-खर्ची का ज़िक्र करना व्यर्थ है।

उधर कन्या के घर पर इस तरह विवाह होता है, पीछे से वर के घर पर छियाँ वारात बनातीं, वर-बधू बनातीं, नाचतीं-गातीं और इतने अश्लील अभिनय करती हैं कि थू-थू! सास, बहू, बेटी, पोती, वहाँ सब एक रङ्ग में ग़र्ज़ होती हैं। 'नेगाचारों का वर्णन' तथा 'पाण्डे जी के वाक्य' आदि को हम नहीं समझ सकते, कैसे कोई भले घर की स्त्री कानों से सुन सकती है?

जाति-भोज का ज़िक्र प्रथम कर चुके हैं। वह केवल कन्या के घर ही नहीं होता, लड़के वाले को भी करना होता है। विवाह के बाद 'सिरगैयी' का नग्धर आता है।

इसमें एक प्रकार का जुआ होता है—जो निन्दनीय है। प्रायः बधू का जूता वर से पुजवाया जाता है।

अन्त में 'पातल-पल्ला' की नौबत आती है। जितने कमीने, जितने वर-पक्ष के जानकार होते हैं, सब पत्तलों के लेनदार—पल्ला बिछा-बिछा कर लड़ते हैं। यह दृश्य घृणित और तुच्छ प्रतीत होता है। फिर दुशाला, छत्री, कटोरा, परात, थान दिए जाते हैं। कहाँ तक कहें, फ़ज़ूल-खर्ची और मूर्खता की हद है!

यह हुई विवाह की बात। अब प्रथम बार ससुराल जाना भी मारवाड़ी-समाज में एक बड़ी आक्रांति की बात है। रीति-रस्म और हँसी-मज़ाक सबने मिल कर इसे भयानक कुरीति का रूप दे दिया है। प्रथम बार जाने को मुकलावा या गौता कहते हैं। उसमें कोई बड़ा आदमी नहीं जाता है। परन्तु अपनी इज़्ज़त (?) के अनुसार पाँच-सात जोशी, नाई, बाले, भाई, भनीजे साथ जाते हैं। यह प्रसङ्ग इतने महत्व का है कि इसकी गाइड-पुस्तकें भी तैयार हो गई हैं। एक पुस्तक में लिखा है :—

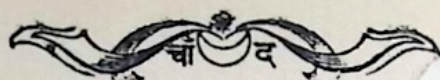
"ससुराल में जमाई को सभ्यता से रहना चाहिए। बच्चों के मुँह लग कर ज़्यादा धूप मचाने से जमाई उल्लू (?) समझा जाता है। दो-चार आदमी पास बैठें तो घर, विध या रोज़गार की बात करनी चाहिए। ज़्यादा अश्लील (!) बातों से आदमी को क्रोध जाता है। भाँग, गाँजा, माजूम बहुत कम खाना चाहिए। चार दिन से ज़्यादा वहाँ न ठहरना चाहिए, क्योंकि इससे अधिक पूर्ण सत्कार हो नहीं सकता। साथ में इलायची आदि ले जाना चाहिए—ये औरतों को (साजी आदि को) देना पड़ती हैं। विदा होते समय नाइन, रसोइया आदि को कुछ—चार-आठ आना—देना चाहिए। रङ्ग-गुलाल के लिए गुलाब-जल ले जाना चाहिए। लुगाइयों का जहाँ आना-जाना हो वहाँ बेधड़क नहीं सोना चाहिए; क्योंकि लुगाई हँसी में काजल की टीकी लगा देती हैं। जब बैठे तो आगे-पीछे ध्यान रहे कि लड़कियाँ घाघरा-चूनरी ऊपर न डाल दें, या कपड़े पलँग से न बाँध दें।"

एक ग्रन्थकार अपने ग्रन्थ-रत्न में इस प्रकार फ़र्माते हैं :—

१—जवाई सासरे जावे हैं जद पेत्ती पोत फेराँ की बख़्त तोरण पर चींद जावे जद सब नेग सासु जी करके



वीकानेर का राजवंश



रीति है और इसका सम्बन्ध वैद्यक-शास्त्र से भी है। पर इस अवसर पर मारवाड़ियों में कुछ कुरीतियाँ भी होती हैं। वर को हँसली पहनाई जाती है और उसके हाथ में लोहे का छल्ला पहनाया जाता है, जो भूत-प्रेत से उसकी रक्षा करता है। प्रायः विवाह से प्रथम वर का पिता लड्डू बनवा कर नगर में बटवाता है। तराजू लेकर लड्डू तोलते समय का दृश्य देखने योग्य होता है; क्योंकि यदि किसी के पास कम पहुँचा तो वह बड़ी अकड़ के साथ उसकी चर्चा करेगा। यही काम कन्या वालों को भी करना पड़ता है!

प्रायः ऐसा होता है कि धनी ज्यादा दिन का हल्द-वान करते हैं—गरीब कम दिन का। इसका कारण खर्च की आक्रांति है। धनियों के घर उन दिनों उनके सगे-सम्बन्धी भोजन करते हैं। और भी बहुत से भोजन-भट्ट इकट्ठे हो जाते हैं। इस बीच में कोई-कोई वेश्या का नाच, सिनेमा, नाटक आदि करवाते हैं, (अब यह प्रथा कम हो रही है) जिसमें भयानक ऋजूलखर्ची होती है!

वर की वेश-भूषा का जिक्र तो हम कर ही चुके हैं। 'काजल' प्रायः भाभियाँ दिया करती हैं, जिसमें प्रायः अश्लील व्यवहार हा जाता है। भाभियाँ प्रायः निर्लज्ज-हास्य के साथ देवर के काजल लगाती हैं। देवर उससे भी ज्यादा निर्लज्ज ढङ्ग से उसे भाभी के घाघरे से पोंछने का प्रयत्न करता है। अनेक स्थानों पर वर को हाथी-घोड़े पर चढ़ाने से प्रथम गधे पर चढ़ाने का नियम है, पर अब प्रायः गधे को लात से छू देते हैं। बारात को अधिक से अधिक संख्या में ले चलने के लिए बड़ी चेष्टा की जाती है। साथ में बागवहारी, आतशबाज़ी की बाहियात ऋजूलखर्ची का जिक्र करना व्यर्थ है।

उधर कन्या के घर पर इस तरह विवाह होता है, पीछे से वर के घर पर छियाँ बारात बनातीं, वर-वधू बनातीं, नाचतीं-गातीं और इतने अश्लील अभिनय करती हैं कि थू-थू! सास, बहू, बेटा, पोती, वहाँ सब एक रङ्ग में शर्क होती हैं। 'नेगाचारों का वर्णन' तथा 'पाखंडे जी के वाक्य' आदि को हम नहीं समझ सकते, कैसे कोई भले घर की स्त्री कानों से सुन सकती है?

जाति-भोज का जिक्र प्रथम कर चुके हैं। वह केवल कन्या के घर ही नहीं होता, लड़के वाले को भी करना होता है। विवाह के बाद 'सिरमैयी' का नम्बर आता है।

इसमें एक प्रकार का जुआ प्रायः वधू का जूता वर से पु

अन्त में 'पातल-पल्ल कमीने, जितने वर-पत्न के लेनदार—पल्ला बिछा घृणित और तुच्छ प्रती कटोरा, परात, थान दिए खर्ची और मूर्खता की ह यह हुई विवाह की

जाना भी मारवाड़ी-समा है। रीति-रस्म और हँस भयानक कुरीति का रूप; मुकलावा या गौना कहते नहीं जाता है। परन्तु अब पाँच-सात जोशी, ताई, हैं। यह प्रसङ्ग इतने महत्व भी तैयार हो गई हैं। एक

"ससुराल में जमाई को बच्चों के मुँह लग कर झु उल्लू (?) समझा जाता है हों तो घर, विधवा या रोज़गात ज्यादा अश्लील (!) बातों से भाँग, गाँजा, माजूम बहुत चार दिन से ज्यादा वहाँ न इससे अधिक पूर्ण सरकार हो नह इजायची आदि ले जाना चाहिए—ये आदि को) देना पड़ती हैं। विदा रसोइया आदि को कुछ—चार-आठ आ रङ्ग-गुलाल के लिए गुलाब-जल लुगाइयों का जहाँ आना-जाना हो सोना चाहिए; क्योंकि लुगाई हँसी टीकी लगा देती हैं। जब बैठे तो आ कि लड़कियाँ घाघरा-चूनरी ऊपर न पलँग से न बाँध दें।"

एक ग्रन्थकार अपने ग्रन्थ-रत्न में हैं :—

१—जवाई सासरे जावे हैं जद न बखत तोरण पर बाँध जावे जद सब ने



वीकानेर का राजवंश

क्रान्तिकारी



पत्रिका

का

कनौजिया-अड्डा

आगामी मई का 'चाँद'—पाठकों को जान कर प्रसन्नता होगी 'कनौजिया-अड्डा' के नाम से एक बृहन् विशेषाङ्क प्रकाशित होगा। 'तीन कनौजिया तेरह चूल्हा' वाली लोकोक्ति का प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहते हैं तो शीघ्र ही ग्राहकों की श्रेणी में नाम लिखा लीजिए, नहीं तो पछताना पड़ेगा। यह विशेषाङ्क नहीं,

बम का गोला

होगा, जो समाज के वक्षस्थल पर चोट करेगा, कनौजियों के गौरव की उन्हें याद दिलाएगा, उनमें प्रचलित सामाजिक रूढ़ियों के मस्तक पर पाद-प्रहार कर, उन्हें सर्वनाश की ज्वाला से—जो उन्हें एक बार ही निगल कर प्रकृति की आज्ञा का पालन करना चाहती है—उन्हें सचेत कर अपने औचित्य का पालन करेगा। आप इस अड्डा में विधवाओं का करुण-क्रन्दन तथा नवयुवतियों की मूक-वेदना सुनेंगे—इसे स्मरण रखिए। विजयानन्द (दुबे जी) ने अभी से इस बृहन् विशेषाङ्क के लिए चिट्ठी लिख कर दिल के फफोले फोड़ने का निश्चय कर लिया है! आप जानते हैं इस अड्डा का सम्पादन कौन महाशय करेंगे

?

हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक

पं० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक

यही इस अड्डा की सफलता का एक तुच्छ प्रमाण है। इस महत्वपूर्ण अड्डा के लिए लेख तथा चित्रादि जो कुछ भी भेजना चाहें, इस पते से भेजने की कृपा करें :—

श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक

बङ्गाली मोहल, कानपुर

काजल थाँजने की बखत नाक खींच लेवे हैं सो ध्यान राखजो।

२—प्याव हुआ फेर दो-तीन दिना पछे मैरु भोपाल दई-देवता पुजवाने जावे जद लुगायाँ अवसर पाकर केवें के ये मैरु जी हैं धाँक देवो—नारेल चढ़ावो—सो खूब देख-समझ कर धोक दीजो, क्योंकि लुगायाँ पगरखी पर कपड़ा लपेट सिंदूर लगा कर धोको देवे छें।

३—ससुराल में जीमवाने जद जावो जदाँ गादी के नीचे देख कर बैठजो, क्योंकि लुगायाँ गादी के नीचे पापड़ रख दिया करे छें।

४—याद राखजो; लुगायाँ खाणे-पीणे की जिनसों में कई रकम की चालाखी करें छें, सो बहुत हुसियारी राखजो।

५—जैजाई जाय जदाँ सालियाँ पाणी प्यावें तो पाणी में निमक नहाक देवें सो पाणी पीती बखत थोड़ो पानी जीभ पर गेर कर देखजो और फेर पीजो।

६—ध्यान राखजो जणा थे जीमवाने पाटा पर बैठो तो पहला निगे कर लीज, कारण लुगायाँ पाटा के नीचे सूत लपेट दिया करें छें।

७—पीछे थे जीमन लागो जद पुड़ी तथा बड़ा देख कर खाजो। भूज कर गढ़बड़ में खावोला तो हाँसी करा-लेसो, क्योंकि उनमें कपास मिला दिया करें छें।

... ..

ससुराल जाते ही जमाई बेचारे को कितने ही नेगाचार करने पड़ते हैं। नाई या नौकर एक थाली में जल-दूब लेकर पैर धोता है। उस थाली में टैक्स डालना पड़ता है। दो-चार सेर लड्डू-बतारो, बच्चों के कपड़े और कुछ नक़्क़द रुपए भीतर भेजने पड़ते हैं। इसे 'थालोड़ी' कहते हैं। ससुराल के मुख्य बालक की गोद फल और नक़्क़दी से भरी जाती है। अन्य बच्चों को भी एक-दो रुपए बाँटने पड़ते हैं।

भोजन करने पर थाली में एक-दो रुपए छोड़ने पड़ते हैं। खियाँ जमाई को घेर कर बैठती हैं और लड्डू माँगती हैं। जमाई लड्डू फेंक-फेंक कर मारता है। छोटी सालियाँ जूतियाँ छिपा देती हैं—बिना टैक्स लिए नहीं देतीं।

इस अवसर के लिए धोखे के खाद्य पदार्थ इस प्रकार बनाए जाते हैं :—

रुई की पूरी—आटे की लोई में रुई भर कर बेल कर सेंक ली जाती है। ऊपर से कुछ पता नहीं लगता—तोड़ने पर ही पता लगता है।

रायता—चकरी की मँगनी को खाँड़ में पाग लिया जाता है—फिर गाढ़े दही में सब मसाले मिला कर उनका रायता तैयार किया जाता है।

गोबर के दही-चढ़े—खूँग या उर्द की पीठी को अच्छी तरह पीस कर बीच में गोबर की टिकिया दवा कर घी या तेल में बड़े सेंक लेते हैं। उनको पानी में भिगो कर दही में डाल देते हैं। मसाला तेज़ डालते हैं जिससे पता न लगे।

मेंहदी की चटनी—हरी मेंहदी और गोबर में हरा धनिया, हरी मिर्च और मसाला डाल कर चटनी बनाते हैं।

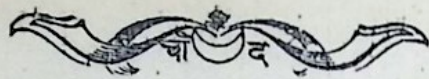
मँगनी का शाक—चकरी या ऊँट की मँगनी लेकर उन पर बेसन लपेट कर सेंक लेते हैं। फिर गरम पानी में भिगो कर घी में छोंक देते हैं। दही का भोल डाल कर गढ़े साग कह कर परतते हैं।

कागज़ के पापड़—पीले कागज़ के पापड़ गोल काट कर उन पर मँग का आटा वा मसाला मिला कर पानी में फेंट कर लेप कर देते हैं। पीछे उन्हें कड़ाई में तल लेते हैं। यह पहचाने नहीं जा सकते।

इसके सिवा भाँग का हलुआ, बिनोलों का साग, बबूल की चटनी आदि बहुत पदार्थ बनाए जाते हैं। पानी में नमक मिलाया जाता है, इलायची में रज़ भर दिया जाता है, और ऊपर बर्क लगा दिया जाता है, पान में भी हीराकसोस या रज़ डाल देते हैं। बीड़ियों में भी रज़ भर देते हैं।

इसी प्रकार के और भी बहुत से बेहूदे काम किए जाते हैं। इस अवसर पर अनेक पहेलियाँ, मुकरनियाँ, कहानियाँ, कूट-प्रश्नों आदि के करने का रिवाज पड़ गया है। ये चीज़ें अत्यन्त अरलील होती हैं—और खियाँ बेस-टके ये गन्दी चीज़ें कहती और पूछती हैं। नमूना सुन लीजिए :—

खियाँ कूट-प्रश्न पूछा करती हैं—“कँवर जी पेलवाई पोत (प्रथम बार) सासरे जाओ जद काँई मारो?” उत्तर—“तोरख।”



“थे (आप) पेजवाई पोत नीचा बैठो जद धरती पर काँई टेको ?” उत्तर—“दृष्टि ।”

“थारे आगाने और पीछाने काँई ?” उत्तर—“खियाँ ।”

“थारा बाप को लाँवो और माको चौड़ो के ?” उत्तर—“बाप को पेच (पगड़ी) माँ का घाघरा ।” इत्यादि-इत्यादि ।

इस बीच में गालियाँ भी गार्ई जाती हैं । बात तो बहुत क्रोश है, पर सुनानी तो पड़ेगी । गाली सुनिए :—
बोल्यो रे बोल्यो मा चौद गंडिया बोल्यो,
जीजी का यार बोल्यो, खरबूजा खाणाँ बोल्यो,
छोरा चोदी का बोल्यो, गाल्याँ का भूखा बोल्यो,
तने कुण कह्यो छे बोल्यो.....”

अब वर या उसके साथी खियों से प्रश्न करते हैं—
“याँका घाघरा में काँई ?”

“थारी आँग्या (चोली) में काँई ?” इत्यादि ।

मारवाड़ में ससुराल जाने पर वर-वधू रात्रि को एकत्र कर दिए जाते हैं । खियाँ बालिका को ले जाती हैं और द्वार बन्द करके बाहर बैठ कर दोहरे पड़ती हैं । उसका एक नमूना सुनिए :—

घातीका रणका नहीं, ना पैजन भनकार ।
म्हें थाने पूछा हे युगल, थामें कौन गँवार ॥

... ..
छोटी छूँजी बालमा, बड़ी होन द्यो मोय ।
नारङ्गी को फाँक ज्यूँ, चखूँ वगादूँ तोय ॥

... ..
कुच कठोर कर नरम है, प्यारे समझ मरोर ।
मोहि डर लागे कुचों का, निकस जाय ना फोर ॥

* * *

अब पहिलियाँ भी सुनिए, जो खियाँ वर के सामने कहती हैं :—

आई थी उम्मेद सँ, बैठी मोड़ा मोड़ ।
बैठी केई घाल दियो, ऊभी होय पपोल ॥

... ..
मूँधी सँ सीधी करी, दिया घसड़ा चार ।
अपनो काम निकाल के, ऊँधी दीनी मार ।

... ..

तले फोड़ी ऊपर फोड़ी, फोड़म-फोड़ मचाई है ।
घर का धनी सँ ना फूटी तो पीसा देर फुड़ाई है ।

... ..
आई थी घलाय के, जाऊँ हूँ कढ़ाय के ।
देखो टाँग उठाय के, काढ्यो थूक लगाय के ॥

* * *

खियाँ बारहखड़ी गाकर सुनाती हैं, उसका भी नमूना लीजिए :—

काली हाँड़ी जो जरी, जी में भरी गुलाल ।
मूरख के पाले पड़ी, कहे न काटे गाल ॥

... ..
खूँटी ऊपर जेवड़ी, टँगी-टँगी बल स्वाय ।
लानत ऐसे यार पर, जो आँगन से फिर जाय ॥

... ..
गागर ऊपर गागरी, गागर दुल-दुल जाय ।
कहजो म्हारा पीब ने, गोनों कर ले जाय ॥

मुकरनियों के भी एक-दो नमूने सुनिए :—
जब मैं ऊपर बैठूँ जाय,

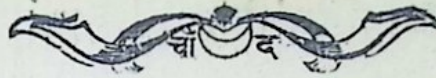
ढीलो करे हिलाय-हिलाय ।
लगे मचड़का ऊँला-सूँला,
क्यों सखि साजन—ना सखि भूला ॥

... ..
आप हले और मोहि हलावे,
बाको हलवो मोहि सुहावे ।
हाल-हूल कर होय निसह्वा,
ए सखि साजन—ना सखि पढ़ा ॥

... ..
मैं सूती मेरे ऊपर आयो,
आय उड़ादड़ खेल मचायो ।
टवका गेस्या भीजी देह,
ए सखि साजन—ना सखि मेह ॥

उमराव का प्रसिद्ध गीत, जो बड़े चाव से गाया जाता है, एक-दो मिसरे उसके भी सुनिए :—

उमराव थाकी सूरत म्हाने,
प्यारी लागे मोरी जान ।



बगल तो काचा भला,
पाका भला अनार ।
साजन तो पतला भला,
मोटा जाट गँवार ।
उमराव थारी लचकत चाल,
पियारी लागे मोरी जान ॥
सेज रमावो सायवाँ,
मोसुँ गरीणा पीव ।
थौं बिन एजी सायवाँ,
म्हारो पलक न लागे जीव ।
उमराव थारी चन्द्रवदनी,
हाजिर मोरी जान ।

... ..

कहाँ तक इस खुराक़ात को लिखा जाय । क्या हम मारवाड़ी-समाज से आशा करें कि ये कुरीतियाँ अति शीघ्र दूर होंगी ?

✽ ✽ ✽

विधवा-विवाह

विधवा-विवाह का प्रश्न यों तो समस्त भारत के लिए बड़े महत्व का और गम्भीर है, पर मारवाड़ियों के लिए यह दूसरी जाति वालों की अपेक्षा कहीं अधिक विचारणीय है । क्योंकि मारवाड़ी-समाज स्वभाव से ही अपरिवर्तनशील और रुढ़ियों का अन्ध-भक्त है, और वर्तमान युग में भी, जब कि सभी दूसरी जातियों में विधवा-विवाह की प्रथा न्यूनाधिक परिमाण में प्रचलित हो गई है, मारवाड़ी-जाति के मुखिया और उसका अधिकांश भाग इस परमोपयोगी सुधार का विरोध ही करता दिखाई देता है । दुर्भाग्यवश बाल और वृद्ध-विवाह की कुरीतियों के कारण बाल-विधवाओं की संख्या भी मारवाड़ी-जाति में, दूसरी जातियों की अपेक्षा कहीं अधिक है । विधवा-विवाह का रिवाज न होने के कारण इन गरीब विधवाओं को अनेक अनुचित और गुप्त उपायों का अवलम्बन करना पड़ता है, जिनकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं । अब हम विधवा-विवाह के गुण-दोष और औचित्य तथा अनौचित्य के सम्बन्ध में

कुछ विशेष रूप से विवेचन करना चाहते हैं; जिससे यह समस्या स्पष्ट हो जाय और मारवाड़ी भाई ही नहीं, वरन् हिन्दू-मात्र इस पर विवेकपूर्वक विचार करके इस सत्यानाशी और कलङ्कपूर्ण अन्याय से मुक्ति पा सकें ।

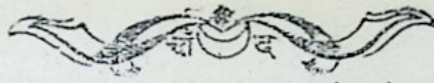
पाठक जानते ही हैं कि भारत में ढाई करोड़ से अधिक विधवाएँ हैं, जिनमें करीब १८ हजार तो ५ वर्ष से भी कम उम्र की हैं, और डेढ़ लाख २०-३५ वर्ष तक की जवान उम्र की हैं । इन सबकी परिस्थिति भिन्न-भिन्न प्रकार की है । प्रायः समस्त विधवाएँ घर के स्त्री-पुरुषों के सिर पर बोझ होकर रह रही हैं—घर के लोग और पड़ोसी तथा सम्बन्धी सब उनके प्रति निष्ठुर और अमानपूर्ण भाव रखते हैं । पति के मर जाने पर जहाँ अभागिनी लड़की घर दुःख में पड़ जाती है, वहाँ उल्टा उसे ही लोग तरह-तरह के कुवाच्य कहते हैं, और कठोर तानों से जजाते हैं—“इसी ने मेरे लाल को खा लिया ! यह ऐसी डायन आई ! इस अनैसी मनहूस का मुँह काला करो ! अब इस हथनी को छाती पर रख कर कौन जन्म भर खिजावेगा ! आठ को साठ करते कितने दिन लगेंगे ! यही न मर गई ! देखो, कैसा रँझपा चढ़ा है ! साँझनी बन गई है ! राँड़ होकर सिङ्गार-विहार करती है !” इत्यादि नाना प्रकार के हृदय-भेदी वाक्य हमने स्वयं भिन्न-भिन्न परिवारों में विधवाओं को अकारण सुनते सुना है । जिस घर में कोई विधवा होकर बैठ जाती है, उसका सच्चा सुख तो उसी समय नष्ट हो जाता है । लोगों के कलेजों पर ज़ह्रम हो जाता है, और उसे देख कर सब दुःखी रहते हैं । बहुधा ऐसी दशाओं में परस्पर ईर्ष्या, कलह भी उत्पन्न हो जाती हैं—तब तो मानों गृह-सुख ही मिट्टी में मिल गया । परन्तु इससे भी अधिक भयङ्कर एक बात होती है कि विधवाएँ—बहुधा दुर्व्यवहार से तज़ आकर, या प्रजोभनों में फँस कर, अथवा दुर्दम्य इन्द्रिय-वासनाओं के वश में होकर गुप्त-व्यभिचार कराती हैं—गर्भ गिराती हैं । धीवर, नाई, नौकर, सुसलमान या किसी भी नीच पुरुष के साथ भाग खड़ी होती हैं—जोकि उसे थोड़े दिन चूँच कर बाद में छोड़ देता है । तब उन्हें लाचार होकर बेरया बन कर या अतिशय निरुद्ध दशा में जीवन व्यतीत करना पड़ता है ।

मध्य-काल में विधवाओं को मृत-पति की चिता पर जीता जला देने की रीति हमारे देश में बहुत दिन तक

जारी रही। हिन्दू लोग उसे एक परम पवित्र कार्य कहते और मानते रहे। पर जिन यूरोपियन यात्रियों ने उस रोमाञ्चकारी दृश्य को देखा है, उन्होंने वर्णन किया है कि अपनी इच्छा से आग में जल मरने को बहुत कम स्त्रियों में धीरज और साहस होता था। अधिकांश स्त्रियाँ बलपूर्वक जलाई जाती थीं। कुछ निर्दयी ब्राह्मण उन्हें शमशान तक पकड़ लाते थे, उनको बलपूर्वक शृङ्गार कराया जाता था, कोई-कोई स्त्री छुड़ा कर भागने की चेष्टा करती थी, कोई रोती-चिल्लाती थी, कोई चिता को जलती देख कर बेहोश हो जाती थी—उन्हें बलपूर्वक चिता पर बैठा देते थे और फिर ज़ोर-ज़ोर से ढोल पीत्ते और चिल्लाते थे !! क्या यह धर्म था ? पवित्र कर्म था ? हम तो समझते हैं कि यह एक पैशाचिक लीला थी। अन्य भी बहुतेरी जड़जी जातियों में जीती स्त्रियाँ मृत-पति के साथ धरती में गाड़ी जाती थीं। परन्तु हम केवल हिन्दू-धर्म से ही यह प्रश्न करते हैं कि इसका क्या अर्थ था ? यह, कि अगले जन्म में भी उसे वही पति मिले ! क्यों ? क्या विवाह के किसी वेद-मन्त्र में ऐसी प्रतिज्ञा है कि स्त्री-पुरुष जन्म-जन्मान्तर के लिए मिलते हैं ? और यह क्या सम्भव भी हो सकता है कि किसी पुरुष की कोई स्त्री मृत्यु के बाद अगले जन्म में भी उसी पुरुष को प्राप्त कर सके ? इस बात का क्या ठिकाना है कि मरने के पीछे उस जीव को, जो पुरुष के शरीर में था, क्या योनि मिले, और स्त्री-शरीर वाले जीव को क्या योनि मिले ? क्योंकि दर्शन-शास्त्र कहते हैं कि योनि, आयु और भोग, पूर्व-कृत कर्मों के फल-स्वरूप हैं। कल्पना करिए, अपने पूर्व कर्मों के कारण पुरुष को सर्प, सिंह, चीता, आदि भयङ्कर जन्तु का शरीर मिला, और स्त्री को गाय, हिरनी, चुहिया या अन्य किसी कीड़े-मकड़े का शरीर मिला, तो ये दोनों प्राणी क्या फिर स्त्री-पुरुष बनेंगे ? फिर इसका भी क्या ठिकाना है कि कौन जीव किस अवस्था और किस देश में जाकर क्या योनि धारण करता है। कुछ जीव मुक्त हो जाते हैं, कुछ स्वर्ग-नरक में पड़े रहते हैं, कुछ का भूत प्रेत की योनि मिलती है—इत्यादि अनेकों अज्ञेय और भ्रम-मूलक बातें मृत्यु के पश्चात् वाले जीवन के विषय में संसार कहता है। पर किसी तरह यह तो सिद्ध होता ही नहीं कि इस जन्म के स्त्री-पुरुषों का वर्तमान सम्बन्ध अगले जन्म में भी साथ देगा, या स्मरण

रहेगा। सब लोगों के पूर्व-जन्म हो चुके हैं, पर किसी का भी बिना खाए पेट भर गया हो—या कोई अपरिचित व्यक्ति उन्हें कुछ लाभ पहुँचा गया हो तो शायद कुछ पूर्व-जन्म की बातों पर प्रकाश पड़े। कुछ पुरुष-स्त्रियाँ अपने पूर्व-पति या पत्नी की स्मृति में जो मर जाती या आजन्म बती रहती हैं, उसका कारण एक मात्र व्यक्तिगत प्रेम है। परन्तु इस सम्बन्ध में पति-पत्नी को बाँध कर रखने की कोई सामाजिक या धार्मिक आज्ञा नहीं है। इसलिए जिस प्रकार पुरुष स्वतन्त्रता से दूसरा विवाह कर लेते हैं, उसी प्रकार स्त्रियों का भी विधवा होने पर दूसरे विवाह की स्वाधीनता देना चाहिए।

कैसे आश्चर्य की बात है कि जो पुरुष स्त्री के मरते ही तत्काल दूल्हा बन जाते हैं—और बुढ़ापे तक खिजाव से बाल रँग कर दूल्हा बन, पोतियों की उम्र की लड़कियों को व्याहते रहते हैं—वे भी निर्बल होकर विधवाओं को संयम से बैठे रहने का उपदेश देते हैं ! बहुधा देखा गया है कि कन्या की अवस्था १०-१२ वर्ष की होते ही लोगों को उसके व्याह की चिन्ता हो जाती है। पास-पड़ोसी तक यह कहते हैं कि भाई कलियुग का ज़माना बुरा है—स्यानी बहू बेटी अपने घर ही रहे, यही ठीक है। इसी-लिए झटपट उसका व्याह कर देते हैं। परन्तु जब वही कन्या १५-१६ वर्ष की उम्र में एकाएक विधवा हो जाती है तब कहते हैं—इसका भाग्य फूट गया, इसके प्रारब्ध में यही लिखा था, अब इसे ब्रह्मचर्य-व्रत से रखना चाहिए। हम पूछते हैं कि कलियुग और ज़माने का बुरा प्रभाव जो उस अवधि १०-१२ वर्ष की बालिका पर पड़ता था, वह इस जवान लड़की पर क्यों नहीं पड़ेगा ? और जब तुम नित्य नई शादियाँ करते, गुलज़रें उड़ाते और तरह-तरह के खुले व्यभिचार करते हो, तब वे कैसे संयम से रहेंगी ? प्राणी का जो स्वभाव है—जो सच्ची आकांक्षा है—वह कैसे मिट सकती है ? क्या कारण था कि प्राचीन काल के बड़े-बड़े सिद्ध महर्षि लोग भी स्त्रियों से विवाह करके गृहस्थ बन कर रहते थे ? क्या वे आजन्म संयम से नहीं रह सकते थे—और आजकल भी पुरुष क्यों संयम से नहीं रहते हैं ? पुरुषों पर तो तरह-तरह के काम का बोझ, चिन्ता और झुझझटों का भार है—फिर उन्हें गुप्त रीति से स्त्रियाँ मिल जाने के भी अनेक सरल उपाय हैं; फिर भी वह स्त्री के मरते ही



दूसरा विवाह करना चाहते हैं। तब स्त्रियाँ, जिनमें आठ गुणा काम अधिक है—और जो घरों में प्रायः खाली पड़ी रहती हैं, कैसे संयमी रह सकती हैं? यह सर्वथा असम्भव है। यह गुप्त व्यभिचारों का मूल है, जिसमें अत्यन्त पाप, छल और लज्जाजनक बातें छिपी हुई हैं। इससे अच्छे-अच्छे प्रतिष्ठित घरानों की नाक कट गई; इज्जत बिगड़ गई; अच्छे-अच्छे परिवारों की बरबादी हो गई—भ्रूण-हत्या और गर्भ-स्त्राव के उदाहरणों की कमी ही नहीं है।

यूरोप में, जहाँ की जन-संख्या बहुत थोड़ी है, और जहाँ स्त्रियों को पुनः व्याह करने की पूरी स्वतन्त्रता है—गुप्त-व्यभिचार और उसके फल-स्वरूप पाप-सन्तान की बड़ी अधिकता है। सन् १६०४ से १६०६ तक कुल ६ वर्षों में इंग्लैण्ड में सवा दो लाख से ऊपर; फ़्रान्स में सवा चार लाख से ऊपर; और जर्मनी में करीब दस लाख (?) बच्चे गुप्त-रीति से जने गए। जब इंग्लैण्ड, फ़्रान्स और जर्मनी की कुल ६॥ करोड़ स्त्रियाँ लगभग १६॥ लाख बच्चे केवल गुप्त-व्यभिचार से उत्पन्न करती हैं (गर्भ गिराने और विवाहिता स्त्री-पुरुषों की सन्तान के सिवा), तब भारत की १४ करोड़ स्त्रियों में से गुप्त-व्यभिचार कराने वाली स्त्रियों के गुप्त-प्रसवों की संख्या कितनी होगी, इस रोमाञ्चकारी बात पर पाठक विचार करें। और यह भी समझ लें कि इंग्लैण्ड, जर्मनी और फ़्रान्स की तरह उन गुप्त-बच्चों के पोषण का यहाँ कुछ भी प्रबन्ध नहीं है। ऐसी दशा में ये गुप्त-व्यभिचार के फल-स्वरूप लगभग ४० लाख बच्चे—या तो कच्चे गर्भ गिरा कर या पैदा होते ही दम घोट कर मार डाले जाते हैं !!! यहाँ पवित्र, दयावान् हिन्दू-धर्म का पर्दाफ़ाश होता है—यह पाप का वृक्ष हिन्दुओं ने धर्म के नाम पर अपने घर में लगा रखा है। लानत सहते हैं, फ़ज़ीहत सहते हैं, बर्बाद होते हैं—और डूबने लायक पाप की गठरी सिर पर लादते हैं—पर उदारता और दयालुता से विधवाओं का विवाह नहीं कराते—जो भयङ्कर व्यभिचार से रक्षा करने वाली एक बड़ी महत्वपूर्ण बात है। विधवाओं का व्याह होने पर इन ढाई करोड़ अभागिनियों का दुःख दूर होगा, और इन्हें किसी भी तरह का पाप करने की ज़रूरत न रहेगी। साथ ही ढाई करोड़ पुरुषों को—जो स्त्री न मिलने के कारण अनेक स्थानों पर बिगड़ते फिरते हैं—सुधार होकर

गृहस्थ बनने का अवसर मिलेगा। हिन्दू-धर्मशास्त्र विधवाओं के विवाह की पूरी-पूरी आज्ञा देता है। विवाह के मन्त्रों में जो प्रतिज्ञाएँ हैं उनका अभिप्राय यही है कि ये स्त्री-पुरुष इस जन्म में जीते जी कभी अलग न होंगे। विवाह के मन्त्रों में एक स्थान पर स्त्री को 'देवकामा' होने की आज्ञा दी गई है। उसका अर्थ है पति के मर जाने पर दूसरे पति की इच्छा करने वाली स्त्री—जैसा कि आगे के प्रमाणों से स्पष्ट होगा।

कुहस्वादोषा कुहवस्तो रश्मिना

कहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः।

को वा शपुत्रा विधवेव देवरं

मर्यं नयोषां कृणुत सधस्थश्चा ॥

(ऋ० मं० १०, सू० ४०, मं० २)

“हे दम्पति ! जैसे विधवा देवर से और विवाहिता पति से एकत्र होकर सन्तान उत्पन्न करते हैं, वैसे तुम रात्रि और दिन में कहाँ बसे थे ? तुम्हारा शयनागार कहाँ है ? कब कहाँ बसे, कहाँ से किस वस्तु की प्राप्ति की ?”

उदीर्घ नार्यभि जीवलोके गतासुमेत मुवशेष एहि।
हस्तप्राप्तस्य निधि पोस्तवेदम्पत्युर्जनित्वमभिसंवभूय ॥

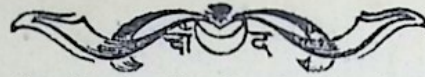
(ऋ० मं० १०, सू० १८, मं० ८)

“हे स्त्री ! इस मृत-पति की आशा को छोड़। शेष जीवित पुरुषों में से दूसरा प्राप्त कर। और समझ ले कि इस पुनः पाणिग्रहण करने वाले पति द्वारा जो पुत्र होगा, वह तेरा और इस पुरुष का कहावेगा। ऐसा निश्चय जान।”

अदेवृध्न्य पतिघ्नी दैधि शिवा पशुभ्यः सुयमाः सुर्वचाः
प्रजावतीवीर सूर्देवकामा स्योनेममग्निगार्हपत्यंसपर्य ॥

“हे पति और देवर को कष्ट न देने वाली स्त्री ! तु इस घर में पशुओं के लिए कल्याणदायिनी, अच्छे प्रकार धर्म में चलने वाली, रूप और गुणों से युक्त, वीर पुत्रों को जनने वाली, देवर की कामना करने वाली, और सुख देने वाली होकर इस गृह-सम्बन्धी अग्नि को व्यवहार में ला।”

यहाँ पर बार-बार वेद-मन्त्रों में 'देवर' शब्द आया है, उससे बहुत लोगों को यह भ्रम हो सकता है कि देवर का अर्थ पति के छोड़े भाई से है। परन्तु नहीं, निरुक्त



अ० ३, खं० २५ में देवर का अर्थ इस प्रकार लिखा है—
'देवर कस्मात्? द्वितीयोवर उच्यते'—अर्थात् देवर का मतलब दूसरे घर से है।

यह हुए वैदिक प्रमाण। अब स्मृति-शास्त्रों के प्रमाण सुनिः—

साचेदक्षतयोनिः स्याद् गत प्रत्यागतापि वा।

पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥

"यदि उसका पति से सहवास न हुआ हो, वह यदि पति के घर जाकर भी आगई हो, तो उसका दूसरे पति से अवश्य फिर विवाह हो जाना चाहिए।"

वामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः।

"उसे इस विधान से उसका देवर ही वरे।"

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।

विद्यार्थं षड्यशोर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ॥

बन्ध्याऽष्टमे धिवेद्यान्दे दशमे तु मृतप्रजा।

एकादशे स्त्री जननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी।

(मनु० अ० ६, ७६-८१)

"स्त्री का पति यदि धर्म-कार्य के लिए विदेश गया हो तो आठ वर्ष; विद्याध्ययन या यश को गया हो तो छः वर्ष, और धन के लिए गया हो तो तीन वर्ष तक उसकी प्रतीक्षा करे। और उसी प्रकार स्त्री बाँझ हो तो आठ वर्ष बाद, बच्चे होकर मर जाते हों तो दस वर्ष बाद, कन्या ही कन्या हों तो ग्यारह वर्ष बाद, और अप्रिय बोलने वाली हो तो तत्काल ही दूसरा व्याह पुरुष कर ले।"

नष्टे मृते प्रव्रजिते कृत्रिणे च पतिते पतौ।

पञ्च स्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥

(पाराशर-स्मृति)

"पति एकाएक लापता हो गया हो, मर गया हो, संन्यासी हो गया हो, नपुंसक हो, जाति-समाज से च्युत हो गया हो, तो इन पाँच विपत्तियों में पड़ कर स्त्रियों को दूसरा विवाह करने में कुछ दोष नहीं है।"

इन शास्त्र-वचनों के सिवाय—महाभारत, पुराण और रामायण में हमें इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। तारा का बाली की मृत्यु के पीछे सुधीव से व्याह करना,

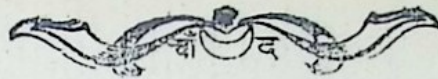
मन्दोदरी का विभीषण से व्याह करना, कुन्ती तथा चित्रवीर्य, विचित्रवीर्य की स्त्रियों के वर्णन तथा अनेकों अन्य घटनाओं के उदाहरणों से पता लगता है कि प्राचीन-काल में स्त्रियों पर इतनी निर्दयतापूर्वक कठोर शासन न होता था। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि विधवा-विवाह जारी कर दिया जाय, जिससे कि व्यभिचार की मात्रा बहुत अंशों में घट जाने की पूरी-पूरी आशा की जा सकती है। साथ ही इससे हिन्दू-समाज की भीतरी गम्भीर वेदना शान्त हो जायगी और आबरू बचेगी।

* * *

मारवाड़ियों के गुणवगुण

मारवाड़ी-समाज में कुछ ऐसे गुण हैं, जो किसी भी जाति को महान् बनाने की यथेष्ट शक्ति रखते हैं। इस जाति का सबसे बड़ा गुण धर्म-भीरुता है—भारतवर्ष की कोई ही जाति शायद इतनी धर्म-भीरु निकले। आचार-विचार, खान-पान, रहन-सहन में इतनी विशुद्धता भारत की और किसी हिन्दू-जाति में शायद ही देखने में आती है। इस धर्म-भीरुता में ब्राह्मणों का मारवाड़ी-जाति पर असाध्य अधिकार है। व्याह-शादी तो बड़ी बातें हैं, छोटी-छोटी बातें भी धर्म-भावना के झुलाल से की जाती हैं। और यही कारण है कि मारवाड़ी-समाज का यह स्वाभाविक गुण वास्तव में गुण के दर्जे से गिर गया है।

इस धार्मिकता में एक खराबी यह है कि उसमें नीति की जगह रीति और विचार की जगह रूढ़ि की सर्वत्र प्रबलता है। दूसरी बात यह है कि यह सभी धर्म-भावना नरक नहीं, उधार है। इन दो बातों ने एक तो धर्म की दर को बहुत गिरा दिया है, दूसरे लक्ष्मणध्वज व्यक्त धर्म को शलत समझ रहे हैं। दया धर्म का लक्षण है—पर मारवाड़ी-समाज की दया बड़ी टेढ़ी-तिरछी है। मारवाड़ी दया-भाव से प्रेरित होकर सड़क के किनारे चिड़-टियों को आटा-शक्कर जिमावेगा, पर वे कुचली जावेंगी, इसकी परवा नहीं। मारवाड़ी कबूतरों को मनो ज्वार-बाजरा डलवा देगा, किन्तु पशु-चिकित्सालय की स्थापना की ओर उसका ध्यान न जायगा। अधिक-व्याधे प्रायः



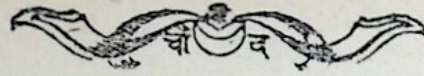
पत्नी पकड़ लाते हैं और मारवाड़ी-सज्जन पैसे देकर उन्हें छुड़ा देते हैं। फलतः उन लोगों ने मुसल्लिम रोज़गार यही बना लिया है। मारवाड़ी पिंजरापोल बनाने को दाम देगा—वहाँ रोगी, बूढ़ी, शरीब गाएँ अपने मौत के दिन बुरी तरह पूरा करेंगी। पर वह डेरीकर्म खोल कर दूध-घी की नदी बहाने की बात नहीं सोच सकता! वह भूखे-नङ्गे भिखारियों—मुस्टण्डे साधुओं—की जमात को तर माल खिलावेगा, पर ये भिखारी क्यों पैदा होते हैं, यह बात नहीं विचार सकता। इसका कारण क्या है? यही कि मारवाड़ी धर्म को नक्रद वस्तु नहीं समझता—उधार समझता है; वह उसे इस लोक की वस्तु नहीं समझता—परलोक की वस्तु समझता है। मारवाड़ी समझता है कि धर्म के नाम पर जितने कृत्य किए जावेंगे, उनका फल यहाँ इस जीवन में नहीं—वहाँ परलोक में मिलेगा।

परन्तु धर्म क्या है—हम इस स्थान पर इस बात की विवेचना करना आवश्यक समझते हैं। मनु महाराज कहते हैं—धीरज धरना, पराए अपराध क्षमा करना, इन्द्रियों को और मन को वश में रखना, पराई वस्तु पर मन न ललचाना, पवित्र रहना, बुद्धिमानी से प्रत्येक कार्य करना, विद्या पढ़ना, क्रोध न करना, हिंसा न करना—ये धर्म के लक्षण हैं। परन्तु जब हम व्यवहार की कत्तौटी पर मनु के इन सिद्धान्तों को कसते हैं, तब हमें बहुत सी बातें विचारने के योग्य देख पड़ती हैं। मनु कहते हैं—“सत्य बोलना धर्म है।” इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि सत्य बड़ा भारी तप है, परन्तु यदि सत्य बोलने से पापियों को लाभ हो और धर्मात्मा का नाश हो तो? तब भी क्या सत्य बोलना धर्म है? हम कहते हैं—नहीं। उदाहरण लीजिए—एक हरिण आपके सामने से निकल गया—शिकारी भरी हुई बन्दूक लेकर पीछे-पीछे आ रहा है। वह आपसे कहता है—क्या इधर से हिरन गया है? न बताना असम्भव है—आप क्या कहेंगे? ज़रा सा झूठ बोल कर हिरन की जान बचावेंगे या सत्य बोल कर उसे मरवा देंगे? एक चोर रात को आपकी छाती पर आ सवार हुआ। कहा—जो है, धर दो। आपकी तलाशी लेकर उसने दो हजार रु० वसूल कर लिए। परन्तु पाँच हजार रु० आपके किसी गुप्त-स्थान पर और धरे हैं। क्या आप

उससे कह देंगे कि उन्हें भी खोद कर ले जाओ? यदि धर्म का यही रूप है तो वह धर्म नहीं; क्योंकि धर्म तो वही है जिससे सज्जनों का लाभ और दुर्जनों का नाश हो। वह धर्म किस काम का, जिसमें अधिकारी की हानि और दुष्टों को आनन्द हो। क्या आप इस बात पर विचार करेंगे कि भगवान् कृष्ण ने किस विचार से लोहे का भीम धृतराष्ट्र के सम्मुख कर दिया था; किस लिए युधिष्ठिर ने हाथी को अश्वत्थामा कहा था? क्या आप श्रीकृष्ण के जीवन में सत्य की उपेक्षा होते नहीं पाते? फिर क्या किसी को पृथ्वी पर आज तक साहस हुआ कि श्रीकृष्ण को भूठा-क्रह सके?

वास्तव में धर्म की व्याख्या दर्शनकार बता गए हैं “यतो अभ्युदय निश्चयेऽसिद्धिः स धर्मः।” अर्थात्—जिससे अभ्युदय और निश्चय की सिद्धि हो वही धर्म है। अभ्युदय का अर्थ—इस संसार का सर्वोच्च सुख, अर्थात् सामाजिक और राजनैतिक पूर्ण स्वाधीनता एवं तृप्तिमय सुखी जीवन है। और निश्चय का अर्थ है मुक्ति—अर्थात् पारलौकिक उच्च आनन्द की पूर्ति। ये दोनों बातें जो व्यक्ति साथ-साथ प्राप्त करता है, वही धर्मात्मा है। हमारी सम्मति में परलोक के लिए ऐहिलौकिक सुखों को त्यागने वाला और ऐहिलौकिक सुखों में डूब कर परलोक को भूल जाने वाला व्यक्ति पूर्ण धर्मात्मा नहीं। यही धर्म का गम्भीर तत्व है। पृथ्वी भर के किसी भी पुरुष ने, चाहे वह कितना ही महान् ऋषि क्यों न हो गया हो, धर्म-संस्थापक होने का दावा नहीं किया। धर्म-संस्थापक होने का दावा केवल श्रीकृष्ण भगवान् ने किया है। धर्म का आचरण मारवाड़ी-समाज नीति और विवेक के आधार पर नहीं, रुढ़ि और रीति के आधार पर करता है। इसीलिए ७-८ साल की बालिकाओं का अनमेल व्याह उनको दृष्टि में कोई अधर्म नहीं, परन्तु विधवा होने पर उनका फिर विवाह कर देना अधर्म है। मारवाड़ी-समाज इन विधवाओं को संयम से रख ही नहीं सकता, यह बात वह अच्छी तरह जानता है। निरपराध, शरीब, असहाय बालिकाएँ कितना दुःख पाती हैं, दयालु मारवाड़ी से यह छिपा नहीं! वह उनके दुःखों पर आँसू बहावेगा, जान दे देगा—पर उसका फिर विवाह करने का साहस न करेगा!

भगवन्सज्जन एक बड़ा पवित्र काम है—मारवाड़ी स्त्री-



पुरुष, स्नान-ध्यान तथा भगवद्भजन में अवाधित रूप से समय देते हैं, परन्तु इन पवित्र कामों के भीतर भयानक व्यभिचारों के भण्डाफोड़ गोविन्द-भवन जैसे हो जाते हैं। यदि मारवाड़ी-समाज धर्म में विवेक और नीति को स्थान दे, धर्म को नरुद चीज़ समझे—यह समझे कि धर्म से हमारा वर्तमान जीवन पवित्र, सुखी और निर्भय बनता है; परलोक की बात तो पीछे है—तो मारवाड़ी-समाज आज धार्मिक जीवन में पृथ्वी भर की जातियों से बाज़ी मार कर ले जाय। मारवाड़ी-समाज को समझना चाहिए कि धर्म वह है जिससे लोक-हित हो—धर्म वह है जिससे सबका भला हो। यदि झूठ बोलने से किसी का कल्याण होता है, पर हानि किसी की नहीं होती तो हमारी राय में वह झूठ ही धर्म है। स्वार्थ को दूर रख कर, परार्थ बुद्धि से, जगत् के कल्याण के लिए जो तन-मन-धन अर्पण करते हैं, वे ही धर्मात्मा हैं, वे धन्य हैं।

धर्मात्मा वे हैं, जो संसार में रह कर, संसार की यातनाओं का नाश करके, संसार के लिए सुख, कल्याण, शान्ति और आनन्द के मार्ग निर्माण करते हुए, साथ ही अपनी आत्मा के कल्याण के लिए मुक्ति के साधन ढूँढ़ लेते हैं। यही सच्चा धर्म है, जो बहुत गहन है।

हम ईश्वर का भय करें, पाप से बचें, स्वार्थ को त्यागें, दया, प्रेम, वीरता और आत्म-शक्ति का अभ्यास करें, और तब लोक-सुख की चाहना करें—यही सत्य-धर्म है।

× × ×

मारवाड़ी-समाज का दूसरा गुण है दानशीलता, जो मारवाड़ी-जाति की नस-नस में समाई हुई भावना है। गरीब और अमीर चाहे भी जैसा मारवाड़ी व्यक्ति होगा, अपनी हैसियत और बुद्धि के अनुसार वह बराबर दान करता रहेगा। परन्तु दान करना बड़ा नाज़ुक काम है। किसी व्यक्ति से परिश्रम कराके कुछ देना उस व्यक्ति के आत्म-सम्मान का चोटक है। वह समझ सकता है कि मैंने परिश्रम किया और धन प्राप्त किया। परन्तु अकारण ही, अनायास किसी को कुछ दे डालना, ज़रा भी असावधानी से सहचाराधि लोगों को विपत्ति में डाल सकता है—उनको सुस्त, काहिल, आचारागर्द और बेऔरत बना सकता है।

मारवाड़ी-समाज की दानशीलता में ख़तरा लेने वाली

पृथ्वी में अमेरिकन जाति है, जहाँ के एक-एक धन-कुबेर ने १५-१५ करोड़ रुपयों की सम्पत्ति का एक-मुश्त दान दिया है! मारवाड़ी समुदाय में भी लाखों की रकम एकमुश्त दान देने वालों की कमी नहीं। पर उस दान का सदुपयोग होता है—यह बात बहुत कम लोग समझते हैं। हम मोहता-बन्धु, बिड़ला-बन्धु और सेठ जमनालाल बज़ाज जैसे आधुनिक दाताओं का ज़िक्र नहीं करते। हम उन पुराने ढ़ङ्ग के दानी पुरुषों के दान पर विचार करते हैं, जो धर्मशाला बनवाने, कुँआ खुदवाने, मन्दिर बनवाने आदि कार्यों में लाखों व्यय कर चुके हैं। हमें मालूम है कि उनकी अधिकांश धर्मशालाओं, मन्दिरों और अन्य चीज़ों का प्रायः दुरुपयोग ही होता है—कुर्कर्म में दुरुपयोग हो रहा है।

भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं :—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।

देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥

यत् प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।

दीयते च परिक्रिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतं ॥

अदेश काले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।

असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

“देश, काल और पात्र का विचार करके, बदले की इच्छा त्याग कर, जो दान दिया जाता है वही सच्चा सात्त्विक दान है। जो फल की कामना से, कष्ट से दिया जाय वह राजस-दान है। और बिना देश, काल और पात्रापात्र का विचार किए जो दान तिरस्कारपूर्वक दिया जाय वह तामसी है।”

केवल बड़े-बड़े दान करके मारवाड़ी दानशील नहीं कहे जा सकते। इन लोगों के लाखों रुपयों के बड़े-बड़े दानों को हम आदर की दृष्टि से नहीं देख सकते। यह पाप की कमाई है, जो सट्टा, सूद, हरामीपने और गरीबों के पसीने से निचोड़ी हुई है। हम इसे पिछले राजशाही ज़माने की उस रिश्वत से मिसाल देते हैं, जोकि रजवाड़ों के डाकू लोग राजा को दिया करते थे, और वह रकम पाकर राजा लोग उनके कुर्कर्म की तरफ से आँख मींच लेते थे। इस धन के देने वाले तो पापिष्ठ हैं ही, उसको स्वीकार करने वालों को भी हम पापी समझते हैं। धर्म-शास्त्रों में यह विवेचन अच्छी तरह दिया हुआ है कि



बूंदी का राजवंश

परिचय ग्रन्थ देखिए

६००० कापियाँ हाथोंहाथ विक चुकी हैं !!



८३६ प्रकार की खाद्य चीजों का बनाना सिखाने वाली अनमोल पुस्तक। दाल, चावल, रोटी, पुलाव, मीठे और नमकीन चावल, पुलाव, भाँति-भाँति की स्वादिष्ट सज्जियाँ, सब प्रकार की मिठाइयाँ, नमकीन, बज्जला मिठाई, पकवान, सैंकड़ों तरह की चटनी, अचार, रायते और मुरब्बे आदि बनाने की विधि इस पुस्तक में विस्तृत रूप से वर्णन की गई है।



पाक-चन्द्रिका

इस पुस्तक में प्रत्येक प्रकार के अन्न तथा मसालों के गुण-अवगुण बतलाने के अलावा पाक-सम्बन्धी शायद ही कोई चीज ऐसी रह गई हो, जिसका सविस्तार वर्णन इस बृहत् पुस्तक में न दिया गया हो। प्रत्येक चीज के बनाने की विधि इतनी सविस्तार और सरल भाषा में दी गई है कि थोड़ी पढ़ी-लिखी कन्याएँ भी इनसे भरपूर लाभ उठा सकती हैं। चाहे जो पदार्थ बनाना हो, पुस्तक सामने रख कर आसानी से तैयार किया जा सकता है। प्रत्येक तरह के मसालों का अन्दाज साफ़ तौर से लिखा गया है। पृष्ठ-संख्या ६००, मूल्य केवल ४) स्थायी ग्राहकों से ३) २० मात्र ! चौथा संस्करण प्रेस में है, ६,००० प्रतियाँ हाथों-हाथ विक चुकी हैं !!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

चन्द्रलोक, इलाहाबाद

धर्मात्मा को किस-किस व्यवसायी का अन्न और आतिथ्य स्वीकार नहीं करना चाहिए। तेजस्वी लोग कभी अन्यायी का दान और आतिथ्य नहीं स्वीकार करते। महापुरुष कृष्ण ने कैसी वीरतापूर्वक दुर्योधन का राजसी स्वागत और आतिथ्य अस्वीकार करके धर्मात्मा विदुर का दरिद्र-आतिथ्य स्वीकार किया था ! वे लोग कृष्ण-भक्त नहीं हैं, जो कृष्ण के उस आचार का अनुकरण नहीं करते !

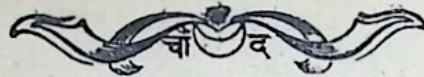
हमारी समझ में देश को ऐसे पुरुषों का दान नहीं स्वीकार करना चाहिए, जब तक वे पिछली पाप-कमाई का प्रायश्चित्त करके, देश के साथ न हो जायें। प्रायश्चित्त का एक ही ढङ्ग है, जिसके लिए रूस देश के ऋषि टॉल्स्टॉय को हम आदर्श समझते हैं। ये लोग अपने सत-मञ्जिले रहने के मकानों को सामने खड़े होकर ढहा दें। ठाट-बाट के कपड़ों और सजावट की चीजों पर मिट्टी का तेल डाल कर आग लगा दें। ज़ेवर, रत्न, किराए की जाय-दाद—सर्वस्व देश को भेंट कर दें, एक कौड़ी न बचा रखें, और भविष्य में देश के साथ मजबूरी करके खायें, जैसा कि देश खाता है—वैसे घरों में रहें जैसों में देश रहता है—और निर्वाह के बाद देश के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर आगे को बढ़ें—मरें, कटें, जीएँ और फूलें-फलें।

ऐसा बिना किए इनका पैसा पवित्र नहीं समझा जा सकता। करोड़ों रुपए सट्टे में पैदा करके लाख-पचास हजार देश की झोली में डाल कर गर्वित होने वालों को जितना अपमानित किया जाय, थोड़ा है। महाभारत में एक सुन्दर कथा का उल्लेख है। जिस समय सम्राट युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ समाप्त किया और विश्व भर की सम्पदा को दान कर दिया तब उन्हें कुछ गर्व हुआ और वे कृष्ण से कहने लगे कि महाराज ! अब मैं सार्वभौम पद का अधिकारी हुआ। भगवान् कृष्ण कुछ न कह पाए थे कि इतने में एक अद्भुत मामला हुआ। सबने देखा, एक विचित्र न्योला, जिसका आधा शरीर सोने का और आधा साधारण है, किसी तरफ से आकर यज्ञ के पात्रों में लोट रहा है। सब लोग परम आश्चर्य से इस जीव को देखने लगे। तब कृष्ण ने कहा—हे कीट-योनिधारी, तुम कौन हो ? यह हो कि पिशाच, देव हो या दानव—सत्य कहे। और किस अभिप्राय से पवित्र यज्ञ-पात्रों में लोट रहे हो ?

सबको चकित करता हुआ वह जीव मनुष्य-नाशी से

बोला—“हे महाराज ! मैं न यज्ञ हूँ, न देव—मैं वास्तव में छुद्र-कीट हूँ। बहुत दिन हुए, एक महान्-पात्र के अवशिष्ट जल में मुझे स्नान करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस पवित्र जल से मेरा आधा शरीर भीगा था। उतना ही वह सोने का हो गया। मैंने सुना था कि सार्वभौम चक्रवर्ती महाराज युधिष्ठिर ने महायज्ञ किया है। मन में विचारा कि चलो, मरती-जीती दुनिया है—एक बार लोट कर वाक्की का आधा शरीर भी स्वर्ण का बना लूँ। इसी ह्रादे से आया था। परन्तु यहाँ तो ढाक के तीन ही पत्ते दीखे—नाम ही था। मेरा इतने दूर का प्रवास व्यर्थ ही हुआ। मेरा शरीर तो वैसा ही रहा।” यह बात सुन कर युधिष्ठिर सन्न हो गए। उन्होंने उत्सुकता से पूछा कि भई ! वह कौन सा महान् राजा था, जिसने ऐसा भारी यज्ञ किया था ? दया कर उसका आख्यान सुना कर हमारे कौतूहल को दूर करो।

न्योले ने शान्त-वाणी से कहना शुरू किया—एक बार देश में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा, बारह वर्ष तक वर्षा न हुई। पशु-पक्षी सब मर गए। वृक्ष-वनस्पति जल कर राख हो गए। मनुष्यों के नर-कङ्कालों के ढेर लग गए। वृक्षों की पत्ती, जड़ और छाल तक लोग खा गए। मनुष्य, मनुष्य को खाने लगा। ऐसे समय में एक छोटे से ग्राम में एक दरिद्र ब्राह्मण-परिवार रहता था। उसमें चार आदमी थे। एक ब्राह्मण, दूसरी उसकी स्त्री, तीसरा उसका पुत्र और चौथी पुत्र-वधू। इस धर्मात्मा का यह नित्य-नियम था कि भोजन से पूर्व वह किसी अतिथि को पुकारता। इस काल में अतिथि की क्या कमी थी—कोई न कोई उसका आहार खा जाता था। एक दिन पन्द्रह दिन के पीछे कुछ साधारण खाद्य-द्रव्य मिला। जब चार भाग करके चारों खाने बैठे, तब फिर उसने किसी भूखे को पुकारा और एक बूड्डे ने आकर कहा—मैं भूख से मर रहा हूँ, ईश्वर के लिए मुझे भोजन दो। गृहस्थ ने आदर से उसे बुलाया और अपना भाग उसके सामने धर दिया। खा चुकने पर जब उसने कहा कि अभी मैं और भूखा हूँ, तब गृहिणी ने और उसके पीछे बारी-बारी से पुत्र और पुत्र-वधू ने भी अपने-अपने भाग दे दिए। इतने पर अतिथि ने वृत्त होकर आशीर्वाद दिया और हाथ धोकर वह अपने रास्ते लगा। वह धर्मात्मा ब्राह्मण-परिवार भूख से जर्जरित होकर मृत्यु के मुल में गया। उस



अतिथि ने अपने जूटे हाथ धोए थे। उस पानी से जो उस महात्मा का घर गीला हो गया था उसमें मैं सौभाग्य से लोटने को गया। उस पुण्य-जल में मेरा आधा ही शरीर भीगा, उतना ही स्वर्ण का हो गया। अब शेष आधे के स्वर्ण होने की कोई आशा नहीं है। आधा शरीर चर्म का लेकर ही मरना होगा।

बुद्ध जन्तु की यह गर्वीली कथा सुन कर युधिष्ठिर की गर्दन मुक गई और अपने तामसिक कर्म तथा गर्व पर उन्हें बड़ी लज्जा आई।

संसार चणभङ्गुर है और मनुष्य अनाचार से कभी सुखी नहीं हुआ। परोपकार के लिए शरीर की बोटियाँ कटाने में जो मज्जा आता है, वह मज्जा स्वार्थ के लिए किसी भी भोग को भोगने में नहीं आता।

वीर प्रताप के मन्त्री वैश्य भामाशाह ने ऐसी ही आपत्ति के समय अपनी समस्त सम्पत्ति प्रताप के चरणों में रख दी थी। और उसी से मेवाड़ का उद्धार हुआ—उसका नाम अमर रहा। न प्रताप रहे, न भामाशाह, न वह सम्पत्ति।

महाप्रभु बुद्ध भगवान् के जीवन में एक पवित्र, किन्तु तेजोमयी घटना का वर्णन है, जो इस प्रकार है :—

“गौतम वैशाली में आए, जोकि गङ्गा के उत्तर प्रवल लिच्छवि लोगों की राजधानी है। वे अम्बपाली नामक एक वेश्या की आश्रम की बाड़ी में ठहरे। जब उस वेश्या को मालूम हुआ तो वह उनकी सेवा में गई और उन्हें भोजन के लिए निमन्त्रित किया। गौतम ने उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। अब वैशाली के लिच्छवि लोगों ने सुना कि बुद्ध वैशाली में आए हैं और अम्बपाली की बाड़ी में ठहरे हैं, तो उन लोगों ने बहुत सी सुन्दर गाड़ियाँ तैयार कराईं और उन पर बैठ कर वे वहाँ गए। उनमें कुछ काले रङ्ग के, कुछ सफेद रङ्ग के उज्ज्वल वस्त्र पहने हुए थे। अम्बपाली युवा लिच्छवियों के बराबर, उनके पहिए के बराबर अपना पहिया और उनके धुरे के बराबर अपना धुरा और उनके जोते के बराबर अपना जोता किए हुए रथ हाँक रही थी। लिच्छवि लोगों ने अम्बपाली वेश्या से पूछा कि अम्बपाली! यह क्या बात है कि तू हम लोगों के बराबर रथ हाँक रही है ?

“उसने उत्तर दिया—मेरे प्रभु ! मैंने बुद्ध और उनके साथियों को कल भोजन के लिए निमन्त्रित किया है।

“उन लोगों ने कहा—हे अम्बपाली ! हम लोगों से एक लाख रुपया ले ले और यह भोजन हमें कराने दे।

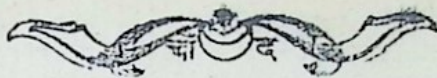
“वेश्या ने कहा—‘मेरे प्रभु ! यदि आप मुझे सब वैशाली तथा उसके अधीन का राज्य दे दें, तब भी मैं ऐसा कीर्ति का जेवनार नहीं बेचूँगी।’ तब लिच्छवि लोगों ने यह कह कर हाथ पटक के कि—हम लोग इस अम्बपाली से हरा दिए गए—यह हमसे बढ़ गई, और यह कह कर वे वाड़ी तक गए।

“वहाँ उन लोगों ने गौतम को देखा और कल के लिए निमन्त्रण दिया। परन्तु बुद्ध ने उत्तर दिया कि—‘हे लिच्छवियों, मैंने कल को अम्बपाली का भोजन स्वीकार कर लिया है।’ अम्बपाली ने उन्हें और उनके साथियों को मीठे चावल, चपातियाँ आदि खिलाई और सेवा में खड़ी रही। यहाँ तक कि भगवान् ने कहा—‘बस, अब नहीं खा सकते।’ और तब उसको शिष्टा और उपदेश किया। अम्बपाली ने कहा—‘हे प्रभु ! मैं यह महल और सम्पत्ति भिक्षुओं के लिए देती हूँ, जिनका कि नायक बुद्ध है।’ और वह दान स्वीकार किया गया।”

× × ×

तीसरा महान् गुण जो मारवाड़ी-जाति में देखने में आता है, वह स्वजाति-पोषण है। गरीब-अमीर जैसा भी व्यक्ति हो, विदेश में यदि कठिनाई में पड़ कर किसी मारवाड़ी भाई के पास पहुँचेगा तो उसको सब प्रकार की सहायता मिलेगी। हमें ऐसे उदाहरण मालूम हैं कि धोती-लोटा लेकर जो व्यक्ति कलकत्ता गए, वे अपनी जाति के सहयोग से श्री-सम्पन्न हो गए। कठिन से कठिन समय को विजय करना, और अन्त में श्रीमन्त बनना इसी सहायता और सहयोग का फल है। केवल यही एक ऐसा गुण है कि जिसके विरुद्ध कोई बात नहीं कही जा सकती।

मारवाड़ियों का चौथा गुण व्यापार-दक्षता है। संयम, उद्योग, रुझ पहचानना, धीरज, मितव्ययता आदि ऐसे गुण हैं जिन्होंने मारवाड़ियों के व्यापार-गुण में चाँद लगा दिए हैं। गुमाश्ते से मुनीम—मुनीम से सेठ हो जाना साधारण घटना है। हमारे एक मित्र सेठ जी को एक मुनीम की कलकत्ते की दूकान के लिए आवश्यकता थी। अनेक मुनीम आए, पर सेठ जी ने कुछ समय तक बात करके सबको चलता कर दिया। कई आदमी हमारे

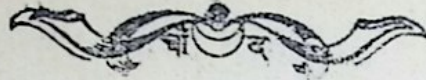


सामने आए—परीक्षा में योग्य, बुद्धिमान् सभी प्रतीत हुए—पर एक ही बात में सेठ जी बिदक जाते थे। सेठ जी वेतन तक तय करके अन्त में एक प्रश्न करते थे। वह यह कि क्या तुम्हें पेशगी कुछ रुपय-पैसे की जरूरत है? प्रायः लोग कुछ रुपया माँग बैठते थे—सेठ जी दरका देते थे। सेठ जी के इस ख़सीसपने पर कई बार हमने भी काफ़ी उलाहना दिया। अन्त में एक व्यक्ति मिला, जिसने अन्तिम प्रश्न के उत्तर में कहा—आपका नाम चाहिए, सिर्फ़ एक टिकट दिलवा दीजिए। उसे भेज दिया गया। मालूम हुआ कि कलकत्ते जाते हुए वह कानपुर, बर्दवान आदि उतर कर ठहरता तथा कुछ सौदा करता गया। कलकत्ते पहुँचते-पहुँचते उसने कई हज़ार कमा कर दिखा दिए।

एक और व्यक्ति को हम जानते हैं, जो कई वर्ष तक कलकत्ते में एक सेठ के गुमास्ता थे। वेतन ३५ मिलता था। एक दिन उन्हें पृथक् कर दिया गया। वेतन के ३५) २० जेब में डाल कर वे चिन्तित भाव से जेटी की तरफ़ चले गए। जेटी पर एक अज़रेज़ से साक्षात् हुआ। यह व्यक्ति किसी जहाज़ का कप्तान था। बहुधा इसी की माफ़त जहाज़ का माल ये व्यक्ति अपने मालिक के लिए ख़रीदते थे। उसने कहा—जहाज़ में बढ़िया माल है, तुमको किफ़ायत से दूँगा। इस साहसी ने सौदा करके जहाज़ का सब माल ख़रीद लिया। रुपयों के लिए स्वामी की साख़ थी—तिस पर उसने ७ दिन की मुदत का वादा किया था। ३५) २० वेतन के जो उनके पास थे, उसी समय उन्होंने मज़दूर आदि के लिए जेटी के दलाल को दे दिए और आप नगर में गुदाम की चिन्ता में आए। जिन सेठों से गुदाम की बातें चलीं, उन्हें भी मालूम न था कि यह व्यक्ति नौकरी से छूट गए हैं—वे समझे मालिकों के लिए माँगते हैं। पूछने लगे—क्या लिया, क्या भाव लिया, बेचोगे—क्या नफ़ा लोगे? इत्यादि। इस व्यक्ति ने बीजक सामने रख कर कहा—जो मुनाफ़ा देना चाहें, सेठ जी दें। सौदा पट गया—उसी रात में दस हज़ार जेब में डाल कर घर सोए। प्रातःकाल ही माल सेठ को मिल गया—रुपय पट गए। ये व्यक्ति भी अब एक प्रतिष्ठित सेठ हैं। इस प्रकार साहस और दूर-दर्शिता के बहुत उदाहरण मिल सकते हैं। परन्तु खेद इस बात का है कि व्यापार की इतनी उच्चकोटि की योग्यता होने पर भी हम देखते हैं कि अधिकांश मारवाड़ी भाई

सट्टा, दलाली और ऐसी आमदनियों में फँसे रहते हैं जिनमें वास्तव में, व्यापार की प्रतिष्ठा नहीं मिलती। अनेकों ऐसे मारवाड़ी व्यक्ति हैं, जो लाखों रुपय का टोटा या नफ़ा सिरहाने रख कर सोते हैं—पर ऐसे व्यक्तियों की अशान्ति का पूछना क्या है? हम एक सज्जन को जानते हैं—बम्बई के प्रख्यात सटोरिए हैं—लाखों खोना-कमाना उनका नित्य का धन्धा है। कभी सौ-सौ के नोटों की सिगरेट बना कर पीते देखा गया—कभी मित्रों से घर साग-भाजी भेज देने को कहते सुना गया। एक बार हमने पूछा—आपको इस अशान्त जीवन में ऐसा क्या मज़ा आता है? उन्होंने जो जवाब दिया, वह भी लाजवाब था। कहने लगे—आप पढ़े-लिखे हैं, पढ़-लिख कर दिन काट देते हैं—दिल भी बहल जाता है। हम तो ऐसा कुछ पढ़-लिख भी नहीं सकते, हमारी स्त्रियाँ भी मूर्ख हैं और बच्चों की घिस-घिस में पड़ी रहती हैं। वहाँ रात-दिन रह कर मनोरंजन नहीं कर सकते। फिर कुछ न कुछ रोज़गार तो चाहिए ही—ख़ाली बैठे-बैठे तो काम चल सकता भी नहीं। और कोई धन्धा भी हमें आता नहीं। यही एक काम है। इसमें दुनिया नुक़सान समझती है, पर हमारी समझ में नहीं आता हमें क्या नुक़सान होता है। १०-५ मुनीम-गुमारते हैं, सब मालिक समझते हैं—अपने को नौकर। इसमें हमारा नुक़सान क्या? नोटों के मुद्दे यही ले आते हैं तो हम हुक़्म दे देते हैं कि तिजोरी में रख दो। किसी को देना होता है तो कह देते हैं कि दे दो। ताश के पत्तों की तरह हम तो खेल खेलते रहते हैं। चार मोटरें—घर-बार सब चल ही रहा है; फिर आप कहिए इसमें क्या ख़राबी है?

उपरोक्त बात सुन कर हमें वास्तव में लाजवाब रह जाना पड़ा। परन्तु यह बात तो अवश्य विचारने के योग्य है कि व्यापार के पीछे इज्जत-आबरू, स्वास्थ्य—सब नष्ट नहीं किया जा सकता। एक सज्जन को हमने देखा था, जो साधारण हैसियत से आकर दो-तीन वर्षों में ३-४ लाख के स्वामी बन गए थे। उनकी यह दशा थी कि चलते हुए गुनगुनाया करते और बढ़बढ़ाते रहते थे! रसोई जीमते समय यदि फुलका आने में देर होती तो थाली में उँगली से आँक फैलाने लगते थे। वे तीन साल बाद संग्रहणी में रोगी होकर देश गए और चार मास रोगी रह कर चल बसे। ऐसे उदाहरण एक नहीं, अनेक हैं।



यह बात माननी पड़ेगी कि व्यापार का कला-कौशल से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। हमें यह देख कर दुःख होता है कि सिवाय रूई के इने-गिने पेचों के और किसी भी कला में मारवाड़ी-समाज का हाथ नहीं। यदि कला-कौशल और उद्योग-धन्धों में मारवाड़ी-बन्धु सट्टे की जोखिम के सौवें हिस्से जोखिम में भी अपने को डालें तो मारवाड़ी-समाज के हाथों इस उत्थान के नवयुग में भारत के मरे हुए सच्चे व्यापार का उदय हो सकता है।

× × ×

मारवाड़ियों का पाँचवाँ गुण है परिश्रम-प्रियता। यह उन लोगों का भूषण है। क्या स्त्री और क्या मर्द—शरीर-अमीर सभी को कठिन परिश्रमी पाया जाता है। मारवाड़ी-मजदूर अन्य प्रान्तों के दो मजदूरों के बराबर होता है। दिल्ली शहर में जो लत्तावधि मजदूर हैं, उनमें प्रायः ६० फी सदी जयपुर, अलवर के मारवाड़ी हैं। स्त्री-पुरुष दोनों कमर कस कर जो सुबह जाते हैं, तो शाम को टोलियों में गीत गाते आते हैं। परिश्रम-शीलता किसी भी मनुष्य-जाति को ज़िन्दा रख सकती है। हमने बड़े-बड़े मारवाड़ी-परिवारों में स्त्रियों को घर के साधारण धन्धे करते, जैसे गेहूँ बीनते, पापड़ बेलते पाया है। उन्का सदा सदी, गर्मी, बरसात में गङ्गा-जमुना तक ३-४ मील बढ़े तड़के जाना और पैदल लौटना कम से कम, हमारे जैसे आलसियों के लिए तो आश्चर्यजनक है। फिर भी यह कह सकते हैं कि परिश्रम का ठीक विभाग नहीं है। एक दलाल यदि धन्धे के काम में दिन भर में दस मील घूमे तो उससे वह स्वास्थ्यकर परिश्रम नहीं प्राप्त हो सकता, जो सार्य-प्रातः भ्रमण करने वाले को मिलता है। एक लुहार या सुनार के भुजदण्ड दिन भर हथौड़ा चलाने पर भी उतने सुन्दर नहीं बन सकते, जितने कि एक डम्बल उठाने वाले के। स्त्री और पुरुष जितने ढीले-ढाले, पिलपिले, बेडौल मारवाड़ी-समाज में हैं, शायद ही कहीं हों। इतने भारी शरीर को लेकर परिश्रम करना है तो तारीफ़ की बात—परन्तु परिश्रमी होकर भी बेडौल होना हास्यास्पद है!

वैधव्य-वेदना

[पं० सूर्यनाथ जी तकरू]

तुम्हें सुनाऊँगी कल प्रातः—
मैं अपने सोने के गीत,
मेरा वह सुवर्ण-संसार—
खो गया, अब हो गया अतीत !

जब मदिरा यौवन की उतरी वीराना पाया।
मैंने उनकी चिता-भस्म में दीवाना पाया।

अरी प्रेम की वे सब बातें,
वे मृदु चुम्बन के आघात !
अरी ! कहूँ मैं क्या-क्या तुझसे—
'वह मादक स्वप्नों की रात !'

सभी उठ रहीं जले-हृदय में घन बन कर बरसे-उमड़े।
छन्दों की मालाएँ टूटे—घटाटोप उमड़ें-धुमड़ें।

चाँदनी में भर मदिरा-पात्र,
तुम्हें दे देता था निशिवर !
दिवस में यह सौन्दर्य अपार,
तुम्हें तब देता था दिनकर !!

बाल-रवि साथे पर मेरे
किया करता था क्रीड़ा हाय !
तुम्हें बतला दूँगी कल प्रातः—
प्रेम की दुनिया के व्यवसाय !

तभी तू जानेगी हे सजनि !
हमारा सुख था कैसे हाय !
लूट विधवा का विधि ने तुम्हें—
कर दिया क्यों इतना निरुपाय !!



ओसर

[श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]



ए

क छोटे से मकान के कमरे में चारपाई पर एक प्रौढ़ा-वस्था के मारवाड़ी सज्जन पड़े हैं। उनका शरीर कृश हो रहा है, आँखें गड्ढों में चली गई हैं, मुख पर मुदनी छाई है। रह-रह कर तीव्र वेग से उठने वाली खाँसी इस बात की सूचना दे रही है कि यह व्यक्ति रोगी है। उनके पास ही थोड़ी दूर पर एक प्रौढ़ावस्था की स्त्री एक छोटे से खरल में कोई औषधि घोट रही है। उसके पास ही एक तीन वर्ष का बालक बैठा है। बालक रह-रह कर खरल में उँगली डालता है—स्त्री उसे हटक देती है। बालक कुछ चरणों के लिए फिर निश्चल हो जाता है। परन्तु कुछ ही चरणों पश्चात् उसकी बालोचित उत्सुकता उसे पुनः खरल में उँगली डालने के लिए विवश करती है। वह स्त्री की ओर देखता हुआ धीरे-धीरे खरल में उँगली डालता है। स्त्री उसे पुनः डाँट बताती है—बालक जीभ बाहर निकाल कर लज्जा तथा भयपूर्ण हँसी के साथ उँगली हटा लेता है। इसी प्रकार जब दो-तीन बार स्त्री ने बालक को डाँट बताई तो चारपाई पर पड़े हुए व्यक्ति ने कराहते हुए कहा—लड़के ने (को) क्यों डाँटे है?

स्त्री ने कहा—खरल में उँगली गेरे (डाले) है।

“बहू ने बुला के दे दे, उठीने ले जाके खिलावे।”

“बहू न्हावे है।”

“तो छोरी ने बुला ले।”

रोगी की साँस फूल गई और वह खाँसने लगा।

स्त्री ने पुकारा—छोरी, ए छोरी!

स्त्री के पुकारते ही मकान के एक ओर से एक आठ-नौ वर्षीया बालिका अपनी चुनड़ी सँभालती हुई आई और बोली—के है (क्या है) भाभी?

स्त्री ने कहा—निपूता ने उठीने लेजा, नाक माँ दम कर रख्यो है।

छोरी बालक से बोली—आ भइया, देख—बन्दर को नाच!

यह कह कर बालिका ने बालक को गोद में उठा लिया और चली गई।

स्त्री ने दवा तैयार करके रोगी को पिलाई। दवा पिलाने के पश्चात् स्त्री ने कहा—दवा ने कुछ फायदो तो कियो नहीं।

रोगी ने कहा—फायदो के करेगी?

इसी समय ज़ीने पर से किसी ने पुकारा—मांमी! पण्डत जी आवे हैं।

“आ जाओ।” कह कर स्त्री ने अपनी धोती का आँचल सुधार लिया और सिर का पल्ला माथे पर खिसका लिया। इसी समय एक मारवाड़ी नवयुवक और उसके पीछे एक वैद्यराज भीतर आए। चारपाई के पास एक टूटी हुई कुर्सी रक्खी थी—वैद्यराज उसी पर बैठ गए और बैठते ही बोले—“के हाल है?”

रोगी ने वैद्यराज को बड़ी करुणापूर्ण दृष्टि से देख कर कहा—वैसो ही हाल है पण्डत जी!

“अच्छा! खाँसी कम नहीं हुई?”

रोगी ने सिर हिला कर बताया कि कम नहीं हुई। स्त्री बोल उठी—रात भर खाँसी आवती रही—बारह बजे सेती (से) तो बड़ो भारी जोर रहे।

“हूँ” कह कर वैद्यराज ने हाथ बढ़ाया और बोले—बुझार कैसा रहा?

रोगी ने अपनी कलाई वैद्यराज के हाथ में पकड़ाते हुए कहा—बुझार भी वैसो ही है।

वैद्यराज चुपचाप नाड़ी देखते रहे। दोनों हाथों की नाड़ी देख चुकने के पश्चात् बोले—इस समय तो ज्वर बहुत कम है।

स्त्री बोली—इस बखत तो रोज कम हो जाय है।

“हाँआँ, वह कमी और है और यह कमी और है। भगवान ने चाहा तो दो-चार दिन में ज्वर का पाचन हो जायगा।”

इसके पश्चात् वैद्यराज ने अपनी जेब से एक डब्बा निकाला और उसमें से कुछ पुड़ियाँ बना कर दीं और बोले—यह दवा दो-दो घण्टे पश्चात् शहद और अदरक के रस में देना।

दवा देकर और फ्रीस लेकर वैद्यराज चलते बने। उनके चले जाने के पश्चात् स्त्री ने युवक से कहा—इस वैद्य की दवा तो कुछ फायदो नहीं करे है।

युवक बोला—तो साँझ कूँ किसी होर (और) बैद ने लाऊँ ?

रोगी ने कहा—के करेगो होर बैद ने लाके। मैं अब बचूँगो नहीं।

“ऐसी बातों क्यों करो हो—जब तक साँस तब तक आस !”

स्त्री बोल उठी—इन्हें तो बस—अब के कहूँ। तू साँझ कूँ किसी होर बैद ने दिखा।

रोगी ने कहा—अरी राँड, क्यों रुपयो वरबाद करे है—मैंने (मुझको) कोई दवा फायदो नहीं करेगो।

“रुपए सौहरे (ससुरे) को के जिकर है। राम जी रक्खो, तुम अच्छे हो गए तो रुपयो बहुत हो जायगो।” युवक ने मुँह बना कर कहा।

रोगी ने इसका कोई उत्तर न दिया। उसके मुख पर खिन्नता का भाव प्रस्फुटित हुआ। स्त्री कमरे के बाहर चली गई। युवक कुर्सी पर बैठ गया।

२

लाला बन्नामल का स्वर्गवास होगया। लाला बन्नामल के परिवार में इस समय केवल चार प्राणी हैं। उनकी विधवा स्त्री, एक तीन वर्ष का बालक, एक बालिका और एक अष्टादश वर्षीया विधवा पुत्र-वधू। लाला बन्नामल किसी समय में धन-सम्पन्न आदमी थे। पाँच वर्ष हुए उनका दिवाला हो गया था। तब से उनकी आर्थिक दशा उत्तरोत्तर विगड़ती ही गई और जिस समय उनका देहान्त हुआ उस समय उनकी आर्थिक दशा बहुत ही गड़बड़ थी। उनकी अन्त्येष्टि क्रिया उनके भानजे ने की।

अन्त्येष्टि क्रिया से निवृत्त होने के पश्चात् एक दिन बन्नामल का भानजा अपनी मामी से बोला—मामी, आज

सेठ हुलासीराम मिले थे, वह पूछते थे ओसर * कब करोगे।†

बन्नामल की स्त्री ने कहा—यहाँ खाने का ठिकाना तो है ही नहीं, ओसर कहाँ से करें ?

युवक कुछ क्षणों तक मौन खड़ा रहा, तत्पश्चात् बोला—ओसर तो मामी करना ही पड़ेगा, नहीं तो नाक कट जायगी।

“हाँ, यह मैं भी जानती हूँ, पर बेदा जब रुपया ही नहीं तो ओसर कहाँ से होगा ? साधारण ओसर भी किया जाय तब भी चार-पाँच सौ रुपए चाहिए। यहाँ चार-पाँच का ठिकाना भी नहीं है !”

युवक पुनः मौन हो गया। और कुछ क्षणों तक विचार करने के पश्चात् बोला—तुम जानो, मेरा कहने का काम था, सो कह दिया।

“मेरे ऊपर तो ऐसी मुसीबत पड़ी है कि भगवान किसी बैरी पर भी न डाले। रुपया-पैसा चला गया, जवान लड़का न रहा, आदमी न रहा—लड़की व्याहने को वैठी है ; जवान बहू विधवा वैठी है। एक मुसीबत हो तो कहूँ। ऊपर से लोग ओसर करने को कहते हैं। उन्हें कहते लाज भी नहीं लगती।”

“लोग क्या करें, वे तो चलन की बात कहते हैं।”

“ऐसे चलन को आग लगे। सारा चलन समाई पा है, जब समाई ही नहीं तो चलन को लेकर क्या करूँ—चूल्हे में धर दूँ ? बिरादरी वाले तो खाने भर के हैं। बड़े बड़े धन्ना-सेठ तो बैठे हैं—लावें हज़ार-पाँच सौ दे दें, ओसर कर दूँ।”

“इस तरह करने में कौन खूबी है ?”

“मुझे खूबी नहीं चाहिए। मेरी सारी खूबी तो मेरे लड़के और आदमी के साथ चली गई। अब तो मुझे अपने बच्चों का और राँड बहू का पेट पालना है।”

* मारवाड़ियों में मृत्यु के पश्चात् भाई-बिरादरी को पं भोज दिया जाता है। इस भोज को ‘ओसर’ कहते हैं।

† पाठक कदाचित् मारवाड़ी-भाषा से ऊब छठें, अतएव इस भाषा का बार्तालाप मारवाड़ी-भाषा में न लिख कर खड़ी बोली में लिखेंगे।

—लेखक

“पेट तो ख़ैर पल ही जायगा। भगवान् सबको मुट्ठी भर अन्न देता है।”

“देता होगा, मुझे और मेरे बच्चों को दे तो जानूँ।”

“सो तो देगा ही, कुछ भूखों थोड़ा ही मरेंगे?”

“विरादरी वाले तो भूखों मारने की फ़िक्र में लगे हैं।”

“वे बेचारे क्यों लगे हैं?”

“क्यों, लगे क्यों नहीं हैं? ओसर करने को कह रहे हैं। इसका मतलब तो यही है कि मेरे पास जो कुछ दो-चार सौ की पूँजी है, वह मैं उन्हें खिला दूँ और मेरे बच्चे भूखों मरें।”

“तो ओसर नहीं करोगी?”

“मैं तो सब कुछ करूँ, पर पास कुछ हो भी तो।”

युवक ने इस पर फिर कुछ न कहा। चार दिन पश्चात् विरादरी के पञ्च महाशय आए और बोले—क्यों सेठानी जी, क्या बात है। ओसर नहीं करोगी क्या?

सेठानी कमरे के भीतर से बोलीं—ओसर करने को रुपए कहाँ से लाऊँ पञ्च जी?

“रुपए चाहे जहाँ से लाओ, ओसर तो करना ही पड़ेगा। सभी करते हैं।”

“जिनके पास पैसा होता है वह करते हैं।”

“नहीं सेठानी जी, यह बात नहीं है, गरीब से गरीब भी करता है।”

“गरीब हाँ चाहे अमीर, बिना पैसे के, बातों से तो ओसर होता नहीं। ओसर तभी होगा जब पैसा होगा।”

“बन्नामल ने तो कुछ रकम छोड़ी ही होगी।”

“उन्होंने छोड़ा होता तो मैं अपने आप कर देती, तुम्हें कहने के लिए यहाँ न आना पड़ता। जब से रोज़गार बन्द हुआ तब से बैठे-बैठे खाया—जो बचा-खुचा था वह बीमारी में खर्च हो गया।”

“ऐसे क्या दो-चार सौ भी न छोड़े होंगे?”

“पहली बात तो यह है कि उन्होंने कुछ नहीं छोड़ा और मान लो दो-चार सौ छोड़े भी हों, तो उनसे मैं अपने बाल-बच्चों का पेट पालूँगी। ओसर के लिए मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है।”

“तो हमें क्या करना है। तुम्हारा ही नुक़सान है। भाई-विरादरी में आना-जाना बन्द हो जायगा। लड़की-लड़के का ब्याह न होगा।”

“तो जो विरादरी वाले ऐसे ही मरभुक्के हैं तो हम चार जीव हैं, इन्हीं को पका कर खा लें।”

“राम-राम! तुम भी क्या बात कहती हो।”

“तो और क्या कहूँ पञ्च जी! मेरे पास इतना रुपया नहीं जो विरादरी वालों को लड्डू-कचौड़ी खिला सकूँ। मेरा और मेरे बच्चों का मांस है—वही खा लें।”

“यह तो ठीक है, पर एक-दो हों तो उन्हें समझावे—सारी विरादरी को कौन समझावे?”

“तुम समझाओ, तुम्हें तो मेरे घर का सारा हाल मालूम है।”

“मेरे समझाए कोई समझता है?”

“न समझें तो मौज करें, मेरे भाग में जो बदा होगा वह भुगत लूँगी। उनको मरे इतने दिन हुए—किसी निपूटे ने यह आकर न पूछा कि तुम्हारी गुज़र कैसे चलती है। लड्डू-कचौड़ी खाने को मुँह पसारे बैठे हैं!”

पञ्च जी किञ्चित् विगड़ कर बोले—तुम्हारे लड्डू-कचौड़ी का भूखा कोई नहीं बैठा है। सब लोग चलन की बात कहते हैं।

“ऐसे चलन पर गाज पड़े। भगवान् इस चलन को चलाने वाले की पैड़ मिटावे, ऐसा भी चलन क्या, जो गरीब-अमीर न देखे।”

“ख़ैर, हमने तुम्हें चेता दिया है। तुम जानो तुम्हारा काम। अभी तुम्हें नहीं जान पड़ेगा; पर जब कल को लड़के-लड़की का ब्याह करोगी तब जान पड़ेगा।”

“मैंने तो कह दिया कि जो भाग में बदा होगा वह देखूँगी।”

३

बन्नामल की पत्नी बेचारी इस समय बड़े असमञ्जस में थी। पास-पल्ले कुछ था नहीं और इधर विरादरी वाले ‘ओसर’-‘ओसर’ की रट लगाए हुए थे। बेचारी अपने भविष्य से भी डरती थी। सोचती थी कि यदि ओसर न होगा तो कोई शादी-गामी में सम्मिलित न होगा। अपनी जीविका तो वह किसी न किसी प्रकार चला रही थी। रात में दोनों सास-पतोहू धनी मारवाड़ियों के घर जाती थीं और घण्टे दो घण्टे उनकी सेवा और खुशानद करके खाने भर को ले आती थीं। वहाँ भी खियाँ उसे ओसर के लिए ताने दिया करती थीं। बेचारी का जीवन

दूभर हो रहा था ! रात-दिन इसी चिन्ता में घुली जाती थी।

एक दिन दोपहर के समय पञ्चायती नाई की पत्नी उसके पास आई और कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करके बोली—सेठानी जी, लड़की की सगाई कहीं लगी कि नहीं ?

“अभी सगाई करने की बात कहाँ, पहले ओसर तो हो ले। बिना ओसर हुए सगाई कौन लेगा।”

“जो मेरी बात मानो तो ओसर भी हो जाय और लड़की की सगाई भी हो जाय।”

सेठानी प्रसन्न होकर बोली—इससे अच्छी और कौन बात है, बताओ।

“सेठ पँचकौड़ीमल को तो तुम जानो हो।”

“हाँ, हाँ। वह तो राम जी रखे, बड़े धनी आदमी हैं।”

“हाँ, उनसे जो तुम लड़की की सगाई कर दो तो तुम्हारा सब काम बन जाय।”

सेठानी नेत्र विस्फारित करके बोली—सेठ पँचकौड़ीमल से ! वह तो पचास बरस का बुढ़ा है।

“न कहीं, अभी चालीस के तो हैं ही, देखने में बुढ़े लगते हैं, पर उमर चालीस से अधिक नहीं है।”

“वह चालीस ही सही ! लड़की तो अभी नौ ही बरस की है—और वह चालीस के ! भला ऐसी सगाई भी कहीं होती है ?”

“होने की न कहो—होने को तो इससे भी अधिक उमर वालों का व्याह होता है।”

“होता होगा, पर मैं तो ऐसा व्याह करूँगी नहीं। मेरी एक तो बच्ची है, उसे आँखों देखते आग में डकेल दूँ। यह तो मुझसे कभी न होगा।”

“तुम तो वावली हो। ऐसा मौका कोई चूकता है। वह कहते हैं कि जो लड़की की सगाई कर दो तो वह ओसर करने को रुपए दे देंगे और लड़की के व्याह का सारा खर्च भी दे देंगे। इससे अधिक और क्या चाहती हो ?”

“हाँ, है तो यह बहुत-कुछ ; पर पँचकौड़ीमल की उमर बहुत है। इससे जी बिचकता है।”

“झैर, तो तुम जानो। मैंने तुम्हारे भले की कही।”

“हाँ भले की तो कही; पर मैं ऐसा नहीं करूँगी।”
“तुम्हारी मर्जी !”

नायन इतना कह कर चली गई। क्रमशः यहाँ तक नौबत पहुँची कि जिनके यहाँ वह अपने उदर-पोषणार्थ सेवा-टहल के लिए जाती थी, वे भी उसका अनादर व तिरस्कार करने लगे। इसका कारण केवल यही था कि लाला बन्नामल का ओसर नहीं हुआ था। जो स्त्री अपने पति का ओसर भी नहीं कर सकी, वह भले आदमियों के घरों में आने-जाने के भी अयोग्य समझी गई। अब तो बेचारी विधवा का आसन डोल गया। जब जीविका ही का द्वार बन्द हुआ जा रहा है तो रह क्या गया ? उसने बहुत-कुछ सोचा, बहुत शौर किया ; पर ओसर की गाँठ सुलझाने का कोई उपाय दिखाई न दिया। जब बेचारी चारों ओर से निराश होगई और इधर सर्वनाश के बादल गहरे होने लगे तो अन्त में उसकी दृष्टि अपनी कन्या पर पड़ी। वस केवल वह बालिका ही एक ऐसी थी जो उसकी मँझधार में पड़ी हुई नौका को किनारे पर लगा सकती थी। पर अपनी मुसीबत टालने के लिए एक अबोध बालिका को बलिदान करना उचित होगा ? नहीं, उचित तो नहीं है, पर इसके अतिरिक्त और उपाय भी तो नहीं।

बेचारी रात भर अपनी कन्या को छाती से लगाए रोती रही। माता को रोते देख, बालिका भी रोती रही। उसे क्या पता कि माता क्यों रोती है ? माँ रोती है—माँ को कुछ कष्ट है, यही समझ कर बालिका भी रोती थी। अबोध कन्या को रोते देख कर माता को और अधिक रोना आता था। कन्या का क्रन्दन उसे ऐसा प्रतीत होता था मानो कन्या अपने क्रन्दन द्वारा माता से यह कह रही है कि—“माँ, मैं तुम्हारी कन्या हूँ। माँ, तुमने मुझे कितने लाड़-प्यार से पाला है। माँ, मैं पितृहीन हूँ, तुम्हारे अतिरिक्त मेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं। मुझे क्यों आग में भोंकती हो ? क्यों मेरा गला काटती हो ? मैंने तुम्हारा कौन अपराध किया है ? माँ, मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो।”

आह ! बेचारी का हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा था। आँखों से आँसू नहीं, हृदय का रक्त टपक रहा था। परन्तु यह दशा होते हुए भी जब उसे अपनी विवशता का ध्यान आता था ; जब वह अपने सिर पर सर्वनाश की घनघोर



ओसर-सन्देश

चौधरी—पन्द्रह हजार सँ कम में काम कोनी चालसी !

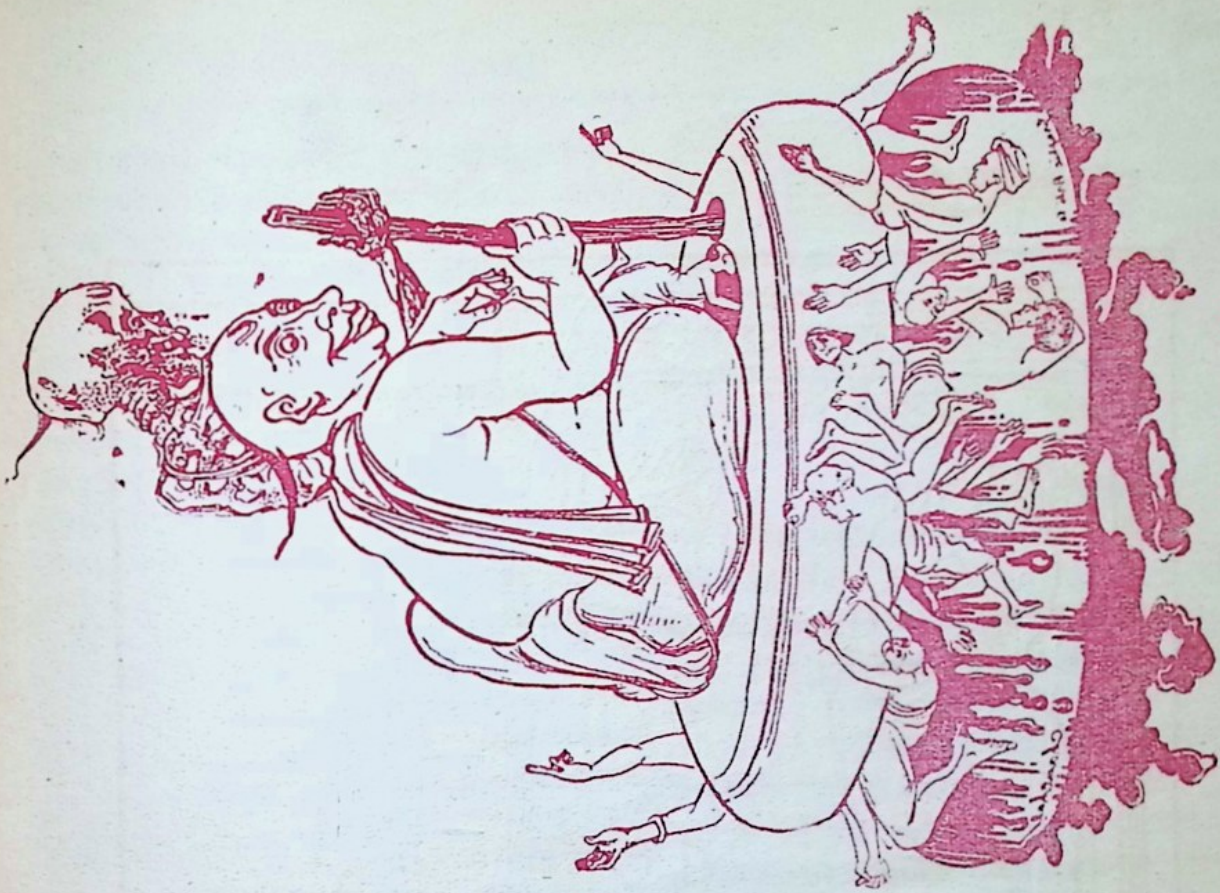
विधवा—इतरो कटे सँ आशी ! म्हारो गेणो पातो धी की बीमारी में बिक गयो । आ घर है; ईने बेचधूँ तो ऊभा होवाने और कोनी ? कदा-पका टावर कटे जाशी ?

चौधरी—थे टावरो ने देखल्यो क इज्जत ने, सेठ जी की कितरी इज्जत ही की कमाथाडो तो धी कोई है, धी केई काज में कजियो !!!

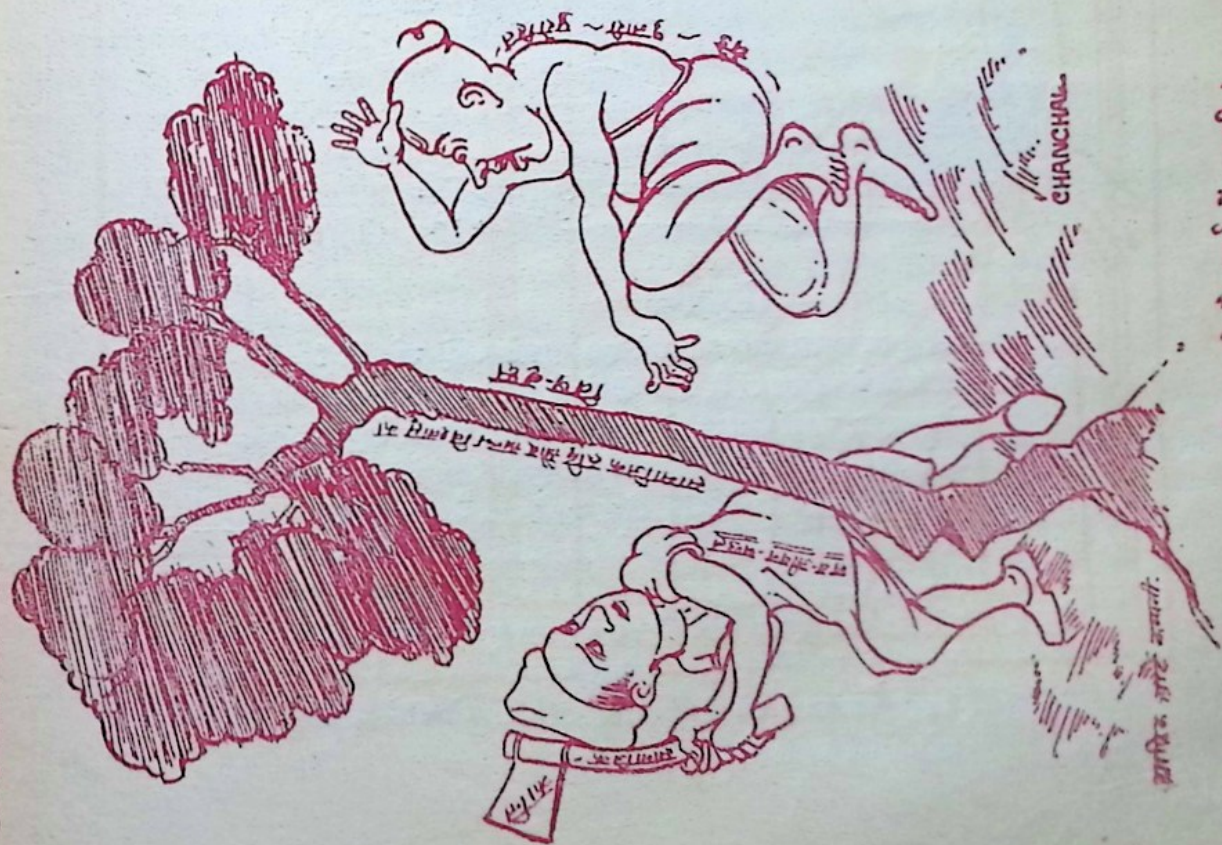
विधवा—जैसी पन्नों की मर्जी, हवेली बेचघो और काम चलाधो !



अरे बेटे ! मेरा यह साहस ! मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ गया !!



रुढ़ि की चकी !!!



राम ! राम !! हरा पेड़ काटे है, नर्क में पड़सी ।



सिफारिश

सेठानी—काँई हुयो, बापड़ा गरीब नौकर पे इतरो गुस्सो काँई करो हो ?

सेठ जी—वीं पाजी ने नई रखयो है, आज वीं को हिसाब कर देख्युं। काम-चोर गद्गधा, ग्हारो ख्याल भानेई नहीं। ग्हें काँई काम ने कहुँ तो उभो-उभो ईसवो करे, थे जायो हो ग्हारो गुस्सो गजब रो है.....

सेठानी—जावाद्यो पुराखो नौकर है, वीं के बिना ग्हारो काम कैयाँ चालसी ? बापड़ा हुक्म सागे ग्हारो काम करे है। आख्यादिन पिलवो करे है—काँई मशीन है !

सेठ जी—भने, आ बात ई तो सोच है, ग्हारी बात सुखे कोनी, थारी खिदमत में रात-दिन हाजर—आ काँई बात ?

सेठानी—(कटाव फेंक कर) उने ग्हें समझा देखा, अवार तो वीं ने भाफ करघो, गरीब धणोई ईमानदार नौकर है !

घटा को प्रतिक्षण अधिक घना होते हुए देखती थी; जब वह यह सोचती थी कि जीविका के सब द्वार बन्द हो जाने पर यह बालिका और घर के अन्य प्राणी क्या खाकर जीवित रहेंगे तो वह उस रोती हुई बालिका को उसी दृष्टि से देखती थी जिस दृष्टि से कि क़साई बन्धनों से जकड़ी हुई और प्राणों के भय से आर्त्त-चीत्कार करती हुई एक बकरी को देखता है! इस समय उसकी प्यारी बेटी उसके लिए उतनी ही उपयोगी थी, जितना उपयोगी कि एक दुर्भिक्ष की मारी हुई जुधातुरा आकण्ठप्राणा स्त्री के लिए उसकी गोद का बच्चा होता है! जिस समय उसका ममत्व, उसका वात्सल्य कन्या के प्रति उसके हृदय में एक अजेय करुणा का भाव उत्पन्न करता था, उसी समय रुढ़ियों के दास, नर-पिशाचों की काल्पनिक मूर्तियाँ उसके चारों ओर ताण्डव-नृत्य करती हुई 'ओसर-ओसर' की चीत्कार करती प्रतीत होती थीं। उस समय बेचारी विधवा-ज्ञानहीन हो जाती, विवेक-शून्य हो जाती थी और इस घोर कष्ट से मुक्ति पाने के लिए उसकी दृष्टि अपनी प्यारी अवोध कन्या पर पड़ती थी !!

४

उपर्युक्त घटना के एक सप्ताह पश्चात् बन्नामल की स्त्री नायन से कह रही थी—पँचकौड़ीमल से कह देना, मैं लड़की की सगाई करने को तैयार हूँ। परन्तु सगाई अभी नहीं, ओसर हो जाने के पश्चात् होगी।

“सो तो होगी ही, ओसर के पहले सगाई कैसे हो सकती है। खाली तुम वचन दे दो—बस सब काम ठीक हो जाय।”

“हाँ, मैं वचन देती हूँ।”

“अच्छी बात है, मैं आज उनसे कह दूँगी। उनकी इच्छा होगी तो अपने आप आकर बात कर लेंगे।”

नायन चली गई। दूसरे दिन सेठ पँचकौड़ीमल स्वयम् आए और बन्नामल की स्त्री से इस सम्बन्ध में बातचीत की। उन्होंने कहा—देखो, पीछे बदल न जाना। आजकल समय बड़ा खराब है।

बन्नामल की स्त्री बोली—लाला जी, मैं जो ज़बान से कहूँगी उसे पत्थर की लीक समझो। मैं उनमें नहीं हूँ जो कहते कुछ और करते कुछ हैं।

“बस हमें इतना इतमीनान करा दो तो फिर हमें कोई उजर नहीं है।”

“मैं तो कह रही हूँ, और कैसे इतमीनान होगा। ओसर के पहले सगाई करना ठीक नहीं, नहीं तो अभी सगाई करके तुम्हारा इतमीनान करा देती। जो बेईमानी करूँगी तो उसका देखने वाला भगवान् है।”

“सो तो हई है।”

“जो लिखा-पढ़ी से तुम्हारा इतमीनान हो तो लिखा-पढ़ी करा लो। मैं वह भी करने को तैयार हूँ।”

“लिखा-पढ़ी की कोई ज़रूरत नहीं, खाली तुम्हारी बात काफ़ी है।”

“बात काफ़ी है तो बस फिर क्या ज़रूरत है।”

“अच्छा तो सगाई कब करोगी?”

“ओसर होने के बाद जब तुम ठीक समझो तभी कर दूँगी। ओसर हो जाने दो, फिर जब और जो-जो तुम कहते जाओगे, मैं करती चली जाऊँगी। जो कुछ भी चीँ-चपड़ करूँ तो दोगली समझना।”

“तो बस, अब मुझे विश्वास हो गया। ओसर के लिए कितने रूपयों की ज़रूरत है?”

“अब यह मैं क्या बताऊँ। मैंने तो कभी किया नहीं, तुम मर्द मानुप हो, तुम जितना ठीक समझो।”

“एक हजार से कम क्या लगेंगे।”

“जो कुछ लगें।”

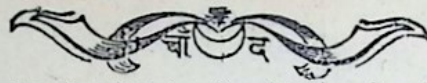
“अच्छा, तो कल मैं तुम्हारे पास एक हजार रूपए तो ओसर के लिए भिजवा दूँगा और दो सौ रूपए और भेजूँगा। लड़की को ख़ूब खिलाओ-पिलाओ, जिसमें जल्दी सयानी हो जाय—समझी?”

बन्नामल की स्त्री एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर बोली—हाँ, समझ गई।

* * *

पँचकौड़ीमल से बातचीत होने के तीन दिवस पश्चात् बन्नामल की स्त्री ने पञ्च जी को बुलवाया और बोली—मैं ओसर करने को तैयार हूँ, पर सारा प्रबन्ध तुम्हें करना पड़ेगा, मेरे घर में कोई मर्द मानुप है नहीं—मेरी ननद का लड़का था वह भी आज महीना भर हुआ अपने घर चला गया।

पञ्च जी की बाज़ें खिल गई कि अब क्या है, पाँचों धी में हैं। प्रसन्नता के मारे गद्गद-कण्ठ होकर बोले—प्रबन्ध तो मैं ऐसा कर दूँगा कि देखने वालों का जी



खुश हो जायगा। आखिर मेरी बात तुम्हारी समझ में आ ही गई। चलो अच्छा हुआ, नहीं तो बड़ी बदनामी हो रही थी। रुपया तो हाथ का मैल है, पर नेकनामी बहुत कठिनता से मिलती है। अच्छा यह बताओ, कितना रुपया खर्च करोगी ?

“अब जितना तुम उचित समझो। ऐसा करो कि अधिक खर्च भी न हो और काम भी हो जाय।”

“हाँ, ऐसा ही लो, परन्तु फिर भी कम से कम हजार-बारह सौ रुपए तो जरूर लगेंगे।”

“तो बस मैं हजार रुपए खर्च करने को तैयार हूँ। इससे अधिक मेरे पास एक कौड़ी का ठिकाना नहीं है।”

“काफ़ी हैं, बल्कि मैं तो नौ सौ निज़नाबे में ही तुम्हारा काम कर दूँगा। मेरा प्रबन्ध कोई ऐसा-वैसा थोड़ा ही रहेगा। ज़रा देखना तो।”

“तो ओसर का दिन कौन रक्खोगे ?”

“आज के पन्द्रहवें दिन हो जायगा।”

“अच्छी बात है।”

पञ्च जी महाराज प्रसन्नतापूर्वक विदा हुए। उसी दिन उन्होंने विरादरी भर में ढोल पीट दिया कि बन्नामल का ‘ओसर’ होगा और उनका प्रबन्ध रहेगा ! एकाध व्यक्ति ने कहा—“जान पड़ता है, तुम्हीं ने ज़ोर डाल कर करवाया है।”

पञ्च जी महाराज ने अकड़ कर उत्तर दिया—और नहीं क्या, बड़ी मेहनत की है। वह सहल ही थोड़ा राज़ी हो जाती। मैंने तमाम दुनिया भर का ऊँच-नीच समझाया, तब बड़ी कठिनता से राज़ी हुई।

“परन्तु वह तो कहती थी कि उसके पास कुछ है ही नहीं—अब कहाँ से आ गया ?”

“इसलिए कहती थी कि बच जाय तो बच ही जाय। अपना पैसा बचाने की चेष्टा सभी करते हैं। परन्तु भाई, मैं तो आप जानिए, एक ही घाघ हूँ। समझ गया कि पया दावना चाहती है। बस पीछे पड़ गया और उगला कर ही छोड़ा। यह समझ लो कि बालू में से तेल निकाला है।”

पञ्च जी का यह कथन सुन कर लोग उनकी प्रशंसा करने लगते। उस समय पञ्च जी और अधिक अकड़ जाते और भूँड़ों पर ताव देने लगते।

*

*

*

ठीक पन्द्रह दिवस पश्चात् ओसर हुआ। यारों ने लड्डू-कचौड़ी पर ख़ूब हाथ साफ़ किए। मारवाड़ियों लहँगों में लड्डू-कचौड़ी चुरा-चुरा कर ले गईं !!

इधर पञ्च जी महाराज ने चुरा-चुरा कर बीसियों पत्तलें अपने घर भिजवा दीं, और खर्च में से कतर-व्योंत करके नक़द सैकड़ों रुपया बचाया सो अलग।

परन्तु बन्नामल की स्त्री ने उसमें से एक कण तक अपने मुँह में नहीं डाला। उसने उस दिन भी अपने हाथ से भोजन पका कर खाया। जिस समय मारवाड़ी लोग भोजन कर रहे थे, उस समय बन्नामल की स्त्री खड़ी देख रही थी और अपनी कन्या के भविष्य को स्मरण करके ठण्डी साँसें भर रही थी। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि लोग लड्डू-कचौड़ी नहीं खा रहे हैं, वरन् उसकी कन्या का हाड़-मांस खा रहे हैं ! उसकी कन्या के बलिदान ही से तो यह भोज हुआ है। ऐसी दशा में उस भोज की सामग्री वह कैसे खा सकती थी। यहाँ तक कि बचा हुआ सामान भी उसने अपने यहाँ नहीं रक्खा—सब इधर-उधर बटवा दिया।

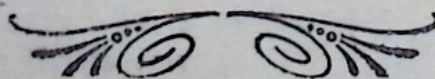
*

*

*

ओसर होने के पश्चात् निश्चित समय पर बन्नामल की स्त्री ने अपनी कन्या का विवाह पँचकौड़ीमल से कर दिया। इस पर भी मारवाड़ी भाइयों ने कोई आपत्ति नहीं की। पँचकौड़ीमल के समान धनी आदमी के विरुद्ध कुछ कहने का साहस किसमें था। सबने प्रसन्नतापूर्वक विवाह में योग दिया।

विवाह के दो वर्ष पश्चात् ही पँचकौड़ीमल इस असार संसार से चल बसे और इस प्रकार एक अबोध बालिका मारवाड़ी भाइयों की मृदुता, अज्ञानता, हठधर्मी तथा रुढ़ि-प्रियता की बलिवेदी पर बलिदान कर दी गई !!



हमारे कुछ विचित्र विश्वास

[श्री० मोहनलाल जी बड़जात्या]

विचित्र विश्वास या अन्ध-विश्वास



रत में अन्धविश्वासों का बड़ा जोर है। यदि यह कहा जाय कि पृथ्वी पर शायद ही ऐसा कोई देश हो जहाँ अन्ध-विश्वासों का इतना साम्राज्य हो, तो भी कुछ अनुचित नहीं होगा। नीचे जिन बातों का वर्णन किया जायगा सम्भव है वे सब इस नाम के अन्तर्गत आने योग्य न हों, तो यह भी हो सकता है कि कड़ी निगाह से देखने वाले इन्हें अन्ध-विश्वासों के सिवा और कुछ कहें ही नहीं। इसीलिए मैंने अन्ध-विश्वास न कह कर विचित्र विश्वास ही कहना अच्छा समझा। मान लिया जाय कि ये अन्ध-विश्वास नहीं हैं और इनकी तल में कुछ न कुछ तथ्य है, पर यह तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इन बातों के पालने व मानने से भारत का अहित एवं हमारे दिलों में कमजोरी लाने के सिवा और कुछ भी लाभ नहीं हुआ है। यदि ये बातें सच्ची भी हों तब भी इनसे लाभ की आशा तभी की जा सकती है जब इनके विषय का सच्चा ज्ञान हो। जिन ऋषियों ने इन बातों का निर्णय किया, सम्भव है उन्होंने सच्चे आधार पर इन्हें गठित किया हो, पर वह सच्चा ज्ञान दिन-दिन क्षीण व लुप्त हो जाने पर, इनके विषय की सच्ची जानकारी बिना ही इन्हें माने जाना सिवा नुकसान के और क्या कर सकता है ?

मुहूर्त

मुहूर्त के बिना पाँव न धरने वाले एवं इसी को सफलता की कुञ्जी मानने वाले चट से कह देंगे कि इसका विधि-विधान हमारे शास्त्रों में मिलता है; एवं कई स्वतन्त्र ग्रन्थ भी इस विषय पर रचे हुए हैं, तब इसे झूठा कैसे मानें। इस पर पूछना पड़ेगा कि यह सब होने पर भी आज इसके सच्चे समझने वाले कितने हैं ? आपका मुहूर्त ठीक शास्त्र के कथनानुसार निकाला जाता है या

जो आपके ज्योतिषी जी कह देते हैं वही बस सर्वाङ्ग सुन्दर मुहूर्त है ! आज हमारे जीवन में ऐसी कौन सी बात है जिसके लिए मुहूर्त की आवश्यकता न हो ! छोटी से छोटी बात के लिए भी इसकी आवश्यकता पड़ेगी। बुलाओ जोपी जी (ज्योतिषी जी) को। महाराज पञ्चाङ्ग लेकर आएँगे और कुछ गुनगुना कर पूछे हुए आवश्यक कार्य के लिए ऐसा मुहूर्त बताएँगे जो इधर का न उधर का, अर्थात् जो किसी भी प्रकार सुविधा-जनक नहीं। पर किया क्या जाय, हमें अपनी सुविधा-नुसार कार्य सम्पन्न करने का और मुहूर्त की गुलामी न मानने का साहस भी तो हो। महाराज से ही फिर कहना पड़ता है—“महाराज, कुछ जल्दी का बताइए।” महाराज फिर कुछ देख-भाल कर कहते हैं—“हाँ, एक अमुक तिथी-वार और बेला (समय) का और है।” ऐसा जान पड़ता है मानों ये सब बातें और मुहूर्त के नियम एक रबर की नली में पिरोए हुए हैं, जिन्हें चाहे जहाँ तक बढ़ा लो, सिकुड़ा लो। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि महाराज को मुहूर्त दिखाई की फ्रीस (नारियल या रुपया) आपसे मिलेगी, न कि उस शास्त्र या शास्त्र के प्रणेता से, और फिर यह भी कौन जानता है कि शास्त्र का और शास्त्र में कहे हुए नियमों का उन्हें ज्ञान ही कितना है। उन्हें तो आपको राजी रखना है, इसीलिए कह देते हैं “हाँ यजमान, एक आपाढ़ शुक्ला ३ रविवार ३ घड़ी ६ पल चढ़े दिन का बनता तो है।” “बनता तो है सो नहीं, ठीक से बताइए।” “ठीक है, सब बात मिलती है, सिर्फ चन्द्रमा ठीक नहीं है सो उस दिन रविवार है, इसलिए उसका कुछ दोष नहीं, यही ठीक रहेगा।” अन्त में इस तरह से खींच-तान कर बताए हुए मुहूर्त पर कार्य किया जाता है। भली-भाँति निपट जाने पर तो मुहूर्त निकालने वाले महाराज की वाह-वाही है और यदि कुछ विघ्न हुआ तो महाराज को कहने के लिए जगह है कि क्या करें, मुहूर्त तो ठीक नहीं था, पर आवश्यकता-वश बताया गया।

मुहूर्त दिखाना हर एक काम के लिए जरूरी है। ऐसा कौन सा काम है जो मुहूर्त बिना किया जाता हो? विवाह-शादी एवं धार्मिक मेला, प्रतिष्ठा आदि कार्य, बालक का नामकरण, जनेऊ, विद्यारम्भ, विवाह आदि संस्कार, इधर राज्य-तिलक आदि ऐसी कौन सी बात है जो मुहूर्त बिना की जाती हो। इस भाँति सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक—सभी बातों में इस मुहूर्त का दौर-दौरा है, यहाँ तक कि जीवन के साधारण से साधारण काम भी इस विषय के विचार बिना नहीं किए जाते। नया कपड़ा पहनना या सिलने को देना है तो विचार आणगा, आज तो बार अच्छा नहीं है, किसी आवश्यक विषय या काम-धन्धे की कोई बात का विचार करना है, तो कल करेंगे, आज दिन ठीक नहीं है। इसी भाँति स्त्रियाँ चूड़ी पहनने, सिर गुँथवाने के लिए भी शुभ और अशुभ बार को अवश्य देखेंगी।

मुहूर्त की बात सच्ची मान लेने पर यह बात तो जरूरी है कि इसके निकालने का सच्चा ज्ञान हो। इसके बाद सच्चा ज्ञान और अच्छा या बुरा मुहूर्त किसे कहा जाय? सच्चे ज्ञान की तो बात यह है कि पुराने जमाने में तो इस शास्त्र के ज्ञाता जरूर रहे होंगे। जब प्रत्येक बात उन्हें पूछ-पूछ कर उनके बताए हुए मुहूर्त पर की जाती थी, फिर यह बात कैसे है कि उस समय भी बुरी और भली सब तरह की घटनाएँ होती थीं। राज्य-दरबारों में भी इसके जानकार विद्वानों की कमी न थी, फिर भी क्या बात है कि भारतीयों पर बाहर वालों ने विजय पाई और भारत यों पराधीन हो गया? अच्छे मुहूर्त की इन्तजारी में बैठे रहना और वह आणगा तभी कोई काम किया जायगा, यह कितनी बुरी बात है और इससे सिवा हानि के और क्या हो सकता है! यह बात कहने पर मुहूर्त-शोधक ज्योतिषी जी चट से कह देते हैं—“क्या हर्ज है, अच्छे मुहूर्त से कार्य किया जायगा तो वह तत्काल हो जायगा। बिना मुहूर्त परदेश जाने और बेकार रहने से तो मुहूर्त के साथ चाहे वह २-४ महीने बाद हो, जाना और काम लग जाना अच्छा है।” पर ऐसी शक्ति इन मुहूर्तों में हो तब न!

महायुद्ध के समय जब कलकत्ता-बम्बई में व्यापार की धूम मची, तब बाहर से आने वालों को नौकरी भी मिल जाती थी एवं उस समय बहुतों ने लाखों-करोड़ों रुपए भी

कमा लिए। उस समय जिस भाँति लोग मुहूर्त देख कर आते थे उसी तरह अब भी मुहूर्त देखना बन्द नहीं हो गया है, फिर क्या बात है, आज चाहे जिस मुहूर्त से आइए, वह धन की नदी कहाँ है; और तो क्या, साधारण काम मिलना भी कठिन हो जाता है। एक बात और है, मुहूर्त होते हुए भी भवितव्य और प्रारब्ध की बात मानेंगे या नहीं? ‘कर्म-गति टारे नाहिं टरे’ वाली बात सर्वोपरि है या नहीं? तभी कहा है:—

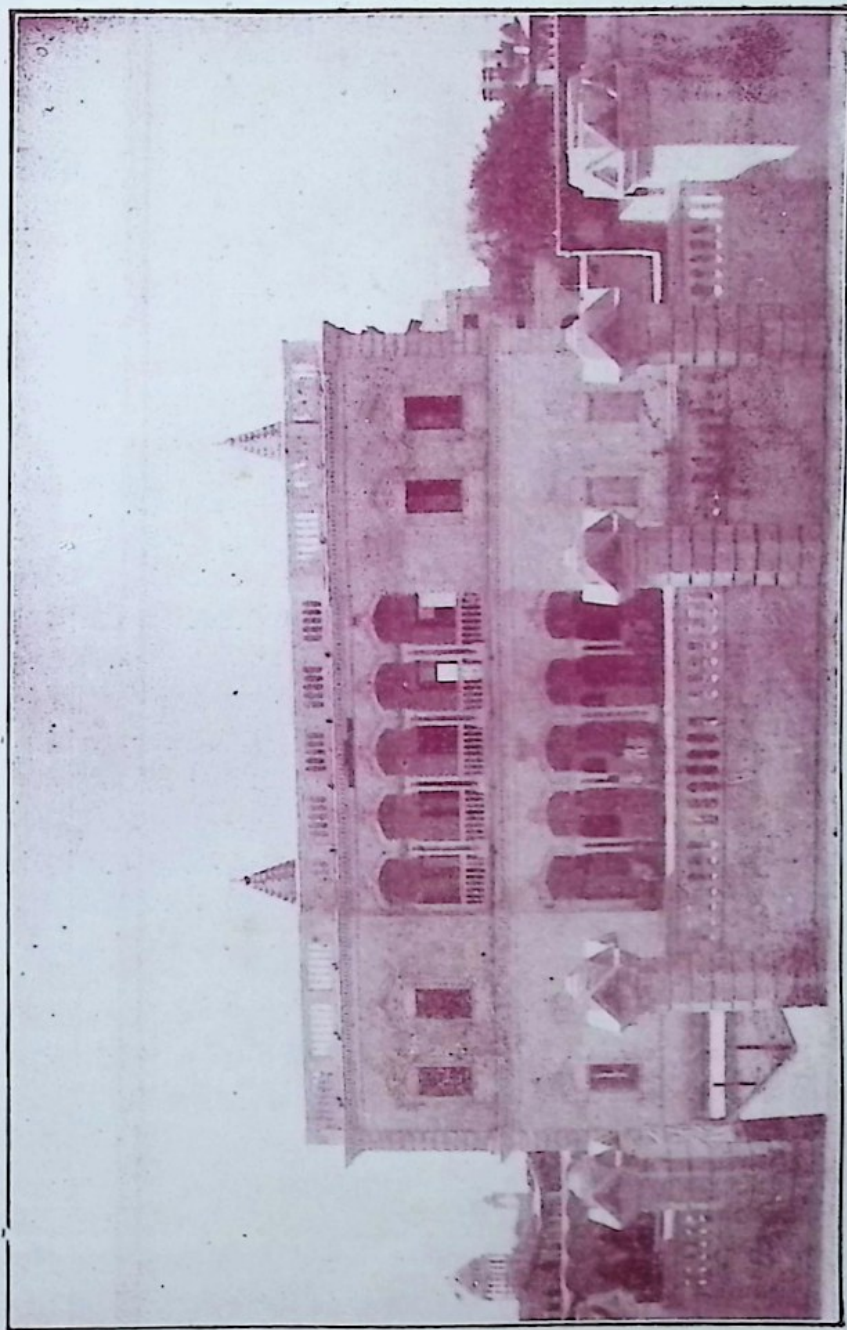
मुनि वशिष्ठ से परिण्डित ज्ञानी, रुचि-रुचि लगन धरे।
सीता हरण मरण दशरथ का, वन में विपति परे।

ऐसा होने पर अच्छे और बुरे मुहूर्त से क्या? विदेशी, जो आज यहाँ गुलछरें उड़ा रहे हैं, मुहूर्त दिखा-दिखा कर नहीं आते। ईस्ट इण्डिया कम्पनी कौनसी मुहूर्त दिखा कर आई और आज ये जहाज कौन सा मुहूर्त देख कर छोड़े जाते हैं? मुहूर्त बिना पाँच न धरने वाले भारत की आज यह दशा और मुहूर्त का नाम भी न जानने वाले कर्मवीर विदेशियों का यह अभ्युत्थान—दोनों का थोड़ा सा मिलान करने पर मालूम हो जायगा कि हमारे लिए यह मुहूर्त का भूत क्या है! इस मुहूर्त के आश्रित हो जाना, उसकी इन्तजारी में बैठे-बैठे समय को नष्ट करना और जब मुहूर्त आणगा तभी करेंगे, ऐसा कहना कहाँ की बुद्धिमानी है? आज दिशाशूल है, कल जायेंगे, पर कल चन्द्रमा ठीक नहीं है, परसों योगिनी अच्छी नहीं है, ये शिकायतें मुहूर्त देखने वालों के मुँह से बहुधा सुनी जाती हैं, क्योंकि उन्होंने यह याद कर रक्खा है—

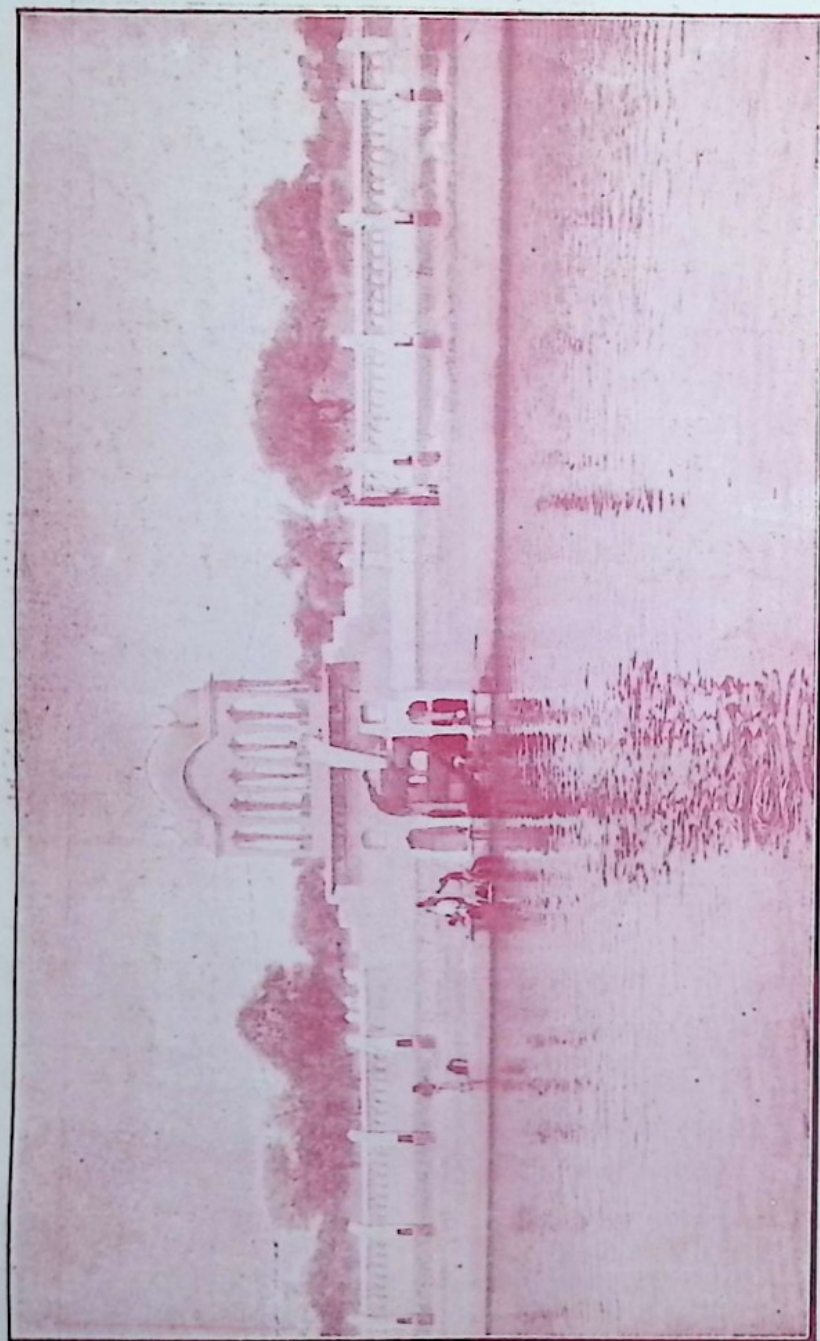
दिशाशूल ले जावे बायाँ, राहु योगिनी पूठ।

सम्मुख लेवे चन्द्रमा, लावे लक्ष्मी लूट॥

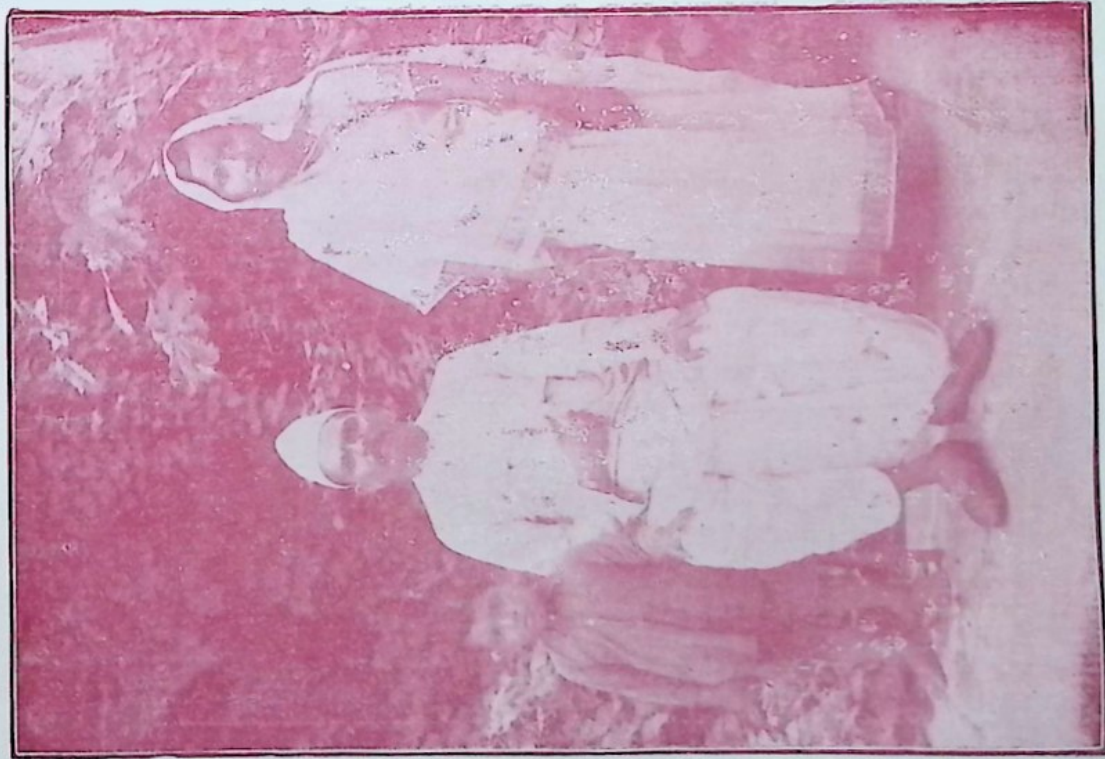
इस तरह एक मुहूर्त में न जाने कितनी बातें देखी जाती हैं, तब कहीं जाकर ज्योतिषी जी महाराज फ़रमाते हैं कि असुख मुहूर्त है। इसी भाँति विवाह के मुहूर्त के लिए जिसे ‘सहारग’ ‘साहासावा’ आदि कहते हैं, न जाने कितनी बातें देखी और विचारी जाती हैं। कभी १-२ वर्ष तक विवाह का मुहूर्त ही नहीं निकल सकता। उस अर्थ में विवाह करना चाहे जितना आवश्यक हो, पर नहीं हो सकेगा। १३ महीने का सिंहस्त लगता है, उसमें कोई विवाह नहीं होता, एवं वर्ष में कुछ ही ऐसे महीने होते हैं



विडला हाई स्कूल, पिलानी

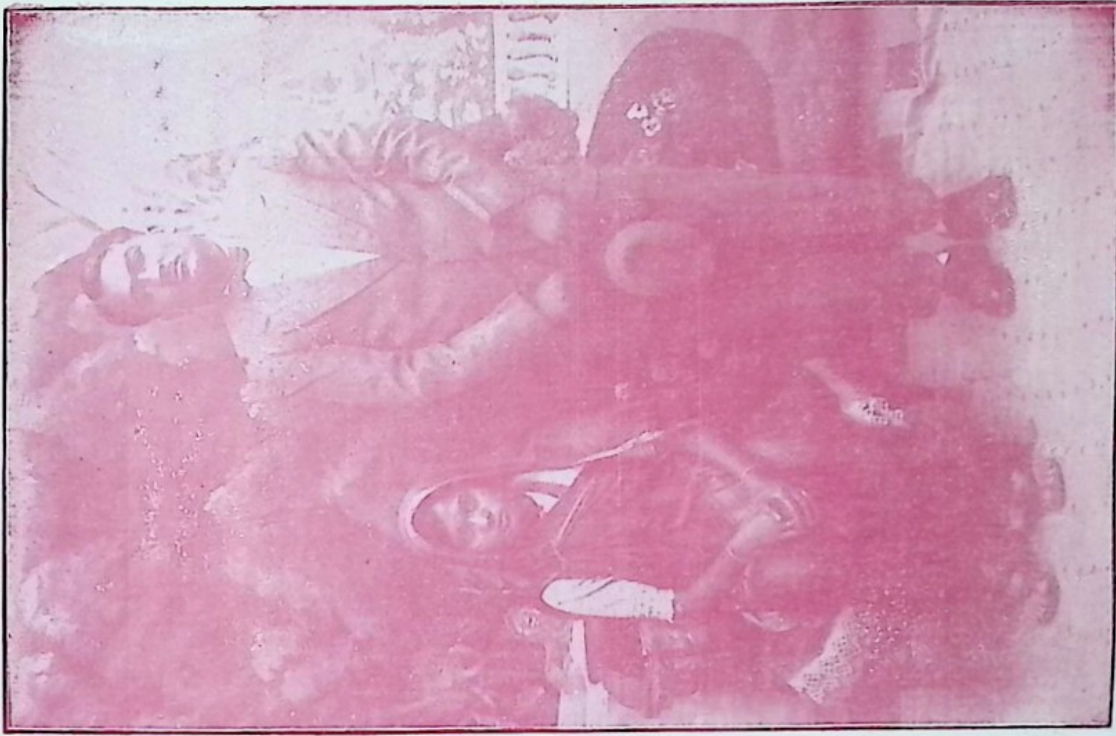


विडला डैड, पिलानी का भीतरी दृश्य



श्री० गङ्गादास जी (सपत्नीक)

[आप सारबादी-समाज के एक समाज-सुधारक और उन्नतिशील
विचारों के सज्जन हैं ।]



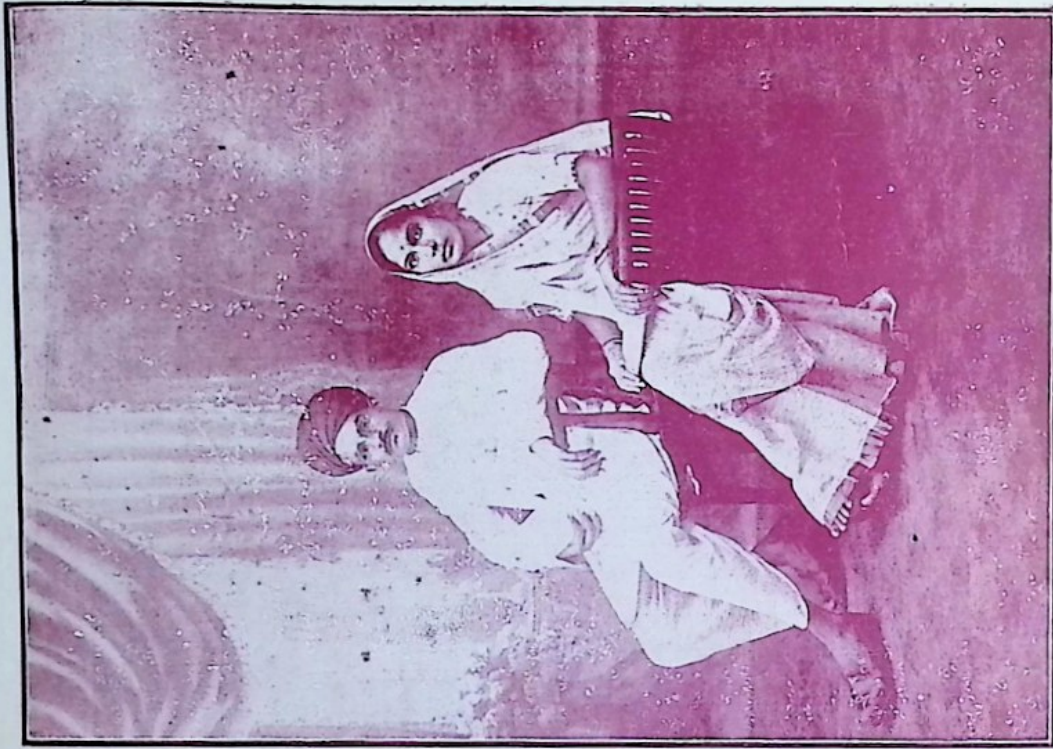
श्री० कन्हैयालाल जी भैया

जिन पति-पत्नियों ने मिल कर पदों को बलपूर्वक चीर-फाड़ कर क्षिप्त-
मिन्न कर दिया है ।



श्री० ब्रजभूषण शरण जी चितलोगिया (सपत्नीक)

[आप श्री० माहेश्वरी-युवक-मण्डल के महामन्त्री हैं । आपकी धर्मपत्नी ने पदों को मज़बूत हाथों से फाड़ फेंका है ।]



श्री० कन्हैयालाल जी कलौंगी (सपत्नीक)

[आप माहेश्वरी-युवक-मण्डल के उप-प्रधान और पक्के समाज-सुधारक हैं । आपकी धर्मपत्नी माहेश्वरी-महिला-परिषद् की जनरल सेक्रेटरी हैं ।]

जिनमें विवाह हो सकता है। उस समय चाहे सुविधा हो या नहीं, मौसम कड़ा हो, कड़ाके की ठण्ड पड़ती हो या गर्मी हो, वर के परीचा के दिन नज़दीक हों, जिससे उसकी पढ़ाई में हज़ होना अच्छा न हो, यहाँ तक कि किसी निकट सम्बन्धी के मरे बहुत कम दिन हुए हों और उसका शोक भी अभी तक नहीं मिटा हो * पर विवाह तो बताए हुए मुहूर्त के समय पर ही करना होगा। वह इधर-उधर नहीं हो सकता! इस भ्रम-भट के कारण बहुत से विवाह असमय में ही कर लिए जाते हैं। विवाह की भाँति विदेश-गमन के लिए भी कभी-कभी दो-चार महीने तक मुहूर्त नहीं निकलता। जिसने पहले कभी विदेश-गमन न किया हो और पहले-पहल विदेश को जाता हो, उसके लिए श्रावण मास में जाना मना है। स्त्री के लिए वर्षा-ऋतु में, एवं तारा लग जाने पर आवा-गमन बन्द रहता है।

मुहूर्त की तैयारी

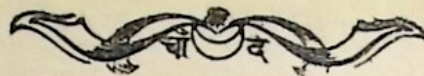
मुहूर्त के साथ काम किए जाने पर भी और कई बातों की देख-रेख की जाती है। विवाह मुहूर्त से तो होता ही है, पर उसमें भी वह भली प्रकार निबट जाय, इसके लिए न जाने और कितने प्रकार के उपचार किए जाते हैं। विदेश-गमन के मुहूर्त के दिन लकड़ी की भारी घर में मोल न ली जाय और जाने वाले की स्त्री रजस्वला न हो। बिना मौसम के छींटें भी न पड़ें अर्थात् यदि वर्षा-ऋतु नहीं है और छींटें पड़ जायँ तो उस दिन का मुहूर्त सध नहीं सकेगा। उस दिन जाने वाले को भात करके खिलाए जायँगे एवं उसकी थाली में गुड़-दही आदि मुख्यतया परोसे जायँगे। मुहूर्त की घड़ी आ जाने पर ज्योतिषी जी पूजा करावेंगे और अपनी दक्षिणा लेंगे। तब किसी सौभाग्यवती स्त्री द्वारा जाने वाले के तिलक किया जाता है और विदा में नारियल और एक रुपया या उससे अधिक दिए जाते हैं; तब वह उठ कर विदा होता है। जूते में पहले दाहिना पाँव देना होगा और घर के बाहर सौभाग्यवती स्त्री (जाने वाले की पत्नी हो या अन्य कोई) कलश लिए खड़ी रहेगी। इस क्रिया को 'कलश मनाना' कहते हैं। विदेश-गमन के समय राह

में खाने के लिए घर से रोटी लेना, एवं छत्ता, तेल, कढ़ा आदि भी न जाने कितने पदार्थ साथ में लेना मना है। गमन के तीन दिन पूर्व ही हजामत करा लेना होगा। जहाँ जाना है, उस नगर में प्रवेश भी मुहूर्त देख कर होगा। यदि दिन ठीक नहीं है तो बाहर ही कहीं रहना होगा और दूसरे या तीसरे दिन जब समय ठीक होगा तब प्रवेश करना होगा। कहाँ तक कहा जाय, मुहूर्त आदि के ये सब भ्रम-भट कई प्रकार के हैं। और यही नहीं कि ये सब बातें केवल विदेश-गमन के समय देखी जाती हों—विदेश से अपने घर लौटते समय भी बहुत सी बातों का पालन किया जाता है। कलकत्ते से सोम, बृहस्पति और शनिवार को ही जाना होगा, अन्य वारों को नहीं। इसीलिए इन तीन दिनों में रेलगाड़ियाँ बुरी तरह भर जाती हैं। भीड़ के कारण बहुत-कुछ तकलीफ उठानी पड़ती है, पर जाना इन्हीं तीन दिनों में होगा। इसीलिए मेरे एक बङ्गाली मित्र का कहना है कि वे जिस दिन मुहूर्त-भक्त मारवाड़ी नहीं जाते, उस दिन बड़े आराम से थर्ड क्लास में जाते हैं।

मुहूर्त में रियायत

मुहूर्त के सम्बन्ध में इतना पचड़ा होते हुए भी इसके लिए कई रास्ते भी निकाले हुए हैं। विवाह का मुहूर्त ठीक नहीं सूझता हो तब भी महाराज निकाल तो देंगे, पर साथ में कह देंगे कि 'एक पूजा बृहस्पति की करनी होगी।' मुहूर्त न निकलता हो और जाना ज़रूरी हो तो एक आवश्यकीय मुहूर्त निकाल दिया जाता है, जिसे 'दुघड़िया' कहते हैं। इसी भाँति निकाले हुए मुहूर्त के समय किसी कार्यवश जाना न हो सकता हो तो प्रस्थान रख दिया जाता है और फिर तीन दिन तक चाहे जब जा सकते हैं। यह कर देने पर फिर कुछ बाधा नहीं रहेगी, क्योंकि प्रस्थान करके पीछे जाना मुहूर्त से जाने के बराबर कहा जाता है। यह प्रस्थान की क्रिया इस प्रकार है कि गमनकर्ता मुहूर्त के समय जा नहीं सकता हो तो वह अपने एक डुपटे में पाँच मङ्गल द्रव्य यथा सुपारी, मूँग, हल्दी की गाँठ, धनिया, गुड़ और एक चाँदी का सिक्का यथा दुधनी, चवनी आदि में से कोई बाँध कर, जिस तरफ़ जाता हो उस तरफ़ अपने घर से दूर रख दे, फिर तीन दिन तक जब चाहे इस डुपटे को साथ लेकर

* शोक मिटाने की निश्चित अवधि और क्रिया-प्रणाली होती है।



किया हुआ निर्णय कुछ तथ्यकारी हो या नहीं, पर कार्य-विधान निर्णयानुसार ही किया जाता है। साधारण घरों में भी देवताओं के नाम पर धूनी से शुभ-अशुभ की परीक्षा की जाती है। इस क्रिया में अग्नि पर घी या नारियल की गिरी डाली जाती है और अग्नि के भभक उठने पर, जिसे लौ जग जाना या जोत आ जाना कहते हैं, शुभ समझा जाता है। इसी भाँति छोटी जातियों में विवाह के पूर्व शकुन देखा जाता है। इसकी कई विधियाँ हैं। एक में वर के मस्तक पर तेल डाला जाता है, वह यदि सीधा नाक पर लुढ़क कर आ गिरे तो शकुन शुभ समझा जाता है और यदि गालों की ओर लुढ़क जाय तो इससे वधू का मर जाना या उसका पतिभक्ता न होने की सूचना समझी जाती है। विवाह में सभी जातियों में एक नहीं, कई प्रकार के टोने-टोटके, यन्त्र-मन्त्र और शकुन-विधान किए जाते हैं।

सर्प और छिपकली से शकुन

सर्प से कई तरह के शकुन माने जाते हैं। दो साँपों को लड़ते हुए देखना, अपने घर वालों से झगड़ा होने की सूचना समझी जाती है। दो साँपों को एक ही ओर जाते देखना दारिद्र्य लाता है और एक सर्प का दूसरे को निगलना अकाल-सूचक समझा जाता है। सर्प को हरे वृक्ष पर चढ़ते देखना इतना अच्छा कहा जाता है कि देखने वाला निश्चय ही सम्राट्-पद को प्राप्त कर लेता है। राजा के लिए सर्प को पेड़ से नीचे उतरते देखना अशुभ है। सोते हुए, सर्प का आकर सिर पर फण कर लेना बहुत अच्छा कहा जाता है। घर में सर्प को प्रवेश करते देखना मकान-मालिक के लिए धन-सूचक और घर से जाते हुए देखना अशुभ-सूचक बताया जाता है। फैलाए हुए फण और उठी हुई दुम वाले सर्प को बाँईं ओर से दाहिनी ओर जाते देखना शुभ-सूचक, और केवल फण उठाए हुए हो तो अच्छे भोजन की प्राप्ति सूचक होगा। भूमि पर मरे हुए सर्प को देखना किसी की मृत्यु-सूचना का आना बतलाता है। कृषक बीज बोते समय फण उठाए हुए सर्प को देख ले तो अच्छी फसल का सूचक होगा।

छिपकली से भी बहुत से शकुन माने जाते हैं। मनुष्य की देह पर ६५ भिन्न-भिन्न स्थान हैं, जिन पर छिपकली का पड़ना या छू जाना शुभ-अशुभ की सूचना

का द्योतक बताया जाता है। सिर के बीच पड़ने से बीमारी या लड़ाई-झगड़े का सूचक, दाहिने पाँव के अँगूठे पर पड़ने से धन-सूचक आदि कई तरह से भिन्न-भिन्न अङ्गों के साथ इसका सम्बन्ध बताया हुआ पाया जाता है।

प्रातःकाल का शकुन

प्रातःकाल सोकर उठने के समय भी बहुत सावधानी से काम लिया जाता है। बहुत लोग इस बात का पूरा ध्यान रखते हैं कि उठते समय पहले-पहल उनकी दृष्टि, शुभ पदार्थों ही पर पड़े और कोई अशुभ दर्शन न हो जाय। चन्दन, काँच, अँगूठी या चाँदी का देखना शुभ समझा जाता है। बहुधा अपनी हथेलियों को रगड़ कर देख लिया करते हैं। हथेली के दर्शन के विषय में कहा जाता है :—

कराग्रे बसते लक्ष्मी कर मध्ये सरस्वती,
करपृष्ठे च गोविन्दा प्रभाते कर दर्शनं।

कई उठते हैं तब आँखें मींच कर पहले दाहिना पाँव आगे रख कर चलते हैं और जहाँ देवता की मूर्ति है वहाँ जाकर उसके सामने अपनी आँखें खोलते हैं, इस बात में देव का इतना विचार नहीं रहता, जितना इस बात का कि दिन शुभ निकले। वह दिन दर्शन अच्छा निकले, इसके लिए ये सब विधान किए जाते हैं और दिन में कुछ हो जाने पर बहुधा यह कहा जाता है कि “अरे आज किसका मुँह देखा था !” पर यह बात ध्यान में नहीं रखी जाती कि किसी का भी मुँह देखो, सब दिन अच्छे भी नहीं होते, तो सभी बुरे भी नहीं होते। हुमायूँ के दिल में यह धड़का था कि वह राजसिंहासन पर बैठने में सफल होगा या नहीं, पर उसने जब ‘मुराद, दौलत और सलादत’ नामक तीन व्यक्तियों को क्रमशः देख लिया, तब उसके चित्त में दृढ़ता आ गई। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सब आयोजन उसके दोस्तों द्वारा किया गया था। आजकल भी अपने आप होने वाले शकुनों की अपेक्षा अधिकतर शकुन बना लिए जाते हैं।

छाँक के शकुन

शकुन-विचार में छाँक एक बहुत प्रधान बात समझी जाती है। विवाह की क्रिया के समय छाँक होना बहुत अवाञ्छनीय है, इसीलिए विवाह में प्रधान कार्यों के



सुविख्यात बिड़ला-बन्धुओं के सौभाग्यशाली पिता
राजा बलदेवदास जी बिड़ला

शैलकुमारी

[ले० पं० रामकिशोर जी मालवीय]

यह उपन्यास अपनी मौलिकता, मनोरञ्जकता, शिक्षा, उत्तम लेखन-शैली तथा भाषा की सरलता और लालित्य के कारण हिन्दी-संसार में विशेष स्थान प्राप्त कर चुका है ! अपने दङ्ग के इस अनोखे उपन्यास में यह दिखाया गया है कि आजकल एम० ए०, बी० ए० और एफ० ए० की डिग्री-प्राप्त स्त्रियाँ किस प्रकार अपनी विद्या के अभिमान में अपने योग्य पति तक का अनादर कर उनसे निन्दनीय व्यवहार करती हैं; किस प्रकार उन्हें घरेलू काम-काज से घृणा उत्पन्न हो जाती है।

मूल्य केवल २५; स्थायी ग्राहकों से १॥५; नवीन संस्करण अभी-अभी प्रकाशित हुआ है।

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,
चन्द्रलोक, इलाहाबाद

गौरी-शंकर

आदर्श-भावों से भरा हुआ यह सामाजिक उपन्यास है। शङ्कर के प्रति गौरी का आदर्श-प्रेम सर्वथा प्रशंसनीय है। बालिका गौरी को भूतों ने किस प्रकार तङ्ग किया, बेचारी बालिका ने किस प्रकार कष्टों को चीर कर अपना मार्ग साफ़ किया, अन्त में चन्द्रकला नाम की एक बेश्या ने उसकी कैसी सच्ची सहायता की और उसका विवाह अन्त में शङ्कर के साथ कराया। यह सब बातें ऐसी हैं, जिनसे भारतीय स्त्री-समाज का मुखेज्ज्वल होता है। मूल्य केवल ॥५; स्थायी ग्राहकों से ॥२ मात्र।

उमासुन्दरी

[ले० श्रीमती शैलकुमारी देवी]

इस पुस्तक में पुरुष-समाज की विषय-वासना, अन्याय तथा भारतीय रमणियों के महान स्वार्थ-त्याग और पातिव्रत्य का ऐसा सुन्दर और मनोहर वर्णन किया गया है कि पढ़ते ही बनता है। सुन्दरी सुशीला जैसी पति-परायणता स्त्री के होते हुए भी सतीश का कुमारांगामी होना और अन्त में उमा-सुन्दरी नामक युवती के उपदेशों से उसका सुधार होना बहुत ही सुन्दर घटना है। मूल्य केवल ॥५; स्थायी ग्राहकों से ॥२ मात्र !

समय बाजा बजाया जाता है, जिससे यदि कोई छींक दे तो सुनाई न पड़े ! एक छींक का होना बुरा समझा जाता है, पर दो या उससे अधिक छींक हो जाने पर कुछ भय नहीं रहता । छींक के बाद कफ आना भी अच्छा माना जाता है । खाते-पीते या सोते समय छींक आना अच्छा समझा जाता है । कहा है—“छींकत खाना छींकत पीना, छींकत रहना सोय ।” पर कहीं जाते समय छींक हो जाने से बहुत आदमी तत्काल रुक जाते हैं । कहते हैं कि पीठ-पीछे छींक होना बुरा नहीं होता, इसी भाँति तमालू के सँघने से, या मिर्च की धाँस से या जुकाम आदि के होने से जो छींक आती है, उनका शकुन-विचार से कोई सम्बन्ध नहीं होता ।

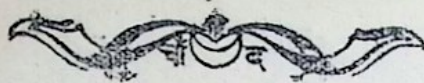
दृष्टि-दोष अर्थात् नज़र लगना

दृष्टि-दोष या नज़र लग जाने की बात एवं उस पर विश्वास बड़ा विचित्र है । भारतीय जीवन में ऐसी कौन सी बात या पदार्थ है कि जिस पर नज़र न लग जाय ? कहते हैं कि नज़र ऐसी कड़ी चीज़ है, जिससे पत्थर भी टूट जाते हैं एवं मकान गिर पड़ते हैं । मनुष्य-देह के लिए जन्म-काल से अर्थात् वचपन ही से इसका डर आरम्भ होता है । विवाह-काल के समय इसका और भी विशेष ध्यान रखा जाता है एवं बड़ी उम्र में भी इसका भय नहीं छूटता है । डाकण और चुड़ेल की बात या उसकी नज़र लग जाने का डर तो है ही, पर यहाँ तो यह नज़र चाहे जिसकी लग सकती है । चाहे कोई मित्र, हितैषी या कुटुम्बी ही क्यों न हो, यहाँ तक कि बच्चे को उसकी माँ की भी नज़र लग जाना बड़ी बात नहीं । नज़र न लगे, इसके लिए कई उपचार हैं, उसी भाँति लग जाने पर उसके दोष को मिटाने के लिए भी कई उपाय और साधन माने गये किए जाते हैं । इसके उपचारों का वर्णन करना सुगम नहीं । माता अपने बच्चे का मुँह धोकर जब उसकी आँखों में काजल लगाती है, तो ललाट पर भी काजल का बिन्दु या अर्द्ध-चन्द्र बनाना न भूलेगी, जोकि उस बालक को किसी की नज़र न लगाने का एक उपचार माना जाता है । विवाह के समय कई उपचार किए जाते हैं एवं घर की छोटी बहिन या किसी कन्या द्वारा नोन-राई की प्रथा भी इस नज़र के बचाव के लिए ही है । मकानों पर भी कई तरह के चिन्ह अंकित किए जाते हैं कि जिससे वह मकान इस नज़र-रूपी बला का शिकार न हो जाय । नज़र

का डर किसी भी सुन्दर या साफ़-सुथरे उज्ज्वल पदार्थ के लिए विशेष रहता है ।

नज़र लगने की जड़ क्या है, क्यों और कैसे लगती है, यह कोई निश्चय रूप से नहीं बता सकता । पर इसका विश्वास भारत की ऐसी कौन सी जाति है, जिसमें नहीं माना जाता हो ? किसी पदार्थ के लिए हवस या डाह नज़र का कारण माना जा सकता है, जैसे कोई अन्धा या अन्य किसी अङ्ग-दोष वाला किसी पूर्णाङ्ग पर डाह की दृष्टि से देखे तो इस तरह देखे जाने वाले के लिए भय का कारण हो जायगा; या किसी पदार्थ के लिए किसी का बेहद लालायित होना, जैसे कोई बहुत भूखा हो और उसकी दृष्टि किसी खाद्य-पदार्थ पर पड़े तो यह उस पदार्थ के खाने वाले के लिए अच्छा नहीं । पर इसकी जड़ यहाँ तक मानी जाती हो और इस नज़र का डर यहाँ तक रहता हो, सो नहीं है । बिना हवस या डाह के भी किसी पदार्थ को सराह देना, जैसे कैसा सुन्दर बालक है, या किसी को हुलक देना, जैसे असुक कितना खाता है, यह भी भय से ज़ाली नहीं । वैसे तो बड़ी उम्र वालों को भी बहुधा नज़र लगने का वहम हो जाता है, पर बच्चों के लिए माताएँ इस बात से अत्यन्त अधिक चौकशी रहती हैं और पग-पग पर इसको रोकने अर्थात् न लगने के लिए हर समय टोके और साधन करती रहती हैं । जब बालक १२ दिन का होता है और उसका नामकरण होता है, तभी उसकी भूआ उसकी कमर, हाथ आदि में, यहाँ तक कि उसके पलने को भी बालक की रक्षा के निमित्त डोरा बाँधती है । बालक चिरञ्जीवी हो, यह भावना बुरी नहीं और इस भावना से यह करना कुछ बुरा नहीं, पर यहाँ तो किसी की नज़र न लग जाय, इसके लिए कलाइयों पर डोरा बाँधा जाता है और कभी-कभी लोहे के पतले कड़े भी हाथ में पहनाए जाते हैं !

पुत्र-इच्छा और उसकी रक्षा के पीछे हमारे यहाँ की माताएँ पगली हो जाती हैं । बच्चा न होने पर क्या-क्या किया जाता है एवं होकर जीते न रहने पर कई अच्छे-बुरे उपाय काम में लाए जाते हैं । ऐसी रक्षा में बालक के जन्म होने पर लोहे की कड़ी डाल दी जाती है और इस पर उसे 'नथमल' या 'नाथ्या' कहते हैं । यह कड़ी उस बालक के विवाह में उसकी सास ही खोल सकती है । इसके पहले अन्य कोई नहीं खोल सकता । किसी



के बालक होता न हो या होकर मर जाता हो तो ऐसी खी किसी अन्य बालक के बाल या उसका कोई कपड़ा कतर लेती है और जब उस बालक की माता को इसका पता लग जाता है तो न जाने कितनी कलह और उत्पात मचाया जाता है। न जाने इन सब अन्ध-विश्वासों का नाश कब होगा ! कहना होगा कि सन्तान के लिए इस तरह की बुरी चाह उसकी रक्षा का कारण न होकर, अधिकतर नाश का ही कारण होती है। बालक को साफ-सुथरा रखना और उसे साफ कपड़े पहनाना माताएँ बालक के लिए बड़ा भारी भयङ्कर समझती हैं। वह सुन्दर दिखने से कहीं नज़र का शिकार न हो जाय, इसलिए उसके ललाट पर काजल पोतने के सिवा उसे मैला-कुचैला रखना एवं मैले वस्त्र पहनाना ही उसके लिए हितकर समझा जाता है। इसीलिए बच्चों के टिकारती एवं भड़े से भड़े नाम रखने की चेष्टा की जायगी ; यथा फकीरिया, गुदब्या, लट्ठरिया, पूर्या आदि। हमारे यहाँ बच्चे के रूप या उसके शारीरिक गठन की प्रशंसा करना एक गुनाह समझा जाता है। बच्चे की माँ के सामने कोई कभी यह नहीं कह सकता कि कैसा सुन्दर बालक है ! वह चाहे सुन्दर हो या कुरूप, मोटा-ताज़ा हो या दुबला-पतला, उसकी माँ का हर समय दूसरों को सुनाने के लिए यही रोना होगा—“कैसा बालक है, एक दिन भी तो अच्छा नहीं रहता।” किसी के द्वारा सराह लिए जाने पर ही उसकी माँ उस बच्चे के लिए विपत्ति का पहाड़ टूटा हुआ समझ लेगी और इस पर न जाने क्या-क्या उपचार करेगी। बीमार हो जाने पर भी बहुधा नज़र का ही दोष समझा जाता है और रोग का इलाज न होकर, नज़र के उपचार किए जाते हैं। लाल मिर्चों की धूनी दी जाती है, देवी-देवताओं के चरणामृत लाकर पिलाए जाते हैं, भाड़ा-फूँकी की जाती है, घर के कढ़ी-काँटियों का धोया हुआ पानी एवं घर के लोगों की आँखों का धोया हुआ पानी पिलाया जाता है, जिसे आँखें खोल कर पिलाना कहते हैं।

हमारे यहाँ बच्चे की सराहना करना पाप समझा जाता है, वैसा अङ्गरेजों में नहीं है। उनमें बच्चे की सराहना से माता का घबराना तो दूर रहा, स्वयं माँ भी अपने बच्चे की प्रशंसा करते कुछ भय नहीं लाती। एक सुन्दर बच्चे को देख कर आप बेधड़क उसकी माँ के सामने उसके रङ्ग की तारीफ़ कर सकते हैं। वह यह सुन कर अत्यन्त प्रसन्न होगी। थोड़े दिनों की बात है, मैं एक अङ्गरेज मित्र से मिलने उनके घर गया। वह घर पर नहीं थे, उनकी मेम ने कहा—‘टैडिए, मिस्टर टॉमसन अभी आ जाते हैं।’

मैंने पूछा—आपका बच्चा मझे में है ?

उसने कहा—वह अभी सो रहा है, आप धीरे-धीरे आवाँ तो मैं आपको दिखाऊँ।

मैं दबे पाँव दूसरे कमरे में गया और देख कर चला आया। मैं नहीं समझ सका कि उस समय उसे क्या कहूँ। वह मुझे चुप देख कर बोली—आपको बच्चा पसन्द तो आया। वह कैसा सुन्दर और सुहावना है !

स्वयं माता के मुँह से यह सुन कर मैं समझ गया कि इनके यहाँ बच्चों की प्रशंसा करना पाप नहीं समझा जाता और न माँ ही प्रशंसा सुन कर घबड़ाती है। मैंने कहा—हाँ, वह निश्चय ही बड़ा सुन्दर और नीरोग बच्चा है। साल भर का होगा ?

मेम ने कहा—नहीं, वह सिर्फ़ ५ महीने का है।

कुछ भी हो, जहाँ के बालकों को केवल सराह दिए जाने पर ही उनका इष्ट-अनिष्ट सम्भव हो वे आगे बढ़ कर क्या कर सकते हैं और उनसे क्या आशाएँ की जा सकती हैं ? शिक्षित समुदाय में ऐसे अन्ध-विश्वास कम हो रहे हैं, पर अभी यह नहीं कहा जा सकता कि बिल्कुल मिट गए हैं। कहना होगा कि शिक्षा-प्रचार ही इनके मिटाने का प्रबल साधन होगा !!



मारवाड़ की भौतिक और साम्प्रतिक दशा

[श्री० जगनलाल जी गुप्त, मुख्तार]

‘माड़वाड़ी’ शब्द का अर्थ



‘माड़वाड़ी’ शब्द से वही अभिप्राय है जो ‘राजस्थानी’ शब्द का होता है। इसका अर्थ है उतना भू-भाग जो ‘माड़’ से ‘मेवाड़’ तक विस्तृत है। ‘माड़’—जयसलमेर का दूसरा नाम है, और ‘वाड़’—मेवाड़ के अन्तिम अक्षर हैं। इस

प्रकार के भौगोलिक नाम भारतवर्ष में और भी पाए जाते हैं। जैसे पञ्जाब में ‘सिख’ का अर्थ है सिन्धु और सतलज के मध्य का भूखण्ड। यह शब्द उक्त दोनों नदियों के प्रथम अक्षरों को मिला कर बनाया गया है। इसी प्रकार ‘भेच’—भेलम और चनाव नदियों के मध्य का भाग; ‘रेचना’—रावी तथा चनाव नदियों का मध्यवर्ती भाग कहलाते हैं। दूर जाने की आवश्यकता नहीं है; इस प्रान्त के दूसरे पड़ोसी काठियावाड़ को ही ले लीजिए—यह शब्द ‘काँठ’ और ‘वाड़’ का संयुक्त है, जिसका अर्थ ‘काँठ’ (समुद्र-तट) तथा मेवाड़ के मध्यवर्ती देश का होता है। अस्तु ‘राजपूताना’ शब्द जिस देश को राष्ट्रीय दृष्टि से व्यक्त करता है, उसी देश को ‘माड़वाड़’ शब्द भौगोलिक तथा समाज-संस्कृति के विचार से व्यक्त करता है। जितने प्रान्तों में मारवाड़ी या राजस्थानी भाषा बोली जाती है, एवं रहन-सहन तथा खाने-पीने आदि में एक विशेष प्रकार का सामान्य सम्बन्ध पाया जाता है—जिसे हम मारवाड़ी लोगों में विशेषता से देखते हैं—वह सब ‘माड़वाड़’ या ‘माड़वाड़ी प्रान्त’ कहलाता है। यह जुदी बात है कि राजनैतिक भूगोल में मारवाड़ स्वयं एक ही है, एवं ऐतिहासिक दृष्टि में इस शब्द की परिभाषा समय-समय पर जोधपुर की राज्य-सीमा के परिवर्तन के साथ बदलती रही है। किन्तु मानव-तत्व सम्बन्धी भूगोल में, भूगर्भ-शास्त्र में, सामाजिक इतिहास की दृष्टि से, आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति में, और संघेप में राष्ट्रीय कल्पना के विचार से—इस शब्द की परिभाषा

आज भी वही है जो कभी संस्कृत-साहित्य में इस देश के ‘मरुधन्व’ या केवल ‘मरु’ नाम से समझी जाती थी।

जिस प्रकार ‘राजस्थान’ राजनैतिक भूगोल का एक शब्द है तथा ‘मरु’ प्राकृतिक भूगोल का एक पारिभाषिक शब्द है; उसी प्रकार ‘मारवाड़’ या ‘माड़वार’ साहित्य का एक ऐसा शब्द है जिसके द्वारा उतने भूभाग का बोध होता है, जिसमें मारवाड़ी सभ्यता, भाषा तथा संस्कृति पाई जाती है।

मारवाड़ का विस्तार

इस समान संस्कृति और सभ्यता वाले मारवाड़ का विस्तार १,२८,६८७ वर्ग-मील है, जिसमें २,७११ वर्ग-मील अजमेर-मेरवाड़ा का क्षेत्रफल मिला देने से सम्पूर्ण राजस्थान का क्षेत्रफल १,३१,६६८ वर्ग मील तक पहुँचता है। सम्पूर्ण भारत के क्षेत्रफल का यह १३.८६ वाँ भाग है। हैदराबाद और मैसूर का संयुक्त क्षेत्रफल या काश्मीर और ग्वालियर का संयुक्त रकबा राजस्थान के लगभग बराबर बैठता है। किन्तु आवादी में यह प्रान्त सम्पूर्ण भारत के एकतीसवें भाग से भी कम है। अर्थात् सम्पूर्ण राजपूताने की आवादी १ करोड़ से भी कम है—लगभग ६८॥ लाख है।

सीमा

इस वीर-भूमि के पश्चिम में सिन्ध-प्रान्त; पश्चिमोत्तर में बहावलपुर की मुसलमानी रियासत; उत्तर और उत्तर-पूर्व में पञ्जाब-प्रान्त; पूर्व में संयुक्त-प्रान्त तथा ग्वालियर का राज्य; और दक्षिण में मध्यभारत के राज्य, बम्बई प्रेज़िडेन्सी तथा काठियावाड़ के राज्य हैं। दक्षिण-पश्चिम में एक स्थान पर, जहाँ लूनी और सूकरी नदी समुद्र से मिलती हैं, यह प्रान्त समुद्र से छूता है, जो खम्भात की खाड़ी का एक भाग है।

मुख्य मुख्य राज्यों की भौगोलिक स्थिति मारवाड़ देश के मध्य में अजमेरी प्रान्त अजमेर और मेरवाड़ा दो भागों में विभक्त है। इसके पूर्व और

दक्षिण-पूर्व में जयपुर, भरतपुर, धौलपुर, करौली, बँदी, कोटा और भालावाड़ की रियासतें हैं। दक्षिण में प्रतापगढ़, बाँसवाड़ा, डूंगरपुर तथा उदयपुर हैं। दक्षिण-पश्चिम में सिरोही का राज्य तथा जोधपुर-राज्य विस्तृत है, जो लूनी के द्वारा समुद्र से मिला है। पश्चिम में जयसल्मेर तथा जोधपुर के राज्य हैं; और उत्तर में बीकानेर का जाड़ल स्थान है। पूर्वोत्तर में शेखावाटी और अलवर स्थित हैं। किशनगढ़ राज्य तथा शाहपुरा और लावा की जागीरें एवं टोंक की नवाबी के कई भाग मध्य राजपूताने में ही समझे जाते हैं।

भौतिक परिस्थिति

राजपूताने की भिन्न-भिन्न प्रकार की भौगोलिक परिस्थिति ने यहाँ की प्रजा पर क्या प्रभाव डाला है एवं इसके विकास तथा संस्कृति को क्यों इस प्रकार का बनाया है, यही बातें इस लेख में दिखाई जायेंगी। तब यहाँ की आर्थिक और मानव-सम्बन्धी परिस्थिति का कारण, कार्य तथा शृङ्खलायुक्त वर्णन पाठकों के सम्मुख देना उचित होगा। अतः आरम्भ में इस प्रान्त का भौतिक भूगोल दिया जाता है। अस्तु—

सम्पूर्ण राजस्थान को अर्बुदाचल या अरावली पहाड़, जिसे मारवाड़ी-भाषा में 'आड़ावला' कहते हैं, दो भागों में बाँटा है, एक पश्चिमोत्तर प्रान्त और दूसरा दक्षिण-पूर्वीय प्रान्त।

पश्चिमोत्तर राजस्थान सम्पूर्ण राजपूताने का लगभग १/२ भाग है। यह नितान्त रेतीला, निर्जल, बंजर और सत्य अर्थों में मारवाड़ "मार" अर्थात् मृत्यु का द्वार है। पश्चिम में सिन्धु नद से आरम्भ होकर यह बालुकामय भूखण्ड प्रायः दिल्ली तक चला जाता है, जहाँ यमुना की बालू में मिल जाता है। इस रेगिस्तान को दो भागों में बाँटा गया है। पहला भाग 'वृहन्मरु देश' है, जो कच्छ के रण से लूनी नदी के दाहिने किनारे की ओर उत्तर को चला गया है। सम्पूर्ण जयसल्मेर, बीकानेर तथा जोधपुर का पश्चिमी और पश्चिमोत्तरीय भाग, इसी वृहद् बालुका-समुद्र के भाग हैं। इसके पूर्व में अरावली पर्वत तक का मरु-देश 'लघु-मरु' कहा जाता है। यह उसकी अपेक्षा कुछ कम भीषण, अधिक सजल तथा उपजाऊ है। राजस्थान की पश्चि-

मोत्तर सीमा से ज्यों-ज्यों दक्षिण-पूर्व को बढ़ते हैं, स्थान-स्थानों रेगिस्तान की भीषणता कम होती जाती है, जल की सुविधा बढ़ती जाती है, भूमि उपजाऊ मिलने लगती है, वृण-हीन प्रदेश की अपेक्षा हरी-भरी पृथ्वी देखने में आती है, शुष्क और रेतीले मैदानों या 'बीहड़ों' का स्थान सुन्दर और वृण-सङ्कुलित उद्यान ग्रहण करने लगते हैं। यहाँ तक कि अन्त में आवू की उपत्यका पर पिछली दशा से विलकुल उल्टे प्रकार का देश दिखाई पड़ने लगता है। इस मरु-प्रान्त में आबादी भी अत्यन्त कम है। ग्राम कभी अधिक समय तक एक स्थान पर बसे नहीं रहते, क्योंकि रेत के टीलों के कारण उन्हें सदैव अपना स्थान बदलना पड़ता है। जल प्रायः ३०० से ५०० फीट की गहराई तक खोदने से निकलता है, और ये कुएँ भी सूख कर अथवा रेत से भर कर खराब होते रहते हैं। इस तरह कुँओं की दशा के परिवर्तन के साथ-साथ गाँवों की दशा भी बदलती रहती है। प्रायः वर्षों में भी गढ़े खोद कर, अथवा पक्के तालाबों में पीने का जल इकट्ठा कर लेते हैं—क्योंकि देश भर में एक भी प्राकृतिक मीठे जल की झील या बारहमासी नदी नहीं है। रेत के दो-दो मील लम्बे तथा पचास-पचास और सौ-सौ फीट ऊँचे टीले समानान्तर रेखा में सर्वत्र फैले दिखाई देते हैं। इन टीलों के मध्य भाग की भूमि में, जिसे रेगिस्तानी पहाड़ियों की घाटियाँ कहा जा सकता है, प्रायः आबादी देखी जाती है।

लूनी नदी से पूर्व और उत्तर का भाग अरावली पर्वत-माला के पश्चिमी ढाल के जल से सिञ्चित होने के कारण मीलों तक सुन्दर चरागाहों से व्याप्त देख पड़ता है। यद्यपि इस छोटे मरुस्थल का भी उत्तरी भाग कुछ अधिक अच्छा नहीं है, किन्तु अजमेर तक यह प्रान्त कई अंशों में सन्तोषजनक है।

अरावली पर्वत-माला सिरोही-राज्य की दक्षिणी सीमा से अजमेर तक एक शृङ्खला में चली गई है, जिसके पार्व से दोनों तरफ भी कई टीले स्थान-स्थान पर निकल गए हैं। किन्तु अजमेर से आगे इसकी शृङ्खला टूट गई है और खेतड़ी तक चली गई है। ज्यों-ज्यों यह पहाड़ उत्तर को बढ़ता गया है, स्थान-स्थानों नीचा होता गया है, यहाँ तक कि आगे चल कर राजपूताने को विभक्त करने

वाली यह प्राकृतिक सीमा अदृष्ट हो गई है—यद्यपि ज़मीन का उठाव वहाँ भी जल के बहाव के द्वारा इस विभाग को व्यक्त करता है। हिमालय से नीलगिरी तक के विस्तृत भूखण्ड में विन्ध्याचल के होते हुए भी, सबसे अधिक ऊँची चोटी इस अरावली पहाड़ की ही है, जो 'आबू' के नाम से प्रसिद्ध है। यह समुद्र की सतह से ५,६५० फीट ऊँची है।

अरावली पर्वत का पूर्वीय भाग, जो सम्पूर्ण राजपूताना का लगभग $\frac{2}{3}$ है, नदी, नद, वन और पर्वतों से व्याप्त है। इसकी सुन्दर घाटी, हरे-भरे चरागाह और सुरम्य मैदानों ने दिल्ली के यवन शासकों को सदैव अपनी ओर लुब्ध बनाए रखा था। दक्षिण-पूर्व में विन्ध्य पर्वत के जल से चम्बल, बनास, सिन्ध तथा और भी कई छोटी-मोटी नदियाँ सिंचाई करती हैं। अरावली के पार्श्व पर्वत डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, मण्डलगढ़, बूंदी, भालावाड़ के उत्तर, कोटा के उत्तर तथा धौलपुर तक फैले हुए हैं, जो आगे बढ़ कर 'पठार' के रूप में ग्वालियर राज्य में समाप्त होते हैं। यहाँ वर्षा भी यथेष्ट होती है। तथा थोड़ी वर्षा में भी अच्छी फ़सल उपजती है, क्योंकि यहाँ की बालू में पानी छन कर नीचे को नहीं चला जाता, किन्तु भूमि के ऊपरी भाग में रह कर ही फ़सल का तैयार करता है। दक्षिण-भाग की काली ज़मीन का मैदान और आगे बढ़ कर मालवा की उपत्यका को बनाता है, जो अफ़ीम, कसूम, तिल, गेहूँ, रूई आदि की उपज के लिए भारतवर्ष में विख्यात है।

नदियाँ

पश्चिमी राजपूताने में लूनी तथा उसकी सहायक सूकड़ी, बाँदी आदि छोटी-छोटी नदियाँ दक्षिणी भाग को सींचती हैं। लूनी पुष्कर से निकलती है। शेष नदियाँ बरसाती हैं, जिनके द्वारा अरावली पर्वत का जल लूनी में बहता है। लूनी खारी नदी है, किन्तु वर्षा की बाढ़ के पश्चात् इसके किनारे की भूमि अत्यन्त उर्वरा हो जाती है, जिसमें जौ और गेहूँ उत्तम परिमाण में पैदा होते हैं। उत्तर में कोई नदी नहीं है। यह भाग इतना शुष्क और रेतीला है कि बाहर से आने वाली हाकरा आदि एक-दो नदियाँ यहाँ आकर रेत में विलीन हो जाती हैं।

पूर्वीय राजपूताने में बानगङ्गा, सौरल, बनास, दूसरी बनास, बेरघ, चम्बल, पार्श्वी, काबी, सिन्ध आदि

अनेक छोटी-बड़ी नदियाँ हैं, जो अरावली और विन्ध्य का जल लेकर इस देश की सिंचाई करती हैं।

भूगर्भ

भूतल की रचना के विचार से राजपूताना के दो भाग किए जाते हैं—पूर्वार्द्ध, जिसमें अर्बुद पर्वत-माला भी शामिल है, और पश्चिमार्द्ध। अरावली पर्वत-माला के सम्बन्ध में भूगर्भ-वेत्ताओं का विचार है कि किसी समय यह पर्वत वर्तमान की अपेक्षा बहुत ऊँचा था, जो अब अग्नि, जल और वायु की साक्षात्क शक्तियों के कारण छिन्न-भिन्न होते-होते इस रूप में रह गया है। जब भारत का दक्षिण प्रायद्वीप समुद्र-गर्भ में ही था और वहाँ की बलुई चट्टानों का रचना-क्रम चल रहा था, तब उस इतिहासातीत काल में भूगोल की अन्तराग्नि से वर्तमान पर्वत-माला का उद्गमन हुआ था। इसकी रचना में चमकदार अणु वाले पत्थर, कङ्कड़ तथा अत्यन्त कठोर पिरड पाए जाते हैं। चूने के पत्थर की चट्टानों, स्लेट-पत्थर तथा कार्बन नामी पिरडों की भी कमी नहीं है। पृथ्वी के केन्द्रीय आग्नेय कार्यों से इन पिरडों के स्तरों का क्रम अब बहुत-कुछ बदल चुका है। इसीलिए इन बलुई पिरडों के साथ-साथ आग्नेय पिरड भी मिलते हैं। प्रायः सब जगह चूने और स्फटिक जाति के पत्थर मिलते हैं, जिनमें बलुई चट्टानों के स्नायु-जाल भी व्याप्त हैं। इस भाग में ये बलुई चट्टानें रासायनिक हेतुओं से सफ़ेद हो गई हैं, जो सज्जमर के नाम से अभिहित होती हैं। इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार की कङ्कड़-पत्थर तथा घोंघे आदि की चट्टानें पाई जाती हैं।

पश्चिमी भाग में अधिकतर बलुआ पत्थर की चट्टानें हैं। कहीं-कहीं रेतों में आग्नेय और बलुआ कङ्कड़ की चट्टानें भी देखी जाती हैं। जालौर के पास अन्नक तथा अन्य आग्नेय-पिरड मिलते हैं। रेतीले मैदानों में हिमकालीन स्तरों की बहुतायत है। पिरडों की रचना भी विन्ध्याचल की रचना के पीछे की है। और अधिक पश्चिम में परिवर्तित जलीय पिरड तथा भूरे और लाल रङ्ग के पत्थर पाए जाते हैं। सफ़ेद रङ्ग का मुलायम चमकदार तथा छोटे दाने का पत्थर भी इधर मिलता है। इस भाग में रेत के नीचे कुएँ खोदते समय कोयला के स्तर भी मिलते हैं। अनेक स्थानों पर मुलतानी मिट्टी के स्तर भी घूर तक फैले हुए हैं।

प्राकृतिक उपज

जङ्गलों में प्रायः ढाक, धाय, जामुन, गूलर, करैया, सेमल, तेंदू, आम, महुआ तथा बाँस के छोटे-छोटे पेड़ दिखाई देते हैं। यों तो आबू की चोटी को छोड़ कर, इस प्रान्त में घने जङ्गल हैं ही नहीं, और प्राकृतिक दशा को देखते हुए हो भी नहीं सकते, तो भी मेवाड़ के दक्षिण-पश्चिम में मीलों तक घने जङ्गल हैं। बाँसवाड़ा, डूंगरपुर तथा प्रतापगढ़ घने जङ्गलों में ही आबाद हैं। यहाँ तो सागौन तक उत्पन्न होता है। बूँदी, कोटा, अलवर तथा करौली में भी काफ़ी जङ्गल हैं। धामन, खेजड़ा, झुबेरी, केसी, कूम्ह, पीलू, बहेड़ा, आमला, बबूल, नीम, इमली करौदा आदि के पेड़ों के जङ्गल भी जहाँ-तहाँ पाए जाते हैं। किन्तु परिवर्तमान जङ्गल प्रायः इन सबसे शून्य हैं। सफ़ेद मूसली, कौंच, मतीरा आदि और भी कई उपज हैं, जो राजपूताने की स्थावर सम्पत्ति को बढ़ाती हैं।

खनिज पदार्थों में पत्थर की गणना सर्व-प्रथम होनी उचित है। ताजमहल का सब पत्थर इसी राजपूताने की मकराना की खान का है। जोधपुर, सोजत, नागौर और मेड़ता में पत्थर की बड़ी-बड़ी खानें हैं, जिनसे प्रायः पटाव के काम की पट्टियाँ बाहर भेजी जाती हैं। जयसलमेर में चाद और तलचर की खानें, मैलानी का पत्थर, वारमेठ (जोधपुर), गजमेर (बीकानेर) आदि और भी कई प्रसिद्ध खानें हैं, जिनसे लाखों रुपए का पत्थर बाहर को जाता है। लगभग ८६ हजार रुपया वार्षिक कर की आय तो इन खानों से अकेले जोधपुर-राज्य को ही है। किन्तु इन सब बड़ी-बड़ी खानों पर आधिपत्य है प्रायः यूरोपियन ठेकेदारों का। मकराना की प्रसिद्ध खान भी एक अङ्गरेज़-ठेकेदार के ही पास है !

खेतड़ी, सिद्धाना, साजत, पाली तथा जोधपुर में भी सैकड़ों पहाड़ियों पर पुराने समय में ताँबा निकाले तथा शोधे जाने के चिन्ह मिलते हैं। इन्हीं पत्थरों से वृत्तिया और फिटकरी भी बनाई जाती थी। अलवर की प्रसिद्ध दूरीबा नामक खान में ताँबा और सङ्क्रिया मिश्रित लोहा मिलता है। लोहे की खानें जयपुर, अलवर, कोटा और उदयपुर में पाई जाती हैं। किसी समय केवल उदयपुर को ही सीसा, ताँबा और जस्त की खानों से तीन भाग्य वार्षिक की आय थी ! फोवाण्ट (एक प्रकार का

खनिज द्रव्य, जो धातु पर मीनाकारी का काम करने के लिए काम में लाया जाता है) खेतड़ी की खानों से निकाला जाकर सेहता के नाम से जयपुर और दिल्ली के बाजारों में बिकता है। अरावली की पहाड़ी खानों में अभ्रक तथा प्रसिद्ध अभ्रिस्तम्भक द्रव्य 'एस्वस्टस' पाया जाता है, जिसकी सहायता से फायरफ़्लू तिजोरियाँ बनाई जाती हैं। जोधपुर की कितनी ही खानों में खड़ी नामक सीमेण्ट प्राप्त होता है, जिसकी सहायता से ५०-५० मन के पत्थर केवल १ सेर मसाले से जोड़े जा सकते हैं।

इसी प्रकार से 'बोलफ़ॉर्म' नाम की एक भू-से उड़ जाने वाली वस्तु भी पाई जाती है, जिससे बारूद बनाई जाती है। इसकी खान भी एक अङ्गरेज़-ठेकेदार के पास है।

कहने का अभिप्राय यह है कि राजपूताना खनिज सम्पत्ति में यथेष्ट धनी है, किन्तु यहाँ की प्रायः सभी खानें—सोना, चाँदी, ताँबा आदि से लेकर कोयला और मुलतानी मिट्टी तक—या तो बन्द हैं और उनसे माल नहीं निकाला जाता, या उन पर अङ्गरेज़-व्यापारियों का अधिकार है। हमारा ख्याल यह है कि राजपूताने के राजा-महाराजा अपने देश की खनिज सम्पत्ति को इसीलिए छिपाए हुए हैं कि यदि वह प्रकट हो गई तो अङ्गरेज़-ठेकेदारों के हाथ में चली जावेगी और राज्य तथा उसकी प्रजा को कुछ भी लाभ न होगा !!

राजपूताना की एक सबसे प्रधान उपज नमक है, जो साँभर झील से निकाला जाता है। साँभर झील से लगभग एक करोड़ मन नमक प्रतिवर्ष निकाला जाता है, जिसके निकालने का खर्च एक आना प्रति मन से अधिक नहीं पड़ता, किन्तु वह १) २० से २) २० मन तक बिकता है और यह सब लाभ अङ्गरेज़-सरकार को ही होता है ! जयपुर और जोधपुर-राज्यों को, जिनकी वास्तव में यह झील है, क्रम से १० और २५ लाख से अधिक किसी प्रकार भी नहीं मिलता। यह भी ध्यान देने की बात है कि राजपूताने में, यद्यपि पचपदरा, डोंडवाना, फालोदी, लूनी, कचोर, रिवासा, लूनकरण, कानोड़ आदि अनेक स्थानों में नमक बन सकता है, किन्तु अङ्गरेज़ी सरकार की आज्ञा के कारण कहीं भी नहीं बनाया जा सकता। यही दशा और भी खनिजों की है !

खाद्य-सामग्री

ज्वार, बाजरा, गेहूँ, चना, जौ, तिल, कपास और मक्का के अतिरिक्त, मारवाड़ की भूमि में अफीम भी उत्पन्न होती है। किन्तु सबसे अधिक महत्व बाजरा और ज्वार का ही है, क्योंकि सर्वसाधारण का मुख्य भोजन भी यही है और सबसे ज्यादा उत्पन्न भी ये ही पदार्थ होते हैं। यद्यपि एक प्रकार से इसे 'बाजरे का मुल्क' ही कहना चाहिए, किन्तु यहाँ के गेहूँ की भी विशेष प्रशंसा की जाती है। तो भी अकाल के दिनों में यहाँ की प्रजा की बड़ी दुर्दशा हो जाती है। नित्य का साधारण भोजन बाजरे की रोटी, छाछ में घोला बाजरे का आटा, बाजरे की खिचड़ी, मक्के या बाजरे का दलिया अथवा घाँट और ज्वार, अमचूर, पीलू, कीकड़ आदि की उबाली हुई फलियों का शाक है ! किन्तु अकाल के अवसर पर तो भरवारी का बिरचुन (वेर-चूरण), गूलर, टीबरू आदि वृक्षों की छाल, वहेड़े के बीज, महुए के फल, बबूल की फली, नीम के फल, इमली के चिपूँ आदि न मालूम क्या-क्या यहाँ के रहने वाले खा जाते हैं। यहाँ तक कि मुल्तानी मिट्टी और धिया मिट्टी तक खा लेते हैं !!!

पशु

अरब की नाई ऊँट ही इस मारवाड़ की प्रधान पशु-सम्पत्ति है। अनेक स्थानों में इसे अपने बच्चे की तरह पालते हैं। इसे खेत में हल चलाने, सिंचाई करने, बोभा ढोने, यात्रा करने, पानी लाने, आदि अनेक कामों में बतते हैं। इसका दूध पीते हैं, उन का वस्त्र बनाते हैं तथा बेचते हैं और मरने के पीछे घी और तेल के कुप्पे भी इसी की खाल से बनते हैं। ये ऊँट रात भर में मार्ग भी १०० मील तक चल लेते हैं। जयसलमेर, जोधपुर और बीकानेर ऊँटों के ही मुल्क हैं। किन्तु मलानी या बालोचा और जालौर के खेत घोड़ों के लिए भी उसी प्रकार प्रसिद्ध हैं। यहाँ के ये पशु बड़े डीलडौल के, चुस्त और अधिक समय तक बिना खाए-पिए रहने वाले होते हैं।

मारवाड़ का देश भेड़ों के लिए भी विख्यात है। दूध के अतिरिक्त उन के लिए भी ये पाली जाती हैं। सच बात तो यह है कि उन भी यहाँ के व्यापार की एक विशेष वस्तु है। ये भेड़ें बाहर की प्रजा के भोजन के लिए भी इस देश से यथेष्ट संख्या में भेजी जाती हैं। विशेष कर जयसलमेर की

भेड़ें अपने अत्युत्तम मांस के लिए ही पसन्द की और खरीदी जाती हैं। बीकानेर की भेड़ें, जहाँ की लोई प्रसिद्ध है, भारत भर में सबसे बड़ी होती हैं।

इसी परिचमी-दक्षिणी भाग में गाँव भी अधिक दुधार होती हैं, जो दस सेर तक दूध देती हैं और दो सौ रुपए तक बिकती हैं। नागौर का बैल प्रसिद्ध है। इसका शरीर ऊँचा और बड़ा, साँग और खुर टोस तथा कोहान ऊँचे और बड़े होते हैं। इसका मूल्य तीन सौ रुपए तक होता है। पशु-सम्पत्ति के विचार से राजपूताने की प्रजा कम भाग्यशाली नहीं समझी जा सकती।

भू-सम्पत्ति

राजपूताने में दो प्रकार की भूमि है—खालसा अर्थात् दरबार की एक मात्र सम्पत्ति, और जागीर। जागीर से मतलब है इनाम, भूमि, शासन, सुआफ़ी, धर्मादा आदि भिन्न-भिन्न नामों से ऐसी भूमि का, जिस पर सरकार का सार्वजनिक रूप से अधिकार है एवं सार्वजनिक तथा सरकारी सेवाओं के कारण, जिसका स्वामित्व बदलता रहता है। जिस राज्य में जितना ही 'सरदार-मण्डल' या ठाकुर आदि राजवंशधरों का सङ्गठन बलवान् है, उसमें खालसा भूमि उतनी ही कम तथा सार्वजनिक भू-क्षेत्र अधिक है। जोधपुर-राज्य में सम्पूर्ण क्षेत्र का लगभग सातवाँ भाग ही खालसा है; उदयपुर में चौथाई, जयपुर में ४० प्रति सैकड़ा, कोटा में ७४ प्रति सैकड़ा भूमि खालसा है। किन्तु अलवर और भरतपुर में रुपए में चौदह आने भूमि खालसा हो चुकी है, सार्वजनिक सम्पत्ति केवल दो आना भर रही है। इसका अर्थ यह है कि जहाँ-जहाँ सार्वजनिक सम्पत्ति कम है, वहाँ के शासक अधिक स्वतन्त्र और स्वेच्छाचारी हैं एवं अपने हाथ में सब प्रकार की शक्ति ले चुके हैं। इसीलिए वे सार्वजनिक सम्पत्ति को धीरे-धीरे खालसा करते रहे हैं। तो भी अलवर, धौलपुर, बीकानेर के कुछ भाग तथा झालावाड़ को छोड़ कर, शेष सम्पूर्ण देश में ज़मींदारी प्रथा नहीं है। अर्थात् खालसा ज़मीन का कर (या लगान) राजा स्वयं वसूल करता है। या ज़मीन प्रायः कच्चे और पक्के पट्टे पर उठाई जाती है। कच्चे पट्टे की ज़मीन पर से किसान को कभी भी बेदखल किया जा सकता है, वे प्रायः खेती के काम के लिए ही दी जाती हैं। किन्तु पक्की ज़मीन मौसमी होती है और

काश्तकार दरबार की रज़ामन्दी से उसकी रहन और बै भी कर सकते हैं।

जागीर

जागीर की ज़मीन जीवन भर के लिए होती है। जागीरदार प्रायः राजपूत होते हैं और उन्हें इन जागीरों के बदले में राज्य की कोई सेवा करनी पड़ती है। कभी-कभी वे इसके बदले में सैनिक, घोड़े या घुड़सवारों के द्वारा राजा की सेवा करने की शर्त करते हैं। जागीरदार के मरने पर, या उसके किसी राजद्रोहात्मक आचरण के लिए या शर्त के अनुसार, या नियत शर्तबन्दी की सेवा न कर सकने की दशा में, ये जागीर ज़ब्त हो जाती हैं। किन्तु उसके वारिस को नज़राना देने, हुज़ूर में हाज़िर होने तथा खिलअत लेने की दशा में फिर दे दी जाती है। प्रायः अपने मुसाहबों या इष्ट-मित्रों पर प्रमत्त होकर भी राजा महाराजा ऐसी जागीर दे देते हैं तथा उन्हें दरबार में सदैव या दरबार की इच्छानुसार हाज़िर होने के अतिरिक्त और कुछ सेवा नहीं बजानी पड़ती। किसी-किसी जागीरदार को सिपाही आदि के बदले में कुछ रुपया ही प्रति वर्ष देना पड़ता है, जो प्रायः नियत सिपाहियों की संख्या के वेतनादि खर्चों के बराबर होता है। जागीरदारों को समय-समय पर दरबार की भेंट भी देनी पड़ती है; जैसे 'वार्षिक भेंट' 'दरबार की भेंट' 'राज्याभिषेक की भेंट' आदि-आदि। जागीरों बेची नहीं जा सकतीं, यद्यपि रहन कर दी जाती हैं।

'भूमि' और इनाम आदि

भूमियां वे कहलाते हैं जो राज्य संशुद्ध, किन्तु नाम-मात्र कर पर ज़मीन लेकर जोतते-घाते हैं। ये ज़मीन 'भूमि' कहलाती हैं। इन भूमियों को चौकीदारी आदि के सामान्य काम भी करने पड़ते हैं और जब तक वे ऐसी सेवा करते रहते हैं, तब तक वे भूमि के अधिकारी बने रहते हैं। भूमियां अधिकतर राजपूत हैं।

इनाम, शासन, मुग्राफ़ी, धर्मादा की ज़मीन केवल एक जीवन भर के लिए दी जाती है। इनामदार आदि का इस प्रकार की ज़मीन प्रायः गुज़ारे के लिए, किसी राज-सेवा की तनख़्वाह या पेन्शन के रूप में, अथवा ब्राह्मण, चारण आदि को वृत्ति के रूप में, या मन्दिर आदि के खर्च के लिए दी जाती है। मन्दिरों को दी हुई ज़मीन बेची नहीं जा सकती तथा वह सदा के लिए होती है।

लगान आदि

इस तरह यह स्पष्ट है कि राजपूताने में ज़मींदार को लगान नहीं देना पड़ता, किन्तु सीधा राजा को ही भूमि-कर देना पड़ता है, और यह कर ज़मींदारी की अपेक्षा अत्यन्त कम होता है। जहाँ यह कर उपज के भाग के रूप में प्राचीन पद्धति के अनुसार दिया जाता है, वहाँ कभी-कभी बारहवें भाग तक होता है, किन्तु आधे भाग से अधिक कभी नहीं होता। जहाँ बटाई का स्थान नक़्द लगान ने ले लिया है, वहाँ डेढ़ आना प्रति एकड़ (१½ पक्का बीघा) से बीस रूपए एकड़ तक की शरह पाई जाती है। यह पिछली शरह सर्वोत्तम और आबी ज़मीन की है।

कला-कौशल और व्यापार

इस लेख के अन्त में एक विस्तृत सूची में राजस्थान के भिन्न-भिन्न स्थानों की कारीगरों का विवरण देकर, यह बताया गया है कि किन स्थान में छौन सो वस्तु तैयार होती है। ये चीज़ें मामूली नहीं बनतीं, किन्तु अपने ढंग की बहुत बढ़िया और आदरणीय होती हैं। तो भी अच्छे रास्ते, मात्र ढोने तथा व्यापार की राजकीय सुविधा न होने के कारण वे अधिक दूर तक बिकने नहीं जातीं और यथेष्ट मार्केट न मिलने के कारण ये कारीगरियाँ प्रायः नष्ट होती जा रही हैं !!

यह आश्चर्य की बात है कि संसार की एक प्रसिद्ध तथा भारतवर्ष की मुख्य व्यापारिक जाति अर्थात् मारवाड़ी अपने देश के व्यापार को ही उन्नत नहीं कर सके हैं। हम ऊपर कह चुके हैं कि राजपूताने के प्रायः सभी खनिज पदार्थ यूरॉपियन व्यापारियों के हाथों में हैं। नमक पर सरकार का क़ाबू है और इन कारीगरियों की दशा मरणासन्न है !!!

आर्थिक दशा

इस विवरण से स्पष्ट है कि राजस्थान में, जहाँ तीसरे वर्ष एक तज़ा का साल, तथा आठवें वर्ष भयङ्कर अकाल आता रहता है, जहाँ की भूमि अनुर्वरा और रेतीली है, भूमि का मूल्य कुछ अधिक नहीं है। वहाँ को उपज बहुत घट गई है; ऊन और पशु-सम्पत्ति की उपज भी अधिक फलप्रद नहीं; कारीगरी प्रायान्त दशा तक आ चुकी है;

एक सेठ के दो रूप



रूपक नम्बर १

“कहिपु सेठ साहब ! ऐसे फटे हाल क्यों रहते हो ?”

“कॉई करी, गरीब बाँणियाँ हौं, फाटका में रुपैया लाग गया, ने अवार कजगार मदम है।”



रूपक नम्बर २

बीस हजार ल्यो शा ! अब तो हौं करो, थारी छोरी गहरी हुई का !



छोटो दूल्हो सदा सुहाग

जवाँई आया सासरे, कर पूरो सिणगार ।

आगे गाल्याँ गावसी, हाँसी करसी नार ॥





प्रजा को अकाल के समय मुलतानी और घिया मिट्टी तक से पेट भरना पड़ता है ! अतः मारवाड़ी-प्रजा सामान्यतः कष्ट में जीवन व्यतीत करती है। यही कारण है कि आए दिन तनिक भी वर्षा न होने की दशा में बागड़ी, मारवाड़ी आदि अन्य प्रान्तों में चले आते हैं। उन्हें इसीलिए अपने देश से अधिक प्रेम भी नहीं रहता और उनका जीवन स्थिर न होने के कारण उत्तम वृत्तियों का विकास भी वे नहीं कर सकते। कलकत्ता, बम्बई और नागपुर आदि में बड़ी-बड़ी कोठियों वाले मारवाड़ी सेठ, जो अपनी व्यापार-कुशलता दिखाते हैं, वह वास्तविक व्यापार-कुशलता नहीं है, किन्तु विदेशी माल की दलाली मात्र है !! हमारे इस कथन का प्रमाण यही है कि उनके अपने स्वदेश का व्यापार और कला-कौशल प्रायः नष्ट हो चुका है।

यहाँ की प्रजा की आर्थिक दशा के सम्बन्ध में आज से २० वर्ष पहले अङ्गरेज-सरकार ने अपना मन्तव्य इस तरह प्रकट किया था :—

“नगर में प्रजा की साधारण आर्थिक अवस्था सन्तोषजनक है तथा ३०-४० वर्ष पहले की अपेक्षा वर्तमान रहन-सहन बहुत ऊँचे दर्जे का हो गया है। मध्यम-श्रेणी के मुनीमों को स्वच्छ वस्त्र पहनने, सुख से खाने-पीने और अपनी सन्तान को अङ्गरेजी शिक्षा देने के खर्च के लायक आमदनी हो जाती है; उनका घर भी, यदि उसमें साधारण सामग्री हो, तो आराम से रहने का स्थान होता है; और प्रायः वे अपनी निजी सेवा के लिए सेवक भी रख सकते हैं। किन्तु इसके विरुद्ध ग्रामों की प्रजा के रहन-सहन में कुछ भी अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। प्रत्युत किन्हीं राज्यों में तो उनका और अधिक अधःपतन हुआ है। विशेष कर पिछले अकाल के कारण केवल अपनी किरायातशारी तथा अनावश्यक बातों में व्यय न करने के (स्वाभाविक) गुणों के कारण ही वे अपनी गुज़र कर रहे हैं। सब मित्रा कर किसानों के पास न घर ही है और न यथेष्ट वस्त्र। उनको यदि पर्याप्त भोजन मिल भी गया तो वह घटिया किस्म का अनाज (या कदन्न) होता है।”

सच बात तो यह है कि देश के किसी न किसी भाग में सदैव अकाल पड़ता रहता है। यदि आज कहीं

अन्न-काल है, तो दूसरे स्थान में तृणकाल, तीसरे स्थान में जल-काल और चौथे स्थान में त्रिकालात्मक सर्वकाल ! यही कारण है कि प्रजा दरिद्र और दीन है। तिस पर कई प्रकार की नौत आदि की कुरीतियाँ उसे अधिक दरिद्रता में फँसाए रखती हैं। राज्यों तथा ठाकुरों और सरदारों की नित्य की भेंट-वेगार वैसे ही कुचलती रहती है। शिक्षा के अभाव और आने-जाने के मार्गों की कठिनता ने देश की जो कुछ भी कारीगरी है, उसके विस्तार को रोक रखा है। यह दूसरी बात है कि वीकानेर, चूरु, उदयपुर, जयसलमेर आदि कुछ नगर इस मरु-समुद्र के बीच में, समुद्रस्थ दूर-दूर पर बसे हुए छोटे-छोटे टापुओं की तरह अपनी उच्च और प्रस्तर-निर्मित उच्च इमारतों से सुशोभित हैं, जहाँ बड़े-बड़े सम्पत्तिशाली तथा धनिक मिल सकते हैं। किन्तु इन थोड़े से पँजीपतियों के अस्तित्व से साधारण प्रजा को कुछ भी लाभ नहीं। क्योंकि ये भी ग़रीब प्रजा को आवश्यकता के समय असाधारण व्याज पर कर्ज़ देकर उसी का रक्त पीते हैं। शताब्दियों से वालू की कठिनता के कारण शत्रु का नाशक और हरणकर्ता हाथ इन स्थानों तक नहीं पहुँच सकने से ही यह धन संग्रह हो सका है ! अन्यथा मैदानों के नगरों की सम्पत्ति और आपत्ति को देखते हुए यह धन-भण्डार कुछ भी नहीं है।

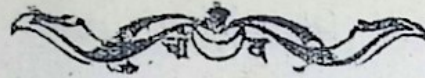
संक्षेप में देश की खनिज सम्पत्ति एक प्रकार से व्यर्थ पड़ी है और जो कुछ निकाली भी जाती है उस पर विदेशियों का अधिकार है। किन्तु राजस्थान में इसकी कमी नहीं।

पशु-सम्पत्ति का उपयोग उलटी तरह से होता है। भेड़ें उन के लिए पालने की अपेक्षा, बाहर मांस को भेजने के लिए पाली जाती हैं।

कृषि-सम्पत्ति का महत्व कुछ भी नहीं। न बाहर को कुछ भेजा जाता है और न इतना उत्पन्न ही होता है कि बाहर को भेजा जा सके। शक्कर तो देश भर में कहीं भी नहीं उत्पन्न होती।

मज़दूरी या कला-कौशल का विस्तार अधिक नहीं है, और न कच्चा माल तैयार करके देश से बाहर भेजने के साधन या सुविधाएँ हैं।

देश दरिद्र है; प्रजा अयोग्य है, व्यापारी विफल हैं,



राजा निर्बल हैं, रोजगार-धन्यों का अभाव है; लोगों की जीवन-परिस्थिति अस्थिर है। मारवाड़ी-जीवन में से यदि ब्रिटिश-भारत का जीवन निकाल दिया जावे, तो वह निस्सार, निर्वीर्य और निस्तेज है!

राजस्थान की प्रसिद्ध कारीगरों

अलवर

अलवर—चीरे, लहरिए।
किशनगढ़, त्रिपालपुर, गढ़बसई—झोंट
बहादुरगढ़—हुक्के के नैचे।
मादले—पत्थर के प्याले।
राजगढ़—रङ्गीन छड़ी
हरसोरा—तोशक, ज़ाजिम।

उदयपुर

उदयपुर—लकड़ी का खरादी काम; सुनहरी छपाई;
मिट्टी की गणेश की मूर्तियाँ।
ऋषभदेव जी—काले पत्थर की रकाबी और प्याले।
जाजपुर—लकड़ी का खरादी काम।
भीलवाड़ा ताँबे; पीतल और कलई के वर्तन; हुक्के
की कली; कटोरा; गिलास वगैरा वर्तन।

करौली

करौली—झोंट; तथा लकड़ी-पत्थर का काम।

किशनगढ़

किशनगढ़-राज्य—झोंट; सेलखड़ी के प्याले; पङ्के;
सुराही; गिलास।

कोटा

इटावा—हाथीदाँत के खिलौने; कलमदान।
इन्द्रगढ़—लकड़ी के रङ्गीन खिलौने।
किशनगढ़—सागौन के पाए।
कोटा—मखमल; महमूदी डोरिया; पगड़ी; डुपटे;
धोती।
बाँरा—चूँदड़ी।

जयपुर

जयपुर—कलमी तख्तार; पत्थर और मिट्टी के
खिलौने; देव-प्रतिमाएँ; लाख की चूड़ी; पीतल, काँसे के
वर्तन (सादे और नक्काशीदार); कसूम की रँगई का काम;

हथियार; सोने-चाँदी के जड़ाऊ और मीनाकारी के गहने;
गोदा-किनारी; कलाबत्तू; सलमे-सितारे का काम।

कोटाकासम—रेज़ी, दोहर।

भुनभुनू—हुक्के और चिलमैं।

दोसा—मूर्तियाँ और एक क्रिस्म का कपड़ा, जो
'कायमखानी' कहलाता है।

वगरू—छपे चादरे और डुपटे।

वसवा—मिट्टी के खिलौने और वर्तन।

वैराठ—लकड़ी के कलमदान, सन्दूकचे और रेज़ी
के थान।

खण्डेला—लकड़ी के सिङ्गारदान; डिब्बे; पलँग के
पाए; जूते।

खण्डार—खस के पङ्के, पलँग के पाए; पारे के काम
के कङ्के।

झोरावरगढ़—भरत के हुक्के; ताले; चाकू।

टोड़ाभीम—रेज़ी।

दतेभा—दाँता।

वोली—लोहे का काम और रँगई।

पिण्डाणा—खस का अतर।

मालपुरा—ऊन के नमदे; आसन; झीन।

हिण्डौन—बादशाही कपड़ा।

सवाई माधोपुर—काशज़; लकड़ी का खरा काम;
रँगे और छपे कपड़े; पत्थर के पानी पर रने वाले
खिलौने; कलमदान, गङ्गीका।

साँगानेर—पक्की छपाई के कपड़े; रुमाल; डुपटे;
धोती; साड़ी; चादर; झोंट और काशज़।

सिंहाना—जूना और चमड़े का काम।

जयसलमेर

जयसलमेर—पत्थर की चमकदार रकाबी; प्याले;
खरल।

देवीकोटा—पत्थर का काम।

सागढ़—ज़ाजिम।

जोधपुर

आसोप—देसी जूट; ज़ाजिम; पलँगपोश; रज़ाई;
लुङ्गी; ताँगे; नाड़ियाँ।

ओसियाँ—ऊनी कम्बल और खेस।

कुचामन—बन्दूक; तमझा; घड़ी; यन्त्रराज; ताले;
पिचकारी; पानी चढ़ाने के बन्ध; तलवार के कञ्जे; चक्र-
दार कर्शी पङ्के; कङ्के; लकड़ी के डिब्बे-डिबिया; रँगई
का काम; देशी छोट ।

खेतासर—जूट अर्थात् ऊँट के बालों की दरी
और कर्शी ।

जालौर—टुकड़ी ।

जेतारन—घोड़े का साज; पत्थर और लकड़ी पर
रँगई और खुदाई का काम; तलवार; बन्दूक; उस्तरा;
कैंची और चिमटी ।

जोधपुर—टुकड़ी; काजलिया और समन्दरी लहर
की रजत; जरी और पट्टे का काम; पत्थर की खुदाई;
हाथी दाँत के चूड़े; बटन; कङ्के; कङ्की; चाँदी-सोने के
बर्तन; गहने; हुक्के; तुर्रे; कलंगी; पगड़ी और चूँदड़ी ।

डीडवाना—पीतल के बर्तन और पिचकारी ।

नागौर—हाथी दाँत के खिलौने; बटन; पीतल के
बर्तन; पक्के रज के ऊनी कम्बल; और खेस; सूती सफ़ेद
और रज्जीन कपड़े; हुसूती; पगड़ी; लुहारी; सुनारी;
खातियों तथा सिलावटों के औज़ार ।

नावी—सोजनी; गोंद की मिठाई ।

पचपदरा—हाथी दाँत के फ़व्वारे; बागवाड़ी; पङ्कों
की डण्डी; सुरमेदानी; भरन के बर्तन और खिलौने ।

पाली हाथी दाँत के खिलौने आदि; देशी छोट;
हुपट्टा; रज्जाई; तोशक और लाल कपड़े के थान ।

पीपाड़—लुङ्गी; ज़ाजिम; पलंगपोश; मेज़पोश ।

पोकरण—पक्के रज की चूँदड़ी; ओढ़नी; छोट; रामदेव
के नाम की छपी धोती; और पगड़ी ।

फलौदी—जूट के गद्दे और कालीन; जूट और सूत के
भाकले; लोई और रज्जीन ओढ़नी ।

बड़गाँव—तलवार की मुँठ; बालीबाँस की टोकरी ।

बालोतड़ा—छपी चूँदड़ी ।

बीलाड़ा—देशी कपड़ा; रेज़ियाँ; पगड़ी; धोती ।

बीसलपुर—लोहे के चूल्हे; कढ़ाई; अँगूठी ।

बूसी—ज़ाजिम; तोशक; रज्जाई; लुङ्गी ।

बोराबड़—सोने का हल्का पतला काम ।

भकरी—शतरंजी; पदें; कर्शी ।

मीनमाख—काँसी के लोटे बर्तन ।

मकराना—पत्थर का काम; इमारत का सामान;
रकाबी; प्याले; प्रतिमाएँ; खिलौने; मेज़; कुर्सी; मीरक़श
मारोठ—देशी और विलायती सूत की पगड़ी, टुकड़ी ।
मैंडवा—जाटनियों के बनाए क़सीदे के काम; ओढ़ने
दामन; और धाबला बग़ैरा ।*

मेड़ता—ख़स के पङ्के; पङ्की; क़नात; बट्टी; पदें;
हुक्के; सटक; रकाबी; प्याले; सुराही; ख़ासदान; नदला;
गोधी; चकमा; निवाड़; शतरंजी; साबुन; मिट्टी और हाथी-
दाँत के बटन; खिलौने; छल्ले; पङ्के की डण्डी; और क़लम ।

सथलाना—काँसे की थाली, कटोरी ।

साँभर—नमक के खिलौने; पोतल-काँसी के बर्तन ।

समदड़ी—चूँदरी, दुसूती,

रोहल—लोहे के बड़े-बड़े कड़ाव ।

भालावाड़

आवर—काले रज के डुपट्टे ।

गङ्गार—आल की रँगई का काम ।

डिग—सरोते; बल्लें; कटारी; कैंची; चाकू ।

टोंक

टोंक—बनाती जूते; ज़ीन; खोगोर ।

पिण्डावा—सोने-चाँदी की लैस या गोटा ।

सिराज—जरी के मन्दील; सेलें; और साड़ी ।

शेष रियासतें

डूंगरपुर—लकड़ी का ख़रादा काम; काले पत्थर की
मूर्तियाँ और बर्तन ।

धौलपुर—लकड़ी और लोहे का काम तथा खज़ूर के
पङ्के ।

प्रतापगढ़—मीना के काम का गहना ।

बीकानेर—मिश्री; लोई; हाथी दाँत का चूड़ा; कालीन;
शलीचा; पट्टे; धुस्सा; बूट ।

बूंदी—गुले-अनार रजत और कटारी ।

भरतपुर—लकड़ी और पत्थर के प्याले; बर्तन; मिट्टी
के बर्तन; और खिलौने ।

सीकरी—मिठाई ।

सिरौही—तलवार; छुरी; कटारी; चाकू; सरोते ।

* यह काम इतना सुन्दर होता है कि युरोपियन भी यह
शौक से खरीदते हैं ।

ठकुरानी

[आचार्य श्री० चतुरसेन जी शास्त्री]



कदाता ! मैं शरीर चाहती हूँ ।”

“चुप लुची, हाँ रे भूरासिंह
क्या है ?”

“सरकार ! यही है वह !”

“तू प्याऊ पिलाती है ?”

“जी हाँ सरकार !”

“तेरा गाँव कौन सा है ?”

“गाराड़ा, महाराज, प्याऊ से कोस भर दूर है ।”

“तेरे कोई है ?”

“सरकार ! मैं अकेली दुखिया हूँ ।”

“तेरा नाम क्या है ?”

“रामप्यारी !”

“अच्छा ज़रा आगे को सरक के बैठ जा”—इतना कह कर ठाकुर साहेब ने अपना एक पैर उसकी छाती पर धर दिया ।

ज्येष्ठ की दुपहरी जल रही थी । गर्म लू चल रही थी । मारवाड़ के... ठिकाने के ठाकुर साहेब अपने सुनलान बैठक़वाने में कुर्सी पर बैठे प्याले पर प्याले शराब उड़ेल रहे थे । उस गर्मी में उस भयानक मदिरा ने उनके माथे की नमों को तान दिया था, चेहरा और आँखें लाल हो गई थीं, आवाज़ फटे बाँस के समान निकल रही थी ।

स्त्री की अवस्था २२ वर्ष के लगभग थी । साधारण सुन्दरता की भड़क उसके समस्त शरीर पर थी—वह मैले वस्त्र पहने अतिशय भयभीत दृष्टि से भूमि पर पड़ी हाथ जोड़ कर ठाकुर साहेब से अर्ज़ कर रही थी । ठाकुर के हुक्म से ज्योंही वह आगे को सरकी कि ठाकुर ने अपना पैर उसकी छाती पर धर दिया । इसके बाद वह गिलास की शराब को गटागट पीकर बोले :—

“हाँ, रामप्यारी ! तुम हमारी भी प्यारी हो !”

“अकदाता ! दुहाई ! आप साँ-बाप हैं ।”—इतना कह कर उसने धीरे से ठाकुर साहेब का पैर धरती पर रख दिया और आप पीले को सरक कर अपने नज़रें झेंझा कर बैठ गई ।

ठाकुर साहेब तैश में आ गए । उन्होंने मुँह तक डाट कर दो गिलास गटागट पीए और फिर अबला को धुरते हुए उठ खड़े हुए और गरज कर बोले—क्या देखता है रे भूरासिंह ! उतार दे दस !!!

भूरासिंह ने अनायास ही उसे अपने बलिष्ठ हाथों में उठा लिया और दूसरे कमरे में ले गया ।

*

*

*

वह अर्द्ध-मूर्च्छितावस्था में खून में लथपथ पड़ी कराह रही थी । ठाकुर साहेब ने एक हलकी लात जमा कर कहा—“क्यों ? ठिकाने आई ?” करुण-मेत्रों से चुपचाप ताकते हुए अबला वेदना से तड़प रही थी । ठाकुर ने कहा—बोल ! मेरा हुक्म टालेगी !

अबला ने कहा—सरकार ! अब तो पन लुट गई, जान वाक़ी है वह भी ले लो, आपको अख़्तियार है ।

ठाकुर साहेब ने पैशाचिक हँसी हँस कर कहा—छिनाल ! तब इतना नज़रा क्यों किया था ?

स्त्री चुप रही । ठाकुर साहेब धीरे-धीरे चल दिए ।

२

“सरकार ! मेरे आपके बीच गज़ा है !”

“बेवक़ूफ़ तुम्हें विश्वास नहीं आता !”

“ज़िन्दगी निबाहनी आपके हाथ है !”

“कह दिया न, कि रजपुरा गाँव का पट्टा तुम्हें दे दिया जायगा !”

“और तुम्हें ज्योंदियों में रहने को जगह मिलेगी ?”

“जब तक ठकुरानी नहीं आती तब तक तो ठीक है, पर उसके सामने निबाह होना मुश्किल है—उसका मिज़ाज बेदब है ।”

“तब मैं कहीं की न रहूँगी ?”

“पर तुम्हें मालूम है कि मेरे सामने ज़िद किसी की नहीं चलती, जो कहता हूँ उस पर भरोसा कर और मौज कर ।”

इतना कह कर ठाकुर ने स्त्री का हाथ पकड़ लिया । मदिरा की शक्ति से स्त्री का सिर झिझा गया और उसने

बलपूर्वक घृणा को रोक कर कहा—आप तो सरकार मर्द हैं, पर मैं मुँह दिखाने लायक न रही, यह भी तो सोचिए !

“कम्बख्त ! प्याऊ पर पानी पिलाने वाली से रानी बनी जाती है, राँड़ ! और नज़रें करे जाती है, क्या फिर भूरासिंह को बुलाऊँ ?”

“दया करो, नहीं मैं मर जाऊँगी !”

“मर कर अपनी ही जान से जायगी । जीती रहेगी और मेरी मर्ज़ी के माफ़िक़ काम करेगी तो मौज़ में दिन कट जावेंगे ।”

“पर आप यह वादा करें कि आपकी नज़र तो न फिर जायगी ? आप मुझे दूध की मक्खी की तरह तो निकाल न फेंकेंगे ?”

“तब क्या बुढ़ापे तक मैं तुझे पोसे जाऊँगा ?”

“चार दिन बाद क्या होगा ?”

“नई-नई चिड़ियाँ फाँस-फाँस कर लाना, तेरा यही आदर-मान बना रहेगा ।”

“हाय ! मुझे यह भी करना होगा ?”

“इसमें दोष क्या है ? तुझे इनाम कम मिला है ! निहाल हो गई—इसी तरह मैं उसे निहाल करता हूँ, जो मेरी मर्ज़ी के माफ़िक़ चलता है ।”

“झैर, तक्रदीर में जो लिखा था वह हुआ । और जो होना है वह होगा—मैं आपके अधीन हूँ—आपसे बाहर नहीं ।”

ठाकुर की बाँछें खिल गईं, मद्य की बोतल उँदेली जाने लगी । अभागिनी नारी धीरे-धीरे मन की घृणा रोक कर एक गिलास पी गई । उसके बाद ? वह कुछ कहने योग्य नहीं ।

३

शराब के घूँट गटागट करके ठाकुर साहब ने धरती में करबद्ध पड़े हुए एक युवक को लात मार कर कहा—
क्यों रे गुज़ाम ! मन्ज़ूर करता है—चाबुक मैंगाऊँ ?

युवक ने पैरों में सिर देकर कहा—सरकार माई-बाप हैं—चाहे बोटी काट डालिए—पर अन्नदाता ! यह कुकर्म मुझसे नहीं होगा ।

“कुकर्म ! अरे हरामज़ादे, कमीने कुकर्म कहता है ! दो सौ रुपए तो ब्याह में नक़द दिए, सौ अघ गौने में

दिए ! किस लिए ? गाँव की बड़े-बड़े घरों की बहुएँ गौना होकर पहले यहाँ ढोक देती हैं—तू ऐसा नवाब-ज़ादा बन गया है ।” इतना कह कर ठाकुर साहब ने एक लात युवक के जमा दी ।

युवक ने गर्दन ऊँची करके, ज़रा करारे, किन्तु वेदना भरे स्वर में कहा—सरकार चाहे जान ले लें, पर जीते जी यह होने का नहीं । आवरू शरीब-अमीर सभी की है ! आवरू के सामने जान क्या चीज़ है ।

ठाकुर ने गम्भीर गर्जन से पुकारा—भूरासिंह !

एक लठबन्द गुण्डा कमरे में आ हाज़िर हुआ । ठाकुर ने तत्काल आदेश दिया—दे, साले को गोला-लाठी दे !

देखते-देखते युवक के गोला-लाठी चढ़ा दी गई । ठाकुर ने कहा—कमीने कुत्ते ! तेरे सामने ही उस लुच्ची को नज़्ज़ी करके बेआवरू कलंगा ! भूरासिंह ! उठा तो ला रे सुसरी को !

युवक की आँखें जलने लगीं । उसने तड़प कर कहा—
“मालिक ! तुम्हारा नमक तो खाया है—पर यह याद रखना कि मुझे बनिया-बामन न समझना—यदि मेरी इज़्ज़त पर हरफ़ आया, तो मैं खून पी जाऊँगा ; इसे याद रखना । मुझे मारते-मारते आप चाहे टुकड़े कर दें, सब सह लूँगा, पर मेरी श्रौत पर जो हाथ लगा देगा, उसी को जान से मार डालूँगा—चाहे पीछे फाँसी ही लग जाय । मुझे सेठ लोगों की तरह अपनी जान इतनी प्यारी नहीं है !” इतना कह कर युवक ने इतने ज़ोर से अपना होंठ काट डाला कि खून निकल आया ।

ठाकुर युवक के भाषण से ज़ण भर के लिए सहम गया । इसके बाद उसने खँटी से चाबुक लेकर युवक की खाल उधेड़नी शुरू की । एक भयानक आर्त्तनाद से दिशाएँ काँपने लगीं । नर-पिशाच ठाकुर ने जब तक युवक बेहोश होकर न गिर पड़ा—अपनी मार बराबर जारी रखी ।

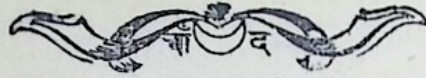
इसके बाद उसने भेड़िए की तरह शरां कर कहा—
“भूरासिंह । उठा ला उस बदज़ात को, देखें कौन उसे मेरे हाथों से बचाता है !” साक्षात् प्रेत-दूत की तरह भूरासिंह उधर को लपका ।

*

*

*

रात्रि के गहन अन्धकार को भेद कर, दीए के धुँधले



प्रकाश में बढ़ते हुए नर-पिशाच भूरसिंह को लठ लिए भीतर घुसता देख कर वृद्धा नाइन और उसकी नवागता वधू के प्राण सूख गए। बेचारी सुबह से दोनों भूखी बैठी थीं—अन्न का दाना भी उनके कण्ठ से उतरा न था। प्रातःकाल ही से उसके लड़के को ड्योड़ियों में बुला लिया गया था, और वह अब तक लौटा न था। उस पर क्या बीती होगी—इसकी दोनों असहाय नारियाँ भाँति-भाँति कल्पना कर रही थीं। नव-वधू का गौना होकर कल ही आया था—पति के उसने अच्छी तरह दर्शन भी नहीं किए थे। फिर भी वह अपद, देहावी, अबोध बालिका हृदय की धड़कन को रोक कर चण-चण पति की प्रतीक्षा कर रही थी। वृद्धा की बात तो कही क्या जाय, जिसने बीस वर्ष से उसी को देख कर गरीबी और बुढ़ापा काटा था। भूरसिंह को देख कर दोनों सक्ते की हालत में हो गईं। उसने घुसते ही कहा—“बहु ड्योड़ियों में जायगी!” वृद्धा पर वज्रपात हुआ। उसने लपक कर वधू को छाती में छिपा लिया। जिस अनुनय और करुणा की दृष्टि से उसने वज्र-पुरुष भूरसिंह को देखा, उससे पत्थर भी पानी हो जाता; पर उसने अपने बलिष्ठ बाहुओं से बालिका को खींच कर उठा लिया। उसी चण कदाचित् बालिका मूर्च्छित हो गई और एक शब्द भी उसके मुख से न निकला। वृद्धा पीछे दौड़ी, पर एक लात खाकर वह वहीं ढेर हो गई। भूत भूरसिंह अभागिनी, अरुचिता बालिका को लेकर उसी अन्धकार में विलीन हो गया। पृथ्वी पर कौन उसका रचक था? लोग कहते हैं, परमेश्वर सबकी रक्षा करते हैं, पर इन नर-पिशाचों की दृष्टि की कर्तव्यों को न जाने क्यों परमेश्वर हाथ पर हाथ धरे बैठा देखा करता है !!!

४

रात के ग्यारह बज गए थे। अभागिनी बालिका उस अंधेरे और सुनसान कमरे में धरती पर अत्यन्त उदास बैठी थी, जिसमें वह कैद की गई थी। उस अंधेड़ औरत के सिवा—जो उसे दिन में दो बार खाना दे जाती थी—तीसरे व्यक्ति की सूरख उसे तीन दिन से देखना नहीं नसीब हुआ था। हर बार अच्छे खाने उसके लिए वह रख जाती थी—और फिर उठा ले जाती थी। बालिका हृदनी भयभीत थी कि उसने न खाना चुआ और न

पानी पिया, एक प्रकार से वह अधमरी पड़ी थी। वह रह-रह कर चीख पड़ती थी।

ऐसे कमरे में बन्द होने का ख्याल ही अत्यन्त भय-ङ्कर है। वह कमरा मानो इन अभागिनी स्त्रियों को ज़िन्दा क़ब्र में गाड़ देने—दुनिया से एकदम किनारे ले जाने के लिए बनाया गया था। वहाँ न किसी के चीखने-चिल्लाने की और न किसी अन्य प्रकार के बचाव की गुंजाइश थी।

मनुष्य कामासक्त होकर कैसी बुराइयाँ कर बैठता है; लालसा कैसा खेल खिजाती है; और वासना कैसे-कैसे पागलपन के काम करा बैठती है—यह बात बहुत कम लोग जानते हैं।

धीरे-धीरे बालिका ने अपनी परिस्थिति पर विचार करना शुरू किया। वह कभी ज़ार-बेज़ार रोने लगती, कभी सोच-विचार और चिन्ताओं से अधीर हो जाती। कभी वह साहस बंदोर भागने की जुगत सोचती। परन्तु व्याघ्र के मुख में फँसी हुई हिरणी के लिए यह कहाँ तक सम्भव था। फिर भी वह साहस करके उठी—उसने अपने बिखरे हुए कपड़े सँभाले—और वह चारों ओर कमरे में चक्कर काटने लगी। उसने एक बार खूब जोर से चिल्ला कर देख लिया।

एकाएक पद-ध्वनि सुन कर उसने चौंक कर पीछे को देखा—साक्षात् पिशाच-रूप ठाकुर खड़ा था। उसने दोनों हाथ फैला कर आगे बढ़ते हुए कहा—“आ—आ—प्यारी कबूतरी.....” बालिका अतिशय भयभीत होकर इस तरह भीतर को भागी कि दीवार में टकर खाकर गिर पड़ी—रक्त की धार बह चली। वह मूर्च्छित सी हो गई और उसका सिर चकराने लगा। उस यमपुरी जैसे अंधेरे कमरे में एक विशाल-काय पिशाच को देख कर वह धरती से चिपट गई। कामान्ध पुरुष ने अपने वज्र-हाथों से उसे अनायास ही उठा लिया। उस कुमारी-समान, नव-वधू, मूर्च्छिता और रक्त में लथपथ असहाय अबला की उसने निश्शङ्क होकर पत लूट ली और उसे वहीं धरती में मूर्च्छित छोड़, चला आया।

५

“आप ऐसा नहीं करने पावेंगे!”

“तुम मेरी जोरू हो या मैं तुम्हारी जोरू हूँ?”

“यह तो आप जानिए, पर मैं आपकी विवाहिता पत्नी हूँ !”

“फिर मुझ पर हुक्म किस लिए चलाती हो ?”

“मैं हुक्म नहीं चलाती, सिर्फ कुमार्ग में जाने से आपको रोकना चाहती हूँ ।”

“मैं लुगाई का गुलाम नहीं हूँ !”

“गुलाम तो मैं भी नहीं समझती !”

“तब रोज-रोज का झगडा क्यों ?”

“आप सज्जन और आबरूदार रहस की तरह रहिए !”

“क्या तुम मुझे सज्जन बनाओगी ?”

“अवश्य ?”

“तुम्हारी इतनी मजाल ?”

“जी हाँ !”

“मैं दूध की मक्खी की तरह निकाल फेकूँगा !”

“आपकी ऐसी हैसियत नहीं है ?”

“मैं रियासत का मालिक हूँ !”

“हरगिज नहीं, आप उसके मुन्तज़िम हैं, मालिक रियाया है—जो पत्नीना बहाती है !”

“तो रियाया को खजाना लुटा दूँ ?”

“अगर उसे ज़रूरत हो तो लुटा दो, पर अपनी मौज-बहार में नहीं लुटा सकते ।”

“वाह, यह खूब कही, यह तुम्हारे बाप का खजाना नहीं है !”

“बाप के खजाने में खियों का हक नहीं होता, यह मेरे पति का खजाना है, और उस पर मेरा पूरा हक है !”

“ऐसी हक वाली बहुत देखी हैं !”

“अच्छी बात है, अब मुझे देखिएगा !”

“तुम्हें शायद अपने बाप का घमण्ड है !”

“मुझे किसी का घमण्ड नहीं है !”

“तुम इतनी सुहृद हो, ऐसा मालूम होता तो मैं तुम से व्याह ही न करता ।”

“आप ऐसे व्यभिचारी, लम्पट, शराबी और असभ्य हो, यह मेरे पिता को मालूम होता तो वे भी आपसे मेरा व्याह हरगिज न करते ।”

“मैं कहता हूँ कि सीधे-साधे घर की बहू-बेटी की तरह रहो, वरना छोड़ दूँगा—बाप को लेकर रहना ।”

“बहू-बेटी की तरह ही रहूँगी—विश्वास रखिए । पर आपको भी इज़्ज़तदार रहस की तरह रहना चाहिए । रियाया की बहू-बेटियों को अपनी बहिन-बेटी समझना चाहिए । शराब को सूत्र समझ कर त्यागना चाहिए । पढ़ने-लिखने, रियासत की देख-भाल और गाँवों की उन्नति में मन लगाना चाहिए । तमाम लुच्चे-लुजाड़े दुकड़-कुत्तों को पास से हटा देना चाहिए ।”

“मैं कह चुका, मेरे जो मन में आवेगा वह करूँगा—मुझ पर तुम्हारा हुक्म नहीं चलेगा ।”

“मैं भी तो कह चुकी हूँ कि आप मनमानी न करने पावेंगे ! आपको सभी बुरी बातें छोड़नी होंगी और आदतें बदलनी पड़ेंगी ।”

“अगर मैं न छोड़ूँ तो क्या करोगी ?”

“जो उचित होगा ।”

“क्या मुझसे लड़ोगी ?”

“अगर आवश्यकता हुई ?”

“मैं बड़ा ज़ालिम हूँ ?”

“आइन्दा ज़ालिम न रहने पाओगे !”

“मैं तुम्हारी चाबुकों से खाल उड़ा डालूँगा !”

“तब यही आपके साथ किया जायगा !”

“क्या कहा ?”

“यही कि आपकी खाल भी चाबुक से उड़ाई जायगी !”

“और यह काम कौन करेगा ?”

“मैं आज ही उसका बन्दोबस्त कर लूँगी ।”

“तुम औरत हो या चण्डी ?”

“मैं आपकी धर्म-पत्नी हूँ ।”

“मैं तुम्हें चुनौती देता हूँ ! जो कर सको, करो । देखूँ, कैसे औरत मुझ पर ज़ुल्म करती है !”

“जो आज्ञा, अब आप जा सकते हैं !”

६

“रामसिंह !”

“बाई जी राज !”

“अपने कितने आदमी यहाँ हैं ?”

“कुल सोलह हैं ।”

“पिता जी को लिख दो, आठ मज़दूर विश्वासी

गोरखा और भेज दें। और प्रत्येक को छः महीने की तन-
ख्वाह पेशगी दे दें।”

“जो हुक्म !”

“और सुनो !”

“जी !”

“रामप्यारी हवेली के भीतर कदम न रखने पावे,
यदि आवे तो उसे नज़ा करके चाबुकों से पिटवा दो
और बाहर निकाल दो।”

“जो हुक्म !”

“सरकार का इस मामले में कोई हुक्म तामील
न किया जाय।”

“बहुत अच्छा।”

“दो आदमी सरकार के पीछे हर समय रहें और वे
कब क्या करते हैं, कहाँ जाते हैं—निगाह रखें।”

“जो हुक्म !”

“कोई और नई बात है ?”

“बात तो बड़ी सज़ीन है—परन्तु.....”

“फ़ौरन कहो !”

“अपना नाई...हाल में सुकलावा (गौना) करके
लाया था। सरकार ने वहाँ को कल उठवा मँगाया—रात
भर बड़ा हो-हल्ला मचा। नाई दो-तीन दिन बन्द रहा। उसे
बहुत मारा भी गया है—वह ए० जी० जी० से क्रियाद
करने जा रहा था। उसे पाँच हज़ार रुपए देकर चुप
किया है। सरकार ने हुक्म दे दिया है कि नाई के घर
से हवेली तक पक्की सड़क बनवा दी जाय। वह दुमज़िला
मकान भी उसे बख़्श दिया है। गाँव में इस बात की
बड़ी चर्चा है—सरकार की बड़ी बदनामी हो रही है।”

“हूँ, अभी ए० जी० जी० को मेरी तरफ़ से तार
दे दो, मैं स्वयं उनसे मिलना चाहती हूँ।”

“आप स्वयं ?”

“हाँ, हाँ, सरकार कब तक लौटेंगे ?”

“अभी तीन-चार दिन तो लौटते नहीं। नाई वाला
मामला ठण्डा पड़ जाय तो आवेंगे।”

“अच्छी बात है, मेरी मोटर ठीक कर रखो और तार
का जवाब आते ही खबर दो।”

“जो आज्ञा !”

“और सुनो, मेरे आगे-पीछे सरकार भीतर की हवेली

में न घुसने पावें, पहरा बैठा दो। अगर ज़बर्दस्ती करें
तो गोली मार दो।”

“जो हुक्म !”

७

आबू के मनोरम शृङ्ग पर ए० जी० जी० एक सुन्दर
कमरे में विचार-सागर में शोता मारते दहल रहे थे।
उनके जीवन में यह अनहोनी घटना थी, रियासत की
पर्दानशीन रानी तत्काल उनसे मिलना चाहती है ! अवश्य
कुछ भारी बात है। इतने में बैरा ने कहा.....की
रानी साहिबा हाज़िर हैं।

साहब एकदम बाहर निकल कर गाड़ी तक आगए
और आदरपूर्वक रानी को भीतर ले आए। रानी साहिबा
चुपचाप कमरे में आ गई।

क्षण भर दोनों चुप रहे। रानी ने ही बात छेड़ी—
जनाब ! आपको इस मुलाकात पर आश्चर्य होगा ?

“बहुत कुछ, मेरी ज़िन्दगी में यह पहला ही ऐसा
मौका है। पर आपको ऐसी साफ़ अङ्गरेज़ी बोलती देख
कर मैं और भी हैरान हो रहा हूँ। मैं नहीं जानता था कि
राजपूताने के सरदारों की महिलाएँ भी ऐसी शिक्षिता
होती हैं।”

“आप शायद मेरे पिता जी को जानते हों ?”

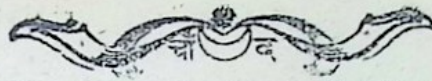
“उनका नाम क्या है ?”

“दीवान बहादुर.....C. I. E.। वे रियासत
के दीवान हैं ?”

“ओह, आप उनकी पुत्री हैं ? वे मेरे बड़े दोस्त—बड़े
सुरखी हैं। तब तो आपसे मिल कर मुझे बहुत खुशी
हुई। अब आप मुझ पर उतना ही विश्वास कीजिए, जितना
अपने पिता जी पर। जो बात हो, वे खटके कहिए, मुझसे
जो कुछ बन सकेगा, करूँगा। कहिए, आपने कैसे कष्ट
किया है ?”

“धन्यवाद ! मैं जानती थी कि आप पिता जी के
मित्र हैं, उन्होंने आवश्यकता पड़ने पर मुझे आपकी
सहायता लेने को कहा भी था। मैंने भरसक चेष्टा की,
पर रियासत हवा चाहती है—लाचार आपके पास आई
हूँ—मेरी आपसे एक प्रार्थना है।”

“कहिए !”



“मैं चाहती हूँ कि रियासत ‘कोर्ट ऑफ़ वार्डस’ कर ली जाय।”

“वाह ! यह कैसी बात ? अभी तो ठाकुर साहब को अधिकार मिले हैं। कुल तीन साल हुए हैं !”

“पर इन्हीं तीन सालों में क्या कुछ नहीं होगया ?”

“आप मुझे खुलासा तो समझाइए।”

“बहुत सी बातें तो कहने के लायक ही नहीं—उनकी शराबखोरी, व्यभिचार और फ़ज़ूलखर्ची में रियासत नष्ट हो रही है। सारा खज़ाना ख़ाली हो गया। कई गाँव गिरवी रखे गए। तीन-चार लाख क़र्ज़ा हो गया है। तिस पर भी उनके वही रङ्ग-ढङ्ग हैं। लुचे-लफ़ङ्गे घेरे पड़े रहते हैं, रियासत भर में किसी की बहू-बेटी की आबरू बचनी मुमकिन नहीं। रोज़ ये कुकर्म होते हैं। रियाया तज़ हो गई। सब जगह बदनामी फैल रही है।”

“आपने समझाया नहीं ?”

“बहुत कुछ, पर बात बहुत बढ़ गई है। आप जानते हैं, हिन्दू-ख़ियों को हिन्दू-लों कुछ अधिकार नहीं देता, और रईसों के घर तो ख़ियाँ पैर की जूतियाँ समझी जाती हैं। लोगों की नज़र में वे रानियाँ हैं, पर उनकी सिट्ठी ख़वार है। कदाचित् आप हमारी तकलीफ़ों को महसूस भी नहीं कर सकते। हमें छाती पर पत्थर रख कर इन रईसों के व्यभिचार आँखों से देखने पड़ते हैं—उनका प्रबन्ध तक करना पड़ता है।”

“यह आप कहती क्या हैं ?”

“जनाव ! बहुत सी बातें हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट से नहीं है—इसलिए गवर्नमेण्ट उन पर विचार ही क्यों करने लगी। ख़ियों पर रियासतों में जो जुल्म होते हैं, उन्हें रोकने का तो कोई उपाय ही नहीं है। न क़ानून, न पिता का घर, न सुसराल उन्हें मदद देता है—वह सोलहो आना उस रईस की पिशाच-प्रवृत्ति पर निर्भर रहती हैं, जिसकी नस-नस में पाप-वासना, शराब और कमीनी हरकतें हैं। श्रीमान् ! मैं आप ही से यह पूछती हूँ कि यदि कोई रईस ऐसा ही लुचा हो—उसमें ऐसी नीच आदतें हों, जिनसे सारी प्रजा तज़ आगई हो—पर आपके पधारने पर स्वागत-सत्कार ख़ूब कर दे, राज-भक्त भी बना रहे, ख़िताब भी लेता रहे—तब आप उसे क्या बुरा समझेंगे ? मुसलों के ज़माने में भी बादशाह

रईसों से सिर्फ़ अपनी बसूली का ख़्याल रखते थे; वे कैसा जुल्म करते हैं, इसकी ओर उनका ध्यान न था।”

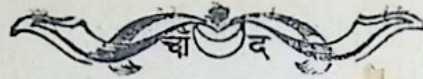
“रानी साहिबा ! आपकी बातों का मुझ पर बड़ा असर हुआ है। मैं इस पर विचार करूँगा। परन्तु यह तो आप भी मानेंगी कि इन सब बातों को ज़ाहिर में नहीं लाया जाता—ख़ास कर ख़ियाँ चुनचाप सहती रहती हैं—फिर गवर्नमेण्ट करे भी क्या ? और आप अगर नाराज़ न हों तो मैं कहूँगा, यह विषय गवर्नमेण्ट पर निर्भर रहने का है भी नहीं। यद्यपि हिन्दू-लों ख़ियों के अधिकारों में सङ्कुचित है, पर सन्तान के अधिकारों पर उसमें बहुत काफ़ी विचार किया गया है। अगर ख़ियाँ हिम्मत करें, अपनी सन्तान का पल लेकर ऐसे रईसों से लड़ें, तो उन्हें गवर्नमेण्ट बड़ी सहायता कर सकती है। कारण, रियासत हमेशा रईस के ख़ानदान की बपौती होती है। यदि गवर्नमेण्ट को यह यकीन हो जाय कि रईस की हरकत से वह रियासत इस तरह नष्ट हो रही है कि उसके ख़ानदानी हक़ों में ख़राबी आने का अन्देश है, तो गवर्नमेण्ट निस्सन्देह हस्तक्षेप करेगी।”

“मैंने भी यही विचार किया है। मैं अपनी सन्तानों के पक्ष में आपसे अपील करती हूँ कि आप रियासत को ‘कोर्ट ऑफ़ वार्डस’ कर दें। ठाकुर साहब उसकी रक्षा के योग्य नहीं हैं।”

“आप मेरी पुत्री के समान हैं, आपके हित के सभी पहलुओं पर मैं विचार करूँगा। रियासत को ‘कोर्ट ऑफ़ वार्डस’ करने से रियासत का भला नहीं होगा। आप स्वयं ही सोचें कि आज़ादी एक चीज़ तो है। ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट इस बात के पक्ष में भी नहीं है। इसलिए जब आप कहती हैं तो मैं कड़ी धमकी रियासत को ‘कोर्ट ऑफ़ वार्डस’ करने की दूँगा तो—पर वह कोरी धमकी ही होगी। मैं समझता हूँ इससे आपका काम सिद्ध हो जायगा, यदि आप ज़रा बुद्धिमत्ता से काम लेंगी।”

“आप पर मैं पूरा भरोसा करती हूँ। और मैं आपका बड़ा बल समझती हूँ। यह तो नासुमकिन है कि मैं अन्य ख़ियों की तरह सब कुछ देखूँ। मैं इस रईस को ठीक करूँगी और रियासत को न नष्ट होने दूँगी। आप कृपा कर मेरे सदुद्देश्य का ख़्याल रखें।”

“अवश्य, मैं पूरा ख़्याल रखूँगा। आपसे मिल कर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। आपसे मैं फिर कहता हूँ



कि आप अपने पिता की तरह ही मुझ पर विश्वास रख सकती हैं, आपके किसी भी काम आने पर मैं बहुत प्रसन्न होऊँगा।”

रानी साहिबा ने खड़ी होकर साहब को धन्यवाद दिया और बिदा हुई।

८

पोलिटिकल एजेण्ट ने बन्दर के समान लाल मुँह को ऊपर उठा और बिह्वी के समान कच्ची आँखों से घूर कर कहा—ठाकुर साहब, बैठ जाइए, बड़ी बुरी खबर है।

“खैर तो है हुज़ूर! उस दिन पार्टी में भी तशरीफ़ नहीं लाए। बड़ी इन्तज़ारी थी—हुज़ूर के लिए सब तरह का खास इन्तज़ाम.....”

“मुझे इसका खेद है। परन्तु अभी तो जो बात मैं कह रहा था, उस पर ग़ौर करना होगा—यह ए० जी० साहब का फ़र्मान आया है—उन्होंने लिखा है कि रियासत ‘कोर्ट ऑफ़ वार्डस’ कर ली जायगी।”

ठाकुर साहब की फूँक निकल गई। उन्होंने धम से कुर्सी पर बैठ कर कहा—किस क्रूर पर, सरकार!

“आपकी फ़ज़ूलख़र्ची और बदचलन की शिकायत पहुँची है। रियासत आपके हाथ से ले ली जाय, इस बात की हिदायत है और मेरी राय पूछी गई है।”

“सगर हुज़ूर! शिकायत की किसने?”

“किसी ने भी की हो, झूठी तो नहीं है। मेरे ख़याल में तो आपको सब लेखा-जोखा तैयार रखना चाहिए।”

“तब क्या हुज़ूर भी अपनी रिपोर्ट मेरे खिलाफ़ देंगे?”

“आप जानते हैं, मैं अपनी ज़िम्मेदारी पर कुछ भी नहीं कर सकता और इस बात से भी आप इनकार नहीं कर सकते कि मैंने आपको बारहा चेतावनी दी है।”

“तब क्या हुज़ूर ने ही शिकायत की है?”

“नहीं, खास रानी साहिबा ने।”

“रानी साहिबा ने!”

“जी हाँ, वे खुद आबू जाकर साहब से मिली हैं।”

“खुद मिली हैं! आप कहते क्या हैं?”

“आश्चर्य तो यह है कि आपको अपने घर की इतनी बड़ी बात का पता नहीं, तब रियासत का भला क्या पता रखते होंगे?”

“यह तो बड़ा शज़ब हुआ!”

“आप तैयार हैं?”

“आपको मेरी आबरू बचानी पड़ेगी!”

“मैं तो कह ही चुका हूँ—मेरी ताक़त से बाहर की बात है।”

“पर मैं आपसे किसी तरह बाहर नहीं हूँ”—यह कह कर ठाकुर साहब कुर्सी से खिसक कर साहब के पैरों पर गिर गए। और एक सङ्केत के बाद हाथ जोड़ कर खड़े हो गए।

साहब ने गम्भीर बन कर कहा—मैं कोशिश करूँगा, पर वचन नहीं दे सकता। आपको उचित है कि अब भी सावधान हो जायँ और रानी साहिबा से मेल कर लें, वरना पड़ताबेंगे।

“आपके कान में कोई बुरी बात न पड़ेगी”—यह कह और लम्बा सलाम कर ठाकुर साहब चले आए।

९

क्रोध और चोभ से पागल हुए, होंठ चबाते ठाकुर साहब हवेली की तरफ़ चले। कमरे से भरा हुआ पिस्तौल निकाल कर जेब में रक्खा और वे ड्योड़ियों में लपके।

ड्योड़ियों पर गोरखे सिपाहियों का पहरा था। उनमें से एक ने आगे बढ़ कर अदब से कहा—सरकार के लिए भीतर जाने का हुक्म नहीं है। आप बाहर के दीवानख़ाने में विराजें।

“किसका हुक्म?”—क्रोध से अधीर होकर ठाकुर साहब ने कहा।

“रानी साहिबा का।”

“मैं कौन हूँ, जानते हो?”

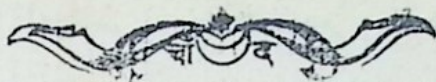
“जी हाँ सरकार, आप रईस हैं, मालिक हैं!”

“फिर यह गुस्ताख़ी!”

“गुस्ताख़ी कुछ नहीं हुज़ूर! रानी साहिबा के हुक्म की तामील है। हम लोग उन्हीं के नौकर तो हैं न?”

“हटो, दूर हो!”—इतना कह कर ठाकुर साहब ज़बर्दस्ती भीतर घुसने लगे। गोरखा ने बन्दूक सीधी करके घोड़े पर हाथ रख कर कहा—इसी चण पीछे कदम हटाइए, वरना गोली मारता हूँ, यही हुक्म है।

ठाकुर साहब अकचका कर पीछे हट गए। उन्होंने होंठ काटते हुए कहा—अच्छा हुक्म ले आओ।



“सरकार परच्छ लिख दें, जवाब आ जायगा।”

ठाकुर साहब ने परचा लिख कर भीतर भिजवा दिया। थोड़ी देर में वह वापस आ गया। पीठ पर लिखा था—तलाशी लेकर आने दो।

तलाशी का नाम सुन कर ठाकुर साहब पहले तो उबल पड़े, पर चारा ही क्या था? सुसराल की तनख्वाह पर नौकर रखने का स्वाद अब मिला। विवश हो उन्होंने तलाशी दी। जेब से पिस्तौल बरामद करके गोरखे ने रानी साहिबा से अर्ज की। रानी ने रामसिंह को बुला कर कहा—सरकार को भीतर आने दो और पिस्तौल को ए० जी० जी० के सामने पेश करके सब माजरा बयान कर दो। दोनों गोरखों को बतौर गवाह साथ ले जाओ। सरकार का इरादा मेरा खून करने का था—यह सबवित करना होगा।

ठाकुर साहब भीतर पहुँचते ही स्त्री के क्रदमों पर गिर गए और गिड़गिड़ा कर कहा—पिस्तौल की बात को यहीं रक्खो, वरना राजब हो जायगा। मैं तुम्हारी मर्जी के अनुसार करूँगा, मुझे माफ़ करो। तुम जो कुछ चाहोगी वही होगा—बल्कि ‘कोर्ट ऑफ़ वार्डस’ की जगह ‘कोर्ट ऑफ़ रानी जी’ बना दो। मैं रियासत से बाज़ दावा देता हूँ—तुम जैसा चाहो, प्रबन्ध करो।

रानी ने कहा—मैं आपकी बात पर विश्वास करती हूँ। मैं आपको एक मास का अवसर देती हूँ—इस बीच में यदि मैं देखूँगी कि आप इस समय के वचन को पाल रहे हैं तो मैं इस पिस्तौल-काण्ड को दरगुज़र कर दूँगी। अभी रामसिंह इसे सील-मुहर करके और दोनों गोरखों के बयान लेकर अपने क़ब्ज़े में रक्खेगा।

अनेक श्रुशामदें करके ठाकुर साहब बाहर निकले।

१०

“रथ वहीं रोक दो। इसमें कौन है?”

“रामप्यारी जी हैं!”

“उन्हें बाहर निकालो।”

“सरकार का हुक्म है कि...”

“रानी साहिबा का हुक्म है कि उन्हें जहाँ देखा जाय, नज़ा करके कोड़े लगाए जायें।”

“मगर सरकार...”

“उन्हें क्रौरन बाहर निकालो”—इतना कह कर एक गोरखे ने पर्दा खींच लिया। रामप्यारी बढ़िया ज़री की पोशाक पहने बैठी थर-थर काँप रही थी। क्षण भर में उसे नज़ा कर दिया गया और चाबुक की मार पड़ने लगी। अभागिनी नारी रोती-क़लपती वहाँ से भाग गई।

११

“ठहरो, इस वक्त सरकार कचहरी कर रहे हैं, मुला-क़ान नहीं होगी।”

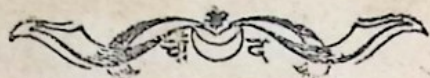
रामप्यारी बदहवास, चोट और अपमान से नागिन की तरह चपेट खाकर कचहरी में बढ़ गई थी। नौकर के उपरान्त वाक्य सुन कर उसने ज़ोर से नौकर का गला पकड़ कर दबा डाला और दाँत किटकिट कर बोली—“तेरी और तेरे सरकार की ऐसी-तैसी। दुष्ट, हत्यारा, पापी—पहले इज़्ज़त उतारता है, पीछे यों छोड़ देता है। आज मैं उसका खून पीऊँगी।” वह पहरदार को धकेल कर कचहरी में घुस गई।

सब लोग हैरान थे। रामप्यारी ने उन्मादिनी की तरह पत्थर हाथ में लेकर दरवाज़ों के काँच फोड़ने, गालियाँ बकनी और मेज़-कुर्सी उलटनी शुरू कर दीं। पापी हृदय ठाकुर हक्का-बक्का हुआ देखता रह गया। उसने समझाने की चेष्टा की, तो वह उस पर दूट पड़ी। दाढ़ी और मूँछों के बाल उखाड़ लिए। ठाकुर साहब कचहरी छोड़ भागे—असले लोग मेज़ के नीचे छिप गए। बड़ी मुश्किल से रामप्यारी को क़ब्ज़े में किया गया।

* * *

रामप्यारी ने ए० जी० जी० के यहाँ मुक़दमा दायर कर दिया। ठाकुर साहब को इस हज़ार रुपए नक़द देना पड़ा। इस समय रानी जी ही रियासत की सर्वेसर्वा हैं!





चेतावणी का चूंगट्या

[देशभक्त राजस्थान-केसरी श्री० ठा० केशरीसिंह जी, बारहठ]



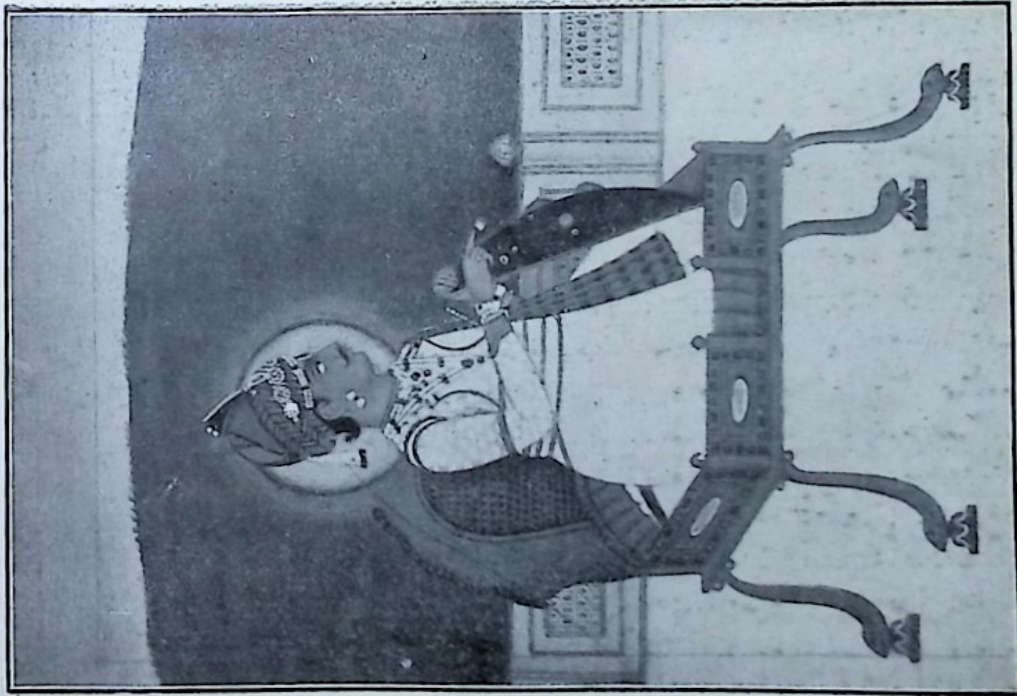
वर् १९०३ की पहली फरवरी ब्रिटेन और भारत के वर्तमान भाग्यों की भिन्न-भिन्न पोशाकें पहन कर आने वाली है। लॉर्ड कर्जन का औरङ्गजेबी दिमाग, महीनों पहले से इसी बात में गुँथा है कि भारत में अभूतपूर्व, प्रभावशाली, महान् से महान्—वह शानदार “दिल्ली-दरबार” किया जाय कि जिसे देख-सुन कर ब्रिटेन के गौरव की जाज्वल्यमान प्रभा से संसार की आँखें चूँधिया जायँ और जिस चक्रवर्ती सिंहासन पर बैठने का सौभाग्य आज तक किसी बड़े से बड़े शहंशाह के भाग्य में भी नहीं आया, उस पर खद बैठ कर अपनी अमर-कहानी छोड़ जायँ।

इस दरबार की सफलता में तिल-भर कसर न रहे, इसी सर्वाङ्गपूर्णता की कल्पना में, रात-दिन इतिहासों के शाही दरबारों के विविध वर्णनमय पन्ने घिसे जा रहे थे, फरमानों के कागजी-घोड़े दौड़ाए जा रहे थे, प्रत्येक बड़े देशी राज्य में स्वयं पहुँच कर, बिना ल्योहार के ही जुलूस की सवारी निकलवा कर लॉर्ड-खिलाड़ी के दो लेन्सों में अङ्कित की जा रही थी, प्रत्येक नरेश कठपुतली की तरह नचाया जा रहा था। उस समय कर्जन का चिन्तन था—दिल्ली-दरबार, स्वप्न था—दिल्ली-दरबार, वातचीत थी—दिल्ली दरबार दिमाग था—दिल्ली-दरबार; प्रत्येक श्वास था—दिल्ली-दरबार !!

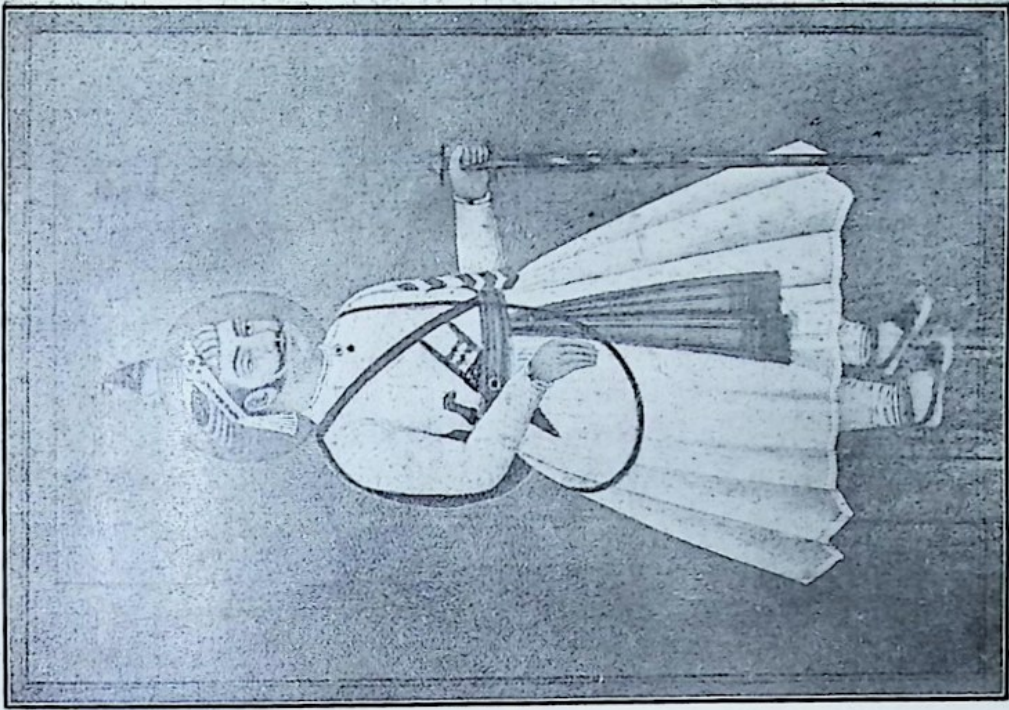
समय से बहुत पहले ही सफल “दरबार” हो चुका था कागजी संसार में; परन्तु वहाँ केवल एक ही जगह थी, जहाँ कलम अटक जाती थी, नक्शा टेढ़ा हो जाता था, केवल उसी स्थल पर

उमङ्ग की तरङ्गों को ठेस पहुँचने से कर्जनी-कल्पना का कोना व्यग्र हो उठता था। और वह व्यग्रता थी, हिन्दूपति महाराणा उदयपुर की स्वीकृति की आशङ्का! कहीं वह वीर साँगा व प्रताप का अनम्र-रक्त अकड़ बैठे तो सब काता-त्रीना कपास हो जाय, “लेकिन” घुस जाने से राजसूय यज्ञ अधूरा रह जाय, समर्थ अकबर के हृदय में बसी हुई निष्फलता की हूक फिर लौट आए और कर्जनी दरबार तो किरकिरा ही हो जाय। अतः साम, दाम, भेद, दण्ड से, विविध प्रोत्साहन, हितोपदेश, धमकी और मैत्री की दुहाई देकर भी जैसे बने, वैसे वीर-प्रकृति महाराणा फतहसिंह को शानदार जुलूस की सवारी में अपने हाथी के पीछे चला लेना, दरबार की सीढ़ी पर चढ़ा देना, पसारे हुए हाथों पर से नजराना उठा कर बादशाह की सेवा में दीनता के दो शब्द भेजने की प्रार्थना सुन लेना, इतना तो होना ही चाहिए!

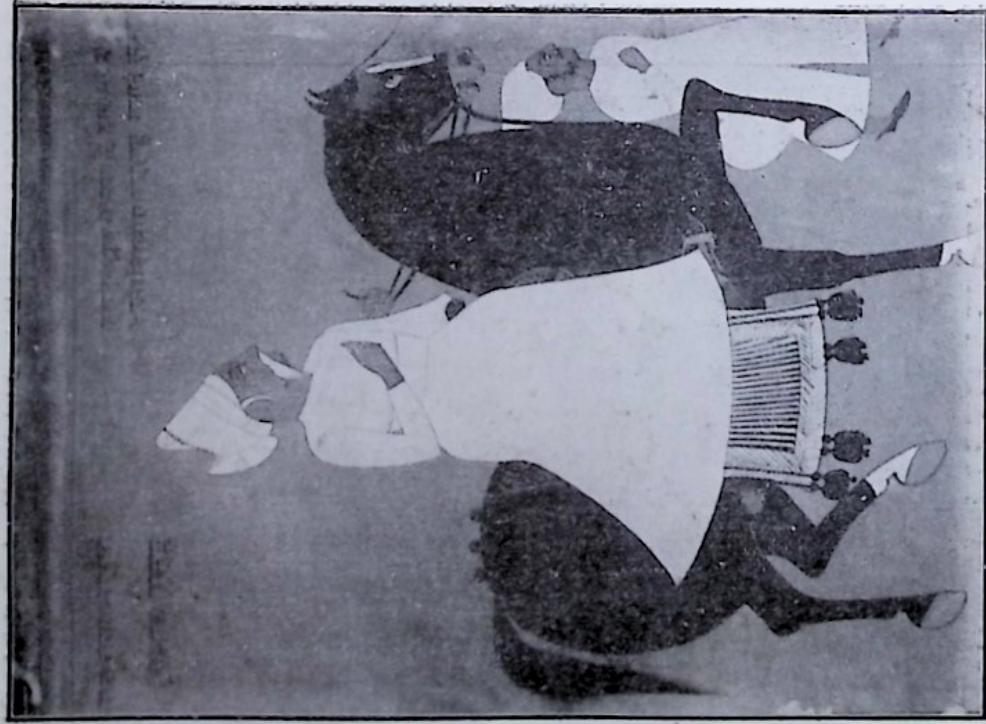
इस सिद्धि के लिए लॉर्ड कर्जन अपनी सब शक्ति उदयपुर के ऊपर लगा रहा था। सचमुच ही स्वाभिमानी महाराणा का हृदय अकड़ रहा था—“नहीं” कह चुका था। राजनैतिक तर्कों के दाव-घातों से मौखिक और कागजी मल्ल-युद्ध हो रहा था। क्योंकि यह महाराणा के लिए रझा-सहा भी खो देने का प्रसङ्ग था। अनम्र सेवाइ के इतिहास पर काला छींटा ही क्या, समूची दावात ही उलट देनी होगी! सेवाइ का प्रत्येक रक्त-विन्दु जहाँ कहीं भी था महाराणा की दृढ़ता पर भरोसा रख कर, गौरव से फूल रहा था। क्योंकि भारत के नञ्जरी सात सौ नरेशों ने हँसते, नाचते, कूदते अपने सोने-चाँदी के दण्ड-कमण्डल और ऊँचे डेरे दिल्ली में जा डाले थे। वे किस अदब से क्रदम



प्रसिद्ध वैद्यक-ग्रन्थ 'अमृतसागर' बनाने वाले विद्वान् राजा
श्रीमान् महाराजा प्रतापसिंह जी, जयपुर

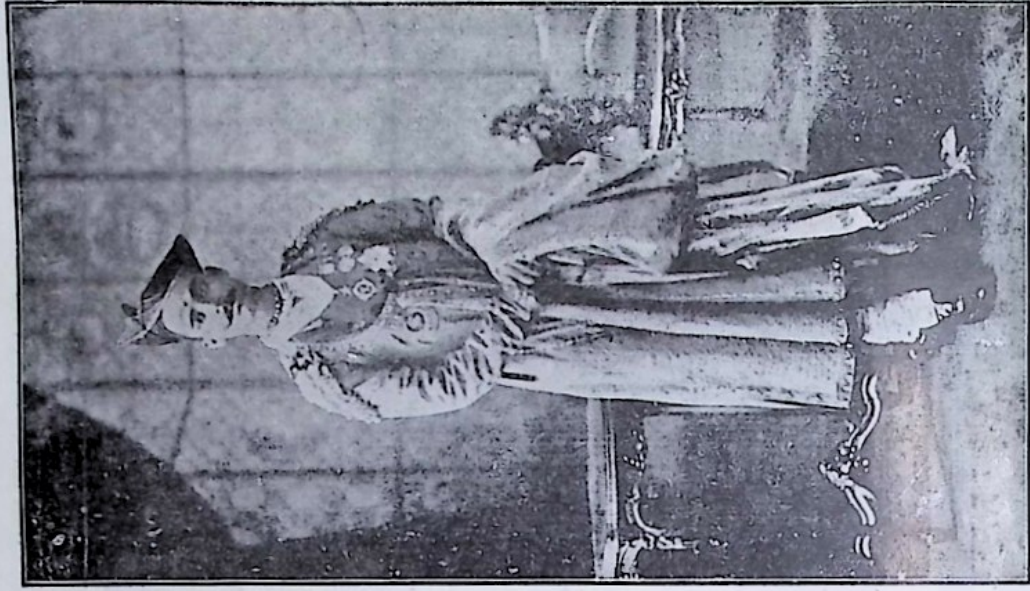


बाबर-जैसे शक्तिशाली शासक से टकर लेने वाले
महाराणा संग्रामसिंह जी, मेवाड़



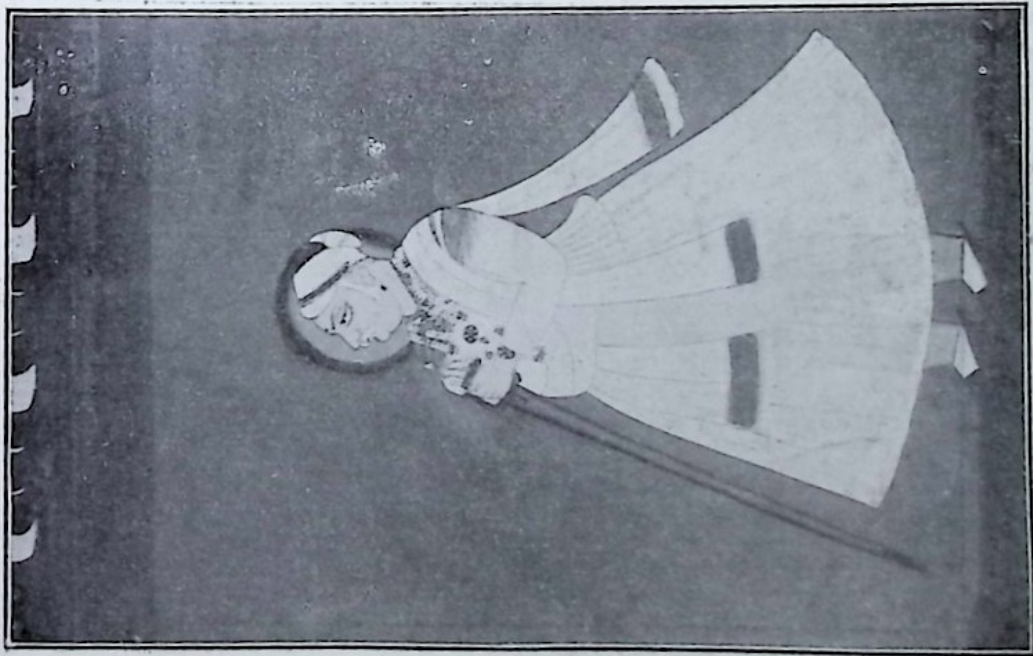
श्रीमान् राय रायन भण्डारी रुद्धनाथसिंह जी साहब, जोधपुर

[आप जोधपुर के महाराजा श्रीजीतसिंह जी के समय में दीवान थे और गुजरात की लड़ाइयों में आपने बड़ा भाग लिया था]



स्वर्गीय महाराजा सर उदजीराव पेंवार

बहादुर, धार



काबुल पर दूढ़ हाथों से शासन करने वाले
श्रीमान महाराजा जसवन्तसिंह जी, (प्रथम) जोधपुर



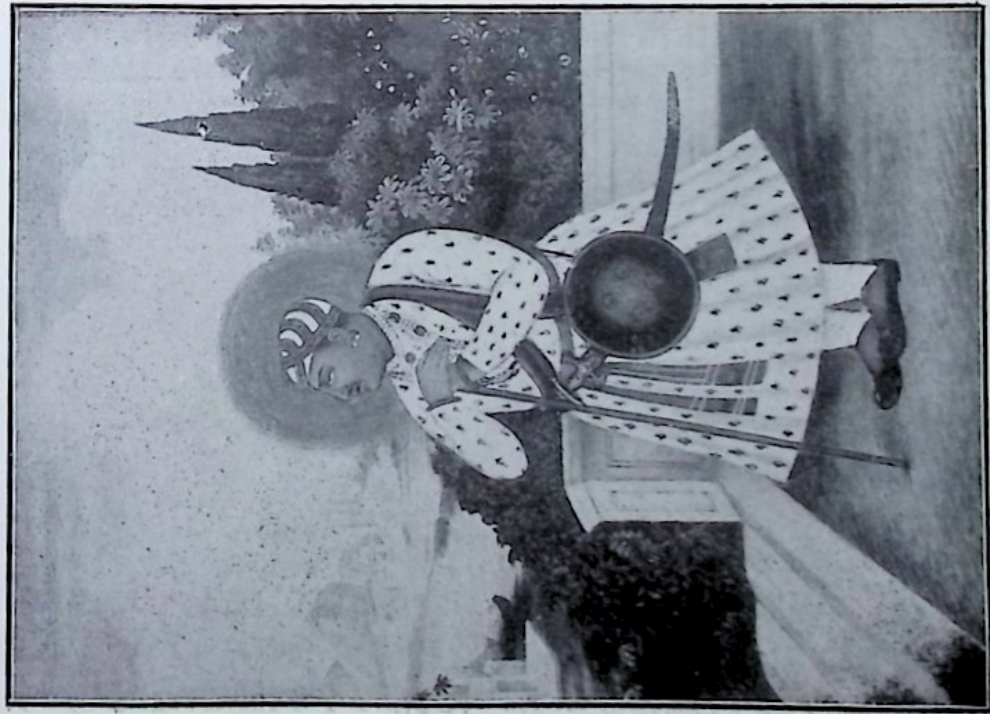
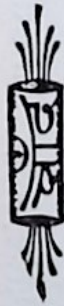
जयपुर के निर्माता तथा काशी, दिल्ली और जयपुर में
वैद्यशाला निर्माण कराने वाले श्रीमान् महाराजा
रामसिंह जी, जयपुर



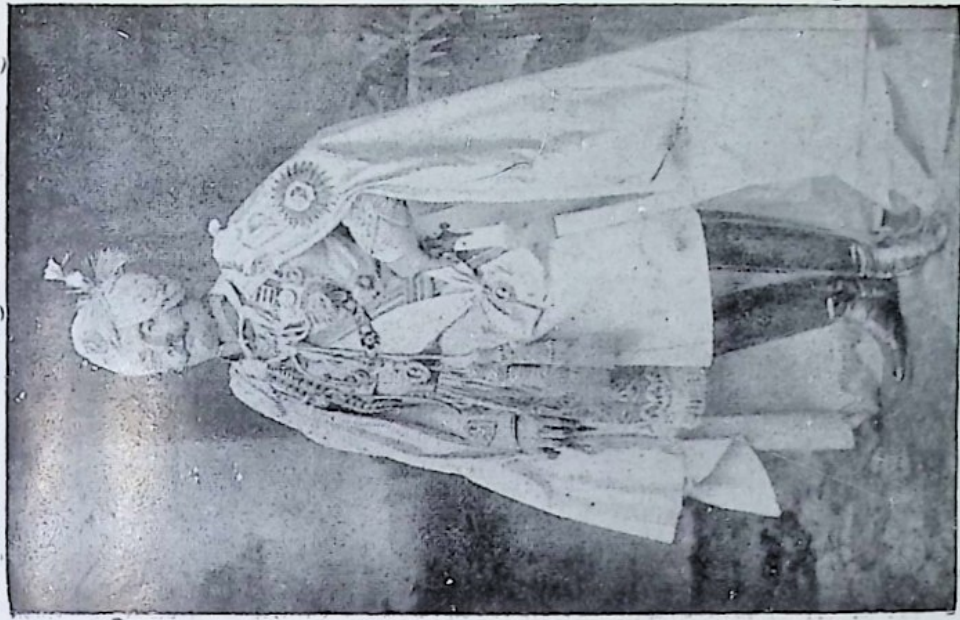
विद्वद्भ्य श्रीमान राजा सर रामसिंह जी साहब
बहादुर, के० सी० आई० ई०, सीतामऊ स्टेट



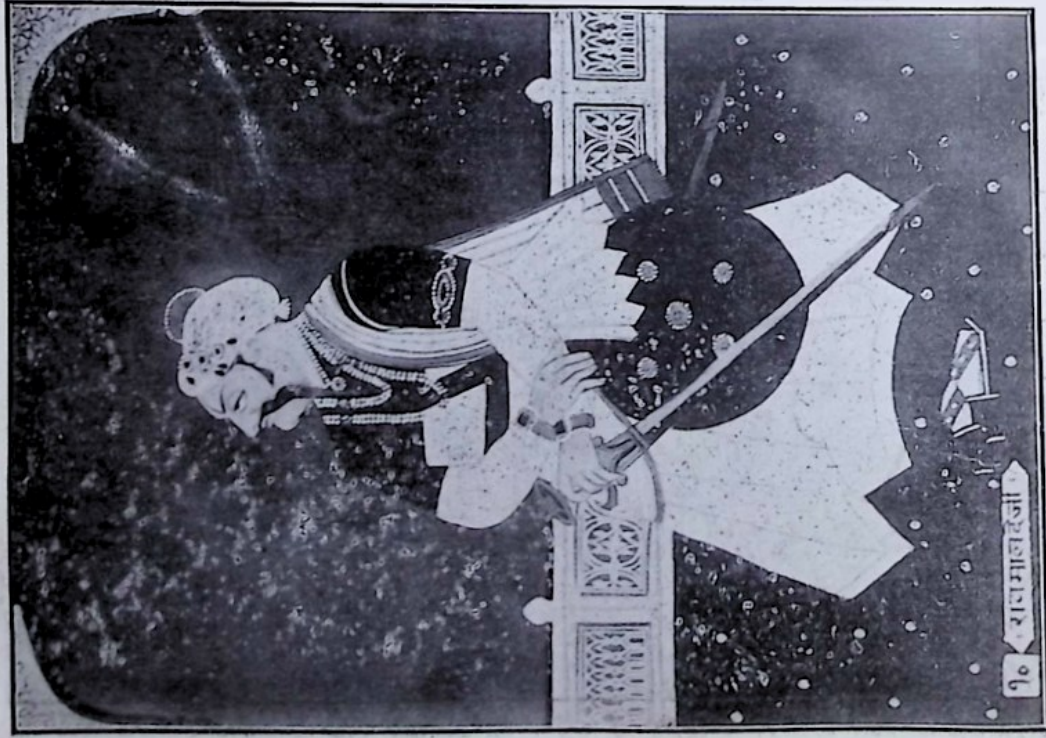
महाराजकुमार रघुवीरसिंह जी, बी० ए०
सीतामऊ स्टेट, सी० आई०
[राजपूताना वामलवा के राजवंशों में प्रथम ग्रेजुएट]



श्रीमान् महाराजा मानसिंह जी, जयपुर



पृथ्वी के तीन प्रधान वीरों में से एक
सर्वांगीय लेफ्टनेण्ट जनरल महाराजा सर प्रताप



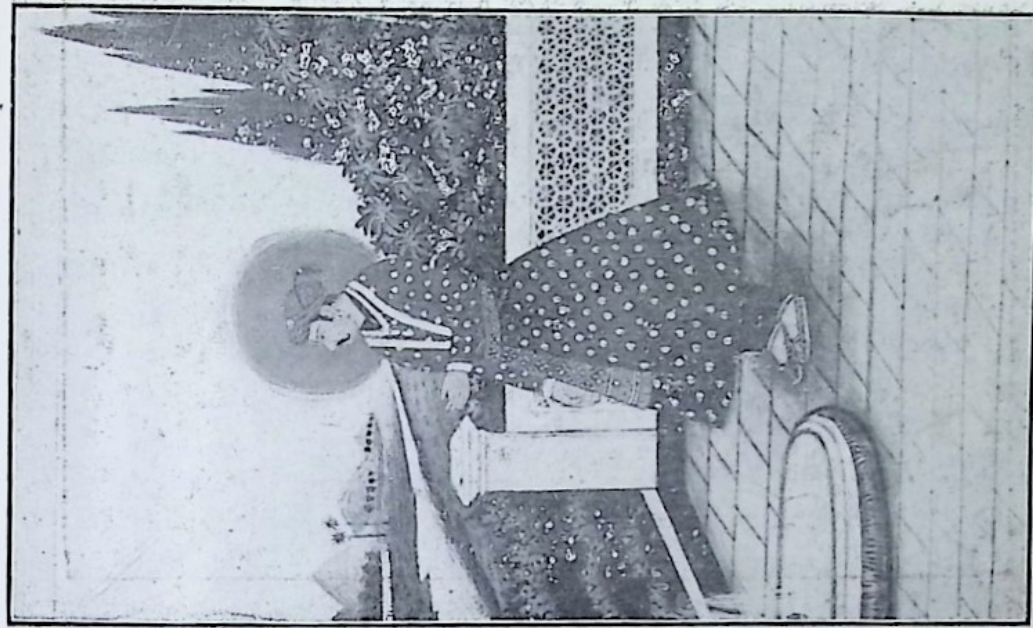
प्रसिद्ध योद्धा श्रीमान् राव मालवदेव जी राठौड़, जोधपुर



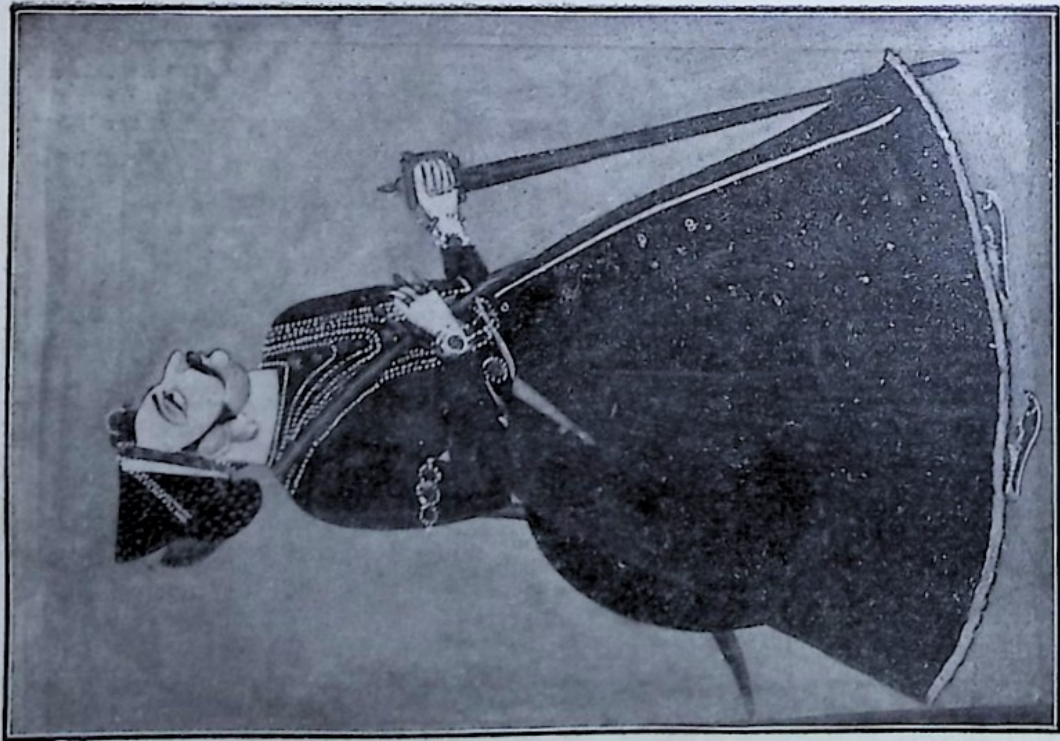
श्रीमान् राव चूडाजी, मण्डोर, (मारवाड़)



गोधपुर के निर्माता महाराजा जसवन्तसिंह जी,
(द्वितीय) जोधपुर



श्रीमान् महाराजा सवाई माधोसिंह जी, जयपुर



श्रीमान् महाराजा अजीतसिंह जी, जोधपुर

[इन्होंने फ़र्लेखसियर को अपनी पुत्री इन्दुकुंवर बाई दी, पीछे उसके मरने पर शुद्ध करके ले गए। साथ ही दो करोड़ रुपया बट्ट ले गए]



जयपुर बसाने वाले
श्रीमान् महाराजा सर्वाई जयसिंह जी

उठाएंगे और कैसे लटक करके सलाम करेंगे, इसकी परीक्षा पूरी करके सज-धज कर दिल्ली के लिए स्पेशल-ट्रेन की राह ताक रहे थे। परन्तु मेवाड़ में था केवल एक सन्नाटा, कहीं कुछ हल-चल नहीं।

परन्तु जहाँ पठान और मुगल-साम्राज्यों की लाखों तीर-बछों की अनियाँ निष्फल हुई, वहाँ कूटनीति-पटु कर्जन की काले मुँह की धूर्त लेखनी की दुजिह्वा-नोक काम कर गई! कड़ाई के सामने वज्रवत् बन जाना महाराणा के रक्त-विन्दु में समाया था। अतः वन्दरघुड़कियों के आगे वे डटे रहे। किन्तु ज्योंही कल्पना से भी अधिक कर्जनी नम्रता ने उनके चरण चूमे, त्योंही वे ढीले हो गए, दिल्ली के लिए 'हाँ' कह दिया। चारों ओर विजली-सी दौड़ गई, केवल मेवाड़ी-हृदय ही नहीं, प्रत्युत भारत का हिन्दू-हृदय मात्र दहल उठा, विश्वास की कमर टूट गई। परन्तु कोई क्या कर सकता था? निरङ्कुश नरेन्द्रों को रोकने का साधन कहाँ?

ज्योंही खबर मिली कि महाराणा आखिर दिल्ली जाएंगे ही, छात्र-स्वातन्त्र्य के पुजारी एक चारण-हृदय पर असह्य चोट पहुँचना स्वाभाविक था। फलाफल की कल्पना, हानि एवं विडम्बना की विभीषिका को धक्का मार कर, उसका स्वजातीय कर्तव्य-भाव जाग्रत हो उठा, आन्तरिक ज्वाला की प्रेरणा हुई कि चाहे रुके या न रुके, महाराणा को छात्र-स्वरूप का ज्ञान कराना ही चाहिए!

इसी उद्देश्य को लेकर राजपूतों के लिए सुबोध और वीर-रस में प्रभावशाली डिङ्गल (मरु) भाषा में तेरह दोहे उदयपुर लिख भेजे गए। सत्य की ओजस्वी भाषा का प्रभाव कहाँ नहीं होता? सौ कोस से पत्र पहुँचने में कुछ देरी अवश्य हो गई। दिल्ली की स्पेशल में बैठ जाने पर और चित्तौड़ से कुछ आगे बढ़ जाने पर, स्पेशल ही में वह कविता महाराणा फतहसिंह जी के हाथ में

पहुँची और पढ़ी गई। परम गम्भीर महाराणा के मुँह से सहसा निकल ही पड़ा कि—“यदि ये दोहे उदयपुर में मिल जाते तो हम वहाँ से रवाना ही नहीं होते। खैर, बीच से लौटना ठीक नहीं, दिल्ली पहुँचने पर देखा जायगा।”

महाराणा ने क्या दिखाया, यह विश्व-विदित है। अभिमानी लॉर्ड कर्जन की जुलूसी सवारी और बड़ा दरवार महाराणा से खाली था। कर्जनी कुचक्रों पर पानी फिर गया। उस पहली फरवरी के मध्याह्न में शहंशाह का प्रतिनिधि कर्जन सिंहासन पर बैठ कर भरे दरवार में महाराणा की खाली कुर्सी को ताक रहा था। ठीक उसी समय उदयपुर की स्पेशल-ट्रेन महाराणा को हृदय में रख कर विजयनाद करती हुई स्वतन्त्रता की वेदी चित्तौड़ की ओर सन्नाटे से दौड़ रही थी!

सार्वजनिक विश्वास है कि हिन्दू-पति की इस गौरव-रक्षा में इस कविता ने प्रधान भाग लिया है। वे दोहे “चेतावणी का चूगट्या” के नाम से प्रसिद्ध हैं और ये हैं:—

सौराष्ट्री दोहा (सिन्धु-राग)

- पग-पग भग्याँ पहाड़, धरा झाड़ राख्यो धरम।
(इशूँ) महाराणा र मेवाड़, हिरदै बशिया हिन्दै ॥१॥
घण घलिया घमशाण, राण शदा रहिया निझर।
(अब) पेखन्ताँ फुरमाण, हलचल किम फतमल! हुवै ॥२॥
गिरद गजाँ घमशाण, नहचै धर माई नहीं।
(ऊ) मावै किम महाराण, गज दो शैरा गिरद में ॥३॥
ओराने आराण, हाकाँ हरवल हालणो।
किम हालै कुल राण, (जिण) हरवल शाहाँ हङ्गिया ॥४॥
नरियन्द शह नजराण, झुक करशी-शरशी जिकाँ।
(पण) पशरैलो किम पाण पाण छताँ थारो फता! ॥५॥
शिर झुकिया शहशाह, शिहाशण जिण शाँम्हनै।
(अब) रलणो पङ्गत-राह, फावै किम तोनै फता! ॥६॥
शकल चढावै शीश, दान-धरम जिणरो दिपो।
शो खिताब बखशीश, लेवण किम ललचावशी ॥७॥
देखेला हिन्दवाण, निज शूरज दिश नेहशँ।
पण तारा परमाण, निरख निशाशा न्हँकशी ॥८॥

देखे अजश दीह, मुलकेलो मन ही मनाँ ।

दम्भी गड दिह्नीह, शीश नमन्ताँ शीशवद ! ॥६॥

अन्तवेर आखीह, पातल जे बाताँ पहल ।

(बे) राखा शह राखीह, जिणरी शाखी शिर जटा ॥१०॥

कठिण जमानो कोल, बाँधे नर हीमत बिना ।

(यो) बीराँ हन्दो बोल, पातल शाँगे पेखियो ॥११॥

अब लग शाराँ आश, राख रीत कुल राखशी ।

रहो रहाय शुख-राश, एकलिङ्ग प्रभु आपरै ॥१२॥

मान मोद शीशोद ! राजनीत बल राखणो ।

(है) गवरमिण्ट री गोद, फल मीठा दीठा फता ! ॥१३॥

अर्थ

१—पाँवों-पाँवों पहाड़ों में भटकते फिरे, पृथ्वी छोड़ कर धर्म को बचाया, इसलिए ही “महाराणा” और “मेवाड़” ये दो शब्द हिन्दु-स्तान के हृदय में बस गए हैं ।

२—अनेक युद्ध हुए, तब भी महाराणा सदा निर्भय रहे । हे फतेहसिंह ! अब सिर्फ़ फरमानों को देखते ही यह हलचल कैसे मच गई ?

३—जिसके हाथियों के युद्ध की उड़ी हुई गिरद (धूलि) निश्चय ही पृथ्वी में नहीं समाती थी, वह महाराणा स्वयं दो सौ गज के गिरद (घेरे) में कैसे समा जायगा ?

४—दूसरे राजाओं के लिए आसान होगा कि वे हकाले जाने पर शाही सवारी में आगे बढ़ते रहें, चलते रहें, परन्तु जिस महाराणा-वंश ने अपने हरोल में (आगे) बादशाहों को हाँक लिया था (भगा दिया था), वह शाही सवारी में कैसे चलेगा ?

५—दूसरे सब राजा भुक-भुक करके नज़राना दिखाएँगे, यह उनके लिए तो सहज होगा । परन्तु हे फतेहसिंह ! तेरे हाथ में तो तलवार रहती है,

उसके रहते हुए नज़राने का हाथ आगे कैसे फैलेगा ?

६—जिसके सिंहासन के सामने बादशाहों के सिर भुके हैं, फतेहसिंह ! अब पंक्ति में मिल जाना तुम्हें कैसे फवेगा ?

७—जिसके दिए हुए “धर्म” के दान को संसार सिर पर चढ़ा रहा है, वह (हिन्दू-पति) खिताबों की बख्शीश लेने के लिए कैसे ललचाएगा ?

८—समस्त हिन्दू अपने ‘सूर्य’ की ओर स्नेह-पूर्वक तारेंगे, परन्तु जब उनको तुम ‘तारा’ बने हुए (स्टार ऑफ़ इण्डिया) दिखाई दोगे तो वे अवश्य ही निश्वास डालेंगे ।

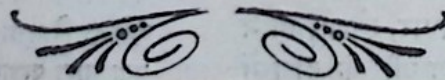
९—हे शीशोदिया ! दिल्ली का दम्भी किला तुम्हें सिर झुकते हुए देख कर मन ही मन हँसेगा, और इस दिन को अपने लिए अभिमान का दिन समझेगा ।

१०—पहले महाराणा प्रताप ने अन्तिम समय में जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, उनको आज तक सब महाराणाओं ने निभाया है और इसकी साक्षी खुद तुम्हारे सिर की जटा है ।

११—मनुष्य अपने में हिम्मत न होने पर ही यह सिद्धान्त बाँध लिया करता है कि “जमाना मुश्किल है” । इस वीर-वाणी के रहस्य को साँगा और प्रताप समझे थे ।

१२—अब तक सबको यही आशा है कि महाराणा अपने वंश की रीति को रक्खेंगे । सुख के राशि भगवान् एकलिङ्ग आपकी सहायता पर रहें ।

१३—हे शीशोदिया ! फतेहसिंह ! अपनी प्रतिष्ठा और हर्ष को राजनीति-बल से रखना ही होगा । इस गवरमिण्ट की गोदी में मीठे फल देखे हैं ?



कुछ जानने योग्य बातें

[कुँवर जगदीशसिंह जी गहलोत, एम० आर० ए० एस०]



पगड़ी-साफ़े बाँधे हुए देखे जाते हैं।

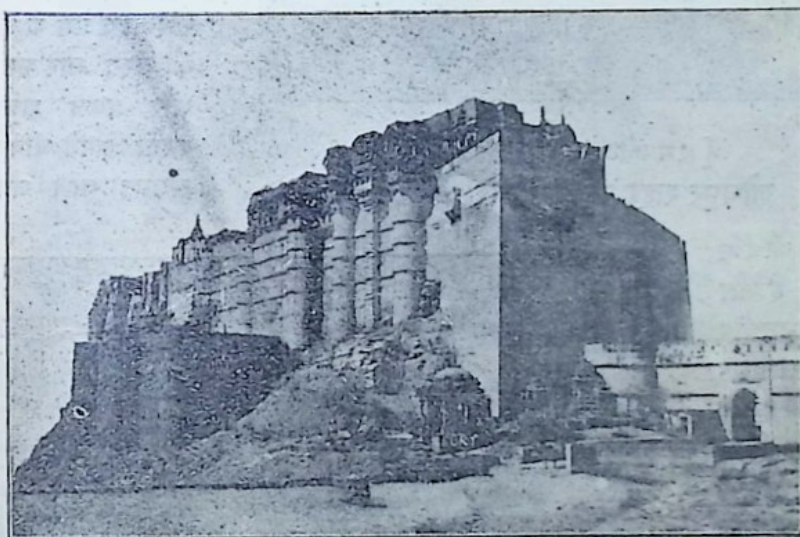
कई लोग 'मारवाड़ी' शब्द के वास्तविक अर्थ से अनभिज्ञ हैं; और उन्होंने मारवाड़ी का अर्थ मक्कार, धोखेबाज़, लुच्चा और बदमाश तक कर डाला है। ऐसे महापुरुषों में कोई श्रीधर गणेश वामे

नामक महाराष्ट्र प्रेजुएंट का नाम लिया जा सकता है, जिसने अपने "स्कूल-डिक्शनरी" नाम के मराठी-अङ्गरेजी कोष में ऐसा भद्दा अर्थ लिखा है। यद्यपि 'मारवाड़ी' शब्द से उस निर्जल और रेतीले भाग से अभिप्राय समझा जाता है जो जोधपुर-राज्य कहलाता है, परन्तु वास्तव में राजपूताने का सम्पूर्ण प्रान्त मारवाड़ ही है। कर्नल टॉड

जपूताने की प्रायः सभी रियासतों के निवासी, विशेष कर वैश्य अन्य प्रान्तों में मारवाड़ी कहे जाते हैं। इसका कारण यह है कि राजस्थानी लोग—चाहे वे जोधपुर, बीकानेर, जयपुर, जैसलमेर, बीकानेर, कोटा आदि राजस्थान प्रान्त की किसी भी राजपूत रियासत के निवासी क्यों न हों—बहुधा

के मतानुसार प्राचीन समय में सतलज नदी से समुद्र तक का सारा भाग निर्जल होने के कारण मारवाड़ के नाम से प्रसिद्ध था, और यही अर्थ ठीक जँचता भी है। क्योंकि मारवाड़—मरुभूमि, बज़र और रेतीले मैदान को कहते हैं। राजपूताना वास्तव में ऐसा ही प्रान्त है। अतः इसके निवासियों को मारवाड़ी के नाम से पुकारते हैं। यह कहना युक्तिसङ्गत नहीं है कि इस रेतीले और निर्जल प्रान्त के लोग चालाक व लुच्चे हैं; प्रत्युत यह श्रवण तो दूसरे प्रदेशों में अधिक पाए जाते हैं। मारवाड़ी लोग चालाक नहीं, वरन् चतुर होते हैं; बदमाश

नहीं, वरन् बुद्धिमान् और बहादुर होते हैं; मक्कार नहीं, बल्कि मिहनती होते हैं; धोखेबाज़ नहीं, बल्कि धीर होते हैं। इतिहास इसका साक्षी है। कोई कह सकता है कि राणा-प्रताप, भीम-सिंह, गोरा, बादल, जय-



जोधपुर का किला (नज़दीक का दृश्य)

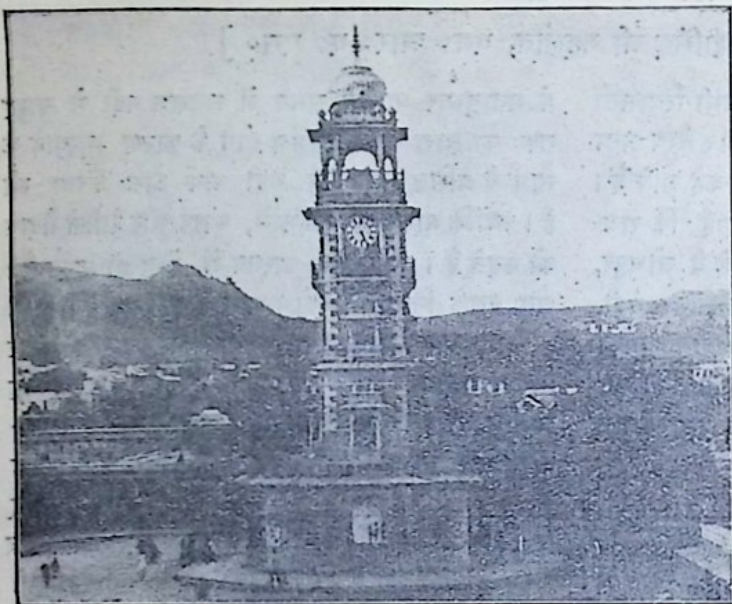
[आस-पास की भूमि से ४०० फुट ऊँची पहाड़ी पर बना हुआ है]

मल क्रता, पद्मावती, दुर्गावती, मीराबाई, पृथ्वीराज, भामाशाह और दुर्गादास जैसे प्रातःस्मरणीय देवी-देवता मारवाड़ी नहीं थे? यहाँ तक कि छत्रपति शिवाजी भी एक राजस्थानी या मारवाड़ी वंश में ही उत्पन्न हुए थे।

यह मारवाड़ (राजस्थान) प्रान्त भारतवर्ष में देशी राज्यों का एक मुख्य केन्द्र है, जहाँ पर प्राचीन सभ्यता,

रीति-नीति तथा आदिम आर्यचरित्रों की गौरवास्पद विभूति के अब तक दर्शन हो सकते हैं। इसीलिए तो

अर्थात्—“राजस्थान (मारवाड़) प्रान्त में कोई छोटा-सा राज्य भी ऐसा नहीं है कि जिसमें यूनान की थर्मोपॉली जैसी रणभूमि न हो और शायद ही कोई ऐसा नगर मिले, जहाँ कोई लियोनिडास-सा वीर पुरुष उत्पन्न न हुआ हो।”

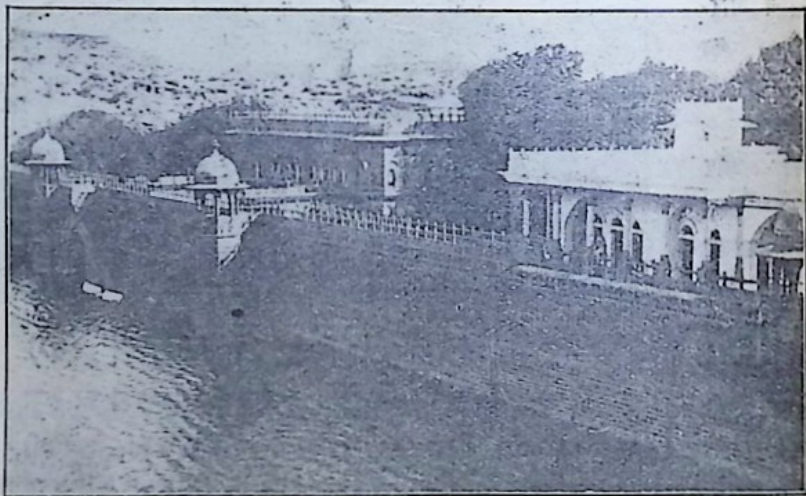


[६८ फीट ऊँचा]

जोधपुर शहर का घण्टाघर

यह प्रान्त बड़े मान की दृष्टि से देखा जाता रहा है और समय-समय पर भारतीय सम्राटों ने अपने साम्राज्य की नींव दृढ़ बनाने में इसकी मित्रता का ही सहारा लिया है। यह वही प्रान्त है जिसको सुप्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास में बड़े गौरव के साथ इस प्रकार लिखा है :—

“There is not a petty state in Rajasthan that has not had its Thermopole and scarcely a city that has not produced its Leonidas.”



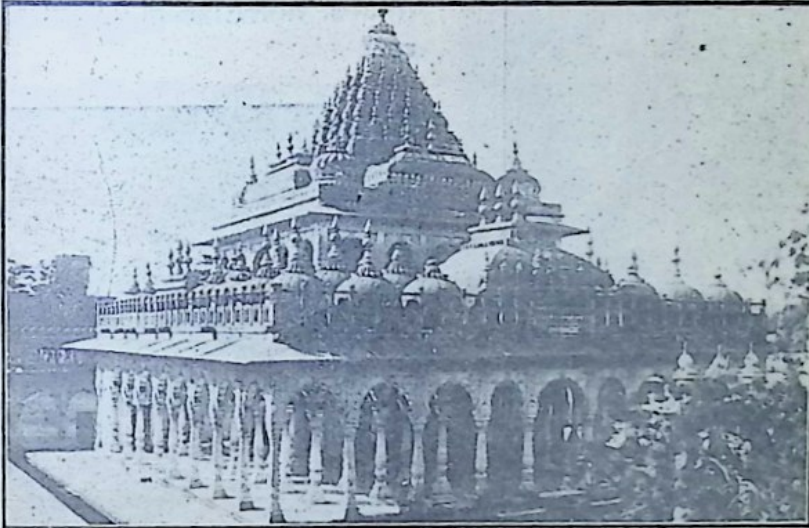
जोधपुर की बालसगर झील

को गले लगाने का प्रश्न तक नहीं छिड़ा था, उस समय राजस्थान-शिरोमणि मेवाड़ के महाराणा ने भीलों

को अपनाया था और उन वीर भीलों की सहायता से अकबर-जैसे शक्तिशाली सम्राट् का सामना किया था; जिस समय काउन्सिल-निर्माण और प्रतिनिधियों के चुनाव की शैली प्रचलित नहीं हुई थी, उस समय भी जोधपुर, बीकानेर, जयपुर, उदयपुर, कोटा आदि राज्यों में अपने सभी अमीर-उमरावों की बिना सलाह के, न कोई नियम बनाया जा सकता था और न राज्य-सत्ता में कोई परिवर्तन किया जा सकता था। इस प्रकार सभ्यता और राज्य-प्रणाली की दृष्टि से यह प्रान्त सब प्रकार उन्नत था। यहाँ के शासक लोग जनता के हाथ में थे और

उसके विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकते थे। यहाँ तक कि प्रजा की भलाई और न्याय के लिए जागीरदार अपने राजा के विरुद्ध खड़े होकर राजा को सत्पथ पर लाते थे, जिस के

अनेकों उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। उदयपुर के महाराणा अमरसिंह की इच्छा युद्ध करने की न थी, परन्तु जनता ने उनको शत्रु का सामना करने के लिए विवश किया। वह मारवाड़ी प्रजा ही थी, जिसने जोधपुर-नरेश महाराजा राजसिंह के पाटवी राजकुमार अमरसिंह राठौड़ की स्वेच्छाचारी होने के कारण मारवाड़ के बाहर निकलवा दिया था और राय मालदेव राठौड़ के तीन ज्येष्ठ पुत्र होते हुए भी, छोटे पुत्र चन्द्रसेन को मारवाड़ के राजसिंहासन पर इसलिए बैठाया था कि वह योग्य और स्वतन्त्रता का उपासक था। प्रजा की इतनी निर्भक्ता, स्वदेश-प्रेम और स्वाभिमान अन्य देशों में मिलना कठिन है।



“महामन्दिर” के नाम से प्रसिद्ध जोधपुर के नाथों का जलन्धरनाथ मन्दिर

इस विवेचन से पाठक समझ गए होंगे कि इस प्रान्त के लोगों की सामाजिक दशा और रहन-सहन कैसा उच्च-कोटि का था। इतिहास के ज्ञाता उसे विशेष रूप से जानते हैं। पर वर्तमान काल में यहाँ के लोग किस प्रकार रहते हैं, उसका संक्षेप में दिग्दर्शन कराना इन पंक्तियों का उद्देश्य है, अस्तु।

मारवाड़ (राजस्थान) प्रान्त उन्नीस देशी रियासतों, लावा और कुशलगढ़ नामक दो खुदमुखतार ठिकानों तथा अजमेर, मेरवाड़ा और आबू पहाड़ के ब्रिटिश-इलाकों को मिला कर राजपुताना कहलाता है। इसका क्षेत्रफल

१,३१,६६८
वर्ग-मील है
और १,०३,
३६, ६५५
मनुष्य
इसमें बसते
हैं। इस
प्रान्त के
निवासीयों
में हिन्दू,
मुसलमान
और ईसाई
मुख्य हैं।
हिन्दुओं में
राजपूत,
ब्राह्मण,
वैश्य, चमार,

कोली आदि अनेक जातियाँ हैं। इसी प्रकार मुसलमानों में भी शेख, सैयद, पठान और नौ-मुसलिम, कायमखानी, मोहिल, सिन्धी, रज़्ज़, सिपाही, मेव, मेरात, घोसी, लोहार आदि हैं। इनके सिवाय हिन्दुओं में मीन, भील, मिरासिण, साँसी, बावरी आदि कुछ जङ्गली जातियाँ भी हैं।

राजस्थान के देशी राज्यों में बोली जाने वाली ढूँडाड़ी, मेवाड़ी, बीकानेरी, बागड़ी, हाड़ोती, मेवाती आदि प्रान्तिक भाषाएँ सब एक मारवाड़ी-भाषा के विशाल नाम में आ जाती हैं। यह हिन्दी-भाषा की शाखाएँ हैं और सभी विभागों के लोग आपस में एक-

दूसरे की भाषा प्रायः समझ लेते हैं। क्योंकि मारवाड़ी भाषा के इन विभिन्न रूपों में विशेष अन्तर नहीं है। सब



पुराने जिरह-बख्तर पहने हुए योद्धा

लोगों की मूल-मातृ-भाषा हिन्दी ही समझनी चाहिए। मारवाड़ी-भाषा बोलने व सुनने में मीठी लगती है और उससे सभ्यता व शिष्टता झलकती है। इस भाषा की कुछ कहावतें नीचे दी जाती हैं, जिनसे पता लगेगा कि वे संक्षेप में होने पर भी, कितनी मीठी और उपदेश से भरी हुई हैं :—

१—अनी चुका बीसा हो—अवसर चूकने से पछताने के सिवाय और कुछ नहीं बनता।

२—ठगाया सू ठाकर बाजे है—एक बार धोखा खाने से आदमी दूसरी बार होशियार हो जाता है।

३—कलसुं होवे जीको बलसूं नहीं होवे—जो

काम चतुराई से होता है वह पाशविक बल लगाने से कभी नहीं हो सकता है।

४—रोयाँ बिनाँ तो माँ, ही बो-बो कोयनी दै—बिना आन्दोलन (प्रार्थना) किए इष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती।

५—छाज बोले बूहारी बोले तू क्यों बोले चालनी थारे अठोतर बेज—गुणीजन तो चुप हैं और जो दुर्गुणों के घर हैं वे ज्ञान छाँटते हैं।

६—ऊँठ लदन सूँ गयो, पदन सूँई गयो—किसी काम के करने के मुख्य अधिकारों को त्याग देने पर क्या साधारण अधिकारों के प्रयोग करने का हक भी जाता रहा ?



राठौर-राजपूत

७—ऊँठ खोड़ावे गधो डोभीजे—अपराध किसी का और दण्ड कोई पावे।

८—सीधे पर दोय चढ़े—सीधे आदमी को विशेष दुख दिया जाता है।

९—बाणियो मित्र न वैश्या सती, कागो हंस न बगलो जती—वैश्य कभी सच्चा मित्र नहीं निकलता, वैश्या चाहे किसी के प्रति कितना ही प्रेम-भाव क्यों न दिखलावे, वह कभी सती अर्थात् एक ही को चाहती है, ऐसा नहीं समझना, बगुला नदी-तीर पर ध्यानावस्थित होकर बैठता है, परन्तु वह यती नहीं होता और कौवे कभी हंस नहीं होते।

१०—एक ननो सौ दुःख हरे—मौन-व्रत धारण करने से मनुष्य बहुत सी बुराइयों से बच जाता है।



पड़िहार वंश का राजपूत

११—ऊखल में माथो दिए पड़े धमकाँरी कहीं गिनती—कार्यक्षेत्र में कूद पड़ने पर दुख-कष्ट से नहीं घबड़ाना चाहिए।

१२—मूँज बल गई, पर बट कोयनी बलियो—वैभव नष्ट हो गया, अभिमान नहीं मिटा।

१३—आप व्यास जी दैगण खावे, दूजे ने परमोद



कछवाहा वंश का राजपूत सेन्टर

बतावे—आप बुरा कर्म करे, दूसरों को उसके न करने का उपदेश दे।

१४—माँ भठियारी पूत फतेखाँ—अयोम्य होने पर थोथी डोंग मारना और बड़े-बड़े काम करने को उद्यत होना।

* * *

मारवाड़ी-भाषा की लेखन शैली विचित्र है। उसमें मात्राओं का ज्वाला प्रायः नहीं किया जाता। और एक ही पुरुष का लिखा हुआ कभी उससे भी नहीं पढ़ा जाता, और कभी कुछ का कुछ मतलब हो जाता है। महाजनी सुझिया अक्षरों का तो हाल ही बेहाल है। कहा भी है :—

बनक पुत्र कागद लिखे, काना मात न देत ।
हींग मिरच जीरो भखे, हङ्ग मर जर कर देत ॥



जयपुर के नव-विवाहित दम्पति

इसका एक रोचक दृष्टान्त है। किसी ने लिखा—
'कक अजमेर गया है न कक कटे है।' अर्थात् काका
अजमेर गए हैं और काकी (चाची) कोटा में हैं। मगर
पढ़ने वाले ने इस तरह पढ़ लिया कि काका आज मर
गया है, और काकी कटे है। इस प्रकार मारवाड़ी
लिखावट साफ़ लिखी ही नहीं जाती। इसलिए एक
कहावत चली आती है कि "आला बँचे न आपसू,
सूखा बँचे न वापसूँ।" अर्थात् गीले अक्षर स्वयं लेखक
नहीं पढ़ सकता, और सूख जाने पर, यानी कुछ समय
बाद तो (वे अक्षर) उसके बाप से भी नहीं पढ़े जा सकते।
मारवाड़ी-लिपि में शब्दों के बीच में अन्तर छोड़ना तो
जानते ही नहीं। अलवत्ता अब कुछ लोग अङ्गरेज़ी व
देवनागरी की देखा-देखी अन्तर छोड़ने लगे हैं। लिखावट
व थोली में देवनागरी तथा हिन्दी का प्रभाव भी आने
लगा है।

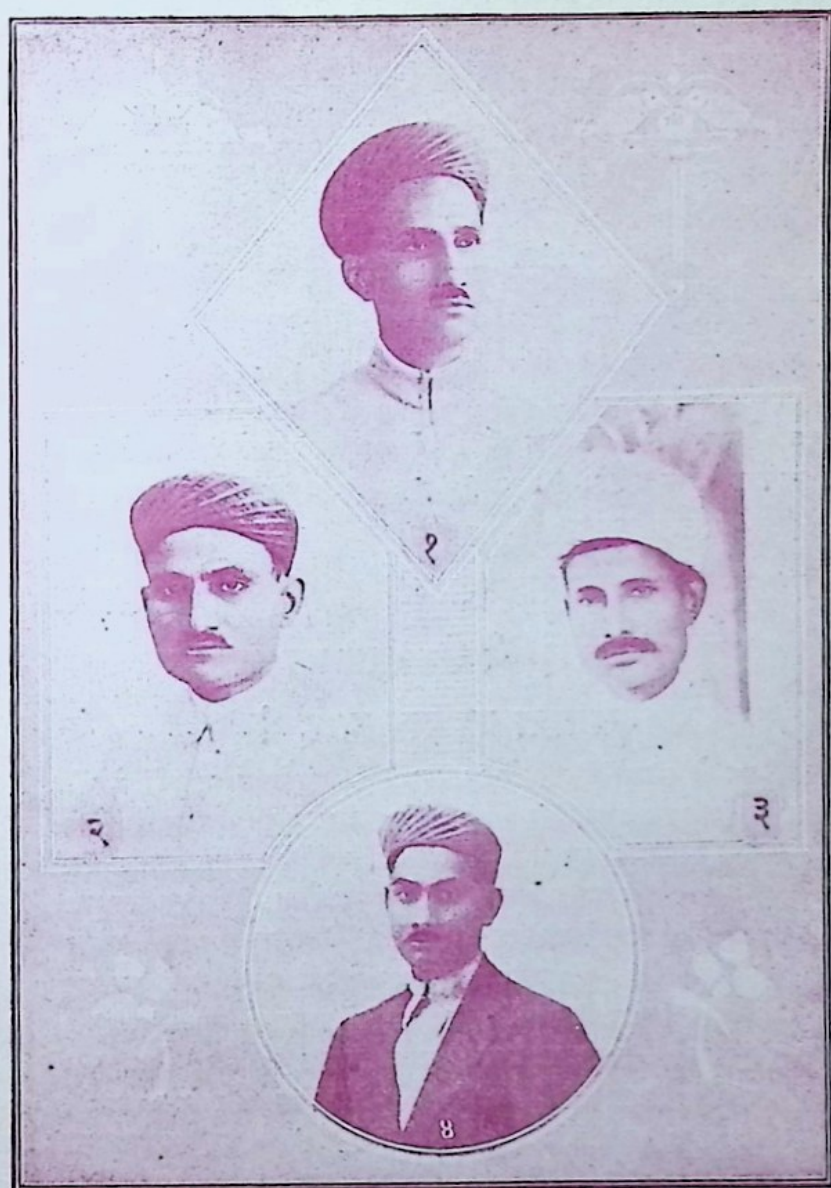
मारवाड़ी (राजस्थानी) स्त्री-पुरुषों का पहिनावा
अन्य प्रान्तों से कुछ भिन्न है। यहाँ के पुरुषों के पहिनाव
घुटनों तक मोटे कपड़े की धोती, कमरी, अँगारखी या
कुर्ता, और पोतिया (पाग) है। देहात के कितने ही
लोग नङ्गे बदन रहते हैं और केवज़ रेजे (खादी) का
एक अँगोछा-सा पास रखते हैं।

कुछ वर्षों से लोग बगड़ी या अँगारखे के बदले, बिना
कफ़ों का कुर्ता पहिनने लगे हैं। महाजन (वैश्य)
लोग पैचा, पाग या पगड़ी, जो १८ गज़ लम्बी और



कछवाहा खाँप का राजपूत सेन्टर

६ इञ्च चौड़ी बारीक सूत के कपड़े की होती है और
जिसके किनारे पर ज़री का काम किया हुआ होता है,
बाँधते हैं। इसको भिन्न-भिन्न उपजातियाँ भिन्न-भिन्न
तरह से अपने सिर पर बाँधती हैं। सिर पर बाँधने की
पोशाक में चोचदार पाग राजपूताने भर में विख्यात है।



मारवाड़ी-समाज के चार रत्न

१—श्री० घनश्यामदास जी बिड़ला

२—श्री० रामेश्वरदास जी बिड़ला

३—श्री० जुगलकिशोर जी बिड़ला

४—श्री० ब्रजमोहनदास जी बिड़ला

उर्दू भाषा-भाषी सज्जनों तथा देवियों को यह सुन कर प्रसन्नता
होगी कि ऐसे हजारों भाई-बहिनों की प्रेरणा और
सहयोग से प्रेरित होकर हमने उनके प्यारे

اوردو ايديشن



چاند

का उर्दू-एडीशन

निकालने का निश्चय कर लिया है, अब तक हमारे पास कई सौ ग्राहकों
की नामावली आ चुकी है। मुस्लिम भाई-बहिनों तथा पञ्जाब के अनेक
प्रतिष्ठित मित्रों के प्रेमपूर्ण आग्रह का यह प्रत्यक्ष फल है, पाठकों को
जान कर प्रसन्नता होगी कि 'चाँद' के उर्दू-एडीशन का सम्पादन करेंगे

मुन्शी कन्हैयालाल जी, एम० ए०, एल्-एल्० बी०;
प्रधान सम्पादक सहगल जी ही रहेंगे। इसी से
उर्दू-संस्करण की सफलता का अन्दाज़ा
लगाया जा सकता है !

इन दो सज्जनों के अतिरिक्त कई प्रतिष्ठित मुस्लिम भाइयों ने भी
पूर्ण सहयोग का वचन दिया है। जो सज्जन ग्राहक-श्रेणी में नाम लिखाना
चाहते हैं, अथवा नमूना मँगाना चाहते हैं, उन्हें शीघ्र ही अपना नाम
रिजिस्टर करा लेना चाहिए। जनवरी से वर्षारम्भ होगा, किन्तु १५ दिसम्बर
तक पहला अङ्क प्रकाशित हो जायगा। 'चाँद' के समस्त पाठकों से सादर
प्रार्थना है कि मित्रों में हमारी इस सूचना की चर्चा कर दें, ताकि हम उर्दू
भाषा-भाषी जनता की भी कुछ सेवा करने में समर्थ हो सकें। 'चाँद' के
उर्दू-संस्करण में १२५ साफ़-सुथरे मनमोहक पृष्ठ, दो तिरङ्गे चित्र, ३-४
रङ्गीन चित्र (आर्ट पेपर पर) ५०-६० सादे चित्र और ८-१० कार्टून
(व्यङ्ग चित्र) आदि-आदि रहा करेंगे! 'चाँद' के उर्दू-एडीशन का
वार्षिक चन्द्रा ८० और छः माही ५० होगा, नमूने की एक कॉपी
का मूल्य ११ ६० होगा !!

उर्दू की अनेक सुन्दर पुस्तकें प्रकाशित करने का भी हमने
निश्चय कर लिया है। पत्र-व्यवहार इस पते से करें :—

मैनेजर 'चाँद' (उर्दू-एडीशन) चन्द्रलोक, इलाहाबाद

जिसकी विशेषता यह है कि इसके चारों तरफ एक पृथक् क्रीता बाँधा जाता है, जिसको सादा होने पर “उपरनी”



मारवाड़ी देशी मुसलमान

और सोने-चाँदी के काम से खचित अर्थात् ज़रीदार होने पर “बालाबन्दी” कहते हैं। इस समय लोग सिर पर गाढ़े के पोतिया के बदले साफ़ा (फेंटा) बाँधने लग गए हैं, जो साधारणतः मलमल का होता है। कोई-कोई टोपी भी लगाने लगे हैं और कई अज़रेज़ी ढ़ङ्ग के कोट-पतलून या ब्रीचेज़ तथा अज़रेज़ी हैट भी धारण करते हैं।

स्त्रियों की पहिनाव घाघरा (लहँगा), काँचली (जो केवल छाती को ढकती है और पीठ की ओर तनियों से बँधी रहती है) या अँगरखी और ओढ़नी है। यह ओढ़नी २॥ गज़ लम्बी और १॥ गज़ चौड़ी होती है, जो मस्तक और शरीर को ढँकती है। शहरों में आजकल साड़ी का प्रचार भी बढ़ता जाता है। कोई-कोई क़मीज़ और वेस्टकोट भी पहिनती हैं।

मुसलमान-पुरुषों का भी पहिनाव उपर्युक्त ही है ;

क्योंकि उनका रहन-सहन व रीति-रिवाज हिन्दुओं से मिलता है और वे अधिकांश में हैं भी नव-मुसलिम। केवल स्त्रियाँ कहीं-कहीं पर पाजामा, आधी बाहों का लम्बा कुर्ता और ओढ़नी पहिनती हैं। राजस्थान की प्रायः सभी जातियों का पहिनावा एक सा है।

* * *

भारतवर्ष के कई भागों की तरह यहाँ पर्दे की प्रथा नहीं है। राजपूत जागीरदार, जिनके यहाँ बाँदियाँ (डाव-डियाँ-दरोगन) काम करने को होती हैं, उनके यहाँ अल-बत्ता पर्दा होता है, किन्तु गरीब और हलखड़ कृषक राजपूतों की स्त्रियाँ कुँए या तालाबों से पानी भर कर लाती हैं और अपने पुरुषों को रोटी देने खेतों में भी जाती हैं। यदि वे ऐसा न करें तो उनका काम कैसे चले ? पर्दे का



मारवाड़ी वैश्य का पहिनाव

रिवाज मुसलमानों राज्य के समय से प्रचलित हुआ है ; इससे पहले राजाओं की रानियाँ भी पर्दा नहीं करती

थीं। वे लड़ाई, शिकार और दरबार में भी खुले मुँह रहती थीं, और पुरुषों की भाँति अस्त्र-शस्त्र चलाती थीं। इसी से कई प्राचीन शिला-लेखों में रानियों का युद्ध में पकड़ा जाना वर्णित है।* यही नहीं, भारत-शिरोमणि उदयपुर, मेवाड़ राजवंश में महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के समय (सम्बत् १७६८) तक महाराणा अपनी पटरानी के साथ राजसिंहासन पर बैठते थे और पर्दा नहीं रखा जाता था।



मारवाड़ का नाजर (हिन्दू-नपुंसक)

[ये प्रायः रईसों के यहाँ रानियों की सेवा में रहते हैं]

* वीकानेर-राज्य के इतिहास के पृष्ठ २१ में लिखा है कि मगडोवर (जोधपुर) के अधिपति राव टीडाजी राठौड़ (सम्बत् १४०१—१४१४) ने जब भीममाल के राजा सोनगरा चौहान सामन्तसिंह पर आक्रमण कर उसे परास्त किया, तब उन्होंने सम्बत्सिंह की स्वरूपवती रानी सवली सीसोदणी को रणक्षेत्र में पकड़ा। टीडाजी ने उसे अपनी भार्या बनाया, जिसके गर्भ से कान्हड़देव नाम का उत्तराधिकारी उत्पन्न हुआ।

आजकल लोगों में धन के साथ-साथ पर्दे की प्रथा भी बढ़ती जाती है। देखने में आया है कि ज्योंही एक



कायमखानी राजपूत (नव-मुसलिम)

आदमी ने चार पैसे कमाए या अच्छा ओहदा पाया कि तुरन्त पर्दे का रोग उसकी जान पर सवार हुआ। उसमें भी खास कर मुसलमान इसमें शीघ्र और अधिकता से फैलते हैं।

* * *

यहाँ के साधारण लोगों का भोजन गेहूँ, बाजरा, जौ और मक्का है। शहरों में अधिकतर अमीर लोग गेहूँ का ही प्रयोग करते हैं। परन्तु गाँवों में किसान लोगों की स्थिति अच्छी नहीं है। वे लोग मिश्रित धान, रुखा-सूखा दलिया, खीच, सोगरा आदि खाते हैं। जैसा कि एक मारवाड़ी कहावत से प्रकट है—

कूरा करसा खाय गेहूँ जीमे बाणियाँ।

अर्थात्—किसान खुद कूरा अनाज (घटिया अनाज) खाकर अपने कर्जों के पेटे गेहूँ बोहरों (महाजनों) को देते हैं ।



मारवाड़ के हीजड़े (मुसलमान)

तरकारी के लिए यह गरीब किसान लोग करे, कूमट, फोग, साँगरी, पीलू आदि बनैले पेड़ों की फलियाँ काम में लाते हैं । उनको गोभी, सलगम, आलू आदि नगर की वस्तुएँ कभी ल्योहारों पर भी नसीब नहीं होती ! खाने को उनको चावल भी ल्योहार ही पर मिलता है । उपरोक्त खाद्य पदार्थों की विशेष व्याख्या इस प्रकार है :—

सोगरा—वाजरे के आटे की मोटी सेंकी हुई सख्त रोटी, जो कम से कम ७-८ तोले वज़न की होती है ।

राब—छाछ में वाजरे का आटा घोल कर प्रातः या सन्ध्या को उबाला जाता है और दूसरे दिन खाया जाता है ।

खीच—वाजरे को ओखली में कूट कर और उसका छिलका उतार कर चौथाई हिस्सा मोठ मिले पानी में

पका कर गाढ़ा बनाया जाता है । इसमें कभी-कभी खाते समय धोई तिन्ही का तेल डालते हैं ।

घाट—मक्का का मोटा दला हुआ आटा पानी में पका कर गाढ़ा बना लिया जाता है ।

दलिया—यह बाजरे के आटे का घाट ही है; परन्तु यह पतला होता है । गरीब लोगों को यह भी पूरी तरह से नसीब नहीं होता !

अधिकतर लोग दिन में चार बार भोजन करते हैं । परन्तु उनका वह भोजन नाम-मात्र का ही होता है :—

सीरावन—सुबह का कलेवा ।

रोटी—दस बजे दिन का भोजन ।

दोपहरा—दो बजे दिन का भोजन ।

व्यालू—सन्ध्या का भोजन ।



मेर लोग

[जिनके नाम से अजमेर का ज़िला मेरवाड़ा प्रसिद्ध हुआ]

यहाँ के किसान बड़े ही सन्तोषी, अपने व्यवहार में सच्चे, सादा जीवन रखने वाले, मितव्ययी और स्वभाव से मिहनती होते हैं ।

किसान जितना संसार का उपकार करता है, उतना अन्य किसी व्यवसाय या जाति से नहीं हो सकता। इस बात को राजा-महाराजा व देश के बड़े-बड़े नेता व विद्वानों ने भले प्रकार मान लिया है। इसीलिए इनको “अन्न-दाता” कहा जाता है। ग्वालियर के स्वर्गीय विद्वान् व आदर्श-नरेश हिज़ हाईनेस महाराजा सर माधवराव संधिया बहादुर ने ३० जनवरी, सन् १९२० ई० को अपने भाषण में ये महिमा-सूचक शब्द कहे थे :—

“आप किसान-ज़मींदार लोगों के साथ मुझे कोई परहेज़ नहीं है। इसलिए जैसे मैं आपको अपना समझता हूँ वैसे ही आपको मुझे अपना समझना चाहिए। मैंने आप साहबान को “अन्नदाता” का लक़ब दिया है। मेरे रिज़क का दारोमदार, यानी मेरे जीवन का हथ्र आपके

अन्नदाता और मैं तुम्हारा ताबेदार—कमाऊ पूत तुम्हीं हो ! जब तुम कमाई करके दोगे तभी यह बाज़ीगर का तमाशा चलेगा।”



मारवाड़ का दर्ज़ी

हाल में २१ सितम्बर, सन् १९१९ ई० को भोपाल के नवाब साहब ने अपने राज्य की प्रजा-प्रतिनिधि-सभा के पाँचवें अधिवेशन में कृपकों के विषय में यह कहा है :—

I wish to make a personal appeal to my nobles and subjects, who live in the cities, and to all the public servants, and it is this, that you should all learn to love and respect my peasantry. They are the real backbone of the country. It is they who feed you by the sweat of their brow and as such, they do not deserve to be treated as people living on a lower plane than ourselves. I have all along given you the lead in this matter, and therefore, I have a right to insist that you should go to them, be one of them in their sorrows and their pleasures, and always help



मारवाड़ की वागड़ी क़ौम का पुरुष
उपर है। और इसलिए लक़ब “अन्नदाता” इस्तेमाल करना मुझे बिलकुल दुरुस्त मालूम होता है। तुम मेरे

them to the utmost of your capacity. You will lose nothing by serving them in this manner, and



अम्बारी हौदे सहित दरवारी हाथी

in their turn, they are bound to love and respect you for it. Remember the lines :—

“ . . . a bold peasantry, their country's pride,
When once destroyed, can never be supplied.

अर्थात्—“मैं अपने सरदारों से तथा नगरों में रहने वाली प्रजा और सभी राज-कर्मचारियों से एक व्यक्तिगत प्रार्थना करना चाहता हूँ। वह प्रार्थना यह है कि आप सब लोगों को मेरे किसानों से प्रेम करना सीखना चाहिए। वास्तव में किसान ही देश के प्राण हैं। वे अपने रक्त को पसीना बना कर आपके लिए भोजन उत्पन्न करते हैं। अतः आपको उन्हें अपने से किसी भी प्रकार तुच्छ न समझना चाहिए। इस विषय में अपने आचरण के द्वारा मैंने सदा आप लोगों के सामने एक आदर्श उपस्थित किया है।

इसलिए मुझे अधिकार है कि मैं आप लोगों से यह अनुरोध करूँ कि आप उनके पास जाइए, उनसे मिलिए, उनके सुख और दुःख में उनके साथी बनिए और शक्ति-भर उनकी सहायता कीजिए। इस प्रकार की सेवा से आपकी कोई हानि नहीं हो सकती, उल्टे किसान आपसे इस सेवा के लिए प्रेम करेंगे। आप लोगों को प्रसिद्ध अङ्गरेज-कवि गोल्डस्मिथ की यह उक्ति सदा याद रखना चाहिए कि—‘किसानों की सम्पन्नता ही देश के गौरव का आधार है। एक बार यह आधार जहाँ नष्ट हुआ कि इसे पुनरुज्जीवित नहीं किया जा सकता।’

गुजरात के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीमाली-ब्राह्मण-कुल-दिवाकर कवीश्वर पं० दलपतराम डाह्याभाई, सी० आई० ई० ने भी किसानों का गुणगान अपनी सरस कविता में



मारवाड़ का मीना या मैणा (जेल में)

[शरीर-सङ्गठन और दृष्टि पर ध्यान दीजिए]

इस प्रकार किया है और सर्व-सुखों का दाता किसान को मान कर उसे नमस्कार किया है :—

किसान लोग ऐसे बोहरों को यमदूत समझते हैं। एक कहावत प्रसिद्ध है कि 'बोरा को राम-राम, जम को सन्देशो है।' अर्थात्—यदि बोहरा राम-राम करे तो किसान समझता है कि मृत्यु का सन्देश आया है।

* * *

मारवाड़ के लोगों का धन्धा देहातों में खेती-बाड़ी और शहरों में नौकरी, मज़दूरी आदि का है। ६६ प्रतिशत लोग खेती-बाड़ी पर निर्भर हैं, और पशु-धन पाल कर निर्वाह करने वाले तीन प्रतिशत हैं। गाय, बैल, घोड़ा, ऊँट, भैंस, भेड़ और बकरे-बकरी यहाँ के अच्छे होते हैं। नागौर के बैल 'सूरत-शकु' में अच्छे और तेज़ होते हैं, जो भारत भर में विख्यात हैं। गाँव थली यानी रेगिस्तान के इलाक़े की अच्छी हैं। जोधपुर-राज्य के



मारवाड़ की ऊँट-बगधी या ऊँट-गाड़ी

कमी होने लगी है, तथापि गाँवों में अब भी बहुत अच्छा घी और दूध मिलता है। बहुत से गाँवों में आज तक लोग दूध का पैसा लेना पाप समझते हैं।



मारवाड़ के चमार

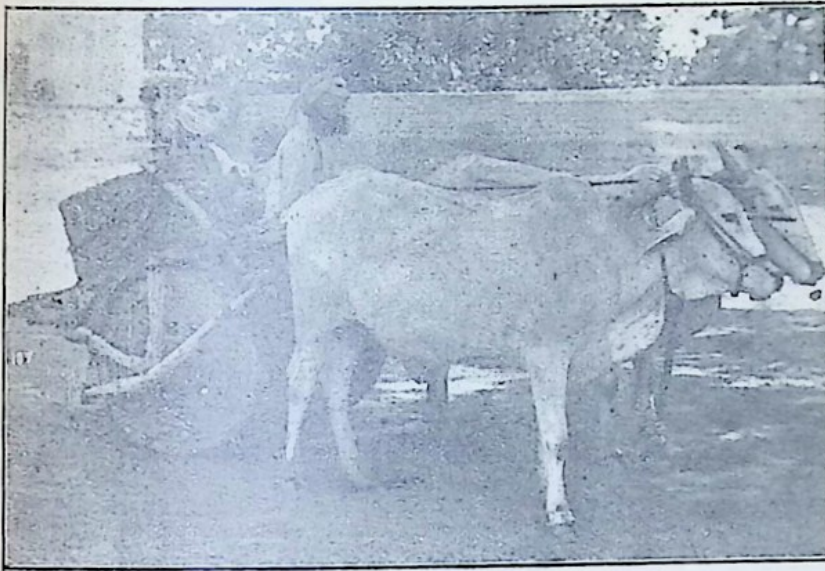
परगने साँचोर की गाँव लगभग १५ सेर दूध देती हैं। नसल यानी औलाद के लिए नागौर और साँचोर की

ऊँट भी मारवाड़ में अच्छे चलने वाले और मज़बूत होते हैं। सवारी का ऊँट जाखोड़ा कहलाता है, जो बारह घण्टे में दो सौ मील जा सकता है, किन्तु उसका मूल्य भी ५००-६०० रुपए से कम नहीं होता है। ऊँट यहाँ का सर्वस्व है। किसी कवि ने ऊँट की सेवाओं का यों वर्णन किया है :—

ऊँट सवारी देय,
ऊँट पानी भर लावै ।
लकड़ी ढोवे ऊँट,
ऊँट गाड़ी लै धावै ॥

खेतें जोतै ऊँट, ऊँट पत्थर भी ढोवै ।
जो न होय इक ऊँट, लोग कर्मों को रोवै ॥

कवि कन्हू धन्य तुव साहिबी, जेसे को तेसो मिले । ढेर से वहाँ रेत का टीला बना है । इस परगने के लोग विन जट्टरू उट्ट भुरट्ट में, कहो काम कैसे चले ॥ घोड़ों के बछेड़ों को लाकर इस रेत में लोटाते हैं । यहाँ के घोड़ों में अरब के घोड़ों के

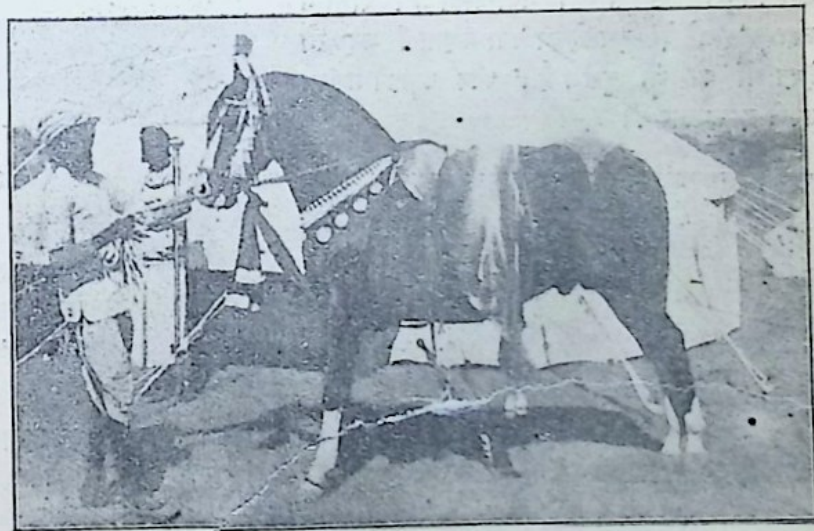


समान खासियत होने का कारण यही रेत समझी जाती है । राड़धड़े के रहने वाले अपनी जन्म-भूमि का बड़ा गौरव करते हैं, जैसा कि नीचे लिखी कथा से प्रकट होगा :—

“राड़धड़े की एक राज-कुमारी का विवाह सिरोही के राजा सुरतान (सम्भव १६२८—१६६४) से हुआ था । यह दोनों राजा-रानी पढ़े-लिखे थे और कभी-कभी कविता करके अपना जी बहलाया करते थे । एक

कृषक की बैलगाड़ी (माली)

मारवाड़ी घोड़े भी बहुत तेज़ और मज़बूत होते हैं । उनमें से कोई-कोई तो एक घण्टा में १५-१६ मील तक जा सकता है । सबसे अच्छी नसल के घोड़े जोधपुर रियासत के मालानी परगने में होते हैं । और उसमें भी नगर, गूढा और राड़धड़े की ज़मीन इन घोड़ों के लिए प्रसिद्ध है । कहते हैं कि किसी बादशाह ने अपने अरबी घोड़ों के वास्ते अरब-देश की रेत जहाज़ों में मंगाई थी, जिसको एक लक्खी वनजारा बैलों पर लाद कर दिल्ली को लिए जाता था । जब वह राड़धड़ा नामक गाँव के पास पहुँचा, तब उसने बादशाह के मरतेज़्ज़ी ख़बर सुनी । इससे निराश होकर उसने सब रेत व ज़े डाल दी । इसके



राजपूतों की मुख्य सवारी

दिन वसन्त-ऋतु में राजा ने अपने राज्य के सज्ज और सुरम्य आबू पहाड़ की अपूर्व दृष्टा देख कर यह दोहा कहा :—

टूके-टूके तेकी भरने भरने जाय ।

अर्बुद की छवि देखताँ और न आवे दाय ॥

अर्थात्—‘पहाड़ की चोटी-चोटी में तो केतकी है और पानी के भरने-भरने में जाय यानी चमेली है । आवू की यह छवि देख कर दूसरी जगह पसन्द नहीं आती है ।’

तब रानी ने, जो पैदल चलने से थक गई थी और जिसके राज्य में सिरोही से अधिक गेहूँ उपजते थे, पति से सहमत न होकर उत्तर में यह कहा :—

जब खाणों भखणों जहर पालो चलनो पन्थ ।

आवू ऊपर बेसणों भलो सरायो कन्थ ॥

अर्थात्—‘जौ खाने पड़ते हैं, जहर यानी अफ़ीम चखनी पड़ती है और पैदल चलना होता है । वाह कन्थ ! आपने आवू पर बैठने को भला सराहा ।’

राजा ने यह सुन दिल में कुछ बुरा माना और गुस्से में रानी से पूछा कि—‘क्या आवू तुम्हारे निर्जल और निर्गुण देश से भी गया-बीता है ?’ रानी ने कहा—‘हमारे देश-इलाक़े का क्या कहना ? वह तो देवताओं को भी दुर्लभ है ।’ और उसकी प्रशंसा उसने इस प्रकार की :—

अर्थात्—‘जहाँ पर ढाँगी नामक रेत के टीवें की ज़मीन है, जिसमें बढ़िया घोड़े होते हैं, आलम जी नामक देवता



मारवाड़ी अहीर

धणी (संरक्षक-इष्टदेव) हैं और प्रबल लूणी नदी पास ही बहती है—ऐसे राइधड़े का निवास जिसके भाग्य में लिखा है, उसी को मिलेगा । ”

* * *

मारवाड़ के लगभग ६७ प्रतिशत लोग गाँवों में रहते हैं । ये किसान घोर दरिद्रता, मलिनता, औपधि का अभाव, अज्ञान, रोग, मरी, अकाल, लगान की अधिकता, गाँव के पटवारी, पटेल के अत्याचार और बोहरों के दबाव से यम-यातना भोगते हैं ।

मारवाड़ में जेबल २२४ कारख़ाने हैं । इनमें कुल १६,१६२ मज़दूर हैं, जिनको १२ से १५ घण्टे प्रतिदिन काम

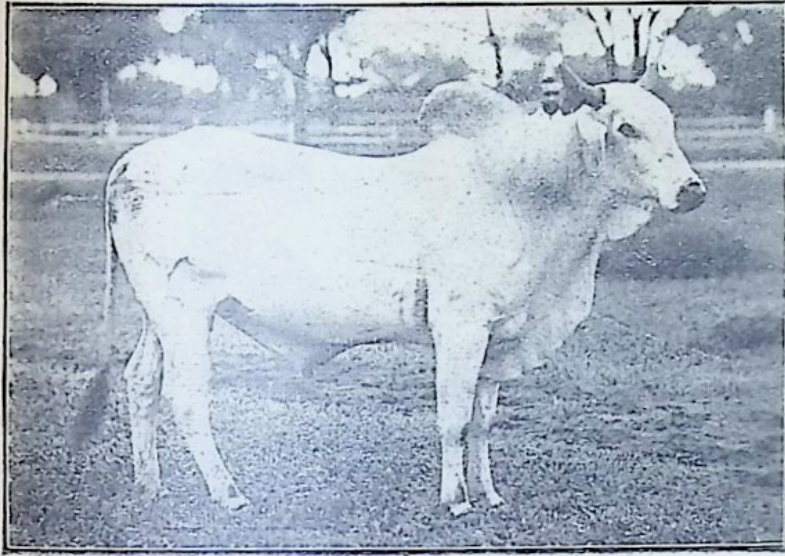


मारवाड़ी नाई

घर ढाँगी आलम धणी परगल लूणी पास ।
लिखियों जिणने लाभसी राइधड़ारो बास ॥

करना पड़ता है। इन मजदूरों में ८८५ स्त्रियाँ और १,०२१ चौदह वर्ष से कम अवस्था के बच्चे हैं।

किसी भी राज्य के गाँव या बड़े कसबे में म्युनिसिपैलिटी की कौन कहे, साधारण प्रकाश और सफाई का प्रबन्ध तथा सड़क और औषधालय की व्यवस्था तक नहीं है। यथासमय औषधि न मिलने से हजारों प्राणी प्रति वर्ष अकाल मृत्यु से मर जाते हैं, क्योंकि अच्छे अस्पताल केवल बड़े नगरों या राजधानी में होते हैं, और गाँव वालों को नीम हकीम या लालबुक्कड़ जी की औषधि पर आधार रखना पड़ता है। मृत्यु या महामारी के आने पर या तो वे अपने कर्मों को कोसते हैं अथवा उस विपत्ति को दैवी समझ कर सहन करते हैं।

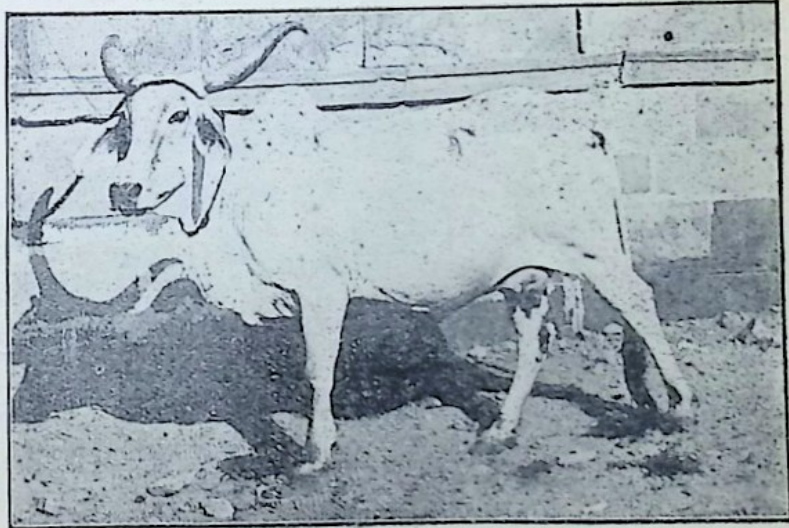


मारवाड़ का साँड़

यहाँ कई जातियाँ तो ऐसी हैं, जिनका कोई खास धन्धा हो नहीं; वरन् उनकी गिनती आजन्म जरायम पेशा कौमों में की जाती है। ऐसी हिन्दू जातियाँ कज्जर, साँसी, बावरी, मीना आदि हैं, जिनको एक गाँव से दूसरे गाँव में जाने-आने में भी पुलिस का परवाना लेना पड़ता है। यह लोग राजस्थान की सब रियासतों में आबाद हैं और इनकी संख्या करीब दस लाख है। इन्हें सभ्य नागरिक बनाने की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। प्रत्येक राज्य के सदर जेलघर में तथा इन लोगों के गाँवों में पाठशालाएँ खोली जाकर इनको पढ़ाया जाय तो भविष्य में ये जातियाँ सुधर सकती हैं। क्या रियासतों के उच्च राजकर्मचारी इस ओर ध्यान देंगे ?

राजपूताने में शिक्षा बहुत पिछड़ी हुई दशा में है। अजमेर, मेरवाड़ा को छोड़ कर राजपूताने के देशी-राज्यों

* * *



मारवाड़ की गाय

में इसकी बहुत ही कमी है। इसका कारण यही है कि जिस प्रकार अन्य राज-विभागों की ओर ध्यान दिया

जाता है, वैसा शिक्षा-विभाग की ओर नहीं दिया जाता। एक करोड़ की आबादी में से केवल तीन लाख आदमी अर्थात् ३ प्रति शत पढ़े-लिखे हैं। इनमें वे लोग भी सम्मिलित हैं, जो केवल हस्ताक्षर कर सकते हैं। स्त्री-शिक्षा का तो कहना ही क्या है। समस्त राजस्थान में केवल १७ हजार अर्थात् एक हजार में से दो स्त्रियाँ लिखना-पढ़ना जानती हैं। स्त्रियों की शिक्षा के लिए अङ्गरेजी स्कूल तो किसी भी राज्य में नहीं हैं। हिन्दी के साधारण सरकारी स्कूल भी एक-दो राज्यों के अतिरिक्त शायद ही कहीं हों। पुरुषों के वास्ते चार-पाँच राज्यों में दस-पाँच

स्पष्ट प्रतीत होता है कि शिक्षा पर कितना रुपया खर्च किया जाता है और राज-कुटुम्ब का व्यय कितना होता



मारवाड़ का मुख्य बाजा (नौबत-सैनाई)

हाईस्कूल और कॉलेज हैं। देशी-राज्यों में और उनके अन्तर्गत छोटी-बड़ी जागीरों में राजा-रईस आदि अपनी

है। बीकानेर, जोधपुर और अलवर राज्य में शिक्षा का व्यय क्रमशः १५; ३ और १ प्रति सैकड़ा है और राज-कुटुम्ब का व्यय क्रमशः ११, १६ और ५० प्रति सैकड़ा है।



मारवाड़ का ठठेरा-परिवार

फ़िज़ूलखर्चियों में रुपया पानी की तरह बहाते हैं, परन्तु ऐसे कामों के लिए उदासीन हैं। रियासतों की सरकारी सालाना रिपोर्टें और बजट देखने से

कई राज्यों में प्राइवेट गैर-सरकारी शिक्षा को प्रोत्साहित नहीं किया जाता। अलवर, जयपुर और जोधपुर आदि राज्यों में स्वतन्त्र शिक्षा-संस्थाएँ राज्य की आज्ञा के बिना

प्रारम्भिक शिक्षा की यह दशा है कि अलवर-राज्य में ७,०११ मनुष्यों या ३१ वर्ग-मील अथवा १७ ग्रामों पीछे; जोधपुर में १२,१०६ आदमियों या २३० वर्ग-मील अथवा २७ ग्रामों पीछे; और बीकानेर में १०,३०७ व्यक्तियों या ३६४ वर्ग-मील अथवा ३३ ग्रामों पीछे एक सरकारी स्कूल है। इस पर भी ख़ास बात यह है कि



क्षमा-दान

सेठ जी—साहेब ! मने माफ़ फुर्मावो ।

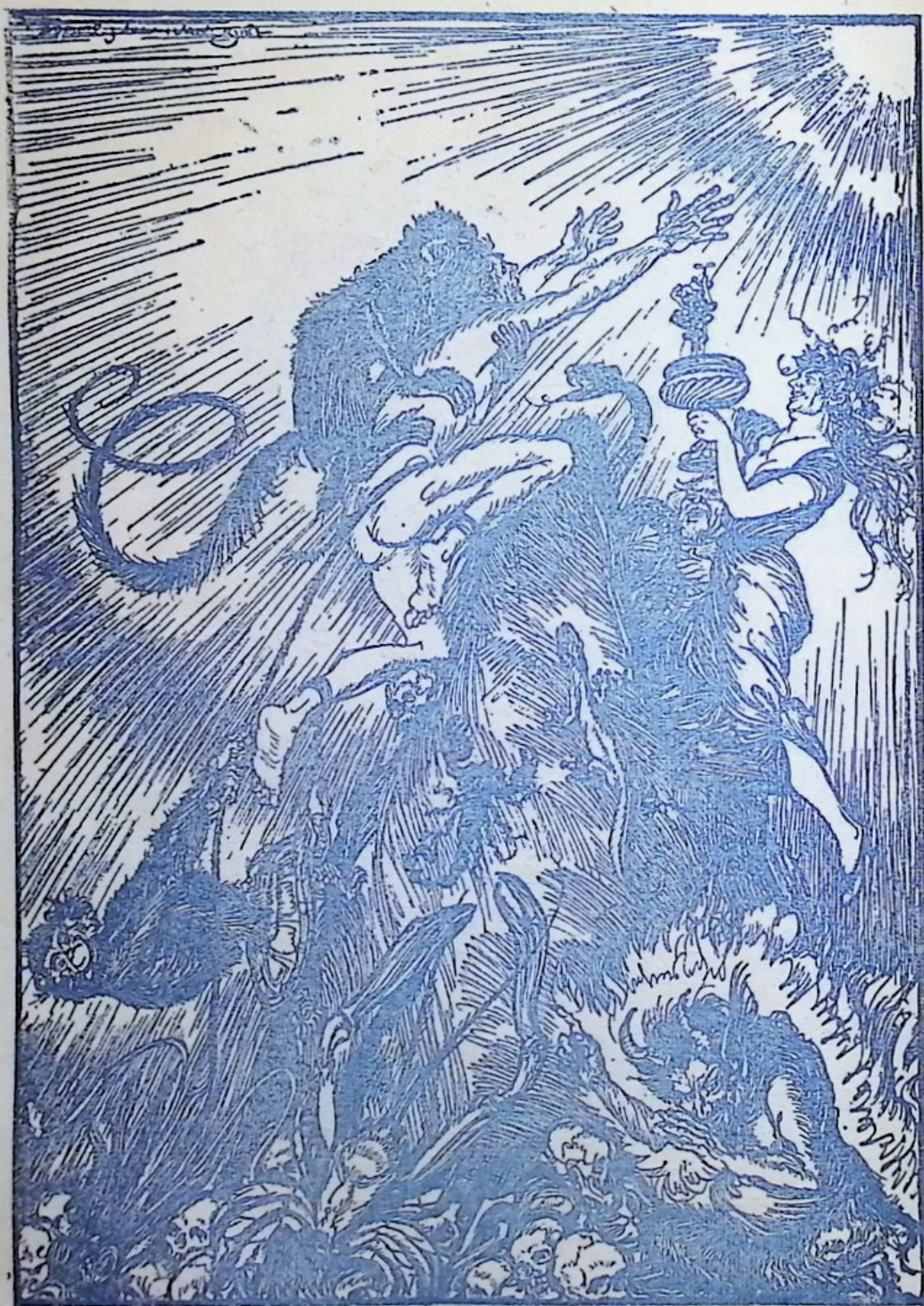
साहेब—यू मारवादी, डुम डेखना नेई माँगा—साहेब लोक आटा हाथ ।

हाम चालान करेगा ।

सेठ जी—हुज़ूर ! म्हें बाँई पटरी पर हो, ये गलत रास्ता.....

साहेब—बको मट, हाम को राइट-लेफ़्ट का परवा नेई ।

सेठ जी—अबार तो बक्स खो, म्हारो कपडा फाटीज गया, मने चोट भी
घर्णीई लागी है ।



पाणविक रुदियों में प्रसिद्ध भारवादी-समाज प्रकाश-कोश की ओर—



बेचारी मारवाड़िन !!



दीवा-बाती रो नाच

(बिरियां भारवाड़ में कहीं-कहीं ऐसा नाच करती हैं कि हाथ की उँगलियों में मसाला बाँध लेती हैं, क्या मजाल कि झुक जाय ! पर बाघरा फैल कर बेपर्दा भी हो जाती हैं—सैकड़ों लोग देखते हैं ।)



लग्न-शोधन

पं० गणेशानन्द जी—जनसपत्नी की विध तो ठीक मिल गई—पण क्या फागण में.....
सेठ जी—फागण में कोई धाँट है, जदेई कर देरवाँ ।

नहीं खोली जा सकती। उधर बहुत से जागीरदारों का यह विचार है कि यदि प्रजा में शिक्षा का प्रचार बढ़ा तो

solution were found of the difficulty, the backwardness of the state, as a whole, in the matter of education must remain."



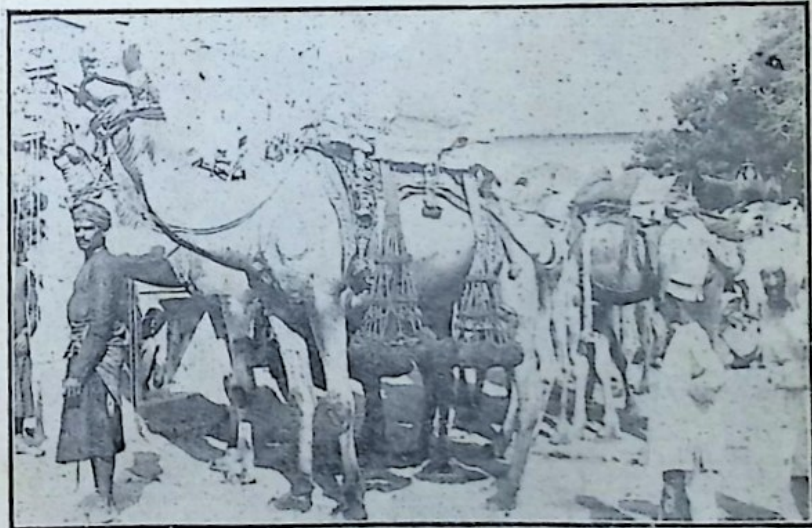
जयपुर-राज्य का इन्द्रवाण रथ

वे लोग अपने अधिकारों की माँग अधिक उपस्थित करेंगे। इसी भाव को लेकर जागीरदारों की जागीरों में विद्या-प्रचार है ही नहीं। जोधपुर-राज्य में भी यही दशा है, जैसा कि जोधपुर-दरबार की सन् १९२३-२४ की वार्षिक रिपोर्ट के पृष्ठ ६२ से पता चलता है:—

"... Being themselves mostly uneducated, could unfortunately, display little enthusiasm over the education of their Ryots. Indeed some of them had a lurking suspicion that education will make the Ryots think more of their rights than their obligations. Under

the circumstances education in the Jagir area had not made any headway, and unless some

रखते। वे अधिक से अधिक अपना नाम लिख लेना यथेष्ट समझते हैं। इससे उनको बहुधा बड़ी हानि पहुँचती



मारवाड़ की प्रसिद्ध सवारी (ऊँट)

है। किसी ठाकुर साहब से पूछा गया कि—“ठाकुराँ कितना पड़िया?” (ठाकुर साहब आप कितना पढ़े हैं?)

हम यहाँ पर भालावाड़-नरेश की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते, जहाँ शिक्षा-विभाग के लिए ग्रामदनी के हिसाब से अधिक खर्च किया जाता है।

यह दशा केवल जनता की ही नहीं है, वरन् इन जागीरदारों और रईसों आदि की भी है। राजपूताने में राजपूतों की संख्या ६,०२,००४ है, जिसमें शिक्षित व्यक्ति केवल १२,५२६ हैं। वे पढ़ने-लिखने में बिल्कुल रुचि नहीं

उत्तर मिला—“हाथ सुँ करम फोड़ा जिता!” (अर्थात् हाथ से अपनी बरबादी कर सकें, उतना!) तात्पर्य यह है कि वे केवल बोहरों के लिखे कागज़ों पर हस्ताक्षर कर सकते हैं। विद्या न होने से इनके विचार भी समयानुकूल नहीं होते।

अधिकांश सरदारों की यह दशा देख कर कुछ वर्षों पहले अङ्गरेज़ विद्वान श्री० अवेरीच मैकी ने “दी नेशनस ऑफ़ इण्डिया” नामक ग्रन्थ में राजपूत सरदारों का हृदय-द्रावक चित्र इस प्रकार खींचा है :—

“The children of the sun and moon, the children of the fire-fountain seem to have forgotten the inspiring traditions of their race, and have sunk into a state of slothful

generous virtue of their ancestors Hardly able to read or write his own language, ignorant



मारवाड़ के बावरी
[जीव-जन्तु मारने वाले शिकारी]



मारवाड़ के भील

[जो लूट-खसोट, डाका तथा मित्रता में प्रसिद्ध हैं]

ignorance and debauchery that mournfully contrast with the chivalrous heroism, the judicious and active patriotism, the refined culture and the

to plundering “Managers” and “Deputy Managers.” He is generally hopelessly in debt. He seldom cares for anything but the nearest shadow

of all pertaining to his race, pertaining to his State, pertaining to his sacred office as a ruler of men—the petty Rajput of the present day often saunters away his miserable existence in the society of abominable creatures that cast discredit on the name of servant Besotted with spirits and opium, dull, morose, and wretched, he knows nothing of his affairs; and leaves everything

of his dignity, the ceremony with which he is treated. Of this he is insanely jealous. That all

वन गए हैं कि जब उनके पूर्वजों की धर्मयुक्त वीरता, उनके बुद्धिमत्तापूर्ण व्यावहारिक देश-प्रेम, प्राचीन सभ्यता तथा



मारवाड़ के मिरासी (मुसलमान)

the honours due to royalty and Rajput blood should be paid to him ; that he should be saluted with guns, and received at the edge of carpets, and followed by escorts of cavalry, that his daughters should be married at an early age to princes of higher clans than his own; that his Thakurs should attend him at the Dassehra and perform the precise ritual of allegiance, all this is what he craves.

अर्थात्—“वे ही राजपूत, जो चन्द्र और सूर्य के वंशधर कहे जाते हैं और जो अस्मिकुल से उत्पन्न हुए हैं, अब अपनी जाति-विषयक उत्साहवर्धक रूढ़ियाँ भूल सी गए हैं और मूर्खता तथा विज्ञान-प्रियता के कारण ऐसे अकर्मण्य

दरिद्रता की दशा में रहा करता है ! उसे अपने काम-काज की कुछ भी सुधि-बुधि नहीं रहती ! वह अपने



कपड़े के बँधरे (चढवा नव-मुसलिम रङ्गरेज)

चालाक, लोभी कामदारों तथा उनके सहायकों पर ही अवलम्बित रहता है। वह ऋण से भी बुरी तरह लदा

रहता है। किन्तु उसे किसी बात की चिन्ता नहीं रहती। बस, कोरी शान-शौकत का उसे ध्यान रहता है। अर्थात् उसे इस बात की सदैव लालसा रहती है कि जब कभी कहीं वह जावे तो उसकी राजपूती कुलीनता के प्रति सम्मान-सूचना के रूप में तोपों की सलामी हो, गलीचों के पाँवदे डाले जावें, उसके साथ घुड़सवार सैनिक हों, और उसकी यह भी हार्दिक अभिलाषा रहती है कि उसकी लड़कियाँ अल्पावस्था में ही अपने से ऊँचे राजकुलों में व्याही जावें। यही नहीं, दशहरे के दिन वे यह आशा करते हैं कि अमीर-उमराव यथो-

भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों की भाँति राजपूताने में भी बाल-वृद्ध और अनमेल-विवाह (विशेष कर वैश्य जातियों



वंशावली रखने वाला बही-भाट



टोकरी बनाने वाला (गोँड्रा) सपरिवार

चित्त रीति से उनका आदर-सत्कार करें और अपनी राज-भक्ति का परिचय दें।

*

*

*

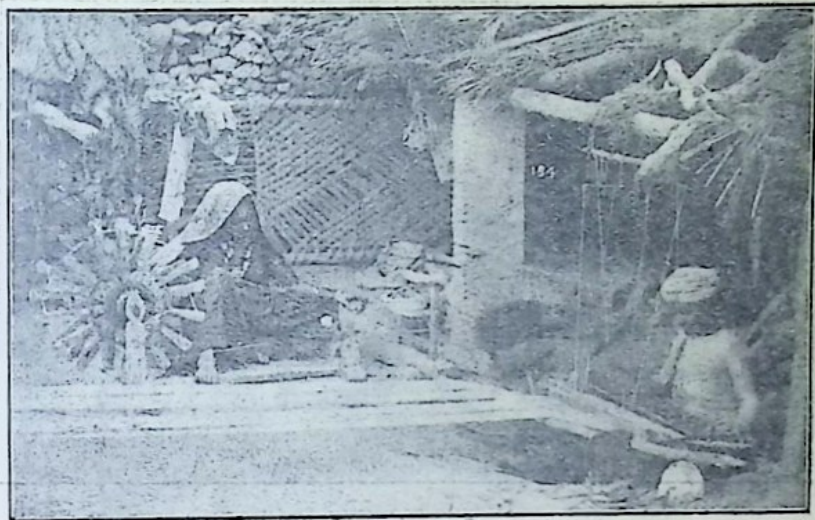
में) प्रचलित हैं। बाल-विवाह और विधवाओं की आहें राजस्थानियों के सुखों को नष्ट करने वाली और घातक हैं। इनकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। यहाँ की कुल स्त्रियों की संख्या ४६,२६,४६३ है। इसमें विवाहिता स्त्रियाँ २१,२६,१२५ और विधवाएँ ८,८३,२८६ हैं। विवाहिता स्त्रियों में ४१ प्रतिशत विधवाएँ हैं। बाल और युवती विधवाओं की संख्या एक लाख से अधिक है। बहुविवाह की कुसीति राजा-महाराजा अथवा जागीर-

दार और धनी-मानियों में अधिक पाई जाती है। राजस्थान में एक-दो नरेशों और कुछ जागीरदारों के सिवाय सभी के अनेक पत्नियाँ हैं। राजपूतों के पतन के मुख्य कारणों में से यह घातक प्रथा भी एक है। दशरथ के बहु-

विवाह का फल रामचन्द्र को भुगतना पड़ा। अशोक के अनेक विवाह करने के कारण ही मौर्य-वंश की शिथिलता आरम्भ हुई। प्रसिद्ध जयचन्द्र गहरवार के राज्य के विनाश का कारण भी बहुविवाह माना जाता है। मारवाड़ के राठौड़ रावचूड़ा के राज्य का पतन भी अनेक रानियों के कारण गृह-कलह से हुआ।

राजकर्मचारी (मुसद्दी) प्रायः पासवान (उप-पत्नी) रखने में अपनी मर्यादा समझते हैं, जो नीति और धर्म-विरुद्ध प्रथा है। कुछ रियासतों में बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और कन्या-विक्रय को कानून से रोकने की चेष्टा की गई है। भरतपुर, कोटा और बीकानेर-राज्य ने यह नियम

क्योंकि इसकी पाबन्दी कड़ाई के साथ नहीं हाता। अन्यथा हजारों समाज-सुधारक व प्रचारका का बल एक



मारवाड़ के ग्रामीण-जीवन का एक दृश्य

[हिन्दू-जुलाहा—भाँची-बँड]



मारवाड़ का ग्रामीण-जीवन

बना दिया है कि बालक का विवाह कम से कम १६ वर्ष और कन्या का १३ वर्ष में होना चाहिए। परन्तु इन कानूनी नियन्त्रणों का प्रभाव अभी बहुत कम पड़ा है।

कि कन्या का सम्बन्ध अपने से ऊँचे या बराबरी के धनी रईस घराने में किया जाय, इस बात की परवा नहीं की जाती कि वर की शारीरिक व विद्या-सम्बन्धी योग्यता ठीक है

राज-सत्ता के बल के सम्मुख कम है। जो सामाजिक सुधार के काम टर्कों के मुस्तफ़ा कमाल पाशा ने राज्य द्वारा कानून बना कर किए हैं, एक शताब्दी में भी सुधारकों द्वारा होने दुर्लभ थे। यह सब कुछ राजस्थान में भी सम्भव है, यदि हमारे देशी नरेश सच्ची लगन से सुधार की ओर ध्यान दें !

राजपूतों में, विशेष कर बड़े जागीरदार व राजाओं में, यह प्रथा चली आती है

या नहीं। यहाँ तक हठ किया जाता है कि कहीं-कहीं कन्याओं को आजन्म अविवाहिता रहना पड़ता है।

सभा का असर अधिक नहीं पड़ा और राजपूत-समाज में वैसी ही कुरीतियाँ घर किए हुए हैं। इन कुरीतियों के



राजपूत-मजलिस (गहलोत वंश के)

और सम्बन्ध हुआ भी तो अनमेल, जिससे पासवानों (पड़दायतों) का पासा तेज़ रहता है।

इन राजपूतों के रीति-रस्मों को नियमपूर्वक चलाने और वहाँ की अनेक सामा-जिक बुराइयों को दूर करने के लिए कर्नल वाल्टर (ए० जी० जी०) ने सं० १९४५ की चैत्र वदी १३ को अजमेर में एक सभा स्थापित की। दूसरे वार्षिक अधिवेशन पर १५ फ़रवरी, सन् १९८६ ई० को इस सभा का नाम उन्हीं के नाम पर "वाल्टर कृत राज-पुत्र-हितकारिणी सभा" रक्खा गया। देश में अनेक राजा-महाराजाओं के होते हुए भी, राजपूताना के ए० जी० जी० उसके स्थायी सभापति होते हैं! इस सभा की शाखाएँ प्रत्येक राज्य में अब तक कायम हैं। परन्तु इस



मारवाड़ी कलाल (कलवार) की दूकान

पूरा ध्यान रखें तो राजपूत-समाज की स्थिति में बहुत शीघ्र परिवर्तन हो सकता है। क्योंकि उसके पास साधनों की कमी नहीं है—केवल मार्ग-प्रदर्शन की आवश्यकता है।

* * *

राजपूतों में तम्बाकू और अफीम (अमल) पीने की प्रथा बहुत अधिक है। आखातीज, होली, दिवाली और विवाह के अवसर पर पानी में घोल कर अफीम मेहमानों को देते हैं। राजस्थान में अफीम के नशे की बड़ी प्रशंसा है। किसी राजस्थानी कवि ने कहा है :—

अमल तूँ उदमादिया,
सेणों हन्दा सेण।
था बिन घड़ी अन आवड़े,
फीका लागे नेण॥

अर्थात्—अफीम तेरा नशा आने पर शरीर में चैतन्यता आ जाती है। तू मित्रों का मित्र है। तेरे बिना मुझे पल भर चैन नहीं पड़ता और तेरे नशे के बिना नेत्र फीके प्रतीत होते हैं।

ऐसे ही दोहे खुशामदी लोग जागीरदार राजा-रईसों से कहा

समय व्यर्थ गपाष्टकों और दुर्व्यसनो में इस प्रकार बीते ! इधर शराब का चस्का भी इस जाति को नष्ट कर रहा है



मारवाड़ के वनजार

और शासकों की देखा-देखी प्रजा में भी इसका प्रचार बढ़ गया है। ढोली, डाढ़ी, रण्डी, भँडवे आदि शराब की प्रशंसा के गीत गा-गाकर राजा-रईसों को नशे का चस्का लगा देते हैं और उन्हें दिनोंदिन प्रोत्साहित करते रहते हैं। जैसे :—

दारु पियो रङ्ग करो,
राता राखो नेण।
बैरी थारा जल मरे,
सुख पावेला सेण॥
दारु दिल्ली आगरो,
दारु बीकानेर।
दारु पियो साहिवा,
कई सौ रुपयारो फेर॥



मारवाड़ के ओसवाल वैश्य (पटवे का काम करते हुए)

करते हैं और बैठे-बैठे तारीफ़ बघार कर समय बिताते हैं। जो शासक-जाति कभी शूर-वीरता के लिहाज़ से सर्वोच्च गिनी जाती रही है, उसी राजपूत जाति का

दारु तो भक-भक करे, सीसी करे पुकार।
हाथ प्यालो धन खड़ी, पीओ राजकुमार॥

* * *

भरला रो सुघड़ सजनी, दारुड़ो दाखॉ रो ।
पीवन वालो लाखॉ रो, भरला ऐ सुघड़
सजनी दारुड़ो दाखॉ रो ॥

“छल-बल करते हुए घोड़े, अलबले सवार, मद्य से
छुके हुए मारू (नायक) भले होते हैं, वैसे ही नखरीली
नायिका भी अच्छी होती है ।”



बिसाती (मनिहारी माल बेचने वाला मुसलमान-दूकानदार)

“सजनि ! अङ्गूरों की
मदिरा भर कर ला, क्योंकि
पीने वाला लाखों रुपए का
असामी है ।”
सोरठियो दोहो भलो,
भली मरवण री बात ।
जोवन छाई धन भली,
तारों छाई रात ॥

“जैसे मोरठ रागिनी का
दोहा सुन्दर होता है और
डोला मारवण की बात
(कथा) सुन्दर होती है,
वैसे ही यौवन से भरी हुई
कामिनी और तारों से छाई
हुई रात भी भली प्रतीत
होती है ।”



मारवाड़ की पोसाल (चटशाला)

छलबलिया घोड़ा भला, अलबलिया असवार । मदछकिया महाराज, थाने किण पिलाई दारुड़ी ।
मदछकिया मारू भला, मरवण नखरादार ॥ बोले नी दारूरा मारू, पूछे थारी मारूड़ी ॥

[गुराँसा की कामच का मुलाहजा कीजिए, जिसके बल पर लड़के पढ़ाए जाते हैं]



पर्व-स्तवन

भक्ति जल में दीधी सुसरा जी देव का पाया हो राम ।
सुख की जल में दीधी सासु जी देव की पाया हो राम ।
रा. चरकी जल में दीधी बाप दिल्ली का राजा हो राम ।





सजनी, दारुङ्गो दाखों रो ।
लाखों रो, भरला ऐ सुवड़
सजनी दारुङ्गो दाखों रो ॥

“झल-झल करते हुए घोड़े, अलबेले सवार, अथ से
बड़े हुए मारु (नायक) भले होते हैं, वैसे ही नज़रीली
नायिका भी अच्छी होती है ।”



विसाती (मनिहारी माल बेचने वाला मुसलमान-दुकानदार)

“सखी ! अरों को
मदिरा भर कर ला, क्योंकि
पीने वाला लाखों रुप का
बनाने है ।”
खोपड़ियों को भी मलो,
भली कलहरी रो खान ।
अंधन लाख बन भली,
लाखों लाख काय ॥

“जैसे जोरु मणिनी का
रोना सुनकर होता है और
जोका मारना की बात
(क्या) सुनकर होती है,
वैसे ही योवन से लगी हुई
कविनी और भली से हुई
हुई बात भी भली खोल
होती है ।”



मणिनी की पेशवा (चटशाजा)

[मणिनी की कामना का मुसलमान मणिनी, जिसके बल / मणिनी काय माने हैं]

मणिनी को रोना मणिनी, मणिनी काय माने हैं । मणिनी काय माने हैं । मणिनी काय माने हैं ।
मणिनी काय माने हैं । मणिनी काय माने हैं । मणिनी काय माने हैं । मणिनी काय माने हैं ॥

मारु मजलसिया भला,
घोड़ा भला कुमेत ।
नारी तो निचली भली,
कपड़ो अलो सपेत ॥

“मारु (मर्द) मजलस
रचाने वाला भला होता है,
घोड़े कुमेत रज़ के भले
होते हैं, नारी कोमलाङ्गिनी
कामिनी भली होती है और
कपड़ा सजेद सुन्दर होता
है ।”

किस्तुरी काली भली,
राती भली गुलाल ।
रसिया तो पतला भला,
जाड़ा भला हमाल ॥



पर्व-स्नान

पैली चुभकी जल में दीधी सुसरा जी देव का पाया हो राम ।
दूसरी चुभकी जल में दीधी सासु जी देव की पाया हो राम ।
तीसरी चुभकी जल में दीधी बाप दिल्ली का राजा हो राम ।



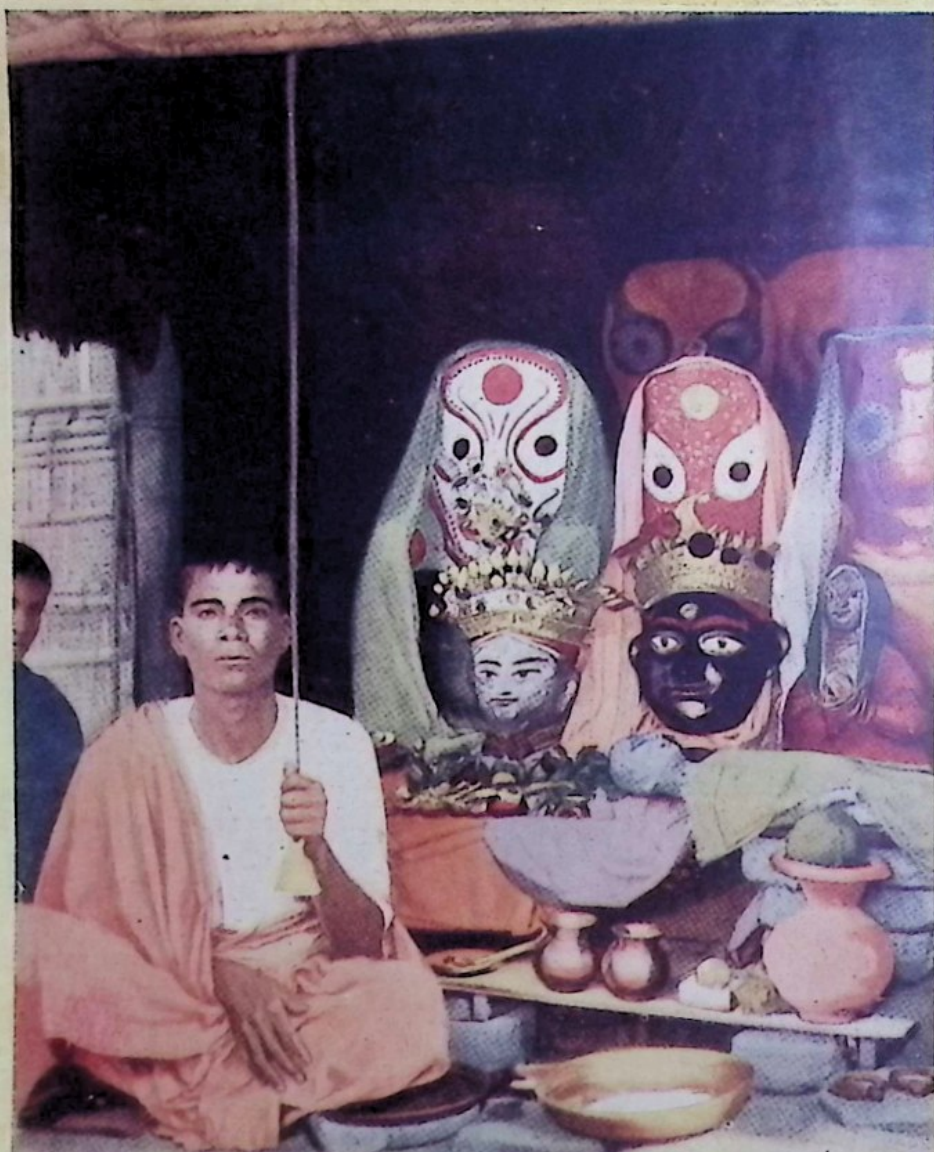
छप गई !

प्रकाशित हो गई !

मिस मेयो की नई करतूत

आग लगाने वाली तथा समाज को तिलमिला देने वाली १२ सामाजिक कहानियाँ

समाज के वक्षस्थल पर भीषण प्रहार करने वाली पुस्तक



देवताओं के गुलाम
(SLAVES OF THE GODS)
का हिन्दी अनुवाद

पढ़िए और शर्म कीजिए ! पृष्ठ-संख्या लगभग ४००, दो तिरङ्गे चित्रों सहित प्रोटेक्टिङ्ग कवर तथा सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत मात्र केवल ३) २० स्थायी ग्राहकों से २।) २० !

✎ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

मारवण थारा तो नेणाँ रो पाणी लागणों ।
हो प्यारी मारवण थारा नेणा रो पाणी
लागणों ॥

मैं कइयाँ जगाऊँ रे दारू को मारू सूतो नींद में ॥

* * *

इस प्रान्त की राजनैतिक अवस्था का तो कहना ही क्या, यहाँ की प्रजा ब्रिटिश-भारत की प्रजा से बहुत पिछड़ी हुई है। भीरुता, दबूपन, अपने अधिकारों से अज्ञानता और अविद्या आदि अनेक वृत्तियाँ हैं। ऐसी दशा में यदि उन पर बेगू बिजोलिया और नीमूचाणा जैसे भीषण बर्ताव किए जायें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? जहाँ ब्रिटिश-भारत में भेंट-बेगार जैसी प्रथा को हटा दिया गया है, वहाँ राज-पूताना और मालवा प्रान्त में यह चलन अभी तक वैसा ही बना हुआ है।



मारवाड़ के साँसी (कञ्जर)

यहाँ की सीधी व निर्धन प्रजा में से भाँवी, भील, सरगारा, चमार आदि छोटी जातियों से पारिश्रमिक दिए बिना ही काम कराया जाता है। ऐसे बेगारियों की संख्या १८,०३,६२६ अर्थात् कुल जन-संख्या में १८ प्रतिशत से अधिक बेगारी हैं। जागीरदार लोग, नाई, कुम्हार, खाती, जाट, माली, गूजर आदि जातियों के स्त्री-पुरुषों से भी बिना पारिश्रमिक दिए काम कराते हैं और वे इसको अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानते हैं! इस कलङ्कित प्रथा के अनुसार कोई भी राजकर्मचारी बिना कुछ दिए या थोड़ी मजदूरी पर कुछ जातियों से हर समय और विशेष अवसरों पर मजदूरी करा सकता है।

प्रत्येक गाँव में प्रतिदिन कम से कम दो-चार बेगार रहती ही हैं। पटवारी, ग्रहलकार आदि यदि एक गाँव से दूसरे गाँव गए तो उनका वस्ता एक बेगारी ले जायगा। यहाँ तक कि छोटे-छोटे कामों के लिए भी वे बेचारे पकड़े जाते हैं। इन लोगों से किस प्रकार बेगार ली जाती है, उसके कुछ नमूने देखिए:—

भाँवी (बलाई-मेघवाल-डेंड) जाति के स्त्री-पुरुष तथा बच्चों से दाना दलाना, घास कटवाना, चमड़ों के साजों की मरम्मत कराना और जनाने-मरदाने मकानों को गोबर से लीपने-पोतने का काम बिना मूल्य कराया जाता है।

सरगारा-
जाति के लोग कासिद का काम करते हैं। विवाह आदि में बाँकिए और थाली भी वजाते हैं। और अपनी अनुपस्थिति में उन्हें बदले में दूसरा एवज़ी रखना पड़ता है।

नाइयों से जागीरदार लोग बिना मजदूरी दिए ही अपने घरों में रोज़ दिए जलवाते, भोजन तैयार कराते, धोती धुलवाते, जूटे बत्तन मँजवाते और रात में पैर दबवाते हैं, तथा उनको जलसों में राँड, भाँड़ की अरदली में मशाल पकड़े खड़े रहना होता है !!

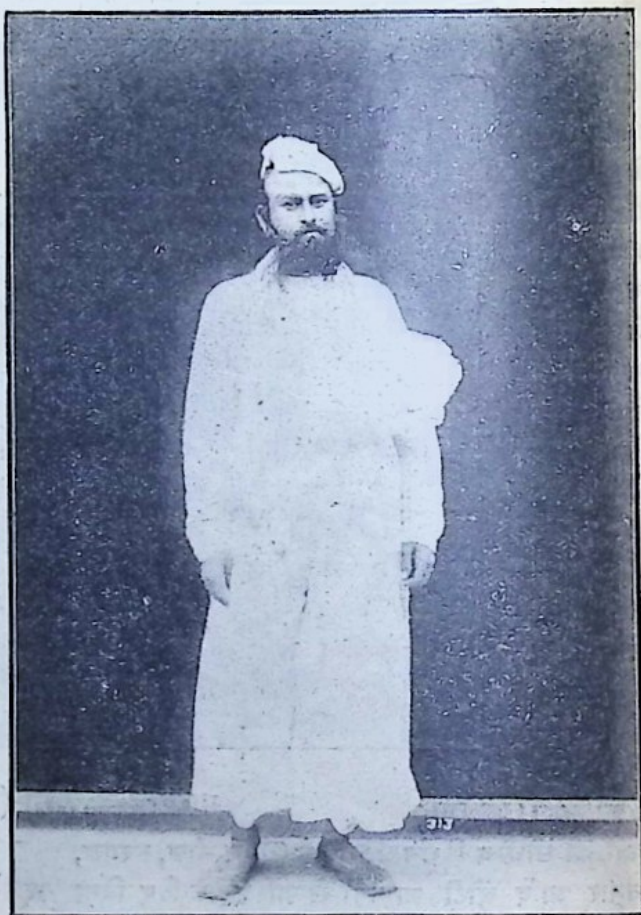
इसी प्रकार कुम्हारों से घड़े मँगवा कर पानी भरवाया जाता है। कृपक जैसे जाट, माली, सीरवियों आदि से बैलगाड़ी, हल, दूध, दही, घास आदि वस्तुएँ अफ़सरों को दौरों के समय और जागीरदार की आवश्यकतानुसार ली जाती है। इनकी स्त्रियों को भी बेगार से नहीं छोड़ा जाता। उनसे विवाह, गोठ-गूगरी (प्रीति-भोज) आदि

के समय मनो आटा पिसवाया जाता है। लोहारों से और नहीं तो कैदियों की बेड़ियाँ बनवाना, पहिनाना और उसे निकालने का काम लिया जाता है। मैणा (मीना) तथा गूजरों से पहरा दिलवाया जाता है। अनपढ़ ब्राह्मणों से ग्रहलकारों के लिए भोजन बनवाया जाता है और शिष्टियों से पञ्चाङ्ग सुनाने और शान्ति-पाठ कराने का काम लिया जाता है। यहाँ तक कि महाजन (वैश्य) लोग भी इस अमानुषिक बेगार से मुक्त नहीं हैं !

राजस्थान में अनेक जातियाँ विशेष प्रकार के जाली, उजालदान, झरोखे, टोडे आदि रख कर मकान नहीं बना सकते, जिससे भीतर प्रकाश आ सके। वे विशेष प्रकार की सवारी भी नहीं रख सकते। यदि किसी जाति में कोई सम्पत्तिशाली होगया, और उसने घोड़ा-गाड़ी, बग्घी आदि सवारी रखनी चाही तो नहीं रख सकता। इनमें से बहुतेरी जातियाँ विशेष प्रकार के आभूषण और कपड़े नहीं पहन सकतीं, न सुन्दर भावपूर्ण नाम रख सकती हैं ! वे विवाह, रामी आदि के समय विशेष प्रकार के भोजन तक नहीं बना सकतीं। विवाह के समय प्रत्येक जाति का दुलहा "वीद राजा" कहलाता है, परन्तु इन भाग्यहीन जातियों में जन्म लेने के कारण उस समय राजा कहलाए जाकर भी वह घोड़े पर सवार नहीं हो सकता। भाँवी (ढेंढ), सर-गरे तथा मेहतर आदि निम्न जातियों का कहना ही क्या, वे तो पशु-योनियों से भी गया-बीता जीवन बिताते हैं ! इनको चाँदी के आभूषण तक पहनने नहीं दिया जाता। परन्तु कई राज्यों में अब जागृति होने लगी है और लोग अपने अधिकार समझने लगे हैं। अदालतों ने भी इसके पक्ष में निर्णय किए हैं, जैसा कि जोधपुर-राज्य के भाँवियों (चमारों) को सोने की मुरकियाँ कानों में और गले में फूल (देव-मूर्ति) आदि गहना पहनने का अधिकार है। इस प्रकार का निर्णय चीफ़ कोर्ट, जोधपुर से सं० १९७६ वि० में हुआ है।

बेगार के पक्षपातियों का यह तर्क है कि बेगार से बहुत से सुभीते हैं और उसके उठ जाने से राज-कर्म-चारियों को मजदूर, सवारी अथवा सामान समय पर न

मिल सकेगा। यह तर्क पोच है। जब पूरी मजदूरी दी जाय तो प्रति क्षण प्रत्येक वस्तु गरीबों तक को मिल सकती है, राज्य की कौन कहे ? वरन् पूरा मूल्य देने से सब तरह का सुभीता रहता है और गरीबों को भी बृथा तङ्ग नहीं होना पड़ता। कई राज्यों से बेगार उठा दी गई है और कहीं असल मजदूरी से पौनी, आधी और कहीं नाम-



माहेश्वरी वैश्य

मात्र का मिहनताना स्थिर कर दिया गया है। परन्तु यह भी प्रायः गरीब बेगारियों के पल्ले न पड़ कर, स्वार्थी ग्रहलकारों की जेब में ही चला जाता है। इससे बढ़ कर शोक की क्या बात होगी ! बहुधा किराया की हुई सवारियों को उतार कर बेगारियों को बैल, ऊँट या घोड़े के सहित ले जाया जाता है ; भोजन आदि दिए बिना रात-दिन उनसे काम लिया जाता है ; और चलते समय लाल-

लाल आँखें दिखा कर उन्हें दरका दिया जाता है। अङ्ग-रेज-सरकार का ध्यान इस ओर कौन दिलावे। लाट साहब की स्पेशल-ट्रेन किसी राज्य में आती है या किसी राज्य से होकर गुज़रती है, तब उन्हें अपनी कोमल सुथरी सेज पर लेटे हुए क्या पता चल सकता है कि पौष की अर्द्ध-रात्रि की ठण्ड अथवा ज्येष्ठ की कड़ाके की धूप में रेल की पटरी के दोनों ओर तार के प्रत्येक खम्भे के पास कोई प्राणी उनकी रक्षा के लिए खड़ा है!

बड़ा विचार है कि स्वयं तो गद्दी-तकिया लगा कर बैठते हैं, पर दूसरी छोटी कौमों के लोग इनके सामने आसन पर बैठ ही नहीं सकते। राजस्थान की प्रजा के लिए वह दिन गौरव का होगा, जब राजकोट, आँध और लीमड़ी की सी छोटी रियासतों के उन्नतिप्रिय नरेशों के समान यहाँ के नरेश भी बेगारें बन्द करेंगे।

बेगार के अतिरिक्त इन लोगों से अनेकों कर लिए जाते हैं। उदाहरण के लिए एक लाग की उत्पत्ति का उदाहरण यहाँ दिया जाता है:—

होली, दिवाली, वर्षगाँठ आदि के दिन सब महा-

ज न पञ्चों

को इ क ट्टा

होकर मुजरे

के लि ए

कचहरी में

जाना पड़ता

है और पञ्चा-

यत की ओर

से कुछ भेंट

देनी पड़ती

है। दूसरी

कौमों को

भी ऐसा ही

करना पड़ता

है। जागी-

र दा रं या

अ फ स र

आने वालों की अमल (अफ्रीम) की मनवार किया

कहते हैं! बहुत से रईसों का बर्ताव अपनी प्रजा के

साथ अच्छा नहीं होता। जागीरदार के मकान में,

जिसको कोट, गढ़ या कोटड़ी कहते हैं, वहाँ के निवा-

सियों का सब कारबार हुआ करता है, और उसे इस

कारण प्रजा की जगह (पब्लिक-स्थान) ही मानना

चाहिए। परन्तु उस गढ़ में या उसके आस-पास सवारी

पर अथवा छाता लगा कर या नङ्गे सिर कोई नहीं निकल

सकता; न कुर्सी पर बैठ सकता है, न आँधेरी रात में

लालटेन आगे को लेकर चल सकता है; और न

चारपाई पर सो सकता है। बैठने-उठने का इतना



लोहाना बनिया

[गाँवों से माल लाने वाले]

खबर सुन कर गाँव के बहुत से मनुष्य एकत्रित हो गए।

ठाकुर साहब के भी पीड़ा हो रही थी। सँभलने पर भी

बार-बार उनके मुँह से कराहने का शब्द निकल ही जाता

था। लोगों ने समझा, घोड़ी के मरने का ठाकुर साहब को

बहुत शोक हुआ है, अतः समझाना आरम्भ किया। परन्तु

घोड़ी का शोक हो तब तो समझाने से शान्त हो। यहाँ

तो बात दूसरी थी। अन्त में कुछ धनाढ्य मारवाड़ियों

ने कहा, आप एक घोड़ी का इतना शोक क्यों करते हैं?

ऐसी घोड़ी जितने में आज ही मिले, दूसरी खरीद लीजिए।

ठाकुर ने कहा इतने रुपए कहाँ हैं? लोगों ने “राज-भक्ति”

के जोश में आकर कह दिया, हम देंगे। अस्तु, ₹००)

कोई जागीरदार अपनी घोड़ी को गाँव के चारों

ओर दौड़ा

र हा था।

अक स्मात्

एक चट्टान

पर बने हुए

चबूतरे से

टकर खाकर

घोड़ी गिर

पड़ी और

ठाकुर साहब

भी गिरे।

घोड़ी चट्टान

पर गिरने

के कारण

वहाँ मर

गई। इस

दुर्घटना की

में उसी दिन एक घोड़ी खरीदी गई। और गाँव के लोगों ने इस आशा पर ५००) ५० एकत्रित कर दिए कि ज़मीन का लगान लेते समय ठाकुर उनके रूप में भर देगा। परन्तु लगान के समय ठाकुर ने जवाब दिया कि, “तुम्हारे गाँव के चारों तरफ़ दौड़ाते हुए मेरी घोड़ी मरी, ऐसी हालत में उसका मूल्य देना तुम्हारा कर्तव्य था। साल भर व्यतीत होते ही ठाकुर के कर्मचारियों ने



सीरवी क्षत्रिय (कृषक)

“घुड़-पट्टी” की लागत के ५००) रूप में माँगे। लोग शिकायत लेकर ठाकुर के पास पहुँचे। जागीरदार ने कहा—“वह घोड़ी हर साल एक बच्चा ५००) रूप में का देती थी, इसलिए तुम्हें ये रूप में देने ही पड़ेंगे! यदि न दोगे तो काठ तैयार है।” अन्त में यह ५००) सालाना की लागत लग ही गई और वह आज तक वसूल होती है!

ऐसे ही शासनकर्त्ता के कुल में विवाह, ग़मी आदि के प्रसङ्ग आ जाने पर जो खर्च होता है उसकी रकम प्रजा से अनाप-शनाप शरह से “नोता” के नाम से वसूल की जाती है। समय-समय पर ऐसी लागें लेने के सिवाय प्रजा से और भी कई प्रकार के लगान वसूल किए जाते हैं। ज़मीन की विक्री पर “मुजराने” का तो कोई ठिकाना ही नहीं है। ब्रिटिश-भारत में जहाँ ज़मीन की विक्री पर १॥) ५० सैकड़े लगान होता है, वहाँ उसके लिए देशी राज्यों में १०) ५० सैकड़ा और कहीं-कहीं ३३) ५० सैकड़ा तक मुजराना लिया जाता है। छोटे से छोटे जागीरदार भी “मुजराना” वसूल करते हैं। इतना कड़ा लगान लेकर भी अधिकांश राज्यों में प्रजा के हितार्थ कुछ नहीं होता !!

* * *

लाग-बाग (कर) और बेगार की तरह ही कलङ्कित दास-प्रथा भी राजस्थान में प्रचलित है। यद्यपि संसार भर से सन् १८३३ ई० की २८ अगस्त को गुलामी उठ गई, किन्तु यहाँ इसका बोल-बाला है! यहाँ बीसवीं सदी में भी मनुष्यों का एक समुदाय (१,६१,७३५ स्त्री-पुरुष) गुलाम बना रखा गया है। प्रदेश-भेद से इस जाति के अनेक नाम हैं। यथा दूरोगा, चाकर, हज़ूरी, रावण, खवास, चेला आदि-आदि। इनकी बहिन-बेटियाँ आदि भी जागीरदार की ओर से दहेज में दे दी जाती हैं। यही नहीं, इनका क्रय-विक्रय भी हो सकता है और सुन्दर होने पर उप-पत्नी (पास-बान) बना ली जाती हैं, इनको नाम-मात्र के लिए ब्याह दिया जाता है, परन्तु दम्पति पति-पत्नी की भाँति नहीं रह सकते। उन्हें बहुत थोड़ा और ख़राब अन्न-वस्त्र दिया जाता

है। उन्हें जूठा खाना, पाख़ाने के बर्त्तन उठाना, कपड़े और बर्त्तन माँजना आदि सभी कार्य करने पड़ते हैं! उनको प्रभुओं की सेवा में दिन-रात हाज़िर रहना पड़ता है। उनके साथ ज़रा सी चूक पर गाली-गलौज और मार-पीट होना मामूली बात है। जागीरों और रियासतों में होने वाले गुप्त पड़्यन्त्रों और

हत्या-काण्डों के लिए यही लोग सुलभ अस्त्र हैं ! अवस्था इतनी पतित हो गई है कि न वे इससे मुक्त होने की इच्छा ही करते हैं और न हो सकते हैं। जो लोग रियासतों में से भाग कर अङ्गरेजी इलाकों में चले जाते हैं, उन पर पोरियों के अपराध लगा, पकड़वा कर वापस मँगवा लिया जाता है। ब्रिटिश-अधिकारी वास्तविक स्थिति से आँख मींच कर एक्सट्रेडिशन (Extradition) के क़ानून की आड़ में उन्हें उनके स्वामियों के हवाले कर देते हैं। वहाँ पहुँच कर उनके साथ जो व्यवहार होता है, वह पाठक



दरोगा जाति के अभाग्ये प्राणी

स्वयं ही जान लें। इन बातों का परिणाम यह हुआ है कि यह समुदाय स्वाभिमान से सर्वथा ही हाथ धो बैठा है और निराश होकर यह समझ बैठा है कि हम इसीलिए पैदा हुए हैं।

इधर इनके स्वामियों का ध्यान अपने स्वार्थ निकलते रहने से इनकी दीन-हीन दशा की ओर बहुत कम जाता है। राजपूत-जागीरदारों में से केवल कुछ नई रोशनी के जागीरदार ज़बानी जमा-अर्च करते समय या कुप्रथाओं

पर लेख लिखते समय इस “दास-प्रथा” की बुराई कर देते हैं। परन्तु इस दरोगा-जाति का भाग्य अब आशा-तीत प्रतीत होता है, क्योंकि नैपाल-सम्राट् ने जिस प्रकार सन् १८२५ ई० में दास-प्रथा का सदा के लिए अन्त कर दिया है, वैसे ही राजस्थान में कुछ देशी नरेश अग्रसर हुए हैं, जिन्होंने अपने राज्य में दास-प्रथा हटाने के लिए क़ानून बनाए हैं। जोधपुर के नवयुवक महाराजा साहब ने सन् १८९६ ई० का दास-प्रथा क़ानून सन् १८२६ की २१ वीं अप्रैल को रद्द कर दिया है। जोधपुर-स्टेट की काउन्सिल ने सन् १८९६ ई० की ११ वीं जुलाई को एक राज-नियम बना दिया था, जिसके अनुसार ठाकुर अपने यहाँ के दरोगों (रावणों) और उनकी स्त्रियों एवं सन्तान से उनकी इच्छा के विरुद्ध, न केवल काम ही ले सकते थे, वरन् ज़बरदस्ती दहेज तक में दे सकते थे ! पर अब कोई जागीरदार इस समुदाय के साथ बलात् उस प्रकार का व्यवहार नहीं कर सकता। अपनी इच्छा से दरोगे जागीरदार के यहाँ रहें तो रह सकते हैं। ऐसे परोपकारी आज्ञा के लिए जोधपुर के महाराजा साहब धन्यवाद और कृतज्ञता के पात्र हैं। साथ ही आशा है कि राजस्थान के अन्य राजा-महाराजा व उदार जागीरदार भी समय की गति को देखते हुए, अपने यहाँ की इस निन्दनीय दास-प्रथा को उठा कर, प्रजा के एक समूह को सुख-स्वच्छन्दतापूर्वक विकास करने का अवसर प्रदान करेंगे।

* * *

बेगार, लाग और दबी हुई प्रजा के साथ बहुत से राज्यों में न्याय अच्छा होता हो, यह सम्भव नहीं है। जिसका हाथ नरम है उसका काम निकल जाता है और जो रीते हाथ है वह बरबाद होकर न्याय से मुँह मोड़ लेता है। मुकदमों में प्रायः ऐसी-ऐसी पेचीदगियाँ आ जाती हैं कि क़ानूनी चक्र में कई बार झूठे का सच्चा और सच्चे का झूठा बन जाता है। अधिकांश राज्यों में घूसखोरी, अन्धेरशाही, पक्षपात और न्याय का दबाव है। राजस्थान में लम्बी त्रास के पश्चात् कहीं किसी ठिकाने ही प्रजा को सच्चा न्याय, और वह भी बड़ी लम्बी मुद्दत के बाद, मिलता है। उन्नत कहलाने वाली रियासतों तक में साधारण से मामलों में कई वर्ष निकल जाते हैं, फिर बड़े मामलों में तो युगों के युग निकल जाते हैं। सैकड़ों मिसलें ज़ेरतजवीज़ रहती हैं और इस

दीर्घ-सूत्रता में फ़रीक़ैन की एकाध पीढ़ी भी समाप्त हो चुकती है ! कई राज्यों में न्यायाधीश निरन्तर भट्टाचार्य हैं। ग़रीब और अमीर के साथ भेद-भाव वाला पक्षपाती न्याय अधिकांश राज्यों में आवश्यकता से अधिक बदनाम है। कई राजवाड़ों में वहाँ के ऊँचे-ऊँचे कर्मचारियों में प्रधानता प्राप्त करने के लिए दलबन्दियाँ होती हैं। वहाँ के न्याय और पुलिस-विभाग भी इन दलबन्दियों से ख़ाली नहीं रहते। जिस ओहदेदार का ज़ोर होता है, वह अपना सबसे पहला काम अपने विरोधी के पक्ष वालों या मित्रों को कष्ट पहुँचाना समझता है। इसी प्रकार अपने से विरुद्ध विचार रखने वालों को गुप्त धमकियाँ दी जाती हैं, झूठे-सच्चे मुक़दमे खड़े करके उनका दमन किया जाता है। यहाँ के प्रत्येक मामले में स्टैम्प फ़्री, कोर्ट फ़्री आदि भी बहुत बड़ी हुई हैं।

* * *

सामाजिक भीतरी कुरीतियों को दूर करना तभी सम्भव है, जब स्वयं राजा-प्रजा दृढ़ता से कटिबद्ध हों, परन्तु राजस्थान में तो एक उलटा ही ढङ्ग देखने में आता है ! यहाँ के अधिकांश जागीरदार* अशिक्षित और दुर्व्यसनों में लिस हैं। क्योंकि वे प्रायः स्वेच्छाचारी तो होते ही हैं, तिस पर यदि उन्हें राज्य से न्यायालय (जुडीशियल) के अधिकार (सिविल और क्रिमिनल) भी मिल जायें तो “करेला और नीम चढ़ा” वाली कहावत चरितार्थ होती है, और उनके ख़शामदी नौकर-चाकर उन अधिकारों का मनमाना दुरुपयोग करते हैं। और जब कोई साहस कर उसकी अपील करने जाता है तो ठाकुर अपनी सत्ता का दुरुपयोग कर, उसको हर प्रकार कष्ट दिया करता है। यदि इनकी कार्रवाइयों का निरीक्षण होता रहता तो भी कुछ ग़नीमत थी, लेकिन वह भी

* इन जागीरदारों (तालुकदारों-इस्तमरारदारों) के चापलूस जी-हज़ूरिय इनको “नरेश” और इनकी जागीरों को “रियासत” शब्द से सम्बोधन करते हैं, जो भ्रम में डालने वाली बात है। वास्तव में “नरेश” शब्द का अधिकारी वही गिना जाता है, जिसको शासन के न्याय और अपनी प्रजा के जान-माल की रक्षा के तथा अपहरण के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हों। ऐसे ही नरेशों को भारत-सरकार से प्रायः तोपों की सलामी प्राप्त है, और उन्हीं की भूमि रियासत कहलाती है।

नहीं होता। फल यह होता है कि राज्य की प्रजा से भी अधिक जागीरदारों की प्रजा को जुल्म सहने पड़ते हैं।

जागीरदारों ने दीन-दुखी प्रजा से मनमानी कई लाख और बेठ-बेगारों के नाम से रुपया लेना अपना धर्म और इस कठोरता से आई हुई सम्पत्ति को कुमार्ग में उड़ाना अपना कर्म समझ रक्खा है। रियासतों की लापरवाही ने इन जागीरदारों को और भी स्वेच्छाचारी कर दिया है और ये निरंकुश होकर अपनी प्रजा पर अत्याचार करने में कमी नहीं रखते। उचित है कि रियासतें अपनी प्रत्येक जागीर में एक पञ्चायत नियत करें, जो आय-व्यय का बजट बनाए और वह बजट उस रियासत से प्रति वर्ष पास हो तथा उसके ही अनुसार प्रत्येक जागीर में कार्य हो।

* * *

कहीं कोई जागीरदार राजकुमार-कॉलेज में पढ़ भी गए तो वे मोटर, पोलो, शिकार आदि के शौकीन बन कर निकलते हैं, और प्रजारब्जन की वास्तविक शिक्षा से वञ्चित ही रहते हैं। क्योंकि कॉलेज में पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करने, अङ्गरेज़ी-भाषा को अङ्गरेज़ों की तरह बोलने के सिवाय कदाचित् ही कुछ सिखलाया जाता हो। अधिकांश विद्यार्थी वहाँ के शिक्षण से अपने वंश की उच्चता और धर्म के महत्व को नहीं पहिचानते और इस प्रकार प्राचीन हिन्दू-आदर्श इनके सामने नहीं रहता !! दस वर्ष के शिक्षण से वे नहीं सीखते कि अपनी प्रजा के प्रति, अपने देश के प्रति उनके क्या-क्या कर्तव्य हैं। प्रत्युत कई तो अनोखे दुर्व्यसनों में लिस हो जाते हैं, जिसका प्रभाव आजीवन बना रहता है। वहाँ की शिक्षा के विषय में ऐसा एक भी प्रमाण नहीं मिलता कि जिसमें राज-पूती झलकती हो। कितने राजकुमार लाठी, तलवार आदि चलाना जानते और कितने सदाचार से ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हैं ? कितने राज-रत्नों और भावी मुकुटधारियों ने विदेशी राजकुमारों की भाँति जहाज़ों पर कोयला झोंक कर या मेहनत-मज़दूरी द्वारा अपनी युवा-वस्था और सुकुमार शरीर को कठोर बनाने का साहस किया है ? यदि सच कहा जाय तो वहाँ तो केवल भक्ति-पूर्ण दरबारी या एपीकूरियन क्लब का मेम्बर होना ही सीख पाते हैं—जैसा कि ग्वालियर के महाराजा साहब ने सन् १९१८-१९ की अपनी वार्षिक रिपोर्ट की आलोचना करते हुए इन जागीरदारों के विषय में कहा है :—

"They are merely beautiful figures in the Durbars. We must have the aristocracy to work with the proletariat. Mark the results of such capacity in Europe."

अर्थात्—“जागीरदार लोग केवल दरबार के सुन्दर साज हैं, हमारा यह प्रयत्न होना चाहिए कि जनता के साथ योग देकर ये काम में लगें। ऐसा होने से यूरोप में कितना अच्छा परिणाम निकला है।”

ऐसी शिक्षा के प्रभाव से ही भावी शासकों और जनता के बीच एक दीवार खड़ी हो जाती है। इंग्लैण्ड के

शाही घराने के लोग और स्वयं प्रिन्स ऑफ वेल्स (इंग्लैण्ड के बड़े महाराज-कुमार) तक ऑक्सफ़र्ड और केम्ब्रिज के पब्लिक विश्वविद्यालयों में पढ़ना अपनी शान के विरुद्ध नहीं सम्मते। फिर हमारे इन

भूस्वामियों को विशेष विद्यालयों में जाने की कौन सी आवश्यकता है? राज-घराने के विद्यार्थियों को मध्यम श्रेणी के शिक्षित लोगों से बुद्धि और चरित्र-सम्बन्धी विकास के बारे में बहुत-कुछ सीखने को मिल सकता है। यदि प्रजा के बालकों के साथ शिक्षा पाते हुए वे बड़े होंगे तो उनसे सुपरिचित होंगे, उनसे सहानुभूति रखेंगे, जब राज-भार को अपने हाथ में लेंगे तो सरलता से उनका योग दे सकेंगे, और साथियों की इच्छा, विचार और आवश्यकताओं को जानते हुए राज्य या जागीर का प्रबन्ध उनके लिए भार न होकर, एक सरल कार्य होगा। ये सब बातें इन राजकुमार-कॉलेजों में प्राप्त नहीं हो सकतीं!

अतः राज-कुटुम्बियों की शिक्षा सर्वसाधारण के विद्यालयों में ही होनी आवश्यक है। इस विषय में मालवा के सीतामऊ-नरेश हिज़ हाइनेस महाराजा सर रामसिंह बहादुर, के० सी० आई० ई० ने प्रचलित रुढ़ि की ओर ध्यान न देकर, अपने राजकुमारों को पब्लिक-विद्यालयों में उच्च-शिक्षा दिलवाई है और वहाँ के होनहार बड़े महाराजकुमार प्रिन्स रघुवीरसिंह राष्ट्रवर, गत वर्ष प्रयाग-विश्वविद्यालय से ग्रेजुएट हुए हैं।

* * *

परन्तु हम देखते हैं कि अधिकांश देशी नरेश, क्या

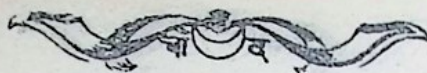
शिक्षित और क्या अशिक्षित, प्रायः सभी खाना-पीना और मौज करना—बस इसी को अपने जीवन का उद्देश्य बना लेते हैं और अपनी विलास-यात्रा, पेरिस के नाच-घरों की रङ्ग-रंगीली सेर, मोटर-स्वर्च आदि



मारवाड़ के प्राण (जाट कृषक)

ऐश-आराम व फ़िज़ूलखर्ची से ही नहीं ऊबते। * राज्य में शिक्षा-प्रचार और व्यवसाय-वाणिज्य एवं उद्योग-धन्धों की वृद्धि का तो कुछ उपाय किया नहीं जाता, जिससे प्रजा समृद्ध हो, राज्य की आय बढ़े; किन्तु खर्च अन्धाधुन्ध बढ़ते जाते हैं, जिनकी पूर्ति के लिए प्रजा पर मनमाने ढङ्ग से नए-नए कर बढ़ाए जाते हैं! उनका ध्यान भला वास्तविक उन्नति अथवा विद्या-प्रचार में कैसे लग सकता है, क्योंकि

* ग्वालियर-नरेश स्वर्गीय महाराजा सर माधव सींथिया के कथनानुसार राज्य की कुल आमदनी में से दो सैकड़ा राजाओं के निजी खर्च के लिए यथेष्ट है।



वे तो स्वेच्छाचार की सीमा का उल्लङ्घन कर चुके हैं। वे यह सरासर देख रहे हैं कि रूस का ज़ार (सम्राट्) अपने अत्याचारों के कारण प्रजा के द्वारा ठुकराया गया, फ़्रान्स का चौदहवाँ लुई अपना सर्वस्व खो बैठा तथा प्रजाप्रिय कमाल पाशा की टक्कर में टर्की के सुल्तान को अपनी मुँह की खानी पड़ी ! देखिए, कल जो इसलाम का खलीफ़ा था, मुसलमानों का ताज था, जिसके इशारे पर भूमण्डल

चारिता) ही है। सुल्तान अपनी स्वेच्छाचारिता के कारण मुसलमानों से अपनी सहायुभूति खो बैठा। उसने प्रजा की ओर ध्यान नहीं दिया। प्रजा की बात को उसने लात से ठुकराया। इसी कारण आज टर्की के सुल्तान का सर्वनाश हुआ। अतएव हमारे स्वेच्छाचारी नरेशों को इतिहास के पृष्ठ काले करने वाले और मनमानी मचाने वाले इन शासकों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।



मारवाड़ का सुनार

के मुसलमान जहाद कर संसार में खून की नदियाँ बहा सकते थे, आज वही आँधेरी रात में महलों के ऐश-आराम को छोड़ कर अपनी प्राण-प्यारी तक को दूसरों की रक्षा में सुपुर्द करता है और स्वयं दूसरों के हाथ धिक कर माल्टा टापू में शरण लेता है। यहाँ प्रश्न होता है कि यह क्यों ? इसका उत्तर सुल्तान की आपाधापी (स्वेच्छा-

फिर भी यह सन्तोष की बात है कि कुछ देशी नरेशों ने प्रजातन्त्र की शैली पर अपना शासन लाने का उद्योग करना आरम्भ कर दिया है। जैसा कि बीकानेर के नीति-कुशल महाराजा सर गङ्गासिंह बहादुर ने अपने यहाँ क़ानून बनाने के लिए प्रजा-प्रतिनिधि राज-सभा (लेजिस्लेटिव काउन्सिल) गत कुछ वर्षों से क़ायम कर रखी है, यद्यपि उसकी शक्ति बहुत कम है। बटलर-कमीशन से अन्य-अन्य राज्यों में भी प्रजा-प्रतिनिधि तथा राज-सभाएँ क़ायम होने की आशा है। देशी नरेशों का ध्यान अब समय के हेर-फेर से इस ओर प्रजा की भलाई के लिए अवश्य भुकेगा। जैसे ब्रिटिश-भारत में "स्वराज्य" हो के ही रहेगा, वैसे ही रियासतों में भी जिम्मेदार हुकूमत क़ायम होकर रहेगी !

* * *

राजस्थानियों की धार्मिक अवस्था के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अधिकतर लोग अन्ध-विश्वास, जादू-टोना व अविद्या में फँसे हुए हैं। अलबत्ता कहीं-कहीं कुछ विवेक की रेखा दिखलाई देती है। उसका श्रेय जीती-जागती संस्था आर्यसमाज को है, जिसने हिन्दू-जाति को चेता कर अपने कर्त्तव्य पर लाने का सफल उद्योग किया है। इसके प्रभाव से कई एक राज्यों में अच्छे-अच्छे सुधार हो

चले हैं। उदयपुर तथा जोधपुर के वे नरेश धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने इस संस्था के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती को सम्बत् १९३६-४० में निमन्त्रण दिया और कई मास अपने यहाँ उनका उपदेश करा कर लाभ उठाया है। वास्तव में स्वामी दयानन्द ने जैसा उपकार राजस्थान के लिए और विशेष देशी नरेशों के लिए किया

है, वह भुलाया नहीं जा सकता। क्योंकि स्वामी जी ने अपने दीर्घ काल के अनुभव से यह निश्चय किया था कि जिस मार्ग पर बड़े लोग जाते हैं, उसी पर साधारण जनता भी चलती है। इसी कारण उन्होंने राजपूताने के राजा-महाराजा तथा रईसों में धर्म-भाव व सुधार करने की ठानी थी। उस निर्भीक संन्यासी ने यह भी सोचा था कि यदि राजा-महाराजा सुधार जायेंगे तो देश भर की दशा शीघ्र ठीक हो जाएगी, परन्तु कर्मगति के बल-वती होने के कारण महर्षि का मिशन पूरा न हो सका और जिन राजस्थानी लोगों की भलाई के लिए प्रयत्न किया जा रहा

था, उन्हीं में से कई नीच पुरुषों के पङ्क-यन्त्र से जोध-पुर में स्वामी जी को उनके ब्राह्मण रसो-इया द्वारा दूध में विष दे दिया गया। इस प्रकार स्वाामी जी मरुभूमि में बीजरूप से गल गए। इस महान् उपकार से राजस्थान-

निवासी तभी उद्धार हो सकते हैं, जब कि वे स्वामी के बताए हुए मार्ग पर चलें और हिन्दू-सङ्गठन, शुद्धि, अछूतोद्धार और स्वदेशी-प्रचार का कार्य पूरा करें।

राजपूताना में जो कुछ सामाजिक सुधार आज दृष्टि-गोचर होता है, उसकी नींव में स्वामी दयानन्द का सदु-पदेश है! अब जो अछूतोद्धार, स्वदेशी-प्रचार, विधवा, अनाथ-रक्षा और शुद्धि-सङ्गठन की ओर हिन्दुओं की दृष्टि गई है, यह सर्वस्व-त्यागी ब्रह्मर्षि स्वामी दयानन्द का ही प्रभाव है।

*

*

*

सारांश यह है कि राजस्थान की सामाजिक अवस्था अभी परिवर्तनकालीन है। कई शक्तियाँ और कई प्रभाव भिन्न-भिन्न रूप से कार्य कर रहे हैं। जिस प्रकार ब्रिटिश-भारत की राजनैतिक अवस्था डौंवाडोल है, उसी प्रकार इस सामाजिक अवस्था को भी समझना चाहिए। राजनैतिक अवस्था के लिए तो सवाल ही नहीं उठ सकता, जहाँ अनेक रियासतों में आज भी थाने और तहसील नीलाम किए जाते हैं और राज-कर्म-चारियों की ज़बान ही क़ानून है—चाहे जिस मनुष्य को, चाहे जिस अपराध में, चाहे जैसी सज़ा दे देना वहाँ

साधारण बात है! ऐसे ही महाराजा साहब या उनके मन्त्री को ईआज्ञा निका ल दें, कि सी बात को ज़ुर्म करार दे दें, वे ही उसकी सज़ा भी स्थिर कर दें और किसी को भी न्यायाधीश (मैजिस्ट्रेट) बना दें, बिना मुकदमा



कपड़े छापने वाले छींपा (नव-मुसलिम)

चलाए किसी को देश-निकाला या कैद की सज़ा दे दें, यह उनके बाएँ हाथ का खेल है। वहाँ न तो छापाना और अप्रवार चलाने की आज्ञा है और न स्पष्ट बोलने-लिखने की। साधारण राजनैतिक सभाएँ करने तक की स्वतन्त्रता नहीं है। न वहाँ कोई निश्चित क़ानून है। जहाँ है वहाँ उनके बनाने में उन लोगों का कोई हाथ नहीं है, जिन पर वे लागू किए जाते हैं। यह भी नहीं कि उन क़ानूनों का सबके लिए समान रूप से पालन होता हो। तर्क से, न्याय से और क़ानून से सिद्ध बातें सत्ता और धन के लिहाज़ से झूठी करार दे दी जाती हैं।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि कभी-कभी जिन बातों पर प्रजाजन को कठोर दण्ड दिया जाता है, उन्हीं में राज-कर्मचारियों को साफ़ छोड़ दिया जाता है ! उनकी सिफ़ारिश ही न्यायालयों के फ़ैसले बदल देती हैं। लोग जान-बूझ कर अज्ञानान्धकार में डूबे हुए और अपने जन्म-सिद्ध

बढ़ रहा है—वे अपने अधिकारों को पहचानने लगे हैं। अपने जन्म-सिद्ध अधिकारों के लिए गिरफ़्तार होना, जेलख़ाना जाना, दण्ड पाना कोई नई बात नहीं समझते, क्योंकि उनके प्राचीन इतिहासों में महान् पुरुषों का अन्याय द्वारा दण्डित होना सिद्ध होता है। राम-दूत



मारवाड़ का एक चारण

अधिकारों की शोर से सर्वथा अनजान रखे जाते हैं। जो थोड़े-बहुत लोग अपने ऊपर होने वाले अन्याय, अत्याचार आदि को समझते भी हैं, वे शासकों के भय से चुप हो रहते हैं। परन्तु अब लोगों में धीरे-धीरे आत्म-बल

हनुमान का राक्षस-पुरी (लङ्का) में सीतादेवी की खोज में जाना और वहाँ गिरफ़्तार होना तथा राक्षसों (दुष्टों) द्वारा अनेक प्रकार से दण्डित होना, यह सब कुछ यही बताता है कि अन्यायियों द्वारा धर्मात्मा पुरुषों को कष्ट सहना ही पड़ता है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के पिता और माता अन्यायी कंस द्वारा वर्षों जेल में रहे और वहीं महात्मा कृष्ण का जन्म हुआ। यदि पाप के कारण या संसार के अपकार के कारण जेलख़ाना हो तो वह नरक है, किन्तु जो परोपकार के लिए और धर्म, देश व जाति के लिए जेलख़ाने जाते हैं, उनको वह स्वर्ग के समान प्रतीत होता है और वे शान्त चित्त से उसको तपोभूमि मानते हैं, जैसा कि एक अङ्गरेज़ कवि ने कहा है:—

Stone walls do not a prison make
Nor iron bars a cage.
Minds innocent and quiet take
That for a hermitage.

पत्थर की दीवारों से
कैदख़ाना बनता नहीं।
लोहे के शिकंजों से
पींजरा सजता कहीं ?
दोष-रहित शान्त व्यक्ति मानते,
बन्दीगृह को तपोभूमि जान के॥

निस्सन्देह स्वदेश-प्रेम प्रत्येक प्राणी का स्वाभाविक धर्म है। यदि उसकी रक्षा के लिए शरीर को किसी प्रकार का दुख हो तो वह दुख नहीं, किन्तु सच्चा सुख है।
उधर जन-साधारण की पहुँच अपने राजाओं तक

नहीं होती, जिससे वे अपनी दुःख-कहानी अपने भाग्य-विधाताओं को सुना सकें। इसका कारण यह है कि बहुधा नरेशों के पास स्वार्थी, खुशामदी कर्मचारी रहते हैं, जो प्रजा के विषय में इस प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न करते रहते हैं कि यदि वे जन-साधारण की बुराई स्वयं सुनने लगेंगे तो शासन-व्यवस्था न चल सकेगी और उनका दबाव प्रजा पर कम हो जायगा। परन्तु यह धारणा व्यर्थ है, क्योंकि भूतपूर्व ग्वालियर-महाराज तथा वर्तमान जोधपुर, आलावाड़, आलीराजपुर के एवं कई नरेश अन्य बातों में चाहे जैसे हों, किन्तु कर्मचारियों के विरुद्ध प्रजा की बुराइयों पर विशेष ध्यान देते हैं। ऐसा करने से उनके मार्ग में कोई कठिनाई कभी नहीं देखी-सुनी गई। कोटा, आलावाड़, सीतामऊ, प्रतापगढ़ और कई अन्य उन्नति-प्रिय राज्यों के नरेश सर्वसाधारण से भी मिलते-जुलते हैं, फिर भी शासन-सत्ता व मर्यादा में कोई हानि नहीं पहुँचती; बल्कि यह देखा जाता है कि राजा व प्रजा में उत्तरोत्तर प्रेम बढ़ता जाता है और अधिकारियों के अन्याय घटने लगते हैं। इस प्रकार आज बीसवीं शताब्दी में भी अनेक रियासतें सोलहवीं सदी के समान ही पिछड़ी हुई हैं। प्रजा अन्ध-विश्वास से एक लाठी से हाँकी जाती है और इसी में सन्तोष मानती है कि विदेशी राज्य से स्वदेशी राज्य अच्छा है। परन्तु समय की गति बतला रही है कि प्रजा में जागृति जिस प्रकार आरम्भ हुई है, वह बन्द नहीं हो सकती। मध्य-भारत के एजेण्ट गवर्नर जनरल ऑनरेबुल मिस्टर बेविल साहब बहादुर की यह भविष्य-वाणी सत्य निकलेगी कि—

"One thing is clear, the States cannot remain aside, the Reforms will react on them. Hitherto acts of the rulers of the States have been accepted without question but the time is coming when each ruler will have to give to subjects good reasons for his acts. He must learn to lead them

and carry them with him along the road of reform, gradually taking them more and more into confidence and associating them with himself in the conduct of affairs."

—Col. Beville, A. G. G. in C. I.

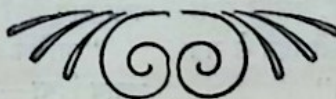
अर्थात्—“अब रियासतें अलग नहीं रह सकतीं, बल्कि (ब्रिटिश-भारत के) नवीन सुधारों का उन पर भी बड़ा प्रभाव पड़ेगा। अभी तक तो रियासतों के नरेशों के काम पर कोई प्रश्न नहीं उठाया गया और वह जैसा था, मान लिया गया, परन्तु अब वह समय समीप आ रहा है, जब प्रत्येक शासक को अपने काम का यथोचित कारण प्रजा को बताना होगा। उसको चाहिए कि वह उनका नेता बने, उन्हें सुधार कर रास्ते पर ले चले, धीरे-धीरे उनको अपना अधिक विश्वासपात्र बनाए और काम करने में उनको अपने साथ रखे !”

हर्ष की बात है कि आज कर्नल बेविल की भविष्य-वाणी के पूरे होने के लक्षण दीख रहे हैं। हमारे राजस्थान के अनेक सुशिक्षित प्रजा-प्रिय नरेश प्रजा के कष्ट निवारण की ओर ध्यान देने लग गए हैं। वे अब धीरे-धीरे समझने लगे हैं कि राजा का कल्याण प्रजा की भलाई में है।

अन्त में हमारा यह अनुमान है कि एक न एक दिन राजस्थान फिर अपनी प्राचीन शान को प्राप्त होगा और इसके देशी नरेश महाराजा रामचन्द्र के सदृश होंगे, जिनके शासन-काल में प्रजा सब प्रकार से सुखी व सन्तुष्ट होगी, एवं राजा-प्रजा में किसी की कोई शिकायत न रहेगी। इस अवस्था को उपस्थित करना राजा-प्रजा दोनों का ही कर्तव्य है, परन्तु इस सम्बन्ध में राजाओं का उत्तरदायित्व प्रजा की अपेक्षा अधिक है। वह दिन अब दूर नहीं है, जब हम प्रजाजन उस अवसर से लाभ उठावेंगे।

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत् ।



पराजित पापी

[श्री० जनार्दनप्रसाद भा 'द्विज', बी० ए०]



म दन की माँ को मरे अभी तीन महीने भी नहीं हुए थे कि उसके पिता सेठ गनपतराय उसके लिए एक दूसरी अम्माँ खरीद लाए। खरीद लाए इसलिए कह रहा हूँ कि धनवन्ती शरीर माँ-बाप की बेटी थी और उसे अपने घर तक लाने में सेठ जी के हज़ारों रूपए खर्च हो गए थे ! बेचारा मदन किसी तरह भी इस व्याह में बाधा नहीं डाल सका, ग्लानि और चोभ के मारे स्वयं ही सिर झुका कर दूर हट गया !

धनवन्ती ने उस राजप्रासाद में पहुँच कर देखा, वहाँ वैभव के सिवाय और कुछ नहीं था। उस जगमगाते हुए प्रकाश में उसे अपने चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई पड़ने लगा ! उसने बहुत खोजा, पर अपने कलेजे के भीतर छिपा रखने लायक उसे कोई चीज़ वहाँ न मिली !

सेठ जी दो-चार दिनों तक तो बराबर उसके पास आते-जाते रहे, पर उसके बाद से उन्हें फुरसत नहीं मिलने लगी। धनवन्ती के जीवन का सूनापन प्रति पल बढ़ता ही गया, वह देखते ही देखते बेचैन हो उठी !

एक दिन उसने उस घर की दासी चुन्नी से पूछा—
“क्यों जी, वह लड़का इस घर से रूठ गया है क्या ?

“रूठ न जाय तो और करे क्या बहिन ?”—चुन्नी ने बड़े विपाद से उत्तर दिया।

“क्यों रूठा है ?”

“बाप-बेटे में कुछ कहा-सुनी हो गई थी।”

“भगदालू स्वभाव का है क्या ?”

“भगदालू स्वभाव का होता तो इस तरह चुपचाप अलग हट जाता ? वही तो इस घर का दीपक था। जिस दिन से इसे सूना करके चला गया है, इसकी सारी रौनक ही चली गई है। मेरा तो यहाँ उसी दिन से मन भी नहीं लग रहा है, पेट के भारे पड़ी हूँ।”

“मन तो मेरा भी नहीं लगता है चुन्नी !”—धनवन्ती ने उदास होकर कहा—“जब वह इतना सुन्दर लड़का है तो उसे मना क्यों नहीं लाते ?”

“उनसे कौन कहे बहिन ! वे किसी की सुनें तब तो ?”

“न हो, एक बार तुम्हीं मेरी ओर से जाओ न !”—धनवन्ती ने अनुनय-भरी वाणी में कहा।

“जाने को तो मैं चली जाऊँगी”—चुन्नी ने जवाब दिया—“पर बच्चा जी इतनी आसानी से यहाँ लौट आवेंगे, ऐसा तो मुझे नहीं मालूम होता।”

“अच्छा, तुम एक बार जाओ तो सही।”

“जाऊँगी।”

“कब ?”

“आज ही शाम को चली जाऊँगी, बगीचा कोई बहुत दूर तो है नहीं, जाने में क्या धरा है ?”

“ज़रूर जाना, और चाहे जिस तरह हो, उसे घर लीवा लाना—अच्छा ?”

“अच्छा”—कह कर चुन्नी उसके भोलोपन पर हँस पड़ी।

२

शाम को चुन्नी थाली भर मिठाई लेकर बगीचा पहुँची तो देखा, वहाँ का बँगला उदासी में डूबा हुआ है। वहाँ किसी तरह की चहल-पहल नहीं थी। उसने डरते-डरते बँगले के बरामदे में पैर रक्खा। इसी समय भीतर से बुधुवा नौकर बोला—कौन है ?

“मैं हूँ बुद्धू ! बच्चा बाबू कहाँ हैं ?”

“चुन्नी मौसी ?”—कह कर बुद्धू बाहर निकल आया और उसे देख कर बोला—“आज कैसे भूल पड़ी हो मौसी ?”

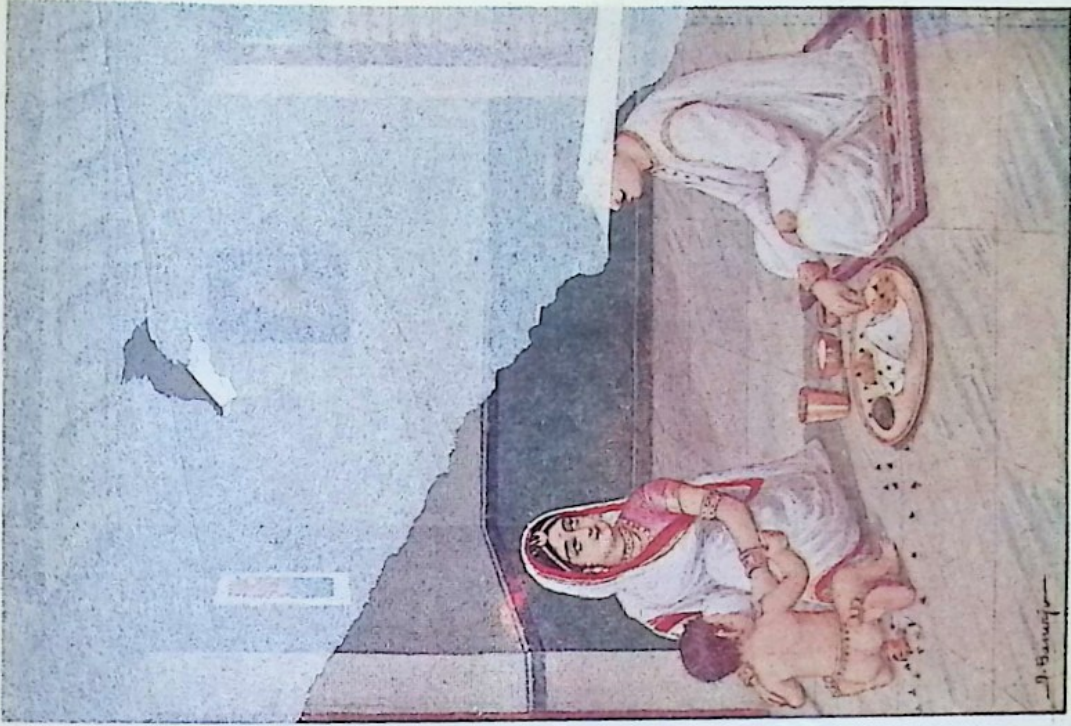
“भूल तो नहीं पड़ी हूँ बेटा !”—चुन्नी ने कुछ उदास होकर जवाब दिया—“जान-बूझ कर आई हूँ। कहो, बच्चा बाबू कहाँ हैं ?”

“मालिक आज चार दिनों से बीमार हैं”—बुधुवा ने जवाब दिया—“चलो न, भीतर खाट पर पड़े हुए हैं।”



शुभ लगन !!!

पहिले फेरे बाई काका जी री भतीजी । दूजे फेरे बाई मामा जी री भाणजी ।
तीजे फेरे बाई भूया री भतीजी । चौथे फेरे बाई हुई रे पराई.....!!



सेठ जी का भोजन

“अजी ! म्हाणे जिमवातो सो, आगन्दी पर की माख्या म्हाता थाल पर...”
“वाह रे, धाँकी गन्दी.....”



परफा

[श्री० जनार्दनप्रसाद]



मदन की माँ को मरे अभी तीन महीने भी नहीं हुए थे कि उसके पिता सेठ गनपतराय उसके लिए एक दूसरी अम्माँ खरीद लाए। खरीद लाए इसलिए कह रहा हूँ कि धनवन्ती गरीब माँ-बाप की बेटी थी और उसे अपने घर तक लाने में सेठ जी के हज़ारों रुपए खर्च हो गए थे ! बेचारा मदन किसी तरह भी इस व्याह में बाधा नहीं डाल सका, ग्लानि और शोभ के मारे स्वयं ही सिर झुका कर दूर हट गया !

धनवन्ती ने उस राजप्रासाद में पहुँच कर देखा, वहाँ वैभव के सिवाय और कुछ नहीं था। उस जगमगाते हुए प्रकाश में उसे अपने चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई पड़ने लगा ! उसने बहुत खोजा, पर अपने कलेजे के भीतर छिपा रखने लायक उसे कोई चीज़ वहाँ न मिली !

सेठ जी दो-चार दिनों तक तो बराबर उसके पास आते-जाते रहे, पर उसके बाद से उन्हें फ़ुरसत नहीं मिलने लगी। धनवन्ती के जीवन का सूनापन प्रति पल बढ़ता ही गया, वह देखते ही देखते बेचैन हो उठी !

एक दिन उसने उस घर की दासी चुन्नी से पूछा—क्यों जी, वह लड़का इस घर से रूठ गया है क्या ?

“रूठ न जाय तो और करे क्या बहिन ?”—चुन्नी ने बड़े विषाद से उत्तर दिया।

“क्यों रूठा है ?”

“बाप-बेटे में कुछ कहा-सुनी हो गई थी।”

“भगड़ालू स्वभाव का है क्या ?”

“भगड़ालू स्वभाव का होता तो इस तरह चुपचाप अलग हट जाता ? वही तो इस घर का दीपक था। जिस दिन से इसे सूना करके चला गया है, इसकी सारी रौनक ही चली गई है। मेरा तो यहाँ उसी दिन से मन भी नहीं लग रहा है, पेट के मारे पड़ी हूँ।”

तो

“न

धनवन्ती :

“जाने क

दिया—“पर व

आवेंगे, ऐसा तो ३

“अच्छा, तुम प

“जाऊँगी।”

“कब ?”

“आज ही शाम को

बहुत दूर तो है नहीं, जाने :

“ज़रूर जाना, और चाहे

लिवा लाना—अच्छा ?”

“अच्छा”—कह कर चुन्नी :

पड़ी।

२

शाम को चुन्नी थाली भर मि पहुँची तो देखा, वहाँ का बँगला उ है। वहाँ किसी तरह की चहल-पहल डरते-डरते बँगले के बरामदे में पैर र भीतर से बुधुवा नौकर बोला—कौन है

“मैं हूँ बुद्धू ! बच्चा बाबू कहाँ हैं ?

“चुन्नी मौसी ?”—कह कर बुद्धू

और उसे देख कर बोला—“आज मौसी ?”

“भूल तो नहीं पड़ी हूँ बेटा !”—

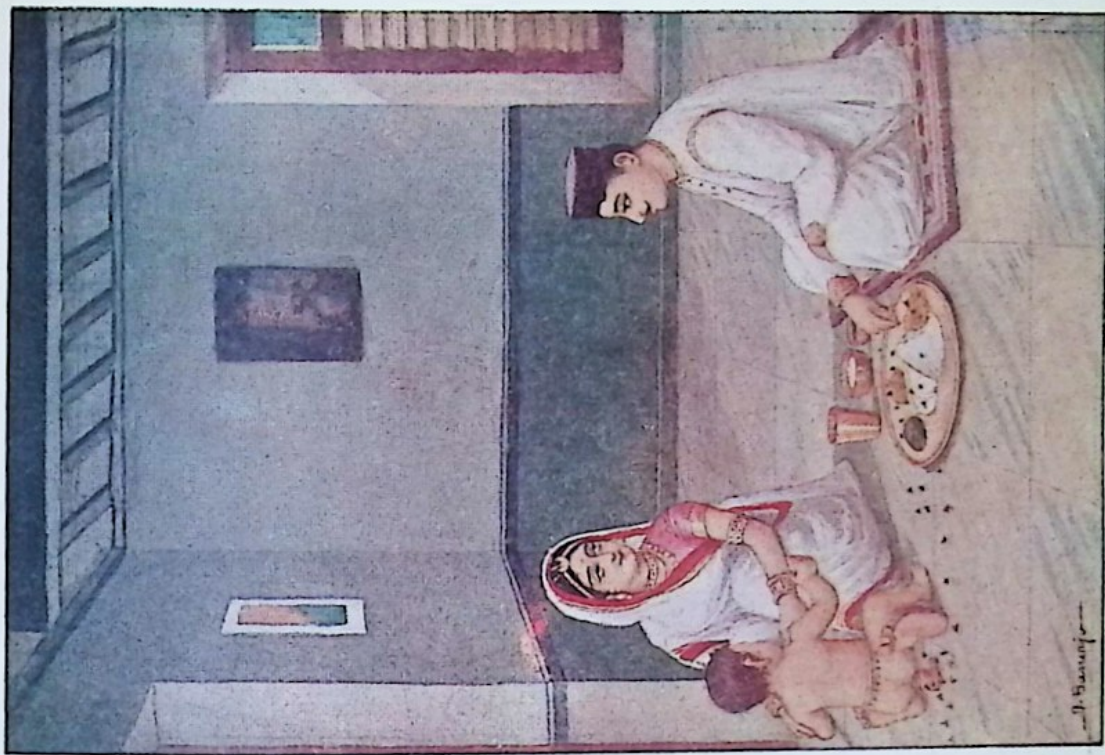
होकर जवाब दिया—“जान-बूझ का बच्चा बाबू कहाँ हैं ?”

“मालिक आज चार दिनों से जवाब दिया—“चलो न, भीतर ४



शुभ लग्न !!!

पहिले फेरे बाई काका जी री भतीजी । दूजे फेरे बाई मामा जी री भाणजी ।
तीजे फेरे बाई भूया री भतीजी । चौथे फेरे बाई हुई रे पराई.....!!

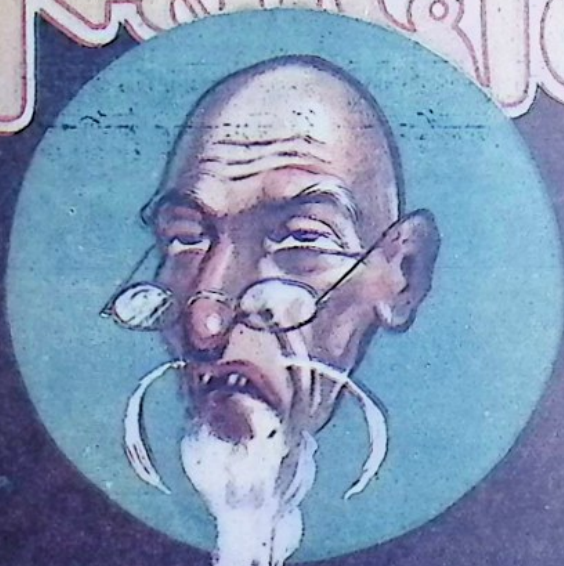


सेठ जी का भोजन

“शजी ! रहने ज़िम्वाते हो, आगन्दी पर की माख्या सहारा थाल पर...”
“बाह रे, धाँकी गन्दी.....”

सुप्रसिद्ध हास्य-रस के समर्थ-लेखक
जी० पी० श्रीवास्तव की सर्वोत्कृष्ट रचना

लम्बी दाढ़ी



दाढ़ी-वाली को भी —
प्यारी है, बच्चों को भी !
बड़ी माया, बड़ी नेक —
है लम्बी-दाढ़ी !!

अच्छी बातें भी बताती —
है, हँसाती भी है !
लाख दो लाख में, बस
एक है लम्बी-दाढ़ी !!

जी.पी.श्रीवास्तव

Daychi
1989

नवीन संशोधित परिवर्द्धित, सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत-मात्र २॥) रु० !

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

मदन को देख कर चुन्नी अपने दिल को काबू में न रख सकी। वह उसकी माँ की दुलारी दासी थी। उसने मदन को पाल-पोस कर बड़ा बनाया था। उसके इस निर्वासित जीवन का दुख देख कर वह अधीर हो उठी। उसने आँखों में आँसू भर कर पूछा—बच्चा बाबू, यह क्या हालत बना रखी है ?

मदन अपने हृदय का वेग रोक कर, मुस्कराते हुए बोला—कुछ नहीं, थोड़ा-सा ज्वर हो आया था चुन्नी मौसी, अब जी अच्छा है। कहो, क्या खबर है ?

“सब ठीक है।”

“नई अम्माँ ख़श हैं ?”

“आपको बहुत याद करती रहती हैं।”

“मुझे ?”—मदन ने चौंक कर पूछा—“मुझे वे क्यों याद करती हैं ? मुझे तो उन्होंने देखा भी नहीं।”

“नहीं देखने से क्या होता है ? वे आपको देखने के लिए विकल हो रही हैं। ठीक उसी तरह मानती हैं, जिस तरह माँ अपने बेटे को मानती है। बहुत अच्छे स्वभाव की हैं।”

मदन कुछ नहीं बोला। उसकी आँखों से आँसू की धारा बह चली।

चुन्नी ने कहा—अपने हाथ से मिठाई बना कर भेजी है और मुझे क्रसमें दे रखी हैं कि चाहे जैसे हो, मैं आपको ज़रूर घर लिवा चलूँ। उनकी एक-एक बात से प्यार टपकता है।

मदन ने आँसू पोंछते हुए कहा—उन्हें मेरा प्रणाम कह देना।

“इससे काम नहीं चलेगा भैया !”—चुन्नी ने हाथ जोड़ कहा—“घर चलना होगा, नहीं तो मैं यहीं धना देकर बैठी रहूँगी। जिस पौधे को अपने हाथों से लगाया है, उसे इस तरह सुरक्षाते नहीं देख सकती। आपकी यह हालत देख कर मैं इस समय आपे में नहीं हूँ। चलिए, मन न लगेगा तो फिर वापस चले आइएगा।”

“मन लगने और न लगने की बात नहीं है चुन्नी मौसी !”—मदन ने कहा—“मैं उस घर में पैर ही नहीं रखना चाहता। तुम मुझे अपने बेटे की तरह मानती हो, इसे मैं जानता हूँ; पर खेद है, मैं इस समय तुम्हारी बातें न मान सकूँगा। तुम जाओ, अम्माँ जी से कहना कि वे मुझे याद न किया करें। यह मिठाई भी लेती जाओ, मैं मिठाइयाँ नहीं खाता।”

चुन्नी ने दीन-स्वर में कहा—कम से कम मिठाई तो रख लीजिए। बड़ी सांघ से बना कर भेजी है।

मदन कुछ देर तक चुप रहा, फिर बोला—अच्छा, इसे रहने दो।

“तो मैं चली जाऊँ भैया ?”—चुन्नी ने कातर-स्वर में पूछा।

“हाँ, तुम चली जाओ। तुम भी माफ़ करना और अम्माँ जी से भी माफ़ी माँग लेना। उनसे कहना, वे भूल कर भी मुझ अभागे को याद न किया करें।”—कह कर मदन ने करवट बदल ली और मुँह ढाँप कर बच्चों की तरह रोने लगा।

चुन्नी भी चुपचाप आँखें पोंछती हुई बाहर निकल गई।

३

दूसरे दिन सवेरे ही मदन के बगीचे में एक गाड़ी आ खड़ी हुई। उससे चुन्नी उतरी और उतरी उसके साथ ही एक परम सुन्दरी युवती ! चुन्नी युवती का हाथ पकड़ कर उसे मदन के कमरे में ले गई। कमरे में घुसते ही उसने कहा—बच्चा बाबू, लीजिए, आपकी अम्माँ खुद आपको बुलाने आई हैं।”

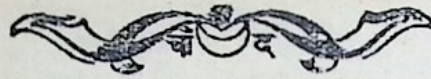
मदन हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ और बोला—यह तुमने क्या किया चुन्नी ? मुझे बदनाम करोगी क्या ?

“इसमें बदनाम होने की कौन सी बात है बेया !”—धनवन्ती ने काँपते हुए स्वर में जवाब दिया—“माँ अपने बेटे को मनाने आई है, इसके लिए बदनामी कैसी ?”

मदन सहसा कोई उत्तर न दे सका। उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे धनवन्ती बरबस उसे अपनी ओर खींच रही है। वह सिर झुकाए चुपचाप खड़ा रहा।

धनवन्ती ने फिर कहा—बाप का अपराध हो और माँ दण्ड सहे, यह तो तुम्हारा अन्याय है मदन ! भला मैंने कौन सा क्रसूर किया है ?

मदन को ऐसा मालूम हुआ मानों उसके आगे उसकी अपनी ही माँ खड़ी हो। कई प्रसङ्ग आगए थे जब वह भी उसे इसी तरह की बातें कह कर मना चुकी थी। वह क्षण भर के लिए वास्तविक परिस्थिति भूल गया और बोल उठा—अम्माँ !



“बेटा !”—कह कर धनवन्ती ने उसका हाथ पकड़ लिया और आँसुओं से उलझे हुए स्वर में कहा—“चलो, तुम्हारे बिना वह घर अच्छा नहीं लगता ।”

घर का नाम सुनते ही मदन की सारी विस्मृति विलीन हो गई । प्रतिरोध के स्वर में उसने कहा—यह तो मुझसे न हो सकेगा, मैं वहाँ न जा सकूँगा अम्मा !

“एक बार चले चलो बेटा !”—धनवन्ती ने गिड़-गिड़ाते हुए कहा—“कम से कम तभी तक के लिए चलो, जब तक तुम्हारी तबीयत न अच्छी हो जाय । तुम यहाँ अकेले बीमार पड़े रहो और मैं वहाँ महल में सुख की नोंद सोऊँ, यह किसी तरह नहीं हो सकता । तुम्हें मेरे साथ चलना होगा ।”

“मैं वहाँ न जा सकूँगा अम्मा ! आप मुझे इसके लिए माफ़ करें !”—मदन ने बहुत ही व्यथित स्वर में जवाब दिया ।

“तुम्हें वहाँ चलना पड़ेगा बेटा !”—कह कर धनवन्ती उसके पैरों पर गिर पड़ी और रोती हुई बोली—“जिसे तुम अम्मा कह कर पुकार रहे हो वही तुम्हारे पैरों पर गिर कर विनती कर रही है, इसका भी क्या तुम विचार न करोगे मदन ?”

मदन तड़फड़ा कर अपना पैर छुड़ाता हुआ बोल उठा—“मैं चलीँगा अम्मा ! आपने यह क्या किया ?

“कुछ तो नहीं”—धनवन्ती ने आँसू पोंछते हुए जवाब दिया—“अपने रुठे हुए बेटे को मनाया है ।”

उसी समय धनवन्ती मदन को लेकर घर लौट गई । उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था । पर मदन भी प्रसन्न था—ऐसा नहीं कहा जा सकता । उसे रह-रह कर अपनी माँ याद आ रही थी, उसका कलेजा टूक-टूक हो रहा था । साथ ही इस नई अम्मा के कोमल व्यवहारों ने भी उसे बन्दी बना लिया था, वह उसके भीतर अपनी माँ का आभास देख कर सुगंध हो रहा था । एक ओर उसके हृदय में विद्रोह की आँधी उठ रही थी, दूसरी ओर सन्धि की सुकुमार भावना । वह बहुत ही उदास था ।

धनवन्ती ने दो ही दिनों में उसकी सारी उदासीनता दूर भगा दी । घर लाकर वह उसे हर तरह से प्रश करने की चेष्टा में लग गई, उसके सेवा-सत्कार में उसने अपने को इस तरह लगा दिया कि मदन सब तरह से पराजित हो गया ।

मदन उसे ‘अम्मा’ और ‘आप’ कह कर पुकारा करता था । धनवन्ती बात ही बात में पड़ बैठी—अच्छा, यह तो बताओ मदन ! तुम अपनी माँ को कैसे पुकारते थे ?

“माँ कह कर !”—मदन ने जवाब दिया ।

“और उन्हें भी क्या तुम ‘आप’ ही कहा करते थे ?”

“नहीं; ‘तुम’ कहता था ।”—मदन ने ज़रा सकुचा कर उत्तर दिया ।

“तो मुझे भी क्या तुम उसी तरह नहीं पुकार सकते बेटा ?”—धनवन्ती ने कुछ कातर होकर पूछा ।

“अब से तुम्हें भी उसी तरह पुकारा करूँगा माँ !”—कह कर मदन ने सिर झुका लिया ।

धनवन्ती ने गद्गद होकर कहा—अपनी इस आभा-गिनी माँ को कभी भूलना नहीं बेटा, यही विनती है ।

“ऐसा कभी न होगा माँ !”—कह कर मदन ने उसके पैरों पर सिर रख दिया ।

इसी समय सेठ गनपतराय कमरे में घुस आए और अपनी लाल-लाल आँखें नचा कर तुरन्त वापस लौट गए ! धनवन्ती उनकी वे आँखें देख कर सहम उठी । उसने काँपते हुए स्वर में कहा—उठो बेटा ! भगवान् तुम्हारी उमर बढ़ावें, मुझे तुम्हारा ही भरोसा है ।

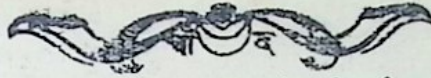
४

“तुम्हें घर के भीतर आने की कभी फुरसत ही नहीं मिलती, क्यों ?”—धनवन्ती ने अपने पति से पूछा ।

“हाँ, जान-बूझ कर फुरसत नहीं निकालता हूँ, इस भय से कि कहीं तुम्हारे काम में बाधा न पड़े ।”—सेठ जी ने उत्तर दिया ।

“अपना दोष दूसरों के सिर क्यों मढ़ रहे हो ?”—धनवन्ती ने सावधान होकर कहा—“यह क्यों नहीं कहते कि बाहर ही इतने बम्बे रहते हो कि घर आने की नौबत ही नहीं आती—मैं सब जानती हूँ ।”

“और मुझसे भी कुछ छिपा नहीं है”—सेठ जी ने अब टेढ़ी करके जवाब दिया—“ज़रा अपनी ओर भी देख लो, तब बातें करो । यह न समझना कि तुम मुझे कभी धोखे में डाल सकोगी ।”



“इस तरह तुम मुझे गालियाँ क्यों दे रहे हो ?”—धनवन्ती ने क्रोध के मारे अधर कँपा कर पूछा—“अपनी चादर तो काली है ही, अब दूसरों की भी क्यों मैली कर रहे हो ?”

“चुप रह हरामज़ादी !”—सेठ जी ने डपट कर जवाब दिया—“मेरी चादर काली है और तुम्हारी सफ़ेद ! मैं तुम्हारे सब खेल देख रहा हूँ ।”

“तुम मेरे सब खेल देख रहे हो ?”—धनवन्ती ने दाँत पीस कर जवाब दिया—“मेरे कौन से खेल तुमने देखे, बताओ !”

“तुम्हारा पैर पुजवाना भी तो एक खेल ही है न ?”—सेठ ने आँखें तरेर कर पूछा ।

“हाथ रे अभाग !”—धनवन्ती ने सिर ठोंक कर जवाब दिया—“तुम्हारे पेट में इतना पाप है !”

“और यह पाप कैसे पल रहा है, तुम इसे भी जानती हो !”—सेठ ने उसी तरह गर्दन हिला कर, आँखें तरेर कर जवाब दिया ।

“मैं नहीं जानती, माफ़ करो,”—धनवन्ती हाथ जोड़ती हुई बोली—“इस तरह अपने नरक को और भी गन्दा न बनाओ, कुछ भगवान् का भी भय करो ।”

“भगवान् का भय तुम करो, जिसे अपने स्वर्ग के बचाए रखने की परवा है”—सेठ जी ने एक लम्बी ‘आह’ खींच कर कहा—“मुझे क्या ? मैं तो नरक में रहता ही हूँ ।”

“आखिर, तुम्हें आज हो क्या गया है ?”—धनवन्ती ने कातर-स्वर में पूछा—“क्या...तुम्हें सचमुच मेरे चरित्र में सन्देह है ?”

“सन्देह ही नहीं, विश्वास भी”—सेठ जी ने उत्तर दिया ।

“तुम्हारा विश्वास है कि मैं खराब चाल-चलन की हूँ ?”—धनवन्ती ने अपनी लाल-लाल आँखें तरेर कर, आँठ कँपाते हुए, बड़ी दृढ़ता के साथ पूछा ।

सेठ जी थोड़ी देर के लिए सहम उठे । फिर उन्होंने बड़े प्यार से कहा—“नहीं, तुम उल्टा समझ रही हो । मेरा ऐसा विश्वास तुम्हारे लिए नहीं, बल्कि उसके लिए है, जो आज तुम्हारी सफ़ेद चादर को मैली बना रहा है ।”

“जाओ, हटो, मेरे सामने से हट जाओ”—धनवन्ती नागिन की तरह क्रुद्ध होकर फुफकारती हुई बोली—

“तुम्हारे जैसे पापी की छाया भी नरक है । अपने पुत्र के प्रति ऐसी बुरी भावना ! भगवान् ही तुम्हारा भला करें ! जाओ, हटो, मेरे सामने से हट जाओ ।”

“अच्छी बात है”—सेठ ने जी भी दाँत कड़कड़ा कर जवाब दिया—“जाता हूँ, और फिर कभी तुम्हारा काला मुँह देखने नहीं आऊँगा । तुम ध्यानन्द से विहार करो ।”

“भगवान् तुम्हारे पापों का अन्त करें !”—कह कर धनवन्ती आँचल से मुँह ढाँप कर रोने लगी ।

सेठ जी आँगन से बाहर निकल गए, तब चुन्नी धीरे-धीरे धनवन्ती के आगे आ खड़ी हुई और उसका हाथ पकड़ कर बोली—उठो बहिन, मदन को इस रोने की बात मालूम हो जायगी तो अनर्थ उठ खड़ा होगा । तुम्हें मेरे सिर की क्रसम है, छाती को पत्थर बना लो ।

धनवन्ती तुरन्त चुप हो गई । इसी समय मदन भी आ खड़ा हुआ और बड़ी गम्भीरता से बोला—तुम अच्छी तरह रो लो माँ ! तुम्हारी तबीयत कुछ हल्की हो जायगी । जिस बात को छिपाने के लिए तुम ज़बरदस्ती चुप हो गई हो वह मुझसे छिपी नहीं है । मगर इस बार मैं कायर की तरह अलग नहीं हट जाऊँगा । जीवन की लड़ाई में लड़ूँगा—जीतूँगा या हारूँगा, इसकी परवा नहीं है ।

धनवन्ती फूट-फूट कर रोने लगी । मदन ने हाथ पकड़ कर कहा—इसे मेरे सिर पर फेर कर आशीर्वाद दो माँ ! मैं तुम्हारे लिए मौज़ा पड़ने पर जान भी दे सकूँ ।

धनवन्ती ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए उसी तरह रो-रोकर आशीर्वाद दिया—तुम युग-युग जीते रहो बेदा ! मुझे तुम्हारा ही भरोसा है ।

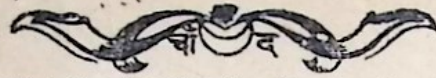
५

यारों की मजलिस लगी हुई थी । लोग प्याले पर प्याला उँडेलते जा रहे थे । उनमें से एक ने पूछा—आज बड़ी जल्दी छुट्टी मिल गई सेठ जी !

“आज तो ऐसी छुट्टी मिली है”—सेठ गनपतराय बोले—“कि फिर कभी जाने की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी ।”

“सो कैसे ?”—उनमें से किसी दूसरे ने पूछा ।

“एक ऐसी बात कह आया हूँ कि अब उसे मेरी ओर देखने की हिम्मत ही नहीं पड़ेगी”—सेठ जी ने कहा ।



“खूब डाँट-फटकार दिया होगा और क्या ?”—पहले सज्जन ने पूछा ।

“एक तोहमत लगा आया हूँ !”—सेठ जी ने कहा—
“यही एक शख था, जिसके सहारे मैं उसे घायल कर सका । धमकी दे आया हूँ कि अब कभी उसका मुँह भी नहीं देखूँगा ।”

“लेकिन यह तो बताओ यार !”—दूसरे सज्जन ने पूछा—“तुम्हारी यह बीबी है कैसी ?”

“है तो बहुत ही खूबसूरत यार !”—सेठ जी ने जवाब दिया ।

“तब क्यों इस तरह मारे-मारे फिरते हो ?”—उनमें से एक तीसरा बोला ।

“मारे-मारे फिरने के क्या माने होते हैं ?”—सेठ जी एक प्याला समाप्त करते हुए बोले—“जिन्दगी का लुलू लूट रहा हूँ कि मारे-मारे फिर रहा हूँ ? घर की चीज़ चाहे जितनी भी सुन्दर हो, बाहर की चीज़ को वह थोड़े पा सकती है ?”

“फिर उसे व्याह कर लाए ही क्यों ?”—तीसरे ने पूछा ।

“घर में लाकर एक रख छोड़ा है, आखिर इस महल में भी तो एक चाहिए न ?”—सेठ ने दूसरा प्याला खाली करते हुए जवाब दिया ।

“तो मतलब यह कि अब आपको बीबी के पास जाकर रोज़ हाज़िरी नहीं देनी होगी, क्यों सेठ जी ?”—पहले ने पूछा ।

“बिल्कुल नहीं साहब, बिल्कुल नहीं !”—सेठ जी ने मूँढ़ों पर हाथ फेर कर जवाब दिया—“हाज़िरी बजाने की तो योंही फुरसत नहीं मिलती थी और अब तो पूछना ही क्या है !”

“हो किस्मत वाले यार ! यहाँ डुलिया तज़ रहती है ।”—वही सज्जन फिर बोले ।

“तुम लोग भी कैसे मर्द हो, पता नहीं चलता”—सेठ जी ने अकड़ कर कहा—“औरत से इतना घबराते हो—और फिर अपनी औरत से ? उसे क़ाबू में लाना कौन मुश्किल है, एक कलङ्क लगा दो और सदा के लिए उससे छुट्टी मिल जायगी । फिर वह ज़बान तो खोल ही नहीं सकेगी—डुलिया तज़ करने की तो बात ही दूर रही ।”

“मगर सभी ऐसा नहीं कर सकते सेठ साहब !”—

कह कर धनवन्ती ने उसी समय कमरे में प्रवेश किया—
“सभी आप ही की तरह साहसी बन जायँ तो साहस को पूछे ही कौन ?”

थोड़ी देर के लिए सबके सब अवाक् हो रहे । सेठ जी के ऊपर नशे का रङ्ग जम रहा था, धनवन्ती को देखते ही वह फीका पड़ गया । उन्होंने लड़खड़ाती ज़बान में पूछा...तु...तुम...यहाँ...कैसे...से ?

“पहले आप कृपा कर अपने इन दोस्तों को यहाँ से विदा कर लें, तब मैं आपसे बातें करूँगी”—कह कर धनवन्ती उन लोगों की ओर मुड़ कर बोली—“आप लोग कृपा कर यह कमरा छोड़ कर अभी चले जायँ, नहीं तो मैं पुलिस को बुलाने के लिए मजबूर हो जाऊँगी ।”

“खबरदार !”—कह कर सेठ जी उठ खड़े हुए और बोले—“अपना भला चाहती है तो सामने से हट जा, नहीं तो × × ×”

“नहीं तो क्या ?”—कह कर इसी समय मदन उनके आगे कूद पड़ा और अपना तमझा तान कर बोला—“इसी दम सब लोग यहाँ से भाग जायँ, वरना एक भी जीता नहीं रहने पाएगा ।”

मदन का तमझा देखते ही शराबियों की मण्डली खड़बड़ा उठी । सेठ जी को छोड़ कर सभी यार उसी दम खिसक गए ।

मदन भी कमरे से बाहर निकल आया ।

धनवन्ती ने कहा—अब बताओ, किसकी चादर काली है ?

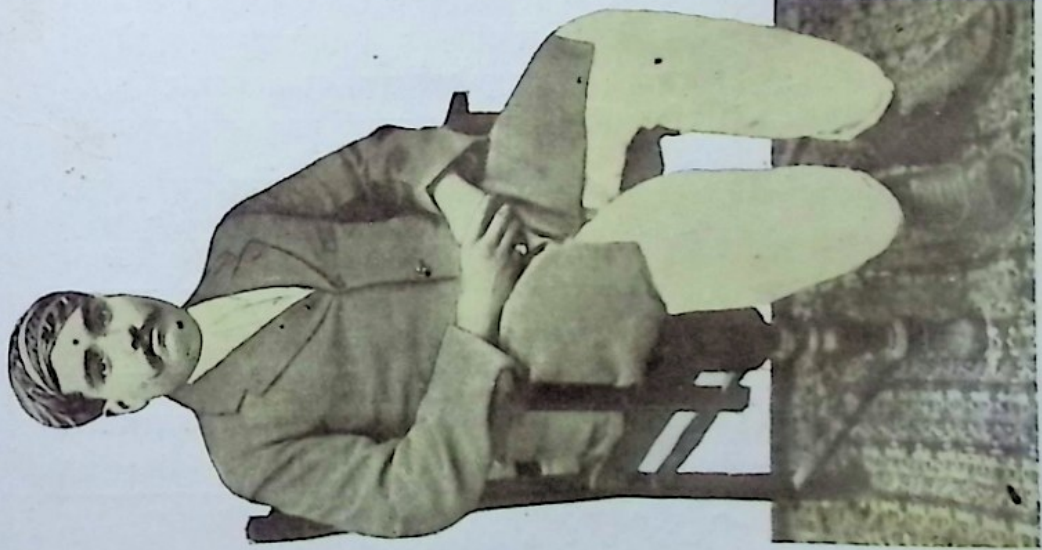
सेठ जी ने लाल-लाल आँखें गुदेरते हुए जवाब दिया—चुपचाप मेरे सामने से हट जाओ—मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखना चाहता ।

“यह कहने से छुट्टी नहीं मिलेगी”—धनवन्ती ने दृढ़तापूर्वक जवाब दिया—“मैं तुम्हें अपना मुँह दिखाने नहीं आई हूँ । जो पूछती हूँ, उसका जवाब देना होगा । बताओ, तुमने मेरे साथ शादी क्यों की ?”

“मेरे पास पैसे हैं, एक नहीं हज़ार शादियाँ करूँगा ।”—सेठ जी गर्दन तान कर बोले ।

“तुम्हारे पास पैसे हैं, इसीलिए तुम दूसरों के जीवन को नष्ट करना अपना हक़ समझते हो ?”—धनवन्ती ने कम्पित स्वर में पूछा ।

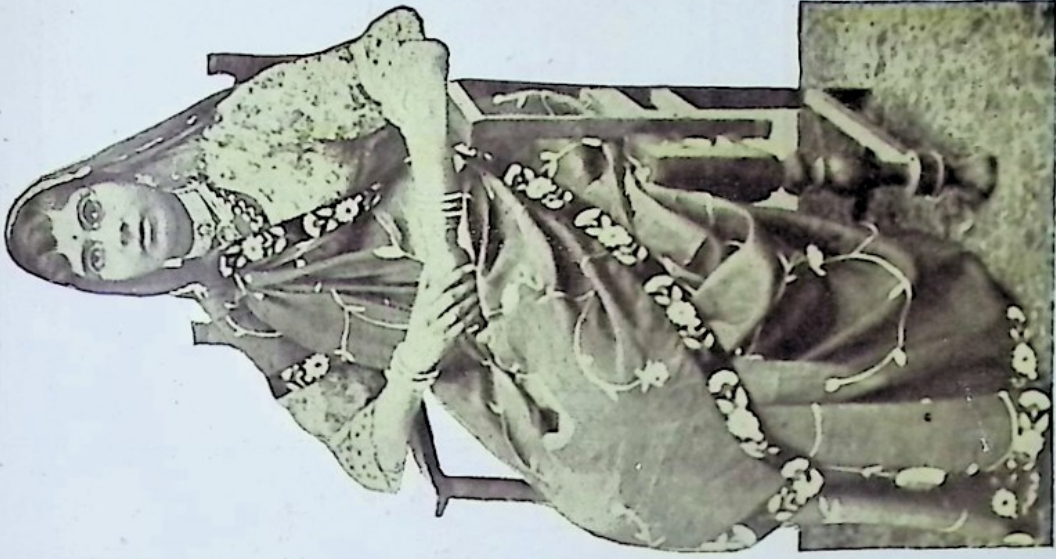
“हाँ” कह कर सेठ जी दाँत पीसने लगे ।



सुप्रसिद्ध सुधारक
और दानवीर
रावबहादुर सेठ
शिवरत्न जी मोहता
ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट
कराची

सौभाग्यवती
सरस्वती देवी
मोहता

(धर्मपत्नी सेठ
शिवरत्न जी मोहता)
आप कराची के मारवाड़ी
समाज में, परदा-
प्रथा के मल्लक पर
पाद-ग्रहार करने वाली
सर्व-प्रथम महिला रत्न
हैं





की क्रान्तिकारी योजना

कायस्थ-अड्डा



अपने प्रेमी पाठकों को हमें बतलाना न होगा कि उनके प्यारे 'चाँद' के जीवन का एक मात्र लक्ष्य भारतीय समाज को संसार की उन्नतशील जातियों के साथ कन्धा भिड़ा कर खड़ा देखना है, साथ ही उसका यह भी उद्देश्य है कि इस विशाल भारत की प्रत्येक मुख्य जाति एक-दूसरे से पूर्णतः परिचित हो, इसी सदुद्देश्य को सामने रख कर इस वर्ष कुछ खास विशेषाङ्क निकालने की बृहत् योजना की गई है। जिन लोगों ने 'चाँद' के किसी भी विशेषाङ्क का अवलोकन किया है, वह इस संस्था के प्रबन्ध में अविश्वास नहीं कर सकते। शीघ्र ही 'कायस्थ-अड्डा' के नाम से भी एक बृहत् विशेषाङ्क निकालने की योजना हो रही है। इस अड्डा के सम्पादन का समस्त भार लिया है, हास्य-रस के सुप्रसिद्ध लेखक, 'इन्दुभूषण' नामक स्वर्ण-पदक प्राप्त

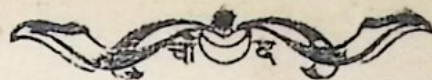
श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए० एल्-एल् बी०

महोदय ने। वे अभी से इस अड्डा को सफल बनाने की चेष्टा में लग गए हैं। किस मास का अड्डा 'कायस्थ-अड्डा' के नाम से प्रकाशित होगा। इस बात की सूचना शीघ्र ही प्रकाशित की जायगी, पाठकों को इसकी प्रतीक्षा करनी चाहिए। इस विशेषाङ्क सम्बन्धी लेख, कविताएँ, चित्र तथा कार्टून आदि निम्न-लिखित पते से भेजना चाहिए :—

श्री० जी० पी० श्रीवास्तव,

बी० ए०, एल्-एल् बी० वकील,

गोंडा (अवध)



“किसी बाज़ारू औरत से ही क्यों नहीं व्याह कर लिया ?”—धनवन्ती ने क्रोध के स्वर को कैपा कर पूछा।

“तुम अपने को कुछ और न समझना।”—सेठ जी ने निर्लज्ज भाव से जवाब दिया।

धनवन्ती सब कुछ सह सकती थी, पर यह आघात उसके लिए असह्य था। वह उसी समय सेठ जी के पैरों पर गिर पड़ी और रोती हुई बोली—तुम मुझे इस तरह मलिन क्यों बना रहे हो ? झूठ मूठ मुझे क्यों तोहमत लगा रहे हो ?

सेठ जी इस पर सहसा कुछ बोल न सके। धनवन्ती ने उसी तरह ढातर-स्वर में पूछा—मैं नहीं जानती थी कि तुम इतने गिरे हुए हो। याद रखना, तुम यह शराब की मस्ती नहीं लूट रहे हो, विष की बेचैनी बुला रहे हो ! जो कुछ पी रहे हो वह अमृत की घूँटें नहीं, हलाहल की बूँदें हैं। हाय ! मैं नहीं जानती थी कि तुम यहाँ तक पहुँच चुके हो !

“अब तो जान गई ?”—सेठ जी बोले।

“हाँ, अब जान गई हूँ”—धनवन्ती ने कहा—“और यही विनती करने आई हूँ कि अपने ऊपर दया करो।”

“आपका उपदेश सिर-आँखों पर”—कहते हुए सेठ जी खड़े हो गए और बोले—“अब आप ज़रा अपने ऊपर भी दया करें और चुपचाप मेरे सामने से हट जायें।”

“नहीं, मैं किसी तरह भी तुम्हें नहीं छोड़ूँगी”—धनवन्ती ने पैर पकड़ कर कहा—“मेरे स्वामी ! मैं तुम्हें अपने लिए कुछ नहीं कहती, केवल तुम्हारे लिए कहती हूँ। मेरे भाग्य में तो दुख है ही, मगर तुम अपने दुखों को क्यों बढ़ाए जा रहे हो ? मेरी इतनी सी विनती मान लो, तुम अपने ऊपर दया करो।”

“तुम इस तरह मेरे पैरों की बेड़ी मत बनो”—सेठ जी ने पैर खींचते हुए कहा—“मैं कहता हूँ, मेरे आगे से हट जाओ। मैं मर्द हूँ, मेरे पास पैसे हैं, जो जी में आएगा वही करूँगा। तुम मेरे बीच में पड़ने वाली कौन होती हो ?”

“मैं तुम्हारी धर्मपत्नी हूँ”—धनवन्ती ने बड़ी दीनता से कहा।

“तुम मेरी खरीदी हुई बाँदी हो”—सेठ जी ने बड़ी निष्ठुरता से कहा !

“बाँदी ही सही, मेरे मालिक !”—धनवन्ती ने

दीन-स्वर में कहा—“बाँदी की सेवा भी तो मर्द और पैसे वाले ही स्वीकार करते हैं। तुम मर्द हो, पैसे वाले हो, इसीलिए तो कहती हूँ कि मुझ खरीदी हुई बाँदी को भी कभी-कभी अपने पैरों की धूली दे दिया करो, मेरे लिए यही बहुत होगा।”

“तुम मुझे अब और तज़ न करो”—पैर छुड़ाते हुए सेठ जी ने कहा।

“मैं तुम्हें तज़ कर रही हूँ ?”—धनवन्ती ने करुण-स्वर में कहा—“पैरों पड़ने का अर्थ तज़ करना होता है ?”

“तुमने आज मेरा अपमान किया है”—सेठ जी ने आँखें तरे कर जवाब दिया—“मेरे दोस्तों की बेइज्जती की है। मैं इस समय आपसे नहीं हूँ, सामने से हट जाओ।”

“तुम उन पापी दोस्तों को सदा के लिए छोड़ दो”—धनवन्ती ने हाथ जोड़ कर कहा—“तभी आपसे मैं रह सकोगे। मैंने तुम्हारा अपमान नहीं किया, तुम्हारे अपमान को भगाया है। वे मित्र ही तुम्हारे अनर्थ के मूल हैं—उन्हें कृपा कर छोड़ दो।”

“उनके बदले तुम्हीं को छोड़ रहा हूँ”—सेठ जी बोले—“जाओ, मेरे सामने से हट जाओ।”

“नहीं हटूँगी, तुम्हें मुझे छोड़ने का कोई अधिकार नहीं है”—कह कर धनवन्ती दरवाज़ा रोक कर खड़ी हो गई।

“अधिकार क्या चीज़ होती है ?”—धनवन्ती को धक्का देकर गिराते हुए सेठ जी बोले—“मुझे सब करने का अधिकार है। मैं तुम्हें छोड़ दूँगा, उन्हें नहीं छोड़ूँगा।”

धनवन्ती ज़ोर से चिल्ला उठी और सेठ जी कमरे से बाहर निकल पड़े। आँखें तरेते हुए मदन सामने आ खड़ा हुआ और कड़क कर बोला—अगर आप उन्हें नहीं छोड़िएगा तो जाकर उन्हीं के साथ रहिए भी। यहाँ आकर शराब की मस्ती बिखेरिएगा तो आपके सभी मित्रों को मैं मस्ती का मज़ा चखा दूँगा।

“तुम्हीं दोनों मेरे घर से निकल जाओ।”—सेठ जी ने गरज कर जवाब दिया।

“मुझे अफ़सोस है पिता जी !”—मदन ने तमझा तान कर कहा—“अब मैं ऐसा नहीं कर सकता। आप इस समय मेरा गुस्ता न बढ़ाइए, वरना अनर्थ कर बैठूँगा। जाइए, चुपचाप यहाँ से चले जाइए।”

सेठ जी दर के मारे काँप उठे। चुपचाप भीगी बिह्वी की तरह खिसकते बने।



मदन ने धनवन्ती से जाकर कहा—माँ, चलो, कलक्टर साहब के पास चलें। उनका हिस्सा अलग करवा दिया जाय, नहीं तो हम लोग बड़ी विपत्ति में पड़ जायेंगे।”

“जो चाहो वह करो बेटा,”—धनवन्ती ने निराशा भरे स्वर में बहुत ही व्यथित होकर जवाब दिया—“अब तो जी चाहता है अपने इन सारे कष्टों का एक साथ ही अन्त कर दूँ। जीवन से जी ऊब उठा है। अब इस संसार में मैं नहीं रहना चाहती।”

मदन ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—माँ, तुम्हारे ही बल पर तो मैं लड़ रहा हूँ। तुम्हीं इस तरह हिम्मत छोड़ बैठोगी तो मैं क्या कर सकूँगा? मुझे आशीर्वाद दो। चलो, कलक्टर साहब के पास चलें।

“लोग क्या कहेंगे बेटा?”—धनवन्ती ने व्यथित स्वर में कहा।

“लोग क्या कहेंगे माँ!”—मदन ने हड़ता से जवाब दिया। “वे व्यभिचार के पीछे आज बारह वर्षों से रूप बरबाद कर रहे हैं; इसी के पीछे वे मेरी माँ को मार चुके हैं; इसी के पीछे एक दूकान का दिवाला निकल गया है! अब यही दो-तीन कोठियाँ, एक दूकान और थोड़े से रूप रह गए हैं। अगर लोक-लाज में पड़ कर शीघ्र ही कोई उपाय न करोगी तो कैसे काम चलेगा? वे इस तरह अपने को बरबाद किए जा रहे हैं, इस पर लोगों की नज़र नहीं है, और हम अगर अपनी भलाई के लिए कुछ करेंगे तो उस पर लोग बुरा-भला कहेंगे? कहेंगे तो कहा करें, इसकी परवा नहीं है।”

इसके आगे धनवन्ती कुछ न बोली। दोनों की राय एक हो गई।

६

कलक्टर साहब मदन को जानते भी थे और मानते भी थे। वह उनके पुत्र का प्यारा मित्र था। पहले तो उन्होंने सेठ गनपतराय को हर तरह से डराया-धमकाया, मगर उससे कोई विशेष लाभ न देख कर, उन्होंने उसके लिए जायदाद का एक हिस्सा अलग करवा दिया और बाक़ी हिस्से धनवन्ती तथा मदन को दिलवा दिए। अब सेठ जी अपने परिवार से बिलकुल अलग एक बगीचे वाली कोठी में रहने लगे। वहीं निश्चिन्त रूप से शराब और सज़ीत की धारा उमड़ने लगी।

इधर धनवन्ती और मदन अपने-अपने कष्टों को छिपाए प्रेमपूर्वक जीवन बिता रहे थे। पर सच पूछिए तो दो में से कोई भी सुखी नहीं था। अपनी-अपनी व्यथा तो थी ही, सेठ जी की यह कुत्सित जीवन-धारा उनकी बची-खुची शान्ति को भी बहा रही थी। इतना ज़रूर था कि धनवन्ती अपने ‘बेटे’ के लिए सब दुख भूल सकती थी और मदन अपनी ‘माँ’ को सुखी बनाने में ही अपना सुख समझता था। पर वह अभाग उसे सुखी बनावे भी तो किस तरह? उसे जो दुख था, उसकी दवा तो उसके पास थी नहीं!

इन दोनों माँ-बेटे को एक साथ ही सुखी बनाने वाली एक और भी थी। वह थी स्वर्णलता। वह मदन की सहपाठिनी भी थी और शीघ्र ही उसकी जीवन-सहचरी भी बनने वाली थी।

एक दिन सन्ध्या-समय धनवन्ती ने चुन्नी से कहा—जरा जाओ तो चुन्नी दीदी! स्वर्णलता को तो बुला लाओ, इधर दो दिनों से वह आई नहीं है। मदन भी तबीयत खराब रहने के कारण इधर वहाँ नहीं गया। हो तो बुलाती आना।

घरटे भर के भीतर ही चुन्नी लौट आई और खिन्न स्वर में बोली—वह तो अपने घर में है ही नहीं वहिन जी, उसके दास-दासी सब घबड़ाहट में हैं। कहते हैं, रात ही से वह गायब है!”

“रात ही से गायब है?”—धनवन्ती ने भयभीत होकर पूछा।

“कौन रात ही से गायब है माँ?”—उधर से आते हुए मदन ने पूछा।

“अभी चुन्नी को उसे बुलाने भेजा था बेटा!”—धनवन्ती ने घबड़ाहट दिखा कर कहा—“सो आकर यह कहती है कि स्वर्णलता रात ही से गायब है! क्या वह कहीं बाहर गई है?”

मदन की छाती धड़कने लगी। उसने कहा—कहीं बाहर जाती तो हम लोगों से कह न जाती? मैं खुद ही जाकर पता लगाऊँ क्या?

“हाँ बेटा, जाओ। न जानें क्यों मेरा जी बहुत ही घबड़ा रहा है।”—कह कर धनवन्ती ने अपने ललाट का पसीना पोंछा।

कपड़े पहन कर मदन कमरे से बाहर निकला ही था

कि स्वर्णलता हाँफती हुई आई और धड़ाम से उसके आगे गिर पड़ी। उसके केश बिखरे हुए थे, कपड़े फट गए थे, शरीर चत-वित्त हो गया था। उसने मुँह से ये ही शब्द निकाले—“मदन, मेरा सर्वनाश हो गया!”

“किसने तुम्हारा सर्वनाश किया बेटी!”—कह कर धनवन्ती दौड़ पड़ी और उसे उठाती हुई बोली—“तुम्हारी यह दुर्गत किसने की है? हाय! मैं यह क्या देख रही हूँ मदन? मालूम होता है, स्वर्णलता मौत के मुख से लौट कर आई है। क्या हुआ बेटी! बताओ, तुम कहाँ से आ रही हो?”

“मेरा सर्वनाश हो गया!”—कह कर स्वर्णलता रो पड़ी।

मदन को जैसे किसी ने पत्थर की प्रतिमा बना दिया। धनवन्ती उसे छाती से लगा कर बोली—किसने तुम्हारा सर्वनाश किया स्वर्ण?

“अपने भावी ससुर जी ने।”

“क्या कहा?”—धनवन्ती चौंक उठी!

“भावी ससुर जी ने? क्या कह रही हो?”—कह कर मदन इस तरह उछल पड़ा जैसे उसके पैर आग के अङ्गारों पर पड़ गए हों।

“हाँ, मेरे भावी ससुर ने मदन, तुम्हारे पिता जी ने मेरा सर्वनाश कर दिया!”—कह कर स्वर्णलता क्रोध से दाँत कटकटाने लगी।

“साफ-साफ कहो स्वर्ण, बात क्या है?”—धनवन्ती ने भयभीत होकर पूछा। मदन क्रोध के आरे काँप रहा था।

“साफ-साफ क्या कहूँ? हाय, मेरा सर्वनाश हो गया। मैं कल यहीं आ रही थी। रास्ते में वह पापी भी मिल गया। उसने मुझे ज़बरदस्ती मोटर में बैठा लिया और उस बगीचे वाले मकान में ले जाकर x x x”

“तुम क्या कह रही हो स्वर्ण?”—धनवन्ती व्याकुल हो उठी।

“जो कह रही हूँ, वह बहुत ही कम है माँ!”—स्वर्णलता ने कहा—“बड़ी-बड़ी नारकीय यातनाएँ भोग कर आ रही हूँ। क्रिस्मत अच्छी थी जो थोड़ा सा मौका मिल गया, जान बचा कर भाग आई। नहीं तो वहीं x x x हाय! मेरा सर्वनाश हो गया!!”

मदन अब खड़ा न रह सका। बिजली की तरह दौड़ कर आँगन से बाहर निकल पड़ा।

धनवन्ती ने घबड़ा कर कहा—चुन्नी, तब तक स्वर्ण को नहलाओ-धुलाओ। मैं मदन को देखूँ, मालूम होता है, आज बड़ा भारी अनर्थ होगा।

स्वर्ण को चुन्नी के जिम्मे सौंप कर धनवन्ती भी उसी तरह दौड़ती हुई आँगन से बाहर निकल पड़ी।

७

“तुम सीधे से न मानोगी?”

“नहीं, चाहे तुम मेरे टुकड़े-टुकड़े कर दो!”

“क्यों जान गँवाने पर तुली हो, जो कहूँ मान लो।”

“जान गँवा दूँगी, तुम्हारी बात न मानूँगी।”

“अच्छा देखता हूँ,”—कह कर सेठ जी कुछ किया ही चाहते थे कि भनभना कर उनके कमरे का किवाड़ खुल पड़ा और देखते ही देखते कोई उनकी गर्दन पर सवार हो गया! बिल्कुल बेबस होकर उन्होंने आक्रमणकारी की ओर गर्दन मोड़ी तो देखा, उन्हीं का बेटा मदन शेर की तरह लाल आँखें किए, तमन्चा तान कर उन्हें जहन्नुम भेजने के लिए तैयार था। मृत्यु के भय से काँप कर वह कह उठा—“बेटा! इस बार माफ़ कर दो, अब कभी ऐसा न करूँगा।”

“खबरदार! मुझे बेटा कह कर न पुकारो”—मदन उसे गिरा कर उसकी छाती पर चढ़ बैठा और बोला—“अपने भगवान् को याद करो, मैं तुम्हें अब जीता न छोड़ूँगा.....!”

इसी समय किसी ने पीछे से दौड़ कर उसका तमन्चा वाला हाथ पकड़ लिया और कहा—बेटा, अपनी माँ को विधवा न बनाओ।

मदन के हाथ से तमन्चा गिर पड़ा! उसने एक बार कातर-दृष्टि से धनवन्ती की ओर देखा और कहा “माँ!”

“छोड़ दो बेटा!”—धनवन्ती ने व्याकुल होकर कहा—“इन्हें जीता छोड़ दो। इनकी छाती पर से उतर आओ। मैं यह दृश्य नहीं देख सकती। हाय! मैं यहाँ आई ही क्यों!!”

मदन चुपचाप बाप की छाती पर से उतर आया। सेठ जी भी उठने की कोशिश कर ही रहे थे कि इसी समय कमरे में बहुत से हथियारबन्द सिपाही घुस आए।

“इन सबको गिरफ्तार कर लो!”—इन्स्पेक्टर ने आज्ञा दी।

“नहीं, केवल इसी पापी को”—उस लड़की ने कहा—“और लोग तो मेरी रक्षा करने आ पहुँचे थे।”

सेठ जी गिरफ्तार कर लिए गए। धनवन्ती वहीं अचेत होकर गिर पड़ी।

घर लौटते-लौटते धनवन्ती की तबीयत बहुत ही खराब हो गई। सात-आठ दिनों तक उसकी हालत बराबर बिगड़ती ही गई। आठवें दिन उसने बड़े कष्ट से पूछा—मदन, सच बता दो बेटा ! उनका क्या हुआ ?

मदन ने भर्राए हुए स्वर में कहा—सात साल के लिए जेल।

“जेल ?”—धनवन्ती तड़फड़ा कर उठ बैठी—“सात साल के लिए ? उक्त ! अब नहीं × × ×”

वह खाट के नीचे गिर पड़ी। उसकी आँखें उलट गईं। मरते-मरते वह कह गई—“स्वर्ण को सुखी रखना बेटा ! मैं अब जाती हूँ × × ×”

८

स्वर्ण को सुखी रखने का मौका आया ही नहीं। वह सदैव यही कह-कह कर रोया काती—“हाय ! मेरा सर्वनाश हो गया !” अन्त में जब उसकी पीड़ा असह्य हो उठी, तब उसने वही किया जो वैसी अवस्था में वह कर सकती थी।

धनवन्ती के मरने के दूसरे ही दिन सवेरे जब मदन उठा तो देखा, स्वर्णलता की सेज सूनी है। वह व्याकुल होकर इधर-उधर ढूँढ़ने लगा। सहसा उसकी नज़र एक लिफाफे पर जा पड़ी। काँपते हुए हाथों से उसे उसने उठाया। उसके भीतर एक चिट्ठी थी।

“मेरे मदन, मुझे माफ़ करना। मैं तुम्हारे लायक नहीं रह गई। मेरा सर्वनाश हो गया। तुम्हारी पत्नी बन कर मैं तुम्हें मलिन नहीं बना सकती। जाती हूँ, गङ्गा जी में डूब कर इस पापमय जीवन का अन्त कर दूँगी। फिर किसी दूसरे जन्म में मिलूँगी। तुम्हें मेरी क्रसम है, तुम अपना व्याह ज़रूर कर लेना। हाय ! मेरा सर्वनाश हो गया, इसीलिए तुम्हें छोड़ कर जा रही हूँ। मुझे भूल जाओ।”

यह पढ़ते ही मदन पागलों की तरह गङ्गा-तट की ओर दौड़ पड़ा। पर वहाँ उसे मिले कौन ? स्वर्णलता तो गङ्गा के गर्भ में लीन हो चुकी थी !

चुन्नी आई और पैरों पड़ कर मदन को घर लिवा गई।

९

मदन पागलों की तरह इधर-उधर घूमने लगा। जब कभी उसे चुन्नी की याद हो आती, वह घूमना बन्द कर घर लौट आता। स्वर्णलता की मृत्यु से वह बहुत ही व्याकुल हो उठा था, ऐसा मालूम होता था मानों दिन-रात उसी को खोज रहा हो।

एक दिन वह इसी तरह बेखबर होकर सड़क पर चला जा रहा था। सहसा उसे एक मोटर का धक्का लगा। वह गिर पड़ा, पर कोई विशेष चोट न पहुँची। मोटर खड़ी हो गई। उससे एक लड़की और एक अर्द्धवयस्क भले-मानस उतर पड़े। मदन को देखते ही लड़की बोल उठी—“बाबू जी, इन्हीं की मदद से मेरी इज़्जत और जान बची थी।”

उस अर्द्धवयस्क भलेमानस ने मदन के पास पहुँच कर कहा—“मुझे माफ़ कीजिएगा, आपको कहीं चोट तो नहीं लगी ? आपका नाम सेठ मदनलाल जी है न ?”

“जी हाँ”—कह कर मदन ने उन्हें नमस्कार किया और कहा—“कोई हर्ज नहीं, मैंने चोट नहीं खाई।”

“तो आप इस तरह पैदल क्यों घूम रहे हैं ?”—उस अर्द्धवयस्क भले आदमी, सेठ वंशीधर जी, ने बड़े स्नेह से कहा—“चलिए, मैं आपको पहुँचा आऊँ।”

गाड़ी पर बैठते ही सेठ वंशीधर जी ने उस लड़की की ओर बताते हुए कहा—यह सुशीला, मेरी लड़की है। आप ही ने एक दिन इसकी जान बचाई है।

मदन लज्जा और सन्ताप के मारे झुक गया। उसकी आँखों से आँसू की धारा उमड़ पड़ी। उस अप्रिय प्रसङ्ग की स्मृति के साथ उसके जीवन का सारा सन्ताप लिपटा हुआ था। वह भीतर ही भीतर बेचैन हो उठा।

वंशीधर जी उसे घर तक पहुँचा कर लौटे तो अपनी पत्नी से बोले—तुम यह सम्बन्ध पसन्द करती हो ?

“बड़ी खुशी से। वे मान जायेंगे ?”—उनकी पत्नी रामेश्वरी ने कहा।

“मनाने की कोशिशें की जायेंगी”—वंशीधर जी बोले।

व्याह की बातचीत होते-होते साल खनम हो गया। सुशीला और मदन की घनिष्टता बहुत अधिक बढ़ चुकी थी। अवसर पाकर चुन्नी ने कहा—बच्चा बाबू ! मैं भी मर जाऊँगी तब वह को घर लाओगे ?

“व्याह करने को जी नहीं चाहता चुन्नी मौसी !”—

मदन ने उदास होकर कहा—“अरे, तुम रोने क्यों लगों?”

“नहीं, भैया ! मेरी यह विनती मान लो”—चुन्नी ने बहुत ही गिड़गिड़ा कर कहा—“तुम्हें अपनी गोद में खिलाया है, तुम्हारे सिर पर मौर भी देख लूँ, तब मरूँ। यही एक साध है, इसे पूरी कर दो।”

मदन का हृदय भर आया। उसने गद्गद स्वर में कहा—अच्छा मौसी, जाओ, तुम्हीं वहाँ जाकर कह आओ। मुझे मन्ज़ूर है।

चुन्नी को जैसे सारी सम्पदा मिल गई। उसी समय वह सेठ वंशीधर जी के घर जा पहुँची।

१०

मदन और सुशीला के ब्याह के छः साल बाद की बात है। शाम का वक्त था। दोनों प्राणी कहीं बाहर जाने की तैयारी में थे। मोटर पर चढ़ने जा ही रहे थे कि सहसा एक तिरपन-चौब्वन वर्ष का क्षीणकाय आदमी आकर खड़ा हो गया। वह आँखों में आँसू भर कर मदन की ओर देख रहा था। मदन ने उसकी ओर से मुँह फेर लिया और मोटर की ओर कदम बढ़ाया :

वह बूढ़ा घुटने टेक कर मदन के आगे बैठ गया और बोला—क्या अब मुझे पहचानते भी नहीं बेटा ?

“ध्रुव पहचानता हूँ”—मदन ने अपने हृदय का वेग रोक कर जवाब दिया—“कृपा कर यहाँ से चले जाइए।”

“मेरे ऊपर दया करो बेटा !”

“यहाँ से चले जाओ !”

“अपने पापों का फल पा चुका बेटा, अब माफ़ करो !”

“यहाँ से चले जाओ !”

“अब मैं हर तरह से हार गया बेटा, कहीं ठिकाना नहीं है। अपनी शरण में रख लो।”

“यहाँ से चले जाओ !”

“अभी जेल से चला आ रहा हूँ बेटा ! दिन भर का भूखा हूँ, कुछ खिला दो।”

“यहाँ से चले जाओ।”—इस बार मदन राश खाकर गिर पड़ा।

सुशीला ने कहा—चुन्नी, इन्हें तब तक भीतर ले जाकर कुछ खिला-पिला दो। मैं इनका उपचार कर रही हूँ।

आँखें खोलते ही मदन ने बड़ी बेचैनी से पूछा—कहाँ गया वह पापी ?

सुशीला ने कोमल स्वर में जवाब दिया—अब उस पर दया करो। वह चारों ओर से पराजित होकर तुम्हारी शरण में आया है।

“मगर मैं उसकी सूरत नहीं देखना चाहता”—मदन ने कहा।

“अब तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं है। पाप के बाद पुण्य का भी उदय होता है।”—सुशीला ने अपने स्वामी को समझाया।

“सुशीला !”—मदन ने कहा—“तुम वह दृश्य भूल सकती हो ?”

“न भूलने से मनुष्यता का अपमान होता है”—सुशीला ने गम्भीरतापूर्वक कहा—“चलो, हम दोनों उनके पैरों पर गिरें। तुमने उन्हें बहुत ही क्लेश पहुँचाया है। लाख पापी होने पर भी वे अपने ही हैं। चलो, उनसे क्षमा माँगो।”

पत्नी की इस ऊँची भावना ने मदन को कुछ का कुछ बना दिया। वह बिना कुछ कहे-सुने मन्त्र-मुग्ध होकर सुशीला के पीछे-पीछे चल पड़ा।

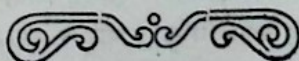
भीतर पहुँच कर देखा, चुन्नी बड़े प्यार से अपने बूढ़े मालिक को खिला रही है। उन दोनों को अपनी ही ओर आते देख सेठ गनपतराय भय के मारे खाना छोड़ कर खड़े हो गए और गिड़गिड़ा कर बोले—मैं अभी चला जाता हूँ बेटा ! थोड़ा सा और खा लेने दो।

मदन दौड़ कर उनकी छाती से लिपट गया और बच्चों की तरह बिलख-बिलख कर बोला—पिता जी ! मुझे माफ़ कीजिए।

सुशीला ने घबड़ा कर कहा—चुन्नी, ज़रा उन्हें संभाले रहो, देखनी हूँ उनकी आँखें उलट गईं।

सचमुच, मदन के छाती से लिपटते ही बूढ़े के हृदय की गति बन्द हो गई। पता नहीं, भय के मारे या आकस्मिक सुख के धक्के से।

मदन ने फिर कहा—न माफ़ कीजिएगा पिता जी ? सुशीला ने रोते हुए कहा—अब इन्हें धीरे से लिटा दो, शव पकड़ कर कब तक खड़े रहोगे ?



आपनी दादी लक्ष्मीदेवी को लेकर जोधपुर-राज्य के प्रसिद्ध नगर नागौर में आए थे। नेनूराम जी के पिता वृद्धिचन्द जी नागौर छोड़ कर बीकानेर में आ बसे थे। वहाँ महाराजा सरदारसिंह जी ने आपको बहुत सम्मानित किया था। इसके सिवाय उदयपुर के महाराणा शम्भू-सिंह जी ने भी लाखपसाव* करके आपका समादर किया था। उनके जीवन का अधिकतर भाग इन्हीं दो स्थानों में व्यतीत हुआ था। कहते हैं कि ५० वर्ष की



स्व० कवि वृद्धिचन्द जी ब्रह्मभट्ट

अवस्था में उन्होंने विवाह किया था। उनका जीवन-काल भी बड़ा लम्बा था, क्योंकि सम्बत् १९६० में १२०

* लाखपसाव का अर्थ एक लाख रूपय के इनाम से है, जो भाट, चारणों को राजा-रईस देते हैं। यह पुरस्कार नरद रूपय में नहीं दिया जाता है, कि तु ढाथी, घोड़े, ऊँट, रत्न, जमीन व धान आदि के रूप में दिया जाता है। इन सबका मूल्य साधारणतया १५-२० हजार रूपय के लगभग होता है। लेकिन फिर भी यह "लाखपसाव" ही कहलाता है।

वर्ष की आयु में वे लोकान्तरित हुए थे। उनके सुपुत्र नेनूराम जी से ज्ञात हुआ कि उनकी बनाई हुई बहुत सी रचनाएँ हैं। उनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिए जाते हैं :—

कवित्त

दीपत दिकत तन दशा दिशा देश-देश,
थिरू वसुधा के मध्य स्वज्जस थटाय दे।
कर की उमङ्ग करे कवी निहाल केते,
घन अद तारों के घमण्ड हटाय दे ॥
भणत कवि 'वृद्ध' जैसे चित्त की विशालताई,
रामचन्द्र दिह नाम जग्ग में रटाइ दे।
दानवीर बङ्गा वदनेश ज्येष्ठ मालनन्द,
लागे हाथ लङ्का तौ छिन्न में लुटाइ दे ॥ १ ॥

गीत

बाजे बेलाका चिमाणाँ हल्ला
किरोड़ाँ गिड़िन्द बङ्गा।
तिके सामय भणाड़ा लीधा निशङ्का
समात तोड़ घड़ाँ हाथियाँ ॥
तेण गुधू सारोड़े तुही नोह तो
विडूतो छेड़े तुहीं पृथीनाथ।
अग्रस तौ घटाघोर
हाथाड़ चावतो आयो ॥
गहिन्दा गहातो सूधो धकायो
बगूड़ रुकाए दुकाड़े हाथ्याँ।
दिकी दुनाली मुकाई राँड़े तिको
शोशो खातो चकेरा दिखायो * ॥ २ ॥

नेनूराम जी ने भी अच्छी ख्याति कमाई है। आपको पुरानतत्व-विषयक सामग्री की खोज करने का, उसे एकत्रित करने का तथा उसे इतिहासज्ञों के हाथ में सौंपने का व्यसन-साह। इस समय तक न जाने कितने शिला-लेखों का पता आपने लगाया है और न जाने कितने हस्त-

* यह एक आखेट-वर्णन से लिया गया है, और महाराणा शम्भूसिंह जी के समय की रीजेन्सी काउन्सिल के मेम्बर-धावराव वदन जी तैवर को लक्ष्य करके लिखा गया है।

लिखित ग्रन्थों की खोज, राजपूताने की जल-शून्य मरुभूमि पर ऊँट पर चढ़ कर आपने की है। यही नहीं, मारवाड़ में प्रचलित अनेकानेक जन-श्रुतियों तथा गीतों का संग्रह भी आपने अच्छा किया है। इसमें से बहुत-कुछ मसाला आपने जोधपुर-निवासी, अपने परम मित्र स्वर्गीय मुन्शी देवीप्रसाद को सौंपा था।

सन् १६०६ में भारत के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ महा-महोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री वीर-गाथाओं तथा वीर-काल सम्बन्धी शिला-लेखों की खोज में राजपूताने का भ्रमण करने निकले थे। शास्त्री जी को नेनूराम जी ने बड़ी सहायता दी थी। कहते हैं कि वे नेनूराम जी की इस बात पर बड़े चकित हुए थे कि जहाँ कहीं पहाड़ों पर अथवा किसी प्राचीन इमारत में वे पहुँचते थे, वहीं एक न एक लेख वे अवश्य ढूँढ़ निकालते थे। जोधपुर से लौटते समय हर-प्रसाद जी शास्त्री नेनूराम जी को अपने साथ कलकत्ते ले गए थे। वहाँ उन्होंने भट्ट जी के कई व्याख्यान रासो पर करवाए थे और कई बार अनुरोध करके उनसे रासो के छन्दों का विधिवत् गायन करवाया था। मैंने भी कई बार उनसे रासो सुना है। जिस समय वे वीर-रस के पद्य पढ़ते हैं तो सुनने वालों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं और स्वयं उनके मस्तक पर पसीने की बँदें झलकने लगती हैं।

नेनूराम जी के पास रासो की दो प्रतियाँ भी हैं। मैंने दोनों को देखा है। एक प्रतिलिपि तो कागज़, स्याही तथा अक्षरों को देखते हुए काफ़ी पुरानी ज्ञात होती है। उसे वे चन्द के पुत्र भल्ल-कृत बतलाते हैं। क्योंकि जैसी कि परम्परा से यह जन-श्रुति चली आई है, जब चन्द बरदाई महाराजा पृथ्वीराज के साथ चले थे तब उन्होंने रासो का अपूर्ण अंश अपने पुत्र भल्ल को पूरा करने के उद्देश्य से सौंपा था। अस्तु, प्रतिलिपि, जैसा कि नीचे दिए हुए लेख से ज्ञात होगा, जो उसी में मिलता है, सम्बत् १४५५ में की गई थी :—

“सम्बत् १४५५ वरषे शरदऋतौ आश्विनमासे शुक्ल-पक्षे उदयातघटी १६ चतुर्थी दिवसे लिपतं। श्री परतर-गच्छधिराजेः पण्डित श्री० रूप जी लिपतं। चेलः श्री० सोभाजीरा। कपासनमध्ये लिपिकृतं।”

श्री० गौरीशङ्कर जी ओझा ने ‘काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका’ (भाग १०, अङ्क १-२) में प्रकाशित अपने ‘पृथ्वीराज-रासो का निर्माण-काल’ शीर्षक लेख में लिखा

है कि उन्हें वि० सं० १६४२ की सबसे पुरानी हस्त-लिखित प्रति रासो की मिली है। पर ऊपर के अवतरण से तो नेनूराम जी वाली प्रति और भी पुरानी है। पता नहीं, इसमें क्या रहस्य है। क्या मैं आशा कर सकता हूँ कि ओझा जी इस बात पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करेंगे?

रासो की प्राचीनता के विषय में तो नेनूराम जी का भी यह कहना है कि उसका अधिकतर अंश प्रक्षिप्त है, जो १६ वीं शताब्दी के आस-पास जोड़ा गया है।

रही यह बात कि उसका कितना अंश चन्द का लिखा है और कहाँ तक भल्ल ने उसके बनाने में योग दिया, इसके विषय में भट्ट जी ने मुझे अपनी भल्ल-कृत रासो की प्रति में ये पद्य दिखाए थे :—

दोहा

दहति पुत्र कवि चन्द के, सुन्दर रूप सुजान।

एक भल्ल गुणवावरो, गुण समन्द सखिमान ॥ १ ॥

आदि अन्त लगि भ्रन्तमन, बनि गुरनी गुनराज।

पुस्तक भल्लन हत्त दे, चलि राजन कविराज ॥ २ ॥

उभै* सत्त नवरस्स गुण, किय पूरन गुरुतन्त।

रासौ नाम उद्विद्युत, गदौ मन्त मन सन्त ॥ ३ ॥

इस रासो सम्बन्धी विवादग्रस्त विषय को यहाँ इस लेख में न छेड़ कर, अब हम नेनूराम जी के सम्बन्ध में कई अन्य बातों का उल्लेख करेंगे।

ऊपर कहा जा चुका है कि भट्ट जी को पुरातत्व-विषयक खोज की पूरी धुन है। इस प्रसङ्ग में उस शिला-लेख का उल्लेख करना आवश्यक है, जोकि सन् १६०६ के लगभग मारवाड़पाली के पास बीठू नामक गाँव में उन्होंने ढूँढ़ निकाला था। उसकी नक़ल इण्डियन एण्टिक्वेरी, जिल्द ४०, पृष्ठ १४१ में निकल चुकी है। इस शिला-लेख से मारवाड़-राज्य की नींव डालने वाले राव सीहाजी राठौड़ का पाली आने का समय निर्धारित हो जाता है। क्योंकि उस लेख में लिखा है कि सम्बत् १३३० में यवनों से युद्ध करते हुए राव सीहाजी ने वीर-गति प्राप्त की थी। इसकी पुष्टि पाली के आस-पास लोगों में प्रचलित निम्न-लिखित पंक्तियों से हो जाती है :—

* उभै = २, सत्त = ७, नवरस = ६ = २+७; गुण = ३ = २१

दोहा

तेरह सौ तीस † में घणो रच्यो घमसान ।
पाली छोड़ पधार्या पालीवान पिछमान ॥
बारह सो बाराणवे † माया हदमाणी ।
बीता बरस छत्तीस यों जुग सारे जाणी ॥
नसूदीन नसीद ने फोजा फरराणी ।
हिन्दू मलेछ भेड़ा होय ने मूछाँ हदताणी ॥

मिले हुए शिला-लेख से सीहाजी के मृत्यु-सम्बन्ध का पता चलता है, और ऊपर दिए दूसरे पद से यह ज्ञात होता है कि १२६२ के लगभग नसीरुद्दीन और सीहाजी राठौड़ के बीच घोर युद्ध छिड़ा। एवं यह मत निश्चित कर सकते हैं कि शायद १२६२ या उसके इधर-उधर सीहाजी कन्नौज की तरफ से पाली में आए होंगे। अतएव उपर्युक्त शिला-लेख की खोज का तथा मारवाड़-राज्य के इतिहास की आदि शृङ्खला का पता लगाने का श्रेय ब्रह्मभट्ट नेनूराम जी को ही है।

यही नहीं, नेनूराम जी ने मारवाड़ के बाहर भी ऐतिहासिक सामग्री की खोज में उड़ीसा, भूटान तथा मानसरोवर तक दौड़ लगाई है। मुर्शिदाबाद-निवासी प्रसिद्ध जैन-विद्वान् श्रीयुत पूरणचन्द जी नाहर के साथ-साथ आप उस लम्बी यात्रा पर गए थे, और उन्हें जैन शिला-लेख संग्रह करने में बड़ी सहायता दी थी।

सन् १६०६ में, जब भारतीय पुरातत्व-विभाग के अध्यक्ष सर जॉन मार्शल (Sir John Marshall) जोधपुर आए थे तो उनके साथ डॉक्टर भाण्डारकर भी थे। उन्हें नेनूराम जी ने जोधपुर के आस-पास के समस्त ऐतिहासिक स्थल दिखाए थे और उन्हें बहुत सी बातें बतलाई थीं। इसका उल्लेख मार्शल साहब ने इन शब्दों में किया है :—

"... Mr. Bhandarkar tells me that Brahmabhatta Nanoo Ram Jee has been of great assistance to him in collecting information about the antiquities in and around Jodhpur. . . . He has quite a remarkable knowledge of the subject."

मुझे नेनूराम जी ने स्वामी दयानन्द जी सरस्वती

† यह दोनों अवतरण 'पहलीवाल परीक्षा' नामक हस्त-लिखित पुस्तक में मिलते हैं, जो १३०० में लिखी गई थी।

के विषय में भी कई बातें बतलाई हैं। इस लेख के वाचकों को यह जान कर कुतूहल होगा कि नेनूराम जी उन तीन मुख्य जोधपुर-निवासी सज्जनों में से एक थे, जो स्वामी जी को अजमेर से लेने गए थे। अन्य दो सज्जनों के नाम ऊमरदान जी तथा मास्टर दामोदरदास जी थे। ऊमरदान जी कवि थे। उनकी कविता का संग्रह छप चुका है।



परिचित नेनूराम जी ब्रह्मभट्ट

[महाकवि चन्द बरदाई के वर्तमान वंशधर]

इसके सिवाय जितने दिन स्वामी जी जोधपुर में रहे, उतने दिन नेनूराम जी निरन्तर उनकी सेवा-शुश्रूषा में उनके पास रहे। स्वामी जी के बल-पौरुष, उनकी निर्भीकता, उनकी वाग्मिता का सजीव चित्र भट्ट जी ने मुझे अपने शब्दों में दिया है। उनकी आँखों देखी बात है कि प्रातःकाल उठ कर तीन-चार भील तक बड़े वेग की चाल से वे बाहर जङ्गल में निकल जाया करते थे। वहाँ व्यायाम करके वापस आते थे और कम से कम दो-

तीन सेर दूध पी जाते थे। भोजन करते समय इसी परिमाण में वे हरे शाक खाते थे।

उनकी साधारण बोल-चाल की ध्वनि ऐसी गम्भीर और उच्च होती थी कि दूर से सुनाई देती थी। जब कभी सभा में वक्तृता देने खड़े होते तो लोग मन्त्र-मुग्ध से हो जाते। उनकी भाषा ऐसी जानदार होती, उनके बोलने की शैली ऐसी चुटीली होती कि जब चाहते श्रोताओं की आँखें आँसुओं से भर देते और कभी उन्हें हँसा देते। भट्ट जी का कहना है कि एक बार किसी व्याख्यान के बीच में स्वामी जी ने कुरानशरीफ से कुछ आयतें पढ़ीं। उनका उच्चारण स्वामी जी ने ऐसे अच्छे ढङ्ग से किया कि कई मुसलमान श्रोता यह चिल्ला उठे कि 'यह साक्षात् ख़ुदा का अवतार है।'।

स्वामी जी के साथ जोधपुर-निवासी कई आततायी लोगों ने जो कुत्सित व्यवहार किया और उनकी जीवन-लीला का अन्त इतने शीघ्र कराया, उसके सम्बन्ध की घटना को इस लेख में दुहराना अनुचित होगा। केवल इतना कहना काफ़ी होगा कि इन दुष्टों में से एक का नाम

कलिया था, जिसने एक दूसरे माली से मिल कर प्रसिद्ध वेश्या नन्हीजान के प्रोत्साहन से स्वामी जी को दूध के साथ विष पिला दिया था।

नेनूराम जी उस समय का पूरा वृत्तान्त देते हैं, जब स्वामी जी को आभास होने लगा था कि उन्हें विष दिया गया है। वे स्वामी जी के साथ-साथ आठू होते हुए अजमेर तक गए थे, जब विष-पान से अस्वस्थ हो जाने पर वे जोधपुर से प्रस्थान कर चुके थे।

उपसंहार में हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि नेनूराम जी, जिन्होंने इतनी ऐतिहासिक सामग्री इतने परिश्रम से एकत्रित करके इतिहासकारों के सम्मुख उपस्थित की है और जिन्होंने स्वामी दयानन्द ऐसे अवतारी पुरुषों का सत्सङ्ग किया है, वे स्वयं ऐतिहासिक जीव हैं। वे महाकवि चन्द के वंशधर होने के कारण उनके सजीव स्मारक हैं, जिनके दर्शन से तथा जिनके साथ वार्तालाप करने से हृदय में अद्भुत भाव उत्पन्न होते हैं। यह लेख इसी उद्देश्य से लिखा गया है कि जिससे इसे पढ़ कर हिन्दी-वाचकों का ध्यान इन चन्द बरदाई के वंशज की ओर आकृष्ट हो।



चेतावनी

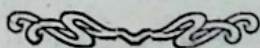
[श्री० देवीप्रसाद जी गुप्त, 'कुसुमाकर' बी० ए०, एल्-एल् बी०]

करो विधवाओं का उद्धार !

खो दोगे तुम उन्हें, करोगे यदि अब अत्याचार

छोड़ो अब अगली बातों को,
समझो दुनिया की घातों को,
उन्हें विधर्मी खींच रहे हैं, अब भी हो होशियार !
दो करोड़ हिन्दू-विधवाएँ,
यदि उनमें जाकर मिल जाएँ,
निश्चय है हिन्दू-समाज का, कर देंगी संहार !

कहा करो तुम उनके मन का,
पुनर्विवाह करो तुम उनका,
उनको तुम लाचार करो मत, करने को व्यभिचार !
अब भी चेतो उन्हें सन्हालो,
छोड़ न जाएँ, गले लगा लो,
इसमें है कल्याण तुम्हारा, उनका है उद्धार !



कलकत्ते का सामाजिक जीवन

['एक बागड़ी']



ल्ली के लम्बे-चौड़े प्लेटफॉर्मों पर देखने से पता चलेगा कि मारवाड़ी भाई कितनी अधिक संख्या में कलकत्ते आते हैं। करीब-करीब आधा बीकानेर यहाँ आकर व्यवसाय करता है। यह ठीक-ठीक पता नहीं चलता कि सबसे पहले बीकानेर जैसे दूर देश के लोग कलकत्ते में कैसे और कब आए, परन्तु ऐसी धारणा है कि कुछ चीनी लोग बीकानेर की तरफ अफ्रीम आदि खरीदने गए और केवल व्यापार करने के लालच से वे लोग उन चीनियों के साथ कलकत्ते चले आए। यहाँ आकर इन लोगों ने व्यापार शुरू किया। जब कुछ धन कमा कर ये अपने घर वापस लौटे तो अन्य लोगों की भी इच्छा इधर झुकी और फिर धीरे-धीरे बीकानेर जैसे देश का कलकत्ते से एक अच्छा सम्बन्ध हो गया। यहाँ आने पर फिर तो उन्होंने और-और व्यापार भी शुरू किए और गरीब लोग लखपती बन कर कलकत्ते के धनी व्यापारी गिने जाने लगे। कलकत्ते में आज दिन जो लखपती सेठ हैं, उनमें से अधिकांश की यह सम्पत्ति इधर २० वर्षों के अन्दर ही अन्दर की है। किसी ने आकर २० रुपए पर नौकरी की थी—किसी ने १५ पर; और कोई १००-२०० रुपए का छोटा सा कारबार करते थे। धीरे-धीरे उन्होंने व्यापार किया। भाग्य से महायुद्ध शुरू हुआ और इसी अवसर पर इन लोगों ने व्यापार करके बहुत रुपया कमा लिया। आज, बीस वर्ष पहले के गरीब बीकानेरी, कलकत्ते के लखपती सेठ कहे जाते हैं। इनके मकान बहुत बड़े-बड़े ४-६ मञ्जिले बने हैं, जिनमें कई परिवार सुविधापूर्वक रह सकते हैं। यह मकान लोहे के गट्ट के सहारे पर बने हैं, इसी से इतने ऊँचे होने पर भी जल्दी ही गिर पड़ने का डर नहीं है। इनके कारबार का स्थान इनकी गद्दी होती है। एक-एक बिल्डिंग में ५०-६० गद्दी भिन्न-भिन्न क्रमों की होती हैं।

प्रत्येक क्रम का नाम दो व्यक्तियों के नाम पर होता है। पिता-पुत्र अथवा साझी के नाम पर। जैसे वीरभान ताराचन्द। यदि दो नाम पर क्रम का नाम न रक्खा जाय तो लेन-देन गड़बड़ में पड़ जाती है। गद्दी में दो गद्दे—उन पर चाँदनी, तकिये, २-३ मसनद, एक तिजोरी और बही-खाते वगैरा होते हैं। सामान थोड़ा ही होता है, पर दलालों के जरिए हज़ारों की खरीद और बिक्री मुँहजबानी ही रोज़ मिति होती रहती है, और वही में सब हिसाब लिखा रहता है। सट्टा और फाटका इनका मुख्य व्यापार है। जूट और हैशियन के भाव मिनट-मिनट पर खुलते रहते हैं—अमेरिकन तारों के आधार पर। व्यापारी मुँहजबानी उसे खरीदते हैं, बेचते हैं और नफ़ा-नुक़सान नोट कर लेते हैं। प्रत्येक सोमवार को सबका हिसाब चुकता कर दिया जाता है। इसी में लोग दिवालिए भी बनते हैं और धनी भी। बम्बई में तो रुई का व्यापार ज़ोरों पर होता है, पर यहाँ जूट और हैशियन खूब होता है। क्लाइव स्ट्रीट में रॉयल एक्सचेंज प्लेस इस व्यापार का मुख्य अड्डा है। १० बजे से ५ बजे तक मोटर गाड़ियों की भीड़, दलालों की भीड़, चपरासियों का आना-जाना बहुत ही अच्छा लगता है।

इसके अलावा इनके हाथ में कपड़े का व्यापार भी है, और उन बाज़ारों में सारे दिन सौदे होते रहते हैं। जिन लोगों का काम जम गया है उनकी ५-६ जगह गदियाँ होती हैं और वे बड़े व्यापारी गिने जाते हैं। इतना रुपया कमा कर वे अपना लक्ष्य पूर्ण समझते हैं। यदि और भी अधिक रुपया होता है तो दो-चार मकान बनवा डालते हैं, जिनका किराया ३-४ हज़ार रुपया मासिक होता है। हैरिसन रोड के चीतपुर मोड़ पर एक प्रसिद्ध बाँगड़ बिल्डिंग है। इसमें घूम आना आसान काम नहीं है। चढ़ते-चढ़ते साँस फूल जाती है। इसी अकेली बिल्डिंग का ३ हज़ार के लगभग महीने में किराया आता है। इसमें कमेटी के नलों के भरोसे न रह कर, एक कुआँ है, जिसमें से पानी पम्प द्वारा खींच कर सर्वत्र लगे नलों में

जाता है। ब्रेतार का तार भी इसमें लगा है। व्यापारियों के प्रत्येक सुभीते का इसमें प्रबन्ध है और इसमें कोई १००-१२५ गदियाँ हैं। ऐसी ही और भी बड़ी-बड़ी इमारतें मारवाड़ियों के वैभव को बढ़ाती हैं।

जो परिवार कलकत्ते में बड़ गए हैं और जिनकी काफ़ी जायदाद और कारबार यहाँ फैल गया है, वे व्याह-शादी भी यहीं करते हैं, पर जो अकेले अथवा छोटे परिवार के साथ यहाँ रहते हैं वे व्याह आदि करने अपने देश जाते हैं।



राजस्थानी नवजीवन-मण्डल के प्रधान मन्त्री और सुधारक बाबू वसन्तलाल जी मुरारका

देश जाते समय की इनकी सपरिवार यात्रा कौतूहलप्रद होती है। कलकत्ते से ये जिस डब्बे में बैठेंगे, उसमें केवल मारवाड़ियों को ही बैठाने की उनकी पूरी चेष्टा होती है, अन्य यात्रियों को नहीं। डब्बे की खिड़कियों में, जिधर खियाँ और बच्चे बैठते हैं, रस्सी का बाँध लगा देते हैं, ताकि बच्चे खिड़की में से झाँकते समय नीचे न गिर पड़ें। खियों की तो दशा बहुत ही दयाप्रद होती है।

बेचारी घूँघट खींचे एक ही स्थान पर जमी बैठी रहेंगी। भोजन भी करना होगा तो घूँघट के अन्दर ही अन्दर! प्रायः ऐसा देखा गया है कि बेचारी दो-चार ग्रास खाकर ही पानी पी लेती हैं और भरपेट भोजन शर्म के मारे नहीं कर पातीं! दूसरी बात इससे भी ग़ज़ब की यह है कि वे क़रीब-क़रीब दिन में तो शौच अथवा सूत्रादि के लिए उठतीं ही नहीं। रात्रि में भाग्य से सब सो जायें तो शायद वे उससे निवृत्त। ऐसे कष्ट सह लेने का कारण है—कुछ तो लज्जा और कुछ उनका पहनावा। यदि लहंगा पहने हों तो उसे संभालना और जिसमें भी घूँघट में। भीड़-भाड़ में भीड़ से बचें अथवा लहंगे के घूम-घाम को बचावें। यदि लहंगा न हो, साड़ी ही हो, तो बहुत बारीक कपड़े की होती है, जिसे यात्रा में पहनना सर्वथा अनुचित है। ग़रज़ यह कि पात्राने तक पहुँचने के लिए काफ़ी साहस और समेटने की आवश्यकता होती है, जिसे वे बहिन नहीं कर सकतीं और लाचार होकर सारे दिन एक ही स्थान पर पार्सल की तरह बैठी रहती हैं। यदि दुर्भाग्य से बच्चे टूटी फिर दें, तब तो बेचारियों को उठना ही पड़ता है और लाचारी हालत में उसे जाकर धुलाना और फिर अपने भी हाथ-पैर धोना पड़ता है। साथी यात्री इस दृश्य पर मुस्कराए बिना नहीं रहते।

खैर, यह तो हुई रेल में बैठने की बात। दूसरी आश्रत जो उन्हें सफ़र में आती है, वह है कुलियों का पञ्जा। कुली, टिकट-चेकर, कलेक्टर—सभी उन्हें सुभीते का लालच देकर २-४ रुपए बना ही लेते हैं। कुली तो ख़ूब ही बनाते हैं। गाड़ी खड़ी होगी २ नम्बर पर, तो बतलाएँगे १० नम्बर चलना पड़ेगा सेठ जी! और फिर उसमें बैठाना। १० रुपए से कम का काम नहीं है। सेठ जी बेचारे तुन-तुन करने के बाद १० ही देते हैं—बल्कि और भी दो-चार। इसके साथ-साथ यह भी बात है कि इनका असबाब भी बहुत होता है। दो-चार खाने के बक्स और दो-चार कपड़ों के; दो-चार गॉटें तथा फुटकर चीज़ें—कम से कम १२ जगह असबाब होता है। कुली लोग भी, मारवाड़ी-यात्रियों की ही आशा लगाए रहते हैं। अन्त में बड़ी कठिनाई मेलते हुए बेचारे मारवाड़ी-परिवार अपने देश में पहुँच पाते हैं।

कभी-कभी ऐसा होता है कि सेठ जी को व्यापार से झुरसत नहीं होती, और यदि सेठानी जी को देश जाना

ज़रूरी हो जाय अथवा कोई विधवा सेठानी ही हों और उन्हें देश जाना हो तो वे एक नौकर को साथ लेकर देश चल पड़ेंगी। उनके सम्बन्धी प्रायः इस विषय में कोई आपत्ति नहीं करते। रेलों में प्रायः देखा ही जाता है कि नौकर के साथ सेठानी देश जाती हैं। अब वह नौकर उस समय उनका कौन होना है? एकमात्र साथी। और उस साथी को वे किसी प्रकार भी तकलीफ नहीं सहने दे सकतीं। जैसा आप खायेंगी वैसा ही उसे देंगी, बल्कि पहले उसे जिमा देंगी तब आप खायेंगी। जैसे-जैसे नौकर कहेगा, उन्हें उसी प्रकार करते जाना पड़ेगा। और कभी-कभी जो दुर्घटनाएँ रास्ते में घटती हैं, वह छिपी नहीं हैं। यहाँ तक सुनने में आया है कि घर में जो वादा नौकर से हो जाना है, उसे रास्ते में किसी जगह उतर कर एकाध दिन धर्मशाला में ठहर कर पूजा कर दिया जाता है, और तब आगे देश को बढ़ती हैं।

कलकत्ते में उनका घरू जीवन भी एक विचित्र चीज़ होता है। पुरुष रात-दिन व्यापार में रहते हैं। अनेक अपना भोजन तक गद्दी पर ही खा लेते हैं।

घर में बियाँ सारे दिन व्यर्थ कामों में रहती हैं। बहुत सवेरे—अंधेरे में ही उठती हैं। गङ्गा-स्नान को गई अथवा घर पर ही नहा लीं। नहा-धोकर अच्छे-अच्छे कपड़े पहन कर मन्दिर जाती हैं। मन्दिर के पट खुलने में देर हुई

तो वहीं प्रतीक्षा में बैठी रहती हैं। किसी-किसी मन्दिर में भागवत-कथा बँचती है, उसे सुनने लगती हैं। जब पट खुलता है तो दौड़ कर दर्शन कर लेती हैं और आस-पास में जितने भी मन्दिर होते हैं, सब में दर्शन करने



श्री० बालकृष्ण जी मोहता (सपरिवार)

[कलकत्ते के सर्व-प्रथम वीर, जिन्होंने पर्दा-प्रथा को तोड़ा और अब भी उसी प्रयत्न में लगे हैं। आप अपनी धर्म-पत्नी सहित जिस मनोयोग से सामाजिक सुधार का कार्य कर रहे हैं, वह सर्वथा स्तुत्य है।]

जाती हैं और क़रीब-क़रीब तीन घण्टे बाद अपने घर पहुँचती हैं। मन्दिरों में ५ बार पट खुलता है। कोई-कोई भगतिनें तो पाँचों बार दर्शन करने जाती हैं। पर अधिकतर सवेरे और दिन छिपे—दो ही समय दर्शन

करती हैं। केवल दर्शन करने और गङ्गा-स्नान में उनके चार घण्टे के लगभग लग जाते हैं। घर आकर रोटी बनाई और खा-पीकर आराम किया। कहीं आना-जाना हुआ तो वहाँ गईं अथवा घर पर ही रहीं और आपस की चक-चक अथवा सीने-पिरोने में दिन बिता दिया। पर सीना-पिरोना बहुत कम होता है, अक्सर उनका समय व्यर्थ ही नष्ट होता है। शाम हुई, रोटी बनाई और

और अपने बाल अथवा वृद्ध-पतियों की थोथी बातचीत और कल्पना में अपना दिन व्यतीत करती हैं। अब तो कुछ अच्छा भी है कि कन्याओं के लिए विद्यालय खुल गए हैं, पर उसमें छोटी-छोटी बालिकाएँ ही शिक्षा पाती हैं, बड़ी लड़कियाँ नहीं जा सकतीं। इस रीति द्वारा कोई भी कन्या पूर्ण शिक्षिता नहीं बन सकती।

बड़े और धनी मारवाड़ी-परिवारों की तो चर्चा ही क्या, उन्हें बढ़िया भोजन, बहुमूल्य कपड़े और जवाहराती गहने भरपेट मिल जाते हैं। आने-जाने के लिए मोटर तैयार रहती है, और यदि उन्हें परदा न रखना पड़े तो उन्हीं के इच्छित शब्दों में वे पूर्ण सुखी हैं। पर छोटे और गरीब परिवारों की दशा बहुत ही करूणाजनक है। गन्दे, मैले, सड़ियल मकान की एक-दो कोठरी किराए पर लेकर वे रहते हैं। एक एक बिल्डिंग में १५-१६ परिवार बसते हैं। उसी में एक स्थान पर सबके सम्मिलित २-३ नल और २-३ पात्राने होते हैं। बेचारे अपने-अपने नम्बर से शौचादि से निबटते हैं। पुरुष प्रायः दलाली का काम करते हैं और सवेरे से निकल कर रात को ८-९ बजे मकान वापस लौटते हैं। ३-४ रुपए जो कमा लाते हैं, वही उनकी जीविका है। इसी दलाली में किसी-किसी साल दो-तीन लाख रुपया वे पा जाते हैं। ५-६ महीने में सब कुछ चला जाता है और फिर ज्यों के त्यों रह जाते हैं। ऐसे परिवार दुखी और भारयुक्त होते हैं। उन्हें अपने जीवन से कोई प्रसन्नता नहीं होती और उनके बच्चे या तो वही करते हैं अथवा कहीं नौकरी करते हैं।

मारवाड़ी-युवक नौकरी करते बहुत थोड़ी संख्या में मिलते हैं। उनका ध्येय तो व्यापार होता है और उस व्यापार को भी उन्होंने सट्टा और फाटका में बदल डाला है। इसी की बदौलत कोई लखपती सेठ भी अपने को दिल ठोक कर हमेशा को लखपती नहीं कह सकता। सारांश यह कि स्त्रियाँ घर में बहुत समय तक बिना पुरुषों के रहती हैं—सो भी रात के दस-दस, बारह-बारह बजे तक। पुरुष अपने काम में इतने व्यस्त होते हैं कि वे काफ़ी थके हुए घर लौटते हैं। नव-विवाहित लड़के और युवक भी सैर-सपाटा करके रात होने पर ही घर सोने के लिए आते हैं। अब जो युवतियाँ उमङ्ग-भरी होती हैं और जिनके पति घर



बाबू शिवकिशन जी भट्ट

[कलकत्ते की सुप्रसिद्ध फ़र्म, सर सरूपचन्द-हुक्मचन्द के मैनेजर—आप स्वतन्त्र विचार के सुधारक हैं।]

मन्दिर में चल दीं। वहाँ से आईं और ज़रूरी काम करके सो गईं। वस यही इनकी दिनचर्या होती है। इस हालत में वे सुधार-जैसी गहरी उलझन को कभी नहीं सुलझा सकतीं। लड़कियाँ तो अपना समय और भी अधिक व्यर्थ, सारहीन बातों में नष्ट करती हैं और उसका फल यह होता है कि वे रोगी और अशिक्षित स्त्रियाँ बनती हैं। बड़े घर की लड़कियाँ तो खेल-कूद

प्रतीक्षा दिखाने के बाद भी उन्हें प्रसन्न नहीं कर सकते, वे एक उत्तम कौशल रचती हैं। उनके घरों में जो नौकर होते हैं, उनमें से जो सबसे अच्छा होता है उसे वे चुन लेती हैं और उससे अपना काम अधिक कराने लगती हैं। काम करने से वह दुखी हो तो उसे अच्छा-अच्छा भोजन देने का लालच देती हैं और फिर देने भी लगती हैं। पूरी-मिठाई, धी-भरे शाक आदि-आदि उसे चुपचाप खिलाने लगती हैं। १५-२० दिन की चराई के बाद वह नौकर निखर जाता है। अब वे उसे छेड़ने



अपनी सुधार-प्रियता के अपराध के कारण
मारवाड़ी-समाज से बहिष्कृत
श्री० वासुदेव जी सराफ
(आजकल आप विलायत में हैं)

लगती हैं। ३-४ दिन तक यह भी करने पर अब वे अक्सर देखती हैं। किसी भी समय अक्सर मिला तो झट पैर में दर्द का बहाना करके लेट जाती हैं और नौकर को पैर में तेल मलने की आज्ञा करती हैं। नौकर तेल मलता

है, और घुटने तक नौबत आ जाती है। जब घुटने तक बात पहुँची तो वे मुस्करा कर कहती हैं—अरे देखता नहीं—गुदगुदी होती है। बस यह मुस्कराना दोनों ओर की स्वीकृति होती है और नौकर को एक दुर्लभ चीज़ मिल जाती है !!! सब कुछ हो चुकने पर नौकर चला जाता है और सेठानी जी और भी अधिक दर्द का बहाना बना कर वहीं पड़ी रहती हैं। रात को पति आते हैं तो बहू जी को तकलीफ़ में देख कर बड़े प्यार से बातें पूछते हैं और इस प्रकार एक अलभ्य पवित्रता लुटा कर वह स्त्री पति को भोला-भाला उल्लू बना देती है !!! और फिर तो वह पापाचार चलता ही रहता है। एक नौकर ने बड़ी खूबी से हमें यह कथा सुनाई थी, पर अन्त में उसने एक दीर्घ साँस छोड़ते हुए कहा कि—‘मालिक ! सब कुछ हुआ, पर आज तक मैं उसका मुँह नहीं देख पाया। सब कुछ किया-कराया, पर मुँह का घँघट न खोला ! न खोला !! एक बार ऐसा अवसर आया कि घँघट खुल गया, पर उसने हाथ फैला कर तुरन्त ही रोशनी, जो धीमी कर दी गई थी, बिल्कुल ही बुझा दी।’

यह तो हुई घर की भीतरी पाप-कथा, अब बाहर की सुनिष्ट। लगभग चार बजे उठ कर स्त्रियाँ गङ्गा-स्नान के लिए जाती हैं। बहुधा मन्दिरों के लोगों से अथवा अपने किसी मुलाकाती मित्र से—जिससे उनका प्रेम हो जाता है या वचन हो जाता है—वे सबसे पहले वहाँ पहुँचती हैं और पीछे गङ्गा जी। एक खत्री-मित्र ने हमें बताया कि मैंने ४ युवतियों को इसी प्रकार बुला-बुला कर उनका अनुरोध पूरा किया है !!!

अभी कोई १२ दिन हुए कि चार स्त्रियाँ बड़े बाज़ार के रास्ते से गङ्गा-स्नान को जा रही थीं। काफ़ी अंधेरा था। जब वे एक सुनसान स्थान पर पहुँचीं तो वहाँ चार आदमी बैठे थे। स्त्रियों को देखते ही वे उठ खड़े हुए और अनायास ही चारों ने एक-एक को पकड़ लिया। और उनके × × × × सबसे अधिक आश्चर्य तो यह था कि स्त्रियाँ चिल्लाई नहीं। उधर से कुछ लोग भी गङ्गा-स्नान को जा रहे थे। उन्हें देख कर उन चारों पुरुषों ने स्त्रियों को छोड़ दिया और लम्बे क्रदम रखते हुए एक गली में जा दाखिल हुए। उस दिन यह चर्चा दो-चार मारवाड़ियों में फैली, पर अपना ही मुँह काला



धर्मपत्नी सहित सर्व-प्रथम यूरोप-यात्रा करने वाले कलकत्ता के सुप्रसिद्ध सुधारक
श्रीयुत बाबू देवीप्रसाद जी खेतान

मनोहर ऐतिहासिक कहानियाँ

[लेखक—अध्यापक श्री० जहूरवख्श जी
'हिन्दी-कोविद']

इस पुस्तक में पूर्वीय और पाश्चात्य, हिन्दू और मुसलमान स्त्री-पुरुष—सभी के आदर्श छोटी-छोटी कहानियों द्वारा उपस्थित किए गए हैं, जिससे बालक-बालिकाओं के हृदय पर छुटपन ही से दयालुता, परोपकारिता, मित्रता, सचाई और पवित्रता आदि सद्गुणों के बीज अंकुरित करके उनके नैतिक जीवन को महान्, पवित्र और उज्ज्वल बनाया जा सके !

इस पुस्तक की सभी कहानियाँ शिचाप्रद, और ऐसी हैं कि उनसे बालक-बालिकाएँ, स्त्री-पुरुष—सभी लाभ उठा सकते हैं। लेखक ने बालकों की प्रकृति का भली भाँति अध्ययन करके इस पुस्तक को लिखा है। २५० पृष्ठों की समस्त कपड़े की जिल्द-सहित पुस्तक का मूल्य केवल २) ६०; स्थायी-ग्राहकों से १॥) मात्र !

मनोरंजक कहानियाँ

[लेखक—अध्यापक श्री० जहूरवख्श जी
'हिन्दी-कोविद']

श्री० जहूरवख्श जी की लेखन-शैली बड़ी ही रोचक और मधुर है। आपने बालकों की प्रकृति का अच्छा अध्ययन किया है। यह पुस्तक आपने बहुत दिनों के कठिन परिश्रम के बाद लिखी है। इस पुस्तक में कुल १७ छोटी-छोटी शिचाप्रद, रोचक और सुन्दर हवाई कहानियाँ हैं, उनको पढ़ते ही हृदय आनन्द से उमड़ पड़ता है। हरेक कहानी को जितनी बार पढ़ा जाय, उतनी ही बार एक नया आनन्द प्राप्त होता है। बालक-बालिकाएँ तो इन्हें बड़े मनोयोग से सुनेंगे। बड़े-बूढ़ों का भी मनोरञ्जन हो सकता है। शीघ्र ही मँगाकर लाभ उठाइए।

पृष्ठ-संख्या १५० से अधिक; छपाई-सफाई

अच्छी; सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १॥) स्थायी-ग्राहकों से १=)

शान्ता

इस पुस्तक में देश-भक्ति और समाज-सेवा का सजीव वर्णन किया गया है। देश की वर्तमान अवस्था में हमें कौन-कौन सामाजिक सुधार करने की परमावश्यकता है; और वे सुधार किस प्रकार किए जा सकते हैं, आदि आवश्यक एवं उपयोगी विषयों का लेखक ने बड़ी योग्यता के साथ दिग्दर्शन कराया है। शान्ता और गङ्गाराम का शुद्ध और आदर्श-प्रेम देख कर हृदय गदगद हो जाता है। साथ ही साथ हिन्दू-समाज के अत्याचार और पड़्यन्त्र से शान्ता का उद्धार देख कर उसके साहस, धैर्य और स्वार्थ-त्याग की प्रशंसा करते ही बनती है। मूल्य केवल लागत-मात्र ॥॥) स्थायी ग्राहक के लिए ॥=); पुस्तक दूसरी बार छप कर तैयार है।

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

होते देख वे चुप हो गए और किसी से भी न कहने की प्रार्थना करके उन्होंने हाथ जोड़ दिए !!!

कलकत्ते में आए-दिन ऐसी पाप-घटनाएँ होती ही रहती हैं। पर बन्द होने का कोई उपाय नहीं है। गङ्गा-स्नान और मन्दिर-दर्शन के पीछे प्रायः उनकी पवित्रता नष्ट होती है। पर उन दो बातों को वे छोड़ भी नहीं सकतीं। उनके विचार ये दो बातें करने के लिए इतने अधिक दृढ़ कर दिए जाते हैं कि वे लाख विपत्तियों का सामना करके भी उसे झरूर करें। और जो कोई उन्हें इससे रोके तो वह अधर्मी कहलाता है। कलकत्ते में मन्दिर बहुत हैं। खास एकान्त मन्दिर होने के अलावा घरों में भी दूसरे-तीसरे तल्ले तक में मन्दिर हैं, जहाँ धूम-धाम से आरती होती है, और स्त्रियाँ इतनी ऊँचाई चढ़ कर भी दर्शन करती हैं। प्रायः ऐसे जो मन्दिर हैं उनमें चुपचाप पाप होता है। मकान के मनचले स्वामी बड़े-बड़े घर की लड़कियों को, औरतों को खास तौर से अपने मन्दिर का निमन्त्रण देते हैं और आने पर उन्हें बहका लिया जाता है !

बुलाने का मुख्य बहाना सावन-भादों में लगता है। इन महीनों में प्रत्येक मन्दिर में नई भाँकी, झूलन और रास-लीलाएँ होती हैं। सेठ लोग आठ-आठ, दस-दस रोज़ तक रासलीला कराते हैं और इस अवसर पर अपने इष्ट-मित्रों को सप्लीक पधारने का निमन्त्रण देते हैं। औरतें अलग बैठती हैं और पुरुष अलग, और इन्हीं मौकों पर उन स्त्रियों से उनकी पाप-प्रार्थना स्वीकृत हो जाती है। रासलीला में कोई महत्वपूर्ण बात नहीं होती, नाचना-गाना और ऊल-जलूल क्रियाएँ होती हैं।

खास एकान्त मन्दिरों में कभी-कभी पाप होता है। एक दिन एक घटना हमने स्वयं अपनी आँखों से देखी थी। रात की आरती हो रही थी, एक ओर स्त्रियाँ खड़ी थीं—दूसरी ओर पुरुष। मन्दिर के एक प्रबन्धकर्ता पुरुष और स्त्रियों के बीच दीवार-स्वरूप खड़े थे। एक स्त्री पर उनकी नज़र थी। आज वे कुछ करने की प्रतीक्षा में थे। जब सबका ध्यान ठाकुर जी की छवि देखने में लगा था, तो उस अधिकारी ने अवसर देख कर उस स्त्री की छाती की ओर हाथ बढ़ाया। उसके एक साथी स्विच के फ़स खड़े थे। अधिकारी का हाथ बढ़ते देख उन्होंने स्विच दबा दी। बिजली एकदम बन्द हो गई, और कोई आध

मिनट बाद ही जल भी गई। सबमें हलचल मच गई—बत्ती क्या हुई? बत्ती क्या हुई? पर काम इतनी सफ़ाई से हुआ कि किसी को पता भी नहीं चला और अधिकारी ने हाथ हटा ही लिया !!! इतना होने पर भी उस स्त्री का दर्शन के लिए आना बन्द न हुआ। हाँ, किनारे खड़ी न होकर, स्त्रियों के बीच में खड़ी होने लगी और दर्शन समाप्त होने पर शीघ्र ही चलने की तैयारी कर देती।



कलकत्ते का सङ्गठित नरक "गोविन्द-भवन"

(२६ बॉसतला लेन)

इसके अलावा मन्दिरों में लुबे पुजारियों तथा अन्य कर्मचारियों द्वारा बहका कर अथवा फुसला कर मन्दिर के अंधेरे कमरों में भगतिनों पर कभी-कभी जो बलात्कार होते हैं, सो अलग। मन्दिरों में अंधेरा काफ़ी रहता है। बेचारी स्त्रियाँ धूँवट के कारण कहीं ठोकर खाकर रास्ते में गिर भी पड़ती हैं। मन्दिर के दरवाज़े से लेकर मूर्ति तक पहुँचने के रास्ते में जेड़-झाड़ का अवसर मिल जाता है। और दर्शन करके रात को जब भीड़ लौटती है तो मनचले थोथे युवक भोली-भाली स्त्रियों को जेड़ते जाते हैं, और प्रायः एकाध महीने में उनका प्रयास पूरा हो ही जाता है !

कहीं-कहीं ऐसा है कि मन्दिरों में किराए पर रहने के लिए कमरे भी मिलते हैं। ये कमरे मन्दिर-भाग से हट कर होते हैं। और इनमें गृहस्थ लोग कम भाड़े के लालच में और सुभीतेपूर्वक दर्शन के लोभ में पड़ कर रहते भी हैं। मन्दिर के अधिकारी लोग इन घर की स्त्रियों को ठाकुर जी का प्रसाद भेज-भेज कर फुसला लेते हैं। बेचारी सरल भगतोंने इसे पुजारी जी की विशेष कृपा समझती हैं, और इसके बदले में उनको कुछ भेंट



गोविन्द-भवन के श्री १५३ भगवान् ?

व्यभिचार-शिरोमणि हीरालाल गोयनका

(एक स्त्री की ताबीज का बढ़ाया हुआ चित्र)

आदि अथवा त्योहारों पर थाल भर-भर कर पकवान भेज देती हैं। धीरे-धीरे यही क्रम चलता रहता है और समय मिल जाने पर अधिकारी जी अपना मतलब साध लेते हैं। भला पुजारी जी को मना कोन करे ? ठाकुर जी नाराज हो जायें तो ? पुरानी बूढ़ी भगतोंने कह-कह कर अपनी बेटियों व पतोदुष्टों को पुजारी जी की सेवा में भेजती हैं। एक बार एक स्त्री पर अधिकारी जी और एक पड़ोसी किराएदार साथ ही साथ मोहित हुए। अन्त में

मामला बढ़ा और अधिकारी जी ने किराएदार से मकान छोड़ कर चले जाने को कहा। उसने जाते-जाते उस स्त्री की बात उड़ानी चाही तो उसकी माँ आकर पैरों में गिड़गिड़ाने लगी और कहा—‘बाबू ! क्यों फ़ज़ीता करते हो ! दया करो। मालूम पड़ जाने पर बिरादरी में हलचल मच जायगी।’ आखिर वे चुपचाप ही मकान खाली करके चले आए। पर उस स्त्री को न पाने का मलाल उन्हें बहुत दिनों तक रहा !!!

गोविन्द-भवन की पाप-लीला तो सब जानते ही हैं। वह भण्डा फूट जाने से मारवाड़ियों में कुछ-कुछ समझ आती जा रही है। पापी हीरालाल ने कैसी युक्ति से जाल फैलाया कि छोटी-बड़ी, गरीब-अमीर, सुलभ और दुर्लभ—सब कोई मछली के समान जान-बूझ कर प्रसन्नता से फँसीं। रुपया लुटाया, समय लुटाया और अन्त में अपना सतीत्व भी लुटाया !!! हीरालाल ने गीता की कथा बाँचनी शुरू की और फिर धीरे-धीरे मारवाड़ी-अब्रारों में गीता-विषयक कुछ उपदेश लिखने शुरू किए। साथ ही साथ उसने यह आन्दोलन भी उठाया कि मारवाड़ी-स्त्रियाँ मुसलमानों के पास बच्चे आदि फूँकवाने न जावें, बल्कि मन्दिरों में श्रीकृष्ण की आराधना करें। भगवान् सब कुछ करेंगे। मारवाड़ियों की श्रद्धा उस पर बढ़ी और खूब बढ़ी। भुण्ड के भुण्ड लोग कथा सुनने आते। सम्भव है, हीरालाल का झास लक्ष्य प्रथम पाप करने का न रहा हो, पर जब उसने देखा कि स्त्रियाँ विशेष भाव से कथा सुनती हैं और चाहे जिस समय भी आ सकती हैं, तो उसने कथा का विस्तार बढ़ाया और दिन में कई बार कथा होने लगी और फिर रासलीला भी प्रारम्भ कर दी गई। रासलीला में हीरालाल स्वयं ही कृष्ण बनता था। बड़े-बड़े सेठ अपनी स्त्रियों को हीरालाल की सेवा में भेजने लगे ! अच्छी से अच्छी स्त्री जब उसकी सेवा में हर समय तत्पर रहने लगी तो हीरालाल बच न सका। उसकी छिपी हुई पाप-वासना जागी और उसने छिपी रासलीला शुरू की। इसमें झास-झास स्त्रियाँ ही उसके साथ होती थीं। और फिर तो बहुत सुभीते से पाप-लीला चली। सास अपनी विधवा-बहुओं को श्रीकृष्ण का प्रसाद पाने के लिए वहाँ लातीं और प्रसाद मिल चुकने पर साथ ले जातीं ! हीरालाल के एक मित्र कहते थे कि उसे इतनी बार स्त्रियों से सङ्ग

करना पड़ा कि आखिर वह घृणित रोगी हुआ, और बहुत रुपया खर्च करके उसने कुश्ते आदि खाकर अपने शरीर को उस लीला योग्य बनाए रखा। वह तो एक आकस्मिक मौके की बात हो गई थी कि एक विधवा को गर्भ रह गया, पर हीरालाल में इसकी शक्ति ही नहीं रह गई थी। हम तो यही कहेंगे कि असल में हीरालाल को व्यभिचारी बनाने का सारा दोष मारवाड़ी-पुरुषों पर ही है। उन्होंने क्यों अपनी स्त्रियों को उसकी सेवा करने भेजा और उड़ती हुई खबरें सुनने पर भी कुछ ध्यान न दिया। पर जब मामला स्पष्ट रूप से खुल ही गया तो उन्होंने करवट बदली और अपनी भूल को पञ्चायत करके सुधार लिया। मारवाड़ी-समाज की शक्ति तो इसी से प्रकट है कि वह उस पापी का कुछ भी न कर सकी और योंही चले जाने दिया। भगतिनों की हीरालाल पर कितनी श्रद्धा थी, इसका अनुमान इस मनोरञ्जक बात से करिए। बच्चों के गले में अथवा अपने ही गले में स्त्रियाँ श्रीनाथ जी की छोटी सी मूर्ति को तावीज में लगवा कर पहन लेती हैं। इससे कोई प्रेत-बाधा नहीं लगती। पर उन श्रीनाथ जी की जगह उस तावीज में स्त्रियों ने हीरालाल की तस्वीर लगवानी शुरू कर दी, और सबके गले में, वृक्षस्थल पर हीरालाल ही हीरालाल रहने लगे। जब यह भयङ्गाफोड हुआ और अखबार वालों को हीरालाल के चित्र की आवश्यकता हुई, तब 'हिन्दू-पञ्च' को पता चला कि एक मारवाड़ी-फोटोग्राफर के पास उसका चित्र ज़रूर मिलेगा। फोटोग्राफर ने उन्हें वह तावीज दिखाया कि—देखिए यही तो नहीं है? अन्त में 'हिन्दू-पञ्च' सम्पादक उसे पहचान कर ले आए और बड़े साइज़ में करा कर अपने अखबार में छाप दिया। 'हिन्दू-पञ्च' की वह कॉपी बहुत बिकी और दूने पैसों में बिकी। फोटोग्राफर का कहना है कि एक मारवाड़ी मेरे पास उस तावीज को लाया और वैसे ही छोटे-छोटे कई चित्र बना देने को कहा। पीछे यह काण्ड हो गया और वह अपना तावीज भी लेने नहीं आया। वही तावीज मैंने 'हिन्दू-पञ्च' वालों को दे दिया। इस घटना से इस समाज के अन्ध-विश्वास का भली प्रकार बोध होता है। और यह अन्ध-विश्वास तभी दूर हो, जब कि कोई दैवी शक्ति उनके मन में सत्य बुद्धि जगा दे।

यह तो हुई मन्दिरों के पीछे व्यभिचार की बात,

अब हमें उनके निजी व्यवहार भी देखने चाहिएँ। बड़े घर की स्त्रियों को कहीं थोड़ी दूर पर ही जाना हो तो एक नौकर उन्हें पहुँचाने जाता है। ठीक उसी प्रकार, जैसे कि एक ग्वाला लाठी लेकर गाय को चराने जाता हो। गलियों में, बाज़ारों में यह दृश्य देखने को मिलता है। यह बात तो दीखती ही नहीं कि मालकिन का अपने नौकर पर कुछ भी प्रभुत्व है! जिधर को वह ले जायगा,



श्री० सत्यनारायण जी डालमिया

[आप कलकत्ते के बहुत बड़े धनी व्यक्तियों में से हैं]

वे जायँगी। अच्छा हो यदि पुरुष अपनी स्त्रियों को स्वयं ही पहुँचा आया करें—इसमें लज्जा की क्या बात है? आजकल बाहर निकलने का पहनावा प्रायः एक सा ही है। साड़ी के ऊपर चादर ओढ़ कर स्त्रियाँ आती-जाती हैं। साड़ी का कपड़ा बारीक मलमल होता है, जिसमें शरीर भले प्रकार छिपा नहीं रहता—पेट तो उबड़ा रहता ही है। जल्दी से चलने में दाँग पर से साड़ी का छोर उड़ जाता है तो घुटने तक का अङ्ग दिखाई दे जाता है; पर



उन्हें कोई स्वास ध्यान नहीं रहता। हाँ, ध्यान इसी का रहता है कि घँघर न बिगड़ जाय। १० सेर के घाघरे से यह साड़ी का पहनावा आरामदेह ज़रूर है, पर इसमें भी सुधार होना ज़रूरी है—कम से कम मोटा कपड़ा तो हो।

इसी के साथ-साथ हम उनका ध्यान उनकी सन्तान की ओर भी खींचना चाहते हैं। लड़कियों को पढ़ाना चाहिए और व्यर्थ की बातों में उनके हृदय को भीरु, कायर न बनाना चाहिए। लड़कियाँ बर्तन मल सकती हैं,



कलकत्ते के श्री० सत्यनारायण जी डालमिया का शहर से बाहर बगीचे में बिनोद-भवन

पर उसे चमका भी तो देती हैं। उनकी शक्ति यदि विकसित होने दी जाय तो पुरुषों को वे नचा दें। छोटे-छोटे लड़के पाठशालाओं में जाते हैं और अपनी पुरानी पद्धति से गुरु जी के आगे बैठ कर महाजनी इत्यादि सीखते हैं। कोइलों की मार खाई और गाली सुनें। इस शिक्षा का असर यह होता है कि वे सिपाय महाजनी के और कुछ नहीं सीख पाते, और जो कुछ सीख भी पाते हैं—अक्सर पढ़ना सीख लेते हैं—तो उसका दुरुपयोग

करते हैं। कलकत्ते की लाइब्रेरियों में प्रायः मारवाड़ी-युवक तिलस्मी अथवा कुचेष्टापूर्ण उपन्यास पढ़ते दीखेंगे। अपनी शिक्षा में वे स्वतन्त्र रहते हैं। १४-१५ वर्ष की आयु तक कोई बच्चा अपने पिता की आज्ञा उस विषय में नहीं मान सकता। और इसी उम्र में उनका विवाह भी तो कर दिया जाता है! भला विवाह की बातें वह जानें कैसे? कलकत्ते में हिन्दी-पुस्तकों की दूकान पर जाकर देखिए तो पता चले कि १४-१५ वर्ष के नव-विवा-

हित फूल-से बच्चे आकर कोकशाख खरीद कर ले जाते हैं। उनकी इतनी हिम्मत तो होती नहीं कि ऐसी पुस्तक वे स्वयं बेधड़क घर में रखें। अपने साथ वे नौकर को मिलाते हैं और नौकर उस पुस्तक को छिपा कर दूकान से ले जाता है और अपने निवास-स्थान में रखता है। उन बेचारों को जब अवसर मिल गया तभी चुपचाप छिप कर उसे पढ़ जाते हैं, और इस प्रकार कोकशाख पढ़ कर वे अपनी सोई हुई वासना को कच्ची ही जगा कर सोहाग-रात की तैयारी करते हैं। और फिर २-४ महीने पीछे उनके सुन्दर गुलाबी मुखड़े चिन्ता-ग्रस्त पीले-पीले दिखाई देते हैं। यह है इस जाति के बच्चों का पतित मार्ग!!! नौकर लोग कई कामों में सहायक होते हैं। रात को थिप्टर-बायस्कोप में उन्हीं की सहायता से बच्चे जाया करते हैं अथवा किसी दुराचारी बड़े आदमी के प्रलोभन में पड़ कर।

घोरे-धीरे समय आता है और वे रात में घूमने निकलते हैं। चेरयात्रों के यहाँ पहुँचने पर उन्हें वही घृणित रोग मिलते हैं, जिसे होना कोई सद्-व्यक्ति नहीं सह सकता। रोगी होने पर वे चैद्य-डॉक्टरों से सम्मत् कराते रहते हैं। कलकत्ते में गली-कूचों में और स्वास तौर से मारवाड़ी-मुहल्लों

में गर्मी-सूजाक और बाघी के 'शर्तिया चिकित्सक' चैद्य-डॉक्टर छोटी-छोटी दूकानों में बैठे मिलेंगे। कोई बिजली द्वारा, कोई जड़ी-बूटी से और कोई अपनी पेरेण्ट औपधि से उन रोगों को खोने का दावा करते हैं। इन वैद्यों की जीविका अधिकतर मारवाड़ी-युवकों की उसी प्रकार की चिकित्सा करने पर चलती है। इन युवकों के अलावा युवतियाँ भी बहुत ही छिपे तौर से उनके यहाँ पहुँचती हैं और उन्हीं रोगों की औपधि माँगती है। कलकत्ते में

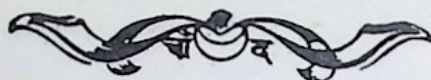
मारवाड़ी-वेश्याएँ कम हैं, पर जो हैं वे ही ग़ज़ब दाने के लिए काफ़ी हैं। उनके अंडे ऐसे होते हैं मानों इन मकानों में कोई गृहस्थ रहता है। धूँधट काढ़ कर बच्चे को गोदी में रख कर खेलाती रहेंगी और अपने शिकार को उँगली के इशारे से ऊपर बुज़ा लेंगी। वहाँ कई स्त्रियाँ रहती हैं। पसन्द कर लो और २-३ रुपए देकर पाप कमा लाओ !!! सुना गया है, कलकत्ते में कहीं-कहीं ऐसे अंडे हैं, जहाँ गृहस्थ की विधवाएँ अथवा वृद्ध या बालक की जवान बहूएँ रात को वहाँ देव-दर्शन का बहाना करके पहुँचती हैं और बिना कुछ पैसों के ही अपना मुँह काला करके घर लौटती हैं। इसी प्रकार की और भी ख़िपी बातें हो सकती हैं, जिन्हें हम अब तक नहीं पा सके हैं। बेचारी स्त्रियाँ जल्दी ही क्यों बहकती हैं—इसका ख़ास कारण है पुरुषों की अधिक चेष्टाएँ। कलकत्ते में एक ऐसे धनी व्यक्ति को हम जानते हैं, जो करोड़पति हैं और अपना बहुत सा धन इसी बात में खर्च करते हैं कि सदगृहस्थों की नई-नई बहू-बेटियों को बिगाड़ें। बड़े-बड़े घरों की सुन्दर स्त्रियों को उन्होंने अपने पास बुलवा मँगाया और अपनी इच्छा पूरी की। इसी व्यक्ति ने एक ब्राह्मण-विधवा के पास अपने नौकर द्वारा ५०० रुपए भिजवाए थे और प्रार्थना की थी कि कम से कम मुँह देखने की तो इज़ाज़त दे दी जाय। पर उस विधवा ने वे रुपए वापस लौटा दिए थे। उसी विधवा के पास एक और सज्जन ने २०० भेजे थे कि सिर्फ़ एक ही बार मुलाक़ात कर लीजिए, पर उसने उससे भी इन्कार कर दिया। कुछ दिनों बाद उस विधवा का एक नौकर उसके नाम से चुपचाप १०० माँग लाया। पीछे पता चला कि, जब कि उस व्यक्ति ने अपना एक नौकर 'वह दिन' नियत करने को पूछने भेजा !! इसी प्रकार की भीतरी बुराइयाँ बहुत दिखाई जा सकती हैं—पर हमारी प्रार्थना है कि इतना सुन कर ही वे अपने सम्मान को फिर वापस लाएँ।

कलकत्ते के सुधारक नवयुवक और पुराने कार्यकर्ता बराबर सुधार-पथ पर अग्रसर हैं। पर उनके मार्ग में अन्ध-रूढ़ि ऐसी जमी है कि वे सच्चा सुधार कर नहीं सकते। बड़े से बड़े सुधारक को हम बतला सकते हैं कि कोई सच्चा महत्त्वपूर्ण सुधार उनके लिए कितना कठिन है। उनकी शक्ति पञ्चायत में बँधी है और वे सुधार-पथ से हट जाते हैं। हाँ, इतना ज़रूर है कि वे अपना सुधार

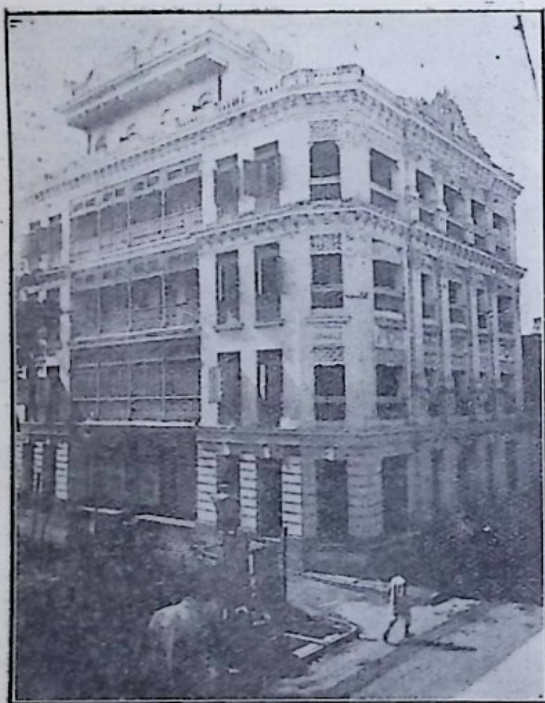
अवश्य कर लेते हैं। पर फिर भी उनसे जहाँ तक बन पड़ता है, अपने हाथ-पैर बचा कर वे सामाजिक सुधार के प्रयत्न में लगते हैं। करीब एक महीना हुआ, मारवाड़ी बालिका-विद्यालय का वार्षिकोत्सव हुआ था। उसकी सभानेत्री बनाई गई श्रीमती घनश्यामदास जी लोयलका। 'चाँद' के एक प्रतिनिधि ने सोचा, चलो मारवाड़ी-अङ्क के लिए एक लेख लिखने की उनसे प्रार्थना करें। कम से कम कुछ नहीं तो जब उन्होंने पुरुषों के



कलकत्ते में मारवाड़ी-वेश्याओं या रखेली स्त्रियों का दिन के समय का पहनावा बीच में पर्दा तोड़ा है, तो वे अवश्य पर्दा-विरोधी कोई लेख तो स्त्रियों के लिए देंगी ही। वे इसी आशा पर उनके बँगले पर पहुँचे, पर देवी जी तो नहीं मिलीं—उनके पति महाशय मिले। उन्होंने उन्हें नमस्कार किया, बैठे और अपना मतलब कह सुनाया। छूटते ही वे बोल उठे—'नहीं, नहीं! हम तो इसके पत्र में ही नहीं हैं। हम तो न लेख दे सकते हैं, न फ़ोटो।' बहुत-कुछ समझाया गया, पर वे अपनी ज़िद्द पर डटे ही रहे और प्रतिनिधि महाशय को निराश लौटना पड़ा !



एक बार एक साधु-महिला मारवाड़ी-स्त्रियों के बीच मोटर में बैठी देखने में आई। 'चाँद' के प्रतिनिधि ने समझा, कोई सुधारक देवी हैं। दूसरे दिन वे उन्हें अकेली मिलीं और उनसे 'चाँद' के एक दूसरे प्रतिनिधि ने एक लेख की प्रार्थना की। बातचीत चली, और अन्त में उन्होंने कहा—हम वास्तव में ऐसे पढ़े-लिखे नहीं, इसी आडम्बर द्वारा हमें भोजन आदि इन लोगों से मिल जाता है, बस।



कलकत्ते में मारवाड़ियों की उच्च अट्टालिकाओं का बाहरी दृश्य

[कलकत्ते में प्रायः ऐसे ही मकान होते हैं]

यह दशा बड़े नामों की है। विड़ला-बन्धु और खेतान-बन्धु ये दो परिवार मारवाड़ी-समाज में ऐसे हैं, जिन पर मारवाड़ी-समाज गर्व कर सकता है और जो बराबर उच्च पथ की ओर अग्रसर हैं।

मारवाड़ी-समाज और इसके सुधारकों के बीच एक कथा अच्छी तरह घटती है। चार अन्धे जा रहे थे। रास्ते में उधर से हाथी आ गया। लोगों ने कहा, हट जाओ—

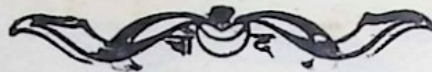
हाथी आ रहा है। अन्धों ने प्रार्थना की कि हमें हाथी दिखा दो। हमने कभी नहीं देखा। आखिर हाथी बैगया गया और चारों को बारी-बारी से हाथी के पास ले जाया गया। पहले ने तो सँड़ टटोली, दूसरे ने पेट, तीसरे ने कान और चौथे ने टाँग। चारों टटोल कर सन्तुष्ट हुए कि हमने आज हाथी देख लिया। अब उनमें विवाद चला। सँड़ वाले ने कहा—हाथी तो लम्बा-लम्बा पतला-पतला होता है। ऊपर से मोटा और नीचे से पतला। दूसरा बोला—हाथी तो चबूतरे सा होता है। तीसरा बोला—हाथी तो पतला-पतला चौड़ा होता है। चौथा बोला—हाथी तो मकान के खम्भे-जैसा होता है। इस प्रकार उन चारों में विवाद छिड़ गया। जिसने जो अटकल लगाई वही उसने कहा। यद्यपि चारों का कहना ठीक था। इसी प्रकार मारवाड़ी-समाज की दशा है। सुधारक लोग मत-भेद लेकर भगड़ते हैं और अपने-अपने लक्ष्य से काम भी करते हैं। पर वास्तव में वे सब ठीक हैं और एक ही वस्तु की भिन्न-भिन्न रास्तों से उन्नति कर रहे हैं। पर आपस की दूरी से उनके उत्साह फीके पड़ जाते हैं। हमारी दृष्टि में कई युवा ऐसे हैं, जो एकदम क्रान्तियुक्त सुधार मचा सकते हैं, पर जाति की रूढ़ि का उन्हें डर है और वे खुल्लमखुल्ला सच्चा सुधार नहीं कर पाते। सामाजिक सुधार के साथ-साथ एक दल ऐसा भी होना चाहिए जो घरों में घुस-घुस कर भीतरी सुधार करे। जब तक घर साफ न हो, सुह-ल्ला कैसे साफ कहलाएगा। इसलिए मारवाड़ी-नव-युवकों से हमारी प्रार्थना है कि वे अपने-अपने घरों में और फिर अपने पड़ोस की भीतरी सफाई में लग जायें। स्त्रियों को बतलाना चाहिए कि वे अपना समय कैसे बिताएँ। फ़ालतू समय में वे किताबें ले बैठती हैं। तोता-मैना का क्रिस्ता, हातिमताई, बैरागिन आदि सारहीन गन्दी पुस्तकें उनके घरों में रहती हैं और उन्हीं को उठा कर वे पढ़ने लगती हैं। एक बार एक स्त्री को हमने तोता-मैना का क्रिस्ता पढ़ते देखा तो हमें दुःख हुआ। हमने वह पुस्तक ले ली और सत्यार्थ-प्रकाश पढ़ने को दी। चौथे दिन हम उनके घर गए तो देवर महाशय हमसे लाल-पीले होने लगे और बोले—'तुम यह सत्यार्थ-प्रकाश क्यों दे गए, इस पुस्तक को तो हम लोग घर में आने भी नहीं देते? तुम क्या हमें बिगाड़ोगे?' हम स्तम्भित हुए और अपनी सत्यार्थ-प्रकाश लेकर लौट आए !!! कुछ दिन पीछे वे

महाशय फिर मिले। हमने उन्हें समझाया कि—‘देखो तोता-मैना का किस्सा पढ़ने योग्य पुस्तक नहीं है। अच्छी-अच्छी उपदेशपूर्ण पुस्तकें पढ़ो तो कुछ सीखो भी। उनकी रूचि हमने धर्म-ग्रन्थ पढ़ने की देखी थी तो हम सत्यार्थ-प्रकाश दे आए। पर तुमने तो उस पुस्तक को बहुत ही बुरी समझ लिया। ऐसा तो नहीं चाहिए।’ इस पर वे बोले—‘साहब! सो तो ठीक, पर उस पुस्तक की तो आपन लोगों में चाल ही नहीं। फिर हम कैसे उसे देते?’ मारवाड़ी-युवको! हम तुमसे प्रार्थना करेंगे कि तुम सबसे प्रथम यही करो कि गन्दी पुस्तकों को हटा कर धार्मिक पुस्तकों की चाल प्रारम्भ कर दो। बहुत सी स्त्रियाँ ऐसी मिलेंगी, जो पढ़ना-लिखना और उच्च जीवन बिताने की इच्छुक हैं, पर समाज उन्हें उभरने नहीं देता और लाचार होकर उन्हें अनायास ही ऐसे साधन मिल जाते हैं, जिनसे वे कुरीतियों की ओर झुक जाती हैं। इसके उदाहरण के लिए हम एक बहिन की सच्ची आत्म-कथा वर्णन करते हैं :—

‘मैं बीकानेर की रहने वाली हूँ। सात वर्ष की अवस्था में मेरा विवाह हुआ था। मेरे पति मुझे साथ लेकर व्यापार करने की गरज से कलकत्ते आए। एक-दो वर्ष में ही उनकी दूकान चल निकली और हम आनन्दपूर्वक रहने लगे। सब सुख तो धीरे-धीरे मिलने लगा, पर पति का सच्चा प्यार घटने लगा। पीछे पता चला कि वे बाज़ारू औरतों से शौक रखने लगे हैं। एक बार उन्होंने मेरे चिढ़ाने के लिए नया ढङ्ग किया। मुझे लेकर पहाड़ पर गए। वहाँ उनकी भेजी हुई एक वेश्या पहले से ही ठहरी हुई थी। तीन महीने तक हम वहाँ रहे और इस बीच मैं उन्होंने उसके साथ मेरे ही सम्मुख किया। मेरे रिश्ते में एक बहिन थी। मुझसे भी अधिक सुन्दर और चञ्चल। कलकत्ता लौटने पर मेरे पति ने मुझसे अनुरोध किया कि अपनी बहिन को मैं अपने पास ही बुला लूँ। बेचारी वहाँ अकेली तकलीफ़ में रहती होगी। अभी उसका ब्याह नहीं हुआ था। मैंने उसे बुला लिया और हम दोनों बहिनें साथ-साथ रहने लगीं। मेरे पति ने उसकी रूप-राशि देख कर उस पर जाल फेंकने शुरू कर दिए और एक महीने के अन्दर ही उनका प्रयास सफल भी हो गया। पहले छिपे-छिपे और फिर मेरी जानकारी में ही उन दोनों का पापाचार चल निकला।

मुझे ठेस लगी, बहिन को टोका भी, पर कलकत्ते में आकर तो उसकी चञ्चल और शौकीन प्रवृत्तियाँ जाग उठी थीं, वह न मानी और न मानी। एक दिन रोते-रोते मैंने पति महाशय से प्रार्थना की कि तुम उसे छोड़ दो और मुझे ही प्यार करो। मैं तुम्हारी विवाहिता पत्नी हूँ। पर उन्होंने न सुनी। आखिर एक दिन दुखी होकर मैंने उसी के सामने क्रसम खाई कि जाओ आज से मुझे तुम्हारी ही क्रसम है जो तुमसे ज़रा सा स्पर्श तक भी करूँ। मेरी जगह मेरी बहिन तुम्हारी स्त्री हुई, और मैं नौकरानी की तरह तुम दोनों की सेवा करूँगी।’ ऐसी प्रतिज्ञा करके मैं एक नर्स के पास गई और अपनी बच्चेदानी निकलवा डाली !!! कि कहीं इसका गर्भ मुझे न रह जाय !!!

‘अन्त में अधिक विषय-वासना का फल मेरे पति को मिला—वे रोगी हुए और कुछ दिन रोगी रह कर मर गए। उनके मरने पर मैंने तो सन्तोष किया, पर मेरी बहिन २-४ दिन बाद ही विचलित हो उठी। उसे उनके मरने की चिन्ता न थी, वह तो इस सोच में थी कि अब मैं किसके साथ.....!!! उस बाड़ी में २०-२५ परिवार रहते थे। बगल के कमरे में एक अंधेड़ मारवाड़ी रहता था। उसकी नज़र, पता नहीं, कब से मेरी बहिन पर थी। यह सुअवसर देख कर उसने मेरी बहिन के पास नज़रें भेजनी शुरू कीं और दूसरे दिन ही उसकी इच्छा पूरी हो गई। कुछ दिन तो यह चला, पर वह बृद्ध था—मेरी बहिन सन्तुष्ट न हुई। अब उसने और किसी को ढूँढ़ना शुरू किया। १५-२० दिन से एक जवान..... आकर उसी बाड़ी में रहने लगा था—मेरी बहिन ने उस पर आशा लगा दी और अपनी ही ओर से उससे प्रार्थना की। मनचले को मनचाही चीज़ मिली—तुरन्त ही दोनों में पापाचार चला। उस के पास रुपया नहीं था—रूप और जवानी थी। पर मेरी बहिन ने रुपए की चिन्ता नहीं की। वह कभी-कभी उस वृद्ध मारवाड़ी से भी मिलती रहती थी और वह मारवाड़ी उसे प्रसन्न रखने के लिए खूब रुपया देता था। इसी रुपए से वह अपना और का खर्च चलाती थी !! आखिर एक दिन उस वृद्ध को पता चल गया। कुछ नाराज़ी हुई, पर सिर्फ़ कभी-कभी देख लेने भर की इच्छा प्रकट करके उसने उसकी २०० रुपए महीने की पेन्शन बाँध दी। अब क्या था ! २०० घर बैठे आने लगे और वह युवा जोड़ी सुख-



पूर्व दिन बिताते लगी। एक साल बाद उस.....का काम चल निकला। उसने दलाली शुरू की थी। रूप और धन दोनों चीजें मेरी बहिन को मिलीं! वह सब कुछ भूल गई। मुझे भी भूल गई। और एक दिन रात को उसके साथ चुपचाप कहीं भाग गई! सवेरे ही उसे मैंने बिस्तर पर न पाया। खोज हुई। नौकरों में—पड़ोस में चर्चा चल, पर मैंने कह दिया कि वह देश गई है। मैंने चुपचाप खोज शुरू कर दी। ५ वें दिन उसकी चिट्ठी आई कि 'हम यहाँ कृशजपूर्वक पहुँच गए हैं। दो-चार दिन यहाँ रह कर वापस कलकत्ते आएँगे और अपना अलग मकान लेकर रहेंगे। तुम कोई चिन्ता मत करना। अब मैं इनको नहीं छोड़ सकती.....।'।

“पन्द्रह दिन बाद वे लोग आए और अपना अलग मकान लेकर रहने लगे। अब भी मेरी बहिन उम्मी के साथ रहती है। कभी-कभी आकर मुझसे मिल जाती है। उसकी सम्मति है कि मैं भी किसी के साथ बैठ जाऊँ।”

यहाँ हम पाठकों को बता देना चाहते हैं कि उस.....युवक की पहली स्त्री अभी तक उसके घर पर है, पर वह उसे छोड़ कर उसके साथ कलकत्ते में रहता है।

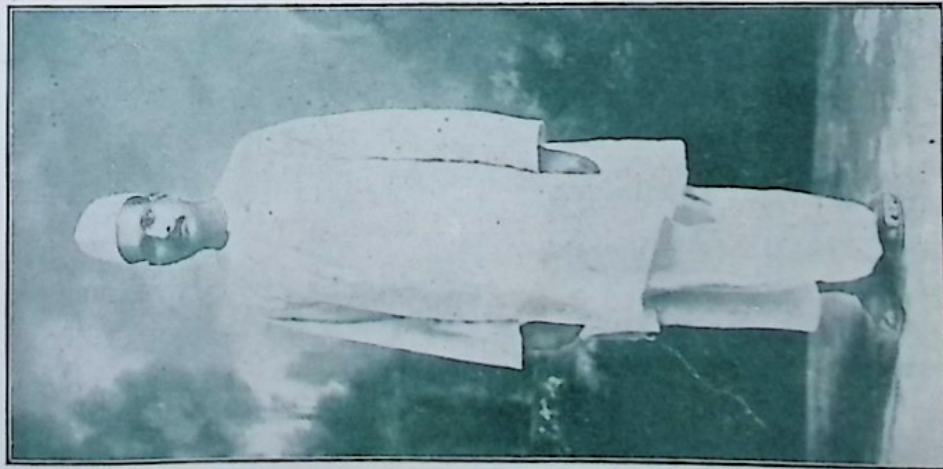
इसके बाद उक्त बहिन ने अपने वैधव्य की बात सुनाई—“वैधवा होने पर मैं कुछ चिन्ता में पड़ी। मेरी सास के सिवा मेरा और कोई खास सम्बन्धी न था। सास थी देश में। जब मेरी बहिन भी मुझसे अलग हो गई तो मुझे बहुत कष्ट हुआ। पर किसी प्रकार संभल कर मैंने दूकान का काम चालू रखा, जिससे आमदनी होती रहे और रोटी के लाले न पड़ें। मेरी सास आई अंर ११-२० दिन रह कर फिर देश चली गई। अब मैं अकेला ही रहती थी। मेरे यहाँ एक पुराना नौकर था। उसी को मैं अपने यहाँ रात में सुलाती थी। वह अलग कमरे में सोता था। इससे मुझे कोई डर न था। कई बार ऐसा हुआ कि कोई पापी रात को बारह-एक बजे आकर मेरे किवाड़ खटखटाता। मैं उससे कई सवाल करती। वह अपने को तार का हरकारा अथवा और कोई बताता, जिससे मैं तुरन्त किवाड़ खोल दूँ। पर फिर मैं नौकर को चिन्ता-चिन्ता कर जगा देती और वह पापी भाग जाता। इस प्रकार रहते-रहते मेरा विश्वास उस नौकर पर बहुत जम गया था। वही मेरा आश्रय भी तो था! मैं उसके भरोसे अपने कमरे के

किवाड़ बन्द किए ही कभी-कभी सो जाती थी। एक दिन ऐसा हुआ कि मैं सो रही थी। एक बजा होगा। किवाड़ यों ही भिड़े थे कि वह नौकर कुछ नशा किए मेरे कमरे में आ गया। खड़खड़ से मेरी नींद उचट गई और मैं सब समझ गई। वह मेरे बिस्तर के पास आ खड़ा हुआ। कुछ देर खड़ा रह कर धीरे-धीरे मेरी टाँगों पर हाथ फेरना शुरू किया। मुझे अच्छा लगा। मैं न बोली। फिर उसने मेरे शरीर पर हाथ फेरा—जाकट के बटन खोले। अन्त में मैं डूबी..... वर्षों बाद यह सुख मिला था—मैं मना न कर सकी। मैंने सहयोग दिया और... ..!!!

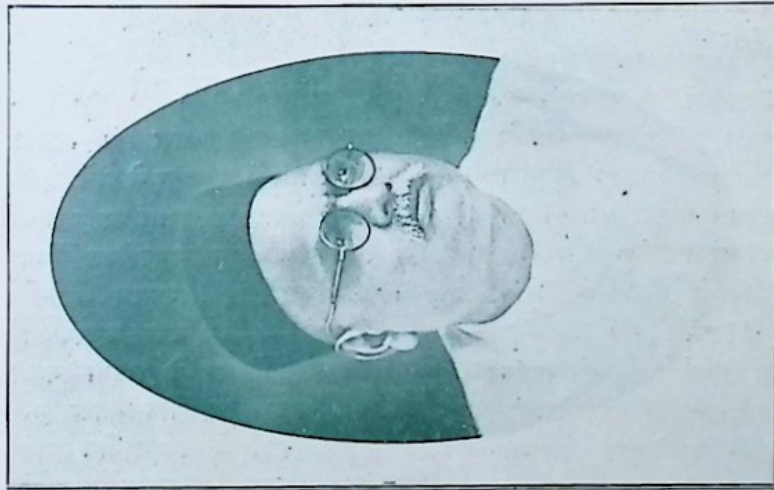
“फिर तो उम्रें बढ़ चलीं—नियम टूट ही चुका था, जब कभी इच्छा होती, निकट के सम्बन्धी खोज-खबर लेने आते ही थे—उनमें कुछ युवा और सुन्दर थे—उन्हीं के साथ पाप-लीला चल निकली। पर मैंने अगले दिन ही उस नौकर का निराज दिया। उसको नीच जाति का समझ कर मुझे घृणा हो गई थी। मैंने सोचा, अगर पाप करना ही होगा तो अच्छे से अच्छे आदमों मेरे पास आने हैं—उन्हीं में से किसी के साथ कर लूंगी। कई दिन बाद वह नौकर मेरे पास फिर नौकरी करने आया, पर मैंने नहीं रखा।

“दो-तीन बार मुझे देश जाने का अवसर मिला। मैं अकेली आती-जाती थी। अकस्मात् दिल्ली के पास स्टेशन पर एक टिकट-चेकर ने मुझे एक बार देख लिया और उसे पता भी चल गया कि मैं वैधवा हूँ। कलकत्ते रहती हूँ। मेरे रूप पर वह गिरा और उसने कई चिट्ठी मेरे पास भेजी कि कम से कम एक बार तो मेरा मेहमान बना। और जब कभी देश आओ तो मुझे खबर करना। मैं सदा तुम्हारे स्वागत को तैयार हूँ।”

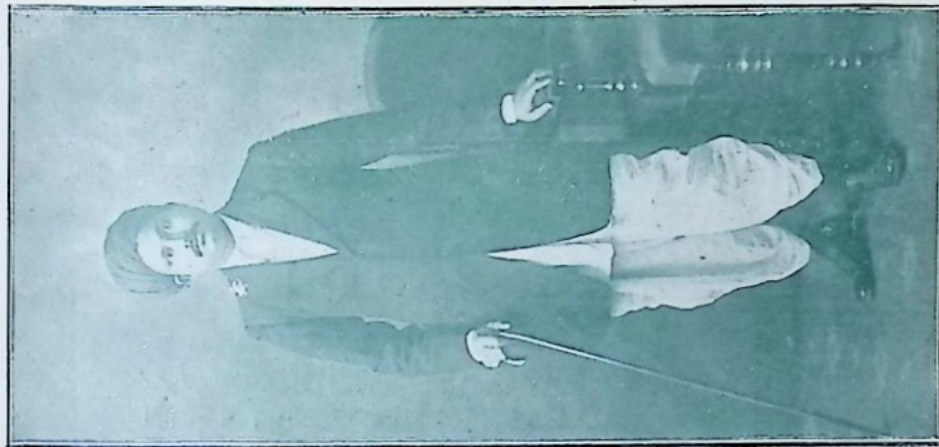
उसके दो-चार पत्र इस बहिन ने हमें भी दिखाए थे। फूलदार छपे हुए लेटर-पेपर थे। सुगन्ध में बसे हुए और बड़ी ही सुन्दर लिपि में लिखे हुए। इनमें सम्बोधन बहुत ही अश्लील थे। हमने बहिन से कहा कि यह पत्र तो बहुत ही गन्दे हैं। इन्हें फाड़ फेंकना चाहिए। उसने मुस्करा कर उत्तर दिया—“..... जी! कभी मन मचलना है तो उठा कर पत्र पढ़ लेती हूँ! मुझे इतना तो सन्तोष है कि कोई व्यक्ति मुझे..... सम्बोधन करके पत्र तो लिखता है।”



अछूतों के लिए, अपने मन्दिर का द्वार उन्मुक्त
करने वाले प्रसिद्ध सुधारक
सेठ जमनालाल जी वज़ाज



कलकत्ता के वयोवृद्ध सुधारक
श्री० पद्मराज जी जैन



कलकत्ता के प्रसिद्ध सुधारक तथा विगत
माहेश्वरी महासभा के स्वागताध्यक्ष
सेठ रामकृष्ण जी मोहता

प्रेम-प्रमोद

[लेखक—श्री० प्रेमचन्द जी, बी० ए०]

यह बात बड़े-बड़े विद्वानों और अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने एक स्वर से स्वीकार कर ली है कि श्री० प्रेमचन्द जी की सर्वोत्कृष्ट सामाजिक रचनाएँ 'चाँद' में ही प्रकाशित हुई हैं। प्रेमचन्द जी का हिन्दी-साहित्य में क्या स्थान है, सो हमें बतलाना न होगा। आपकी रचनाएँ बड़े-बड़े विद्वान् तक चाव और आदर से पढ़ने हैं। हिन्दी-संसार में मनोविज्ञान का जितना अध्ययन प्रेमचन्द जी ने किया है, उतना किसी ने नहीं। यही कारण है कि आपकी कहानियाँ और उपन्यासों को पढ़ने से जादू का सा असर होता है; बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष—सभी आपकी रचनाओं को बड़े प्रेम से पढ़ते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में प्रेमचन्द जी की उन सभी कहानियों का संग्रह किया गया है, जो 'चाँद' में पिछले तीन-चार वर्षों में प्रकाशित हुई हैं! इसमें कुछ नई कहानियाँ भी जोड़ दी गई हैं, जिनसे पुस्तक का महत्व और भी बढ़ गया है। प्रकाशित कहानियों का भी फिर से सम्पादन किया गया है। प्रत्येक घर में इस पुस्तक की एक-एक प्रति होनी चाहिए। जब कभी कार्य की अधिकता से जी ऊब जाय, एक कहानी पढ़ लीजिए, सारी थकान दूर हो जायगी और तबीयत एक बार फड़क उठेगी? कहानियाँ चाहे दस वर्ष बाद पढ़िए, आपको उनमें वही मज़ा मिलेगा। छपाई-सफ़ाई सुन्दर, बढ़िया काग़ज़ पर छपी तथा समस्त कपड़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) ६०; पर स्थायी ग्राहकों से १॥३० मात्र !

निर्मलता

[ले० श्री० प्रेमचन्द जी, बी० ए०]

इस मौलिक उपन्यास में लब्धप्रतिष्ठ लेखक ने समाज में बहुलता से होने वाले वृद्ध-विवाहों के भयङ्कर परिणामों का एक वीभत्स एवं रोमाञ्चकारी दृश्य समुपस्थित किया है। जीर्ण-काय वृद्ध अपनी उन्मत्त काम-पिपासा के वशीभूत होकर किस प्रकार प्रचुर धन व्यय करते हैं; किस प्रकार वे अपनी वामाङ्गना पौडशी नवयुवती का जीवन नाश करते हैं; किस प्रकार गृहस्थी के परम पुनीत प्राङ्गण में रौरव-काण्ड प्रारम्भ हो जाता है, और किस प्रकार ये वृद्ध अपने साथ ही साथ दूसरों को लेकर डूब मरते हैं; किस प्रकार उद्भ्रान्ति की प्रमत्त-सुखद कल्पना में उनका अवशेष ध्वंस हो जाता है—यह सब इस उपन्यास में बड़े मार्मिक ढङ्ग से अङ्कित किया गया है। सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥); स्थायी ग्राहकों से १॥३० मात्र !

व्यवस्थापिका

'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक,

इलाहाबाद

हमें इस शोचनीय दशा पर दुःख हुआ। आगे उसने फिर कहना शुरू किया—“यहाँ (कलकत्ते में) कई व्यक्ति मेरे पीछे हैं। सौ-सौ रुपए सिर्फ मुँह दिखाई के पेशगी भेजते हैं। मैं अभी निश्चय नहीं कर पाई हूँ कि मुझे वह भी स्वीकृत करना चाहिए अथवा नहीं। देखो, सामने वाले लोग पुर्जे लिख-लिख कर, गोली बना कर, पान के सहक-

मैंने मुस्करा दिया और ८ दिन में ही उसे देश भेज दिया। अब मैं सोच रही हूँ कि क्या करूँ? पर मेरी आन्तरिक इच्छा तो यह है कि कोई सुन्दर युवक मेरा विवाह करके मुझे यहाँ से ले जाय और घँघर आदि का सम्भार छुड़ा कर, मुझे खासी मेम बना कर रखे। मेरी रुचि पढ़ने की भी है। रोटी बनाने में मुझे आलस्य है,



विलास-नगरी कलकत्ता का प्रसिद्ध रॉयल एक्सचेञ्ज प्लेस

[जहाँ दिन-दहाड़े करोड़ों का 'मट्टा' और 'फाटका' (जिसे यदि शिष्ट-भाषा में 'बुझा' कहा जाय तो अनुचित न होगा) होता है !!]

दार बीड़े ऐसे तान कर यहाँ फँकते हैं कि मेरे पास ही आकर पड़ते हैं। पर उन पर भी मैं अभी विचार कर रही हूँ। अभी हाल में ही मेरी सास यहाँ आई थी। कहने लगी—'बेटी, अब तुम सिर के बाल कटवा डालो। यह शृङ्गार करना छोड़ो और भगवान् की याद में जीवन बिताओ। मेरे साथ देश को चलो।' उसकी बात सुन कर

पर दो व्यक्तियों का भोजन तो खुशी से बना लिया करूँगी।"

यह बहिन मारवाड़ी-ब्राह्मण है। उसका हठ है कि अपने मन-पसन्द सुन्दर युवक से ब्याह करे। पर उसे देख कर हम कह सकते हैं कि कोई सुन्दर युवक उसमें

(शेष मटर २२१ पृष्ठ के पहले काष्ठम में देखिए)



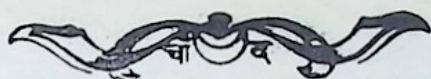
अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आखिर आप न माने—मारवाड़ी-अङ्क निकालने की ठान ही ली। मुझे भय है कि कहीं मारवाड़ी लोग एका करके आपके पत्र का बॉयकाट न कर दें। यदि ऐसा हुआ तो बहुत बुरा होगा। खामखाह 'आ बैल मुझे मार' वाली कहावत क्यों चरितार्थ करते हो? यद्यपि यह भी मैं जानता हूँ कि मारवाड़ी भाई बड़े भोले हैं। थोड़ी देर के लिए प्रवाहित धारा में बह जाते हैं, परन्तु फिर जब गोविन्द-भवन की तरह कोई घटना सामने आती है तो पछताते हैं और कहते हैं—'चाँद बड़ो अच्छो पत्र है, खूब ठीक बातें लिखे है।' इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि इन लोगों का बॉयकाट ही क्या—दस-पाँच दिन गपड़-शपड़ करके बैठ रहेंगे। सत्यता का बॉयकाट कितने दिन चल सकता है? उन्हें यह उत्सुकता भी तो पैदा होगी कि देखें 'चाँद' ने हम लोगों के सम्बन्ध में क्या लिखा है। ऊँहूँ, यह सब ढकोसला है, यह बॉयकाट नहीं चलेगा। ऊपर से चाहे मारवाड़ी भाई बॉयकाट का ढोल पीटें, पर जब उनके पेट में उत्सुकता प्रसव-पीड़ा की तरह ज़ोर बाँधेगी तो चुरा-छिपा कर, उसी प्रकार चुरा-छिपा कर जिस प्रकार भले आदमी शराब पिया करते हैं, 'चाँद' का अङ्क खरीदेंगे, पढ़ेंगे, झुल्लाएँगे—दाँत किटकिटाएँगे और फिर पढ़ेंगे! उत्सुकता बड़ी बुरी वस्तु है। विशेषतः यह उत्सुकता कि हमारी

बाबत क्या कहा गया है! भगवान् इस उत्सुकता से मारवाड़ी भाइयों की रक्षा करे। यार चाहे तुम मानो या न मानो, पर मारवाड़ी-जाति बड़ी उन्नत जाति है। किसी भ्रष्ट से किसी बात में कम नहीं है। उनकी ओर से मैं संसार भर को चुनौती देता हूँ कि कोई सामने आ जाय और उनसे मुकाबला कर ले! सबसे पहले व्यापार ही को लीजिए। मारवाड़ी भाई माँ के पेट में ही अद्वे, पौने, ड्योढ़े, सवाए सब सीख लेते हैं। पढ़े-लिखे कुछ नहीं, बातचीत करने का सलीका नहीं, मगर लाखों का व्यापार करते हैं। बेवकूफी से लोगों को हानि होती है, परन्तु मारवाड़ी भाई बेवकूफी से भी लाभ उठाते हैं। लोग इन्हें बेवकूफ कहा करते हैं, पर ये अपना मतलब निकाल ही लेते हैं। कहिए, संसार की किसी और जाति में भी यह गुण है?

यात्री भी बड़े विकट होते हैं। लोटिया-डोर लेकर रंगते और माँगते-खाते हुए हज़ारों कोस चले जाते हैं। संसार के किसी भी देश में जाइए—मारवाड़ी भाई वहाँ टइयाँ-से मौजूद मिलेंगे। लोग कहते हैं कि यूरोपियन लोग बड़े यात्रा-साहसी होते हैं, परन्तु उनका यात्रा-साहस इतना प्रशंसा के योग्य नहीं। बन्दूक और पिस्तौल बाँध कर तो एक व्यक्ति कहीं भी जा सकता है। परन्तु मारवाड़ियों को देखिए—केवल अपनी पगिया के बल पर, न जाने कहाँ-कहाँ पहुँच जाते हैं। पिस्तौल और बन्दूक की ऐसी-तैसी! जहाँ किसी ने कुछ आँखें



बदलीं, चट से पगिया पैरों पर आ गई ! उधर उसकी निगाह पगिया पर गई, इधर मारवाड़ी भाई ने उल्लू की लकड़ी उसके सिर पर फेर दी—बस फिर वह आँखें बदलना भूल गया और लगा मारवाड़ी भाई की हाँ में हाँ मिलाने ।

जाति-वत्सलता भी इनमें बहुत है । किसी एक स्थान पर एक मारवाड़ी पहुँच गया तो बस फिर थोड़े ही दिनों में वहाँ मारवाड़ी ही मारवाड़ी दिखाई पड़ेंगे । जैसे सिर में एक भी जूँ कहीं से आ गई, बस फिर थोड़े दिनों में जुँ ही जुँ हो जाती है, उसी प्रकार मारवाड़ी भाई भी बढ़ते हैं—भगवान् जाने कहाँ से आ जाते हैं । अक्ल हैरान हो जाती है । और जातियों में एक को देख कर दूसरा जला जाता है ; परन्तु मारवाड़ी भाइयों में यह बात नहीं । जहाँ कोई मारवाड़ी आया, बस सबने चन्दा करके उसे दूकान खुलवा दी—फिर क्या है, थोड़े ही दिन में वह भी 'सेठ जी' कहलाने लगे । अन्य किसी जाति में इतनी जल्दी कदाचित् ही कोई सेठ जी बन सकता होगा । ईसामसीह की बाबत यह कहा जाता है कि जहाँ वह किसी से यह कह देते थे कि तू ऐसा हो जा, बस वह वैसा ही हो जाता था । यह गुण आजकल मारवाड़ियों में प्रत्यक्ष देख लीजिए । जहाँ उन्होंने किसी लँगोटीबाज़ मारवाड़ी को अपने मुखारविन्द से सेठ कह दिया, बस वह सेठ हो गया—कमाल है !

सेठ लोग धार्मिक भी बड़े होते हैं—यदि उन्हें नित्य एक नया देवता मिलता रहे, तब भी देवताओं का पिण्ड न छोड़ें । यदि मिट्टी-पत्थर के देवता न मिलें, तो आदमी ही को देवता बना कर अपनी पिपासा शान्त करें । शालिग्राम की बटिया और तुलसी-वृक्ष के विवाह में हज़ारों रुपए फूँक देते हैं । धार्मिकता की पराकाष्ठा है । हालाँकि थोड़ी बेवकूफी के साथ है—यह मुझे मजबूरन मानना पड़ रहा है । दानशील भी बड़े होते हैं । इसके सम्बन्ध में अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं । उनकी दानशीलता के झण्डे गड़े हुए हैं—अखाड़े खुदे हुए हैं, मन्दिर बने हुए हैं, धर्मशालाएँ बनी हुई हैं—और न जाने क्या-क्या बना हुआ है ।

मितव्ययी इतने हैं कि एक पैसे की विधि न मिले तो उसके मिलाने में चार पैसे का तेल फूँक दें ! जब विधि मिल जाती है तो यह सोच कर प्रसन्न होते हैं कि

चलो चार पैसे का तेल जला उसमें से एक पैसा वसूल हो गया—तीन ही पैसे की हानि हुई । क्या कही है ! एक पैसे के आलू में दो सेर पानी और पाँच भर मिर्चें छोड़ दीं, बस घर भर के लिए साग तैयार है । वह भी खाए नहीं चुकता—क्यों ? बहुधा मिर्च अधिक हो जाती है । किसी ने कभी कहा कि—“सेठ जी, मलाई खाया करो ।” तो बोले—“मलाई सौहरी तो कच्चा करे है ।” यदि इस पर कोई बोला—“तो दूध पिया करो ।” तो उत्तर मिला—“दूध सौहरा दस्त लावे है ।” चलिए छुट्टी हुई—एक कच्चा करती है, दूसरा दस्त लाता है—दोनों से फुरसत मिल गई । अपने राम की यह सलाह है कि मलाई खाने के पश्चात् कास्टर ऑयल पी लिया करें और दूध पीने के पश्चात् माशा भर अफीम खा लिया करें तो हिसाब-किताब बराबर रहे । लेकिन मुझ कमबख्त की सलाह मारवाड़ी भाई मानने क्यों लगे ; क्योंकि कास्टर ऑयल तथा अफीम के लिए अधिक खर्च कहाँ से आएगा ?

मितव्ययी आदमी अमितव्ययी कभी नहीं हो सकता ; परन्तु यह विरोधाभास भी हमारे मारवाड़ी भाइयों में मौजूद है । एक तरफ़ तो यह किफायत कि पेट में खा न सकें, शरीर पर पहन न सकें, दूसरी तरफ़ इतनी फ़िज़ूल-खर्ची कि व्याह-शादी में, मृत्यु में हज़ारों रुपए पानी की तरह बहा देते हैं और संच मानिएगा बिलकुल व्यर्थ !!

ईमानदार इतने होते हैं कि अपना एक पैसा भी नहीं छोड़ते और बेईमानी करते हैं तो डक़े की चोट—दिवाला निकाल कर ।

गमखोरी तो इस जाति से हार गई । आप मुँह पर गालियाँ दिए जाइए, परन्तु मारवाड़ी भाई हँसते ही रहेंगे । गुस्सा तो इन्हें प्राप्त ही नहीं और कभी-कभी आ भी जाता है तो अपने ही ऊपर अथवा अपने से निर्वल पर । गुस्सा है भी बुरी चीज़ ! गुस्से में अधिकतर अपनी ही हानि होती है । मारवाड़ी भाई लाभ को छोड़ कर हानि के पास नहीं फटकते । यही कारण है कि वे गुस्से को अपने से दस क़दम की दूरी पर रखते हैं । यदि किसी ने दो-चार खरी-खोटी सुना दी तो उससे क्या होता है, परन्तु यदि उन्होंने किसी को कुछ कह दिया और उसे क्रोध आ गया तो वह ज़रा ख़तरनाक हो जाता है ! इस कारण मारवाड़ी भाई हाथ-पैर बचाए रहते हैं । इनकी खियाँ



कैसी होती है—बस कुछ न पूछिए। 'अबला' शब्द यदि किसी पर लागू नहीं होता तो मारवाड़ी स्त्रियों पर ! वे इतनी सबला होती हैं कि पुरुषों की उनके सामने नानी मरती रहती है। क्या मजाल जो पुरुष उनके किसी काम में हस्तक्षेप तो कर लें। सेठानी जी का जितना हुकम चलता है, उसके देखते हुए सेठ जी का दशांश भी नहीं चलता। घर में सेठ जी आते हैं तो दबी बिल्ली बन कर। सेठानी जी के कहार की जो शान रहती है वह सेठ जी के बाप की भी नहीं होती; क्योंकि कहार सेठानी जी का परम आज्ञाकारी सेवक होता है—कभी किसी बात से इन्कार नहीं करता। इधर सेठानी जी की आज्ञा पालन करने में सेठ जी की रूढ़ फ़ना होती है। क्योंकि सेठ जी को दूकान सम्बन्धी कामों को छोड़ कर, सेठानी जी के शौक सम्बन्धी कामों में बिलकुल दिल-चस्पी नहीं होती। इसलिए सेठ जी भी अपना भार कहार के सिर पर डाल कर निश्चिन्त हो जाते हैं ! इसी कारण बहुत सी बेगारों से उनके प्राण बचे रहते हैं। सेठानी जी ठहराई गृह-लक्ष्मी। अतएव सेठ जी दूर ही से उन पर पत्र-पुष्प चढ़ाते रहते हैं—पास बहुत कम फटकते हैं, उसमें ख़तरा जो है। ख़तरे का काम सेठ जी नहीं करते। वह सब कहार राम के लिए छोड़ दिया जाता है।

सेठानी जी भी प्रत्येक समय अख-शखों से सुसज्जित रहती हैं। मोटे-मोटे कड़े, कङ्कन, चूड़ियाँ और न जाने क्या अल्लम-गल्लम पहने रहती हैं—यही उनके अख-शख हैं। यदि किसी भलेमानुस की खोपड़ी पर साधारणतया भी कलाई धर दें तो भेजा भ्रमा जाय। इस कारण सेठ जी और भी अलग रहते हैं ! सेठानी जी के अख-शखों का जितना बरक होता है, उतना बरक एक अभ्यस्त पल्लेदार ही उठा सकता है—मामूली आदमी का काम नहीं है। उतना बरक राममूर्ति व्यायाम के समय ही उठाते होंगे—प्रत्येक समय नहीं। फिर भला उन्हें अबला कहना उचित नहीं तो क्या है ? जिस समय मारवाड़िनें चलती हैं, उस समय यदि आँखें बन्द करके सुनिष्ट तो यही मालूम होगा कि क़ैदियों की टोली जा रही है। हालाँकि वे क़ैदी बिलकुल नहीं होतीं—वे बिना किसी की रोक-टोक या इजाज़त के स्वच्छन्द और स्वतन्त्र घूमा करती हैं !

स्त्रियों में पर्दा इतना है कि क्या मजाल जो आप उनका मुख देख लें—असम्भव है। हाँ, पेट शौक से देख लीजिए। उसके देखने के लिए कोई रोक-टोक नहीं है। पेट है भी ऐसा पापी कि यह किसी के वश का नहीं है। स्वयम् इसने संसार को वश में कर रक्खा है। तब बेचारी मारवाड़िनें भला उसे किम प्रकार अपने वश में रख सकती हैं। जब से पर्दे के विरुद्ध आन्दोलन उठा है, तब से मारवाड़िनों ने लहंगा पहनना कम कर दिया है, क्योंकि उसमें आवश्यकता से अधिक पर्दा रहता था। अब उन्होंने मज़मली किनारे की धोती पहनना आरम्भ किया है। इसमें सब तरह की सहूलियत है। न पूर्ण पर्दा ही है और न पूरी बेपर्दगी ही। बहुधा स्टेशनों के प्लेटफ़ॉर्मों पर स्नान करते समय वे इस बात का प्रयत्न करती हैं कि महीन धोती से जितना पर्दा हो सकता है, वह भी दूर हो जाय तो अच्छा। बहुत ज़्यादा पर्दा बुरा है, यह सभी मानते हैं। इसलिए मारवाड़िनों का यह उद्योग भी प्रशंसनीय ही समझा जाना चाहिए। हालाँकि कुछ लोग इस पर नाक-भौं चढ़ाते हैं, पर यह उनकी भूल है। मारवाड़ी पुरुष लोग बड़े समझदार हैं। वे पर्दे के कट्टर विरोधी हैं; इसीलिए तो वे अपनी स्त्रियों के इस सदुद्योग पर कभी चैं तक नहीं करते !

सम्पादक जी ! मारवाड़िनों का गाना कभी सुना है ? वाहवा ! क्या कहना है ! बस यही प्रतीत होता है कि वेद की ऋचाएँ गाई जा रही हैं। मामूली लियाक़त का आदमी तो उनका एक शब्द नहीं समझ सकता। कभी मौक़ा लगे तो अवश्य सुनिष्ठा, परन्तु जितना अधिक दूर से सुनिष्ठा उतने ही मज़े में रहिएगा।

सम्पादक जी, कहाँ तक कहूँ। मारवाड़ियों का गुण-गान करना मेरी लेखनी की सामर्थ्य के बाहर की बात है। यदि लेखनी सहस्र-जिह्वा होती तो कदाचित् कर सकती। परन्तु इतना मैं अवश्य कहूँगा, बार-बार कहूँगा—प्रमाण न होते हुए भी कहूँगा—हालाँकि ऊपर मैं बहुत से प्रमाण दे चुका हूँ—कि मारवाड़ी-जाति बड़ी उन्नत जाति है। आपको इस जाति में सब बातें मिलेंगी। संसार की कोई जाति इस जाति का मुक़ाबला नहीं कर सकती।

भवदीय,

विजयानन्द (दुबे जी)

मारवाड़ी-स्त्रियाँ

["एक मारवाड़ी"]



रवाड़ी-स्त्रियाँ तीन भागों में विभाजित की जा सकती हैं। एक व्यापारी-वर्ग की स्त्रियाँ, दूसरी शिल्पी मजदूरों और किसानों की स्त्रियाँ और तीसरी मुक्त-प्लोरों की स्त्रियाँ।

व्यापार वर्ग में अगरवाल, ओसवाल, दिगम्बर, जैनी और

माहेश्वरी आदि कई जाति की स्त्रियाँ हैं। इनमें अगरवाल और माहेश्वरी जाति में आचार-सम्बन्धी कोई भेद नहीं है। ओसवाल लोग श्वेताम्बर और स्थानक वासी जैन हैं और पदों का बड़ा ख्याल रखते हैं। क्योंकि ये लोग राजपूताने के राज्यों में मुलाज्जमत भी करते हैं और अच्छे-अच्छे ओहदों पर प्रतिष्ठित हैं, इसलिए पदों आदि के विषय में राजपूती आचार-व्यवहार को काम में लाते हैं। दिगम्बर जैन केवल व्यापारी हैं, पदों की कड़ाई इन लोगों में उतनी नहीं है, मगर व्रत, उपवास और भूखे रहने की प्रवृत्ति इन लोगों में बहुत है; हर तीसरे-चौथे दिन कोई न कोई व्रत, उपवास बना ही रहता है।

इन जातियों में बाल्यावस्था से ही बच्चा सोने-चाँदी के गहनों से लाद दिया जाता है। गले में कई प्रकार के कठले, पैरों में नेवरी, साँकला आदि सेर-आध सेर चाँदी, जैसी उमर हो, पहना दी जाती है। हाथों में भी कई गहने होते हैं। इस प्रकार बच्चे, बच्चियाँ चलने-फिरने और खुल कर खेलने-कूदने से मजबूर, प्रायः सुस्त, बद्ध-हजमी की शिकायत लिए हुए और व्याकुल देखे जाते हैं। माता-पिताओं में मूर्खता के संस्कार होने के कारण बीमारी में प्रायः भ्राड़ा-फूँकी, जन्तर-मन्तर, गबडा-तावीज से ही बहुत काम लिया जाता है। आखिरी बक्त में ही वैद्य, डॉक्टर ट्योले जाते हैं, इसलिए अधिकांश में बच्चे मर जाते हैं। जो अधिक सशक्त होते हैं, वे ही जीवित रहते हैं।

विवाह थोड़ी ही उम्र में हो जाता है, क्योंकि ये सब

व्यापारी-वर्ग के लोग धार्मिक मामले में बड़े भारी पुराण-पन्थी हैं। आठ से लेकर ग्यारह-बारह वर्ष तक की लड़कियों का व्याह इनमें हो जाता है! इससे वे लोग भी नहीं बचते जो अच्छे शिक्षित हैं। इनमें कितने ही वकील हैं, वे भी इसी बीमारी में मुन्तला हैं, उनके अन्दर भी यह साहस नहीं कि बच्चों को वयस्क हो जाने पर व्याहें। सुधारवादी अगरवाल-सभा के प्रधान और मन्त्री को भी छोटी ही लड़कियों का विवाह करते देखा जाता है। मेरे पड़ोस में एक वकील साहब रहते हैं, उन्होंने अपनी लड़की का व्याह दस वर्ष की आयु में और छोटे भाई का चौदह-पन्द्रह वर्ष की आयु में कर दिया था। लड़की का हाल तो मालूम नहीं, पर भाई आजकल कॉलेज में पढ़ता है, शकल पर बारह बज रहे हैं—पीला चेहरा, गाल अन्दर घुसे हुए, गालों की हड्डियाँ ऊँट के कोहान की तरह उभरी हुई हैं। एक दिन हमने पूछा—कहो कुँवर साहब, मिजाज कैसा है, कुछ तबीयत खराब है क्या? वे बोले— नहीं तो, बहुत अच्छा हूँ।

वात यह है कि राजपूताने में विवाह होते ही प्रसङ्ग शुरू हो जाता है—उसी रात से। उमर का कोई ख्याल नहीं, क्योंकि आप जानते ही हैं "मजहब में अक़ल को दखल नहीं।" विवाह-सम्बन्ध में राजपूतों की नक़ल की जाती है, उनके यहाँ यही रिवाज है। चतुर्थी-कर्म विवाह के पश्चात् तत्काल ही कन्या-पिता के घर पर ही किया जाता है। परन्तु राजपूतों में बच्चों का विवाह कदापि नहीं होता। पूर्ण समर्थ युवक-युवती का ही विवाह होता है। इसलिए उनके यहाँ यह रस्म हो तो उससे कुछ भी हानि नहीं, उसका औचित्य समझ में आता है, परन्तु इन व्यापारी-वर्ग के लोगों का तो यह काम समझ से बाहर ही मालूम होता है। बाल-विवाह जारी करने वाले आचार्यों ने इसके साथ ही एक द्विरा-गमन (गौने) की रस्म जारी की थी। उसका पालन यू० पी० की तरफ़ इस प्रकार होता है कि विवाह तो छोटी उमर में हो जाता है, परन्तु जब तक कन्या पूर्ण युवती न

हो जाय, तब तक गौना नहीं किया जाता और लड़की अपने पिता ही के घर पर बराबर रहती है। ऐसा होने से बाल-विवाह के दोष का कुछ परिहार अवश्य हो जाता है। परन्तु यहाँ राजपूताने में गौने की रस्म इस प्रकार उपयोग में नहीं आती, हाँ दहेज बराबर चलता है। इसका परिणाम यह होता है कि ब्रह्मचर्य और वीर्य की रुकावट से होने वाला लाभ इन लोगों के बच्चों को नहीं मिलता और हीन शरीर-सम्पत्ति लेकर ही ये संसार-यात्रा में प्रवृत्त हो जाते हैं !

‘व्यापारे वर्धते लक्ष्मीः’ यह अर्थ-शास्त्र का वाक्य अब भी उतना ही सत्य है, जितना प्राचीन काल में

था, व र न्
अब तो यह
अपने पूर्ण
तेजस्वी रूप
में चमकने
लगा है।
संसार के
धन का आधे
से बहुत
ज्यादा भाग
व्यापारियों
के पास है।
बाज़ी आधे
से बहुत
कम शिल्पी,
मजूरों और



शहरी गृहस्थ-स्त्रियों का पहिनावा

किसानों के पास ! मारवाड़ियों का व्यापारी-वर्ग भारत के सब वैश्यों से व्यापार-कला में अधिक कुशल, बड़ा होशियार और पूरा चाणाक्ष है, और तन, मन, धन से इस काम में जुता है। व्यापार का कोई फ़न इनसे छिपा हुआ नहीं। दूसरे देश के व्यापारियों से इनके सीधे सम्बन्ध हैं। नई ईजाद सबसे पहले इनके पास आती है और ये भरपूर फ़ायदा उसके व्यापार से उठाते हैं। यही कारण है कि ये सब व्यापारी बड़े धनी हैं। बङ्गाल, बिहार, यू० पी०, बम्बई, मद्रास, सी० पी० आसाम, ब्रह्मदेश, सिन्हापुर आदि के सब बड़े-बड़े व्यापारी शहर मारवाड़ी दुकानों और कोठियों से भरे हैं

और सम्पत्ति की खूब वृद्धि इन लोगों में हो रही है। सम्पत्ति की वृद्धि से ऐश-आराम और भोग-विलास का घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों सदा साथ रहते हैं। इसके अनुसार मारवाड़ी-व्यापारी धनी भी होकर, बहुत-कुछ ऐयाश हो गए हैं। रणडीबाज़ी इनमें बढ़ गई है और उससे होने वाले रोग आतशक, सूज़ाक की बीमारी इन लोगों में बहुत फैली है। कलकत्ते, बम्बई आदि बड़े शहरों के वे डॉक्टर, जो इन रोगों का अच्छा इलाज करते हैं, मारवाड़ी रणडीबाज़ों की बढ़ती मालामाल हो रहे हैं। ये पुरुष लोग अपनी बीमारी अपनी स्त्रियों को भी सौगात में देते हैं।

इसके सिवा एक और भी बात है। धनी मारवाड़ियों

की स्त्रियाँ हाथ से कोई काम नहीं करती, इनका काम सिर्फ़ र-विहार, ऐयाशी, पल्लंगों तथा गद्दों पर लोटते रहना और फ़ालतू गपशप है। इनमें कोई लिखी-पढ़ी है तो उप-

न्यास पढ़ने में वक्त गुज़ारती है। इसका नतीजा यह हुआ है कि इनके शरीर बेडौल हो गए हैं, पेट आगे को घड़ा सा निकला रहता है, भुजदण्ड और दूसरे मांसल अङ्ग बेहिसाब मोटे होते हैं, चेहरे का सौन्दर्य नष्ट होकर, एक अजब तरह का बेडौल आकार हो जाता है। तिस पर सेर दो सेर सोने और चार-पाँच सेर चाँदी से लदी हुई यह बेडौल मूर्ति देखने वालों के हृदय में अद्भुत-रस का सञ्चार करती है। बाल-बच्चे इनमें से अधिकांश को नहीं होते। धनी मारवाड़ी प्रायः इस सुख से वञ्चित रहता है और लड़का गोद लेकर वंश-परम्परा जारी रखता है।

दूसरी तरफ मन्दागिरी, अजीर्ण, बवासीर, तपेदिक आदि भी यथावकाश दौरा करते रहते हैं। धनियों की स्त्रियों में स्वास्थ्य-सौन्दर्य और प्रफुल्लता क्वचित् ही देखने को मिलती हैं।

अलवत्ता साधारण मारवाड़ी व्यापारी की स्त्री स्वस्थ दशा में पाई जाती है। उसके चेहरे पर स्वास्थ्य-जन्य सौन्दर्य की झलक है। कारण स्पष्ट है, वह अपना कुल काम हाथ से करती है—घर की सफाई, भोजन बनाना, पानी लाना, आटा पीसना आदि-आदि। ये स्त्रियाँ बाल-बच्चों वाली भी होती हैं।

जैनियों के उपवास-ब्राह्मण्य का या न मालूम किसी और बात का यह परिणाम होता है कि ये लोग और इनकी स्त्रियाँ दुर्बल हैं, इनके बच्चे कम होते हैं और ये गत तीन सन्दर्भशुमारियों में बराबर घट रहे हैं। ईसाई-मुसलमान तो ये होते नहीं, क्योंकि इनमें धार्मिक कट्टरता बड़ी भारी है। इसलिए यही नतीजा निकलता है कि ये लोग बेऔलाद मर रहे हैं और इस प्रकार दिनों-दिन घटते जा रहे हैं।

शिल्पियों, किसानों और मजदूरों की स्त्रियाँ शारीरिक दशा में इतनी हीन नहीं हैं। वे अपना सब काम अपने हाथ से करती हैं—घर का काम, पशुओं की टहल, खेती-बाड़ी में अपने मर्दों की सहायता। ये सब ऐसे काम हैं, जिनसे काफ़ी व्यायाम हो जाता है और शरीर सशक्त, फुर्तीला और चुस्त रहता है। बाल-बच्चों की इन स्त्रियों में कोई कमी नहीं है। यद्यपि बाल-विवाह इन सब में भी जारी है, सिवाय राजपूतों के।

राजपूत-स्त्रियाँ पर्दे का विशेष ध्यान रखती हैं, परन्तु वे घर में सब काम करती हैं। बाहर जाने का काम हो तो उसे रात में करती हैं, जैसे पानी भरना हो तो रात में जाकर कुँए से भर लाएँगी, दिन में सबके सामने न जाएँगी। खेती के काम में भी वे इसी तरह सहायता करती हैं।

गढ़पतियों या गाँव के ठाकुरों की स्त्रियाँ हाथ से कोई काम नहीं करतीं।

जो गाँव शहरों के पास हैं, उनकी स्त्रियाँ दूध, दही, शाक, अन्न आदि का उत्तम भाग शहर में बेच आती हैं। चाहे वे स्वयं अथवा उनके पुरुष यह काम करते हैं। स्वयं निकृष्ट अन्न जौ, चना आदि खाती हैं,

गेहूँ बाज़ार में बेचती हैं। छाछ स्वयं पीती है, घी-दूध बाज़ार में बेचती हैं! पैसा इनके पास आता है, परन्तु शहर के चाह-पानी और मिठाई वाले कुछ पैसे इनसे ज़रूर छीन लेते हैं। कभी-कभी शराब वालों की मुट्ठी गरम होती है।

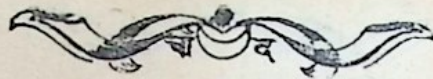
देहात में कारीगरों की हालत कुछ अच्छी नहीं है। हल, बकवर और रेज़ी के कपड़े के सिवाय वहाँ किस चीज़ की क़दर है? ये लोग वक्त का बहुत बड़ा हिस्सा



बीकानेर की स्वाभाविक पोशाक में एक मारवाड़िन युवती

बेकारी में ही बिताते हैं। यही हाल इनकी स्त्रियों का है। कोई काम नहीं तो पैसा कहाँ से आए। और बिना पैसे के अच्छा खाना, अच्छा कपड़ा कहाँ से नसीब हो?

देहात में कुछ ब्राह्मण और सेवक लोग भी रहते हैं। ये प्रायः मूर्ख होते हैं, या अटक-अटक कर दस-पाँच पंक्तियाँ पढ़ने लायक इनकी योग्यता होती है। देहाती लोगों का अण्ड-सण्ड व्याह-सम्बन्धी मन्त्र पढ़ देना और



पैदा होने, मरने आदि की धार्मिक रस्में अदा करा देना यही इनका धन्धा होता है। इसी निमित्त से कुछ दान-दक्षिणा इनको मिल जाती है, उसी से गुज़र होती है। इनकी स्त्रियाँ बहुत करके ठाकुरों और वैश्यों के घरों में काम-काज और सेवा में लगी रहती हैं।

कुल मिला कर देहाती स्त्रियों की दशा साधारण है। नरुल बराबर अवनति कर रही है। माँ से बेटी क्रुद और झील-झौल में छोटी और हीन है। खाने-पीने और दूध-घी की कमी है। माताओं के स्तनों में अब दूध कम उत्तरता है, इसलिए बच्चों की भारी हानि हो रही है। हवा अल-वत्ता साफ़ और खुली हुई मिलती है।

शहरों के
शि लिय यों
और किसानों
की छि याँ
अपे चा कृत
कुछ अच्छी
दशा में हैं।
काम करती
हैं, पैसा पैदा
कर ती हैं,
अच्छा खाती
हैं, अच्छा
पहनती हैं,
गहना-गाँठी



और कुछ पूँजी भी रखती हैं। कितनी ही स्वयं कारवार चलाती हैं, बहुत करके पुरुषों की गुलाम नहीं हैं।

सामाजिक दशा

बाल-विवाह का राजपूताने में जोर है। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, कन्याओं को चाहे जिसके गले मढ़ दिया जाता है। वैश्य-सम्प्रदाय बहुत करके पैसे वाले धनी के लड़के के साथ विवाह करना पसन्द करता है। इसमें वह इस बात पर विचार नहीं करता कि वर-वधू की शरीर-सम्पत्ति कैसी है। हमारे पड़ोसी एक सेठ साहब ने अपने ग्यारह वर्ष के लड़के का सम्बन्ध १२ वर्ष की लड़की से स्वीकार कर लिया ! कारण यही था कि कन्या का बाप अमीर आदमी था, दहेज मिलने की ज़्यादा

उम्मीद थी और बड़े घराने से सम्बन्ध जुड़ता था। लड़की के बाप की विचार-परम्परा यह होती है :—

“काँई” है, चार वर्ष में लड़को मोट्यार हो जासी—सब सँभाल लेसी। इशो सगपण मिलणो कठण है। कठै पड़या है, मालदार घर छे वाई को खाणे-पीणे, ओढ़-पहरवा कीं तकलीफ़ नहीं रहसी। खूब मौज-मजा करसी, भीड़ बखत में आपणे काम आसी” इत्यादि।

लड़के का बाप यों सोचता है :—

“काँई है, बीन्दणी चिनी बड़ी छे तो। ‘बड़ी बहू बड़ो भाग, छोटी लाड़ी घणों सवाग’।”

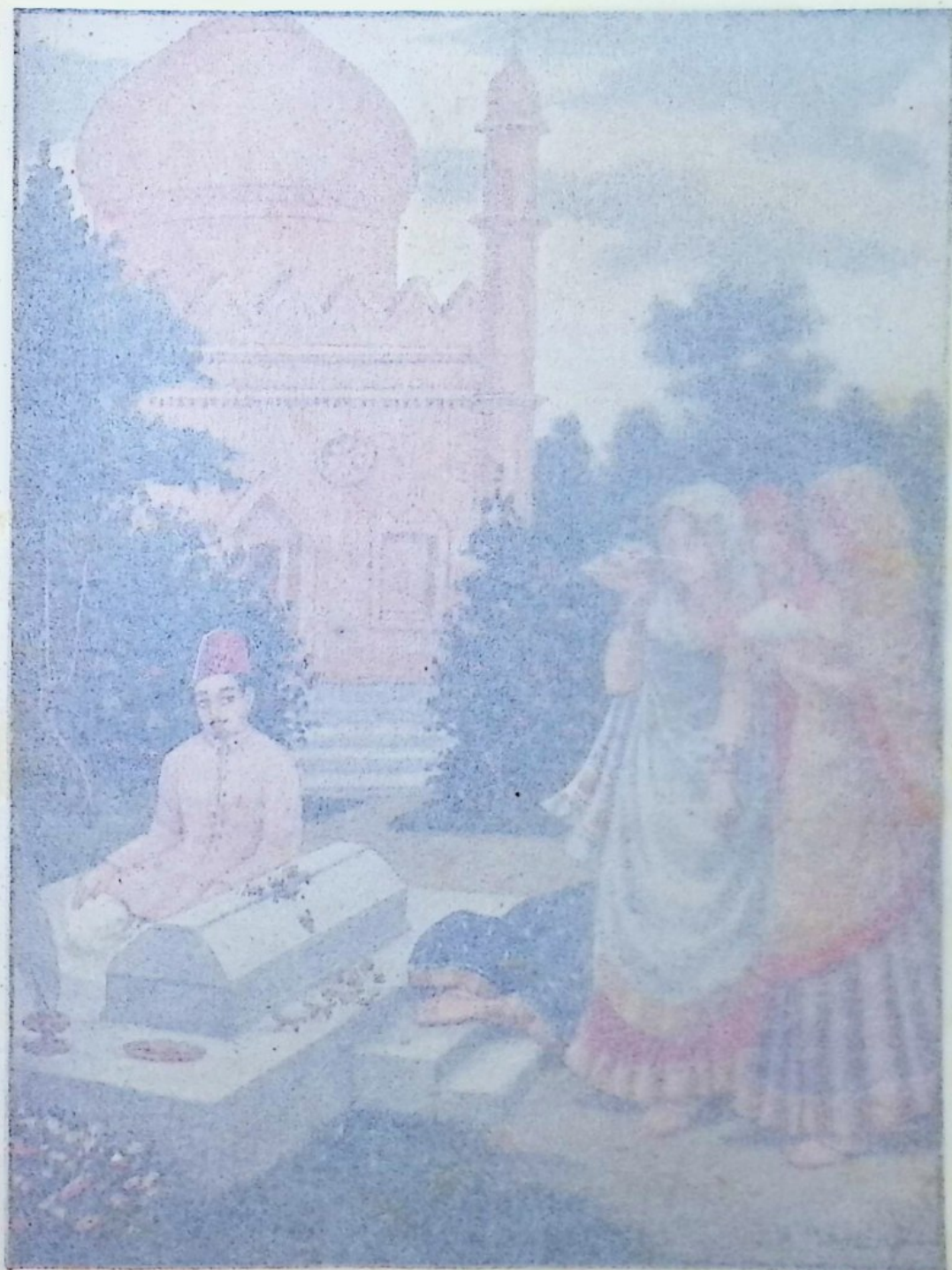
परिणाम में व्यभिचार की वृद्धि हो रही है, स्त्रियाँ पतियों को और भरे-पूरे घरों को छोड़, नीच लोगों और मुसलमानों के साथ भाग जाती हैं ! इसमें सन्देह नहीं कि मारवाड़ी लोग अपनी स्त्रियों को बड़े आदर-

आटा पीसते हुए मारवाड़ की एक अभागिनी विधवा

मान से रखते हैं, अच्छा कपड़ा, खूब गहना, खाना-पीना; इसमें कोई कमी नहीं होने पाती। दावतों में पहले स्त्रियाँ जिमाई जाती हैं, पीछे पुरुष। इस प्रकार स्त्रियों को सब प्रकार प्रसन्न रखने और उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाने की चेष्टा मारवाड़ी-समाज पूर्ण रूप से करता है।

गहने

गहने का मारवाड़ी-स्त्रियों को बड़ा शौक है। भारी-भारी गहने पैरों में, गले में, हाथों में पहनती हैं; जिन्हें पहन कर चलना या हाथ उठाना कठिन होता है। पूरा सेट पहन कर जलसों और दावतों या मेले-ठेलों में ही जाती हैं; घर पर सादी रहती हैं। गहने की अधिकता का प्रायः इस समाज में बड़ा मान है। अच्छे सम्बन्ध या रिश्ते-

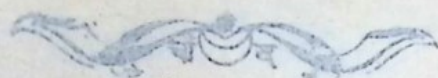


पीर-पूजन

पीर जी धारा डीअर चकताँ काँटो पुभायो जी ।

ए पीर भारी मोद भरो जी, खेडा रखवारा ॥

बारोडा रखवादा ए जी ।



जिस जगह, भारते आदि की आर्थिक रस्सें धका फटा देना नहीं इच्छा होता है। इसी निमित्त से कुछ दान-परिष्कार इनकी मिल जाती है, उसी से गुजर होती है। इनकी शिर्षा बहुत करके ठाकुरों और बैरवों के घरों में काम-काज और सेवा में लगी रहती हैं।

कुछ मिला कर देहलीतियों की दशा सार्वभौम है। जल बराबर अपवर्तित कर रही है। जहाँ से पेटी बन्द और चील-चील में झोंदी और हीन है। खाने-पीने और दूध-बी की कमी है। माताओं के लनों में जब दूध कम उत्पन्न है, इसलिए बच्चों की भारी हानि हो रही है। हवा जल-वृत्त आक्रा और चुकी हुई मिलती है।

शहरों के
मि मिप यों
और किसानों
की मि यों
अपेक्षा कृत
कुछ खन्दी
दशा में हैं।
काम बनती
है, पैसा पैसा
करती है,
धनका खाली
है, या खाली
पहनती है,
गहना-गहना

और कुछ पैसा भी रखती है। कितनी ही स्वयं कारबार चलाती है, बहुत कपड़े धुलाई की सुलत नहीं है।

सांसारिक दशा

आल-विवाह का राजपूताने में जोर है। ऐसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, कन्याओं को चाहे कितनी गले पर दिया जाता है। वैश्य-समाज बहुत करके पैसा-पैसे जमी के लड़के के साथ विवाह करना पसन्द करता है। इसमें यह इस बात पर विचार नहीं करता कि घर-घर की शक्ति-सम्पत्ति कैसी है। हमारे पड़ोसी एक सेठ साहब ने अपने स्वाम्य जमी के लड़के का सम्पन्न १२ वर्ष की आयु ही से सौभाग्य कर लिया। कारण क्या था कि कन्या का बाप सहीर आदमी था, पहले सिद्धने की स्त्रिया

उम्मीद थी और बड़े घराने से सम्बन्ध जुड़ता था। लड़की के बाप की विचार-परम्परा यह होती है :—

“काँई है, चार वर्ष में लड़की सोव्यार हो जाती—सब संभाल लेती। इसी सगपण मिलखो कठग है। कड़े पड़या है, मालदार घर छै बाई को खाये-पीये, ओढ़-पहरवा की तकलीफ नहीं रहती। खुश मौज-मजा करती, सीढ़ बखत में आपखे काम आती” इत्यादि।

लड़के का बाप यों सोचता है :—

“काँई है, बीन्दखी चिनी बड़ी छै तो। ‘बड़ी बगु बड़ो भाग, छोटी लाकी बखों सभाग’।”

परिणाम में अनिश्चार की वृद्धि हो रही है, जिनको

पतिव्रतों को
और भरे-परे
व रों को
छोड़, पी प
लोभों और
सुखलभावों
के साथ भाग
जाती हैं।
इसमें सन्देह
नहीं कि
सारवादी
लोभकपनी
मि यों को
बड़े आदर

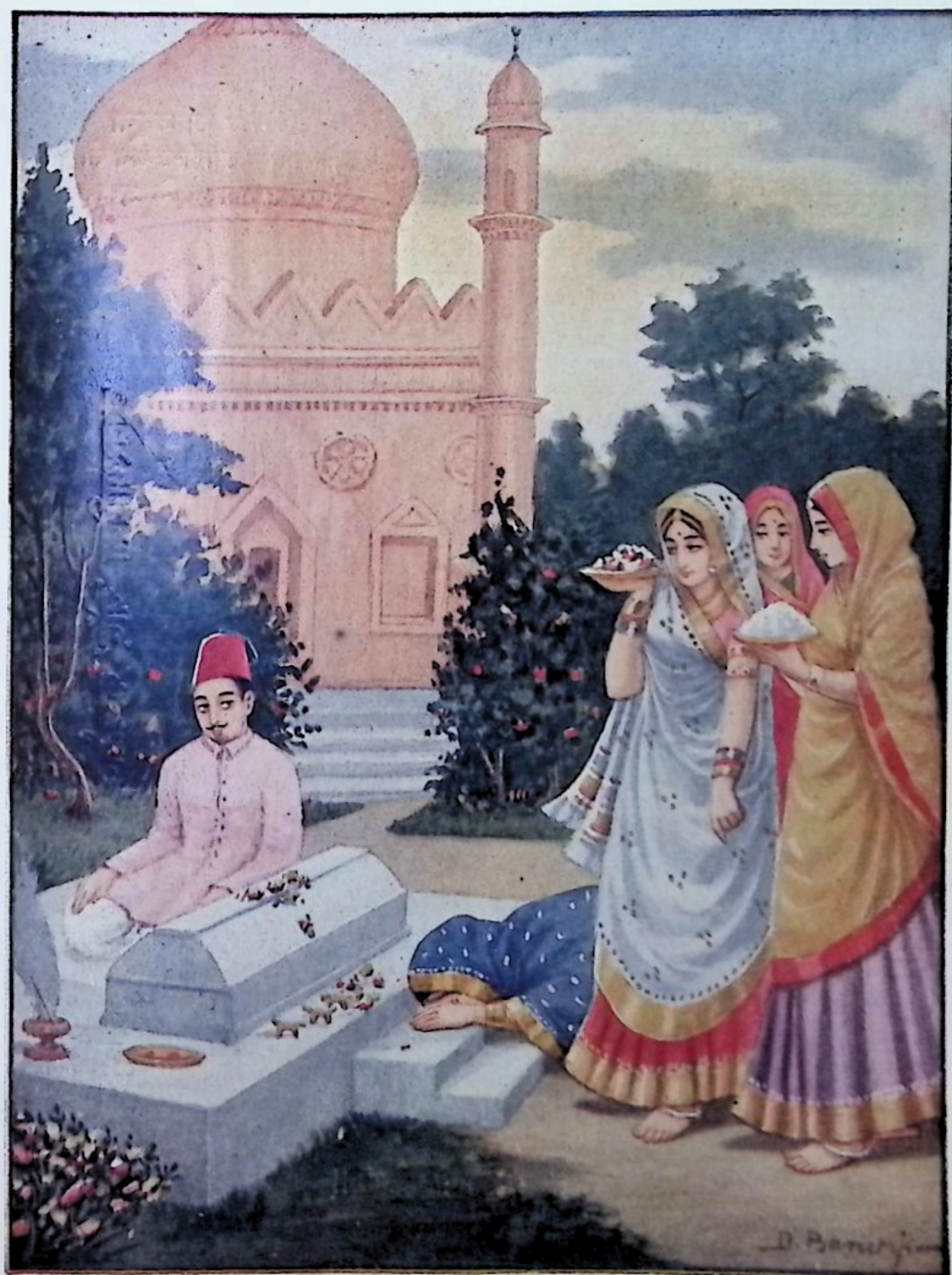


आटा पीसते हुए सारवादी की एक अभागिनी विधवा

मान से रखते हैं, अच्छा कपड़ा, झूब गहना, खाना-पीना; इसमें कोई कमी नहीं होने पाती। दावतों में पहले खिया जिमाई जाती हैं, पीछे पुरुष। इस प्रकार स्त्रियों को सब प्रकार प्रसन्न रखने और उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाने की चेष्टा सारवादी-समाज पूर्ण रूप से करता है।

गहने

गहने का सारवादी-स्त्रियों को बड़ा शौक है। भारी-भारी गहने पैरों में, गले में, हाथों में पहनती हैं; जिन्हें पहन कर चलना या हाथ उठाना कठिन होता है। पूरा से पहन कर जम्हों और दावतों या मेले-डेवों में ही जाती हैं; घर पर खाली रहती हैं। गहने की अधिकता का प्रभाव इस समाज में बड़ा मान है। अच्छे सम्बन्ध या रिस्ते

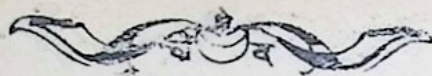


पीर-पूजन

पीर जी थाँरा डीअर चढ़ताँ काँटो चुभायो जी ।

ए पीर म्हारी गोद भरो जी, खेडा रखवारा ॥

वारोड़ा रखवाड़ा ए जी ।



करती हैं। उनके कोई-कोई गीत बड़े भावपूर्ण होते हैं। चिच्छू का, देवर-भौजाई का आदि कितने ही गीत उनके बहुत प्रसिद्ध हैं। राजपूताने में हर मौसम के अलग-अलग गीत स्त्रियाँ गाती हैं। शीत-काल में सियाला, ग्रीष्म में उनाला या तावड़ा, वसन्त-ऋतु में होली-पिचकारी। बरसात की रङ्गरेलियों की तो कुछ बात ही न पछिप। बरसात का राजपूताने में भारी स्वागत होता है। एक मुहल्ले की या हवेली की स्त्रियाँ काम-काज से फुरसत



एक मारवाड़ी गृहस्थ-स्त्री पानी भर कर ला रही है। पाकर इकट्ठी होकर गीत गाने बैठ जाती हैं। पपीहा, बादली, लहरिया, ननदल बाई आदि कितने ही भावपूर्ण रसीले गीत गाए जाते हैं। बरसात में भारी मनोरञ्जन होता है—गोटें (गोष्ठियाँ) होती हैं; स्त्री-पुरुषों के समूह बाहर कहीं पहाड़ पर या किसी सुन्दर नदी या तालाब के किनारे या बाग-बगीचे में जाकर खाना-पीना करते हैं। भोजन में प्रायः दाल, चाटी, चूर्मा बनता है।

गाना-बजाना होता है, स्त्रियाँ बीच में बैठी 'रसिया' गाती रहती हैं, पुरुष चारों तरफ़ बैठे सुना करते हैं, और उत्साहित करते रहते हैं। शाम को या रात पड़े उसी तरह गाते-बजाते, ढोल-ढमाके और गैस की रोशनी में नगर में प्रवेश करते हैं। ये गोटें चन्दे से हुआ करती हैं। यह रिवाज सब जातियों में है। अपनी-अपनी जाति की गोटें अलग-अलग होती हैं। सब जातियाँ शामिल-गोट कभी नहीं करतीं। कभी-कभी एक-एक पेशे के लोग भी गोटें करते हैं, परन्तु उनमें स्त्रियाँ नहीं होतीं।

राजपूत-स्त्रियों का मनोरञ्जन अन्य स्त्रियों से भिन्न है। वे जब कभी स्वयं गावेंगी या ढोलनियों से गवाणेंगी तब सदा शराब और कलाली के गीत! मस्ती और मस्ती के सामान का यशोगान! शराब वे स्वयं पिँए या न पिँए, गाने में यही मज़मून उनको पसन्द है :—

भरला ए सुघड़ कलाली ! दारुडो दाखारो,
कलाली भरला री प्याला,
सेज पर आया मतवाला ।

दूसरे गीत भी गाए जाते हैं, पर यदा-कदा। और उनमें भी इसी मज़मून का पुट प्रायः रहा करता है। सौभाग्यवती राजपूत-स्त्रियाँ बराबर शराब पीती हैं और इसे सुहाग का चिन्ह मानती हैं। विधवा होने पर राजपूतनी शराब और मांस को कभी नहीं छूतीं।

त्योहार या उत्सव के दिन राजपूत स्त्री-पुरुष घर के सब जने एक ही थाल में भोजन करते हैं—पुत्र, पुत्री, स्त्री, पुरुष, सास, बहू, ननद, देवरानी, जिठानी सब एक थाल में। यही प्रेम-भावना और एकाग्र भाव का सिद्धान्त उनके यहाँ माना जाता है।

दरोगा

राजपूत-ठिकानों में एक दरोगा नाम की जाति है, उसकी स्त्रियों की हालत बड़ी खराब है। ये वे लोग हैं जो रोज़गार नष्ट हो जाने से राजाओं, ठाकुरों या ठिकानेदारों की चाकरी करते हैं। सपरिवार राजघरानों में रहते हैं और इनके कुल खर्च का भार ठिकाने के सिर रहता है। स्त्रियाँ जनाने महलों में सेवा-कार्य करती हैं, पुरुष बाहर। सब प्रकार की सेवा ये लोग तन-मन से करते हैं। एक प्रकार से ये लोग क्रीत-दास की भाँति होते हैं। इन्हें चाहे जिस प्रकार से इस्तेमाल करो, कुछ भी उज्र नहीं!

राजपूत-इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीमान् महामहोपाध्याय रायबहादुर पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द्र जी श्रोत्रा की सम्मति है कि ये लोग 'राजपूत' ही हैं, इनका रिजक (ज़मीन-जायदाद) नष्ट हो जाने के कारण राजपूती शान-बान नष्ट हो गई है और ये अपने स्वामियों के आश्रय में ही दिन बिताते हैं। सम्पत्ति नष्ट हो जाने के कारण इन लोगों में राजपूतों की भाँति पर्दा नहीं रहा, क्योंकि घर के प्रत्येक काम के लिए स्त्रियों को बाहर निकलना पड़ता है और हर किसी से बातचीत करनी पड़ती है। इसके सिवा ज़मीन-जायदाद नष्ट होने से ऊँची रिश्तेदारी भी नहीं मिलती। विधवा को सम्पत्ति-विहीन हो जाने के कारण से पुनर्विवाह या नाता भी करना पड़ता है। इन सब हेतुओं से ये लोग प्रतिष्ठा और आत्म-गौरव से हीन हो गए हैं। मगर ये लोग बड़े स्वामि-भक्त हैं। राजपूत-राजाओं या ठिकाने के ठाकुरों का सब कुछ इनके अधीन है। खाना-पीना, स्त्री, बाल-बच्चे, रुपया-पैसा, ज़र-ज़ेवर, पोशाक—सब इनके अधीन है। रईस और रानी या ठाकुरानी इन पर पूरा विश्वास करके निश्चिन्त रहते हैं। इनसे किसी प्रकार का परहेज़ या पर्दा नहीं। ये हर हालत में शरीक रहते हैं। इनकी वफ़ादारी की बहुत सी कथाएँ हैं। उदयपुर घराने की पत्नी धाय, जिसने अपना लड़का राजकुमार के बदले में क़त्ल होने दिया था, बहुत प्रसिद्ध है। इस प्रकार के कितने ही उदाहरण ये लोग स्वामि-भक्ति के उपस्थित कर चुके हैं; जो इतिहास के पन्नों पर शायद न आए हों, परन्तु सर्व-साधारण की ज़बान पर हैं। इनका स्वामी बर्बाद हो जाय, उसकी जीविका नष्ट हो जाय, तो ये उसे छोड़ कर कदापि भाग न जाएँगे। आप कमा कर लाएँगे और ठाकुर-ठाकुरानी और उसके बाल-बच्चों की परवरिश करेंगे।

ये लोग किसी-किसी रियासत में ठिकानेदार भी हैं, जो युद्धों में बहादुरी और सिर कटाने के पुरस्कार-स्वरूप इन लोगों को मिले हैं। कहीं-कहीं रईसों के एडिऑज़ और मर्ज़िदान भी हैं। कोई-कोई पोलो के बहुत अच्छे खिलाड़ी हैं। इसलिए रईसों के प्रीति-पात्र बने हैं और प्रतिष्ठापूर्वक जीवन बिताते हैं, लेकिन यह सब व्यक्तिगत है; और उसका असर सब विरादरी पर कुछ भी नहीं। वह राजपूतों से बराबर हीन समझी जाती है।

परन्तु अब स्थिति में परिवर्तन हो रहा है। जैसे ही

इन लोगों ने अपने को राजपूत घोषित किया, अपनी सभाएँ की और अख़बार निकाला, वैसे ही इनके स्वामी सरदार लोग बिगड़ खड़े हुए हैं और इनको दवाने की अनेक युक्तियाँ सोच रहे हैं। इनको भय यह हो रहा है कि अगर ये राजपूत मान लिए गए और हमारे पञ्जे से निकल गए, तो हमारी सेवा-चाकरी कौन करेगा? और हम जो मुफ़्त में मज़ा उड़ा रहे हैं वह कैसे कायम रहेगा;



जयपुर, बीकानेर के तरफ़ की अभागे दरोगा
(गोला) जाति की एक स्त्री

[जागीरदार ठाकुरों की गुलामी ही जिनका
एकमात्र व्यवसाय है!]

क्योंकि इस वक्त ये लोग दरोगों को मन भर जौ, जुवार और एक रुपया हाथ-भूँच के लिए देते हैं। इस तनज़ाह में इन्हें बाहर का कोई ऐसा नौकर नहीं मिल सकता, जो स्त्री-सहित हर वक्त इनकी सेवा में हाज़िर रहे! इसलिए ये लोग इन्हें छोड़ना नहीं चाहते। अगर कोई स्त्री या पुरुष चोरी-छिपे से, इनके अत्याचारों से सताया हुआ

शरणार्थ अङ्गरेजी राज्य में चला जाय, तो चोरी का अभियोग लगा कर उसे पकड़वा मँगाते हैं और भाँति-भाँति से तङ्ग करते हैं !!

इनमें शिक्का का बिलकुल अभाव है और ये लोग पैसे-पैसे के मुहताज हैं ! क्योंकि इनके पास सिवाय उस गुलामी के, स्वतन्त्र जीविका का कोई साधन नहीं ! ये पशुओं की भाँति बिलकुल अपने स्वामी के आश्रित हैं। इनकी स्त्रियों की बहुत बुरी हालत है। वे अपनी रक्षा किसी प्रकार भी इन लोगों से नहीं कर सकतीं। इसलिए इनके चाल-चलन का स्टैण्डर्ड भी बहुत नीचा हो गया है, जिस की जिम्मेदारी इन के मालिकों पर ही आती है। ये लोग सर्वथा ज़र-ख़रीद गुलामों की तरह बतें जाते हैं और दहेज़ में पशुओं की भाँति बिना मज़ी और इच्छा के भी

दे दिए जाते हैं ! माँ रोती रह जाती है और लड़की दहेज़ में दे दी जाती है ! आश्चर्य यह है कि इतने पर भी अन्तर्राष्ट्रीय सभा में राजा लोग यह घोषणा करते हैं कि हमारे यहाँ गुलामी की प्रथा बिलकुल नहीं है !!!

वेश्याएँ

राजपूताने में वेश्याएँ काफ़ी हैं। इनका व्यवसाय जैसा भारत के अन्य भागों में ज़ोरों से चल रहा है, यहाँ भी मज़े का है। मारवाड़ (जोधपुर) की वेश्याएँ राजपूताने की अन्य वेश्याओं के लिए आदर्श हैं—गाने-बजाने में, पोशाक में, रहन-सहन और व्यवहार में।

मारवाड़ी-वेश्याएँ उन सब शहरों में पहुँच गई हैं, जहाँ मारवाड़ी-व्यवसायी पहुँचे हैं। क्योंकि मारवाड़ी अपने देशी भाई को बहुत चाहता है। मारवाड़ी-ब्राह्मण, मारवाड़ी-सेवक, मारवाड़ी-मुनीम, मारवाड़ी-गुमास्ते की भाँति मारवाड़ी-वेश्या को ही मारवाड़ी पसन्द करता है। क्योंकि वह उसकी आदत, अख़लाक़, रीति-रिवाज, बोली-चाली सब में उसे अच्छी तरह पहचानती है और उसकी हमराज है।

मारवाड़ के जोधपुर, पाली और नागौर में वेश्याओं की आबादी अधिक है। वेश्याओं की कई जातियाँ हैं, भगतन, पातर, साठिया आदि। वेश्याओं की सन्तान में लड़की वेश्या का धन्धा करती है और लड़का हो तो 'जागरी' जाति की लड़की से उसका व्याह कर दिया जाता है। बहू वेश्या

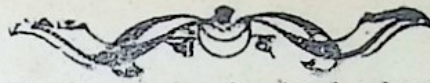


सामाजिक कुरीतियों का शिकार

[मारवाड़ की अभागिनी वेश्याएँ]

का काम कभी नहीं करती। मुसलमान-वेश्याएँ भी काफ़ी तादाद में हैं।

क़रीब चार वर्ष हुए, हम श्रीयुक्त देशभक्त कुँवर चाँदकरण जी शारदा के छोटे भाई श्रीयुक्त कुँवर विजयकरण जी शारदा की बारात में एक गाँव में गए। गाँव में दिलचस्पी का सामान क्या था ? सर्दी का मौसम था, दोपहर का वक्त, हम अपना डरड़ा उठा कर एक तरफ़ को चल पड़े। इस अभिप्राय से कि बाहर जङ्गल में ही कुछ देखें-भालें। राजपूताने की वीर-भूमि का प्रत्येक स्थान वीरों के रक्त से सींचा हुआ है, इस गाँव में भी कुछ वीरों की, जो युद्ध-भूमि में जूझ कर स्वर्ग



गए थे और कुछ सती देवियों की, जो उन वीरों का सिर गोद में रख कर देव-लोक को प्रयाण कर गई थीं, छतरियाँ बनी हुई थीं। हम उन्हीं की तरफ चल पड़े। पास पहुँच कर उन्हें नमस्कार किया और उन पर के शिला-लेख बाँचने की कोशिश करने लगे। इस काम से छुट्टी पाकर हम नीचे के चबूतरे पर आ बैठे, जो ग्राम्य पग-ढाडी के पास बना था। इतने में एक अथेड़ स्त्री आई और मार्ग चलने से थक जाने के कारण उसी चबूतरे पर दम लेने लगी। कौतूहलवश उसके ग्राम्य जीवन की कुछ बातें जानने के लिए हम उससे बातचीत करने को उत्सुक हुए। हमने दो-चार बातें पूछ कर उससे पूछा—“आपके घर में क्या काम-काज होता है?” उसने साफ़ और स्पष्ट शब्दों में कहा—“हम कसब कमाती हैं।” हमने कहा—“छोटे से गाँव में यह तुम्हारा कसब का धन्धा क्या चलता होगा?” वह बोली—“नहीं, हमारा काम चलता ही रहता है। गाँव के जवान, जिनकी शादी नहीं हुई; कभी-कभी फ़ौज के सिपाही, जो नौकरी से छुट्टी पर आते हैं; कभी कोई राह-चलता मुसाफ़िर इत्यादि आ ही जाते हैं। इस तरह नित्य ही हमें आमदनी होती है; कभी कम और कभी ज्यादा” उसने इन बातों को बहुत ही लम्बे पैराए में और बड़ी स्पष्टता से बयान किया, जिसे सुन कर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अपनी जाति का कोई नाम बताया था, जो अब याद नहीं रहा। इससे इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि मारवाड़ के छोटे-छोटे गाँवों में भी वेश्या-वृत्ति कामयाबी से चलती है और कितनी ही जातियाँ यह रोज़गार करती हैं! नटों (बाँस पर कसरत दिखाने वालों) की स्त्रियाँ भी यह काम करती सुनी जाती हैं। यह सब अविद्या का फल है।

हमारी यह राय सुन कर एक महाशय फ़र्माने लगे—वाह! क्या विद्वान् लोग रण्डीबाज़ी नहीं करते? मैंने कितने ही एम० ए०, बी० ए० जेण्टलमैनों और शास्त्री-पण्डितों को रण्डियों की चौखट पर सिजदा करते देखा है। रण्डियाँ तो इसे अपना रोज़गार समझ कर करती हैं और इसे बुरा नहीं समझती। उन्हें आप मूर्ख या अविद्या-ग्रस्त नहीं कह सकते। वे प्रायः पढ़ी-लिखी होती हैं और कोई-कोई तो हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, अङ्गरेज़ी आदि कई भाषाएँ जानती हैं। देवता को पूजती हैं, ईश्वर को

मनाती हैं और उसके आशीर्वाद से अपने रोज़गार में बरकत चाहती हैं। फिर ये अविद्या-ग्रस्त कैसे हुईं?

जोधपुर रियासत में सर कर्नल प्रतापसिंह जी के बड़े भाई श्रीमान् महाराजा जसवन्तसिंह जी के ज़माने में रण्डियों की बड़ी उन्नति हुई थी। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की घातक नन्हीं जान उन्हीं की आशना थी! अब भी जोधपुर में करीब २०० मकान रण्डियों के हैं। इनमें से कितने ही बहुत अच्छे और बड़ी लागत के हैं। जोध-



मारवाड़ी (शहरी) स्त्री का पहिनाव
पुर रियासत के जागीरदार, जो चाकरी देने जोधपुर राज-धानी में जाते हैं, उनकी बदौलत इनका कारबार गुलज़ार रहता है। किसी रईस का कोई एंडोर्ज़, मुलाज़िम या फ़ौजी सिपाही अगर जोधपुर होकर गुज़रे तो दो रात के लिए वह अवश्य जोधपुर ठहर जायगा और जो कुछ तन-इवाह साथ लेकर घर जा रहा होगा, वह यहाँ की वेश्याओं के सुपुर्द करके सूखे हाथ घर पहुँच जायगा! यह हाल

जोधपुर-निवासी हमारे एक बहुत प्रामाणिक मित्र का सुनाया हुआ है।

जयपुर की रण्डियाँ दरिद्र हैं। एक बड़े रईस की बारात में, जो सवारी जौहरी बाज़ार में होकर निकल रही थी, उसी को देख कर हमने यह अनुमान किया है। इस जलूस में पन्द्रह रण्डियाँ स्थान-स्थान पर नाच रही थीं, परन्तु किसी के भी बदन पर सही-सलामत और उम्दा पोशाक न थी, न बढ़िया गहना ही था। एक जानकार ने हमें उनकी दरिद्रता का हेतु घरेलू व्यभिचार बताया था !!

मानसिक दशा

मानसिक दशा के बारे में अब इतना पढ़ लेने के बाद जानने योग्य बात ऐसी कुछ नहीं रही। स्त्रियों में अविद्या का पूर्ण साम्राज्य है। रियासतों में लड़कियों के स्कूल या



अभागिनी विधवाओं का व्यवसाय

तो हैं ही नहीं और कहीं-कहीं हैं भी तो वे नाम लेने लायक नहीं। अध्यापिकाएँ थर्डक्लास, प्रबन्ध बिलकुल रही! ऐसी दशा में मानसिक या आत्मिक विकास कैसे हो? नतीजा यह है कि जितना अन्ध-विश्वास, झूराफ़ात और भेड़ियाधसान राजपूताने की स्त्रियों में है, उतना हिन्दुस्तान के किसी भी प्रान्त की स्त्रियों में नहीं है। भूत-प्रेत, पीर-क़बर की पूजा, जादू-टोना, जन्तर-मन्तर और झाड़ू-फूँक में ये स्त्रियाँ बड़ा विश्वास रखती हैं। शोभा, शैरों, भोपा, पीर, मुजावर और स्याने, मुल्ला आदि का इन पर हाथ साफ़ करना, ज्योतिषियों

और डाकौतों के फ़रेब में आकर ठगी जाना, ये सब नित्य की बातें हैं! आजकल एक मुक़दमा चल रहा है, जिसमें एक डाकौत ने एक स्त्री को राहु, केतु और शनि-श्वर की दशा उसके पुत्र पर बता कर दो-तीन बार करके करीब ग्यारह सौ रुपए पेंड लिए! लड़के को जब यह घटना मालूम हुई, उसने फ़ौरन डाकौत पर फ़ौजदारी केस दायर कर दिया। डाकौत ज़मानत पर छूटा है, मुक़दमा चल रहा है। इन मारवाड़ी-स्त्रियों ने इस प्रान्त से बाहर जाकर भी कुछ उन्नति नहीं की। अपने देश से जो कुछ संस्कार साथ ले गई हैं, वह वहाँ सब बदस्तूर कायम है !!

गत वर्ष कलकत्ते में घटित गोविन्द-भवन का शहसमाचार-पत्रों के पाठकों ने पढ़ा ही होगा। इससे मारवाड़ी-समाज के भेड़ियाधसान और अन्ध-विश्वास पर

काफ़ी प्रकाश पड़ता है! इनमें जो सद्बुद्धि-सम्पन्न और योग्य व्यक्ति हैं, उन्होंने अपने द्रव्य को उचित स्थान पर लगाया है। झुंझू वाले सेठों की तीर्थों और बड़े-बड़े स्टेशनों की सुप्रबन्धयुक्त धर्मशालाएँ, बिड़ला-बन्धुओं और मोहता-बन्धुओं का विद्या-प्रचार और अन्य उत्तम कार्यों में लाखों रुपयों का दान, उनकी सद्बुद्धि और विवेक-शक्ति का परिचायक है। परन्तु साधारण मारवाड़ी पात्रापात्र का विचार नहीं करता, वह रुढ़ि-परम्परा के अनुरोध से दान-धर्म करता है और विवेक को बहुत काम में नहीं लाता। यही हाल इनकी स्त्रियों का है। उनके

पास काफ़ी पैसा रहता है और वे समय-समय पर दिल खोल कर दान-धर्म किया करती हैं। परन्तु पात्रा-पात्र का कुछ भी विचार नहीं होता। इसलिए कितने ही धूर्त लण्ठाधिराज इन्हें बहका कर माल खींचा करते हैं।

इस उन्नति और विकास के युग में प्रत्येक दूरदर्शी

मारवाड़ी भाई का कर्त्तव्य है कि वह अपने घर को सबसे पहले ठीक करने का प्रबन्ध करे, एक आदर्श परिवार अपनी छोटी-सी भोपड़ी पर विलास-नगरी कलकत्ते का सारा वैभव न्योछावर कर सकता है, केवल धन-प्राप्ति इस दुर्लभ जीवन का आदर्श कदापि न होना चाहिए !!



मारवाड़ी

[श्री० छैलबिहारी जी 'कण्टक']

(१)

वीरों की सन्तान, मान पर जो मरते थे;
करते थे शुभ-कर्म, धर्म-धीरज धरते थे।
भरते थे नव-भाव, दीन का दुख हरते थे;
कभी स्वप्न में भी न टेक से जो टरते थे।
डरते थे जो पाप से, आज पाप की खान हैं !
गुण-गौरव से हीन हो, जीवित मृतक समान हैं !!

(२)

आजीवन जो रहे, धर्म की बेल बढ़ाते;
गो-रक्षा, ब्राणिज्य, कृषी का पाठ पढ़ाते।
समय-समय पर समुद्र आत्म-बलिदान चढ़ाते;
सब प्रकार जो रहे सुयश-गढ़ स्वयं गढ़ाते।
लिखे हुए इतिहास में, जिनके कोटि कमाल हैं !
आज मारवाड़ी वही, बस, बनिँ-बफ़ाल हैं !!

(३)

जो स्वदेश के लिए जान पर खुल कर खेले;
हँस-हँस सङ्कट सदा करोड़ों सर पर भेले।
पता नहीं वे हुए किस गुरु के अब चेले;
प्राण लिए फिर रहे वीर जो थे अलबेले।
जिन्हें न जीवन भर रही, कभी कामना काम की !
डुबो रहे नैया वही, मारवाड़ के नाम की !!

(४)

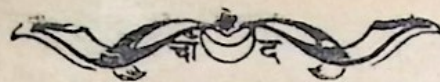
ऐसा कौन कुकर्म, न उनका हो जो जाना
पापों का अब रहा उन्हीं के यहाँ ठिकाना।
भूल गए सद्धर्म-कर्म करते मनमाना;
पड़ता है हर जगह इसी से ठोकर खाना।
अपतित होकर पतित अब, हो कुलीन अकुलीन हैं !
हाय, दैव असहाय हो, पराधीन बल-हीन हैं !!

(५)

करते हैं व्यापार नीच, कम तोल रहे हैं;
मिथ्या बिना विचार, व्यर्थ ही बोल रहे हैं।
बस, पैसे के लिए, हर जगह डोल रहे हैं;
बहुत बढ़े तो यही, दिवाले खोल रहे हैं।
दिखलाते हैं दीनता, मानो वे मायूस हैं !
कौड़ी-कौड़ी के लि, बेढब मक्खीचूस हैं !!

(६)

उन्हें फाटका-सट्टा ही, व्यापार हुआ है;
देखो तो, किस तरह जुए से प्यार हुआ है।
यह अक्ल अजीर्ण हुआ, बुद्धि-व्यभिचार हुआ है;
इसीलिए धन सब समुद्र के पार हुआ है।
मन्त्र जानते जो कहीं, वे उन्नति-उत्कर्ष का !
तो फिर सहज न डूबता, बेड़ा भारतवर्ष का !!



(७)

बेच विदेशी माल आप कङ्काल हुए हैं ;
देश दूसरे हमसे मालामाल हुए हैं ।
करनी ऐसी कटिल देश के काल हुए हैं ;
परदेशों के खुले आम दलाल हुए हैं ।

बख-विदेशी बनस्पति-धी, स्वधर्म को धो रहे !
निर्धन-निर्बल हाय ! हम, आज उन्हीं को रो रहे !!

(८)

सपने में भी उन्हें राष्ट्र का ज्ञान नहीं है ;
अपने भाषा-भेष-देश का मान नहीं है ।
मरे हुए हैं हृदय, तनिक भी जान नहीं है ;
स्वाभिमान-सम्मान-शान का ध्यान नहीं है ।

मौज करो, खाओ-पियो, भोजन भक्ष्याऽभक्ष्य है !
इस असार-संसार में, उनका यही सुलक्ष्य है !!

(९)

हैं वे विषयाधीन काम के ग्रास हुए हैं ;
'इन्द्र-सभा' की पूर्ण परीक्षा पास हुए हैं ।
मद्य, मांस के अब घर-घर में वास हुए हैं ;
वेश्या-कुल के हाय ! आज वे दास हुए हैं ।

दुर्ग्यसनों में लीन हो, रहा-सहा धन फूकते !
लाज नहीं लगती उन्हें, नर-नारी सब थूकते !!

(१०)

देखो, हैं ये मर्द, पड़ रहे हैं मुख पीले ;
शक्ति न है कुछ शेष अङ्ग के बन्धन ढीले ।
चलें लचकती चाल गर्व से हो लचकीले ;
करते मत्त प्रलाप न हैं कुछ और वसीले ।

रोगों की पुड़िया बने, स्वास्थ्य-धर्म से दूर हैं !
जब देखो अलमस्त तब, किसी नशे में चूर हैं !!

(१५)

सुनें, सुनें, नवयुवक काम कुछ तो कर जाएँ ;
बढ़ें, अगाड़ी चलें, न कष्टों से डर जाएँ ।
फिर समाज में आज भाव ऊँचे भर जाएँ ;
धर्म-धरोहर जोड़-जोड़ कर हाँ, धर जाएँ ।

थराए संसार सब, अब ऐसा बलिदान हो !
जिससे जाग्रत जाति हो, फिर स्वदेश-सम्मान हो !!

(११)

हो अबोध अज्ञान, दुखों से घिरते जाते ;
कैसा भीषण-पतन दिन-ब-दिन गिरते जाते ।
भूल गए हैं थाह, राह किस बिरते जाते ;
लक्ष्य-भ्रष्ट हो, इसीलिए तो फिरते जाते ।
रोम-रोम में रम गए, ढोंग, दम्भ, व्यभिचार हैं !
घड़ी-छड़ी-चश्मा हुए, अब इनके हथियार हैं !!

(१२)

हे करुणामय, पुनः कृपा की कोर दिखाओ ;
उनको भूला हुआ वही सत्कर्म सिखाओ ।
सोते से हरि ! एक बार फिर इन्हें जगाओ ;
धरें ध्येय का ध्यान वही फिर लगान लगाओ ।
छोड़ ईर्ष्या-द्वेष को, मोह तोड़, मुँह मोड़ लें !
शिथिल प्रेम-बन्धन पुनः, प्रभो ! परस्पर जोड़ लें !!

(१३)

बहुत हुआ, बस, बान व्यसन की त्यागें, त्यागें ;
कुम्भकर्ण की नींद छोड़ फिर जागें, जागें ।
बढ़ें ज्ञान-विज्ञान मूर्खता-दुर्गुण, भागें ;
यही विशद-वरदान विश्वपति से सब माँगें ।
पट परिवर्तन हो पुनः, परिवर्तित संसार हो !
फिर तो एक प्रयत्न में, ही बस बेड़ा पार हो !!

(१४)

एकत्रित फिर करें शक्तियाँ बिखरी सारी ;
बढ़ें—हाँ, बढ़ें युवकवृन्द नवजीवन कारी ।
उमड़े प्रलय-पयोधि क्रान्ति की हो तैयारी ;
सुलगा दें सानन्द नाश की वह चिनगारी ।
मूढ़ रूढ़ियाँ भस्म कर, ज्वाला परम प्रचण्ड हो !
गुरुडम का गढ़ नष्ट हो, खण्ड-खण्ड पाखण्ड हो !!



कलकत्ते का खेतान-परिवार

बैठे हुए बाईं ओर से—१—श्री० लक्ष्मीप्रसाद जी खेतान २—श्री० देवीप्रसाद जी खेतान
 ३—श्री० कालीप्रसाद जी खेतान ।
 खड़े हुए बाईं ओर से—१ श्री० भगवतीप्रसाद जी खेतान २—श्री० दुर्गाप्रसाद जी खेतान
 ३—श्री० गौरीप्रसाद जी खेतान ।

दाम्पत्य जीवन

इस पुस्तक के सम्बन्ध में प्रकाशक के नाते हम केवल इतना ही कहना काफ़ी समझते हैं कि ऐसे नाज़ुक विषय पर इतनी सुन्दर, सरल और प्रामाणिक पुस्तक हिन्दी में अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। इसकी सुयोग्य लेखिका ने काम-विज्ञान (Sexual Science) संबंधी अनेक अङ्गरेज़ी, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी तथा गुजराती भाषा की पुस्तकें मनन करके इस कार्य में हाथ लगाया है। जिन अनेक पुस्तकों से सहायता ली गई है, उनमें से कुछ मूल्यवान् और प्रामाणिक पुस्तकों के नाम ये हैं :—

[लेखिका—श्रीमती सुशीलादेवी जी निगम, बी० ए०]

जिन महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है, उनमें से कुछ ये हैं :—

(१) सहगमन (२) ब्रह्मचर्य (३) विवाह (४) आदर्श-विवाह (५) गर्भाशय में जल-सञ्चय (६) योनि-प्रदाह (७) योनि की खुजली (८) स्वप्न-दोष (९) डिम्ब-कोष के रोग (१०) कामोन्माद (११) मूत्राशय (१२) जननेन्द्रिय (१३) नपुंसकत्व (१४) अति-मैथुन (१५) शयन-गृह कैसा होना चाहिए ? (१६) सन्तान-वृद्धि-निग्रह (१७) गर्भ के पूर्व माता-पिता का प्रभाव (१८) मनचाही सन्तान उत्पन्न करना (१९) गर्भ पर तात्कालिक परिस्थिति का असर (२०) गर्भ के समय दम्पति का व्यवहार (२१) यौवन के उतार पर स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध (२२) रबर-कैप का प्रयोग (२३) माता का उत्तरदायित्व आदि-आदि सैकड़ों महत्वपूर्ण विषयों पर—उन विषयों पर, जिनके सम्बन्ध में जानकारी न होने के कारण हज़ारों युवक-युवतियाँ बुरी सोसाइटी में पड़कर अपना जीवन नष्ट कर लेती हैं—उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनकी अनभिज्ञता के कारण अधिकांश भारतीय गृह नरक की अग्नि में जल रहे हैं; उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनको न जानने के कारण स्त्री पुरुष से और पुरुष स्त्री से असन्तुष्ट रहते हैं—भरपूर प्रकाश डाला गया है। हमें आशा है, देशवासी इस महत्वपूर्ण पुस्तक से लाभ उठाएँगे। पृष्ठ-संख्या लगभग ३५०, तिरङ्गे Protecting Cover सहित सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य २।। रु०; 'चाँद' तथा पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहकों से १।।।= मात्र ! पुस्तक सचित्र है !!

केवल विवाहित स्त्री-पुरुष ही पुस्तक मँगावें !

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

चन्द्रलोक, इलाहाबाद

(1) Motherhood and the Relationship of the Sexes by C. Gasquoine Hartley (2) Confidential Talks with Husband & Wife by Layman B. Sperry (3) Youth's Secret Conflict by Walter M. Gallichan (4) The Threshold of Motherhood by R. Douglas Howat (5) Radiant Motherhood (6) Married Love and (7) Wise Parenthood by Dr. Marie Stopes.



मारवाड़ी-समाज

—००७००—

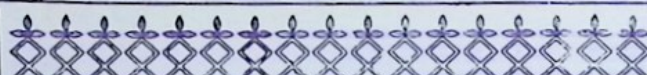
संसार के अन्य समाजों के साथ-साथ मारवाड़ियों को भी अपनी सामाजिक प्रथाओं में परिवर्तन करना होगा। यदि वे सामाजिक, आर्थिक, व्यापारिक और राजनैतिक पुरानी रूढ़ियों को तोड़ कर, अन्य समाजों की समता न कर सकेंगे, तो इस प्रतिद्वन्द्विता के युग में उनका अस्तित्व नहीं रह सकेगा। अब ऊँटों की सवारी पर चलने की प्रवृत्ति काम न देगी। यद्यपि मारवाड़ी-समाज में अभी तक अनेक सुधारों की आवश्यकता है, तो भी कुछ सुधार तो ऐसे अनिवार्य हैं कि वे यदि शीघ्र न किए गए तो समाज को बड़ी भारी हानि का सामना करना पड़ेगा। जैसे रहन-सहन और स्त्रियों के पहनावे में परिवर्तन। साथ ही अब सब देशों में और अन्य समस्त समाजों में स्त्री-शिक्षा का कोई विरोध न रहते हुए भी, इस समाज में स्त्री-शिक्षा का प्रचार जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं हो रहा है। यह एक ख़ास कारण है कि जिससे सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने में अस्वाभाविक विलम्ब हो रहा है।

मारवाड़ी-समाज के पुरुषों में भी वर्तमान प्रणाली की शिक्षा की बहुत कमी है। शिक्षितों की संख्या अँगुलियों पर गिनी जा सकती है। यही कारण है कि उन्हें प्रत्येक रूढ़ि के तोड़ने में धर्म हूबने का डर लगा रहता है। विधवा-विवाह जैसे सामान्य सामाजिक सुधार भी अभी तक मारवाड़ी-समाज में धर्म हूबने के नाम पर रोके जाते हैं! समाज में स्त्रियाँ अब भी पाँव की

जूती समझी जाती हैं। और इसीलिए एक स्त्री के मरने के बाद दूसरा, तीसरा और छठा-सातवाँ तक विवाह करने में भी लोग नहीं हिचकते! पवित्र विधवा के विवाह का नाम सुन कर डूब जाता है!

आज भी यह समाज विल चौकता है। एक समय था, जब कि के हिन्दुओं ने विदेश-यात्रा के लिए जाया था। परन्तु जब उन्होंने समय की बहुत शीघ्र अपना रुझा परिवर्तन कर और महाराष्ट्रों के मार्ग विदेश-यात्रा खुले हुए हैं। अरब के उपकूलों के टापुओं में, पूर्वी अफ्रीका, ईरान बन्दरगाहों में गुजराती व्यापारी में आता है। फ़्रान्स में यदि कोई है तो वे मोती के व्यापारी तरह चीन और जापान में सिन है। परन्तु मारवाड़ियों के लिए पाप है! इस मूर्खता का जैसा था, वैसा आज हो रहा है!

प्रकृति के नियमों को कं प्राकृतिक परिवर्तन मारवाड़ियों यही कारण है कि आज मारवा सब समाजों से अधिक सामने और भी विकटतर होने वाली का है कि अब भी धर्म की दुहा सचेत होने नहीं देते! यदि



दाम्पत्य जीवन



इस पुस्तक के सम्बन्ध में प्रकाशक के नाते हम केवल इतना ही कहना काफ़ी समझते हैं कि ऐसे नाजुक विषय पर इतनी सुन्दर, सरल और प्रामाणिक पुस्तक हिन्दी में अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। इसकी सुयोग्य लेखिका ने काम-विज्ञान (Sexual Science) संबंधी अनेक अज्ञेय, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी तथा गुजराती भाषा की पुस्तकें मनन करके इस कार्य में हाथ लगाया है। जिन अनेक पुस्तकों से सहायता ली गई है, उनमें से कुछ मूल्यवान् और प्रामाणिक पुस्तकों के नाम ये हैं :—

[लेखिका—श्रीमती सुशीलादेवी जी निगम, बी० ए०]

जिन महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है, उनमें से कुछ ये हैं :—

(१) सहगमन (२) ब्रह्मचर्य (३) विवाह (४) आदर्श-विवाह (५) गर्भाशय में जल-सञ्चय (६) योनि-प्रदाह (७) योनि की खुजली (८) स्वप्न-दोष (९) डिम्ब-कोष के रोग (१०) कामोन्माद (११) सूत्राशय (१२) जननेन्द्रिय (१३) नपुंसकत्व (१४) अति-मैथुन (१५) शयन-गृह कैसा होना चाहिए ? (१६) सन्तान-वृद्धि-निग्रह (१७) गर्भ के पूर्व माता-पिता का प्रभाव (१८) मनचाही सन्तान उत्पन्न करना (१९) गर्भ पर तात्कालिक परिस्थिति का असर (२०) गर्भ के समय दम्पति का व्यवहार (२१) यौवन के उतार पर स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध (२२) स्वर-कैप का प्रयोग (२३) माता का उत्तरदायित्व आदि-आदि सैकड़ों महत्वपूर्ण विषयों पर—उन विषयों पर, जिनके सम्बन्ध में जानकारी न होने के कारण हजारों युवक-युवतियाँ बुरी सोसाइटी में पड़कर अपना जीवन नष्ट कर लेती हैं—उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनकी अनभिज्ञता के कारण अधिकांश भारतीय गृह नरक की अग्नि में जल रहे हैं; उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनको न जानने के कारण स्त्री पुरुष से और पुरुष स्त्री से असन्तुष्ट रहते हैं—भरपूर प्रकाश डाला गया है। हमें आशा है, देशवासी इस महत्वपूर्ण पुस्तक से लाभ उठाएँगे। पृष्ठ-संख्या लगभग ३५०, तिरङ्गे Protecting Cover सहित सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) रु०; 'चाँद' तथा पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहकों से १॥॥) मात्र ! पुस्तक सचित्र है !!

केवल विवाहित स्त्री-पुरुष ही पुस्तक मँगावें !

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

चन्द्रलोक, इलाहाबाद

(१) Motherhood and the Relationship of the Sexes by C. Gasquoine Hartley (२) Confidential Talks with Husband & Wife by Layman B. Sperry (३) Youth's Secret Conflict by Walter M. Gallichan (४) The Threshold of Motherhood by R. Douglas Howat (५) Radiant Motherhood (६) Married Love and (७) Wise Parenthood by Dr. Marie Stopes.



मारवाड़ी-समाज

संसार के अन्य समाजों के साथ-साथ मारवाड़ियों को भी अपनी सामाजिक प्रथाओं में परिवर्तन करना होगा। यदि वे सामाजिक, आर्थिक, व्यापारिक और राजनैतिक पुरानी रूढ़ियों को तोड़ कर, अन्य समाजों की समता न कर सकेंगे, तो इस प्रतिद्वन्द्विता के युग में उनका अस्तित्व नहीं रह सकेगा। अब ऊँटों की सवारी पर चलने की प्रवृत्ति काम न देगी। यद्यपि मारवाड़ी-समाज में अभी तक अनेक सुधारों की आवश्यकता है, तो भी कुछ सुधार तो ऐसे अनिवार्य हैं कि वे यदि शीघ्र न किए गए तो समाज को बड़ी भारी हानि का सामना करना पड़ेगा। जैसे रहन-सहन और स्त्रियों के पहनावे में परिवर्तन। साथ ही अब सब देशों में और अन्य समस्त समाजों में स्त्री-शिक्षा का कोई विरोध न रहते हुए भी, इस समाज में स्त्री-शिक्षा का प्रचार जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं हो रहा है। यह एक ख़ास कारण है कि जिससे सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने में अस्वाभाविक विलम्ब हो रहा है।

मारवाड़ी-समाज के पुरुषों में भी वर्तमान प्रणाली की शिक्षा की बहुत कमी है। शिक्षितों की संख्या अँगुलियों पर गिनी जा सकती है। यही कारण है कि उन्हें प्रत्येक रूढ़ि के तोड़ने में धर्म डूबने का डर लगा रहता है। विधवा-विवाह जैसे सामान्य सामाजिक सुधार भी अभी तक मारवाड़ी-समाज में धर्म डूबने के नाम पर रोके जाते हैं! समाज में स्त्रियाँ अब भी पाँव की

जूती समझी जाती हैं। और इसीलिए एक स्त्री के मरने के बाद दूसरा, तीसरा और छठा-सातवाँ तक विवाह करने में भी लोग नहीं हिचकते! परन्तु किसी बाल-विधवा के विवाह का नाम सुन कर, उनका सारा धर्म डूब जाता है!

आज भी यह समाज विलायत-यात्रा के नाम से चौंकता है। एक समय था, जब कि महाराष्ट्र और गुजरात के हिन्दुओं ने विदेश-यात्रा के विरुद्ध आन्दोलन किया था। परन्तु जब उन्होंने समय की गति विपरीत देखी तो बहुत शीघ्र अपना रुझ परिवर्तन कर दिया। आज गुजराती और महाराष्ट्रों के मार्ग विदेश-यात्रा के लिए अवाधित खुले हुए हैं। अरब के उपकुलों में, इटली और फ़्रान्स के टापुओं में, पूर्वी अफ़्रीका, ईजिप्ट और अमेरिका के बन्दरगाहों में गुजराती व्यापारियों का प्राधान्य देखने में आता है। फ़्रान्स में यदि हिन्दुस्तानी को व्याधीश कोई है तो वे मोती के व्यापारी गुजराती ही हैं। इसी तरह चीन और जापान में सिन्धी व्यापारियों का जोर है। परन्तु मारवाड़ियों के लिए बम्बई से आगे जाना ही पाप है! इस मूर्खता का जैसा परिणाम होना चाहिए था, वैसा आज हो रहा है!

प्रकृति के नियमों को कोई रोक नहीं सकता। प्राकृतिक परिवर्तन मारवाड़ियों के लिए ठहर नहीं सकते। यही कारण है कि आज मारवाड़ियों में बेकारी का प्रश्न सब समाजों से अधिक सामने आ रहा है। यह समस्या और भी विकटतर होने वाली है। परन्तु दुःख इस बात का है कि अब भी धर्म की दुहाई देने वाले समाज को सचेत होने नहीं देते! यदि मारवाड़ी-जाति बहुत ही

शीघ्र अपनी सामाजिक प्रथाओं में परिवर्तन कर, संसार की प्रतिद्वन्दिता के युद्ध में खड़ी रहने का उद्योग न करेगी, तो कुछ ही दिनों बाद इस जाति का नाम केवल इतिहासों में पाया जायगा।

—पद्मराज जैन

*

*

*

सत्परामर्श

—७७७—

पूर्व इसके कि मारवाड़ी नाम से प्रसिद्ध व्यक्ति वा जन-समूह के उत्कर्ष और प्रगति-मार्ग पर कुछ कहा जाय, मैं 'मारवाड़ी' शब्द और इसके द्योतक अर्थ



कैप्टेन ठाकुर केसरीसिंह जी, देवड़ा

[आप मारवाड़ के राजपूतों में सुधार का बड़ा प्रयत्न करते रहते हैं और इस विषय में कुछ पुस्तकें भी लिखी हैं।]

पूर्व भाव की व्याख्या—जैसी कि शिक्षित वा अशिक्षित दोनों ही प्रकार के वर्ग में प्रचलित है, और जिसकी विशेषता को ही लक्ष्य में रख कर अत्र-तत्र—सर्वत्र मारवाड़ियों

के साथ जन-साधारण का व्यवहार वा बर्ताव होता है—स्पष्ट शब्दों में कर देना आवश्यक समझता हूँ। क्योंकि 'मारवाड़ी' न तो किसी खास धर्म, पन्थ, सम्प्रदाय के लोगों की जाति है, और न भौगोलिक दृष्टि से ही किसी विशेष भूमि के, जैसा कि राजपूताना में मारवाड़-प्रान्त के, निवासियों पर ही इसका व्यापक वा संग्रहसूचक अर्थ व्यवहार में लागू हो रहा है। मारवाड़ अर्थात् मरुभूमि के सम्बन्ध से तो मारवाड़ी शब्द के उपयोग और व्यवहार में बहुत अंशों में अतिव्याप्ति दिखलाई दे रही है! अतः राजपूताना को छोड़ कर भारतवर्ष की समष्टि में और भारत से बाहर भी 'मारवाड़ी' शब्द की परिभाषा और मारवाड़ियों की पहचान जिस प्रकार होती है, वह यही है कि जो लोग, ईस्ट इण्डिया कम्पनी और ब्रिटिश-राज्य-काल में, मारवाड़, राजपूताना और मध्य-भारत के किसी भी स्थान से अपना घर छोड़ कर धन कमाने के ही उद्देश्य से ब्रिटिश-भारत में वाणिज्य-व्यापार करने गए हों और तीक्ष्ण वणिक्-बुद्धि तथा परिश्रम-कौशल से धन-सञ्चय करके अपने व्यापार-स्थान में बस गए हों; जिनके मस्तकों पर अधिकतर चपटी वा किसी-किसी के सिर पर खूँटेदार पगड़ी दिखलाई दे; जो ज़रा सी धमकी और डर दिखाने से, 'भूँ तो आपका ही छाँ महाराज, जावा द्यो आप तो ज़िस्वा बड़ा छोस्या ही रहो' कह कर दबक जाते हों; जो धन और धन-सत्ता के आगे विद्या तथा धनेतर उच्च मानव-विकास के गुणों को लेश भी महत्व न देते हों; जो युक्ति, प्रमाण, सद्बिचार वा हज़र को डाँट-डपट वा एकाध धौल जमाने से ही समझ सकते हों, वा मानने को तैयार होते हों; जो वित्त को वित्त ही के लिए संग्रह करने में यहाँ तक अमानुषीय हो जायँ कि मराठी के कोषकार को 'मारवाड़ी' शब्द का पर्यायवाची, शेक्सपियर के नाटक का प्रसिद्ध रक्तचूसक, सुदखोर, शाईलाक के सिवा और कोई शब्द ही नहीं मिले; जो 'दारान् रचेद नैरपि' के विपरीत बहु-वेदियों की इज़्ज़त के सामने धन-रत्ना की ही पहले फिक्र करें; जिनकी स्त्रियाँ सोने-चाँदी के ज़ेवरों और भारी-भारी गोटे-किनारी के कपड़ों से लदी हुई घूँघट की ओट में, क्या घर में और क्या सरे बाज़ार, अश्लील से अश्लील गीत गा सकें; जिनके घरों में नौकर, ब्राह्मण, ग्वाले और दरबानों का इतना असर और साम्राज्य बर्दाश्त हो सके कि मुसलिमों

में प्रचलित लोकोक्ति “महमूद के रहे, मसऊद के अण्डे दिए” का यथार्थ व्यावहारिक प्रमाण बिना कठिनाई के मिल सके; और इन सब बातों के अतिरिक्त, जो तत्व-शून्य, धर्म-भीरु, रूढ़ि-प्रेरित दानशील व उदार भी हों !!

मारवाड़ियों की उपर्युक्त शिनाहूत और पहिचान एवं जन-साधारण में उनके विषय में इस प्रकार के परिचय से मारवाड़ी नाम का गौरव क्या है, मारवाड़ियों की भावी सन्तान अपने को मारवाड़ी कहलाने में क्या अभिमान करेगी, अथवा मारवाड़ियों का वह कौन सा इतिहास है, या आगे बनेगा, जो मारवाड़ी-युवकों तथा उनके उत्तराधिकारियों को पूर्वजों की सम्पत्ति-रूप परम्परा से पहुँचे, यह प्रत्येक मारवाड़ी के लिए बहुत ही गम्भीरतापूर्वक विचारणीय विषय है। क्योंकि मानव-उत्थान व मानव-विकास के अनुशीलन में दत्त और तत्वज्ञों का यह स्पष्ट निर्णय है कि चाहे व्यक्तिगत हो, चाहे वर्गागत, मनुष्य अपने पूर्वजों के कारनामों, उनकी गौरव-गाथा व ख्यातियुक्त गुण-ज्ञान को लेकर ही आगे बढ़ता है, व अपना भविष्य बनाता है।

‘Thinking backward and looking forward, (भूत काल का मनन करना और भविष्य पर दृष्टि रखना) यह नियम मनुष्य-जाति की सभ्यता के इतिहास में पद-पद पर अङ्कित है। अतः मारवाड़ी लोगों को समझ लेना चाहिए कि जो कुछ उनका पूर्वकालीन इतिहास है, वह क्या राष्ट्र की दृष्टि से और क्या उनके वर्ग-समूह की दृष्टि से, नितान्त ही अवाञ्छनीय और विस्मृत के सागर में डुबो देने के क़ाबिल है। मारवाड़ियों को यह निश्चित रूप से हृदयङ्गम कर लेना चाहिए कि उनकी लाखों और करोड़ों की गढ़ियाँ, उनकी सोने-चाँदी के ज़ेवरों में जकड़ी हुई समय-विवेक-शून्य रमणियों के भुरमुटों की नुमाइश और कानों में बाली, हाथों में कड़े और गले में तौक पहने हुए उनके मूर्ख ‘कन्या-नुमा’ छोकरे एवं उनके बनियाशाही लीडरों

के धन-सत्ता-प्रदर्शक जलूस और जय-जयकार, प्रगति-शील संसार में कुछ भी वज़न नहीं रखते !

अब धन-सत्तावाद के पाँव उखड़ चुके हैं। शक्ति (Power) ज्ञान (Knowledge) और सङ्गठन (Organisation)—जीवन के ये तीन साधन हैं और ये



परिणित माधवप्रसाद जी शर्मा, एम० ए०, एल्-एल्० बी०,
सॉलिसिटर, बम्बई

[आप मारवाड़ी-ब्राह्मण-समाज के बड़े योग्य और प्रसिद्ध कार्यकर्ता हैं। इस वर्ष गोंदिया (सी० पी०) में होने वाली अ० भा० मारवाड़ी-ब्राह्मण महा-सभा के आप सभापति निर्वाचित हुए थे।]

तीन ही जीवन के द्योतक हैं। और इनके लिए मारवाड़ियों को अपनी पैतृक भूमि राजस्थान की ओर वापस देखना होगा ! उनको चाहिए कि वे अपने मारवाड़ी नाम को त्याग कर “राजस्थान और राजस्थानी” का प्रान्तीय सङ्गठन मज़बूत करें, राजस्थान में शमशान-

तुल्य विशाल महल-भक्तियों को आवाद करें, रियासतों में शासनाधिकार लें और राजस्थान की मिट्टी के गुण-गौरव को शिर पर रख कर परिवर्तनशील संसार के उस क्षेत्र में आ डटें कि जहाँ योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर पार्थ के एकीभूत कर्म-कौशल से यथार्थ श्री, विजय और विभूति प्राप्त होती है !

जब तक मारवाड़ी लोग प्रान्तीयता के कवच से सुरक्षित होकर जीवन-संग्राम में प्रान्तीय गुण-विकास के लिए युद्ध न करेंगे, तब तक इनमें स्वाभिमान, मान-वोचित वीरता, साहस, विद्या, कला-कौशल, स्वशासन के गुण आदि प्रादुर्भूत न होंगे ! मेरी भावना है कि मारवाड़ी लोगों के हृदय में मेरा यह सत्परामर्श गहरी जगह कर ले, और अब कभी भी किसी को 'मारवाड़ी' नाम से विशेषाङ्क वा इसके सदृश पत्रादि निकालने का मौका ही न मिले !

—अर्जुनलाल सेठी

* * *

मारवाड़ी घिस-घिस

श्री मान् सकल गुण-निधान मारवाड़ी शान और आन का बखान करने वाले श्री० चतुरसेन जी महाराज !

जय श्री सैन-भक्त जी की !

आपके दो कृपा-कार्ड आप और मेरे लिए यह अस-मञ्जस लाए कि "साँग झड़े और खुर घिसे पीठ न बोझा लेत, ऐसे बूढ़े बैल को कौन बाँध भुस देत ?" सो बाबा राम-राम कहो, 'चवनप्राश' को चखा 'मोटाड़ा छुँटा को मेह' बरसाने वाले, तनहीन, मन-मलीन, मरु-देश के सुरदार मनुष्यों को कान्ति-कुञ्ज में ले जाकर, इस वर्षा-ऋतु में मल्लार सुना कर कहाँ तक मर्द बना सकोगे ? आजकल तो बज्जौल आपके, मरु-भूमि में "रूंगीले नामदों का दौर-दौरा है ।" अपना तो आखिरी सबेरा है । यह तो आपने सुना ही होगा कि—"मारवाड़ मनसूबे डूबी, पूरब डूबी गाने में । खानदेश खुदों में डूबी दक्खिन डूबी दाने में ।" सो महाराज, लोग सभा-सोसाइटियों के चाहे जितने ताने-बाने तर्क और सैकड़ों समाचार-पत्रों और पोथियों को

भनै, यहाँ तो "सूरदास की काली कमलिया चढ़े न दूजा रङ्ग" वाली कहावत चरितार्थ हो रही है ।

मारवाड़ियों का दृढ़-निश्चय इस वाक्य पर हो रहा है कि—"ना कुछ देखा राम-भजन में, ना कुछ देखा पोथी में । कहत कबीर सुनो भाई कँगलो, जो कुछ देखा रोटी में ।" यदि कोई परिणत बनने का यत्न करे तो यह बाबा-वाक्य सुनाया जाता है—"परिणताई पावै पड़ी, ओ पूरबलो पाप ।" यदि महाराणा, साँगा, प्रताप, जयमल, फत्ता, के यश की गाथा गाओ तो यह सुनाया जाता है—"दारु में मारु सूता नींद में मैं किया जगाऊ रे ।" यदि मैनेजेस्टर और लिवरपूल के रूई के व्यापार से



रावसाहब रामविलास जी शारदा

[ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट व म्युनिसिपल कमिश्नर, अजमेर]

अपार लाभ का ज्योरा बतलाया जाय तो यह गीत गाया जाता है—"रूई तणो व्यापार फेर मत करज्यो जी, अनी फेर मत करज्यो जी, रूई का ज्योपारी स्वामी हो गया ।" यदि फ़ौज या अन्य किसी महकमे में नौकरी की सलाह दी जाय तो मारवाड़ी-ललनाएँ यह कजली सुनाती हैं—"नौकरी मत जाओ सरदार, नौकरी है खाँडे की धार । कमर पर कसी ढाल-तलवार दूपट्टा जरी-किनारीदार ।"

सो महाशय, आपने 'तीन लोक से मथुरा न्यारी' की कहावत तो सुनी ही होगी, परन्तु इसकी निराली छवि मारवाड़ियों में ही देखी होगी । चाहे सैकड़ों वर्ष परदेश

में गए हुए हो गए हों, भोपड़ियों और खपरेलों की जगह महलों और कोठियों का निवास हो गया हो, रेगिस्तानी सूली के बदले फ़िटन और मोटर मिल गई हों, चूतड़-फाड़ टाट के स्थान पर मल्लमल के तकिए और मसनदें क्यों नहीं लग गए हों—परन्तु डागा जी के विचार का पागा वहाँ का वहाँ ही कीचड़ में धँसा है ! और खूबी यह है कि दुनिया भर के अनर्थ करते हुए धर्मध्वजी के धर्मध्वजी बने हुए हैं ! खूब माल उड़ाते हैं। शर्म पास नहीं लाते, स्टेशनों और कचहरियों में बेइज़्जती करवाते हैं—स्त्रियों तक को धक्के खिलवाते हैं !

द्रव्य और व्यवसाय के लिहाज़ से जो इज़्जत और आबरू मारवाड़ियों की होनी चाहिए, उसे ख़ाक में मिला, बम्बई के बाज़ारों में नीची श्रेणी के आदमियों की भाँति “ओ मारवाड़ी ! ओ मारवाड़ी !” शब्द की दुर्गति करवाते हैं ! व्यभिचार बढ़ाते हैं—गर्भपात कराते हैं—अधर्म कमाते हैं ! तनिक भी नहीं लजाते हैं, वरन् ऊपर से गुराँते हैं !! सदाचारी धर्मात्माओं को अपनी हठधर्मी और वाचालता से अधर्मी और दुराचारी ठहराते हैं ! भला ऐसी जाति का उद्धार और दुष्टता का सुधार कैसे हो सकता है ? यह सम्भव है, केवल विद्या-प्रचार और पाखण्डियों के तिरस्कार से—चाहे वह धनाढ्य ही क्यों न हों ।

हे नवयुवको ! यदि जो दुर्दशा मारवाड़ी-समाज की हो रही है, उससे तुम्हें लजा आती है ; और अपनी माँ-बहिनों की जो बेइज़्जती स्थान-स्थान पर हो रही है और वे विधर्म्मियों के चङ्गल में पड़ रही हैं, उससे तुम्हारा सिर नीचा होता है तो कमर कस के खड़े हो जाओ । इन निर्लज्ज, स्वार्थी, टकाधर्मी लोगों की कुछ परवा न करो । अन्त में ‘सत्यमेव जयति’ होगी !!

—(रावसाहब) रामविलास शारदा

*

*

*

मारवाड़ी-नवयुवकों से दो बातें

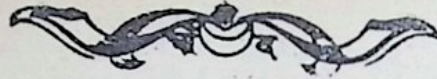
आप क्या अपना सब प्रकार का दुख मिटाना चाहते हैं और सब तरह का आनन्द भी चाहते हैं ? क्या आप मनुष्य-मात्र का दुख मिटाना चाहते



पं० भालचन्द्र जो शर्मा

[प्रधान मन्त्री, अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी-ब्राह्मण-सभा]

हैं ? क्या आप सब तरह से सबको सुखी देखना चाहते हैं ? यदि आप सचमुच ही ऐसा चाहते हैं तो ध्यानपूर्वक नीचे की कुछ लाइनों को पढ़ जाइए । अगर ठीक जैच जाय तो उसी रोग को देश, काल, वस्तु और अपनी शक्ति अनुसार मिटाने की कोशिश कीजिए । गीता में एक जगह अर्जुन ने प्रश्न किया है :—



अथः केन प्रोक्तं पापं चरति पुरुषः ।

अनिच्छन्नपि वाष्पेयं बलदिव नियोजित ॥

अर्थात्—“मनुष्य को पाप आचरण करने को कौन बाध्य करता है। जैसे बैल को अनिच्छा होते हुए भी गाड़ीवान जोत देता है।” इसका उत्तर भगवान् देते हैं :—

काम एव क्रोध एव रजोगुण समुद्भवः ।

महाशना महा पाप्मा विद्वयेमिह वैरिणम् ॥

अर्थात्—“जो यह रजोगुण से प्रकट काम, यानी कामना है, वही बड़ा पाप है। यही अति विषय सेवन-रूप



ठा० युगलसिंह जी खीची, एम० ए०, एल्-एल्० बी०

[आप बीकानेर के नोबल हाईस्कूल के प्रिन्सिपल

तथा बड़े उत्साही कार्यकर्ता एवं सुधारक हैं]

बड़ा आहार करने वाला क्रोध-रूप होता है। इसको ज्ञान विषय में बैरी जानो ।”

अब देखिए ! हमारा बैरी काम और क्रोध है। क्रोध की उत्पत्ति तो काम पूरा न होने पर ही होती है। इसलिए मूल कारण हमारा बैरी काम है। काम कहो अथवा कामना कहो। कामना का अर्थ है अप्राप्त पदार्थ को प्राप्त करने की इच्छा। जब इच्छा उत्पन्न हुई तो उसको प्राप्त

करने का पुरुषार्थ शुरू हुआ। साधारण पुरुषार्थ से अगर इच्छा की पूर्ति नहीं हुई तो ज्यादा पुरुषार्थ किया जाता है। उस पर भी पूर्ति नहीं हुई तो येन-केन-प्रकारेण पूर्ति करना, ऐसी भावना पैदा होती है और इसके फल से नाना प्रकार का पाप किया जाता है !

इतना जान लेने पर प्रश्न होता है, कामना किस अप्राप्त पदार्थ के कारण होती है ? अप्राप्त पदार्थ वास्तव में पड़ोसी के प्राप्त पदार्थ हैं। क्योंकि जो किसी के है ही नहीं, उसकी इच्छा साधारण आदमियों को नहीं होती। अगर आप कहें, भाई पदार्थ बहुत प्रकार के हैं, कोई पदार्थ किसी के होगा और किसी के नहीं होगा। आपका कहना ठीक है, किन्तु आप यह तो मानेंगे ही कि अगर पड़ोसी के पास खर्च या आवश्यकता से अधिक पदार्थ हों तो देखने वाले को उनकी कामना होगी या नहीं ? आप कहेंगे कि अधिक कहाँ हैं, अधिक हों तो अवश्य ले लो। मैं आपसे बिल्कुल सहमत हूँ। शौकीनी के पदार्थ अधिक नहीं हैं, किन्तु जीवन के मुख्य-मुख्य पदार्थ तो बहुत हैं, जैसे अनाज, कपड़ा, मकानात—ये तो बहुत हैं। आप कहेंगे, बहुत हैं, तो उनके हैं वे दूसरों को क्यों दें, वे स्वयं मालिक हैं। भाई साहब, थोड़ा विचार तो कीजिए। इनको मालिक किसने बनाया ? आप कहेंगे, वे अपनी बुद्धि और शक्ति से बने। मैं कहूँगा नहीं, बदमाशी से बने और उसी को बुद्धि और शक्ति का जामा पहना दिया, और मालिक बन कर ‘यह हमारा है, यह हमारा है।’—‘इसको मत छुओ।’—‘सब अपना-अपना रखो।’—‘दूसरे की चीज़ मत छूना।’—‘दूसरे की चीज़ लेना बुरा है, अन्याय है।’—‘भूखे मर जाना अच्छा, किन्तु दूसरे की चीज़ लेना बुरा।—इसी तरह के अनेक वाक्य रच कर अपनी लूट को धर्म का जामा पहना कर बुद्धि और शक्ति से अत्याचार करने लगे ! इसी तरह से जीवन के पदार्थों पर कुछ मनुष्यों ने कब्ज़ा कर लिया। कब्ज़ा करने से यह हुआ कि एक के पास तो पदार्थ बहुत हो गए और दूसरे के पास बिल्कुल नहीं रहे। कारण, प्रकृति तो इतना ही पदार्थ उत्पन्न करेगी वा कराएगी, जितना खर्च होगा। अब इसमें से कुछ आदमी ज्यादा ले लेंगे तो अवश्य ही दूसरे को कमी पड़ेगी।

अब आप समझ गए होंगे कि एक आदमी के पास जीवन के खास पदार्थों (अनाज, कपड़ा और भूमि) के

झ्यादा होने से, दूसरों को अभाव रहेगा और इसी अभाव के कारण उनको प्राप्त करने की इच्छा होगी। इस इच्छा की पूर्ति के लिए वे पुरुषार्थ शुरू करेंगे। जब तक वे ईमानदारी के साथ पुरुषार्थ करेंगे, तब तक वे लोग उनके मार्ग में बाधक रहेंगे, जिन्होंने ज्यादा पदार्थ इकट्ठे कर रखे हैं। अन्त में क्या होगा? वही होगा कि मरता क्या न करता। लूट-खसोट, जुवा-चोरी, बदमाशी, झूठ-कपट सब उपाय किए जाने लगेंगे और परिणाम में दुख उत्पन्न होगा। इधर ज्यादा पदार्थ रखने वाले उनकी रक्षा करने में दुःख पाएँगे। नाना प्रकार का छल-कपट करेंगे। वे कुछ आदमियों को ज्यादा पढ़ा कर अपनी रक्षा और पाप-कर्म में सहायक बनाएँगे तथा धर्म और ईश्वर के नाम पर शास्त्र रचा कर झूठ और अन्याय का प्रचार कराएँगे। कभी-कभी उनके ही जैसा कोई दुष्ट मिल जायगा तो आपस में पहलवानों की तरह तेज़ी और मन्दी की लड़ाई करेंगे! उनमें से एक हार जायगा तो दूसरा उसे हड़प लेगा। जो हारेगा वह फिर लड़ेगा और नाना प्रकार की जालसाज़ी रचेगा। ये लोग कुछ आदमियों को मुफ्त में खिला-खिला कर अपनी रक्षा भी कराते हैं और भोले आदमी इनकी दम-पट्टी में आकर इन मुट्ठी भर आदमियों की रक्षा करते हैं और गरीबों की जान लेते हैं तथा आप भी मरते हैं।

अब आप समझ गए होंगे कि हमारे दुखों को उत्पन्न करने वाले और सुखों के नाश करने वाले एक-मात्र जीवन के आवश्यक पदार्थों पर व्यक्तिगत सत्ता जमाने वाले ही हैं और जब तक इस तरह का व्यवहार दुनिया में जारी रहेगा, अथवा हम ऐसी बातों को चुनचाप होने देंगे, तब तक दुःख सिटना और सुखी होना स्वभावतः सम्भव नहीं।

मनुष्यों के कष्टों का एक ज़बरदस्त कारण और भी है, और वह है “धर्म व ईश्वर के नाम पर ठगबाज़ी।” पर स्थानाभाव के कारण अभी इस विषय पर कुछ प्रकाश नहीं डाला जा सकता। अबसर मिला तो फिर कभी इसकी चर्चा की जायगी।

इन दोनों कारणों के पोषक हैं बनिए यानी व्यापारी। व्यापारियों में वे सभी शामिल हैं, जोकि व्यापार का पेशा करने हैं। वे हिन्दुस्तानी हों या अङ्गरेज़; पशियाई

हों या यूरोपियन—सबको ही समझ लेना चाहिए! किन्तु यह ‘चाँद’ का मारवाड़ी विशेषाङ्क है और मारवाड़ी जाति में मुख्यता मारवाड़ी व्यापारियों ही की है, इसलिए मैं मारवाड़ी-नवयुवकों से यह निवेदन करता हूँ कि अगर आप यह अनर्थकारी व्यक्तिगत सत्तावाद के मिटाने की इच्छा कर लें, तो आप इस कार्य को सहज ही में



परिचित विश्वेश्वरनाथ जी रेऊ

[आप जोधपुर के पुरातत्व-विभाग (आर्कियालॉजिकल डिपार्टमेण्ट) के अफ़सर और इतिहास तथा साहित्य के विद्वान् हैं।]

बहुत-कुछ पूरा कर सकते हैं। वर्तमान समय में संसार के दुःखों के कारण आप बने हैं। अगर आप ऊपर लिखे काम कर दिखावें तो सुखों के कारण भी बन जायें।

—बालकृष्ण मोहता

कलकत्ता का सुधारक मारवाड़ी-समाज

कि सी भी देश, समाज या जाति का उत्थान अधिकतर उस जाति के नवयुवकों के ऊपर ही निर्भर रहता है, जिस जाति के नवयुवकों में उत्साह, उमङ्ग और काम करने की लगन होनी है, वह जाति चाहे कितनी ही पिछड़ी हुई क्यों न हो, बहुत ही शीघ्र उन्नतिशील जातियों की श्रेणी में दीख पड़ती है। आज ठीक यही



पं० निरञ्जननाथ जी गुट्टू, एल० एम० एस०

[आप मारवाड़ के एक सुप्रसिद्ध डॉक्टर हैं]

दशा मारवाड़ी-समाज की है। इसमें कोई शक नहीं कि देश के कई कोनों में अभी तक यह धारणा बैठी हुई है कि मारवाड़ी उन्नति की दौड़ में सभी जातियों से पीछे हैं। किन्तु खोज करने पर ऐसी धारणा रखने वालों को मझान् आश्चर्य होगा कि जिस मारवाड़ी-समाज को अन्य समाज के लोग पिछड़ा हुआ समझ रहे हैं, वह मारवाड़ी-समाज आज कई उन्नतिशील समाजों से आगे

बढ़ा हुआ है। मारवाड़ी-समाज के अन्दर सुधार की जाग्रति विजली के समान फैल रही है। इस जाति को इतनी शीघ्र सफलता मिलने का एक कारण यह मालूम पड़ता है कि इसके अन्दर सुधारों का विरोध करने वाले भी इतने ही अधिक कट्टर हैं, जितने कि सुधारों के पक्षपाती ! यह मानी हुई बात है कि कोई भी आन्दोलन बिना विरोध के आगे बढ़ नहीं सकता। जिस आन्दोलन का विरोध नहीं होता, उसके पनपने में बहुत देर लगती है !

इस समय मारवाड़ी-समाज की सभी जातियों में दो दल काम कर रहे हैं। एक दल तो वह है, जोकि पुरानी रूढ़ियों का पोषक, 'बाबा-वाक्यं प्रमाणं' का मानने वाला है। अपनी आन पर उसने लाखों रूपयों को पानी की तरह बहा दिया और बहा रहा है। इस दल का प्रधान कार्य प्रत्येक प्रकार के सुधारों का विरोध करना ही है, चाहे वह सुधार देश के किसी भी जाति या कं.ने में क्यों न होता हो। इन्हीं महाबु-भावों के अर्थ के प्रभाव से कूपमण्डूक पण्डित कहलाने वाले कुछ लोग आज बाल-विवाह और वृद्ध-विवाहों तक का समर्थन करते तनिक भी नहीं सकुचाते ! इतना ही तक नहीं, देश के चुने-चुने नेताओं तक को, इस दल से पेट पालन करने वाले पण्डित नामधारी जीव खुल-खुल कर गालियाँ तक बकने और लिखने में नहीं सकुचाते ! लिखने का अभिप्राय यह है कि एक दल की दशा यह है। दूसरा दल ठीक इसके विपरीत है। वह दल नवयुवकों का दल है, जोकि उग्र से उग्र—प्रत्येक प्रकार के सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक सुधारों का पक्षपाती है। इस दल के वीर-युवक प्राणपण से, तन-मन-धन से सदैव देश-काल का साथ देते हैं। इस दल ने गत १० वर्षों में इतनी अधिक उन्नति की है कि उसको देख कर आश्चर्य करना पड़ता है। स्त्री-शिक्षा, पर्दा-निवारण, विधवा-

विवाह करना इस दल ने अपना प्रधान उद्देश्य बना लिया है। साथ ही साथ देश की स्वतन्त्रता की लड़ाई में भी इस दल का खासा हाथ है। कट्टरता के गढ़ मारवाड़ी-समाज में इन सुधारक वीरों की विजय वास्तव में एक महत्व की विजय है। जहाँ पर 'सुधार' शब्द से लोगों के कान खड़े हो जाते थे, उस समाज में आज सैकड़ों नवयुवक विधवा-विवाह करने के लिए तैयार बैठे हैं ; बहिनों की

एक अच्छी तादाद ने पर्दा की कुप्रथा को दूर हटा फेंका है; स्त्री-शिक्षा के लिए कई बालिका-विद्यालय खुल गए हैं, जहाँ पर उचित तरीक़े से भावी मातृ-जाति को शिक्षा दी जा रही है। मारवाड़ी-समाज की उन्नति का सूर्योदय हो गया है। सूर्य की किरणें धीरे-धीरे उग्र रूप धारण करती चली जा रही हैं। अब वह दिन दूर नहीं दीख पड़ता, जब मारवाड़ी-जाति थोड़े ही दिनों में उन्नति-शील गिनी जाने वाली जातियों में अपना स्थान प्रथम रखेगी। कारण, समाज-सुधारक समाज की बुराइयों को गिन-गिन कर समाज से बाहर निकाल फेंकने की भरपूर चेष्टा कर रहे हैं।

अन्ध-परम्परा के विचार, कृपमण्ड-कता के विचार धीरे-धीरे हट रहे हैं, किन्तु सफ़ाई के साथ। आज कितने ही मारवाड़ी-नवयुवक विदेशों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, किन्तु लौट आए हैं, किन्तु वहाँ पर व्यापार करते हैं और कितने ही जाने की तैयारी में हैं। सामाजिक क्रान्ति इस समाज के अन्दर उथल-पुथल मचा रही है। नवयुवक मारवाड़ी-समाज रात-दिन इसी चिन्ता में रहता है कि किस प्रकार उनकी जाति आगे बढ़े। उन्नति की लालसा से व्यग्र और उतावले होकर मारवाड़ी-नवयुवक अपनी जाति के नौनिहालों के लिए अपना सर्वस्व निछावर करने के लिए इस समय तत्पर मिलेंगे।

इस जाग्रति का सारा श्रेय कलकत्ता को है। मारवाड़ी-समाज के अन्दर सुधार और विरोध दोनों प्रकार

करने के लिए तैयार हो गए हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि मारवाड़ी-समाज के अन्दर जो आज सुधार-लहर लहराती हुई दीख पड़ती है, इसमें कलकत्ता का विशेष हाथ है।

कलकत्ते के सुधारकों के अगुवा हैं बा० घनश्यामदास



स्वर्गवासी रावबहादुर ठाकुर मङ्गलसिंह जी, सी० आई० ई०
[आप जोधपुर-राज्य की काउन्सिल के एक प्रभावशाली मेम्बर थे]

के आन्दोलन यहीं से प्रारम्भ हुए हैं। कलकत्ते के सुधारक देश भर में अपनी जाति के अन्दर सुधार का अमृत भाइयों को पिलाने के लिए मुस्तैद हो गए हैं। इसके लिए वे अपना सारा समय, तन-मन-धन, सदैव अर्पण

जी बिड़ला। बिड़ला जी के नाम से आज सारा देश परिचित है। बिड़ला-परिवार का परिचय आज किसी को भी देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। बिड़ला जी देश के लिए जो कुछ दान देने हैं, वह सर्व-विदित है।

आप मारवाड़ी-जाति की उन्नति के लिए अपनी हानि भी बर्दाश्त कर लेते हैं। कलकत्ते में सुधारकों की संख्या प्रतिदिन बढ़ने का कारण आपका प्रेम भी है। आप राजनीति में माननीय मालवीय जी के अनुयायी हैं। हिन्दुओं के लिए आपके कोप से काफ़ी रक़म प्रति मास बाहर निकलती है। यदि अत्युक्ति न समझी जाय तो हम कह सकते हैं कि आपके पूज्य जेष्ठ भ्राता बा० युगलकिशोर जी



बाबू रामेश्वरलाल जी सराफ, एम० एल० सी०
[आप बिहार की काउन्सिल के मेम्बर हैं। देवघर ज़िले के आप प्रधान नेता हैं। आप देश-हित के सभी कामों में भाग लेते रहते हैं]

बिड़ला के सम्बन्ध में जो यह कहा जाता है कि आप हिन्दुओं ही की नींद से सोते और जागते हैं—यह सोलहो आने ठीक है। युगलकिशोर जी उन महापुरुषों में से हैं, जो कि काम करना जानते हैं, नाम नहीं। दूसरे नेता हैं बाबू पद्मराज जी जैन। जैन जी जैन-शास्त्र तथा हिन्दी-अङ्गरेज़ी के अच्छे विद्वान् हैं। आप उग्र-सुधारकों

में से एक हैं। आप हिन्दू-महासभा तथा हिन्दू-अबलाश्रम एवं अनाथालय के मन्त्री हैं। सामाजिक बन्धनों की तनिक भी चिन्ता न करते हुए, आप विलायत-यात्रा कर आए हैं। आपके घर में पदों की कुप्रथा एकदम नहीं है। राजनीति में आपका कहना है कि आप भगवान् तिलक को अपना गुरु मानते हैं। तीसरे हैं बा० प्रभुदयाल जी हिम्मतसिंहका एम० एल० सी०। आप कलकत्ता हाई-कोर्ट में प्रेक्टिस करते हैं। आप पर दोनों दलों का विश्वास है। सुधारक दल के तो आप प्राण हैं। राजनीति में आप स्वराजिस्ट पॉलिसी के मानने वाले हैं। वर्रों पहले आप नज़रबन्द भी रह चुके हैं। सुधारक दल बिना आपकी सलाह के कोई काम नहीं करता। जानकारों का कहना है कि बा० धनश्यामदास जी बिड़ला आपके अभिन्न-मित्र हैं और बिड़ला जी आपसे अपने कामों में बहुत अधिक सलाह लिया करते हैं। बा० प्रभुदयाल जी बहुत ही मिलनसार तथा मिष्टभाषी हैं। आप अपनी कमाई का अधिकांश देश-सेवा तथा देश-सेवकों के लिए खर्च कर देते हैं। आप कितने ही बालकों को गुप्त छात्रवृत्ति देकर, उनको शिक्षित बना रहे हैं। मारवाड़ी-समाज में बढ़ते हुए शिक्षा-प्रचार का अधिकांश श्रेय आपको है। आपमें सबसे बड़ा जो गुण है, वह यह है कि आप इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं कि पार्टी का साथ कैसे दिया जाता है। मारवाड़ी-जाति के नव-युवकों का उत्थान हो, इसके लिए आप सदैव परिश्रम करते रहते हैं और बराबर उनको प्रोत्साहन देते रहते हैं। अखिल भारतवर्षीय नवयुवक मारवाड़ी-समाज के नेता होने योग्य जो गुण चाहिए, वह सब आप में मौजूद हैं।

आप लोगों के सहायक बा० बसन्तलाल मुरारका, बा० नारायणदास बाजोरिया, बा० भागीरथमल कानोडिया, बा० सीताराम सेखसरिया, बा० जगन्नाथ गुप्त, बा० रामकुमार जालान, बा० दुर्गाप्रसाद खेतान, बा० रामकृष्ण जी मोहता, बा० मोतीलाल लाठ, बा० गणपतराय विमाणी आदि प्रमुख हैं। बा० बसन्तलाल जी सुधारों में बहुत आगे बढ़े हुए हैं। इनके विचार बहुत उग्र हैं। बा० नारायणदाम जी बाजोरिया, बी० ए० सनातनी सुधारक हैं। आप विलायत-यात्रा कर चुके हैं। आप संसार की क्रान्ति का स्वागत करते हैं। अभी अफ़ग़ानिस्तान के क्रान्तिकारी सुधारक अमीर अमानुल्लाह

खाँ को आपने उनकी विपत्ति के इस अवसर पर दस हजार रुपए की सहायता भेजी है ! हिन्दू-अनाथालय को भी आपने बीस हजार की सहायता दी है । आप सामाजिक क्रान्ति का स्वागत धार्मिक ढङ्ग पर सदैव करते रहते हैं । बा० भागीरथलाल कानोडिया सुधारकों की संस्थाओं के आर्थिक प्राण हैं । आप शरीर से तो कम, किन्तु अर्थ से बराबर मदद करते रहते हैं । आप बिड़ला-ब्रदर्स के हिस्सेदार तथा मैनेजर हैं । बाबू दुर्गाप्रसाद खेतान, खेतान-परिवार के उठते हुए सुधारक हैं । इधर आपने सुधार-सम्बन्धी कामों में बहुत भाग लेना प्रारम्भ कर दिया है ।

बा० रामकृष्ण जी मोहता मारवाड़ी-समाज के कर्णधार हैं । आप ऐसे रत्नों को पाकर मारवाड़ी-समाज ही क्या, हिन्दू-समाज अपना गौरव समझता है । आप बहुत बड़े गुप्त दानी तथा छुपचाप काम करने वाले हैं, आप साधु-हृदय हैं । बा० जगन्नाथ गुप्त पुराने समाज-सेवक हैं । बा० गणपतराय विमाणी और बा० मोतीलाल लाठ उठते हुए उग्र-सुधारकविचार के हैं ।

इस दल के अतिरिक्त एक नरम सुधारक-दल और है, जिसका उद्देश्य धीरे-धीरे सुधार करना है । इस दल में बा० रङ्गलाल जी नाजोदिया, बा० तुलसीराम सरावगी, बा० वैजनाथप्रसाद देवड़ा, बा० ईश्वरदास जातन, बा० मगनमल जी कोठारी आदि हैं । सुधारकों के अन्दर ही एक और दल है, जिसका नेतृत्व बा० महावीर-प्रसाद जी पोद्दार करते हैं । यह दल खड्ग का प्रचार जोरों के साथ करने की तैयारी कर रहा है । इसमें प्रमुख भाग बा० सीताराम सेखसरिया तथा बा० वैजनाथ केड़िया का है ।

इन सबों के अतिरिक्त कलकत्ते के सुधारकों में दो सुधारक ऐसे और हैं, जिनको भूल जाना न्यायसङ्गत नहीं होगा । उनमें से एक हैं बा० बालकृष्ण जी मोहता । आपके विचार मारवाड़ी-समाज के सुधारकों ही से क्या, हिन्दू-समाज भर में बहुतों से आगे बढ़े हुए हैं । आप विचार-स्वातन्त्र्य के मानने वाले हैं । आपकी धर्मपत्नी भी आपके कामों में अच्छा हाथ बटाती हैं । आपके विचार बड़े ही क्रान्तिकारी हैं । स्त्रियों की स्वतन्त्रता के पीछे आप पागल-से हो रहे हैं । आप जाति-भेद के मिथ्या ढकोसले को नहीं मानते, और मनुष्य-मात्र की एक जाति है, ऐसा आपका विश्वास है । आप-सरीखे उग्र-सुधारक

मारवाड़ी-समाज की बात तो अलग रही, देश भर में बहुत ही कम हैं । जो कुछ आप कहते हैं, वह स्वयं करते भी हैं, यह आपमें एक महान् गुण है ।

दूसरे हैं बा० गङ्गाप्रसाद जी भोतिका; एम० ए०, बी० एल०, काव्यतीर्थ । आप देवता हैं । अपने विचारों और सिद्धान्तों के बहुत ही पक्के सुधारक हैं । आप इस समाज के एक रत्न हैं, इतना ही लिखना प्रयास होगा ।



दानवीर रायबहादुर सैठ कुन्दनमल जी, कोठारी
[ऑनररी मैजिस्ट्रेट व्यावर (राजपूताना)]

कलकत्ते के मारवाड़ी सुधारक-समाज के अन्दर भी सिद्धान्त का थोड़ा-थोड़ा मतभेद अवश्य है । किन्तु जाति के उत्थान का जब प्रश्न आता है, तब सब आपस के छोटे-छोटे सैद्धान्तिक मतभेदों को भूल कर, एक हो जाते हैं । यह बात इसका प्रमाण है कि मारवाड़ी-जाति उन्नति के पथ पर अग्रसर होती जा रही है । उसकी जाति के नेताओं और कार्यकर्त्ताओं को अपनी जाति की उन्नति के सामने अपने सैद्धान्तिक मतभेद छोड़

देना सदैव वाञ्छनीय रहता है। इस समाज के कार्यकर्ता जाति की उन्नति के लक्ष्य को सामने रख कर सारा कार्य करते हैं। कलकत्ते का मारवाड़ी सुधारक-समाज बहुत ही अधिक सुसङ्गठित तथा अपनी लगन में दत्तचित्त है—यही कारण है कि कलकत्ता आज देश भर के मारवाड़ियों का नेतृत्व कर रहा है। *

—रामदहिन ओझा

* * *

हमारा प्यारा राजस्थान

वो रभूमि राजस्थान का प्रत्येक निवासी 'मारवाड़ी' कहलाता है। मारवाड़ी नाम सुनते ही मेरे हृदय में प्रेम की धारा बह निकलती है। इस नाम में जाड़ है। क्योंकि 'मारवाड़ी' शब्द सुनते ही राजस्थान-निवासियों का—राजा से लेकर रङ्ग, भीलों तक का—प्राचीन गौरव स्मरण हो आता है और उनके अपूर्व स्वार्थ-त्याग और देश पर बलिदान होने के भाव-चित्र आँखों के सामने खिंच जाते हैं। मारवाड़ी-वीरों की प्रसविनी राजस्थानीभूमि के सपूतों की वीरता और देश-भक्तिकी प्रशंसा—इसके कट्टर से कट्टर शत्रु सम्राट् अकबर से लेकर अत्याचारी औरङ्गजेब तक—सकल मुगल-सम्राट् कर गए हैं। मारवाड़ी-वीरों की हिमालय-सदृश दृढ़ता बड़े-बड़े प्रतापी सम्राटों के ललाटों में सिकुड़न उत्पन्न करती थी। मुसलमानों के हृदयों पर मारवाड़ियों की वीरता, निर्भयता तथा दिलेरी की गहरी छाप थी। मारवाड़ का सिक्का मुगलों के हृदय-पटल पर सदा बैठा रहता था। महाराणा प्रताप, जयमल और फ़त्ता की वीरता और देशभक्ति की प्रशंसा सम्राट् अकबर स्वयं कर गए हैं। मारवाड़ी-वीर अमरसिंह की कटारी के भय से महलों में भागने वाला शाहजहाँ बादशाह, राजपूतों की भूरि-भूरि प्रशंसा कर गया है। आगरे के क़िले का अमरसिंह-दरवाज़ा और अमरसिंह का घोड़ा आज तक उस वीर मारवाड़ी की

इस वीरता को पुकार-पुकार कर बतला रहे हैं कि अकेला मारवाड़ी-वीर अपनी निर्भयता से किस प्रकार बादशाही सल्तनत हिला सकता है। वीरवर दुर्गादास राठौड़ ने मुसलमान-सम्राट् की खास राजधानी दिल्ली में लाखों मुगल-सेना के दाँत खट्टे कर, मार-धाड़ करते हुए अपने महाराजा अजीतसिंह को दिल्ली से लाकर मारवाड़ के तख्त पर बिठाया। उन्होंने वषों युद्ध किया, पर निराश कभी न हुए! उन्होंने सारे राजस्थान का



वैद्यराज ठा० कल्याणसिंह जी वर्मा

[आप अजमेर के एक सुप्रसिद्ध वैद्य एवं सुधारक हैं]

हिन्दू-सङ्गठन किया और औरङ्गजेब के छुके छुड़ा दिए। यहाँ तक कि औरङ्गजेब का शाहज़ादा अकबर * तक उनसे आ मिलता था और औरङ्गजेब उनसे सन्धि की भिन्न माँगता था। औरङ्गजेब उनको मारवाड़ के मूल्यवान प्रदेश

* उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा से हमारी प्रार्थना है कि इस लेख की प्रत्येक बात सत्य सिद्ध हो।

—सं० 'चाँद'

* औरङ्गजेब के अन्तिम शाहज़ादे का नाम भी 'अकबर' था। पाठकों को भ्रम न होना चाहिए।

—सं० 'चाँद'

देता था, परन्तु इस वीर मारवाड़ी ने इन सब पर लात मार दी और साधारण सिपाही का जीवन व्यतीत कर अपने देश की रक्षा करने में ही गौरव समझा।

मारवाड़-निवासी सच्ची स्वतन्त्रता के पुजारी होते हैं। ये भारतीय सभ्यता की रक्षा में प्राण अर्पण करने वाले, उद्देश्य की पूर्ति के लिए कष्ट उठाना धर्म समझने वाले, शत्रुओं के प्रहार से मैदान न छोड़ने वाले, दुष्टों के आँखों और उपहासों से न डरने वाले, कभी भी रणभूमि से पग पीछे न हटाने वाले, कठिन तपस्या और कठोर व्रत रखने वाले, शरीरों से हृष्ट-पुष्ट और महान् पराक्रमी होते थे। मारवाड़ी वीर, एकान्त में बैठ कर बरसों तक तपस्या करने से स्वर्ग प्राप्त करने के स्थान में रणभूमि में जूझ कर खून की नदियाँ बहा कर, तुरन्त ही स्वर्ग प्राप्त करते थे! मारवाड़ी-देवियाँ खड्ग हाथ में लेकर, अपने पतियों के साथ घोड़ों पर बैठ कर रणभूमि में तलवारों से शत्रुओं के समूहों के सिर धड़ से उड़ाती हुई वीर-गति को प्राप्त होती थीं, या रण में काम आए पति के साथ सती हो जाती थीं, या जलती हुई चिताओं में सतीत्व-रक्षार्थ हँसती हुई कूद पड़ती थीं और स्वर्ग प्राप्त करती थीं। यदि कोई मुझसे पूछे कि संसार के इतिहास में कौन सी ऐसी जाति है, जो ऊँचा मस्तक कर कह सकती है कि उसकी देवियों ने केसरिया बाना पहिन कर, नग्न खड्ग हाथ में लेकर, घोड़े पर सवार होकर, रण-चण्डी को चेताया, तो उत्तर मिलेगा कि वह राजपूताना की वीर मारवाड़ी-जाति है। यदि कोई जाति छाती फुला कर कह सकती है कि हमने राक्षसों, पिशाचों और विधर्मियों का मर्दन किया तो वह मारवाड़ी है। मारवाड़ियों के शरीर में स्वदेश-प्रेम, स्वार्थ-त्याग और धर्म-प्रेम का ज्वार-भाटा उठता रहता था।

आज भारत पराधीनता की ज़ब्ज़ीर में बँधा है। और इसके अधःपतन के साथ-साथ राजस्थान सर्वथा ग़लाम-देश बना हुआ है। परन्तु जैसे बरसात में राजस्थान की प्रशस्त मरु-भूमि में हरी-हरी घास और कलकल नाद करते हुए भरने और नाले अति सुहावने मालूम होते हैं, वैसे ही इस भयङ्कर अविद्यान्धकार में गर्ज ग़लाम-देश में इसके कुछ स्वार्थ-त्यागी सपूतों से इसका सम्मान

है। घनघोर काले बादलों में रजत-रेखा के समान मारवाड़ी-सेठों की दानवीरता, उनके बनाए विशाल मन्दिर और बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ और देश की राज-नैतिक, सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं को उनका प्रचुर दान, मारवाड़ियों का नाम सार्थक कर रहा है। मारवाड़ी-वीर जिस प्रकार रण में अकेला ही जूझता था, उसी प्रकार वह आज भी अकेला ही लाखों रुपए पुण्य



राजपूताने के प्रसिद्ध सार्वजनिक कार्य-कर्ता और समाज-सुधारक

कुँवर चाँदकरण जी शारदा वी० ए०, एल्-एल्० वी०

कर हिन्दू-जाति के लिए वह महान् कार्य कर जाता है, जो लाखों बाबुओं के चन्दे से नहीं हो सकता।

दुःख है कि भारत में कुछ पश्चिमी सभ्यता के प्रेमी हरेक बात में यूरोप की नक़ल कर अपनी असली भाषा, भाव और भेष को छोड़ रहे हैं! परन्तु मारवाड़ी आज भी, इस गई-गुज़री हालत में भी, धर्म पर आखड़ हैं। यूरोप की रमणियाँ लजा से मुख नीचा कर लेती हैं, जब वह

पढ़ती हैं कि राजस्थान की देवियाँ पातिव्रत्य-धर्म का इतना पालन करने वाली होती थीं कि वे दहकती हुई चिताओं में प्रसन्न-मुख सज-धज के साथ जल मरती थीं, परन्तु पर-पुरुषों को अपना अङ्ग स्पर्श नहीं करने देती थीं ! और पति भी पत्नी के पति भीमसिंह के समान होते थे, जो स्वयं मर मिटते थे, पर स्त्री की आन रखते थे और उसके सतीत्व की रक्षा करते थे। इन मारवाड़ियों की



व्यावर (राजपूताना) के सुप्रसिद्ध दानवीर श्रीमान् सेठ
कुन्दनमल जी ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट के पुत्र

श्रीमान् लालचन्द जी

जन्मभूमि राजस्थान ही को यह गौरव प्राप्त है कि यहाँ की देवियाँ अपने पुत्रों और पतियों को अपने हाथों से अस्त्र-शस्त्र बाँध कर रण-भूमि में मातृभूमि के रक्षार्थ भेजती थीं और बड़ा उत्सव मनाती थीं। वे अपने पतियों के वीरोचित युद्ध करते हुए मारे जाने पर हर्षित होती थीं और उनसे जल्दी मिलने के लिए सती हो जाती थीं अथवा विजयी होकर लौटने पर उनकी आरती

उतारती थीं। संसार के इतिहास में ऐसी वीर-जाति मिलना कठिन है।

पर हा ! अब मारवाड़ी-जाति का वह ओज, तेज, बल कहाँ ? अब तो 'मारवाड़ी' शब्द का अर्थ कायर, रिश्वत देने वाला, कञ्जूस, सूदखोर समझा जाता है ! कौन छाती ठोक कर कह सकता है कि मैं वीरता के गुण वाला वही वीर मारवाड़ी हूँ ? कौन ऊँचा मस्तक कर कहने को तैयार है कि दुष्ट, अन्यायी, अत्याचारियों का मैं नाश करूँगा ? कौन धन की अपेक्षा स्वाभिमान और हिन्दू-गौरव का मूल्य अधिक समझता है ? कौन अपने अनुपम धैर्य, साहस, पराक्रम और त्याग से मातृभूमि के अभिमान और गौरव के रक्षार्थ प्रयत्नशील है ? गहरी साँस लेने के बाद उत्तर मिलता है—हाँ ! राजस्थानी वीर मारवाड़ी फिर उठेंगे। अब भी अतीतकाल के मारवाड़ी-वीरों की स्मृति से हमारे भीतर स्फूर्ति आती है और आवेगी ! क्या प्रचण्ड वीरता और दुर्दमनीय देश-भक्ति अब भी मारवाड़ी-युवकों में प्रज्वलित होगी ? क्या राजस्थान के चात्र-तेज, स्वदेशाभिमान, अविरल पराक्रम के बखान करने वाले हमारे कवि, भाट, चारण और साहित्य के बड़े-बड़े महारथी हमें फिर कमर कस कर खड़े होने के लिए उत्साहित करेंगे ? उत्तर मिलता है—हाँ ! अवश्य देश उठेगा ! परमात्मा करे कि 'चाँद' का "मारवाड़ी-अङ्क" मारवाड़ियों के हृदय से निराशा को काफ़ूर कर दे। यह अङ्क निराशा के अन्धकार में रात्रि राजस्थान में उज्ज्वल आशा की किरण बन कर, बिना जाति-पाँति के भेद के राजा से रङ्ग तक प्रत्येक मारवाड़ी के घर को जगमगा दे। और अर्बली पर्वत की तलहटियों में फिर वही भारतीयता का जय-जयकार और स्वातन्त्र्य का नानाद गुंजायमान हो ! फिर मारवाड़ी-युवक प्रिय राजस्थान की घाटी-घाटी, दर्रे-दर्रे और वन-वन में असहनीय कष्ट भेलते हुए अशान्वित और प्रोत्साहित होकर देश-प्रेम की रण-भेरी बजावें। तभी वीर-पूजा के भावों वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए 'मारवाड़ी' शब्द सदा पूजनीय, आदरणीय और अनुकरणीय रहेगा। बोलो वीर-भूमि राजस्थान-निवासी तथा प्रवासी मारवाड़ी-वीरों की जय !

—चाँदकरण शारदा, वी० ए०, एल्-एल्० वी०

*

*

*

मारवाड़ी-जाति में समाज-सुधार

देश में आज जिस वेग से परिवर्तन हो रहा है, उसका असर अभी तक मारवाड़ी-समाज पर नहीं के बराबर हुआ है। वयों से सभाएँ स्थापित हैं, प्रति वर्ष बड़ी शान-शौकत और धूमधाम से अधिवेशन किए जाते हैं, परन्तु प्रस्ताव अभी यही पास हो रहे हैं कि विवाह के समय कन्या की आयु बारह और लड़के की आयु सोलह होनी चाहिए! इससे कुछ और आगे बढ़े तो बटाशों के बाँटने में या नाई-ब्राह्मणों के पैसे-टके देने में कमी-वेशी की गई या बाज़ारों में सीठने अथवा गाली न गाई जाने का प्रस्ताव पास किया गया !!

यह तो हुई सुधारक-पार्टी की बात। अब इन सुधारों से तज़ आकर कुछ लोगों ने महा-पञ्चायतों की स्थापना और की है। इन महा-पञ्चायतों का ध्येय समाज को सौ वर्ष पीछे ले जाना है! अर्थात् वह फिर से पञ्च-चौधरियों के औरङ्गजेबी शासन को स्थापित करना चाहती हैं, जिनके हुक्म के पहले ही सिर पर जूतों की गठरी लाद कर खुशामद व आजिज़ी करनी पड़ती है!

इस सुधार की घुड़दौड़ में प्रत्येक जाति अपना सुधार करने को अग्रसर हो रही है। क्या अग्रवाल, क्या खरडेलवाल, क्या माहे-श्वरी, क्या बीजावर्गी, क्या ओसवाल, क्या पोरवाल—सभी जातियों में प्रतिवर्ष महासभा और महापञ्चायतों के अधिवेशन किए जाते हैं। पर अमली सुधार कुछ नहीं हो रहा है। बहुत से उपयोगी प्रस्ताव पास करने पर भी, वास्तव में समाज का कुछ भी सुधार नहीं हुआ। अब भी पुरानी रूढ़ि के अनुसार मारवाड़ी-स्त्रियाँ अपनी सहेलियों के साथ सभ्यता के विरुद्ध गीत गाती हुई निकलती हैं, और गुण्डों की टोली साथ में इशारेबाज़ी और आवाज़ाकशी करती चलती है! इस दृश्य को देख कर लज्जा को भी लज्जा आती है!! इनकी समझ में यह बाप-दादों की लकीर है और इसमें किसी तरह का परिवर्तन होना इनके धर्म में आघात पहुँचाता

है। एक तरफ़ स्वतन्त्रता की वेदी पर सहस्रों मनुष्य सब कुछ अर्पण करने को तैयार हैं, दूसरी तरफ़ समाज को गुलामी में जकड़ने के लिए महापञ्चायतों की स्थापना में थैलियों पर थैलियाँ खर्च की जा रही हैं! समझ में नहीं आता कि इन लोगों के दिल-दिमाग़ किस वस्तु के बने हुए हैं?

इसमें तो कोई शक नहीं कि मारवाड़ी रुपया कमाने में कमाल ही करते हैं। इन्हें रुपयों के सामने किसी बात का भी ध्यान नहीं रहता। मिसाल के तौर पर एक मारवाड़ी-सेठ पचास-साठ वर्ष की अवस्था में बारह वर्ष



बेटी-बेचा दलाल चौधरी

[पण बार थे जाणा क म्हें, तीसरा को अठे काम कोनी]

की लड़की के साथ विवाह का नाटक रचता है और उसके साथ में सब पञ्च-चौधरी रङ्ग-मञ्च पर जाकर उसका साथ देते हैं! परन्तु इनके दिमाग़ में यह बात नहीं आती कि क्या बारह वर्ष की बाल-विधवा 'हरे राम; हरे कृष्ण' कह कर अपनी ज़िन्दगी का बेड़ा पार कर लेगी? इस विषय में सोचने के लिए न तो इनका धर्म ही आज्ञा देता है, न दिमाग़ ही इजाज़त देता है!

मुझे खरडेलवाल-महासभा के मन्त्री का कार्य

करते हुए अनुमानतः पन्द्रह वर्ष हो गए। जो कुछ अनुभव मुझे इस मारवाड़ी-जाति के एक अङ्ग का हुआ है, वह मैं आपके सामने पेश करता हूँ। लगातार पन्द्रह वर्ष के निरन्तर प्रचार और महासभा के अधिवेशनों के होने पर भी मैंने तो कोई भी सुधार की बात नहीं



बेटी-बेचा

[पैंतालीस सौ को सौदो करो है, अब धूमधाम सँ
आपणों व्याह करसँ ।]

देखी। प्रस्ताव पास करने में बहुत गरमा-गरमी और बड़ी बहस हुई, लेकिन समाज-सुधार का अमली काम एक भी नहीं हुआ। आज भी वही बाल-विवाह, अनमेल-विवाह और वृद्ध-विवाह हो रहे हैं! कन्या-विक्रय जैसा महासभाओं के पूर्व था, वैसा ही अब भी है! मौस

(नुकते) भी वैसे ही हो रहे हैं! समाज में मनुष्यों की चति बड़े वेग से हो रही है! ३०० गाँवों की जन-गणना करने पर हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि मारवाड़ी-समाज अब बहुत दिनों तक इस संसार में जीवित न रह सकेगा! मैं जिस खण्डेलवाल वैश्य-जाति की बात लिख रहा हूँ, वह एक मारवाड़ी-जाति की ही उपजाति है। इनकी सरकारी जन-गणना की संख्या यदि आप ध्यान देकर पढ़ेंगे, तो मेरी बात की सत्यता आपको भले प्रकार से मालूम हो जायगी। सन् १९०१ की जन-गणना में यह जाति एक लाख पाँच हजार थी; सन् १९११ की जन-गणना में ७२ हजार रही; और सन् १९२१ में घट करके ५० हजार रही; दो वर्ष बाद जो जन-गणना होने वाली है उसमें हमारा अनुमान है कि ३० हजार से अधिक इनकी संख्या न निकलेगी!! अब आप ही विचार लीजिए कि ३० वर्ष में इस जाति में ७५ हजार की कमी हो गई। अगली दो जन-गणनाओं में क्या आश्चर्य है कि यह जाति बिलकुल ही साफ़ न हो जाय! इस घटी के कारण बहुत ही स्पष्ट हैं। विवाहित मनुष्यों में से ६० फ़ी सदी के सन्तान पैदा ही नहीं होती; शेष में से २५ फ़ी सदी के यहाँ लड़कियाँ ही पैदा होती हैं; और बाक़ी १५ फ़ी सदी के लड़के लड़कियाँ पैदा होते हैं। इस जाति में विवाहित स्त्रियों की संख्या से विधवाओं की संख्या अधिक है! इसका ख़ास कारण बाल, अनमेल और वृद्ध-विवाह है! विवाह के समय वर की शारीरिक अवस्था पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। ६० फ़ी सदी विवाह वरों के साथ न होकर, थैलियों के ही साथ किए जाते हैं!! प्रायः देखा जाता है कि लड़के की अवस्था से लड़की की अवस्था बहुत अधिक होती है और यह बड़ा ऐब है कि एक मारवाड़ी-मसल 'बड़ी लड़की बड़ा भाग' में छिप जाता है! इस हिसाब से जाति में सन्तानों की पैदाइश बड़े वेग से कम हो रही है। हमें बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि मारवाड़ी-समाज का ध्यान तनिक भी इस ओर नहीं जा रहा है।

वह मारवाड़ी-जाति, जिसके व्यक्ति एक पाई की कमी-बेशी होने पर बारह-बारह बजे रात तक बैठ कर हिसाब पूरा करते हैं, ईश्वर जाने अपनी इस भयङ्कर घटी की तरफ़ क्यों नहीं ध्यान देती!!

चाँद

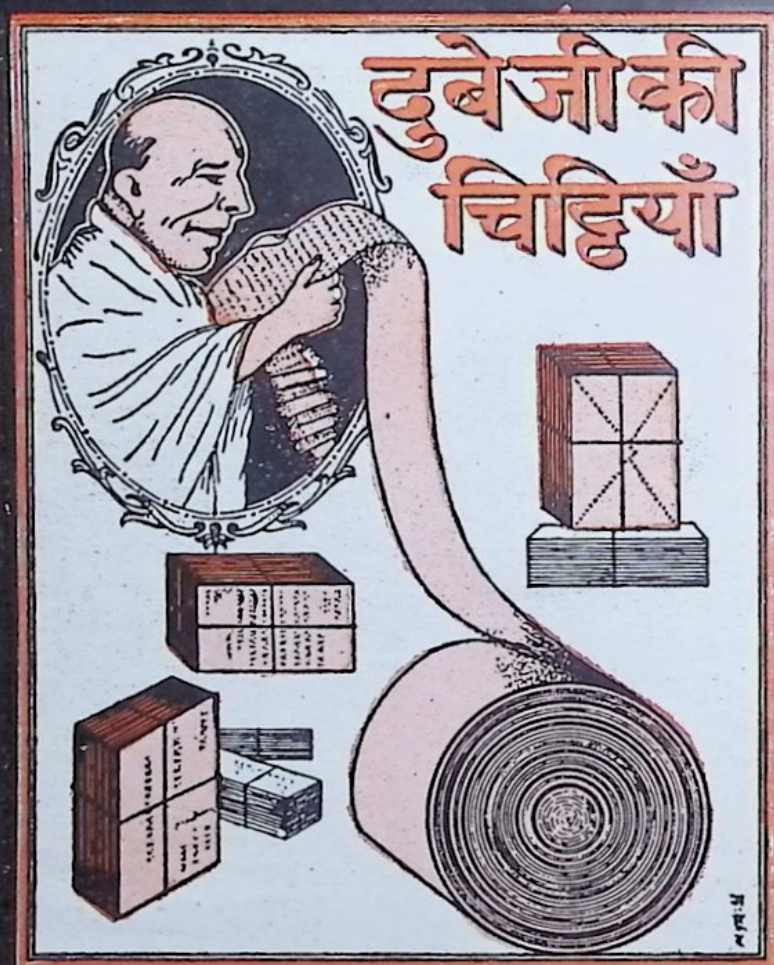


इन्दौर के वर्तमान नरेश

श्रीमान् महाराजाधिराज राजराजेश्वर सवाई श्री० यशवन्तराव होल्कर बहादुर

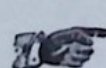
दुबे जी की ३४ चुनी हुई चुटीली चिट्ठियों का सुन्दर संग्रह

सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं ने दुबे जी की इन चिट्ठियों की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है।



लेखक -
श्री विजयानन्द दुबेजी

पृष्ठ-संख्या लगभग ५००, सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत मात्र केवल ३।५०, स्थायी ग्राहकों से २।५०

 व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

हमें पूर्ण आशा है कि अब हमारे मारवाड़ी-भाइयों का ध्यान इस विषय की तरफ अवश्य जायगा और वे 'चाँद' के इस "मारवाड़ी-अंक" से पूरा लाभ उठावेंगे।

—गुलराजगोपाल गुप्त

मारवाड़ियों के गहने और कपड़े

वैसे तो दुनिया में शायद ही कोई ऐसा समाज होगा कि जिसमें किसी न किसी क्रिस्म की बुराई न पाई जावे। लेकिन अन्य समाजों के साथ मिलान करने से मालूम होता है कि हमारे मारवाड़ी-समाज में बहुत अधिक बुराईयाँ हैं, और बहुत प्रकार की हैं। आजकल वह समय नहीं है कि दूसरों की बुराईयाँ देखा करें और अपनी ओर ध्यान ही न दें। इस समय तो बुद्धिमत्ता इसी बात में समझी जाती है कि पहले अपने समाज की बुराईयों को निकाल कर दूर फेंक दे और फिर दूसरे समाज की तरफ उँगली उठावे।

हमारे मारवाड़ी-समाज में एक बहुत बड़ी बुराई यह है कि ज़ेवर और कपड़े में अनुचित तरीक़े से धन खर्च किया जाता है और साथ ही उसके द्वारा स्त्रियों के स्वास्थ्य का नाश किया जाता है। मारवाड़ी-समाज में स्त्रियाँ जितने आभूषण पहनती हैं, वह सब जिस समय बने होंगे, उस समय किसी ख़ास मतलब से और किसी ख़ास तकलीफ़ को दूर करने के लिए बने होंगे। पर आजकल उनको केवल शज़्ज़ार की चीज़ समझा जाता है और लोगों से उन्हें छोड़ने को कहा जाय तो वह बहुत चिढ़ते हैं।

इन ज़ेवरों में सबसे पहला स्थान "बोर" का है। यह वह ज़ेवर है जो मारवाड़ी-स्त्रियाँ सिर पर पहनती हैं। पहनती क्या हैं, यों कहना चाहिए कि सिर के साथ एक ख़ास क्रिस्म की रस्सी (जिसको कि नाला या कलावा कहते हैं, परन्तु मैं इसको रस्सी ही लिखूँगी) के सहारे खूब कस कर बाँध या जकड़ देती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि माथे पर वेणी बाँधने का रिवाज बहुत पहले से है और ज़्यादातर फूलों की चेणी

बना कर माथे पर बाँधी जाती थी। सिर्फ़ साधारण घरानों में ही नहीं, बल्कि राजघरानों तक में फूलों की चेणियाँ बना कर राज-परिवार की कुमारियाँ और स्त्रियाँ मस्तक पर धारण करती थीं। परन्तु यह रिवाज जहाँ तक मैं समझती हूँ, बीकानेर, जोधपुर, सिन्ध, मध्य-भारत आदि मरु-भूमि में स्थित स्थानों में प्रचलित न था। इसका कारण वहाँ पर पानी की कमी होना है, जिसकी वजह से वहाँ फूल पैदा नहीं हो सकते !

यह मैं नहीं कह सकती कि यह बोर प्रथम कब बना और इसे किसने बनाया। परन्तु यह निश्चय है कि



स्वर्गीय उदयराम जी कुम्भावत, जयपुर

[आप राजपूताने के प्रसिद्ध चित्रकार थे, जो अपने बाहु-बल से एक प्रसिद्ध व्यक्ति और लखपती बन गए।]

मरु-भूमि में पानी की कमी के कारण स्त्रियों का रोज़ सिर के बालों को धोकर साफ़ करना कठिन ही नहीं, असम्भव था। सिर के बालों को बग़ैर धोए हुए ज़्यादा दिन खुले रखने से बाल कड़े हो जाते हैं और तकलीफ़ देने लगते हैं। इसलिए सिर के बालों को एक ख़ास तरह

की रस्सी के साथ गूँथ कर खूब कस कर बाँधने का रिवाज जारी हुआ, ताकि महीनों तक भी सिर के बालों को खोल कर धोने की आवश्यकता न हो। इसी रीति के कारण इस बोर का आविष्कार हुआ होगा। क्योंकि जब सिर को इस तरह कस कर बाँधा जाता है, तो सिर के बीच होकर एक रस्सी माथे के मध्य तक आती है। उसमें किसी मोटी चीज़ को उसे अटकाए रखने के लिए बाँध देना आवश्यक होता है। उसी मोटी चीज़ की जगह बोर का शुभागमन हुआ। इस बोर का नाप पौन इंच

पहुँचा कर पानी की बहुतायत कर दी गई है; इस प्रकार कहीं भी अब पानी की इतनी कमी नहीं है कि रोज़-रोज़ सिर के बालों को धोकर, अच्छी तरह साफ़ करना कठिन समझा जाय। आजकल यह सिर के बालों को कस कर बाँधना केवल हानि ही का कारण है।

लड़कियाँ तीन या चार साल की हुई कि उनके सिर में बोर बाँध कर बालों को जकड़ना शुरू कर दिया जाता है। इससे सिर के तमाम बाल छोटे छोटे रह जाते हैं और बालों में वास्तविक खूबसूरती आ ही नहीं



जीवित-सिंहों से खेलने वाले स्वर्गीय महाराजा सर भँवरपाल जी साहब बहादुर, करौली

से लेकर, पाँच इंच तक देखा गया है ! इसके साथ सिर के बालों को उपरोक्त रस्सियों के सहारे बाँध दिया जाता था, और इधर-उधर के छोटे-छोटे बालों को, जो बाँधने में नहीं आ सकते, मोम से चिपका दिया जाता था !

आजकल भी इस बोर को बाँधना एक खास श्रृङ्गार और सौभाग्यसूचक चिन्ह समझा जाता है, हालाँकि अब ईश्वर की कृपा से अधिकांश मारवाड़ी-समाज शहरों में रहने लगा है और उनकी मरु-भूमि तक में नहर वगैरह

पाती, सिर में जगह-जगह बालों के खिंचने से फुन्सियाँ हो जाती हैं और जहाँ चार-पाँच दिन सिर बाँधा हुआ कि सिर में बदबू आने लगती है। मैं तो नहीं समझ पाती कि महीनों तक सर के बालों को बिना धोए हुए कैसे उन खियों को चैन पड़ता होगा ?

बाज़-बाज़ मौक़े पर तो कसे हुए बालों में जूँ पड़ जाती हैं और उससे जैसी तकलीफ़ होती है, उसका अनुभव वही खियाँ कर सकती हैं, जो सिर के बालों को गुथ-

वाती हैं—खुशी से या घर की बड़ी-बूढ़ी औरत के दबाव से—और जँ पड़ जाने पर सिर खुजाते-खुजाते खून निकाल डालती हैं। मैं तो जहाँ तक समझती हूँ, शायद ही कोई ऐसी स्त्री होगी, जो बोर को पसन्द करती हो और खुशी से इसे बाँधती हो। वास्तव में समाज में इसका रिवाज होने के सबब से और घर की बड़ी-बूढ़ी औरतों के दबाव की वजह ही से सबको सिर में बोर गुँथाना पड़ता है। अगर मारवाड़ी-समाज इस ओर ध्यान देकर इस रिवाज को दूर कर दे तो सचमुच स्त्रियाँ उसकी बड़ी कृतज्ञ हों।

इसके बाद कानों की बालियों, सुरकियों और नाक की नथ को देखिए। इस नथ को तो स्त्रियाँ बिलकुल पतिदेव के प्राण ही समझ बैठी हैं, चाहे वह लटक-लटक कर नाक के छेद को नीचे तक काट ही क्यों न डाले ! भला यह तो सोचिए कि ईश्वर ने जब शरीर को सब तरह से सुडौल और सब तरह से ठीक बना कर पैदा किया है, तो उसके बनाए किसी अङ्ग-विशेष में चलनी की तरह छेद करके क्षत-विक्षत कर देना, शरीर को सुन्दर बनाना है, या कुरूप बना कर उस अङ्ग का नाश करना है ?

इसी तरह हाथ के जेवरों को देखिए। बचपन से ही हाथों में जेवर पहनाना शुरू कर दिया जाता है, जिससे बच्चों के पहुँचे और कोहनी में रक्त का प्रवाह ठीक तरह से होने में बाधा पड़ती है और वे पतले पड़ जाते हैं, और अन्त तक वैसे ही रहते हैं।

अब ज़रा पैरों के जेवरों की तरफ़ ध्यान दीजिए। यह तो बिलकुल चाँदी की बेड़ियाँ कहने के ही योग्य हैं। विचार किया जाय तो जितने जेवर, बालियाँ, नथ, गलसरी, हाथ के टड्डे, बन्द वगैरह हैं—सभी ऐसे सालूम होते हैं, गोया किसी ज़माने में औरतों को कैद रखने के लिए हथकड़ी और बेड़ी की जगह काम में लाए जाते थे ! घर में जिस वक्त शादी होकर नववधू आवे तो आप देख सकते हैं कि पूरी ३॥ सेर चाँदी की बेड़ियाँ और हथकड़ियाँ जेवर के नाम से हर पैर में पड़ी होंगी, जिसकी वजह से बेचारी लँगड़ा-लँगड़ा कर चलती है ! एक तो पहले ही बचपन से कड़ी वगैरह पहनते-पहनते पैर बिलकुल पतले पड़ जाते हैं, और उनमें गड्डे पड़ जाते हैं, इस पर इतना वज़न एक साथ पैरों में डाल दिया जाता है ! ऐसी दशा में अगर वह बेचारी

रुक-रुक कर लँगड़ाती हुई चले तो इसमें उसका कुसूर ही क्या है ?

आजकल तो मोती और हीरों के जेवरों की भरमार है, जिनको खरीदते वक्त हज़ारों देने पड़ते हैं और ज़रूरत के वक्त बेचने पर कुछ नहीं मिलता ! इन जेवरों के पहनने में सदा मोतियों के टूट कर गिर पड़ने का भय रहता है। इसलिए उनको आलमारी में बन्द करके रखे रहना, और सिर्फ़ हिफ़ाज़त करनी पड़ती है।



मारवाड़ प्रान्त की ५० लाख स्त्रियों में प्रथम सब-एसिस्टेंट सर्जन महिला

लेडी डॉक्टर (मिस) गहलोत

अपने समाज की कितनी ही स्त्रियों को मैं जानती हूँ, जो वास्तव में इन सब जेवरों से तज़ आ गई हैं और इनको छोड़ना चाहती हैं। लेकिन मजबूरन ऊपर वालों के दबाव में आकर पहनती हैं। क्या मारवाड़ी-समाज इस ओर ध्यान देकर स्त्रियों को इस कष्ट से छुटकारा दिलाएगा और साथ ही अपने इस अनुचित रूप से व्यर्थ नष्ट होते

हुए धन को बचा कर किसी सुकार्य में लगाने की चेष्टा करेगा ?*

अब ज़रा कपड़ों पर गौर करिए। हमारे यहाँ विवाहादि अवसरों पर लड़की को, बहुओं को और बहिन-बेटियों आदि को देने के लिए कितने बढ़िया-बढ़िया और नायाब ओढ़ने, धोती, लहंगे वगैरह, जिनमें एक-एक की लागत



अजमेर की 'गुलाबदेवी कन्या-पाठशाला' की संस्थापिका
और सामाजिक-सुधार की अनन्य पक्षपातिनी

श्रीमती गुलाबदेवी जी

५-५ और ७-७ सौ रुपए तक होती है, बनाए जाते हैं। लेकिन वह किस लिए बनते हैं ? सिर्फ़ इसलिए कि

* यह कार्य पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों स्वयं बहुत आसानी से कर सकती हैं, यदि वे इस ओर ध्यान देने की कृपा करें।

—सं० 'चाँद'

एक दफ़ा पहन लिए जावें और जिस तरह स्त्री खुद पदों में कैद रहती है, उसी तरह उन कपड़ों को भी तह करके बक्स में कैद कर दिया जावे ! बनाने का शौक इस क्रूर होता है कि जब-जब शादी होगी तब-तब नए-नए डिज़ाइन और नए-नए फ़ैशन के कपड़े, बाँकड़े, जाल, मोती वगैरह लगा कर बनवाए जायेंगे। परन्तु वह सिर्फ़ रखने के लिए होते हैं, क्योंकि पहनने के लिए मौक़े ही कितने मिलते हैं ? किसी विवाहादि के अवसर पर दो-चार दफ़े पहनने का मौक़ा मिलता है। ये नए-नए कपड़े और बढ़िया-बढ़िया पोशाकें, जिनके लिए मारवाड़ी-समाज का करोड़ों रुपया सालाना विलायत पहुँच जाता है, आलमारी और बक्सों में सड़ा करते हैं या उनको दीमक खा जाते हैं, या गल जाते हैं। तब या तो वह ब्राह्मणियों को धर्मार्थ दिए जाते हैं या विवाहादि अवसरों पर नाइन, मेहतरानी वगैरह को बख़शीश के तौर पर दे दिए जाते हैं ! मैं नहीं जानती कि इस विषय में मारवाड़ी-समाज कब तक सोता रहेगा। जिस देश के किसानों और मज़दूरों को पेट भर खाने को न मिलता हो, उस देश के किसी एक विशेष समाज का इस तरह धन का दुरुपयोग करना, अपने देश, जाति और राष्ट्र को पतन के गहरे गर्त में पहुँचाना है।

जिस मारवाड़ी-समाज पर इस समय ईश्वर की दया से लक्ष्मी महारानी की पूर्ण कृपा है, उस समाज को उचित है कि अपने इस धन का सदुपयोग करके अपने देश, जाति और राष्ट्र की सहायता करे, उसे ऊँचा उठाने की चेष्टा करे ; न कि इसके विरुद्ध, देश की जड़ पर कुठार चला कर, उसे पतन के गहरे गढ़े में ढकेलते हुए विदेशियों को मदद दे !*

—कमलादेवी भालोठिया

*

*

*

* इस विचारपूर्ण लेख के लिए इसकी सुयोग्य लेखिका बंधार की पात्र हैं। हमें आशा है, हमारी मारवाड़ी-बहिनें इस पर ठण्डे दिल से विचार करेंगी।

—सं० 'चाँद'

मद्रास में मारवाड़ी

मद्रास-प्रान्त राजपूताना (मारवाड़) से सैकड़ों मील दूर होते हुए भी मारवाड़ियों से शून्य नहीं है। मद्रास शहर में तो मारवाड़ियों की घनी आबादी है ही, लेकिन इस प्रान्त के मुख्य-मुख्य शहर और कस्बों में भी प्रायः पाए जाते हैं।

मद्रास शहर में मारवाड़ी इतनी अधिक संख्या में होते हुए भी परस्पर एकता से रहित हैं। इन लोगों का मद्रासियों से भी प्रेम नहीं है। मद्रासियों और मारवाड़ियों में एक

तरह की खींच-तान सी रहती है। यहाँ के निवासी मारवाड़ियों को पृष्ठा की दृष्टि से देखते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि अधिकांश मारवाड़ी यहाँ पर सूद का व्यापार करते हैं। यह गरीब मद्रासियों की वस्तुओं को गिरवी रख कर

रुपया उधार देते हैं। साधारण दृष्टि से प्रतीत होता है कि मारवाड़ी अपने मद्रासी भाइयों की इस प्रकार बड़ी सहायता करते हैं। परन्तु वस्तुतः सच्चाई कुछ और ही है। यह उनकी सहायता नहीं, बल्कि दुर्दशा करना है। सौ रुपए की वस्तु गिरवी रख कर ३० या ४० रुपए उधार दिए जाते हैं, और सूद इसमें से पहले ही निकाल लिया जाता है। सूद की दर एक आना से दो आना रुपया तो साधारण-सी बात है। इस पर भी सूद दर सूद चढ़ता ही चला जाता है। परिणाम यह होता है कि मूल-ऋण चुकाना दूर रहा,

सूद चुकाना ही बेचारों के लिए दुश्वार हो जाता है। इसके फल-स्वरूप वह बेचारा गिरवी रखी हुई वस्तु से हाथ धो बैठता है। सैकड़ों मद्रासी इसी तरह मारवाड़ियों के पञ्जे में फँस, दुर्दशा को प्राप्त होते हैं। इसीलिए मद्रासी यहाँ के मारवाड़ियों को, चाहे वह सूद का व्यापार करते हों या न करते हों “रूपा की रण्ड आना बड़्डी” अर्थात्—रुपया पर दो आना व्याज लेने वाले के नाम से पुकारते हैं। कभी-कभी सभी उत्तर भारतवासियों को मारवाड़ी समझ, घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। मारवाड़ियों को इसी कारण यहाँ पर यहूदी और शाइलॉक भी कहा जाता है।



“शीन-काफ़” तथा प्रेमिका-सहित एक मारवाड़ी जागीरदार
[मारवाड़ के जागीरदारों में ऐसी उप-पत्नियाँ रखना किसी प्रकार का सामाजिक ऐब नहीं समझा जाता।]

जाता है। शायद उनकी समझ में गरीबों का खून चूसने और उनकी गाढ़ी कमाई को मुफ्त में लूट लेने में कुछ भी हिंसा नहीं है। भला इस प्रकार यहाँ के मारवाड़ी और मद्रासियों में कैसे भ्रातृ-भाव पैदा हो सकता है?

शिक्षा

मद्रास के मारवाड़ियों की शिक्षा भी बहुत शोचनीय दशा में है। यदि उनके बालक मारवाड़ी-भाषा में बही-खाता लिखना और अङ्गरेज़ी में चिट्ठियों पर पता लिखना

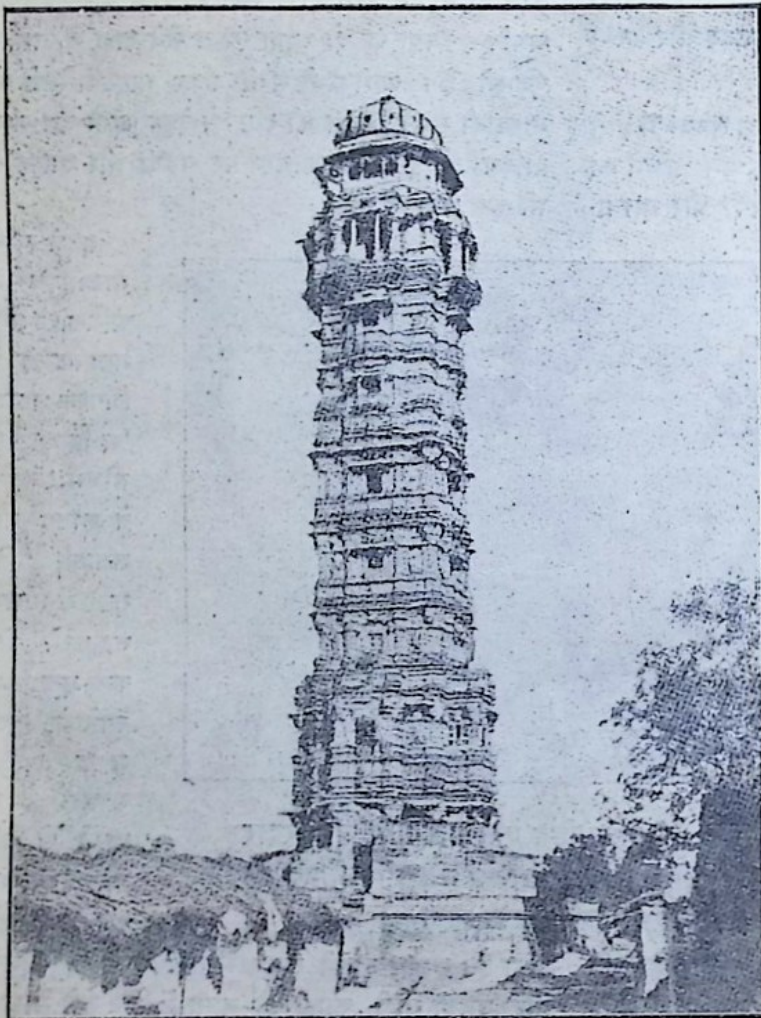
इ धर के मारवाड़ियों में अधिकांश जैन-मतावलम्बी हैं, जिनका आदर्श ‘अ हिंसा पर-मोधर्मः’ है। वे शायद यह समझते हैं कि रात्रि में भोजन न करने से, कन्द-मूल न खाने से, खट-म ल और मच्छरों के न मारने से ही उनके धर्म का पा ल न हो

सीख लें तो यही उनके लिए आवश्यकता से अधिक है। मद्रास नगर में धनी मारवाड़ियों की अच्छी संख्या होते हुए भी, उनका अपना एक भी हाईस्कूल नहीं है। दो जैन-प्रायमरी स्कूल हैं, जहाँ शिक्षा नहीं के बराबर है। एक सनातनधर्मी स्कूल है, जिसमें लगभग मिडिल तक

पूर्ण नहीं कर सकते। यह कठिनाता न केवल मारवाड़ी, अपितु सभी उत्तर भारतीय छात्रों के लिए है। यही कारण है कि कठिनाता से २-४ उत्तर भारतीय या मारवाड़ी विद्यार्थी, कॉलेज तक पहुँच पाते हैं। उन्हें मातृ-भाषा हिन्दी का ज्ञान इतना हीन होता है कि वे शुद्ध हिन्दी में बातचीत भी नहीं कर सकते, लिखना तो दूर रहा। यहाँ यह भी बता देना अनुचित न होगा कि किसी भी हाईस्कूल अथवा कॉलेज में हिन्दी पढ़ाने का प्रबन्ध नहीं है! मद्रास-विश्व-विद्यालय ने अपने कोर्स में हिन्दी को स्थान दिया है, पर वह कागज़ों पर ही है—क्रियात्मक रूप में उसका कोई प्रबन्ध नहीं किया गया है!

सामाजिक दशा

पर्दा-शून्य प्रान्त में रह कर भी मारवाड़ियों ने अपनी पुरानी लकीर की क़लीरी नहीं छोड़ी है। उनके भद्दे और हास्यजनक रीति-रिवाज, वेश-भूषा, रहन-सहन ज्यों के त्यों बने हुए हैं। मुँह पर लम्बा घूँघट निकाले एक आँख से देखती हुई; और पैरों तथा हाथों में वेड़ियाँ डाले मारवाड़ी-महिलाओं को बाज़ार में से गुज़रते देख, स्वच्छन्द और खुले मुँह घूमने वाली मद्रासी महिलाएँ तथा पुरुष खूब हँसते और मारवाड़ियों का मज़ाक़ करते हैं। इधर इतना पर्दा और उधर कपड़े इतने बारीक होते हैं—और उनको इस भद्दी तरह



चित्तौड़ का कीर्ति-स्तम्भ

शिक्षा दी जाती है। लेकिन मारवाड़ी-समाज की उदासीनता के कारण यह भी गिरती-पड़ती हालत में है। जो विद्यार्थी हाईस्कूल अथवा कॉलेज की शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है। बिना मद्रासी-भाषाओं के पढ़े, वे अपनी इच्छा

से पहना जाता है कि जिससे देखने वालों को और भी लज्जा मालूम होती है। मोटर में बैठ कर, बाहर निकलने पर उसे चारों तरफ़ से बन्द कर दिया जाता है, लेकिन उत्सुक आँखें पदों में से बिना आँके फिर भी नहीं रहती। मारवाड़ी-खियाँ घर से बाहर निकल शुद्ध वायु सेवन

करना तो पाप समझती हैं, पर इलियट-बीच पर, जहाँ अश्वरेज स्त्री-पुरुष स्नान व जल-क्रीड़ा करते हैं, आकर उन्हें देखने में लज्जा व शङ्का बिलकुल नहीं फरती !

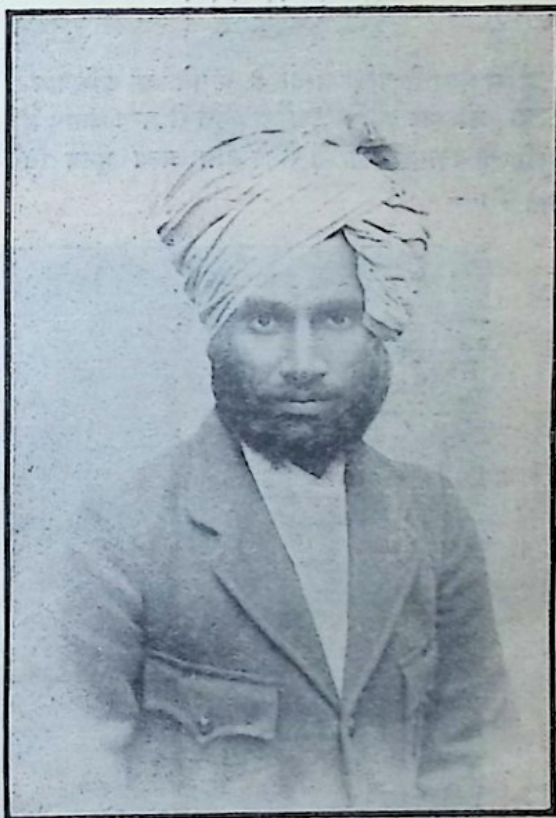
विवाह, पुत्रोत्पत्ति या किसी अन्य त्योहार के अवसर पर मारवाड़ी-स्त्रियों का समुदाय जब बाज़ार की सड़कों पर भड़े गीत गाते हुए निकलता है, तो भारत-भारती की ये पंक्तियाँ याद आ जाती हैं :—

रखतीं यही गुण वे कि गन्दे गीत गाना जानतीं,
कुल-शील लज्जा उस समय कुछ भी नहीं वे मानतीं ।
हँसते हुए हम भी अहो वे गीत सुनते सब कहीं,
रोदन करो हे भाइयो ! यह बात हँसने की नहीं !!

उस समय इस प्रान्त के निवासियों के दिलों में मारवाड़ी-महिलाओं के लिए क्या भाव उत्पन्न होते होंगे—यह पाठक स्वयं सोच सकते हैं । मद्रास-प्रान्त का जलवायु गरम है, यहाँ पर मुसलमानों की संख्या भी बहुत कम है । यहाँ के निवासियों में पर्दा बिलकुल नहीं है, लेकिन यहाँ के मारवाड़ी, जिन्हें यहाँ रहते हुए कई वर्ष हो गए हैं और अधिकांश को कई पीढ़ियाँ हो गई हैं, वे अभी तक पर्दा तथा अन्य कुरीतियाँ छोड़ नहीं पाए हैं ! क्या इससे मारवाड़ियों की तर्क-हीन स्थिति-पालकता सिद्ध नहीं होती ?

मद्रास-प्रान्त में 'होली' नाम का कोई त्योहार नहीं होता । परन्तु यहाँ के रहने वाले उत्तर भारतीय इस त्योहार को मनाते ही हैं । उस अवसर पर मारवाड़ी लोग विशेष रूप से, बच्चों से लेकर बूढ़ों तक, माँ, बहिन, बेटियों के सामने ऐसे गन्दे और फ़ोश गीत बकते हैं कि कोई भद्र पुरुष लज्जा से सिर नीचा किए बिना नहीं रह सकता । उस अवसर पर साहूकार-पेट (मद्रास का मुख्य मारवाड़ी-बाज़ार) नरकमय प्रतीत होता है ! अपने इन असभ्य व्यवहारों के कारण मारवाड़ी मद्रासियों की दृष्टि में और भी गिर जाते हैं । यहाँ के कुछ भद्र-पुरुषों ने इन लोगों का ध्यान इस ओर खींचा और गत दो वर्षों से विशेष रूप से प्रयत्न किया कि यहाँ ऐसी गन्दी होली बन्द हो जाय, पर ये लोग कब मानने वाले हैं ? उल्टा समझाने वालों को गालियों का शिकार होना पड़ता है ।

तथा आचोप करने के लिए नहीं लिखा गया है, अपितु उनका ध्यान इन निर्वलताओं और कुप्रथाओं की ओर इसलिए खींचा गया है, ताकि वे उन्हें दूर करें और अपने पड़ोसी मद्रासियों के हास्य की वस्तु न बनें । इस प्रान्त में आकर और बस कर उन्हें यहीं की परिस्थिति के अनुकूल रीति-रिवाजों को अपनाने का प्रयत्न करना



मरुभूमि राजस्थान की प्रजा में जाग्रति और बलिदान की भावना उत्पन्न करने वाले प्रभावशाली कार्यकर्ता

श्री० वी० एस० पथिक

चाहिए । उन्हें मद्रासियों के साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि जिससे वे उनके साथ घृणा न करें । मद्रास के उत्तर भारत से दूर होने के कारण यहाँ के हिन्दी-भाषा-भाषी और विशेषतः मारवाड़ी-समाज की कुरीतियों की ओर हिन्दी-समाचार-पत्रों में विशेष ध्यान नहीं दिया जाता । यदि हिन्दी-समाचार-पत्र तनिक इधर

यह लेख स्थानीय मारवाड़ी भाइयों का दिल दुखाने



की दशा को सुधारने की ओर भी ध्यान दें तो लाभ की सम्भावना है।*

—एक मारवाड़ी भाई

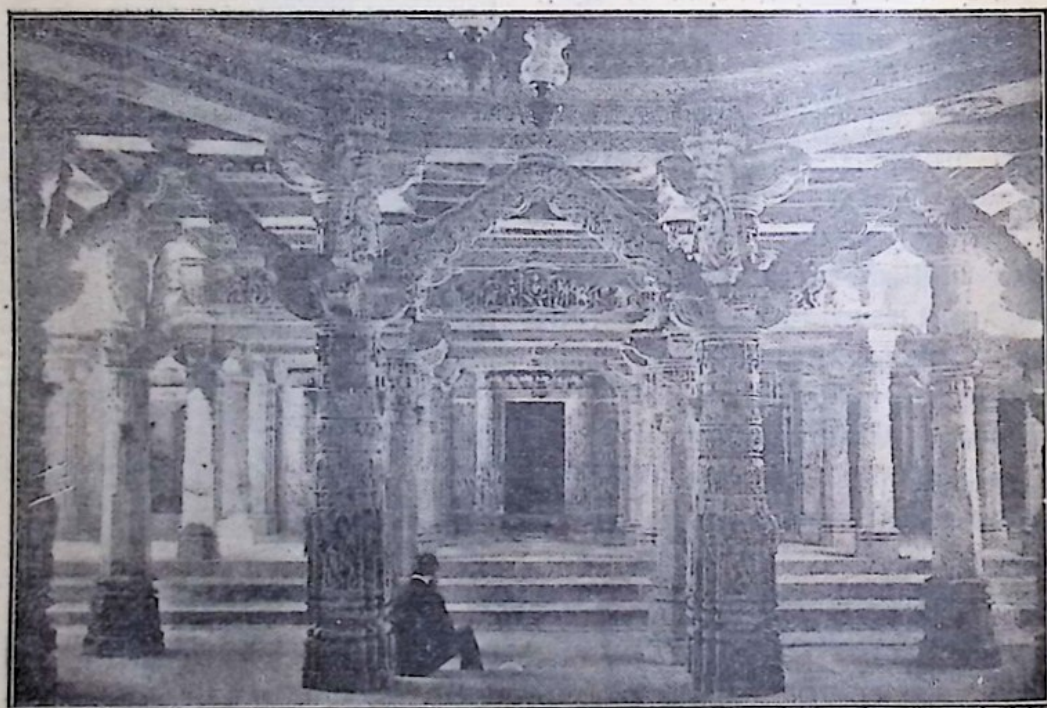
* * *

भाट और चारणों का हिन्दी-भाषा सम्बन्धी काम

इस काम से यदि ग्रन्थों के बनाने का अभिप्राय है तो भाट और चारणों ने बहुत से ग्रन्थ बनाए हैं। भाटों के बनाए ग्रन्थों में से ये तीन ग्रन्थ मुख्य गिने जाते हैं :—

इसके सिवाय और भी बहुत हिन्दी-ग्रन्थ भाटों के बनाए—विजयपाल रासा, हमीर रासा, बगड़ावत रासा आदि हैं, जिनमें थोड़े तो प्रसिद्ध हैं और बहुत अप्रसिद्ध हैं। जो प्रसिद्ध हैं उनमें भी छपे बहुत थोड़े हैं। जो नहीं छपे हैं वे जगह-जगह बिखरे पड़े हैं, बहुत नष्ट भी हो गए हैं और बाक़ी हो रहे हैं। कोई उनका बचाने वाला नहीं है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन यदि कोई उपाय उनके बचाने का कर सकता है तो करे, जैसे काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा खोज और सूची का काम कर रही है।

भाटों के ग्रन्थों में अधिक शृङ्गार-रस के हैं और थोड़े वीर-रस के। चारण राजपूताने, और विशेष करके मारवाड़ में हैं, या गुजरात में। इनकी पुरानी कविता



माऊण्ट आबू के सुप्रसिद्ध जैन-मन्दिर का बाहरी दृश्य

(१) पृथ्वीराज रासा; (२) सूरसागर; (३) महा-भारत, जो काशी में बना है।

* पर यदि उन बेचारे पत्रों के भी बहिष्कार का फ़तवा दे दिया गया, तब क्या आप उनकी रक्षा करेंगे ?

—सं० 'चौद'

मारवाड़ी या गुजराती भाषा में है। मुसलमानी समय में खड़ी बोली की हिन्दी-कविता मुसलमानों के और साधु-सन्तों के प्रसङ्ग से, और फिर अकबर के राज्य में या उससे कुछ पहले ग्वालियर और वज्र की भाषा की कविता भी राजपूताने में आई, और औरङ्गज़ेब के सत्ताप हुए बल्लभ-सम्प्रदाय के गुसाइयों के आने और रहने से



प्रताप-जैसे
देशभक्त पुत्र-नल की आदर्श-जननी
श्रीमती माणिकदेवी जी



देशभक्ति के अपराध में घुट-घुट कर मरने वाले
ठाकुर केशरीसिंह जी के पुत्र-नल
स्वर्गीय कुँवर प्रतापसिंह जी वारहठ



राजस्थान-केसरी
श्री० ठाकुर केशरीसिंह जी वारहठ
कोटा (राजपूताना)

बाल रोग विज्ञानम्

इस महत्वपूर्ण पुस्तक के लेखक पाठकों के सुपरिचित, 'विष-विज्ञान' 'उपयोगी चिकित्सा' 'स्त्री-रोग-विज्ञानम्' आदि-आदि अनेक पुस्तकों के रचयिता, स्वर्ण-पदक प्राप्त प्रोफेसर श्री० धर्मानन्द जी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य हैं, अतएव पुस्तक की उपयोगिता का अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है। आज भारतीय स्त्रियों में शिशु-पालन सम्बन्धी समुचित ज्ञान न होने के कारण सैकड़ों, हजारों और लाखों नहीं, किन्तु करोड़ों बच्चे प्रतिवर्ष अकाल-मृत्यु के कलेवर हो रहे हैं। धातु-शिक्षा का पाठ न स्त्रियों को घर में पढ़ाया जाता है और न आजकल के गुलाम उत्पन्न करने वाले स्कूल और कॉलेजों में। इसी अभाव को दृष्टि में रख कर प्रस्तुत पुस्तक लिखी और प्रकाशित की गई है। इसमें बालक-बालिका सम्बन्धी प्रत्येक रोग, उसका उपचार तथा ऐसी सहज घरेलू चिकित्सा तथा घरेलू दवाइयाँ बतलाई गई हैं, जिन्हें एक बार पढ़ लेने से प्रत्येक माता को उसके समस्त कर्तव्यों का ज्ञान सहज ही में हो सकता है और बिना डॉक्टर-वैद्यों की जेबें भरे वे शिशु-सम्बन्धी प्रत्येक रोग को समझ कर उसका उपचार कर सकती हैं। प्रत्येक सदगृहस्थ के घर में इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य होनी चाहिए। भावी माताओं के लिए तो प्रस्तुत पुस्तक आकाश-कुसुम ही समझना चाहिए। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥) ६० ; स्थायी ग्राहकों से १॥॥) मात्र !!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

उसकी उन्नति हुई। इससे चारण भी इन भाषाओं की कविता करने लगे। उन्होंने अपनी और परदेशी भाषाओं में भेद रहने से दोनों प्रकार की कविताओं का नाम डिङ्गल और पिङ्गल रख दिया है।

मारवाड़ी-भाषा में 'गल्ल' का अर्थ बात या बोली है। 'डीगा' लम्बे और ऊँचे को और 'पाँगला' पङ्के और लूले को कहते हैं। चारण अपनी मारवाड़ी-कविता को बहुत ऊँचे स्वरों में पढ़ते हैं और व्रजभाषा की कविता धीरे-धीरे मन्द स्वरों में पढ़ी जाती है। इसी लिए डिङ्गल और पिङ्गल संज्ञा हो गई—जिसको दूसरे शब्दों में ऊँची बोली और नीची बोली की कविता कह सकते हैं।

चारणों ने हिन्दी में भी बहुत ग्रन्थ बनाए हैं, पर उनकी दशा भी भाटों के ग्रन्थों से अच्छी नहीं है। इनमें वीर-रस के ग्रन्थ अधिक और शृङ्गार-रस के कम हैं! वीर-रस का सम्बन्ध प्रायः इतिहास से होता है, इसलिए इन ग्रन्थों में और चारणों के अन्य गीत-कविता * में इतिहास की सामग्री बहुत ज्यादा है। यदि ये संग्रह किए जायें तो हिन्दुस्तान के इतिहास की अँधेरी कोठरी में कुछ उजाला हो जाय। मैं भाट और चारणों के बहुत से ग्रन्थों के नाम उस सूची में दे चुका हूँ, जो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के वास्ते तैयार की गई थी और उसकी रिपोर्ट में छप भी चुकी है। चारणों के बनाए भी बहुत बड़े ग्रन्थ गिनती के ही हैं और उनमें मुख्य ये हैं :—

- (१) अवतार-चरित्र; (२) वंशभास्कर;
(३) वीर-विनोद; (४) यशवन्त यशोभूषण।

ये और इन जैसे सैकड़ों छोटे-मोटे ग्रन्थ चारणों के रचे कविता और वारता में हैं। ये लोग पद्य को कविता और गद्य को वारता कहते हैं। वारता-ग्रन्थ बचनका, बात और ख्यात कहलाते हैं। 'बचनका' और 'ख्यात' इतिहास के, और 'बात' क्रिस्से-कहानी के ग्रन्थ हैं। इनमें गद्य-पद्य दोनों प्रकार की कविताएँ हैं। बचनका

और ख्यात में बनावट का भेद होता है। बचनका में तुकबन्दी होती है, ख्यात में नहीं होती, और उसकी इबारत सौधी-सादी होती है।

'बात' के ग्रन्थों में ढोलामारुणी, पन्नावीर मदे, रतनाहमीर, सोरठबीजा, खीची अचलदास जैसी कहानियाँ हैं, और कुछ राजाओं और वीर पुरुषों के जीवन-चरित्र भी बिना संवत् और मिति के हैं।



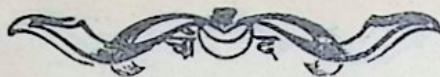
सुप्रसिद्ध इतिहास-प्रेमी सुश्रोत नैणसो

[जिनकी ख्यात मारवाड़ भर में प्रसिद्ध है]

बचनका ग्रन्थ बहुधा एक-एक चरित्रनायक की जीवनी के होते हैं, जैसे खीची अचलदास की बचनका, और रतन महेसदासोत की बचनका, वगैरा।

ख्यात में राजाओं की वंशावलियाँ और उनकी जीव-नियाँ संवत् और मिति सहित होती हैं। ख्यातें मारवाड़ में ज्यादा मिलती हैं। चारणों के सिवाय और लोगों ने भी ख्यातें बनाई हैं, परन्तु उनमें बनाने वालों के नाम

* गीत वह नहीं है, जिसकी बावत पमाकर ने एक कवित्त में कहा है—“गीत तो हमारी तन गावत लुगई हैं।” ये गीत एक प्रकार के छन्द हैं।



बहुत कम हैं और वे पीढ़ी दर पीढ़ी बनती रही हैं। ऐसी ख्यातें चारणों के सिवाय राज्य के मुत्सदियों (राज्य-कर्मचारियों) और जैन-जातियों में ज्यादा मिलती हैं। मुत्सदियों की ख्यातों में मुहम्मद-नैणसी की ख्यात ज्यादा मशहूर है और काम की है, जो अब से २५० वर्ष पहले, संवत् १७२५ के आस-पास बनी थी।

चारण और भाटों के सिवाय डाढी जाति का भी हिन्दी से पुराना सम्बन्ध है। उनकी कविता चारणों से भी पुरानी गिनी जाती है। चारणों के ग्रन्थों से पुराने ग्रन्थ डाढियों के कहे जाते हैं। उनमें से एक 'वीरमायण' है, जिसमें राव वीरमजी राठौड़ का हाल है, जो संवत् १४४० में काम आए थे। फुटकर कविताएँ भी बहुत मिलती हैं, जैसे राव सीहाजी, मलीनाथ जी और रानी रूपादे जी आदि के छन्द। परन्तु डाढियों का दर्जा नीचा होने से उनको चारण-भाटों के समान राजाओं के दरबारों* में जगह नहीं मिलती, इससे उनकी हिन्दी-कविता उतनी मशहूर नहीं हुई है।

एक डाढी ने जोधपुर के बड़े महाराजा जसवन्तसिंह की ख्यात (इतिहास) का एक बड़ा ग्रन्थ पिङ्गल और डिङ्गल भाषा में 'जसवन्त-जस-प्रकाश' नाम का बनाया था। वह मैंने तो नहीं देखा है, मगर सुना है कि एक जाट महाराजा के साथ बहुत रहा करता था, उसीसे सब हाल सुन-सुन कर उस राजभक्त डाढी ने वह ग्रन्थ बनाया है।

—(मुंशी) देवीप्रसाद (स्वर्गीय)

* * *

* ऊदावत राठौड़ों में डोम या ढोलियों का चलन ज्यादा था। यहाँ तक सुना है कि वे वहाँ चारणों के बराबर इज्जत पाते थे, जैसा कि मशहूर है :—

चापा पालन चारणों ऊदा पालण डोम।

अर्थात्—चापावत राठौड़ तो चारणों को पालते हैं और ऊदावत डोमों को। डोम, डाढी और ढोली एक ही जाति के लोग हैं। वे अपनी उत्पत्ति देवताओं के गवैयों—गन्धर्वों से बताते हैं।

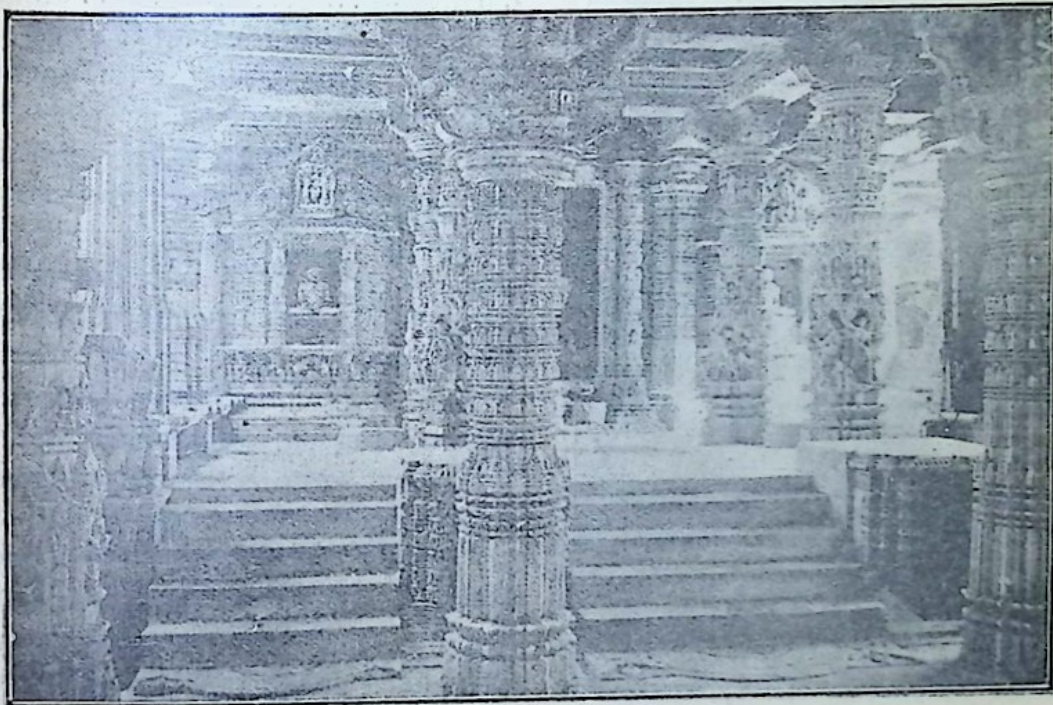
वीर-भूमि राजस्थान

भा रतीय इतिहास के मननशील पाठकों के लिए राजस्थान का नाम कुछ नवीन नहीं है। इस वीर-प्रसविनी भूमि का दर्शन यात्री के मन-मन्दिर में धर्म एवं स्वाधीनता के निमित्त किए गए अनुपमेय आत्मोत्सर्गों की पावन-स्मृति को पुनर्जीवित कर देता है।

स्वतन्त्रता देवी के उपासकों द्वारा पवित्रीकृत इस प्रदेश में प्रथम प्रजारजक सुराज्य का बीजारोपण हुआ था। यह पावन आर्यावर्त का वह भाग है, जहाँ स्त्री एवं पुरुष, युवक तथा वृद्ध, धर्म—वास्तविक चान्न-धर्म—की रक्षा के लिए, स्वदेश की स्वाधीनता को अटल बनाए रखने के लिए, अपने प्राणों की आहुति देने में कभी भी नहीं हिचकिचाते थे। यह वह प्रान्त है, जहाँ की स्त्रियों ने अपने कुल-धर्म को अच्युत बनाए रखने में, अपने जातीय सम्मान की रक्षा में पुरुष-वर्ग को भी पराजित कर दिया था; जिन्होंने अपने प्रियतम जीवन-धन को, अपनी गोदी के लाल को, अपने स्नेहशील भ्राता एवं-पिता तक को चान्न-कर्तव्य के कण्टकाकीर्ण पथ में अग्रसर होने को उत्साहित किया था; जिन्होंने अपने कुल एवं देश की मर्यादा के लिए अपने प्रिय सम्बन्धियों को प्रत्यक्ष प्रचण्ड समराग्नि-कुण्ड में होम दिया था; जहाँ की स्त्रियों ने शत्रुओं के हाथ में पड़ कर अपमानित होने की अपेक्षा प्रचण्ड ज्वालामय अग्निदेव की गोद में बैठ कर मृत्यु का आलिङ्गन करना श्रेयस्कर समझा था। यह वह प्रान्त है, जहाँ युद्धक्षेत्र से विमुख व्यक्ति के लिए देश के किसी कोने में भी आश्रय-स्थल नहीं था! यदि हम विश्व के अन्य देशों के इतिहासों का अध्ययन करें, तो कदाचित् ही किसी देश के इतिहास में राजस्थान के चान्न-धर्म की महत्ता एवं वहाँ के असंख्य बलिदानों के तुलनात्मक दृष्टान्त का अवलोकन करने में सफल हों। भारत के मुस्लिम-शासकों में अकबर ही प्रथम व्यक्ति था, जिसने राजपूत-शौर्य एवं पराक्रम का अनुभव किया था। उसने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि राजपूतों से शत्रुता करना अपने सर्वनाश को निमन्त्रण देना है; किन्तु यदि उन्हीं राजपूतों को मित्रता-सूत्र में बद्ध कर लिया जाय तो वे भारतीय साम्राज्य के सुदृढ़ स्तम्भ-स्वरूप हो

जायेंगे। अतएव अकबर तथा उसके वंशजों ने इसी नीति का अवलम्बन करके राजपूतों को साम्राज्य का प्रबल पोषक बना लिया था। उन्होंने साम्राज्य के अत्युच्च सैनिक एवं नागरिक पदों से राजपूतों को विभूषित किया था। यही नहीं, वे राजपूत-बालाओं के साथ पवित्र दाम्पत्य जीवन में आवद्ध होना अपना परम सौभाग्य समझते थे। अकबर के पश्चात् जितने मुगल-शासक हुए, उनकी नसों में राजपूत-रक्त का सम्मिश्रण था! उन्होंने धार्मिक उदारता की भित्ति पर ही राजपूतों का

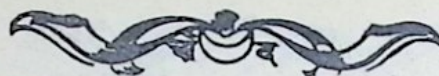
वीर एवं पराक्रमी सैनिक, उदार एवं करुणाशील शत्रु—यही राजपूत की वास्तविक परिभाषा थी। उसे अपने शत्रु का सम्मान करने में अभिमान था। वह सहर्ष एक वीर योद्धा की भाँति सम्मुख-युद्ध में स्वदेश-गौरव के लिए प्राण विसर्जन करता था। उसका शौर्य ही उसका सर्वस्व था। उसको गीता के ईश्वरीय वाक्यों “स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः” पर पूर्ण विश्वास था। अपङ्ग तथा जराजीर्ण शत्रु से युद्ध करना, अवरुद्ध शत्रुओं के अन्नाभाव या रक्षाभाव से अनुचित



माऊण्ट आबू के जैन-मन्दिर का भीतरी दृश्य

साहाय्य प्राप्त किया था। किन्तु इस प्रतापी मुगल-वंश के अन्तिम सम्राट् ने जिस दिन से अपने पूर्वजों द्वारा संस्थापित राजपूत-वशीकरणकारी प्रेम-नीति को त्याग कर, कट्टर धर्मान्धता एवं दुरन्त दमन-नीति का अवलम्बन किया, उस दिन से उसने अपने तथा स्ववंश के सत्यानाश का बीजारोपण किया। मित्रता एवं सद्भाव से जो अकबर एवं उसके वंशजों ने प्राप्त किया था, औरङ्गजेब उसे धर्मान्धता एवं जातीयता के अति सङ्कीर्ण भावों से खो दिया। अस्तु—

लाभ उठाना, राजपूत-धर्म के प्रतिकूल था। वह एक दुर्धर्ष स्पार्टन सैनिक के समान वीर था, परन्तु कूट नहीं। उसका युद्ध धर्म-युद्ध था। किसी देश को दासत्व की शृङ्खला में जकड़ने के लिए उसका शौर्य नहीं था। वह उदार था, अनुदार नहीं। उस काल के राजपूत-योद्धा में तथा वर्तमान समय के शिष्ट सैनिक में आकाश-पाताल का अन्तर है। यदि राजपूत की पूर्णता में कुछ भी अपूर्णता थी, तो वह थी राजनीति की। वास्तव में राजनीतिक क्षेत्र में राजपूत-कला का प्रदर्शन नहीं के



बराबर था। सांसारिक सफलता की कुञ्जी राजनीति के कुटिल प्रपञ्चों से रहित राजपूत इस छलमयी दुनिया के जालों को नहीं समझ सका—इसी अज्ञानता के कारण राजपूत को भयानक दण्ड भोगना पड़ा।

इन सब विषयों को सोच कर एक इतिहास-प्रेमी के दिल से स्वभावतः एक दर्द-भरी आह निकल जाती है—“हाय ! यदि राजपूत राजनीति में पारङ्गत होता तो आज भारत का इतिहास कुछ और ही होता।”



राजस्थान के प्रसिद्ध लेखक और 'किसान'
मासिक पत्र के सम्पादक

श्री० सुखसम्पति राय जी भगडा र

कौन आज चित्तौड़ और जोधपुर, मेवाड़ और उदयपुर के शुभ्र प्रासादों को देख कर स्थिर रह सकेगा ? जिस राजस्थान की भूमि का प्रत्येक रज-कण वीर राजपूत-पुरुष एवं स्त्रियों के रक्त से मिश्रित होकर देश-प्रेम के पुजारियों के मस्तक की शोभा वर्द्धित करने वाला है; जहाँ की पत्नी, जौहराबाई तथा कर्णवती के अनुपमेय शौर्य-प्रकाशक कृत्य प्रेमी-हृदय में अमर रहेंगे; जहाँ के

सांगा, भीमसिंह, प्रताप, अजीतसिंह, राजसिंह, जसवन्तसिंह और दुर्गादास आदि अंसख्य वीरों की चरिनावली देश-प्रेम के अनन्य उपासकों के मन-मन्दिर में देश-प्रेम के शुभ्र-प्रदीपों को प्रोद्भासित करती रहेगी ; जिस राजस्थान का प्रत्येक भाग उन अलौकिक वीरों के अमर-कृत्यों से प्रतिध्वनित हो रहा है—उसी पुण्य-स्थल राजस्थान के पुरुष और नारियाँ अब कहाँ हैं ? इस संसार के पापमय क्षेत्र से दूर, अत्यन्त दूर, किसी पुण्यमय प्रदेश में ! उन नर-सिंहों की सन्तान की आज यह अवनति, अपमानित तथा घोर लज्जामयी दशा ! उफ़ ! विधाता ! तेरो लीला !!

यद्यपि उनके वंशजों की नसों में उन्हीं का पवित्र रक्त प्रवाहित हो रहा है, परन्तु उनका वह शौर्य एवं पराक्रम कहाँ ? उनके वंशज वासना तथा विलास के भोगी बन गए हैं। यद्यपि उनकी धमनियों में अब भी बप्पा एवं प्रताप का रक्त बाँकी है, किन्तु उनके रक्त में अब अपने देश के लुप्त-गौरव का पुनरुद्धार करने की शक्ति तथा उत्साह कहाँ ? उनके पास अब भी ढाल तथा तलवार है, परन्तु है केवल बाह्य आडम्बर के लिए ! वे राज्य करते हैं, पर प्रजा के लिए नहीं—अपनी वृत्ति के लिए ! वे अब भी शूरवीरता का बाना पहनते हैं; युद्ध-स्थल के लिए नहीं, अन्याय तथा अनाचार को रोकने के लिए नहीं—परन्तु निर्बलों तथा निस्सहायों को सताने के लिए, प्रजा के रक्त-शोषण के लिए !! वे अब भी रणक्षेत्र में अवतीर्ण होते हैं—धर्म के लिए नहीं, स्वदेश-गौरव के लिए नहीं—केवल झूठी प्रशंसा के लिए !!! हा ! यदि आज इस अवनता, अपमानिता भारत-भूमि पर राणा प्रताप तथा राजसिंह जैसे वीर रहते तो क्या वे जननी की इस अधःपतित दशा को देख कर शान्त रहते ? नहीं, कदापि नहीं ! वे जननी के दुःख दूर करने में, जननी को उन्नति-शिखर पर बैठाने के लिए, अपना तन, मन तथा धन विसर्जन कर देते !

“जननी ! राजस्थली ! अपने इन गिरे हुए, मोह-निद्रा में सोए हुए, नर-सिंहों के कर्ण-कुहरों में वीरता का शङ्ख फूँक दे। उनके हृदय-भवन में स्वदेश-प्रेम की भव्य-भावना को भर दे। तथा ऐसे वीर—छात्र वीर—रत्नों को जन्म दे, जो स्वदेश के लुप्त-गौरव का पुनरुद्धार करने में सफल हों।

—द्वारकाप्रसाद लाखोटिया

*

*

*

मारवाड़ी-जाति और व्यापार

आज से करीब २००-३०० वर्ष पहले की बात है, जब मारवाड़ी-जाति ने व्यापार में अग्रसर होना आरम्भ किया। उस समय मुसलमानों का राज्य समाप्त होकर अङ्गरेज-कम्पनी का राज्य स्थापित हो रहा था और देश में एक घोर क्रान्ति-सी हो रही थी।

मरु-भूमि जैसे प्रदेश में रहने के कारण उस समय यह जाति धनी नहीं थी, तथापि राजपूती आत्म-गौरव, साहस, सुदृढ़ और सुसङ्गठित शरीर का अभाव भी नहीं था। स्वभाव से यह जाति मिहनती, व्यापार-बुद्धि वाली, मितव्ययी, जोखिम उठाने वाली, कष्ट सहन करने वाली और बड़ी हिसाबी-किताबी थी और रही है। इन्हीं सद्गुणों के कारण यह अपना व्यापार देश के प्रत्येक कोने में सब तरह की अपत्तियाँ और कष्ट सहन करके, स्थापित कर सकी। इसकी खास कमज़ोरियाँ रूढ़ियों का पोषक होना, अन्ध-विश्वास, व समय के साथ नहीं बदलना, इत्यादि हैं, जिनका हानिकारक परिणाम इसे आगे चल कर भोगना पड़ा। अस्तु—

राजपूताने से उठ कर पहले तो इसने अपने आस-पास के स्थानों में ही निरय की आवश्यक वस्तुओं का कारबार आरम्भ किया और जैसे-जैसे साधन, सम्पत्ति और अनुभव बढ़ता गया, उसी मात्रा में कारबार का क्षेत्र भी बढ़ता गया। उन कारबारों में से मुख्य ये थे—अनाज, घी, कपड़ा, सोना, चाँदी आदि को पैदा-इश की जगह से खरीद कर, जहाँ आवश्यक हो वहाँ पहुँचा देना या बेचना। अनेक सिक्कों का चलन होने के कारण आस-पास के सिक्कों को बट्टे से खरीद कर बदले में चालू सिक्के देना। रुपया व्याज पर उधार देना व जमा करना। रुपया देश के दूसरे भागों में भेजने व मँगाने के सुभीते के लिए हुण्डी लेना और बेचना। राज्य की तहसील-वसूल करके खजाने में भरना और दुर्भिक्ष, युद्ध व अन्य आवश्यक समय पर राज्य को रुपया उधार देना, इत्यादि।

इस प्रकार का कारबार बहुत दिनों तक चलता रहा। मगर इस बीच में समय बदल रहा था और विदेशी लोग अपना दखल भारतीय व्यापार पर जमा रहे थे। जो उस

समय तक का एकदेशीय व्यापार था, वह अन्तर्देशीय व्यापार बनने लगा और इस कारण बन्दरगाह व्यापार के केन्द्र बनने लगे। इस परिवर्तन का लाभ मारवाड़ियों ने उठाया और अपना डेरा बम्बई, कलकत्ता, रङ्गून आदि स्थानों में जमा दिया। यहाँ पर ये लोग विदेशी व्यापारी लोगों के मुत्सद्दी, दलाल व एजेण्ट बन गए और व्यापार में इनका मुख्य हाथ हो गया। विदेशी व्यापारी भी यहाँ की रीति-रिवाज और भाषा आदि से पूर्ण परिचित नहीं थे, अतएव उन्हें भी एक ऐसी जाति की आवश्यकता थी, जो उनका माल यहाँ के बाज़ारों में बेच दे व यहाँ की पैदावार उन्हें खरीद कर दे। इसलिए इन जातियों ने भी मारवाड़ियों के साथ पूर्ण सहयोग दिखलाया, जिसके कारण दोनों का व्यापार खूब चला।

इन कामों के अलावा रूई के जीन-प्रेस, जूट के प्रेस, तेल की मिलें, आटे की चक्कियाँ आदि छोटे-मोटे उद्योग-धन्धों में भी मारवाड़ियों ने हाथ लगाया, मगर समय के अनुसार आवश्यक विद्या का अभाव, विदेश-यात्रा को धर्म-विरुद्ध समझना, छुआछूत व जाति के झगड़ों को अत्यधिक महत्व दे देना आदि कारणों से इन कामों की उन्नति में एक प्रकार की रुकावट-सी आ गई।

इधर अङ्गरेज-सरकार का राज्य पूर्ण रूप से कायम हो गया, कलदार या चेहरेशाही सिक्का सारे भारत में चलने लगा, इसलिए जो सिक्कों की बदलाई में गुआइश थी वह निकल गई। बड़े-बड़े शहरों में बैंकों कायम हो गईं, इसलिए हुण्डीबण का कस या व्याज-बट्ट का रोज़गार था, वह भी शिथिल पड़ गया। साथ ही साथ जो रक़म साहूकारों के पास जमा रहती थी, वह बैंकों में जमा रहने लगी। बैंकों का मुख्य काम विदेशी व्यापार की आर्थिक सहायता करना है, इसलिए यहाँ के कारबार के लिए बाज़ार में रक़म की प्रचुरता कम हो गई, जिसके परिणाम-स्वरूप यहाँ के वाणिज्य-व्यवसाय को बड़ा धक्का लगा।

इस तरह कारबार में परिवर्तन हो ही रहा था कि एक दैवी घटना घटी और यूरोप में महा-युद्ध आरम्भ हुआ। खाद्य-पदार्थ, वस्त्र, शस्त्र, युद्ध-सामग्री व धन, जन की माँग बढ़ी, जिससे सब चीज़ों की दर बढ़ गई, साथ ही व्यापारियों के माल की कीमत भी आप से आप दूनी-चौगुनी हो गई व बढ़ती हुई माँग के कारण चहल-पहल भी बढ़ गई। इस प्रकार कम परिधम से ही धन



बरसने लगा, जिससे स्वभावतः लोगों में अधिक खर्च करने की आदत पड़ गई, व साथ ही कम मिहनत की भी आदत लग गई। व्यापारी जाति की इस प्रकार एक साथ वृद्धि देख कर अन्य लोगों का ध्यान भी व्यापार की ओर खिंचा और इस प्रकार जो कई छोटे-छोटे व्यापार मारवाड़ियों के हाथ में थे या आ सकते थे, वे उन लोगों ने ले लिए।

यूरोप का युद्ध समाप्त हुआ। युद्ध में लगी हुई जातियों का ध्यान लड़ाई से हट कर अपने जातीय व व्यापारी सङ्गठन की ओर गया और वे चीजों की पैदाइश बढ़ाने में उद्यत हुए। संसार की करन्सियाँ पुनः गोल्ड-स्टैण्डर्ड (Gold Standard) पर आ गईं। ऐसा करने के लिए प्रायः सब देशों को सिक्के और नोट कम करने पड़े। रकम की छूट कम हुई, जिससे सब माल की दर घटने लगी और माल का उलट-फेर भी कम होने लगा या दूसरे शब्दों में व्यापार में शिथिलता आने लगी। लोगों का नफ़ा या आमदनी भी साथ ही साथ घटने लगी। भारतवर्ष में रुपए का मूल्य १६ पैसे से १८ पैसे कर देने के कारण इसका असर विशेष पड़ा।

इसी समय जाति की जन-संख्या बढ़ी, खर्च भी बढ़ा। वह घटती हुई आमदनी के साथ घट नहीं सका, जिससे आपस के व्यापार में स्पर्धा बढ़ी और जिस व्यवसाय या स्थान में ५ दुकानों की आवश्यकता थी, वहाँ २५ हो गईं। नतीजा वही हुआ जो होना चाहिए था—रहा-सहा व्यापार भी प्रतिद्वन्द्विता में नष्ट होने लगा।

देशीय व्यापार का नफ़ा पहले ही कम हो चुका था; विदेश जाने में धर्म और समाज की अड़चन आती थी; देश में जो व्यापार के योग्य स्थान थे, वहाँ सब जगह मारवाड़ी-जाति पहले ही पहुँच चुकी थी; बैङ्किङ्ग, बीमा, नेविगेशन (Navigation) और उद्योग-धन्वे की शिक्षा का अभाव रहा, जिससे यह जाति इनमें से किसी में भाग नहीं ले सकी।

इधर विदेश वालों का व्यापार भी यहाँ काफ़ी तौर से सुदृढ़ हो चुका। वे यहाँ की रस्म-रिवाज, भाषा व आवश्यकताओं को बख़ूबी जान चुके, इसलिए यथा-सम्भव बीच में नफ़ा खाने वालों को हटाना चाहने लगे। रॉली ब्रादर्स और वालकट ब्रादर्स इत्यादि ने जूट, तिलहन, रुई आदि की खरीद अब अपने निज के नौकर रख कर

करना आरम्भ कर दी है। इस कारण से भी मारवाड़ी-जाति को व्यापार में धक्का लगा व भविष्य में लगने की सम्भावना है।

मारवाड़ी-जाति की उन्नति रुकने के अन्य कारणों में फाटका भी एक प्रधान कारण है। फाटके में कई लोगों के लग जाने से जो शक्ति व धन व्यापार-वृद्धि में लगता, वह अनुत्पादक मार्गों में व्यय हो रहा है!

इस दरम्यान में जिन मारवाड़ियों ने शिक्षा से लाभ उठाया है, आजकल के ढङ्ग पर व्यापारिक सङ्गठन किया है, अपने कारबार का क्षेत्र एकदेशीय न बना कर, अन्त-देशीय बनाया है। उनमें बिड़ला-परिवार, सर हुकुमचन्द आदि विशेष उल्लेखनीय और अनुकरणीय हैं। परन्तु इनकी संख्या बहुत कम है। साधारणतः मारवाड़ी लोग इस बात को नहीं सोचते कि सबसे अच्छा व्यापार वही है, जिससे धनोपार्जन तो अवश्य हो, पर उसके साथ-साथ देश को लाभ पहुँचे, अधिक आदमियों को काम में लगाया जाय, अपनी और देश की प्रतिष्ठा बढ़े। वे इस बात को नहीं सोचते कि जब पुराने ढङ्ग के काम में रुकावट पहुँचने लगी तो नए ढङ्ग का अवलम्बन करना चाहिए। इस बात को अच्छी तरह से समझने के लिए मैं एक उदाहरण देता हूँ। ऐसे कई मारवाड़ी हैं, जिनमें से प्रत्येक करोड़ों या लाखों रुपए लोगों को व्याज पर उधार देते हैं। यदि वे उसी रुपए से बैंक आदि खोल कर काम करें तो उससे उनका लाभ और प्रतिष्ठा बढ़े, देश और समाज का उपकार हो और बहुत आदमियों को काम में लगा सकें। जन-संख्या बढ़ रही है और संसार में व्यापार के ढङ्ग बदल रहे हैं, उनके अनुसार मारवाड़ी-समाज को भी जीवित रहने के लिए व्यापार का दायरा बढ़ाना होगा और नए ढङ्ग का अवलम्बन करना होगा।

—एक अध्ययनशील मारवाड़ी

*

*

*

राजस्थान की दरोगा-जाति

दरोगा या चाकर हिन्दुओं की एक जाति है। इस जाति के लोग राजपूताना की प्रत्येक राजपूत-रियासत में, प्रत्येक क़स्बे में और प्रत्येक बड़े गाँव में

पाए जाते हैं। जहाँ कहीं भी राजपूत होंगे वहाँ ये दरोगा या चाकर भी अवश्य पाए जायेंगे। उनकी जाति का सर्व-प्रथम नाम 'गोला' था। गोला संस्कृत भाषा के 'गोलक' शब्द का संक्षिप्त रूप है, जिसका अर्थ है 'उपपत्ति द्वारा उत्पन्न किसी विधवा का पुत्र' (देखो अमर-कोष)। दरोगा लोग गोला कहे जाने से बुरा मानते हैं, क्योंकि यह घृणासूचक शब्द है और इससे उनके नीच वंश-जात की बात प्रकट होती है। आजकल ये लोग दरोगा, खवास, पासवान, चाकर, चेला, वजीर, धिकड़िया, खासे, रावणा के साथ का या 'रावणा' के नाम से पुकारे जाते हैं, और इनकी स्त्रियाँ दाउदी, खालसाई दाऊदी, मानस, बदारन, गोली और दरोगन कही जाती हैं। इनको प्रायः गोला और चाकर कहके पुकारा जाता है, पर इनकी जाति ज्यादातर दरोगा के नाम से ही मशहूर है। ये लोग मारवाड़ (जोधपुर) और मेवाड़ (उदयपुर) में रावणा, खालसाई, चाकर कहे जाते हैं। दरोगा-जाति के जो लोग राजाओं और राजवंश वालों की सेवा करते हैं, वे अपने को उन दरोगाओं की अपेक्षा, जो गरीब राजपूतों की सेवा करते हैं, अधिक ऊँचे दर्जे का मानते हैं। ये लोग आपस में एक-दूसरे को ठाकुर कह कर पुकारते हैं। ये अपने को राजपूत ज़ाहिर करते हैं और अपनी जाति चौहान, राठौड़, सोढ़ा, साओकला, पँवार, सोलंकी, गहलोत, टाक, भाटी, तँवर, बड़गूजर, गौर, बघेल आदि बतलाते हैं। उनमें से कितने ही राजपूत पुरुषों और दरोगा या अन्य जाति की स्त्रियों के नाजायज सम्बन्ध से उत्पन्न हुई औलादों के वंशधर हैं। कितने ही महाजन और चारण भी, जो राजपूतों से अधिक सम्बन्ध रखते हैं और जो देशी राज्यों में ऊँचे पदों पर काम करते हैं, दरोगों को पैतृक या खान्दानी नौकर की हैसियत से रखते हैं। पर राजपूतों के यहाँ रहने वाले दरोगा उनके साथ विवाह-सम्बन्ध करना अपमान-जनक समझते हैं। मेवाड़ में भील-स्त्रियों की सन्तान, जो उनके राजपूत-स्वामियों के औरस से पैदा होती है, दरोगों के साथ विवाह-सम्बन्ध करती है और दरोगा बन जाती है। मेवाड़ में कहावत है, कि भील-स्त्री की सन्तान तीसरी पीढ़ी में दरोगा बन जाती है, और राजपूत के वीर्य से उत्पन्न हुई दरोगा-स्त्री की औलाद तीसरी पीढ़ी में राजपूत बन जाती है। राजपूताने में वर्तमान समय में

इस बात के कितने ही प्रसिद्ध उदाहरण मौजूद हैं कि दरोगा लोग राजपूत बन गए और राजपूतों ने भी उनको अपनी जाति का मान लिया। दूसरी तरफ़ शुद्ध-रक्त के राजपूत, जोकि दरिद्र हो गए हैं और राजपूतों की हैसियत से रह सकने में असमर्थ हैं, दरोगों की जाति में मिल जाते हैं और दरोगा बन जाते हैं!

अब समय की गति से धीरे-धीरे दरोगा लोग इज़्ज़त-दार राजपूतों के घर के एक आवश्यक अङ्ग बन गए हैं। उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहने का परिणाम प्रायः राजपूतों के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ है। राजपूत घरानों के नौजवान लड़के प्रायः उनकी सङ्गति में पड़ कर धिगड़ जाते हैं, शराबी बन जाते हैं, और दरोगों की नवयुवती स्त्रियों से गुप्त प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। ये ही स्त्रियाँ बाद में खुले तौर पर उनकी उप-पत्नियाँ बन जाती हैं और खवास जी, पर्दायत जी, बादारन जी आदि कहलाती हैं। उस दशा में वे पैरों में सुवर्ण का गहना पहन सकती हैं, और उनके भाई और बाप आदि 'पर्दायत जी' के भाई या बाप कहलाने में अपनी इज़्ज़त समझते हैं! जब कि दरोगों की स्त्रियाँ राजपूत-घरानों में बच्चों को दूध पिलाने का काम करती हैं, तो वे धावड़ जी कहलाती हैं और उनके लड़के धाभाई कहे जाते हैं।

तो भी जनता में गोला (दरोगा) लोग तुच्छ निगाह से देखे जाते हैं और उनके साथ बर्ताव भी सम्मानयुक्त नहीं किया जाता। एक कहावत प्रसिद्ध है कि—“सौ गोलही घर सुनो”—अर्थात् किसी घर में चाहे सौ गोला रहते हों तब भी वह सुना है। इसी तरह दूसरी कहावत है—“गोला किणसँ गुण करे औगुण गुण आप”—अर्थात् गोला खुद ही औगुणों से भरा होता है, वह दूसरे के साथ क्या भलाई कर सकता है? ये कहावतें प्रकट करती हैं कि सर्वसाधारण इन लोगों की कैसी क्रूर करते हैं। राजिया नाम का कवि एक प्रसिद्ध सोरठे में राजपूतों को गोलों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध न रखने के सम्बन्ध में इस प्रकार चेतावनी देता है :—

गोला घणा नजीक, रजपूता आदर नहीं।
उण ठाकर री ठीक, रण में परसी राजिया ॥
अर्थात्—जो राजपूत गोलों को अपने बहुत पास



में रखते हैं, वे समस्त आदर-सम्मान को खो बैठते हैं। राजिया कहता है, जब उनको युद्ध-क्षेत्र में जाने का काम पड़ेगा तो उनको इसका फल भोगना पड़ेगा।

उपरोक्त कथन की पुष्टि में एक घटना वर्णन की जाती है, जो औवा (मारवाड़) के ठाकुर के सम्बन्ध में है। एक युद्ध में वह घायल होकर घोड़े से नीचे गिर गया। उसके साथ एक गोला था, जो उस घोड़े पर चढ़ कर घर लौट आया और ठाकुर के मरने की खबर सुनाई। ठाकुर की स्त्रियों ने चूड़ियाँ फोड़ डालीं और विधवाओं के वस्त्र धारण कर लिए। थोड़ी देर बाद घायल ठाकुर भी अपने राजपूत-साथियों की सहायता से रण-क्षेत्र से घर आ पहुँचा। उस समय से औवा में कोई गोला घोड़े पर सवार नहीं हो सकता।

उत्पत्ति

प्राचीन काल में तमाम श्रेणियों के हिन्दू स्वतन्त्र व्यक्ति थे। अब से ढाई हजार वर्ष पहले कौटिल्य ने अपने अर्थ-शास्त्र में, जोकि संस्कृत-साहित्य में राजनीति-विज्ञान का परम प्रसिद्ध ग्रन्थ है, लिखा है कि कोई भी आर्य (हिन्दू) दास नहीं बनाया जा सकता। इसके पश्चात् जब जाति-प्रथा का उसके वर्तमान स्वरूप में आविर्भाव होने लगा; भिन्न-भिन्न जातियाँ अपने पृथक् और एक-दूसरे से स्वतन्त्र समूह बनाने लगीं; भिन्न-भिन्न जातियों में शादी-विवाह का होना निषिद्ध माना जाने लगा और कितने ही कारणों वश स्त्रियाँ अधिकाधिक पदों और घर के भीतर बन्द रखी जाने लगीं, तो कितनी ही नई-नई सामाजिक आवश्यकताएँ, विशेषतः सैनिक जातियों में उत्पन्न होने लगीं, और उनकी पूर्ति के लिए हिन्दू-समाज के सङ्गठन में कितने ही नए परिवर्तन किए गए। राजपूत लोग युद्ध के लिए अथवा भारतवर्ष के दूरवर्ती भागों में नौकरी करने के कारण प्रायः घर से बाहर रहा करते थे, और उनकी स्त्रियाँ पदों के भीतर रहती थीं, इसलिए उनको ऐसे सेवकों के रखने की आवश्यकता पड़ी, जो हर तरह का काम करने को राज्ञी हों और जो अपना हिताहित मालिक से भिन्न न समझें। इसलिए एक ऐसी नई श्रेणी की रचना और उत्पत्ति हुई, जिसके व्यक्ति बंशानुक्रम से अधीनता में रह कर घर का काम-काज करते रहें। इस समूह में उन लोगों को स्थान दिया गया है जोकि 'गोलक' या 'गोला' कहलाते

थे और जिनके साथ जाति-च्युत लोगों के समान बर्ताव होता था। इस श्रेणी को अपनी संख्या बढ़ाने के लिए वे बच्चे मिलते रहे, जोकि राजपूतों के औरस से भील और अन्य नीच जाति की रखेली स्त्रियों के उत्पन्न होते थे! इन लोगों ने एक सुधरे हुए रूप में गुलामी को स्वीकार किया और बदले में उनको जीवन-निर्वाह की सामान्य सामग्री स्थायी रूप से मिलना निश्चित हुआ। काल-क्रम से उनमें से कुछ उत्तरदायित्व के पदों पर नियुक्त किए गए और वे दरोगा (किसी महकमे के मुखिया) कहलाए जाने लगे! इसके फल-स्वरूप गोला या चाकर लोगों की तमाम जाति ही दरोगा के नाम से प्रसिद्ध हो गई, ठीक उसी प्रकार जैसे राजपूताने के कायस्थों का नाम पञ्चौली पड़ गया। (पञ्चौली शब्द पाँचकुली का अपभ्रंश है) पाँचकुली किसी ज़माने में एक ऐसी कमेटी के मेम्बर को कहा जाता था, जिसका काम देशी रियासतों में कर (महसूल) वसूल करना और उसका प्रबन्ध करना होता था। इन कमेटियों में ब्राह्मण, महाजन, गूजर आदि सभी लोग नियुक्त किए जाते थे। पर चूंकि कायस्थ लोग बहुत बड़ी संख्या में इनमें नियुक्त किए जाते थे, अतः उनका नाम ही पञ्चौली पड़ गया और अब राजपूताने के सभी कायस्थ पञ्चौली कहलाते हैं।

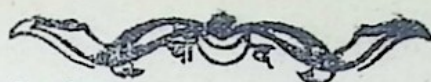
दरोगा या गोला नौकर नहीं, घरन् चाकर समझे जाते हैं। नौकर वह कहा जाता है, जो अपनी राज्ञी से नौकरी कर सके और जब चाहे उसे छोड़ सके। पर चाकर ऐसा नहीं कर सकता! इस प्रकार चाकर या गोला-जाति का उद्भव हिन्दू-समाज के विकास में एक विशेष परिवर्तन-सूचक घटना है।

मालिक और चाकर का सम्बन्ध

अपने स्वामियों के घर में दरोगों की वर्तमान दशा का सारांश इस प्रकार है :—

(१) मालिक गोलों को खाना-कपड़ा, विवाह-सम्बन्धी व्यय और दूसरे ज़रूरी खर्च देता है। मौसर (किसी के मरने की दावत) का खर्च केवल घरजों (घर में उत्पन्न हुए गोलों) चाकरों के वास्ते दिया जाता है।

(२) मालिक को अधिकार है कि वह किसी चाकर से चाहे जिस प्रकार की सेवा करावे। चाकर मालिक की नौकरी को छोड़ सकने को स्वतन्त्र नहीं होता।



(३) दूरोगों के बच्चों को भी खाना और कपड़ा पाने का अधिकार होता है, पर साथ ही वे मालिक की इच्छानुसार काम करने को बाध्य होते हैं।

(४) मालिक को अधिकार है कि वह अपनी बेटी के दहेज में दूरोगों की किसी एक या ज्यादा बेटियों को दे डाले। ये लड़कियाँ तब उस व्यक्ति की सम्पत्ति हो जाती हैं, जिसके साथ मालिक की लड़की का विवाह होता है। कभी-कभी इस प्रकार पूरे कुटुम्ब दे डाले जाते हैं।

(५) अगर कोई मालिक ऐसा समझे कि उसके चाकरों की संख्या उसकी आवश्यकता की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ गई है, तो वह अपनी इच्छानुसार कुछ को रख कर, बाक़ी से और कहीं जाकर रोजी तलाश करने को कह सकता है। पर उसे अधिकार होता है कि शादी इत्यादि के अवसर पर वह उनसे काम करा सके और उनकी लड़कियों को बुला कर अपनी बेटी के दहेज में दे सके।

(६) जबकि दूरोगा की लड़की की शादी किसी दूरोगा के साथ की जाती है, तो दूल्हा से 'रीट' के स्वरूप में जो धन मिलता है, उसे लड़की का स्वामी ले लेता है। कभी-कभी इसका आधा भाग लड़की के बाप को भी दे दिया जाता है।

(७) कोई चाकर अपने मालिक से केवल उसी दशा में पूर्णरूप से स्वतन्त्र हो सकता है, जबकि वह उस तमाम धन को चुका दे, जोकि मालिक ने उसके लिए खर्च किया है।

इस सम्बन्ध में मालिकों की तरफ़ से हमेशा यह दलील दी जाती है कि चूँकि वे चाकरों को खाना और कपड़ा देते हैं और उनके विवाह का खर्च भी बर्दाश्त करते हैं, इसलिए चाकर उनकी जायदाद बन जाता है—और न सिर्फ़ चाकर ही, वरन् उसके बच्चे भी। पर यह एकतरफ़ा दलील है। मालिक उस अकुण्ठित भाव से की हुई सेवा का कोई मूल्य ही नहीं लगाता, जोकि चाकर उस तमाम समय में करता रहता है, जब कि उसको खाना और कपड़ा दिया जाता है। मालिक प्रायः यह युक्ति भी देते हैं कि अपनी सन्तान के समान वे चाकरों को खिलाते हैं, उनकी देख-रेख रखते हैं। पर क्या उसकी सन्तान, उनकी अपनी सन्तान, उनकी उसी

रूप में जायदाद बन जाती है, जिस रूप में चाकरों के सम्बन्ध में दावा किया जाता है?

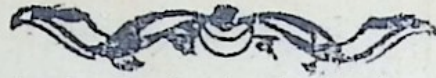
यह प्रथा एक प्रकार की गुलामी है। यह बात कि कुछ चाकर लोग आराम की जिन्दगी गुज़ारते हैं और उनको उत्तरदायित्व तथा विश्वास के काम सुधुर्द किए हुए हैं, इस प्रथा के स्वाभाविक दोषों को नहीं बदल सकती। यों तो सुल्तान शोरी के गुलाम, राज्य के सबसे ऊँचे पदों पर जा पहुँचे और उन्होंने देहली में गुलाम-बादशाहों की सन्तनत कायम ही कर दी। गुलामी क्या है—इसकी व्याख्या एन० डब्लू० पी० हार्डकोर्ट के विद्वान् जर्जों ने सन् १८७१ में सिकन्दरबख्त वाले मुकदमे में इस प्रकार की थी:—

(क) किसी मनुष्य के साथ गुलाम के समान व्यवहार होना उसको कहते हैं, जब कि दूसरे मनुष्य को पूर्ण रूप से यह अधिकार हो कि वह उसकी व्यक्तिगत स्वाधीनता में बाधा डाल सके और उससे उसकी मर्ज़ी के खिलाफ़ काम करा सके—सिवाय उन हालतों के, जब कि ऐसे अधिकार को कानून ने मान लिया हो, जैसे कि बच्चों पर माँ-बाप का और कैदियों पर जेलर का अधिकार।

(ख) कितने ही लोग बच्चों को उनके माँ-बाप से या और लोगों से ख़रीद लेते हैं और उनसे नाम-मात्र की या बिना किसी प्रकार की स्वाधीनता दिए हुए, काम कराते हैं। ये वच्चे वास्तव में गुलाम ही हैं और यह स्पष्ट है कि उनकी दशा ऐसी है जो कि अङ्ग्रेज़ी कानून के सर्वथा विरुद्ध है, ऐसे बच्चों को जो लोग घर में रोक कर रखते हैं, वे फ़ौजदारी कानून के अनुसार दण्डनीय हैं।

उपरोक्त उद्धरणों से दूरोगा या चाकरों के दर्जे का स्पष्ट रीति से पता लग जाता है।

मुग़लों की बादशाहत के ज़माने में इस प्रथा की बहुत वृद्धि हुई थी। पर देश में अङ्ग्रेज़ी शासन के आगमन के साथ दशा बदलने लगी। इस प्रथा को कायम रखना उन सिद्धान्तों के प्रतिकूल था, जिन पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार प्रतिष्ठित थी। यह बात उन लोगों के दिमाग़ के, जिनको व्यक्तिगत स्वाधीनता प्राणों के समान प्यारी थी, प्रतिकूल थी। व्यक्तिगत स्वाधीनता का अधिकार और अपने जीवन को अपनी



इच्छानुसार बनाने का हक—दूसरों को भी उसी प्रकार की स्वाधीनता देते हुए—स्वीकार किया गया और व्यवहार में लाया जाने लगा। इसलिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार ने चाकरों के ऊपर मालिकों का अधिकार मानने से इन्कार किया। उसने केवल इन स्वत्वों को अस्वीकृत ही नहीं किया, वरन् इस प्रकार के स्वत्व का उपभोग करना जुर्म करार दे दिया।

सन् १८४३ में गुलामी की प्रथा के सम्बन्ध में एक कानून (एक्ट नं० ५) पास करके ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीनस्थ राज्य में जारी किया गया, जिसमें कहा गया है :—

(१) कोई भी सरकारी कर्मचारी अदालत की किसी डिगरी या हुक्म की तामील करने के लिए, या महसूल और लगान-अदायगी के वास्ते, इस आधार पर कि कोई आदमी गुलाम है, किसी शख्स को न बेच सकता है, न बिकवा सकता है, न बेगार करा सकता है, और न उसकी सेवाओं को बेच या बिकवा सकता है।

(२) अगर कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति पर, इस आधार पर कि वह उसका गुलाम है, किसी प्रकार का दावा करेगा तो वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीनस्थ राज्य में किसी दीवानी या फौजदारी कानून के अनुसार या किसी मैजिस्ट्रेट के द्वारा स्वीकृत न किया जायगा।

(३) अगर किसी व्यक्ति ने अपने परिश्रम से, अथवा किसी कला-कौशल, पेशे और रोजगार के द्वारा अथवा उत्तराधिकार, वसीयत, भेंट के द्वारा कोई सम्पत्ति प्राप्त की हो, तो वह इस आधार पर कि वह गुलाम है या जिससे सम्पत्ति मिली है वह गुलाम है, उस सम्पत्ति से वञ्चित नहीं किया जा सकता और न उस पर कब्जा करने से रोका जा सकता है।

(४) कोई भी काम, जो एक स्वतन्त्र आदमी के साथ करने पर दण्डनीय अपराध माना जाता है, वह काम यदि किसी व्यक्ति के साथ इस बहाने से किया जायगा कि वह गुलाम है, तो वह समान रूप से दण्डनीय होगा।

इस प्रकार ब्रिटिश-भारत में चाकरों और दरोगों के ऊपर मालिकों का अधिकार रखने का दावा समाप्त हो गया और दरोगे कानून के अनुसार फिर से स्वाधीन

बन गए। पर यह कानून उस भू-भाग में प्रचलित नहीं किया गया, जो कि देशी राजाओं के अधिकार में था। वहाँ पर यह प्रथा बराबर जारी रही। देशी रियासतों में शिक्षा और ज्ञान का प्रचार भी, जिसके द्वारा मनुष्य समझ पाता है कि उसके भी कुछ जन्म-सिद्ध अधिकार हैं, ब्रिटिश-भारत की अपेक्षा बहुत कम हुआ है। इसलिए मालिक लोग ऊपर लिखे हुए अधिकारों पर इदतापूर्वक जमे रहे और चाकरों के विरुद्ध उनको थमल में लाने में भी प्रायः सफल होते रहे। और सच पूछा जाय तो इस प्रकार के दावे का विरोध भी केवल उन्हीं लोगों ने किया, जिनको ब्रिटिश-भारत की अपेक्षाकृत स्वाधीनतापूर्ण परिस्थिति में रहने का अवसर मिला था।

चाकर रखने की इस प्रथा को जारी रखना, उस घोषणा के प्रतिकूल है, जो हाल ही में जींग ऑफ़ नेशनल्स में ब्रिटिश-डेलिगेटों ने की थी और जिसमें कहा गया था कि ब्रिटिश-साम्राज्य से गुलामी की प्रथा मिटाई जा चुकी है। अगर एक ऐसा नियम बना दिया जाय कि अदालतों में चाकरों के ऊपर मालिकों का ऐसा कोई अधिकार या दावा स्वीकृत न किया जायगा, जो कि साधारण नौकरों के सम्बन्ध में स्वीकृत नहीं किया जाता, तो वर्तमान परिस्थिति का प्रतिकार हो सकना सम्भव है। इससे परिस्थिति कुछ सुधर जायगी और आन्दोलन शान्त हो जायगा। यह प्रथा, पर्दा-प्रथा के जारी होने के फल-स्वरूप उत्पन्न हुई थी और उसके साथ स्वयमेव लुप्त हो जायगी, पर वह दिन अभी दूर है !

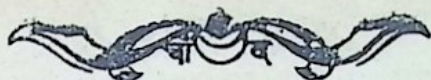
—(राय साहब) हरविलास शारदा

(एम० एल० ए०)

* * *

मारवाड़ियों की इच्छाएँ

प्रत्येक जाति, धर्म या समूह के लोगों में विशेष-विशेष प्रकार की भावनाएँ देखने में आती हैं, जिनके विषय में किम्बदन्तियाँ या लोकोक्तियाँ प्रसिद्ध हो जाती हैं। इनसे उस गिरोह का मुख्य लक्षण (ख़ासियत) प्रकट होती है। राजपूताने की भिन्न-भिन्न जातियों के विषय में



भी इसी प्रकार की कहावतें प्रसिद्ध हैं। यद्यपि किसी अंश में ये कहावतें इन जातियों को कुछ चुभने वाली भी मालूम होती हैं, तथापि वे परम्परा से चली आती हैं, और सम्भवतः किसी अनुभव पर ही निर्भर हैं। अतः वे अप्रिय प्रतीत नहीं होती।

इन मारवाड़ी-लोकोक्तिओं को उद्धृत करने से हमारा अभिप्राय किसी की निन्दा या स्तुति से नहीं है, प्रत्युत इनसे कुछ न कुछ शिक्षा ही मिलती है। पहले मारवाड़ी-ब्राह्मणों ही को लीजिए, जिनका फ़ोटो किसी चारण कवि ने इस प्रकार खींचा है :—

मरे कोई दोलतवान के बूढ़ो वाणियो ।

द्वारे जाके जाय करै मन जाणियो ॥

बारे दिन बेसाय गुरड़ बचावण ।

इतरा दे किरतार फेर काई चावण ॥

अर्थ—यदि किसी धनवान् या बूढ़े बनिये की मृत्यु हो और उसके घर पर जाकर मैं मनमाना काम करूँ, बारह दिन तक गरुड़पुराण का पाठ करूँ, तो इससे बढ़ कर मेरे लिए कोई सौभाग्य की बात नहीं हो सकती।

इसी प्रकार ब्राह्मणों में श्रीमाली नामक जाति की यह इच्छा बतलाई गई है :—

जीमी-जीमी ने भले जीमू ।

बीणी-बीणी ने भले बीणू ॥

अर्थात्—श्रीमाली ब्रह्मदेव सदा अपने यजमानों के यहाँ भोजन जीमने की इच्छा करते हैं, और उनकी देवी गोवर-कण्डे (ईधन) बीनना पसन्द करती हैं। किसी मुसलमान कवि ने इनकी उपयोगिता यों बतलाई है :—

दे खुदा तू ऐसा नर, पीर बवर्ची भिश्ती खर ।

अर्थात्—ऐ खुदा! तू ब्राह्मण-जैसा शररुस अता क्ररमा, जिससे चारों काम निकले। यानी जो पीर, बवर्ची, भिश्ती और बोझा ढोने वाला कुली भी हो।

चत्रियों में राजपूत-जाति की इच्छा किसी डिङ्गल कवि ने इस प्रकार कही है :—

मगरे काँठे बास, बाहरू बज्जणाँ ।

नितरी आवे धाड़, कमराँ सज्जणाँ ॥

बङ्गा भड़ जूँभार, खला दल भोलणाँ ।

इतरा दे किरतार, भले क्या बोलणाँ ॥

अर्थात्—मेरा निवास-स्थान पहाड़ियों के बीच में

हो और मुझे पकड़ने के लिए लोग पीछे लगे रहें और हमेशा ही मेरे हाथ लूट-खसोट का माल आया करे। दौड़-धूप और लड़ाई के लिए मेरी कमर सदा बँधी रहे। लड़ाई में सदा बहादुरी दिखाऊँ। कदाचित् शिर भी कट जाय तो भी लड़ता रहूँ और जुम्हार (रण-वीर) कहाँ तथा शत्रु की फ़ौज को कम्पायमान् करता रहूँ। ऐसे अवसर यदि मिलते रहें, तो किसी अन्य चीज़ की इच्छा नहीं है।

राजपूतनी यह चाहती है :—

चाकर गोली होय, जमी बहे वारणे ।

मदवो महलाँ माँय, प्यारी रे कारणे ॥

कामेत्याँ करे काम, ढोली नित गावणा ।

इतरा दे किरतार, फेर काई चावणाँ ॥

अर्थात्—ख़िदमत करने को दास और दासियाँ हों, भूमि मेरे पति के अधिकार में हो, महल में मेरे विलास के लिए ख़ूब शराब हो, काम-काज सँभालने को कामदार हो और हर समय गाना सुनाने को ढोली हो, तो फिर किसी चीज़ की इच्छा नहीं।

राजपूतों के कामदारों और वोहरों की इच्छा इस प्रकार बतलाई गई है :—

ठाकर बालक होय, हुक्म ठकराणियाँ ।

गाँव दुसाखियो होय, के वस्ती वाणियाँ ॥

घरे ही न्याव पताव, घरासू तोलणाँ ।

इतरा दे किरतार, फेर नहीं बोलणाँ ॥

अर्थात्—ठाकुर बालक हो और ज़नाने की स्त्रियों (ठकुरानियों) का हुक्म चलता हो, गाँव में दो फ़सलें पैदा होती हों और महाजनों की बस्ती हो, अपने घर से ही सामान तोल कर दिया जाता हो, और घर पर ही हिसाब-किताब करने का—फ़ैसला करने का—अधिकार हो। यदि ये सब बातें हों तो फिर और किस वस्तु की आवश्यकता है?

वैश्य-जाति के लिए यह उक्ति चली आती है कि :—

अगम बुद्धि वाणियो पच्छम बुद्धि भट्ट ।

अर्थात्—बनिया आगे की बात सोचने वाला होता है, परन्तु ब्राह्मण तीव्र-बुद्धि नहीं होता।

बाणीया थारी वाण, कोई नर जाणे नहीं ।

पाणी पीरा छाण, लोही अण छाणो पिए ॥



अर्थात्—हे बनिए ! तेरा रहस्य कोई नहीं जान सकता ; क्योंकि तुम यद्यपि पानी तो खूब छान कर पीते हो, ताकि जीव-जन्तु से बचाव हो, परन्तु रक्त बिना छाना हुआ ही पी जाते हो ! अर्थात् तुम बौहरे बन कर अपने असामियों को इतना कष्ट देते हो कि वे बेचारे अन्त में मर ही जाते हैं ।

जाट, माली, सीरवी आदि कृपक यह चाहते हैं :—

नई मूँजरी खाट के नचू टापरी ।
भैंस डल्यो दो-चार के दूजे बापड़ी ॥
बाजर हन्दा बाट दही में ओलणों ।
इतरा दे किरतार फेर नहीं बोलणों ॥

अर्थात्—नए बान से बुनी हुई खाट हो, वर्षा में न टपकने वाली झोपड़ी हो, दो-चार दूध देने वाली भैंसें हों तथा बाजरे के सोगरे (रोटी) और दही खाने के लिए हो । यदि परमात्मा हमको इतनी बातें दे, तो फिर गिड़गिड़ाने की कोई आवश्यकता नहीं ।

किसान की कन्या यह चाहती है :—

उठे ही पीरो होय उठे ही सासरो ।
आथूणों होय खेत चवे नहीं आसरो ॥
नाडा खेत नजीक जठे हल खोलणों ।
इतरा दे किरतार फेर नहीं बोलणों ॥

अर्थात्—अपने पिता और श्वसुर का घर एक ही गाँव में हो, खेत पश्चिम में हो (जिससे सुबह रोटी लेकर खेत में जाऊँ और शाम को वापस लौटूँ तो सूर्य सामने न हो), झोपड़ी में वर्षा-काल में पानी न टपकता हो, तालाब खेत के पास हो, जहाँ पर बैल खोल दिए जायँ और बैलों को पानी पिलाने को दूर न ले जाना पड़े । इतनी बातें परमात्मा देवे, तो फिर और माँगने की आवश्यकता नहीं ।

व्यवसाय-पेशा वाले लोगों—जैसे खाती, बढ़ई, माली, कुम्हार और नाई—के लिए यह कहावत प्रसिद्ध है :—

छोड़ा पाइन वूँट उपाड़ण थपथपियो ने नाई ।
इतरा ने मत मूँड गुराँ कुबुध करेलाँ काँई ॥

चारण, पुरोहित (राजगुरु) और नाथ (दक्षनामी साधु) लोगों के विषय में यह उक्ति चली आती है :—

चारण मरसी जगतारा प्रोहित पड़सी पार ।
निर्वेश जासी नाथड़ा, जद होसी निर्धार ॥

अर्थात्—जब तमाम संसार के चारण मर जायँगे, पुरोहित लोग भी नष्ट हो जायँगे और कनफटे जोगी (नाथ) ला-औलाद स्वर्ग-धाम सिधार जायँगे, तभी न्याय की आशा की जा सकेगी, अन्यथा अन्धेर-खाता, पोल-पट्टी और अन्याय रहेगा । क्योंकि इन लोगों की झूठी खुशामद व जल्लो-चप्पो से रईस व अफसर लोग प्रायः बिगड़ जाते हैं ।

राजपूताना, मालवा और गुजरात प्रान्त के देशी राज्यों में एक बड़ा समूह उन लोगों का है, जो देश-भेद से दरोगा, चाकर, रावणा, हजूरी खानाजाद, बढ़ारी, गोला, खवास, चेला, डीकड़िया, दरबारी, दास, वजीर और लुन्दा आदि नामों से पुकारे जाते हैं । उनके विचार लदियों से दासता की ज़ंजीरों में बँधे रहने से इतने सङ्कीर्ण हो गए हैं कि स्वतन्त्रता का नाम तक भूल चुके हैं । वे लोग यह चाहते हैं :—

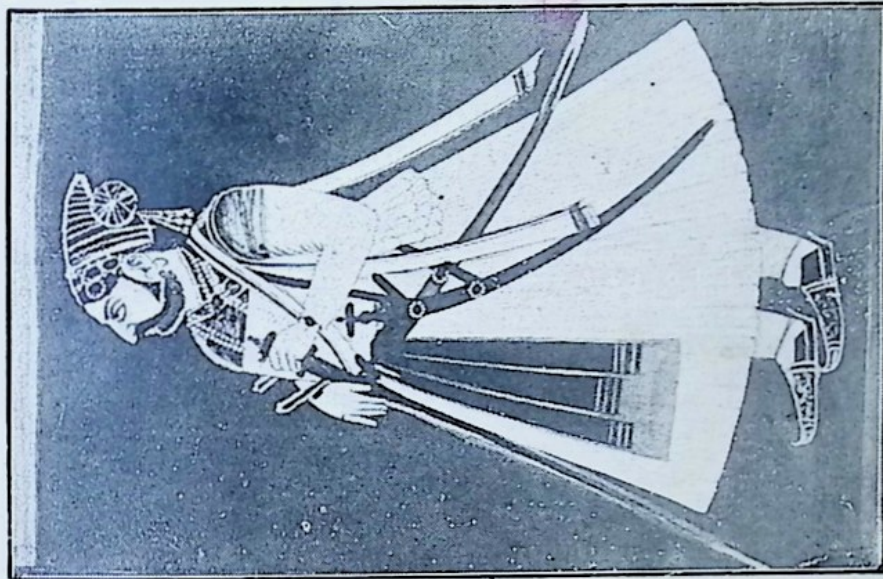
राज में पासो होय, परदे होवे धीवड़ी ।
सुवण सुथरी सेज, नीर भरी दीवड़ी ॥
पीवण चमड़ पोस, अमल नित खावणों ।
इतरा दे किरतार, फेर काँई चावणों ॥

अर्थात्—राज्य में मेरा बसीला हो, सरदार के चित में चढ़ी हुई पुत्री हो, सोने के लिए अच्छी सेज हो, ठण्डा पानी पीने को झारी हो, चमड़े का हुक्का सेवन करने को हो और हमेशा खाने को काफी अफीम हो । यदि ईश्वर ये सब वस्तुएँ देवे तो और कोई इच्छा बाक़ी नहीं है ।

दरोगा (रावणा) की स्त्री की इच्छा यह रहती है :—

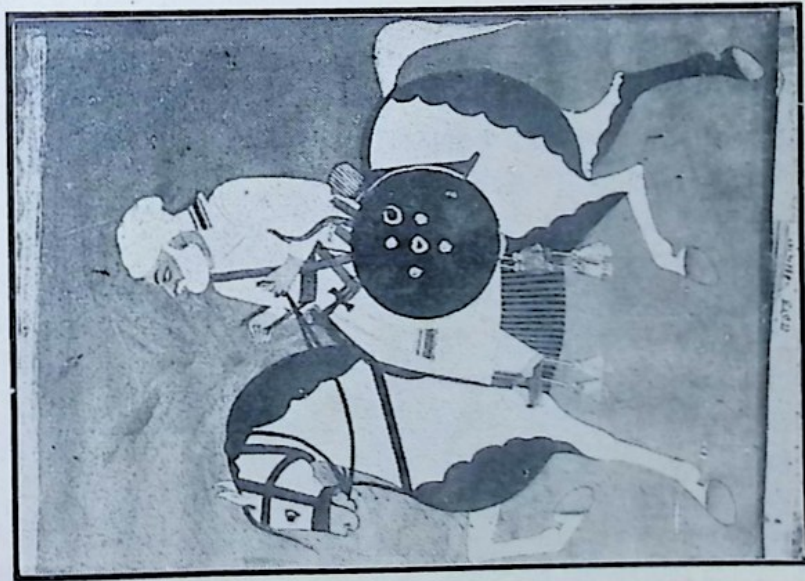
रूप रङ्ग निधान जवानी बावला ।
हाँडी डोई हाथ रसोड़ा रावला ॥
सरदाराँ सूँ सेद माटी होवे मोलणों ।
इतरा दे किरतार फेर नहीं बोलणों ॥

अर्थात्—सौन्दर्य और गोरा रङ्ग खूब हो, चढ़ती जवानी हो, सरदार के रसोई-घर (पाकशाला) में दल्ल हो, सरदारों से मेरा प्रेम हो और पति मेरे वशीभूत



राव अमरसिंह राठौड़

[सत्तावत ह्वाँ को भरे दरबार में बघ करने वाले]



वीर दुर्गादास राठौड़

[जोधपुर राजवंश की रत्ना करने वाले]



INTERIOR GLASS PALACE, AHMEDABAD



रामनिवास बाग में स्थित जयपुर का सुप्रसिद्ध म्यूज़ियम



जोधपुर की सदर कचहरी



स्वर्गीय ठाकुर हीरासिंह जी पँवार, नसीरावाद छावनी
[अजमेर-मेरवाड़ा जिला के प्रबल समाज-सुधारक]



राजा उदयसिंह राठौड़, जोधपुर



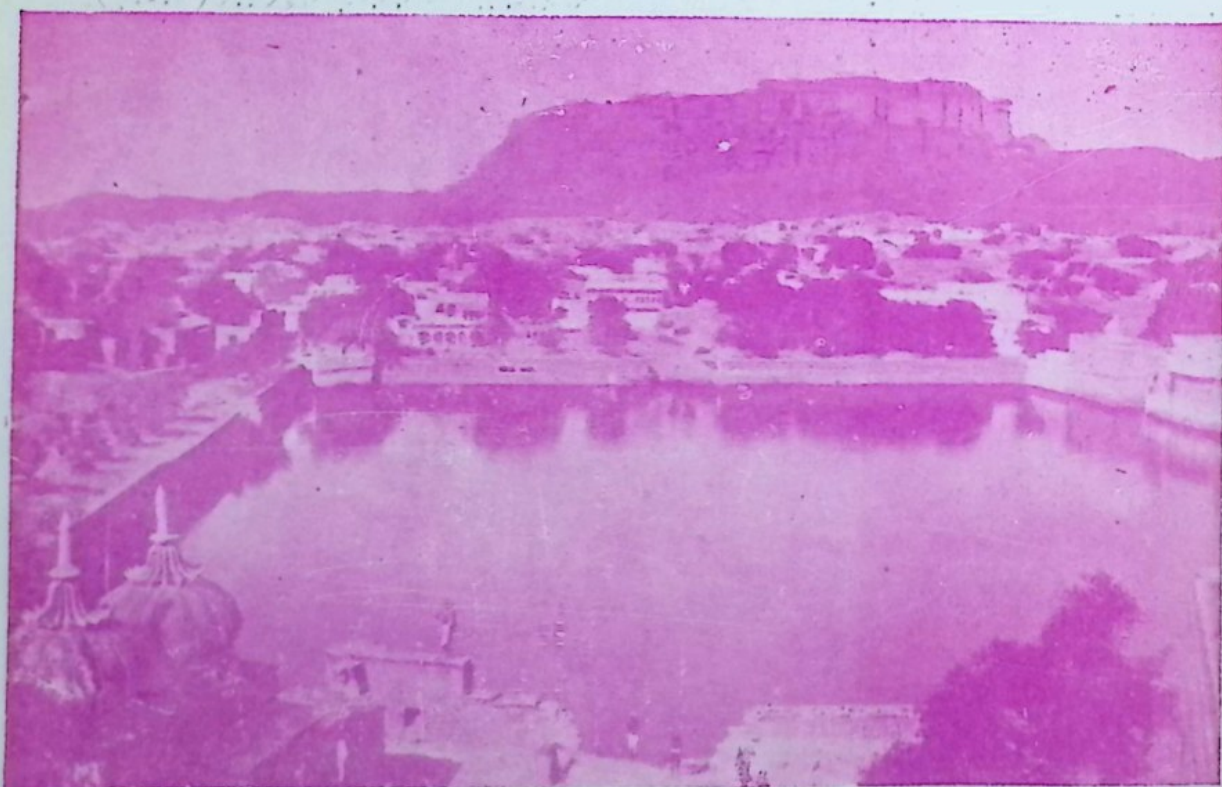
कर्नाजपति जयचन्द गहरवार (राठौड़)



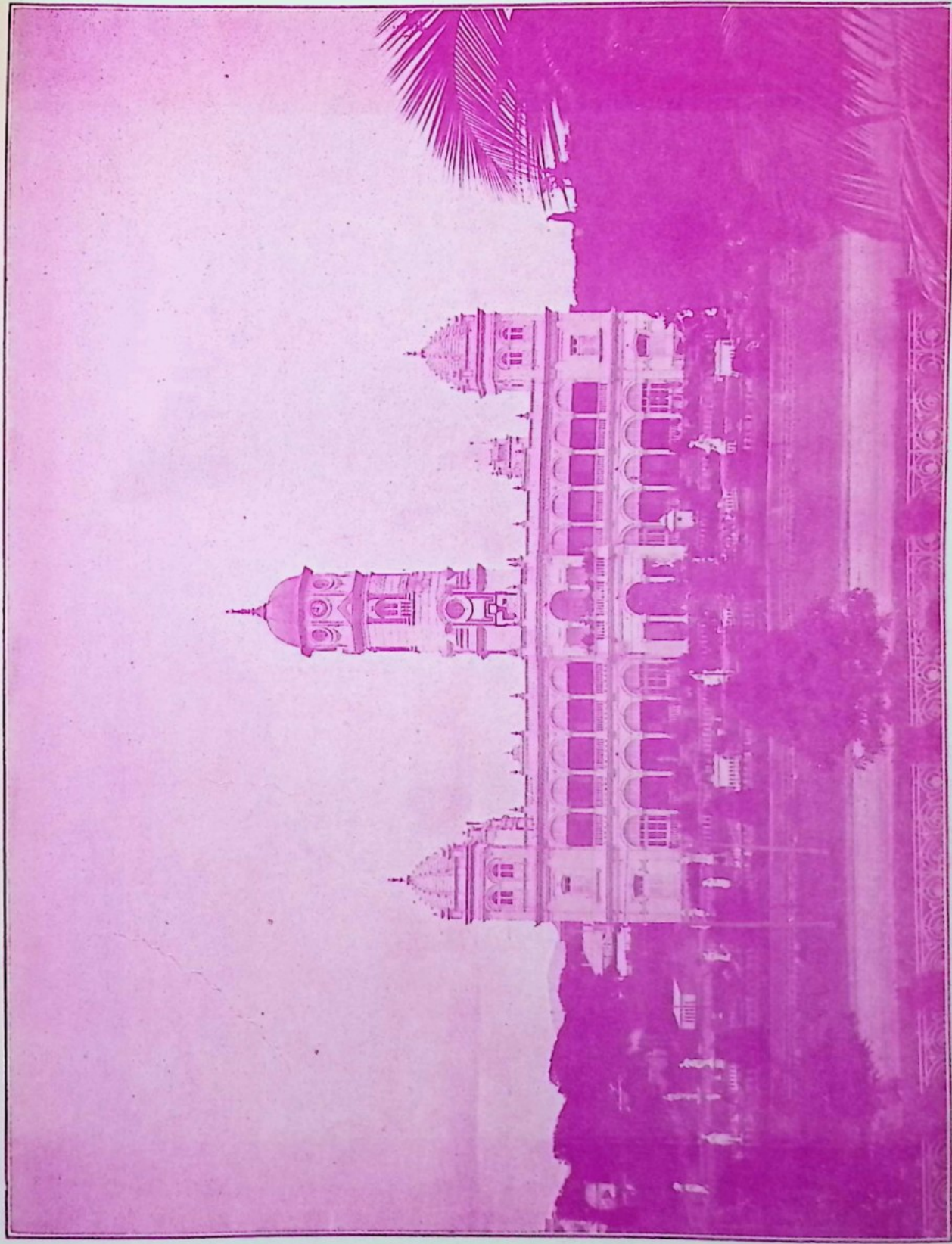
मेड़ती दरवाज़ा, जोधपुर (शहर के बाहर से)



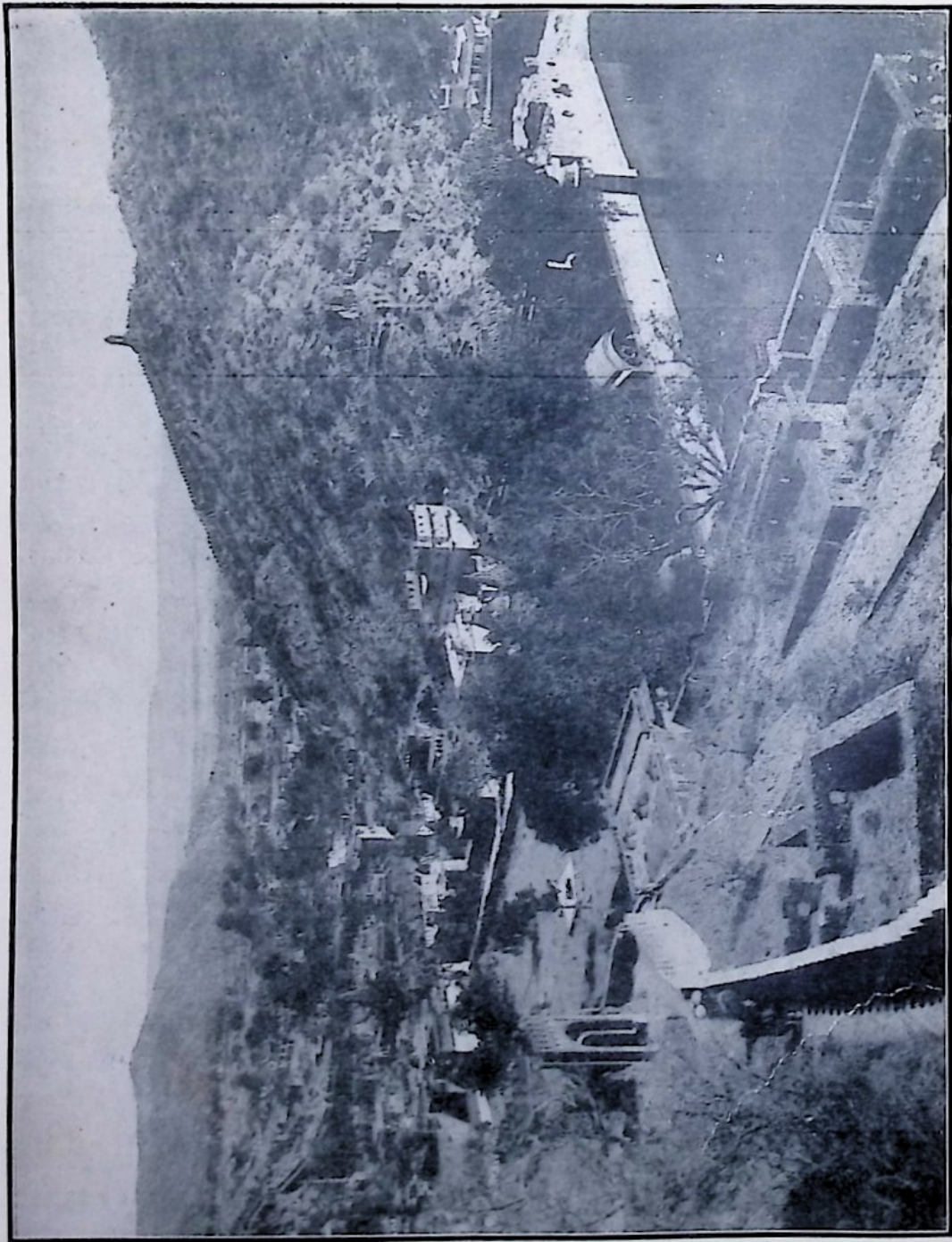
राजपूत हाईस्कूल, जोधपुर



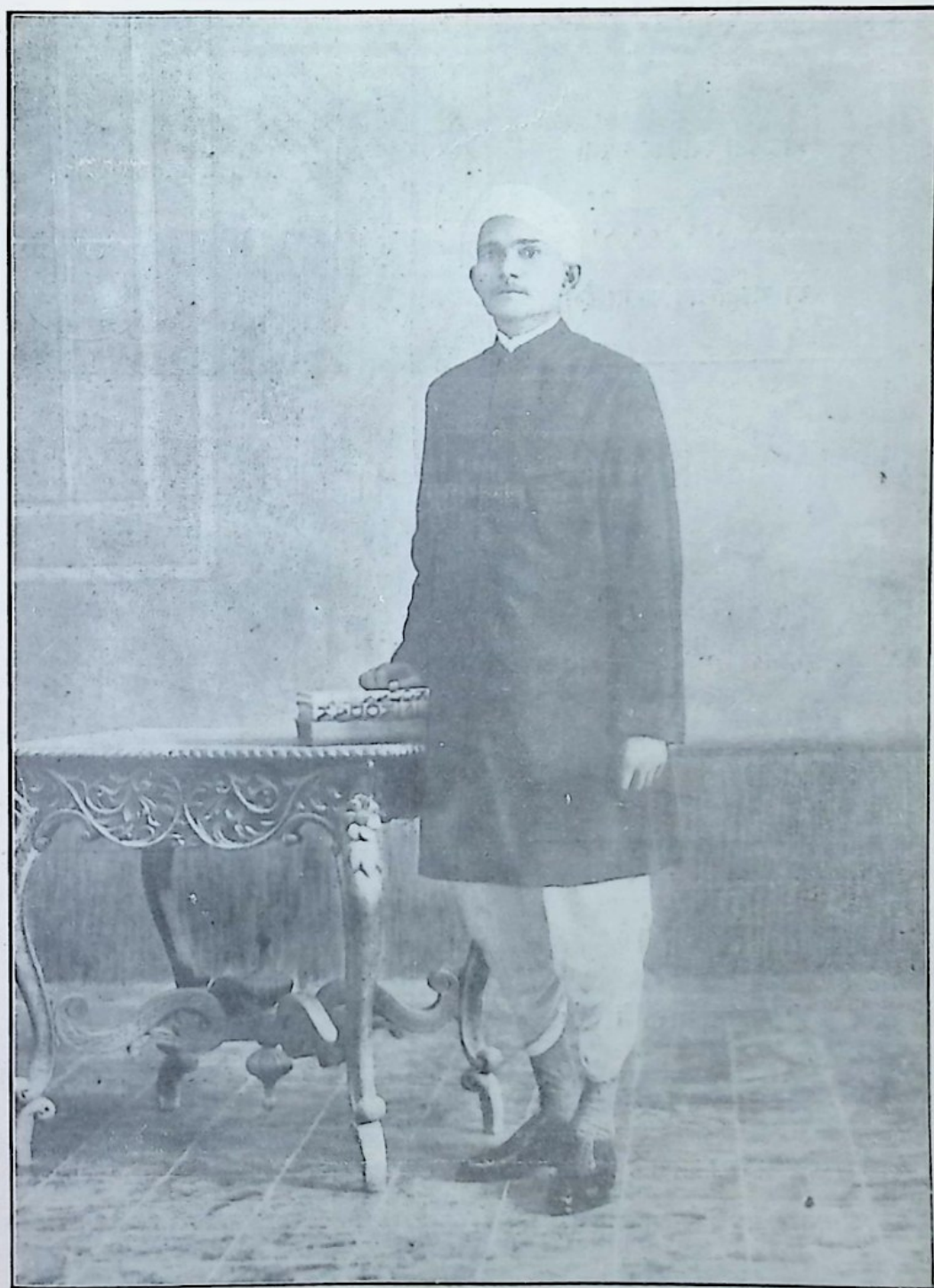
फतेहसागर तालाब और जोधपुर का क़िला



हन्दौर के धन-कुवेर सर हुकुमचन्द जी का "हन्दुभवन"



आम्बेर (जयपुर) का विहंगम-दृश्य



सुप्रसिद्ध समाज-सेवी तथा 'सात्विक जीवन' जैसी, दर्शन-शास्त्र की उपयोगी पुस्तक के निर्माता
ऋषिवर रामगोपाल जी मोहता



की

ग्राहकता स्वीकार करना

सद्विचारों

को आमन्त्रित करना है।



का

इष्ट-मित्रों में अथवा सखी-सहेलियों में

प्रचार करना

उन्हें जीवन दान करना है।



यदि आप इसके ग्राहक नहीं हैं तो आप इसे हमारा निमन्त्रण समझें। आज 'बौद्ध' की १५,००० प्रतियों के पढ़ने वाले लाखों व्यक्ति मूर्ख नहीं हैं!! 'बौद्ध' का प्रचार आज भारत की समस्त पत्रिकाओं की संयुक्त-संख्या से कई गुना अधिक है—क्या यह उसकी सफलता का यथेष्ट प्रमाण नहीं है?



ही समस्त भारत में ऐसा

प्रभावशाली

पत्र समझा जाता है, जिसने

जीवन के प्रथम दिवस से क्रान्ति की

उपासना की है।



का

एक मात्र उद्देश्य सेवा, साधना और

कलिदान

की सजीव भावनाओं का प्रसार

करना है।

(जोरू-दास) हो । यदि ईश्वर ये इच्छाएँ पूर्ण कर दे तो फिर कुछ कमी नहीं है ।

नाई जाति की, जिसके हाथ का बनाया हुआ भोजन राजपूत, ओसवाल महाजन, माली, जाट, चारण, पुरोहित आदि खाते हैं, इच्छा यह रहती है कि :—

नायण दायण होय, बित्त होवे बाणियाँ ।
बिणियाणियाँ बेवकूफ, कराँ मन जाणियाँ ॥
मरण परण माल, सीठा नित खावणाँ ।
इतरा दे किरतार, फेर काँई चावणाँ ॥

अर्थात्—मेरी स्त्री दायी हो, बनियों के यहाँ मेरी यजमानी हो, बनियों की स्त्रियाँ मूखाँ हों, ताकि मैं मन-माना करूँ, और शादी तथा गमी के मौकों पर मिठाई खूब हाथ आती रहे । बस, ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ ।

ढोली और दमामी (नक्रारची) आदि की इच्छा इस प्रकार कही जाती है :—

सोवाँ कोसाँ व्याव, जरूर जावणाँ ।
सागे है दो चार, तो आठ बतावणाँ ॥
गुड़ घी मेदो बेच, काँदा छोलणाँ ।
इतरा दे किरतार, फेर नहीं बोलणाँ ॥

अर्थात्—चाहे सौ कोस पर भी विवाह रचा जावे, परन्तु हम लोग वहाँ जरूर जावें, हमारे साथ में यदि दो-चार आदमी हों तो यजमान को दुगुनी-तिगुनी संख्या बतावें । और उससे भोजन के लिए घी, गुड़, मैदा, आटा आदि सीधा लेवें, परन्तु इस सामान को काम में न लाकर, उसे बेच दें और प्याज़ से रोटी खाकर गुजारा कर लें । हे प्रभु, हमारी यही इच्छा है ।

मुसलमानों का चरित्र इस प्रकार बखाना जाता है :—

मिले तो मीर, नहीं तो फकीर और मरे तो पीर ।

यदि मुझे द्रव्य मिले तो मेरा नाम मीर साहब (झाँ साहब) होगा, यदि मेरे घर में चूहे दण्ड पेलते हों तो औलिया (फकीर) बन जाऊँगा, और मरने के बाद पीर तो कहलाऊँगा ही ।

—रामसुन्दर शर्मा

हमारा सनातन-धर्म

“हमें क्या काम दुनिया से”—कोई मरे या जले, हमें क्या ? किसी का सत्यानाश हो तो हमें इससे क्या ? हमारा उससे वास्ता ! जिसकी मृत्यु ही आ गई होगी या जिसका सत्यानाश ही होना बदा होगा उसको ब्रह्मा भी नहीं बचा सकता । “विधि कर लिखा को भेटनहारा ।” अरे भाई ! भोंदू की माता भी नहीं होती ! तुमने क्या नहीं सुना ? भोंदू का हिमायती हमेशा हारा करता है—ठीक इसी प्रकार की बातें हम अपने अधिकांश मारवाड़ी भाइयों के श्रीमुख से सुनते हैं, जब कि उनके सामने हिन्दुत्व का क्रायल कोई भलामानुष धार्मिक एवं सामाजिक अत्याचारों की बर्बरता से कुचले हुए, विवाह के फल से दासता की बेड़ियाँ पहने हुए, दुःख-दारिद्र्य ग्रसित हिन्दू-समाज की वर्तमान दुर्दशा का कठुणापूर्ण विवेचन करता है ; जब उनसे कहा जाता है कि तुम हिन्दू हो, तुम हिन्दुस्तानी हो, इसलिए तुम्हारा फर्ज है कि तुम हिन्दुत्व के नाते अपने दीन-हीन, दुखी भाइयों की रक्षा करो, उन्हें राम और कृष्ण के सुन्दर दर्शन करने दो, अपने इन दीन-दुखी भाइयों को अपनाओ, क्योंकि तुम्हारे लिए, तुम्हारी मान-रक्षा के लिए, हिन्दुत्व के नाम के लिए, तलवार की धार पर अपने को बलि चढ़ाने वाले ये तुम्हारे सच्चे हितैषी हैं ! अथवा जब उनसे अपनी भोली-भाली बालिकाओं को सुशिक्षा देने एवं यथोचित लालन-पालन करके, विवाह-योग्य वयस होने पर योग्य वर चुन कर उनका विवाह करने को कहा जाता है, अथवा अपनी विधवा बहु, बहिन और बेटियों की दयनीय दशा, सर्द आहों पर तरस खाने को, उनका पुनर्विवाह करने को, कहा जाता है, तो सहसा वे चौंक पड़ते हैं । मानो सहस्रों विच्छुओं ने एक साथ ही डक मारा हो । काटो तो झून नहीं, बस एकदम तिल-मिला उठते हैं और कहने वाले की तरफ क्रोधित साँप की तरह ऐसे झपटते हैं कि मानो उसे जीता ही निगल जायेंगे । भूले व्याघ्र की नाई उसे कच्चा ही चबा जायेंगे । बस फिर क्या ! एक साथ ही सहस्रों वाग्वाणों की वर्षा शुरू हो जाती है—“तुम नास्तिक हो, आर्यसमाजी हो, तुम वेदों के साथ खाने वाले हो, पतित हो, आचार-भ्रष्ट हो,

स्लेच्छ हो, चाण्डाल हो, चलो हट जाओ हमारे सामने से ! अगर ज़्यादा बक-बक की तो खोपड़ी तोड़ दी जायगी। हम सनातनधर्मी हैं और कट्टर सनातनधर्मी हैं। अछूतों की रक्षा करना, उन्हें मन्दिर-प्रवेश कर देव-दर्शन करने देना तो दूर रहा, उनको देखना तक घोर पाप है। वे अपने पूर्वजन्म के कर्मों से इस पाप-योनि को पाने के अधिकारी हुए हैं। अतः इससे उनकी कदापि मुक्ति नहीं हो सकती।”

कन्या का लालन-पालन कैसा ? उसके भूमि पर गिरते ही शिर पर दो हथड़ मारा जाता है—‘हाय ! पथर आ पड़ा !’ उसको राँड़, ककंशा आदि कह कर सत्कार किया जाता है। उसका पढ़ाना महान् पाप एवं घोर विपत्ति का आवाहन करना है। वह पढ़-लिख कर क्या कोई नौकरी थोड़े ही करेगी ? पढ़-लिख कर वह एकदम बिगड़ जायगी। हमारे शास्त्रों में तो लिखा है कि कन्या को पढ़ाने से वह जल्दी ही राँड़ हो जाती है; अतः जान-बूझ कर आकृत मोल कौन ले ? कन्या के लिए वर और वयस का क्या देखना ! “अष्ट वर्षा भवेद् गौरी” की हमारे शास्त्रों की आज्ञा है। वर चाहे बालक हो, प्रौढ़ हो, लूला हो, लँगड़ा हो, गूंगा, बहरा, नपुंसक, अपङ्ग—यहाँ तक कि चाहे मरणासन्न बूढ़ा ही क्यों न हो, होना चाहिए वह गाँठ का पूरा और अङ्ग का अधूरा ! अगर दो पैसा पास होगा तो बेचारी बेवा होने पर सुख से दाज-रोटी खाएगी और चैन की वंशी बजाएगी ! न किसी की गरज़ रहेगी और न किसी का भय ही। छिः छिः ! कैसा घृणित व्यापार है ! क्या विधवा का कभी पुनर्विवाह हुआ है ? “तिरिया तेल हमीर हठ चढ़े न दूजी बार।” अतः यह शास्त्र-विरुद्ध है। इससे समाज में व्यभिचार बढ़ेगा !

ये हैं हमारे मारवाड़ी भाइयों के उपदेशाश्रित ! ये ही हैं हमारे वर्तमान सनातन-धर्म के उसूल ! पर वास्तव में ये बातें भी केवल कहने की हैं। दूसरे के कहने से और जान-बूझ कर ये लोग अछूतों के सुधार और उद्धार की तरफ़ ज़रा भी ध्यान न देंगे और हर तरह उनसे घृणा दिखलावेंगे, पर पुरानी रुढ़ि के अनुसार इन बातों के विपरीत काम भी सहज में कर लेंगे। शायद आप आश्चर्य करेंगे कि यह क्या, धर्म-भीरु मारवाड़ी उपरोक्त बाबा-बाक्यों के प्रतिकूल कैसे चल सकते हैं ; यह तो किसी प्रकार सम्भव ही नहीं। अच्छा

सुनिप, और खूब ध्यान देकर सुनिप। तब आपको पता चलेगा कि हमारे मारवाड़ी भाई अछूतों-द्वारा किस प्रकार करते हैं ? इनका अछूतों-द्वारा ऐसा बढ़िया है कि उसकी तारीफ़ ही मुँह से निकलती है !

हाँ, तो पाठक, हमारे साथ आइए और राजपूताने के इस मरुस्थल की सैर कीजिए। एक तो वर्षाऋतु और फिर भादों का महीना ! तिस पर भी अब की साल इन्द्र महाराज की काफ़ी कृपा हो चुकी है। “राणेचा” के जङ्गल में चारों तरफ़ हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है। कटीली भाड़ियों की बहार तो एक अजब रङ्ग ही ला रही है—मानो नवयौवना का नवयौवन अभी उभरा है। आज भादों सुदी ११ का दिवस है। श्रीराम-देव जी का मेला है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी कोई यहाँ हज़ारों की संख्या में, बड़ी-बड़ी दूर से, कोई पैदल तो कोई ऊँट पर, कोई बैलगाड़ी पर तो कोई रेलगाड़ी पर—रामसा पीर की अटल श्रद्धा-भक्ति से नारियल चढ़ाने आए हैं। और आप हैं अपने अछूत भाइयों को गले लगाने, उनके प्रति अपना शुद्ध प्रेम-भाव प्रदर्शित करने ! अच्छा तो चलिए पहले रामसा बाबा का दर्शन कर लें, तब फिर मेला देखेंगे। हैं ! यह क्या, कोई रामानन्दी तिलक धारण किए हैं, तो कोई त्रिपुण्ड्र लगाए हैं ; कोई गले में तुलसी की माला पहने मस्तक पर कुङ्कुम का चीरवाँ तिलक काढ़े हुए अपनी परम वैष्णवता को झलका रहा है, तो कोई मस्तक पर केवल विन्दी ही धारण किए हुए हैं। और यह क्या ! ये मस्तक पर बिना चिह्न को धारण किए हुए, बड़ी डोटी (एक प्रकार की खादी) और खदर की अँगरखी और साफ़ा, पगड़ी पहने हुए तथा गले में श्रीरामदेव जी की मूर्ति पहने हुए एकदम साफ़-सुथरे लोग कौन हैं। हैं ! यह तो रैगड़, चमार, बलई, डेंड—सब अछूत ही अछूत हैं। यहाँ तो सब एक भाव है। भीड़ बड़ी ज़बर्दस्त है और लोग एक दूसरे पर गिरे पड़ते हैं। किसी निर्बल के गिर जाने पर फ़ौरन ही सब कोई उसको सँभाल लेने के लिए उसकी ओर झुक पड़ते हैं और हाथों-हाथ उसे उठा कर खड़ा कर देते हैं।

यह देखिए, एक परम वैष्णव वैश्य महाशय नारियल फोड़ कर तथा चार पैसे की रेवड़ियाँ लेकर श्रीरामदेव जी को चढ़ाने के लिए आगे बढ़ ही रहे थे कि एक त्रिपुण्ड-

धारी ब्राह्मण देवता फौरन ही उसको ढकेल कर आगे बढ़ गए और अपना नारियल का गोटा तथा रेवड़ियाँ और बताशे कामड़िए (पुजारी) के हाथ में दे दिए। उसने फौरन ही आधा गोटा तो श्रीरामसा को चढ़ा दिया और आधे में श्रीरामदेव जी की रक्षा (भस्म) भर कर ब्राह्मण देवता के हवाले कर दिया। ब्राह्मण-देवता मारे खुशी के सिर पर, पेट पर, मस्तक पर और आँखों पर भस्म लगाते हुए फूल कर कुप्पा हो गए और मन्दिर के बाहर आए। लगे नारियल की चिटकी (टुकड़े) बताशे और बाबे की रक्षा सबको बाँटने। अभी वह चिटकी बाँट ही रहे थे कि इतने में वही वैश्य महोदय और उनके पीछे एक और ठाकुर साहब मन्दिर के बाहर आकर रेवड़ी तथा चिटकी और रक्षा बाँटने लगे। अभी तक ये लोग चिटकी इत्यादि भीड़ को बाँट ही रहे थे कि इतने में एक अछूत भाई चिटकी, रेवड़ी और रक्षा लिए हुए आया और सबको बाबे का प्रसाद बाँटने लगा। सब ही ने बढ़-बढ़ कर हाथ पर प्रसाद लिया और खुशी-खुशी, बिना किसी प्रकार की हिचकिचाहट के फौरन ही निगल गए। हाँ, तो भला यह तो बताइए कि ये कामड़िए (पुजारी) हैं कौन? ये हैं श्रीरामदेव जी बाबा के पुजारी अनन्य भक्त डेंड, बलई, थोरी, रेंगड़ और चमार आदि अछूत! यदि कोई बाबा के दरबार में आकर उनके प्यारे इन अछूत भाइयों से परहेज करता है, तो वह अपङ्ग, कोढ़ी अथवा अन्धा हो जाता है! और जो कोढ़ी, अपङ्ग अथवा अन्धा यहाँ श्रद्धा-भक्ति से बाबा के दर्शन करने आता है, तो उसकी सारी आधि-व्याधि दूर होकर कञ्चन-काया हो जाती है! ठीक इसी ढङ्ग के मेले राजपूताने के प्रायः तमाम शहरों में हुआ करते हैं। पर सबसे बड़ा मेला यही होता है। क्योंकि यही बाबा का आदि समाधि-स्थान है!

देखा पाठक, कैसा वास्तविक और सच्चा अछूतोद्धार है। क्या इससे ज़बर्दस्त और कोई अछूतोद्धार हो सकता है? ठीक इसी प्रकार का वृत्तान्त श्रीगोगा जी के मेले का है, जिसे स्थानाभाव से एवं उपरोक्त मेले के समान ही वृत्तान्त होने के कारण, यहाँ देना अनावश्यक है। याद रहे कि गोगा जी के पुजारी भी हमारे अछूत-भाई ही हैं।
अस्तु—

यह तो हुआ हमारे अछूतोद्धारक होने का वर्णन, अब सुनिए कन्याओं के पढ़ाने की बात। कन्या को हम

पढ़ाते हैं अवश्य, मगर क्या? नारी-महत्व, गृहिणी-धर्म का ज्ञान? राम, राम! सीताराम! नारी का महत्व किस चिड़िया का नाम है? गृहिणी-धर्म किस बला को कहते हैं? उनको सिखलाया जाता है—घर की बड़ी-बूढ़ी, दादियों, माता और बहिनों द्वारा—ससुराल में जाकर सास-ससुर, पति-जेठ, ननद इत्यादि से लड़ना-भगड़ना तथा पति-देवता को नित नष्ट फ़ैशन के कपड़े और गहने बनवाने को मजबूर करना, साथ ही तीज-त्योहार, मेले-ठेलों एवं विवाह इत्यादि में समधियों को भ्रष्ट एवं अश्लील, स्त्री-पुरुष के गुप्त अङ्गों के खुले नाम ले-लेकर गन्दी गालियाँ, डङ्का, सीठना, व गायन इत्यादि, जिनको सुन कर बेचारी लज्जा को भी लज्जा आ जाती है!

क्या इसके लिए हम अपनी कन्याओं को अपराधी ठहरावें, अथवा इन गायनों को सिखाने वाली हमारी बड़ी-बूढ़ी दादियों एवं माता, बहिन, बेटियों को दोषी करार दें? नहीं! अगर अपराधी हैं तो हम (पुरुष-वर्ग) ही हैं। यह स्वाभाविक है कि पुरुष जिस बात से खुश होगा, स्त्रियाँ वही कार्य करेंगी। उनका धर्म भी उनको यही सिखाता है। यदि हम स्त्री-पुरुषों के गुप्त-अङ्गों का नाम ले-लेकर व्यभिचार की भावना-पूर्ण हँसी-दिल्लगी से उन्हें गन्दे एवं भ्रष्ट गीत गाने के लिए मजबूर न करें, और उनके “केसरिया पाग झूँट को तुरों” या “आज सगीजी रो नयो लटको, टाँग उठाय कर चित पटको” इत्यादि गीत गाने पर बेशर्म जाहिलों की तरह ‘ही-ही’ करके “सगीजी एक मजेदार और श्रवण दो” की निर्लज्ज माँग न करें, तो वे कभी ऐसा करने को तैयार न हों। हम इतने से ही शान्त नहीं हो जाते, अपनी स्त्रियों के मुँह से गन्दे गीत गवा कर ही सन्तुष्ट नहीं हो जाते, बल्कि होली के अवसर पर मण्डलियाँ बना-बना कर हम स्वयं भी अपने मुँह से “ओहो; सामण साची रे, बाबे जी.....! लरकर मैं सामण साची रे। अथवा चोदी रे चिणोरे खेत में” इत्यादि अनेक प्रकार के ज़हरीले पनाले (पिता-पुत्र, बड़े-छोटे सब एक साथ) अपनी बड़ी-बूढ़ी, माँ, बहिन, बेटियों के सामने उगल कर उनके समक्ष एक काला-आदर्श रखते हैं। होलिका-दहन के समय हम अपने बालकों को साथ लेकर “हो-हो होली रे, छोरा चोदे छोरी रे” का पवित्र मन्त्रोच्चारण करते हुए होली की परिक्रमा करते हैं! ध्यान रहे कि उस वक्त भी

हमारी माँ, बहिन, बेटियाँ दर्शक-रूप में वहाँ हाज़िर रहती हैं। प्रभो ! यह कैसा रौरव कृत्य है !

यह है कन्याओं की शिक्षा, जिससे न तो उनके विगड़ने का भय है (?) और न उनके राँड़ होने का ही !

अब देखिए कन्या की विवाह-व्यवस्था ! ज्योंही वह आठ वर्ष की हुई, उसका येन-केन-प्रकारेण—चाहे जैसा वर मिले, विवाह करने की फ़िक्र पड़ गई। अगर कोई मुँह पर खिज़ाब की कालिख पोतने वाला, आँखों का अन्धा और गाँठ का पूरा मिल गया, तब तो फिर क्या कहना—पौ-बारह हैं, बस पाँचो अँगुली घी में हैं। और यदि फूटी क्रिस्मत् से किसी को ऐसा वर नहीं मिला तो फिर जैसा कोई मिल गया, कन्या के हाथ पीले करके अपना पिरण छुड़ाया। चलो छुटी हुई, आफ़त गले से टली। कन्या का भविष्य विगड़े या सुधरे, इससे हमें कोई प्रयोजन नहीं।

हम अपनी बेवा बहू-बेटियों पर तरस खाते हैं, और बहुत खाते हैं। और इसीलिए उनको अच्छे माल खिलाते हैं, फ़्रैन्सी सिल्क एवं इकतारी अमरवाँ मलमल की साड़ियाँ पहनाते हैं। उनकी सर्द आहों पर घड़ों आँसू बहाते हैं, इसलिए कि वे हमारे सिर पर बोझ-रूप हो गई—इसलिए नहीं कि उनके दुःख से हम दुःखित हैं। उनका पुनर्विवाह क्यों किया जाय, जब विना व्याह ही काम चल जाता है ! पुनर्विवाह हो जाने से तो वे एक ही की हो जायँगी। फिर वे सबके उपयोग में नहीं आ सकेंगी। व्याह न करने से विधवा सार्वजनिक सम्पत्ति (Public Property) रहती है, हर किसी के उपयोग में आती है ! यदि दैवयोग से कहीं गर्भ भी रह गया तो फूटा राँड़ का भाग, बाबा जी तो सिद्ध ही हैं। अगर किसी को मालूम न पड़ा तब तो चुपके से भूत अधूरा ही गिरवा दिया, और अगर लोगों को मालूम हो गया तो राँड़ को व्यभिचारिणी का सर्टिफ़िकेट देकर चट से जाति बाहर कर दिया ! बेचारी को दीन-दुनिया से नष्ट किया—पहले वैसे और अब ऐसे ! दिया धक्का, जा भैंस पानी में ! इस प्रकार न मालूम समाज द्वारा तिरस्कृत एवं अत्याचार-पीड़ित कितनी उच्च वंशीय मारवाड़ी-खलनाएँ विधर्मियों की बग़ल में बैठी हुई हमारे मारवाड़ी-समाज का मुख उज्ज्वल कर रही हैं !

यह तो हुई उनकी—नहीं, नहीं, हम कापुरुषों के

पाप प्रकट होने की बात। परन्तु वे समाज में रहती हुई लुच्चे, लुझाड़े, गुण्डे, बदमाश तथा व्यभिचारी कुत्तों एवं देवर, जेठ व ससुर, यहाँ तक कि अपने चाचा-ताऊ से छल, कपट, लोभ अथवा बलात्कार द्वारा भले ही अप्र की जाती रहें; आप-दिन भ्रूण-हत्याएँ कर, भले ही हमारे मुँह में कालिख पोतती रहें—इससे हमारा कुछ नहीं बिगड़ता; इससे समाज में व्यभिचार नहीं बढ़ता। व्यभिचार बढ़ता है विधवाओं का पुनर्विवाह करने तथा उन्हें किसी एक की कर देने में !!

हम स्वयं वैसे चाहे किसी अन्य जाति की स्त्री को भले ही घर में डाल लें, अथवा हमारी विधवाएँ भी चाहे जिस क्रौम के व्यक्ति के साथ प्रेम-लीला क्यों न करें, पर हम विधवा-विवाह तो कभी न करेंगे। हमारा नीच क्रौम की स्त्रियों को घर में डालना अथवा हमारी विधवाओं का नीच क्रौम के व्यक्तियों से प्रेम-लीला करना तो सदा से ही होते आए हैं। यह तो पहले भी होता था—यह कोई नई बात नहीं है ! ओफ़ ! कैसी अमानुषिक चर्चा है ! कितनी भयङ्कर बेहयाई है ! नहीं, नहीं, यही हमारा सनातन-धर्म है। बोल सनातन-धर्म की जय !!

—श्रीगोपाल कला

*

*

*

मारवाड़ की मरोड़

उर्दू-लिपि में जैसे कि एक नुक़ते से किसी मज़मून का मतलब ही ख़ग्त हो जाता है, वैसे ही मारवाड़ में भी “नुक़तों” की फ़िज़ूलख़र्ची की रीति ने ऐसा घर जमाया है कि इससे कितने ही घर नष्ट हो गए। परन्तु फिर भी इस शोचनीय दशा पर किसी भाई का ध्यान नहीं जाता। जब तक दम में दम रहे, पास में कौड़ी भी न रहे तो भी—“करजा करना, धरही धरना, मरणी मरना।” चाहे भूख से पीड़ित रहा जाय, चाहे बाल-बच्चों की दुर्दशा हो जाय, चाहे नीच काम भी करना पड़े, तो कोई हरकत नहीं, पर अपने घर का बूझा या जवान कोई भी मर जाय तो उसके पीछे अपनी विरादरी को जिमाना या छन्यात करना अत्यन्त ही आवश्यक हो जाता है। चाहे बाबा जी ने फ़ाज़ेकशी से

हो दिन बिताएँ हों, पर अपना मान तो मरने वाले के पीछे बेमौत मरने ही में समझ रक्खा है। यदि किसी हमारे

(१६५ पृष्ठ का शेषांश)

विवाह करने को राजी न होगा। इस समय उसकी उम्र है ३२ के लगभग। हमने बहुत चेष्टा की कि किसी अपने ही जैसे आदमी से विवाह करो तो हम करा दें, पर वह नहीं समझती!

उपरोक्त कथा कैसी भयानक है, जिसे पढ़ कर रोम-रोम धरा उठता है, हृदय काँपने लगता है। ऐसी अनेक वहिनें खोज करने पर इस समाज में कलकत्ते में ही मिल सकती हैं। वे चाहती हैं कि हम उन्नति करें, पर मारवाड़ी रुढ़ियाँ—समाज के नियम ही ऐसे सङ्कीर्ण हैं कि उन्हें उस धृष्टित पथ में पड़े रहना पड़ता है।

स्त्रियों की दशा न भी अच्छी हो—पुरुष तो ज्ञान-वान् होने चाहिएँ! छोटी श्रेणी के मारवाड़ी-युवक तो एकदम साहसहीन होते हैं। दिन भर झूठ बोलेंगे—दलाली करेंगे, चोरी से सट्टा लगाएँगे और रात को मन्दिर में जाकर कान पकड़ कर अपराधों की क्षमा माँग लेंगे। ठाकुर जी के सामने इतने ज़ोर से आरती पढ़ते हैं, नाचते हैं, कीर्तन करते हैं कि मन्दिर गूँज उठता है। पर दुख तो यह है, उनमें आत्म-शक्ति किसी तरह नहीं आती और उनके युवा चेहरे पर कभी भी कान्ति नहीं झलकती!

कलकत्ते में बहुत थोड़े युवक ऐसे पाए गए जो विद्या-प्रेमी और समझदार हैं। इनसे हमने बातें कीं तो हमें बहुत ही प्रसन्नता हुई कि मारवाड़ी-समाज में यह छिपी आशा हमें दीख रही है।

अन्त में हम समस्त मारवाड़ी-समाज से प्रार्थना करते हैं कि वह अपनी बुराइयों को जड़ से दूर करने के लिए कमर कस कर तैयार हो जाय और प्रत्येक बालक-बालिका, स्त्री-पुरुष, वृद्ध-वृद्धा—सब कोई सच्चे धर्म और विश्वास की डोरी पकड़ें। वह समय बहुत जल्द आ रहा है, जब कि प्रत्येक व्यक्ति को लोहे जैसा सब तरफ से ठोस बनने की ज़रूरत है। न बाहर से पोला, न अन्दर से पोला—एकदम ठोस! कोई ऐव पकड़ ही नहीं सकता। आँच में भी तपा लो, लाल-लाल ज्योति बिखर पड़े। इसी प्रकार उत्तम बनने की समाज को प्रतिज्ञा करनी चाहिए। ईश्वर उसे सफलता प्रदान करें।

*

*

*

जैसे मूल ने—अपनी दशा को देखते हुए—किफायत से काम लेना चाहा या 'नुक़ता' न करना चाहा तो क्या वह बिरादरी में अपनी प्रतिष्ठा कायम रख कर अपने मृत-पुरुष को स्वर्ग-प्राप्ति का सर्टिफ़िकेट हासिल कराने में समर्थ हो सकेगा? कदापि नहीं! यदि नुक़ता नहीं किया गया तो बस नाक होते हुए भी कटी हुई ही समझी जायगी। यह है मारवाड़ी-समाज की बुद्धिमानी और अपने से कमज़ोर भाई के साथ सहानुभूति का नमूना! समाज के कई भाई इन्हीं औसर-मौसर की फ़िज़ूल-खर्चियों से हीन दशा में पहुँच कर दारिद्र्य देव के उपासक बन गए, पर नुक़ता घर से न टलने दिया! इसी से वे मिट्टी में मिल गए, उनके घर-बार नष्ट हो गए। अब वे ही लोग, जो इन्हें इस कार्य में उत्साहित करते थे, इनकी हीन दशा देख कर झुश होते, ताज़ी बजाते और हँसी उड़ाते हैं! देखिए इस देश की कैसी सराहनीय प्रथा है। यदि किसी भाई के घर पर किसी प्रकार की आफ़त आ जाय, बीमारी की हालत हो, और ऐसी दशा में किसी से सहायता के लिए याचना की जाय तो लाखों बहाने बनाएँगे, खुद बीमार हो जायेंगे। किसी अबला स्त्री ने कष्ट के समय सहायता के लिए याचना की तो अनेक प्रकार की टालमटोल बतला देंगे। यदि कोई अपना ग़रीब भाई मर जाय तो उसके लोकाचार में जाने में भी अनेक आपत्तियाँ और बहाने करेंगे। मृत-पुरुष के घर वालों को मदद देना तो दरकिनार रहा, बारहवें दिन लड्डू या सीरा-सम्मेलन का अधिवेशन मनाने के लिए उसे उत्साहित करेंगे—बिना बुलाए ही उसके घर पर पहुँच कर कहेंगे कि बाज़ार से सामान मँगवाया या नहीं? यदि न मँगवाया हो तो जल्दी मँगवाना चाहिए। धी बड़िया और खाँड़ देशी व शुद्ध होनी चाहिए और रसोई बनाने वाला कारीगर भी नामी होना चाहिए, ताकि माल अच्छा बने और खाने वाले सराहना करें, तभी मृतक की सद्गति और उसे स्वर्ग प्राप्त हो सकेगा। क्या खूब! अपने एक भाई के मरने पर शोक के स्थान में इस प्रकार प्रसन्नता और उत्साह प्रकट करते हैं, मानो घर से कोई आफ़त टल गई हो। इस बात को तो विस्मरण ही कर देते हैं कि इनके घर का संरक्षक, इनके घर की सँभाल रखने वाला, घर की ढाल आज चल बसा। उनको तो खीरे और लड्डू खाने

से मतलब होता है ! वाह भाई मारवाड़ियो, शाबाश तुम्हारी बुद्धि और नीयत पर ! हमने तो “गोकुल गाम का पैड़ा ही न्यारा” वाली लोकोक्ति सुन रखी थी, पर इसे भी “मारवाड़ का पैड़ा ही न्यारा” कहें तो क्या झूठ है ?

हमारे यहाँ की सब रीति-रिवाजें, मान-मर्यादाएँ आदि हमारे धनाढ्य भाइयों पर ही निर्भर रहती हैं। वे ही लोग अपनी शान और गुमान में फूले हुए, अनर्थ के कारण बन रहे हैं। वे जितने बड़े बने हुए हैं, उतने ही बड़े नुकते ‘शहर-सारणी’ (नगर-भोज) तक कर डालते हैं ! यह बतलाने के लिए कि हम बड़े हैं, हमारे जैसा क्या कोई कर सकेगा, अपनी शेखी बघारने के लिए, जाति

बड़ा बनने के लिए, धड़ाधड़ नुकते करने से नहीं चूकते। इसी को मरे के पीछे मरना कहते हैं। इस शान बघारने का अन्त में परिणाम यह होता है कि वे कङ्काल होकर दर-ब-दर मारे-मारे फिरते हैं, और अनेक प्रकार की तानाझनी सहते हैं। यह घर फँक तमाशा देखना नहीं तो और क्या है ? किसी उदूँ शायर ने क्या ही अच्छा कहा है :—

फिर औरों की तकते फिरोगे सखावत ।

न डालो सखावत की आदत ज़ियादा ॥

लोग इनकी ऐसी हीन अवस्था देख कर कहते हैं कि इनके बाप-दादा ऐसे थे, वैसे थे, अब ये निखटूट्टू ऐसे हुए कि कहीं रहने को जगह तक नहीं ; इतना धन था, न मालूम कहाँ चला गया ? चला कहाँ गया और नुकतों द्वारा आप जैसे सीरा-प्रेमी भोजन-भट्टों के उदरों में चला गया ! आप कहेंगे कि तो क्या मरने वाले के पीछे कुछ भी नहीं किया जाना चाहिए ? किया क्यों नहीं जावे—दुःखी आत्माओं को पोषण करना चाहिए, न कि मरे को मारना। “जितनी ठौड़ उतनी सौड़” के अनुसार काम करना चाहिए, न कि अपनी शान दिखाने के लिए उच्च भर कष्ट उठाते रहने का सामान करना ! ऐसे लोगों को घर-बार गिरवी रख, देश छोड़, परदेश की राह लेना पड़ता है। जो यश उसने नुकते से कमाया, उसे कमर में बाँध, अपनी जड़ खोद नेस्तनाबूद होकर भागना पड़ता है। यदि एक अबला का पति मर जाय तो लोग आकर यही सम्मति देंगे कि अब तुम्हारे

लिए सब ज़ेवर-आभूषण व्यर्थ हैं, इन्हें बेच-वाच कर औरसर करना लाज़िमी है। यदि कुछ भी न हो तो घर ही बेचो, पर नुकता करो—ऐसा मौक़ा बार-बार नहीं मिलता ! यदि वह अबला कह दे कि मेरे पास कुछ नहीं है, और कुछ है भी तो उसके सहारे ही मैं अपना शेष जीवन का निर्वाह करूँगी, बाल-बच्चों का पालन-पोषण कर उनको लिखा-पढ़ा कर होशियार करूँगी, तो वे मिष्टान्न-प्रेमी क्रोधित होकर कहते हैं—यह तो जानी हुई बात है कि यह कुल-कलङ्किनी बन कर घर को, खानदान को अपमानित करेगी ! बेचारी अबला डर कर इनके भाँसे में आ जाती है और उससे ये लोग नुकता (औसर) करा ही लेते हैं, और एक ही दिन में उस निस्सहाय अबला के शेष जीवन के भरण-पोषण के साधन को स्वाहा कर डालते हैं ! वह अबला बेचारी अपना पेट चक्की पीस कर, किसी के यहाँ रसोई बना कर या अन्य कार्य करके पालती है। यहाँ तक कि विवश होकर व्यभिचार भी करना पड़ता है ! उस वक्त समाज के पञ्चों, भाई-बन्दों, कुटुम्बियों और उन मिष्टान्न-प्रेमियों की नाक नौ हाथ की बढ़ जाती है ! पर वे यह नहीं सोचते कि उस बेचारी अबला को पतन का रास्ता दिखाया किसने ? उन्होंने, जो पूर्ण धार्मिक, समाज के सरताज (पञ्चराज) और सनातनधर्मी बनने का दम भरते हैं !!

सच्चे सनातनधर्मी और समाज-सेवक तो वे हैं, जिनके हृदय में रात-दिन समाज-सेवा की ही लगन रहती है ; जो इस काम में अपने शरीर और स्वास्थ्य तक की परवा नहीं करते ; जो लाखों रुपए अबलाओं की रक्षा के लिए बनिता-आश्रम बनाने में ; अनाथ बच्चों के लिए अनाथालय खोलने में ; रोगियों एवं पीड़ितों के लिए अस्पतालादि खोलने में ; पथिकों के आराम के लिए धर्मशालाएँ बनवाने में ; बच्चों की उच्च शिक्षा एवं ज्ञान-वृद्धि के लिए विद्यालय, पुस्तकालय, वाचनालय स्थापित करने में, असहाय अबलाओं, छात्रों और उन सक्तेदोशों को, जो किसी से सहायता माँगने में हिचकिचाते हैं, मुक्त-हस्त से गुप्त सहायता करने में खर्च करते हैं। जो प्राचीन विद्याओं और कला-कौशल के उद्धार के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, वे ही सच्चे सनातनधर्मी और आदर्श दानी हैं। उन्हें कुछ मन्द-बुद्धि अपनी ज़िद और पक्षपात के कारण पथ-भ्रष्ट, नास्तिक, आर्यसमाजी

श्रौर समाज-विद्रोही कहते हैं। क्या खूब ! बलिहारी है इस विचित्र बुद्धिमानी की !

अब मैं यह निर्णय पाठकों पर ही छोड़ता हूँ कि एक दिन के मिष्टान्न भोजन के लिए किसी के उम्र भर का नष्ट कर क्षण भर के लिए वाह-वाह करने वाले सम्बल सच्चे सुधारक, समाज-सेवी और सनातनी हैं या उपरोक्त रूप से सात्विक दान देने वाले और स्थायी रूप से मनुष्य-मात्र को लाभ पहुँचाने वाले ? पाठक स्वयं ही सत्यासत्य का विचार करेंगे ! अन्त में मेरा सब भाइयों से यही निवेदन है कि सभी कुरीतियों को नष्ट कर समाज का कल्याण करें। अब कुप्रथाओं का अन्त करने और इन विनाशकारी फ़िज़ूलखर्चियों को मिटाने से ही समाज का अस्तित्व प्रायम रह सकता है ; नहीं तो अन्तिम परिणाम इन नाशकारी कुप्रथाओं का क्या होगा—यह किसी से छिपा नहीं है !!

—पन्नालाल शर्मा

*

*

*

मारवाड़ी-समाज के कुछ चित्र

वृद्ध केशव को ज्योंही चिता पर रक्खा, आग धधकने लगी। श्मशान प्रकाशित हो उठा। रात्रि का समय था, बादलों ने गगन-मण्डल को आच्छादित कर, अंधेरे को दुगुना कर रक्खा था। चिता जलते ही रामदास चिल्ला उठा—‘अरे मारवाड़ी-समाज जला जा रहा है।’ लोगों ने उसे पागल समझा, पर रामदास सच बोला था। उसने समस्त समाज को एक १४ वर्ष की बालिका की आह में जलते देखा था। यह १४ वर्षीया बालिका उस वृद्ध की पत्नी थी। अभी ब्याह हुआ था। उधर चिता ने वृद्ध केशव को जला दिया, इधर उस बालिका की आह ने वृद्ध से गठबन्धन जोड़ने वाले मारवाड़ी-समाज को जला दिया। वास्तव में जल दोनों ही रहे थे !

२

कृष्णमोहन मन-चला नवयुवक था। उसने अपनी माहेरवरी बिरादरी छोड़, अग्रवालों में ब्याह कर लिया। बस, आफ़त का पहाड़ उसके सिर पर टूट पड़ा। पञ्चायत भरी गई। सरपञ्च का स्थान लाला कद्दूमल जी को मिला। कद्दूमल जी की उम्र अभी ५० वर्ष की ही थी। विवाह

का कङ्कन उनके हाथ में बँधा था। हाल ही में उन्होंने एक तेरह वर्ष की कन्या का पाणिग्रहण कर अपने बन्द घर के पट खोले थे ! कृष्णमोहन की पेशी हुई। उस पर वर्णाश्रम-धर्म की सनातन-मर्यादा तोड़ने का अभियोग लगाया गया। उसने कहा कि मैंने विवाह एक वैश्य-कन्या से किया है, इसलिए मैंने वर्ण-मर्यादा नहीं तोड़ी। मेरी उम्र २५ वर्ष की है, इसलिए आश्रम-मर्यादा भी नहीं तोड़ी। सरपञ्च हैरान थे कि क्या उत्तर दें ? कारण, मनुस्मृति में चार वर्ण ही हैं। यदि कोई ब्यासदेव जी पञ्चपुराण बना, उप-जातियों में विवाह का निषेध लिख देते, तो शायद दिक्कत न होती। सब पञ्चों ने सिर जुटाया और ‘जो-हुक्मी-सूत्र’ से सनातन-धर्म की मर्यादा तोड़ने की डिग्री दे कृष्णमोहन को ज्ञात से खारिज कर दिया ! कृष्ण के बान्धव दुःखी हुए, पर वह हँसने लगा। लोगों ने पूछा कि भाई, हँसते क्यों हो ? उसने उत्तर दिया कि ५० वर्ष की उम्र में ब्याह करने वाले, आश्रम-मर्यादा तोड़ने वाले, आज न्यायासन पर हैं—फिर न्याय कहाँ ? कौन कह सकता है कि वर्णाश्रम-मर्यादा कृष्ण ने तोड़ी थी कि कद्दूमल ने ?

३

सत्यवती थी विधवा, इसीलिए माला जपा करती है। जैसी ही वह भोली थी, वैसी ही वह स्वरूपवती भी थी। उसका भरण-पोषण उसके जेठ ही करते थे। जेठ जी ज़रा पञ्च-क्रैशन के आदमी थे, इसीलिए ‘विधवा-विवाह’ का नाम सुनते ही वह गालियों की बौछार करते थे। सत्यवती अपना समय भगवद्-भजन में व्यतीत करना चाहती थी। पर थोड़े दिन से जेठ जी की उस पर विशेष कृपा होने लगी। वह सहम गई। जेठ जी ने बहुतेरे दाँव-पेच खेले, पर वह अपने सत्-मार्ग से न हटी। थोड़े दिनों में जेठ जी ने उसे भूखा मार कर और अनेक अत्याचार कर फँसाया। प्रसूति-काल आते ही जेठ जी ने उसे कुलटा, कुल-कलङ्किनी आदि शब्दों से सम्बोधित कर, घर से निकाल दिया ! लोग सत्यवती को बुरा कहने लगे, त्रिया-चरित्र की व्याख्या होने लगी। जेठ जी को ऐसी कुल-कलङ्किनी को निकालने पर बधाई मिली ! बेशक संसार की दृष्टि में सत्यवती पतित थी, पर भगवान् के यहाँ नराधम जेठ के लिए ही नरक तैयार हुआ !

*

*

*

“लड़की राँद कुलच्छनी है, पुस्तकें पढ़-पढ़ कर अपने पति को खा गई।”—औरतों के जमघट ने इस प्रकार पढ़ी-लिखी औरतों की खूब निन्दा की। पर यह कौन कहे कि पतिदेव शराबी तथा व्यभिचारी होने से जल्दी कूच कर गए !

—आनन्दप्रिय, बी० ए०; एल्-एल् बी०

* * *

मारवाड़ी-समाज की विचित्र नामावली

जब से हमारी षोडश संस्कार-विधियों का लोप हुआ, तब से ही हमारे नामकरण संस्कार का दुरुपयोग हो रहा है। प्राचीन काल में ज्योतिष-शास्त्र से ग्रह-नक्षत्रादि के फलादेशानुसार ही नाम रखे जाते थे; किन्तु अब किसी के सन्तान न होने पर या होकर अल्पायु में ही मर जाने के कारण बालक के ऊट-पटाँग नाम रख दिए जाते हैं। नाम का भी मनुष्य के हृदय पर बहुत भारी प्रभाव पड़ा करता है। अतः जहाँ तक हो सके, नाम अच्छे और शुभ ही रखे जाने चाहिए। सन्तान होना और होकर जीवित रहना ऊट-पटाँग नाम रखने पर अवलम्बित नहीं है। यह तो सृष्टि-कर्ता और प्रकृति-देवी के अटल नियमों पर ही निर्भर है। ऐसे कुछ विचित्र नामों की सूची, जो कुछ जल्दी में प्राप्त हो सकी, ‘चाँद’ के पाठकों को पेश करता हूँ। मारवाड़ी-समाज की कई जातियों के नाम भी बड़े ही विचित्र हैं, जो कभी समय मिलने पर ‘चाँद’ के किसी आगामी अङ्क में पेश करूँगा :—

१ हथिया	१३ चिडिया	२५ जागा
२ भतिया	१४ चूँका	२६ पोया
३ घोड़िया	१५ कूकड़ा	२७ नोलिया
४ गधिया	१६ वूचा	२८ तोतिया
५ पादिया	१७ लङ्गूर	२९ कीड़ीया
६ कुतिया	१८ लोंकू	३० टीडी
७ कुत्तिडा	१९ सूवा	३१ टीडा
८ साँड़ा	२० सूसा	३२ टेणी
९ मींड़ा	२१ कसारी	३३ मेणी
१० मिन्नी	२२ कूकू	३४ धोंगड़िया
११ मकड़ा	२३ खूखू	३५ चींघड़िया
१२ मोरिया	२४ कागा	३६ मटिया

३७ गटिया	७५ चतरिया	११३ यधिया
३८ गोल-गटिया	७६ जगड़िया	११४ फागणिया
३९ दूलिया	७७ नू	११५ चैतिया
४० मूलिया	७८ नूना	११६ जेठिया
४१ बूलिया	७९ नागा	११७ भादिया
४२ थूलिया	८० नागड़िया	११८ आसिया
४३ गुलिया	८१ बागड़िया	११९ डोडा
४४ गूलिया	८२ गटू	१२० डोफा
४५ गोलिया	८३ पटू	१२१ गोपा
४६ गोला	८४ मटू	१२२ जालिया
४७ होला	८५ मोटू	१२३ थालिया
४८ दुडिया	८६ गट्टा	१२४ चीणिया
४९ धूडिया	८७ पट्टा	१२५ बवूरिया
५० बालू	८८ फोजिया	१२६ कगली
५१ कालू	८९ कोजिया	१२७ आमली
५२ मालू	९० मोजिया	१२८ जुमरिया
५३ जालू	९१ तुहन्नड़	१२९ डोडा
५४ जालिया	९२ कुहन्नड़	१३० डार्हिया
५५ जालमिया	९३ चुहन्नड़	१३१ हूँचाँ
५६ लाली	९४ गुडोल	१३२ दहन्ना
५७ काली	९५ रेगारिया	१३३ डेला
५८ बद्धू	९६ पिञ्जारिया	१३४ डेसा
५९ लददू	९७ नाइडा	१३५ डेपा
६० मददू	९८ मोचीड़ा	१३६ डफोला
६१ पददू	९९ माली	१३७ डोल
६२ बुगा	१०० जाटिया	१३८ डकनी
६३ गगा	१०१ तैली	१३९ डाटी
६४ टुगा	१०२ सुथारिया	१४० दासीया
६५ टपिया	१०३ धोलिया	१४१ आहिया
६६ टेडा	१०४ कालिया	१४२ भाहिया
६७ टोडा	१०५ गोरिया	१४३ हुडका
६८ टरिया	१०६ रतिया	१४४ भुडका
६९ टेणीया	१०७ लूणिया	१४५ बाडा
७० कचरिया	१०८ मिरचिया	१४६ साँडा
७१ डचरिया	१०९ हलदिया	१४७ सँडा
७२ पसरिया	११० धणिया	१४८ सेणा
७३ छसरिया	१११ सावनिया	१४९ सीसा
७४ नसरिया	११२ पोया	१५० सँसा



कलकत्ते के सनातनी, किन्तु सुधार-प्रिय नेता और सॉलिसिटर
बाबू प्रभुदयाल हिम्मतसिंह जी

निर्वासिता

[ले० "कैवर्त कौमुदी" सम्पादक श्री० अनूपलाल जी मण्डल, साहित्य-रत्न]

भूमिका लेखक—

सुप्रसिद्ध आलोचक श्री० अवध उपाध्याय जी

निर्वासिता वह मौलिक उपन्यास है, जिसकी चोट से क्षीणकाय भारतीय समाज एक बार ही तिलमिला उठेगा, अन्नपूर्णा का नैराश्यपूर्ण जीवन-वृत्तान्त पढ़ कर अधिकांश भारतीय महिलाएँ आँसू बहावेंगी। कौशलकिशोर का चरित्र पढ़ कर समाज-सेवियों की छातियाँ फूल उठेंगी। यह उपन्यास घटना-प्रधान नहीं, चरित्र-चित्रण-प्रधान है, निर्वासिता उपन्यास नहीं, हिन्दू-समाज के वचस्थल पर

दहकती हुई चिता है

जिसके एक-एक स्फुलिङ्ग में जादू का असर है। इस उपन्यास को पढ़ कर पाठकों को अपनी परिस्थिति पर घण्टों विचार करना होगा, आँसू बहाना होगा, भेड़-बकरियों के समान समझी जाने वाली करोड़ों अभागिनी स्त्रियों के प्रति करुणा का स्रोत बहाना होगा, आँखों के मोती बिखेरने होंगे और समाज में प्रचलित कुरीतियों के विरुद्ध

क्रान्ति का झण्डा

धुलन्द करना होगा, यही इस उपन्यास का संक्षिप्त परिचय है। सुप्रसिद्ध आलोचक श्री० अवध उपाध्याय ने अपनी भूमिका में पुस्तक की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। छपाई-सफाई दर्शनीय, पृष्ठ-संख्या लगभग ५००, सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रु; स्थायी ग्राहकों से २) मात्र !!

व्यवस्थापिका "चाँद" कार्यालय,
—इलाहाबाद—

१२१ सीला	१८१ ममलो	२११ होकला
१२२ बेली	१८२ डेबो	२१२ बोगी
१२३ भेली	१८३ चँधो	२१३ सड्डा
१२४ फैनी	१८४ आँधो	२१४ फन्व
१२५ गूँगा	१८५ हिंडाऊ	२१५ गूईया
१२६ गोराला	१८६ हिंडोल	२१६ फिदिया
१२७ चोरिया	१८७ छदामिया	२१७ फीडा
१२८ मोरिया	१८८ दमडिया	२१८ पहा
१२९ मँगतिया	१८९ कोडिया	२१९ बदा
१३० मतीरा	१९० कोडी	२२० फुडकला
१३१ मोडा	१९१ जेबा	२२१ धेधा
१३२ चौखा	१९२ भूँठा	२२२ बाँडा
१३३ बौखा	१९३ लोटड़ी	२२३ चचा
१३४ मोगरिया	१९४ कुलहडिया	२२४ पींचा
१३५ घम्मा	१९५ भरतिया	२२५ रीँछा
१३६ डचिया	१९६ भाँड़ा	२२६ पुटिया
१३७ टुची	१९७ हाँडा	२२७ गुटिया
१३८ लुच्ची	१९८ कँडा	२२८ ओघडिया
१३९ मछिया	१९९ तूम्बा	२२९ सैंतलिया
१४० लडिया	२०० लोटिया	२३० कञ्जी
१४१ पट्टी	२०१ खेली	२३१ त्रिपटिया
१४२ फाचर	२०२ घासिया	२३२ गूरिया
१४३ किनारिया	२०३ फूसिया	२३३ सूरिया
१४४ खोता	२०४ घोचा	२३४ भाखर
१४५ कलकतिया	२०५ कीला	२३५ मामा
१४६ पाडी	२०६ खीला	२३६ फागू
१४७ फाडी	२०७ डोका	२३७ भीला
१४८ ता-मां	२०८ चाडा	२३८ मेजा
१४९ बाखी	२०९ बिडिया	२३९ फमला
१५० डम्भो	२१० पापडिया	२४० गुटकिया

इत्यादि-इत्यादि

—एक नाम-सुधारक मारवाड़ी

इतिहास के कुछ पृष्ठ

प्रत्येक देश का इतिहास वहाँ की वीरात्माओं के देवोपम कार्यों की गाथाओं से ही शोभा पा सकता है। वही इतिहास देश के होनहार पुरुषों को पथ-प्रदर्शक

का काम देता है, जीवन में नवीन स्फूर्ति उत्पन्न करता है, देश को अवनति के गर्त में गिरने से बचाता है एवं उसे उन्नति के उच्च-शिखर पर आसीन होने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करता है। वीरों की आदर्श जीवनियाँ मानव-हृदय-पत्र को विकसित करती हैं और गिरी हुई जाति को उठाने में समर्थ होती हैं। इसीलिए कहा जाता है कि यदि तुम अपने देश और जाति को उन्नतावस्था में देखना चाहते हो, यदि उसे जीवन-संग्राम में विजयी बनाने की अभिलाषा रखते हो, तो वीरात्माओं की समाधियों को देव-मन्दिर समझो और उनके पवित्र कार्यों को रामायण मानो। यदि ऐसा नहीं करते हो तो देशोत्थान कठिन है!

सारे संसार का इतिहास सामने है। जिन-जिन जातियों का अधःपतन हुआ, उनका इतिहास सर्व-प्रथम विनाश को प्राप्त हुआ था। ऐसी जातियों में से बहुतों का तो नाम-निशान ही मिट गया और रही-सही अवनति के अथाह सागर में वे गीते खा रही हैं। हमारे भारत के इतिहास की भी यही दशा हुई। हमारा सच्चा इतिहास, वीरों के देवोपम कार्य, हमारी उन्नति और उच्च संस्कृति के साथ ही साथ लुप्तप्राय हो गए। किन्तु सत्य कभी छिपाने से नहीं छिपता। आज हमारे इतिहास के जाग्रव-ल्यमान् रत्न एक-एक करके हमारे सामने आते-जाते हैं, और इस प्रकार अपने सच्चे इतिहास का दिग्दर्शन हमें हो जाता है। इससे मनगड़न्त और स्वार्थजनित बातों पर दिनोंदिन पानी फिरता जा रहा है।

यों तो भारत के किसी भी भाग का इतिहास महत्त्व और दिलचस्पी से रिक्त नहीं है, किन्तु वीर-भूमि राजस्थान का इतिहास स्वतन्त्रता का ऐसा इतिहास है, जो अनुपम है और स्वर्णाक्षरों में अंकित किए जाने योग्य है। राजपूतों ने अपनी तलवार के जो जौहर संसार को दिखलाए थे, प्राणों को हथेली पर रख कर उन्होंने जिस प्रकार अपनी मान-मर्यादा और मातृभूमि की रक्षा की थी, वह अब भी प्रत्येक मनुष्य को रोमाञ्चित किए बिना नहीं रह सकती। वीर रणबहा-राठौड़ों ने अनेक रणस्थलों में जो वीरत्वपूर्ण कार्य किए थे, उन्हें स्मरण करते हुए जोधपुर में लॉर्ड इरविन ने गत वर्ष अपनी स्पीच में कहा था :—

“... Here in Jodhpur the rose-red fort stands, a romantic and picturesque sentinel over

plains of Marwar. Its massive architecture reflects the stubborn spirit of its builder and every stone speaks of the brave deeds of your Highness' ancestors in the wars which fill so many pages in the history of this country side. . . ."

इसका सारांश यह है कि मारवाड़ के प्रत्येक शिला-खण्ड से राठौड़ों की वीरता का वह गौरवमय राग निकलता है, जो प्रत्येक दर्शक को सहज ही में अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।



दिल्ली के एक सुप्रसिद्ध व्यापारी तथा एक स्वदेशी स्टोर के सञ्चालक, विधवा-विवाह के प्रचार और समाज-सुधार के लिए सदा प्रयत्न करने वाले

श्रीयुत एल० एन० गाडोदिया

आज हम प्रिय पाठकों की सेवा में दां ऐसे महापुरुषों की जीवन-सम्बन्धी घटनाओं को उपस्थित करना चाहते हैं, जो मारवाड़ के इतिहास में चोटी पर के वीरों में गिने जाते हैं।

जिन दिनों बादशाह शाहजहाँ का सितारा भारत में झूलता था, कान्तताऊस की चमक-दमक से अनेक राज-पूत-

राजाओं की आँखें चौंधिया गई थीं, उन्हीं दिनों जोधपुर के गौरवशाली सिंहासन को महाराजा गजसिंह सुशोभित कर रहे थे। वे बड़े पराक्रमी योद्धा थे। एक बार उन्होंने युद्ध में हाथोंहाथ शत्रु का झण्डा छीन लिया था। अतएव सम्राट् जहाँगीर ने प्रसन्न होकर उन्हें "दलधन्वन" (सेना को रोकने वाले) की उपाधि दी थी।

महाराज गजसिंह के कई पुत्र थे, उनमें राव अमरसिंह ज्येष्ठ और राजगद्दी के अधिकारी थे। परन्तु महाराज राव अमरसिंह की स्वेच्छा-चारिता से प्रायः अप्रसन्न रहा करते थे। एक समय किसी विशेष बात पर नाराज़ होकर उन्होंने अमरसिंह को देश-निकाले का दण्ड दे डाला। वीर-शिरोमणि अमरसिंह ने इसकी कुछ भी परवा न की। वे सीधे शाही दरबार में चले आए, जहाँ बादशाह शाहजहाँ ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और ऊँचा दर्जा प्रदान किया। बादशाह इनकी वीरता पर बड़ा खुश था और इनको बहुत चाहता था। ये आगरे में बड़े आनन्द से रहने लगे।

कुछ दिन बीतने पर बादशाह ने खुश होकर इनको नागौर के परगने का स्वामी बना दिया और 'राव' की पदवी प्रदान की। ये बड़े सुख से नागौर में निवास करने लगे। कभी-कभी दरबार में जाते तो बड़ा सम्मान मिलता था। यह दशा देख अनेक दरबारी इनसे डाह करने लगे। उनमें सबसे बड़ कर ईर्षालु और द्वेषी सलावत ख़ाँ था, जोकि बादशाह का साला था। वह शाहजहाँ का मुँहलगा सरदार था। एक दिन उसने चिढ़ कर भरी सभा में राव अमरसिंह को 'गँवार' कह दिया। बस अब क्या था, बारूद में आग लग गई। राव अमरसिंह के क्रोध का वारापार न रहा। उनकी भुजाएँ फड़क उठीं। आँखें रक्तवर्ण हो गईं। वे अपने को न सँभाल सके। उन्होंने तत्क्षण कमर से कटार खींच कर सलावत ख़ाँ के कलेजे में भोंक दी। उस बेचारे का काम तमाम हो गया और गँवार कहने का यथोचित पुरस्कार मिल गया। उधर अमरसिंह की विकराल मूर्ति को देख शाहजहाँ जनान-ख़ाने में भाग गया और अन्य दरबारियों के भी होश उड़ गए। उनमें से कई मारे गए और कई प्राण लेकर भाग गए। वहाँ अनेक वीर बैठे थे, पर किसी का भी साहस न हुआ जो उनके सामने ठहर सके। धन्य है,

अमरसिंह धन्य !! धन्य है उस वीर-प्रसविनी माता को, जिसने ऐसे लाल को जन्म दिया।

अमरसिंह जी शाही दरबार से सकुशल घर लौट आए। दुर्भाग्य से भारत में भाई ही भाई का दुश्मन हो जाता है। कहते हैं कि अर्जुन गौड़ नामक नर-राक्षस ने धोखे से अमर का शिर काट डाला और खैरख्वाही दिखाने के लिए दरबार में ले गया। भला शाहजहाँ इस नीचता पर क्यों प्रसन्न होने लगा। उसे स्वयं इस अनोखे महावीर के संसार से उठ जाने पर बड़ा शोक हुआ।

देश-गौरव अमरसिंह के पवित्र कृत्य का चित्र किसी कवि ने किस खूबी से खींचा है :—

उन मुँह रो गग्यो कह्यो, इन कर लई कटार।
वार कहन पायो नहीं, जमधर हो गई पार॥

× × ×

वजन माँह भारी थी कि रेल में सुधारी थी,
हाथ से उतारी थी कि साँचे हूँ में ढारी थी।
सेख जी के दर्द माँह गर्द सी जमाई मर्द,
पूरे हाथ साँधो थी कि जोधपुर सुधारी थी॥
हाथ में हटक गई, गुट्टि सी गटक गई,
फेफड़ा फटक गई आँकी-बाँकी तारी थी।
शाहजहाँ कहे यार सभा माँह बार-बार,
अमर की कमर में कहाँ वी कटारी थी॥

× × ×

साहि को सलाम करि मारयो थो सलावत खान,
दिखा गयो मरोर सूर-वीर धीर आगरो।
मीर उमरावन की कचेड़ी धुजाय सारी,
खेलत शिकार जैसे मृगन में बागरो।
कहे पानराय गजसिंह के अमरसिंह,
राखी रजपूती मजबूती नव नागरो।
पाव सेर लोह से हलाई सारी पातसाही,
होती शमशेर तो छिनाय लेतो आगरो॥

वीर-शिरोमणि अमरसिंह के शोजमय वर्णन को पढ़ने के पश्चात् पाठकों की आँखें एक और वीर राठौड़ के कार्यों के ऊपर ठहर जाती हैं। यह इतिहास-प्रसिद्ध

प्रातः स्मरणीय राठौड़-कुल-रचक वीराग्रगण्य दुर्गादास हैं, जिनके ऊपर प्रत्येक भारतीय को गर्व है।

महाराजा जसवन्तसिंह बड़े यशस्वी महाराज थे। उनकी तलवार से स्वयं दुर्दमनीय मुगल-सम्राट् औरङ्गजेब भी डरता था; किन्तु वह था बड़ा कूट-नीति का आचार्य। उसने महाराज को कभी अपने पास न रहने दिया। महाराजा जसवन्तसिंह के साथ अनेक देशभक्त सरदार थे, उनमें दुर्गादास सर्व-प्रधान थे।



दिल्ली में बिड़ला-मिल के मैनेजर और हड़ समाज-
सुधारक तथा पदों के विरोधी
श्री० चतुर्भुज जी डीडवानिया

वीर दुर्गादास का जन्म जोधपुर से थोड़ी दूर पर एक छोटे से गाँव में हुआ था। इनकी माता जी एक वीर-महिला थीं। उनके व्यक्तित्व का बहुत-कुछ असर दुर्गादास पर पड़ा था। जब महाराजा जसवन्तसिंह ने इस नर-रत्न को पाया, तो उन्होंने अपने आपको धन्य समझा।

एक बार वीर दुर्गादास महाराज के साथ शिकार को गए। थके तो थे ही, वे एक पेड़ के नीचे सो गए। धूप इनके मुँह पर पड़ रही थी। महाराजा साहब ने स्वयं इनके ऊपर छाया कर दी। यह देख अन्य सरदार महाराज से कहने लगे कि हम लोगों के होते हुए आप ऐसा कार्य क्यों कर रहे हैं? यह सुन कर महाराजा ने उत्तर दिया कि आज मैंने इसके ऊपर छाया की है, एक दिन यह राठौड़-वंश पर छाया करेगा। आगे चल कर उनकी यह बात अक्षरशः सत्य हुई।

और यह प्रसिद्ध कर दिया कि महाराजा जसवन्तसिंह निस्सन्तान थे।

उधर महाराजा जसवन्तसिंह जी की दो रानियाँ गर्भवती थीं, जिनसे अजीतसिंह और दलथम्बन नामक पुत्र उत्पन्न हुए। जिनमें से दलथम्बन तो मार्ग में ही काल-कवलित हुए, किन्तु वीर राठौड़ों के स्तुत्य उद्योग से महाराजा अजीतसिंह कुछ समय पश्चात् जोधपुर में सिंहासनारूढ़ हुए, जिसका वृत्तान्त इस प्रकार है :—

जब औरङ्गजेब के कुकृत्य का समाचार राजपूतों तक



वीर मुकुन्ददास जी खीची

[सैंपेरे के भेष में राजकुमार अजीतसिंह को मुगल-सेना के बीच में से छिपा कर लेजा रहे हैं]

काबुल के पठान महाराजा जसवन्तसिंह की तलवार की झनकार से काँपते थे। इसी हेतु औरङ्गजेब प्रायः इन्हें पठानों को दमन करने के लिए भेजा करता था। एक बार ये अपने सरदारों के साथ काबुल का प्रबन्ध करने को गए। दैव-दुर्विपाक से जमरूद के थाने में महाराज का देहान्त हो गया। यह समाचार पाते ही क्रूर-प्रकृति, दुर्दान्त औरङ्गजेब ने मारवाड़ का राज्य हड़प लिया

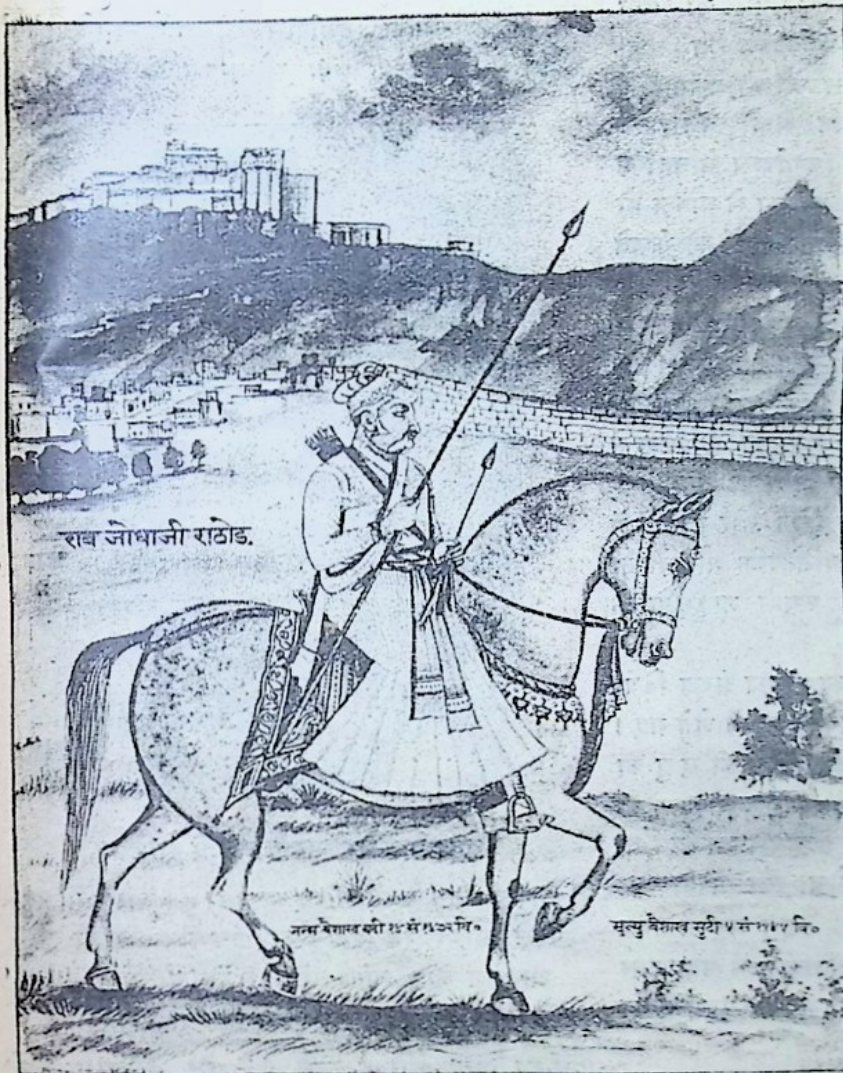
पहुँचा तो उनकी क्रोधाग्नि धधक उठी। वे बिना आज्ञा ही वहाँ से रवाना हो गए और महाराज-कुमार अजीत को लेकर दिल्ली आए।

वीर दुर्गादास ने औरङ्गजेब को कहला भेजा कि महाराज-कुमार अजीतसिंह मौजूद हैं और मारवाड़ की राजगद्दी के वे ही एकमात्र उत्तराधिकारी हैं। उन्हें मारवाड़-राज्य वापस दे दीजिए। मुगल-सम्राट् ने सोचा

कि यदि यह राजकुमार और महारानियाँ हाथ में आ जायँ तो काम बने। इसी हेतु उसने आज्ञा दी कि महाराज-कुमार को हमारे पास भेज दो।

दुर्गादास उसके कपट-जाल को ताड़ गए। उन्होंने

पात्र सरदार मुकुन्ददास खीची को सेपेरा बना कर और अजीतसिंह को एक पिटारे में लिटा कर खाना कर दिया। वीर मुकुन्ददास ने कुमार अजीतसिंह को सिरोंही पहुँचा दिया, जहाँ बड़ी सावधानी से उनका लालन-पालन होता रहा।



राव जोधाजी राठोड़

[जन्म—वैशाख वदी १४ सं० १४७२ वि० ; मृत्यु—वैशाख सुदी ५ सं० १५४५ वि०]

कुमार को देने से साफ़ इन्कार कर दिया। थोड़ी देर में राजपूतगण क्या देखते हैं कि उनका निवास-स्थान शाही सेना से घिरा हुआ है। दुर्गादास ने इस समय बड़े धैर्य और बुद्धिमत्ता से काम लिया। उन्होंने अपने विश्वास-

राठोड़ों की वीरता देख मुगलों के डूँके छूट गए !

नर-व्याघ्र वीर-केसरी दुर्गादास ने जो जौहर उस दिन दिखलाए, उन्हें यह लोह-लेखनी क्या खाक वर्णन करेगी ? घोड़े की रास को मुँह में दबाए हुए वह वीर एक

इधर राजपूतों ने बचने की कोई सुरत न देख, केसरिया बाना पहना। कहते हैं कि उन्होंने सारी सामग्री एक कमरे में एकत्र की और बारूद भर कर कमरे के दरवाज़े में ताला लगा दिया। वीर-स्त्रियों ने अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए प्रसन्न-वदन खिड़की के मार्ग से प्रवेश किया। एक वीर-राजपूत ने खिड़की का द्वार बन्द कर दिया और झरोखे से अग्नि की एक चिनगारी फेंक दी। बात की बात में कमरे का नाम-निशान तक मिट गया !!

अब वीर-राजपूत निश्चिन्त हो गए, उन्होंने अपनी खून की प्यासी तलवारें खींच लीं। कहाँ तो मुट्ठी भर राजपूत और कहाँ वह असंख्य सेना, पर राजपूतों ने इसकी तनिक भी परवा न की। वे संग्राम-भूमि में इस प्रकार कूदे, जिस प्रकार भेड़िया भेड़ों के झुण्ड पर आक्रमण करता है। उन्होंने बात की बात में आस-पास की सारी पृथ्वी रूख-सुखमय कर दी।

और अपनी लपलपाती, चमचमानी तलवार से शत्रुओं के शिरों को गाजर-मूली की नाई काट रहा था और दूसरे हाथ में बरछा लिए हुए अनेक वीरों के हृदय विदीर्ण कर रहा था। उसकी भैरव-विकराल मूर्ति को देख कर अनेक कायरों के कलेजे काँप गए। वीरों का वीरत्व ख़ुस हो गया और धैर्यवानों का धैर्य जाता रहा। वीर-शिरोमणि दुर्गादास ने उस दिन सहस्रों को तलवार के घाट उतारा, परन्तु वहाँ तो असंख्य सेना थी। अनेक राजपूत मारे जा चुके थे। अतएव दुर्गादास ने वहाँ से हट जाना ही उचित समझा। वे पूर्णरूप से घायल हो चुके थे, किन्तु फिर भी वे मार्ग के अनेक कष्टों को भेलते हुए मारवाड़ आ पहुँचे।

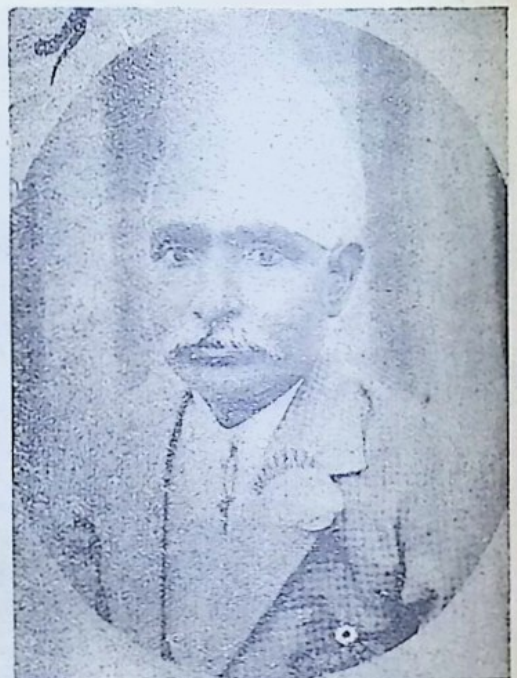
यहाँ आकर क्या देखने हैं कि सर्वत्र शाही झण्डा फहरा रहा है, देश दुश्मनों के चक्रुल में फँस चुका है। अतः उन्होंने प्रण किया कि जब तक दम में दम है, मारवाड़ का उद्धार करेंगे और मातृभूमि के ऋण से उच्छेद होंगे। वे वहाँ से चल कर सिरोही आए और सरदारों से मिल राजकुमार को देखा। वीर राठौड़ों में अपने बालक-स्वामी को देख, स्वामि-भक्ति और वीरता का समुद्र उमड़ पड़ा और वे अपनी मातृभूमि के उद्धारार्थ कटिबद्ध हो गए।

वीर दुर्गादास ने राजपूतों का नेतृत्व ग्रहण किया और वे एक-एक करके किले अपने हाथ में लेते गए। सौभाग्य से थोड़े ही समय में औरङ्गजेब की मृत्यु का समाचार भी सुनने में आया। अतः उन्हें मारवाड़ का उद्धार करते देर न लगी। उन्होंने कुमार अजीतसिंह को राजसिंहासन पर सुशोभित किया और मारवाड़ का निगला हुआ राज्य वापस ले लिया। इस अनुग्रह प्रयत्न के लिए वीर दुर्गादास का नाम इतिहास में सदा अमर रहेगा। उन्होंने एक मृतप्राय राजवंश को पुनरुज्जीवित और स्थायी कर दिया।

वे बहुत दिन तक मारवाड़ का सुप्रबन्ध करते रहे। किन्तु वृद्धावस्था में महाराजा अजीतसिंह इनके उपकारों को भूल, इनसे रुठ हो गए। अतएव ये उदयपुर चले आए, जहाँ पर महाराजा संग्रामसिंह (द्वितीय) ने इनका बड़ा आदर-सत्कार किया और इनको सर्व प्रकार की सुविधाएँ कर दीं। एक बार वे तीर्थयात्रा के लिए उज्जैन गए। वहाँ शिप्रा नदी के किनारे इनका देहान्त हुआ।

जिस स्थान पर भारतमाता के इस लासानी लाल ने अपनी जीवन-लीला समाप्त की, उस स्थान पर अब तक एक छत्तरी बनी है, जो 'राठौड़-छत्तरी' के नाम से प्रसिद्ध है।

वीर-शिरोमणि दुर्गादास की कीर्ति दिग्दिगन्त में व्याप्त है। वह देश बड़ा सौभाग्यशाली है, जहाँ ऐसे



दानवीर सेठ भरोंदान जी सेठिया

[आप कलकत्ते के बड़े प्रसिद्ध व्यापारी हैं। भारत में सबसे पहले आपने रङ्ग बनाने का कारखाना खोला था।

आजकल आप अपना तमाम समय ओम्बाल-जाति में शिक्षा-प्रचार करने में लगा रहे हैं।]

नर-रत्न जन्म धारण करते हैं। वीर दुर्गादास अपने समय के अद्वितीय वीर थे। स्वयं औरङ्गजेब जितना इनसे डरता था, उतना अन्य किसी से नहीं। इनका पवित्र चरित्र इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है।

—गोकुलप्रसाद शर्मा, पाठक 'हिन्दी-प्रभाकर'

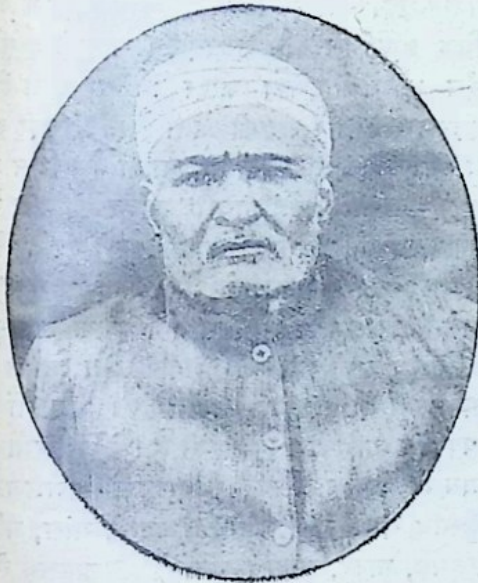
*

*

*

मारवाड़ का भीषण पाप

आर्यसमाज के इतिहास से परिचित महानुभाव 'नन्हों भगतन'* के नाम से अपरिचित नहीं होंगे। महर्षि दयानन्द के चरित्र-सम्बन्धी अब तक की



सेठिया-परिवार के एक उदार और सुधारक
विचारों के सज्जन

स्वर्गीय अजरचन्द जी सेठिया

खोज करने वाले प्रत्येक चरित्र-लेखक का यही विचार है कि इसी नन्हों भगतन के पड़्यन्त्र से महर्षि का परलोक-वास हुआ। इसलिए देश-बन्धुओं को नन्हों भगतन का परिचय कराना अनुचित न होगा।

* नन्हों भगतन अर्थात् नन्हों जी के नियुक्त होने के पूर्व महाराजा जसवन्तसिंह तख्तमिहोत के पास जयपुर-राज्य के खेनडी ठिकाने की मुसलमान वेश्या नन्हों जान नाम की नौकर थी। महर्षि का बलिदान नन्हों भगतन से सम्बन्ध रखता है, न कि मुसलमान नन्हों जान से। बहुत से लेखक नन्हों और 'नन्हों जान' को एक ही समझते हैं, जो भूल है। इसी भूल को ठीक करने के लिए ही यह खुलासा किया गया है।

“भगतन” राजपूताने में एक जाति का नाम है। इसकी उत्पत्ति रामावत साधुओं से कही जाती है। मारवाड़-राज्य में भगतन-जाति के प्रायः सौ डेढ़ सौ परिवार आबाद हैं। प्रसिद्ध है कि जोधपुर-नरेश महाराजाधिराज राजराजेश्वर महाराजा श्रीविजयसिंह जी साहब के राज्य-संवत् १८२२ वि० में कई गृहस्थ रामावत साधुओं की कन्याओं ने गाना-बजाना सीख कर वेश्या का धन्दा शुरू किया था। इन्हीं से इस भगतन-जाति की सृष्टि हुई। इस जाति का विश्वास वैष्णव-सम्प्रदाय है और इष्ट हनुमान जी का है। कन्याओं की सगाई नहीं होती। विवाह करने का नियम यह है कि गृहस्थ



श्री० जेठमल जी सेठिया

[आप भैरोंदान जी सेठिया के सुपुत्र हैं और ओस-वाल-जाति में शिक्षा-प्रचार के लिए बहुत परिश्रम कर रहे हैं।]

साधुओं के रीत्यनुसार विवाह-कार्य प्रारम्भ करके किसी गरीब गृहस्थ साधु के साथ, जो नौकरी या माँग करके जाते हैं, फेरे ढाल देते हैं। उस साधु को पहले ही से

रपथा आठ आना देकर इस बात पर राजी कर लेते हैं कि वह लड़की के लिए दावा न करे।

इस प्रथा को यहाँ “कुँवारपना उतारना” कहते हैं। साधु “हथलेवे” का पाप लेकर अपने घर चला जाता है। यदि कभी कोई साधु “कुँवारपना उतारने” के लिए नहीं मिलता तो गणेश जी के चित्र के साथ ही फेरे डाल कर कुँवारपना उतार देते हैं। इसी प्रकार से पातुरें, दूसरी जाति की हिन्दू-रखिड्याँ भी कुँवारपना उतारती



नन्हों भगतन स्वर्गीय महाराजा जसवन्तसिंह के साथ
“सिंहों के सिंहासन पर कुतियों का राज्य”
[ऋषि दयानन्द का सिंहावाद]

हैं। पश्चात् पातुरों की तरह भगतनों में भी व्यभिचार (कसब) कराना शुरू किया जाता है। बिना कुँवारपना उतारे कोई “भगतन” या “पातुर” व्यभिचार नहीं कराती। यदि घर वाले कुँवारी छोकरी से व्यभिचार करावें तो वह जाति से बाहर कर दिए जाते हैं। विवाहिता स्त्रियाँ कसब नहीं करातीं, जिससे यह कहावत भी चल पड़ी है कि—“जाई कसब कमावे और आई नहीं

कमावे।” वह अपने घरों में रहती हैं और गृहस्थी का काम-काज करती हैं। विधवा-विवाह यानी नाता (करेवा) इनमें नहीं होता। विवाह करते समय यह लोग अपना और अपनी माता का गोत्र छोड़ देते हैं!

भगतनों की गणना भारत के अन्य प्रान्तों की तवायफों में है। क्योंकि भगतनों नाचने, गाने, बजाने और बनाव-शृङ्गार से रहने में और सब भेदों में पातुरों से अधिक होशियार और शऊरदार (सभ्य) होती हैं।

ईस लोगों में इनका आदर विशेष रहता है। ये इज्जतदार वेश्याएँ समझी जाती हैं। विशेषकर ईसों का ही इनके यहाँ आवागमन रहता है। जिस प्रकार पातुरों के पिता-भाई “जागरी” कहलाते हैं और उनके विवाह-सम्बन्ध दशोगा (गोला-विदुर) जाति में होते हैं; उसी प्रकार भगतनों के पिता-भाई “भगत” कहलाते हैं और गृहस्थ रामावत व निम्बार्क साधु-जाति में विवाह करते हैं। यह भगत लोग उनके साथ तबला-सारङ्गी बजाया करते हैं। भगतनों का व्यवसाय व्यभिचार कराना ही है! ये मुसलमानों के साथ भी सम्बन्ध रखती हैं, किन्तु “पातरें” मुसलमानों के साथ संसर्ग नहीं करतीं। भगतन मांस, मदिरा, शलगम, गाजर, काँदा (प्याज़) और लहसन से भी परहेज करती हैं।

मारवाड़ की सुप्रसिद्ध “नन्हों भगतन” भी इसी भगतन-जाति की थी। उसकी माँ का नाम था “छोटी भगतन”। कहा जाता है कि नन्हों जब २०-२१ वर्ष की थी, तब उसके एक छोकरी पैदा हुई थी, किन्तु कुछ समय के पश्चात् वह मर गई। वह उन दिनों नव्वाब जूनागढ़ (काठियावाड़) के किसी शाहजादे के पास थी। कुछ समय पश्चात् यह जूनागढ़ से वापस जोधपुर लौटी। तब इसकी अवस्था २२-२३ वर्ष की थी। उस समय महाराजा सर जसवन्तसिंह जी (दूसरे)

जी० सी० एस० आई० जोधपुर-नरेश ने इसे अपने पास नौकर रख लिया और अपनी मृत्यु-पर्यन्त साथ ही रखा। वह उसे अलग नहीं छोड़ते थे। किले में जब जाते तब भी वह साथ ही रहा करती थी। वह पर्दा नहीं करती थी, तब भी महाराजा साहब ने उसके पैर में सोना दे रखा था। कहा जाता है कि नन्हों दिन में ६-७ बार अपनी रेशमी पोशाक बदला करती थी। हर

समय वह अपने शरीर पर हीरे-माणिक के गहने पहने रहा करती थी।

नन्हों भगतन के मरज़ीदान प्रायः मुसलमान थे। महाराजा ने इन्हें सेनापति आदि के बड़े-बड़े अधिकार दे रखे थे। ये लोग महाराजा साहब की और नन्हों की प्रत्येक बात में हाँ में हाँ मिलाया करते थे !!

नन्हों भगतन की मृत्यु सम्बत् १६६६ विक्रमी प्रथम श्रावण सुदी ७ (२४ जुलाई, सन् १६०६ ई०) को जोध-

पूर कर दिया। सब भयङ्कर रोगों से पीड़ित रह कर, मृत्यु को प्राप्त हुए। मारवाड़-निवासियों ने इन व्यक्तियों की शिंछाजनक मृत्यु से अपने धार्मिक विश्वासों को बहुत-कुछ दृढ़ कर लिया।

उन मुसलमानों की मृत्यु के पश्चात् उनका पाप से कमाया हुआ सब धन, जागीर, मकान आदि स्टेट द्वारा ज़न्त कर लिए गए। स्टेट से उनके घर वालों को नियमित वेतन मिलना प्रारम्भ हो गया; जो अब तक बराबर



मुन्शी पुरुषोत्तमप्रसाद जी गौड़

[आप सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुन्शी देवीप्रसाद जी के पौत्र और उनके उत्तराधिकारी हैं]

पुर में हुई थी। उस समय उसकी आयु ६०-६१ वर्ष की थी। मृत्यु से ४-५ वर्ष पहले से ही वह भयङ्कर रोगों से पीड़ित थी। मारवाड़ में नन्हों भगतन को “नन्हों जी” कहते हैं। महाराजा साहब और अन्य राजपुरुष भी उसे इसी प्यार के नाम से सम्बोधन किया करते थे। नन्हों भगतन के जो मरज़ीदान थे, उनकी भी मृत्यु के समय ऐसी दशा हुई कि वैसी ईश्वर किसी की न करे। महाराजा साहब के परलोकवास के पश्चात् मुसाहिब आला महाराज सर प्रतापसिंह जी ने उन सबको अधिकारों से

मिलता है। लाखों रुपए के घोड़े-बग्वी, महल आदि सब ज़न्त कर लिए गए। कहा भी है :—
रहै न कौड़ी पाप की, ज्यों आवे त्यों जाय।
लाखों का धन पाय के, मरे न कफ़न पाय !!

महाराजा साहब की मृत्यु के पश्चात् नन्हों भगतन खुद की हवेली में रहने लगी थी। वह अपनी मृत्यु, यानी जुलाई सन् १६०६ ई०, तक इसी बड़ी हवेली में रही। यह विशाल हवेली रेलवे स्टेशन के रास्ते पर जोधपुर के रणडी-मुहल्ले (चकले) में है। नन्हों का कोई

सगा भाई आदि सम्बन्धी न था।* मामा के भाई आदि थे, जिनसे इसकी सदा अनबन रहती थी। यह बड़ी मक्खीचूस रण्डी थी। एक पैसा भी अपने पास से दान-पुण्य में नहीं देती थी। इसके सारे बाल सफ़ेद हो गए

जीवन जी चावड़ा के वीर्य से उत्पन्न हुई थी, जोकि एक छोटा जागीरदार था। नन्हों की माँ उसकी रखेली थी। नन्हों की मृत्यु के पश्चात् उसकी जायदाद राज्य में ज़ब्त की गई तो लगभग ६०० जोड़े तो रेशमी जूतों के ही



बर्धा का भैया-परिवार]

य। यह चार-पाँच वर्ष तक भयङ्कर बवासीर के रोग से दुःखित रही। कहा जाता है कि नन्हों किसी राजपूत

* नन्हों की एक सगी बड़ी बहिन "लाली" नाम की अब तक विद्यमान है। वह महाराजा जसवन्तसिंह जी के छोटे भाई स्वर्गीय महाराज किशोरसिंह 'कमाण्डर इन चीफ' के पदों में बैठ गईं। जब नन्हों की बोलवाला की धूम थी, तब से वह "लालराय जी पड़दायत" बहलाती है।

[परिचय अन्यत्र देखिए

मिले थे ! ८०० के करीब रेशमी घाघरे थे। और भी बहुत मूल्यवान् सामान था !! चीफ़ कोर्ट में कई महीनों तक सब चीज़ें नीलाम होती रहीं। लगभग १५-२० लाख रुपए की सब जायदाद नीलाम हुई थी !!!

कहा जाता है कि जिन दिनों महर्षि दयानन्द जी जोधपुर में धर्मोपदेश कर रहे थे, तो एक दिन अनायास ही नियत समय से कुछ पूर्व आप महलों (राई का बाग़) में महाराजा साहब से भेंट के लिए आ गए।

नन्हीं भगतन उस समय महाराजा साहब के पास बैठी थी। महर्षि के आने का समाचार महल के फ़र्राश से सुनते ही महाराजा ने जल्दी-जल्दी नन्हीं को पालकी में बिठला कर बाहर ले जाने की आज्ञा दी। शीघ्रता से उठाने के कारण पालकी एक ओर से कुछ झुक गई तो

स्वयं महाराजा ने अपना कन्धा लगा दिया। महर्षि हाल तो सब सुन ही चुके थे, किन्तु आज यह सब कौतुक स्वयं अपनी आँखों से देख कर क्रोध को न रोक सके और बड़ी निर्भीकता के साथ सिंहानाद करके बोले :—

“सिंहों के सिंहासन पर कुतियों का राज !!! इन कुतियों से कुत्ते ही पैदा होंगे ???” महर्षि की गर्जना सारे महल में गूँज गई। पुराने शुभचिन्तकों का माथा ठनका। महाराज तो सुन कर चुप हो गए, किन्तु नन्हीं भगतन ने इन शब्दों को सुन कर अपनी बड़ी बेइज़्जती समझी। भैया फ़ैज़ुल्ला ख़ाँ का ज़माना था, जिसको स्वयं महाराजा साहब भैया याने भाई सम्बोधन किया करते थे। वे यद्यपि साबिक दीवान थे, पर महाराजा के बड़े मुँह-लगे थे। पहले तो दोनों ने मिल कर महाराजा साहब को ही भड़काने का प्रयत्न किया, किन्तु महर्षि के अतुल यश और मान के भय से जब महाराजा को कुछ कर सकने में असमर्थ देखा, तो स्वयं ही पड़्यन्त्र रचने लगे। नन्हीं ने अपने एक विशेष कृपा-पात्र व्यक्ति को लालच देकर उसके द्वारा महर्षि के रसोइए को बहकाया और दूध में काँच पीस कर स्वामी जी को दिला दिया। वह दूध पीने के कुछ देर बाद ही महर्षि के पेट में भयानक दर्द आरम्भ हुआ, और वह इतना अधिक बढ़ा कि डेढ़ मास तक महर्षि असाधारण रोग से पीड़ित रहे और अन्त में प्राण त्याग दिए ! वह रसोइया कलिया

(कल्ला जी*) अभी ७-८ वर्ष ही हुए, मरा है। उसने अपने कौतुक का इक़बाल अन्तिम समय कर लिया था !

इस प्रकार महर्षि दयानन्द ने मारवाड़-प्रान्त में ही, और वहाँ के एक बड़े राज्य और राजा व प्रजा के सुधार के निमित्त अपना बलिदान किया। मारवाड़ी



श्री० नवलकिशोर जी भरतिया (सपत्नीक)

[ये वही प्रख्यात दम्पति हैं, जिनके विधवा-विवाह ने कुछ समय पूर्व समस्त मारवाड़ी-समाज में हलचल मचा दी थी।]

भाइयो ! महर्षि के बलिदान से आपने क्या शिक्षा

* इसका वचन का नाम 'जगन्नाथ' कहा जाता है।

ग्रहण की? क्या आपने कभी उस सच्चे संन्यासी के उपकार का स्मरण किया है? महर्षि का व्रत था कि मारवाड़-प्रान्त और राजस्थान के सब कुकर्म दूर हो जायँ, वहाँ वैदिक धर्म का डझा बज कर सब में सदाचार का प्रचार हो, हिन्दू-सङ्गठन, गो-रक्षा, शुद्धि और अछूतोद्धार के द्वारा सब जाति में एकता और धर्म-प्रेम जाग्रत हो।

मारवाड़ियों में रीने की रीति

मारवाड़ी-समाज में किसी के घर यदि ऐसा कोई व्यक्ति हो (चाहे वह स्त्री हो या पुरुष) जो अत्यन्त वृद्ध हो, या अपङ्ग हो, या बहुत ज्यादा दिन



राज्यरत्न मा० आत्माराम जी (सपरिवार)]

[परिचय अन्यत्रादेखिए]

अपि-अग्रण से उन्नत होने के लिए अब मारवाड़ियों को तैयार हो जाना चाहिए।

—पुरुषोत्तमप्रसाद गौड़, 'नय्यर'

*

*

*

* इस लेख के लेखक राजगुप्ताने के सुप्रसिद्ध इतिहासकार स्वर्गीय मुन्शी देवीप्रसाद जी के पौत्र हैं और उनको इस लेख

की घटनाओं का पता स्वर्गीय मुन्शी जी से ही लगा था। इस लेख में महाराजा जसवन्तसिंह और नन्हीं भगतन का जो चित्र दिया गया है, वह हमें अपने एक आर्यसमाजी मारवाड़ी मित्र से प्राप्त हुआ है, जिन्होंने इसको बड़ी चेष्टा से जोधपुर से प्राप्त किया था।

—सं० 'चौद'

का रोगी हो, या कोई विधवा हो—मतलब यह कि कोई ऐसा व्यक्ति हो, जिसका जीवन सारे कुटुम्ब को



श्री० सतीदास जी

(आपने नागपुर से हिन्दी-भाषा में एक अर्द्ध-साप्ताहिक पत्र 'प्रणवीर' प्रकाशित किया था और उसके लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर चुके हैं ।)

भय-रूप मालूम हो, वे यह चाहते हों कि ईश्वर करे यह जल्दी मर जाय और बला टले ; हमेशा ही ईश्वर से उसके मर जाने की प्रार्थना करते हों—ऐसा व्यक्ति भी यदि किसी के घर मर जाता है, तो भी मारवाड़ी-समाज लोगों को दिखाने के लिए रोने का बड़ा भारी पाखण्ड रचता है । उसके मरते ही घर में बड़े ज़ोरों का रोना शुरू हो जाता है । कुछ देर बाद मुहल्ले और पड़ोस के आदमी इकट्ठे होकर उस शव को मरघट ले जाते

हैं । ये लोग जब तक मरघट से लौट कर नहीं आ जाते, तब तक घर की और बाहर से आई हुई औरतें रोनी-चिल्लाती रहती हैं । मरघट से लौटने के बाद बाहर के आए हुए पुरुष और स्त्रियाँ चले जाते हैं । घर के आदमी घर का काम-काज करते रहते हैं । तीन दिन तक पुरुष लोग बाहर 'बैठका' करते हैं, उसमें गाँव के लोग, परिचित, रिश्तेदार और विरादरी वाले बैठने को आते हैं । जब तक बाहर का आदमी कोई नहीं रहता, तब तक तो सब शान्त रहता है, पर जैसे ही बाहर का कोई आदमी आता हुआ दिखाई दिया, वैसे ही भीतर से औरतें चिल्ला-चिल्ला कर रोने लग जाती हैं । पुरुष लोग भी आए हुए से मर जाने वाले के लिए शोक प्रकट करते हैं । दस-पाँच मिनट बैठ कर यह लोग चले जाते हैं । फिर थोड़ी देर बाद दूसरे लोग आते हैं तो फिर बेचारी औरतों को ज़ोर से रोना पड़ता है ! रोना मन से तो नहीं होता, पर मजबूरन लोगों को दिखाने तथा पुत्रतैनी रस्म अदा करने के लिए रोना ही पड़ता है ! इस तरह कई घरों में तो तीन दिन तक रोने का रिवाज है और कई घरों में दस रोज़ तक, रोते हैं । यदि किसी द्रव्यवान के यहाँ मृत्यु हुई तो फिर तीन दिन



पुरोहित रामप्रताप जी का

३६ फ़ीट लम्बा और २४ फ़ीट चौड़ा राजपूताना आर्ट-स्टुडियो तक ख़ूब ज़ोर-शोर से रोने का काम जारी रहता है । क्योंकि बड़े आदमी के यहाँ रास्ते चलता आदमी भी

शोक प्रकट करने के लिए आ बैठता है। इसलिए इन घरों की औरतों को तीन दिन तक बराबर रोना पड़ता है। उन बेचारियों का गला बैठ जाता है, बोला भी नहीं जाता। ऐसे मौके पर दूसरी औरतों को, जो बाहर से आई हुई रहती हैं, बदले में रोना पड़ता है। इतना अधिक रोते हैं कि कोई यह न कह सके कि फलाने के यहाँ फलाना आदमी मरा था तो उन्होंने उसका रोना भी नहीं किया। इस बीच में यदि दूसरे स्थान से कोई रिश्तेदार या मित्र मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिए आवे और यदि उनके साथ स्त्रियाँ भी हों, तो मृत्यु वाले का मकान एक या डेढ़ फर्लाङ्ग बाकी रह जाने पर उनके साथ की सब स्त्रियाँ खूब जोर से चिल्ला कर रोने लग जाती हैं। इन लोगों का स्वागत मृतक के घर की स्त्रियाँ भी रो कर ही करती हैं !

वास्तव में मारवाड़ी-समाज की यह प्रथा बड़ी विचित्र है कि जिस आदमी के लिए हमेशा मर जाने की कोशिश करते रहते हैं, उस आदमी के भी मर जाने पर इतना ढोंग किया जाता है ! इस समाज में कितने ही बूढ़े इसीलिए शादी करते हैं कि अगर औरत न हुई तो हमारे मरने पर हमको कौन रोएगा। इस रोने के लिए ही दस-दस हजार रुपए खर्च कर देते हैं ; और विवाह करते हैं। उनकी समझ में मरने के पीछे रोना ही एक ऐसी बात है, जिससे आदमी स्वर्ग में पहुँच जाता है। यही क्यों, इस समाज में इस तरह की कितनी बातें

हैं, जो सिर्फ लोगों को दिखाने को ही की जाती हैं। मारवाड़ी-समाज को इच्छा न होते हुए भी, बहुत से कार्य ऐसे करने पड़ते हैं कि करने वाले को उनका बहुत बुरा नतीजा भोगना पड़ता है !! †

—शिवदयाल अग्रवाल

* * *



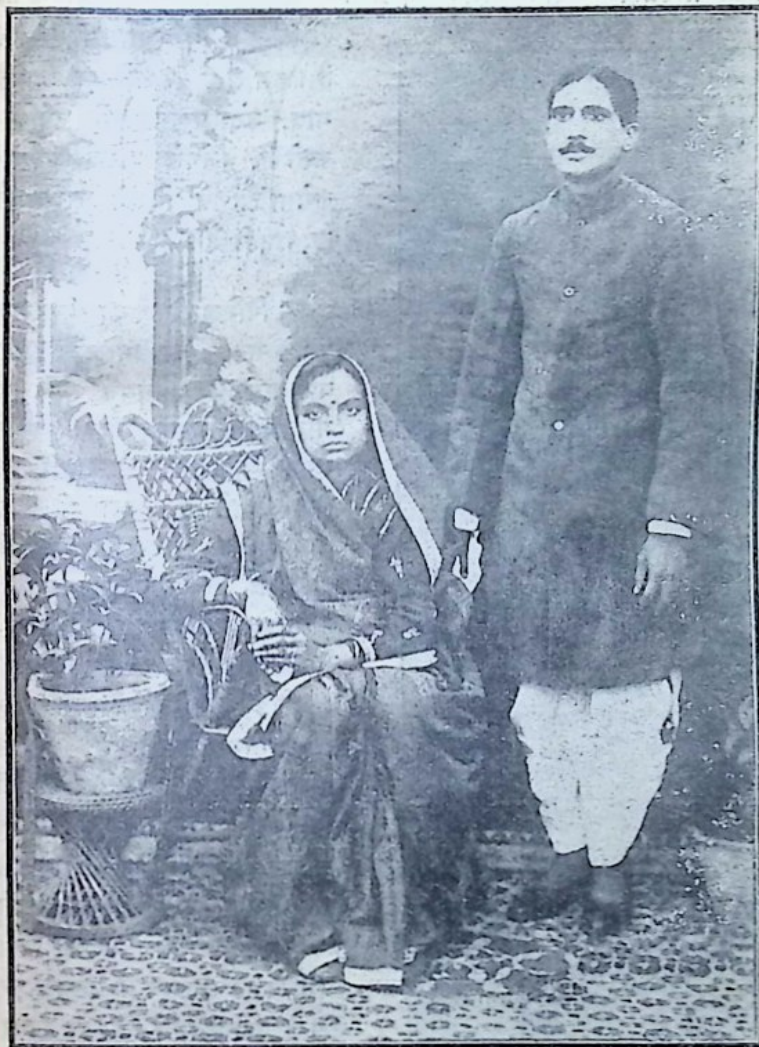
श्री० गुलराज गोपाल जी (सपरिवार)

(परिचय अन्यत्र देखिए)

[† यह कुप्रथा केवल मारवाड़ी-समाज में ही नहीं, “लम्बी नाक” वाले खत्री-समाज में भी बड़ी भयङ्कर रूप से प्रचलित है, खास तौर से पञ्जाबी खत्रियों का ‘स्यापा’ मशहूर है। जो रोने-पीटने का ढङ्ग मारवाड़ी-समाज में बतलाया गया है, लगभग ठीक इसी प्रकार के रोने की प्रथा खत्रियों में भी

प्रचलित है। एक विचित्रता यह है कि खत्रियों में बहुत से क्वायद-परेड भी कराए जाते हैं। "नार्इन" या "भट्टन" एक उँचे स्थान पर खड़ी होकर मरने

करती हैं कि सड़क पर चलते हुए लोग, जो इस पैतरे से अनभिज्ञ होते हैं, यह समझते हैं कि किसी नए मकान की पक्की छत कूटी जा रही है। पूरबी



खत्रानियाँ ऐसे अवसरों पर, कोनों में मुँह डाल कर "बुढ़िया-पुराण" के आदेशों का पालन करती हैं। यदि नजदीकी रिश्ते की स्त्रियों की छातियों से पीटते-पीटते खून न निकल पड़े अथवा कम से कम नील न पड़ जाय तो उसकी चर्चा विरादरी में होने लगती है ! इस क्वायद के अलावा मरने वाले के रिश्ते के हिसाब से ६ मास, एक साल और प्रायः ४ वर्षों तक विधवा-स्त्री को दिनभर उपवास करना पड़ता है, केवल शाम को सूर्य डूबने के बाद एक बार भोजन करने की आज्ञा होती है, जिसे खत्रानियों की भाषा में 'लङ्घन' कहते हैं और इस चार वर्ष के समाज-मृजित उपवास की प्रथा को 'चौवरसी' कहते हैं !! इन सब बातों का सचित्र और विस्तृत वर्णन 'चौद' के "खत्री-अड्ड" में किया जायगा।

—सं० 'चौद']

श्री० बृजलाल जी वियाणी, एम०एल० सी० (सपत्नीक)

[आप अकोला (बरार) के रहने वाले एक पक्के समाज-सुधारक और स्वाधीनचेता युवक हैं। आप अ० भा० माहेश्वरी-सभा और राजस्थानी नवजीवन-मण्डल के मन्त्री हैं।]

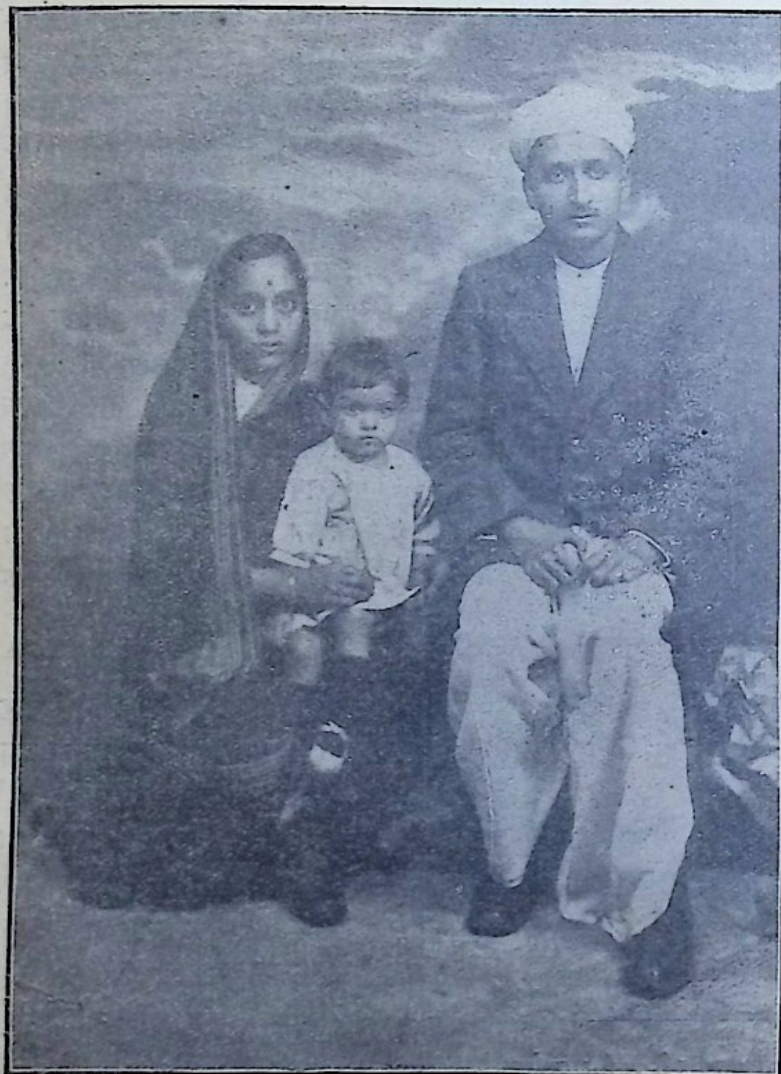
वाले या वाली का गुण-गान करती है और ठीक एक निश्चित अन्तर पर, चारों ओर गोल चक्कर बना कर खड़ी स्त्रियाँ, जो छातियाँ खोल कर खड़ी रहती हैं, छातियों को इतने जोरों से पीटना शुरू

जि स प्रकार संसार के अन्य भागों में मनुष्यों के प्रेम, वीर व हास्य-रस के स्वाभाविक उद्गारों का संग्रह कवियों, भादों, चारणों आदि द्वारा हुआ करता है, उसी प्रकार मारवाड़ी-स्त्रियों के गीतों में पुरानी

मारवाड़ के गीत

सभ्यता का मनोहर चित्र अब तक चला आता है। गाँव की साधारण स्त्रियाँ भी शादी, मेले, जन्मोत्सव आदि मङ्गल-अवसरों पर ऐसे गीत गाती हैं, जिनमें करुणा व मधुरता भरी पड़ी है, और जिनसे स्त्री-जाति को पातिव्रत्य-

जायँ उतना अच्छा है। क्योंकि इनमें प्रायः अश्लीलता भरी रहती है। परन्तु यह विचार नितान्त सत्य नहीं है। मारवाड़ी-भाषा में कितने ही ऐसे गीत प्रचलित हैं, जो यदि पुस्तक-रूप में आ जायँ तो हिन्दी-साहित्य के एक रोचक-अङ्ग की पूर्ति हो सकती है। हम यहाँ पर दो-एक ग्रामीण गीत, उदाहरण-रूप में उपस्थित करते हैं, जिनसे पाठकों को पता लगेगा कि वे कितने सरस और हृदयग्राही हैं।



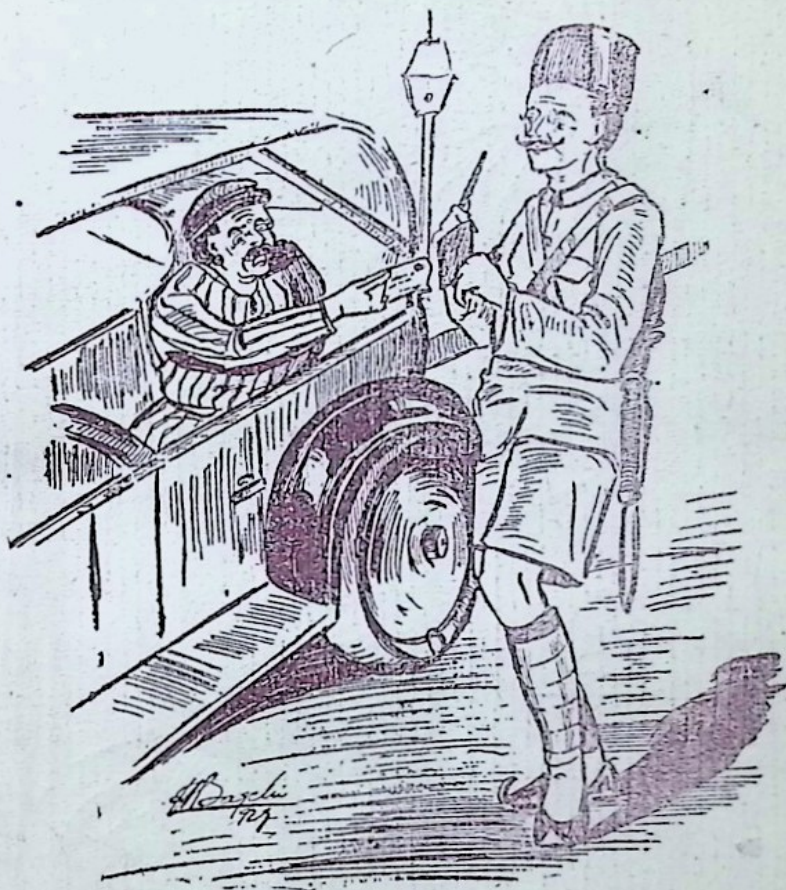
श्री० मदनमोहन जी शारदा (सपरिवार)

[यह एक दृढ़-सुधारक परिवार है, जो धूमधाम और ख्याति से दूर रह कर चुपचाप आत्म-सुधार में लीन है।]

धर्म, वियोगिनी के कर्त्तव्य आदि की शिक्षा मिलती है। आजकल लोगों का प्रायः यह विचार है कि ग्रामीण-गीत किसी काम के नहीं और वे जितनी जल्दी नष्ट हो

दशा में स्त्री के लिए शृङ्गार करना निषेध है। इस पर पति ने नायिका को अपने साथ चलने को कहा। परन्तु पति-व्रता उत्तर देती है कि ऐसी ज़बान निकालने वाले को

“पिण्हारी” का गीत राज-पूताने भर में खूब प्रसिद्ध है; और वर्षा-ऋतु के आगमन होते ही मारवाड़ी-ललनाएँ मधुर स्वर से उमङ्ग के साथ उसे गाती हुई सुनाई देती हैं। इस गीत का भावार्थ बड़ा सुन्दर है। एक स्त्री का पति परदेश गया हुआ है। सावन का महीना आ पहुँचा है। नदी, तालाब सब भर चुके हैं। उसकी अन्य सहेलियाँ सारे शृङ्गार कर छमाछम करती हुई, शिर पर गागर रक्खे हुए, रिमरिम में पानी लेने जा रही हैं। परन्तु नायिका वियोगिनी की भाँति बिना टीकी, काजल लगाए पानी भरने उनके साथ जाती है। सौभाग्य से तालाब के पनघट पर उसका प्रवासी-पति ऊँट पर सवार पहुँच जाता है। परन्तु बहुत दिन बीत जाने से नायिका अपने पति को नहीं पहचान सकी। पति ने अपनी स्त्री से उदासीनता का कारण पूछा। उसने बतलाया कि मेरे पति परदेश में हैं और ऐसी



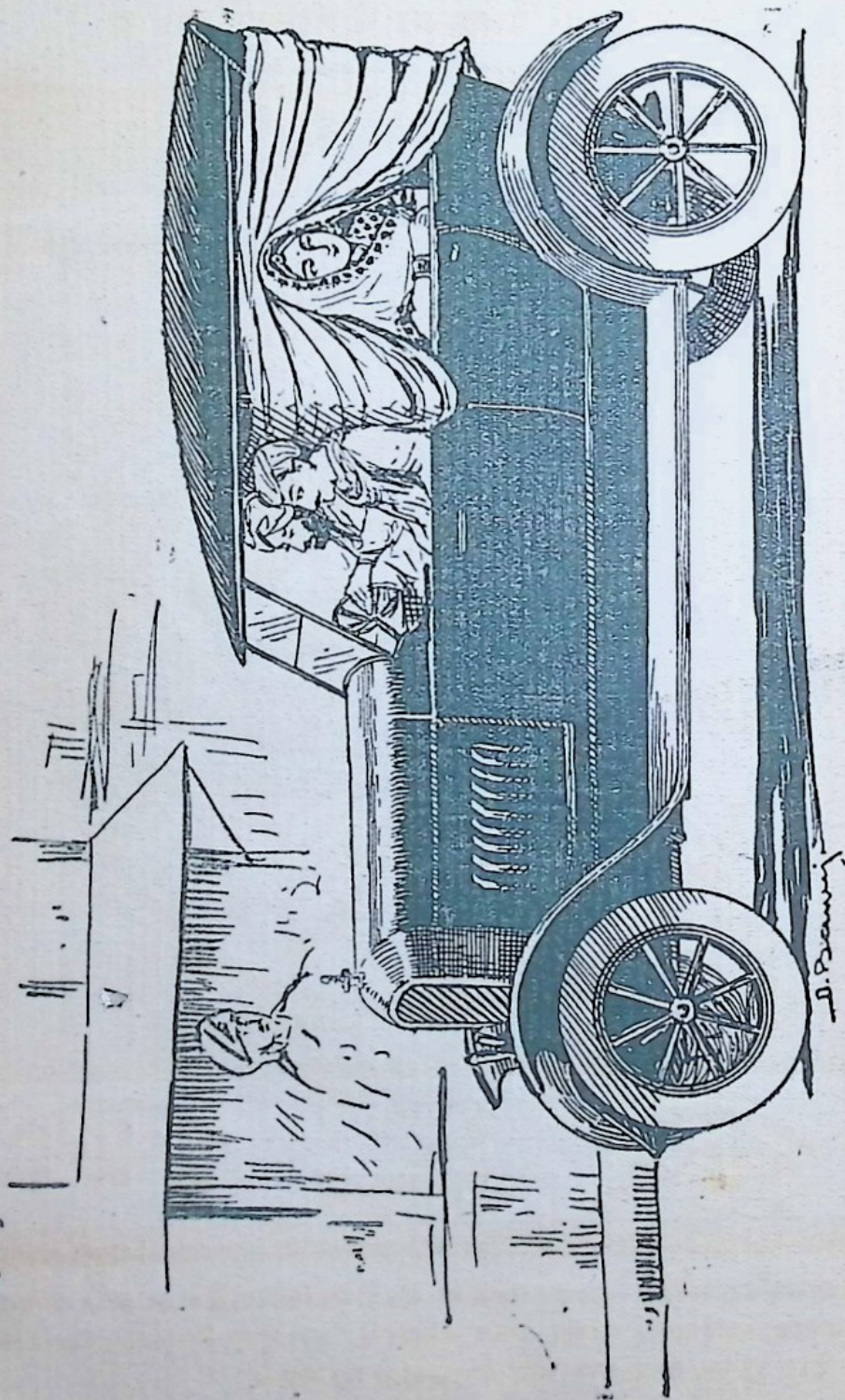
चालान

सिपाही—नाम बताओ नाम, बत्ती क्यों नहीं जलाई.....

सेठ जी—ज ज''जमा''दार जी! माफ़ करो (पाँच रुपय का नोट निकाल कर) पान-तमाखू के लिए.....

सिपाही—तुम्हारी खातिर अभी छोड़ते हैं। सज्जनदार—फिर.....

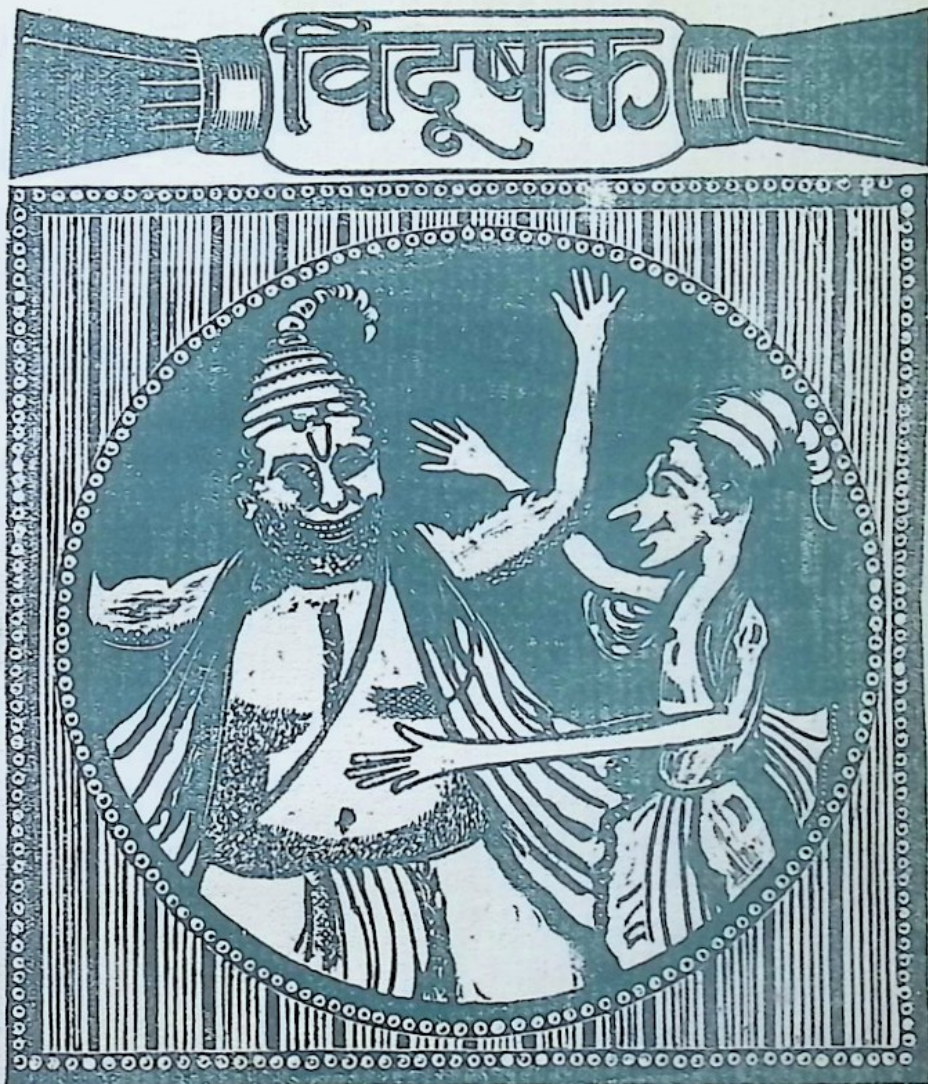
बौद्ध



आजकल के पर्दे का स्वरूप
पर्दे के भीतर से भी तो, दिल सकता है सब संसार !
कभी-कभी बस वह खुलता है, हो जाता है बरखाधार !!

नाम ही से पुस्तक का विषय इतना स्पष्ट है कि इसकी खर्चा करना व्यर्थ है। एक-एक चुटकुला पढ़िए और हँस-हँस कर दोहरा हो जाइए, इस बात की गारण्टी है। एक विशेषता इस पुस्तक में यह है कि सारे चुटकुले विनोदपूर्ण और खुने हुए हैं। कोई भी चुटकुला पढ़ कर अगर दाँत बाहर न निकल पड़ें तो मूल्य वापस। बच्चे-जवान, बड़े-बूढ़े—

[लेखक—श्री० कैलाशचन्द्र जी मटनागर, एम० ए०]



चौद

प्रकाशक
कार्यलय

प्रयाग

सभी समान आनन्द उठा सकते हैं—यह इस पुस्तक की एक विशेष विशेषता है। पृष्ठ-संख्या लगभग १२५, कागज़ ४० पाउण्ड एश्टिक, छपाई-सफ़ाई दर्शनीय, पुस्तक सजिन्द है, ऊपर सुन्दर Protecting Cover चढ़ा है, फिर भी मूल्य क्या ? केवल १) ६०; स्थायी तथा 'चौद' के आहकों से !!! मात्र !!!



प्लेटफॉर्म का दृश्य

पर्दा न करने पर !

पर्दा करने पर !!

साँप क्यों नहीं डस जाय । वह घर आकर अपनी सास को सारा वृत्तान्त सुनाती है । सब सास ने कहा कि जिस आकृति के पुरुष का तुम वर्णन करती हो वही तुम्हारे सौभाग्य का सूर्य और भाल का तिलक प्रिय-पति है । अब असली गीत का आनन्द लूटिए :—

पिण्हारी (राग मल्हार)

थाज भूराज धँधलौ हे, पिण्हारी हे लो ।
मोटोड़ी छुँटारो बरसे मेंह, बालाजी हो ॥ १ ॥
किण्णी खुदाया नाडा नाडियाँ हे, पिण्हारी हे लो ।
किण्णी खुदाया हे तलाब, बालाजी हो ॥ २ ॥
सासूजी खुदाया नाडा नाडियाँ, पिण्हारी हे लो ।
सुसरोजी खुदाया हे तलाब, बालाजी ओ ॥ ३ ॥
सात सहेलयाँ रे भूल रे, पिण्हारीजी हे लो ।
पाणिडे ने गई रे तलाब, बालाजी ओ ॥ ४ ॥
घड़ो न डूबै बेवड़ो, पिण्हारी हे लो ।
हँडाणी तिर-तिर जाय, बालाजी ओ ॥ ५ ॥
ओराँ रे तो काजल टीकियाँ, पिण्हारी हे लो ।
थारोड़ा है फीक नैण, बालाजी ओ ॥ ६ ॥
ओराँ रा पीवजी घर बसै, लज्जा ओठि हे लो ।
म्हारोड़ा बसै पद्देश, बालाजी ओ ॥ ७ ॥
घड़ो तो पटक दैनी ताल में, पिण्हारी हे लो ।
चालै नी ओठीड़े री लार, बालाजी ओ ॥ ८ ॥
बालूँ ने जालूँ थारी जीभड़ी, लज्जा ओठी रे लो ।
डस जा थने कालो नाग, बालाजी ओ ॥ ९ ॥
एक ओठी म्हाने इसो मिल्यो, म्हारा सासूजी ओ ।
पूँछी म्हारे मनड़ेरी बात, बालाजी ओ ॥ १० ॥
देवर जी सरीसो डीगो पातलो, म्हारा सासूजी ओ ।
नणदल बाइरो आवे उणियार, म्हारा बालाजी ओ ॥ ११ ॥
ये तो म्हारा बहूजी भोला घण भोला बहूजी ए लो ।
वे तो है थारा ही भरतार म्हारा, बालाजी ओ ॥ १२ ॥

एक और नमूना लीजिए । इसको मारवाड़ी में 'जलो' कहते हैं । इसमें भी पतिव्रता का सुन्दर चित्र खींचा गया है । नायिका का पति उदयपुर नौकरी पर गया हुआ है । उसकी अनुपस्थिति में तेलिन तेल लाती है, शृङ्गार के लिए मालिन फूल लाती है और तमोलिन पान लाती है । परन्तु ये सब वस्तुएँ उसके मन को आकर्षित नहीं कर सकती । पति के बिना संसार उसे सूना दिखाई

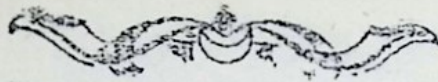
देता है । उदासीन, वियोग-व्यथित और पति-दर्शन को आतुर नायिका इस प्रकार कहती है :—

जलो

जलो म्हारी जोड़ रो उदियापुर माले रे ।
वीरो भोली नणद रो म्हारो हुक्म न उठावे रे ॥ टेक ॥
म्हें थने जलोजी बरजियो तूँ उदियापुर मत जाय ।
उदियापुर री काँमणी छैला राखैला बिलमाय ।
जलो म्हारी जोड़ रो फौजाँ रो माँझी रे ।
वीरो म्हारी नणद रो म्हारो कहयो न माने रे ॥ १ ॥
साँझ समै दिन आँथवे रे छैला तेलण लावे तेल ।
कहिं ऐ करूँ थारे तेल ने हे तेलण कहि हे करूँ थारे तेल ने ।
हे म्हारे आलीजे बिना किसो खेल ।
छैलो म्हारी जोड़ रो उदियापुर माले रे ॥ २ ॥
साँझ पड़े दिन आँथवे रे, जलो ! खातण लावे खाट ।
कहिं हे करूँ हे थारी खाट ने म्हारे मारुदे बिना किसो ठाट ।
छैलो म्हारी जोड़ रो म्हारे घर नहीं आयो रे ॥ ३ ॥
साँझ पड़े दिन आँथवे रे छैला मालण लावे फूल ।
कहिं हे करूँ हे मालण ! फूल ने हे । म्हाने आलीजे बिना लागे शूल ।

जलो म्हारी जोड़ रो उदियापुर माले रे ॥ ४ ॥
साँझ पड़े दिन आँथवे रे जला तम्बोलण लावे पान ।
कहिं हे करूँ थारा पान ने हे म्हारे आलीजे बिना किसी आन ।
जलो म्हारी जोड़ रो उदियापुर माले रे ॥ ५ ॥
मस्त महीनो आवियो रे जलो अब तो खबर म्हारी लेइ ।
तो बिन घड़ियन आवड़े रे छैला जीव उठे इत देह ।
जलो म्हारी जोड़ रो सेजाँ रो सवादी रे ॥ ६ ॥

एक और आनगी लीजिए ! यह गीत भी वर्षा-ऋतु में मेघ-मलार के स्वरों में गाया जाता है । वियोगिनी नायिका अपने पति के प्रति सम्बोधन करके अपनी दशा का वर्णन करती है कि तुम तो दूर देश नौकरी पर चले गए, इधर सुन्दर सावन का समय आया है । अंधेरी रात में मेरा जी डरता है । मुझे आपके दर्शनों की उत्कट इच्छा है । चाहती हूँ कि आप ऐसी नौकरी करें कि दिन भर काम करके शाम को घर चले आवें । इसलिए हे मृगनयनी के डोला ! हे प्रिये ! अब जल्द आ जावो ; क्योंकि ऐसा सुहावना समय बार-बार नहीं आता ।



निहाल दे ढोला का गीत

सावण तो लागो पिया, भादवो जी काँहि बरसण लागो ।
 बरसण लागो जी मेह, हो जी ढोला मेह ।
 अब घर आय जा गोरी रा रे बालमा हो जी ॥ टेक ॥
 छपर पुराँणा पिया पड़ गया रे कोई तिदकण लाग ।
 तिदकण लाग बोदा बाँस, हो जी ढोला बाँस ।
 अब घर आय जा बरसा रुत भली हो जी ॥ १ ॥
 बादल में चमकें पिया, बीजली रे कोई मेलों में डरपै ।
 मेलों में डरपै घर री नार, हो जी छोटी नार ।
 अब घर आय जा, फूल गुलाब रा हो जी ॥ २ ॥
 गोरी तो भीजे ढोला गोखड़े जी ।
 आलीजो भीजे जी फौजाँ माँय ।
 अब घर आय जा आसा थारी लग रही हो जी ॥ ३ ॥
 एक तो अँधियारी ढोला ओरड़ी रे पिया ।
 दूजी हो अँधियारी रात ।
 अब घर आय जा बरसालू बादला ओ जी ॥ ४ ॥
 कूवो तौ व्है तो पीया ढाक लूँ जी ढोला ।
 समदर ढाकियो, समदर ढाक्यो न जाय, हाँ जी ढोला न जाय ।
 अब घर आय जा फूल गुलाब रा हो जी ॥ ५ ॥
 कागद तो व्है तो ढोला बाँच लूँ जी ।
 करम न बाँच्यो, करम न बाँच्यो जाय ।
 अब घर आय जा आसा थारी लग रही हो जी ॥ ६ ॥
 दावर तो व्है तो पीया राख लूँ जी ढोला ।
 जोवन राख्यो, जोवन राख्यो न जाय ।
 अब सुध लीजो गोरी रा सायबा हो जी ॥ ७ ॥
 नेड़ी-नेड़ी करो पीया चाकरी जी छैजा ।
 साँझ पढ्याँ घर, साँझ पढ्याँ घर आव, हो जी ढोला आव ।
 अब घर आय जा बरसा रुत भली हो जी ॥ ८ ॥
 थाने तो प्यारी लागे चाकरी जी ढोला, म्हाने तो प्यारा लागो ।
 म्हाने तो प्यारा लागो आप, हो जी ढोला आप ।
 अब घर आव मृगा-नेयी रा बालमा हो जी ॥ ९ ॥
 अलीने टका री ढोला चाकरी रे कोई लाख मोहर री नार ।
 लाख मोहर री भोली नार, हो जी ढोला ।
 अब घर आय जा गोरी रा रे बालमा हो जी ॥ १० ॥
 दोरी तौ दिखण री ढोला चाकरी रे ।
 दोरो है नरमदा रो, दोरो है नरमदा रो घाट ।
 अब घर आय जा गोरी रा सायबा हो जी ॥ ११ ॥
 घोड़ो तो भीजे पिया नवलखो रे कोई भीजे रे चनाती ।

भीजे रे चनाती रे साज, हो जी ढोला साज ।
 अब घर आय जा गोरी रा बालमा हो जी ॥ १२ ॥
 अन्न में नहीं मावे काँचली जी, ढोला हिवड़े नहीं मावे ।
 हिवड़े नहीं मावे हार, हो जी ढोला ।
 अब घर आय जा गोरी रा बालमा ओ जी ॥ १३ ॥
 आवण-जावण कह गयो रे ढोला, कर गयो कवल अनेक ।
 कर गयो कवल अनेक ।
 अब घर आय जा बरसा रुत भली हो जी ॥ १४ ॥
 दिनड़ा तो गिण-गिण ढोला, घिस गई मारी आँगलियाँ ।
 काहीं आँगलियाँ री रेख, हो जी ढोला ।
 अब घर आय जा फूल गुलाब रा हो जी ॥ १५ ॥
 तारा तो छार्ई रातड़ी जी ढोला फूजड़ा छार्ई ।
 फूलड़ा छार्ई सेज, हो जी ढोला सेज ।
 अब घर आवो गोरी रा बालमा हो जी ॥ १६ ॥
 बिरछा बिलूँवी बेलड़ी पिया ।
 नराँ बिलूँवी नार हो जी ढोला ।
 अब घर आय जा गोरी रा बालमा हो जी ॥ १७ ॥
 हूँ तो मरूँ छँ पिया एकली जी, मरूँ कटारी खाय ।
 हाँ मरूँ कटारी खाय ।
 अब घर आय जा बालमा हो जी ॥ १८ ॥
 नरवर गढ़ पर पड़जो ढोला बीजली रे ।
 राव जी ने खाइजो, राव जी ने खाइजो कालो नाग ।
 अब घर आय जा, धण रा बालमा हो जी ॥ १९ ॥

इससे मिलता-जुलता एक गीत और है । ज़रा उसे भी सुनिए :-

व्याय चल्या छा भँवरजी ! पीपीली जी ।
 हाँ जी ढोला ! हो गई घेर घुमेर ।
 ब्रैठाँ री रुत चाल्या चाकरी जी ।
 ओ जी म्हारी सास सपूती रा पूत ।
 मत ना सिधारो पूरव री चाकरी जी ॥ १ ॥
 व्याय चल्या छा भँवरजी ! गोरड़ीजी !
 हाँ जी ढोला ! हो गई जोध जुवान ।
 विलसण की रुत चाल्या चाकरी जी ।
 ओ जी म्हारा लाल नखद रा वो वीर ।
 मत ना सिधारो पूरव री चाकरी जी ॥ २ ॥
 कुँण थायाँ घुड़ला भँवरजी ! कस दिया जी ।
 हाँ जी ढोला ! कुँण थाने कस दिया जीण ।
 कुणया जी रा हुकमा चाल्या चाकरी जी ।

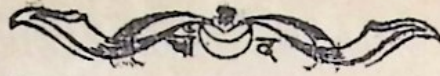
धो जी म्हारे हीवड़े रा जीवड़ा !
 मत ना सिधारो पूव री चाकरी जी ॥ ३ ॥
 बड़े बीरे छुड़ला गोरी ! कस दिया जी ।
 हाँ ए गोरी ! साथीड़ा कस दिया जीण ।
 बापाजी रा हुकसा चाल्या चाकरी जी ॥ ४ ॥
 रोक रूपैयो भँवरजी मैं बखूँ जी ।
 हाँ जी ढोला ! बण ज्यार्ज पीली-पीली म्होर ।
 भीड़ पड़े जद भँवरजी ! बरत ल्यो जी ।
 ओ जी म्हारी सेजौं रा सिखगार !
 पियाजी ! प्यारी ने सागे ले चल्यो जी ॥ ५ ॥
 कदे न ल्याया भँवरजी ! सीरखो जी ।
 हाँ जी ढोला ! कदे न करी मनुवार ।
 कदे न पूछी मनड़े री वारता जी ।
 ओ जी म्हारा लाल नणद रा वो बीर !
 थाँ बिन गोरी ने पलक न आवड़े जी ॥ ६ ॥
 कदे न ल्याया भँवरजी ! सूतली जी ।
 हाँ जी ढोला ! कदे बी बुणी नहाँ खाट ।
 कदेय न सूत्या रत्नमिल सेज में जी ।
 ओ जी पियाजी ! अब घर आओ ।
 थारी प्यारी उडीकेर महल में जी ॥ ७ ॥
 थारे बाबा जी ने चाए भँवरजी ! धन घणो जी ।
 हाँ जी ढोला ! कपड़े री लोभण थारी माय ।
 सेजौं री लोभण उडीके गोरदी जी ।
 थारी गोरी उड़ावे काग ।
 अब घर आओ जी कधाई थारी नोकरी जी ॥ ८ ॥
 अब के तो ल्यावाँ गोरी ! सीरखी ए ।
 हाँ ए गोरी ! अब करस्याँ मनुवार ।
 घर आय पूछौं मनड़े री वारता जी ॥ ९ ॥
 अब के ल्यावाँ गोरी सूतली जी ।
 हाँ ए गोरी ! आय बुणाँगा खाट ।
 पछे सोस्याँ रत्नमिल थारी सेज में जी ॥ १० ॥
 चरखो तो ले ल्येँ भँवरजी ! रँगलो जी ।
 हाँ जी ढोला ! पीड़ो ३ लाल गुलाल ।
 तक्रयो तो ले ल्येँ जी भँवरजी ! बीजलमार को जी ।
 ओजी म्हारी जोड़ी रा भरतार ।
 पूणी मैंगल्युँ जी क बीकानेर की जी ॥ ११ ॥

म्होर-म्होर की कातूँ भँवरजी ! कूकड़ी जी,
 हाँ जी ढोला ! रोक रूपए रो तार ।
 मैं कातूँ थे बैठा थिणज ल्यो जी ।
 ओ जी म्हारा लाल नणद रा वो बीर !
 जल्दी घर आओ प्यारी ने पलक न आवड़े जी ॥ १२ ॥
 गोरी री कुमाई खासी राँडिया रे !
 हाँ ए गोरी ! के गाँधी के मखियार ।
 म्हें छा वेटा साहूकार का जी ।
 ए जी म्हारी घणी ए पियारी नार !
 गोरी री कुमाई से पूरा ना पड़े जी ॥ १३ ॥
 साँवण खेती भँवरजी ! थे करी जे ।
 हाँ जी ढोला ! भादुड़े करयो जी नीनाय ।
 सीटाँ री रत छाया भँवरजी ! परदेश में जी ।
 ओ जी म्हारा घणाँ कमाऊँ उमराव ।
 थारी पियारी ने पलक न आवड़े जी ॥ १४ ॥
 ऊजड़ खेड़ा भँवरजी फेर बसे जी ।
 हाँ जी ढोला ! निरधन के धन होय ।
 जोवन गए पछे कना बावड़े जी ।
 ओ जी थाने लिखूँ बारम्बार ।
 जल्दी घर आओ जी क थारी धण एकली जी ॥ १५ ॥
 जोवन सदा न भँवरजी ! थिर रहे जी ।
 हाँ जी ढोला ! फिरती-थिरती छाँय ।
 पुल का तो बाया जीक मोती नीपजै जी !
 ओ जी थारी प्यारी जी जोवे बाट ।
 जल्दी पधारो देश में जी ॥ १६ ॥

—जगदीशसिंह गहलोत

राजपूताने की कविता और उसका चमत्कार

राजपूताने की बीर वसुन्धरा से जैसे बीर-रत्न उत्पन्न होते रहे हैं, वैसे ही यहाँ की कविता भी वीरत्व की जननी है, जिससे बीर राजपूतों और राजपूतनियों के रुधिर में शूर-वीरता का सञ्चार होने लगता है। अब तो राजपूतों में अगली-सी वीरता नहीं रही है, परन्तु जब थी तो एक छोटा सा दोहा, जो उन्हीं की सीधी-सादी भाषा



में होता था, बिजली के प्रभाव का सा काम कर जाता था। राजपूताने के कवि ठेठ से वीर-रस की ही कविता करते रहे हैं, शृङ्गार-रस उनकी कविता में बहुत कम है और जो कुछ है भी, तो वह अन्य कविताओं के कैंडे का नहीं है, जिससे सदाचारी नर-नारियों के भी चरित्र बिगड़ जाने का भय रहता है।

एक बालक ठाकुर को ब्रजभाषा की कविता पढ़ाई जाती थी और काशी जी के एक कवि खूब अठला-अठला कर उसका अर्थ करते थे। एक दिन ठाकुर की माँ ने सुना कि उसका लड़का यह आधा दोहा पढ़ रहा है :—

मृगनयनी के बयन तै मयन अयन मन होय ।

कवि जी इस दोहे का अर्थ बड़े मज़े से कर रहे थे, यह उसको इतना बुरा लगा कि किसी लौंडी-बाँदी के द्वारा न कहला कर आप ही भीतर से कह उठी कि पण्डित जी, मेरे बेटे को यह क्या पढ़ाते हो, जो मैं कहीं वैसे दोहे पढ़ाओ और उनका अर्थ समझाओ। उसने यह दोहा पढ़ा :—

सोढे^१ ऊमर कोटरो, यौं बाही अब यट्ट^२ ।
जाने बेहू भाइए, आथ^३ करी बे बट्ट^४ ॥

पण्डित जी सुन कर हैरान रह गए। ठाकुरानी की बात और इस दोहे का अर्थ कुछ नहीं समझ सके। तब एक देशी कवि ने उनको समझाया कि माँ जी की यह मन्शा है कि ठाकुर साहब को वीर-रस की कविता पढ़ाओ, जैसा कि यह दोहा है। इसका यह अर्थ है—“ऊमर कोट के सोढा ने ऐसी तलवार चलाई कि जिससे बैरी के दो-दो टुकड़े ऐसे समतुल्य हो गए, जैसे दो भाई पैतृक धन को तोल कर बराबर दो भागों में बाँट लेते हैं।” इस दृष्टान्त से यह सिद्ध होता है कि अगली वीर माताएँ अपनी सन्तान को वीर बनाने में कैसी तत्पर रहती थीं और उनको किस प्रकार की कविता सिखाती और पढ़ाती थीं। अब कुछ अन्य दृष्टान्त इस वीर-कविता के लिखे जाते हैं।

×

×

×

मारवाड़ के राव मालदेव की भटियाणी रानी ऊमादे जी, जो रुठी रानी के नाम से विख्यात हैं, विवाह की रात ही को राव जी की एक अलुचित बात देख कर रजपूती

की गौरत से रूठ गई थीं और पति से जीवन-पर्यन्त रूठी रहें, मुँह से भी नहीं बोलें। परन्तु जब सुना कि पति का मरण हो गया है तो ५० कोस दूर बैठी ही पति की पगड़ी को गोद में लेकर सती हो गईं। उस समय उन्होंने कहा था कि अब मैं किससे रूठूंगी। जिसने अब तक मेरा मान अखण्ड रखा, रूप और यौवन के अत्यन्त लोभी अपने जीव को दबा-दबा कर मुझे पूरी और सच्ची मानिनी बनाया, जब वही संसार में नहीं रहा तो मैं अकेली रह कर क्या करूँगी? इस लोक में तो मेरा मान निभ गया, अब उस लोक में जाकर उससे मान नहीं करूँगी। संसार का सुख तो क्षणभङ्गुर था, उसका लाभ तो मैंने नहीं लिया, पर अब सती-लोक के लाभ से विमुख नहीं रहूँगी।

ऐसी परम मानिनी को ईसरदास नामक एक वाक्-चतुर चारण ने एक बार मान छोड़ने और पति से मेव कर लेने पर राज़ी कर लिया था और वह उसकी बातों में आकर अजमेर से जोधपुर को आती थीं। जिस दिन उनकी सवारी जोधपुर में पहुँचने वाली थी, आसा जी बारहठ ने उनकी सौतों से, जो स्वार्थ के वश उनका और राव जी का मेल होना नहीं चाहती थीं, सूक (रिशवत) लेकर चलती सवारी में मुजरा मालूम करा कर यह दोहा पढ़ा :—

मान रखे तो पीव तज, पीव रखे तज मान ।

दोय गयन्दन बन्धिए, एकण खम्भूठाण^१ ॥

अर्थात्—“जो मान रखना है तो पति को तज दे और जो पति को रखना है तो मान छोड़ दे। क्योंकि एक ही गजशाला में दो हाथी नहीं बँध सकते हैं।”

रूठी रानी ने इस दोहे के सुनते ही सवारी छोड़ा ली और गाँव कोसाने में जाकर रह गई, और आसाजी को बहुत सा इनाम देकर कहा कि तुमने खूब किया, जो अपने भतीजे ईसरदास के जाल से मुझे छुड़ा दिया। मैं कभी अपना मान नहीं छोड़ूँगी, जिसको बचपन से मैंने पाला है और साँप के मणि के समान अपने सिर पर रख छोड़ा है।

फिर ईसरदास ने बहुत सिर मारा और जोधपुर चलने के वास्ते जाख हा-हा खाए, पाँव पड़े, पगड़ी

१ एक जाति के राजपूत; २ तलवार; ३ धन; ४ दो भाग ।

१ गजशाला या हाथी का धान ।



बड़ी व्यवस्थापिका सभा के प्रभावशाली सदस्य तथा बाल-विवाह-विल
(अत्र कानून) के विधायक और मारवाड़ी-समाज के कट्टर सुधारक
रायसाहब हरविलास जी शारदा



केवल विवाहित स्त्री-पुरुष ही इस पुस्तक को मँगावें

सन्तानशास्त्र

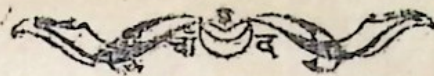
[ले० विद्यावाचस्पति पं० गणेशदत्त जी गौड़, 'इन्द्र']

भूमिका-लेखक—

श्री० चतुरसेन जी शास्त्री

जो माता-पिता मनचाही सन्तान उत्पन्न करना चाहते हैं, उनके लिए हिन्दी में इससे अच्छी पुस्तक न मिलेगी। काम-विज्ञान जैसे गहन विषय पर यह हिन्दी में पहली पुस्तक है, जो इतनी कठिन छान-बीन करने के बाद लिखी गई है। सन्तान-वृद्धि-निग्रह का भी सविस्तार विवेचन इस पुस्तक में किया गया है। बालपन से लेकर युवावस्था तक, अर्थात् ब्रह्मचर्य से लेकर काम-विज्ञान की उच्च से उच्च शिक्षा दी गई है। प्रत्येक गुप्त बात पर भरपूर प्रकाश डाला गया है, प्रत्येक प्रकार के गुप्त रोग का भी सविस्तार विवेचन किया गया है। रोग और उसके निदान के अलावा, प्रत्येक रोग की सैकड़ों परीक्षित दवाइयों के नुस्खे भी दिए गए हैं। पुस्तक सचित्र है—५ तिरफे और २५ सादे चित्र आर्ट पेपर पर दिए गए हैं। छपाई-सफाई की प्रशंसा करना व्यर्थ है। पुस्तक समस्त कपड़े की जिल्द से मण्डित है, ऊपर एक तिरफे चित्र सहित Protecting Cover भी दिया गया है। इतना होते हुए भी प्रचार की दृष्टि से मूल्य केवल ४) ६० रक्खा गया है। 'चाँद' तथा स्थायी ग्राहकों से ३); माँगें अधिक होने के कारण रात-दिन लग कर ५ महीने हुए, नया परिवर्धित और संशोधित संस्करण प्रकाशित हुआ था, वह भी समाप्त हो गया अब तीसरा परिवर्धित संस्करण प्रेस में है। शीघ्र ही मँगा लीजिए, नहीं तो पछताना पड़ेगा। पुस्तक के अब तक तीन संस्करण हो चुके हैं !!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय
इलाहाबाद



रखी, परन्तु वह मानिनी न मानी सो न मानी !
क्योंकि आसाजी ने उसका मनचाहा मन्त्र सुना कर
उसके मानी मन को पहले से भी अधिक अचल कर
दिया था ।

X

X

X

मारवाड़ के राठौड़ राव चन्द्रसेन बड़े मानी राजा थे,
जो मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह के समकालीन थे ।
जोधपुर छूट जाने पर भी जीवन-पर्यन्त अकबर बादशाह
से लड़ते रहे । परन्तु उनके पोते राव कर्मसेन जहाँगीर
बादशाह के अधीन हो गए थे । बादशाह ने अपनी
उदारता से उनको अपने पास रख लिया था और
भिनाय का परगना जागीर में दिया था । एक दिन
बादशाह हाथी पर सवार हुए तो चँवर लेकर उनकी
खवासी में (पीछे) बैठने के लिए कर्मसेन से कहा गया ।
बादशाह के पीछे चँवर करने को बैठने में बड़े-बड़े अमीर
अपना गौरव मानते थे, इसलिए कर्मसेन भी राज़ी होकर
बादशाह के पीछे चँवर करने को बैठ गए । तब एक
चारण ने, इसमें जोधपुर के राजवंश की च्छति समझ कर,
यह दोहा पढ़ा :—

क्रीधा कर करतार किरमर कारण करम सी ।

सह देख संसार चमर हलावस मु चवी ॥

अर्थात्—“हे कर्मसेन ! करतार ने तो दो हाथ तलवार
के बास्ते ही बनाए हैं, तू कैसे चँवर हिलाएगा । यही तो
सब संसार देख रहा है, जो मैं कहता हूँ ।”

कर्मसेन यह सुनते ही चँवर छोड़ कर हाथी से कूद
पड़े और तलवार लेकर घोड़े पर सवार हो गए । तब
समझदार बादशाह ने भी बात बना कर कहा कि कर्मसेन,
तुझे भी तुझसे तलवार का ही काम लेना है । यह मेरी
शाली थी जो तुझे चँवर करने को बैठाया ।

X

X

X

१ मानो वही बात थी जो इस गीत में कही गई है—

“मनावत रैन गई, मानिनी अजहूँ न मानी ।”

२ तलवार; ३ सप; ४ मैं; ५ कहता हूँ ।

६ इस विषय का यह दोहा और भी है :—

कम्मा उग्रसेन रो तो जननी बलिहार ।

चमर न भल्ले साहरा तू भल्ले तरवार ॥

कहते हैं यह दोहा कर्मसेन की माँ ने कब कर भेजा था ।

प्रायः पचास वर्ष पहले की बात है कि मारवाड़ में
एक व्यक्ति मूलजी नाम का केसरी सिंहोत जोधा राठौड़-
वंश का था, जो गाँव मेडकिया का रहने वाला था । वह
बीकानेर के वीदा राठौड़ों के हाथ से मारा गया । इस पर
जोधरा और वीदा राठौड़ों में वैर हो गया और यहाँ तक
बात बढ़ गई कि कई वर्षों तक दोनों में लड़ाई-झगड़ा
होता रहा, जिससे जोधा-वीदा वैर की कहावत चल
निकली । राज्य में भी कई मिसलों बन गईं, परन्तु कुछ
नब्रड़ा न हुआ । जोधा मारवाड़-राज्य की उत्तरी सीमा
पर और वीदा बीकानेर की दक्षिणी सीमा पर रहते हैं और
भाई-भाई होने के सिवा दोनों पड़ोसी भी हैं । परन्तु
मूलजी के वैर से एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए ।
उनकी खून-खराबी और लूट-मार से प्रजा की भी हानि
होती थी, इसलिए गवर्नमेण्ट से जोधपुर और बीकानेर की
रियासतों को उनका झगड़ा मिटाने की ताकीद होती
रहती थी । निदान दोनों रजवाड़ों के हुक्म से लाडण
और लेडी के जोधा ठाकुर भैरोंसिंह और पेमसिंह; और
वीदासर वगैरह ठिकानों के वीदावत सरदार, कोलाद जी
में, जो एक प्रसिद्ध तीर्थ वीकानेर-राज्य का है, इकट्ठे
हुए । मिसलों पड़ी जाने लगीं और आपस में सन्धि और
शान्ति कर लेने का विचार होने लगा । एक चारण ने
यह रत्न-ठण्ण देख कर उच्च स्वर से यह दोहा सुनाया :—

तीखा भाला तोल, वैर सचो जो बाल जो ।

मिसलों माँडे मोल, मूला रो कर जो मती ॥

अर्थात्—“तीखा भाले तोल कर सराहने योग्य वैर
खेना, मिसलों लिख-लिख कर मूलजी का मोल मत कर
देना । अर्थात् रुधिर के बदले द्रव्य मत ले लेना ।”

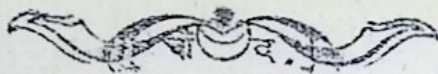
दोनों ओर के पक्ष यही विचार रहे थे । परन्तु इस
दोहे के सुनने से मूलजी के निरपराध मारे जाने की
याद करके भैरोंसिंह और पेमसिंह को ऐसा जोश आया
कि तुरन्त तलवार पर हाथ रख कर उठ खड़े हुए और
वहाँ से चले आए । पञ्चावत अधूरी रह गई और यही
ख़ैर गुज़री कि वीदावतों को जोश न आने से तलवार
वहीं चली, वहीं तो आपस में कट-भरने की तैयारी इस
एक दोहे से हो चुकी थी ।

—मुंशी देवीप्रसाद (स्वर्गीय)

*

*

*



मारवाड़ी-समाज में पर्दा

यों तो इस देश में बहुत सी जातियों में पर्दे की असभ्य प्रथा न्यूनाधिक पाई जाती है। परन्तु हमारे मारवाड़ी-समाज में इसकी जैसी बहुतायत है और दुरुपयोग हो रहा है, वैसा शायद भारतवर्ष के किसी भी कोने में नहीं मिलेगा।

इस पर्दा-प्रथा के अन्दर जितने घृणित और हिन्दनीय कर्म छिपे रहते हैं, उनको यदि विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाय तो एक पोथा तैयार हो जाय। यह प्रथा बिलकुल इसी तरह है, जैसे कोई आदमी भगवा कपड़ों से अपने शरीर को ढक कर साधू के रूप में चाहे जैसे काम चोरी, डकैती, खून और व्यभिचार करता रहे और उन भगवा कपड़ों की ओट में पूजनीय और प्रतिष्ठित भी बना रहे। इसी तरह पर्दे के भीतर स्त्रियाँ जो चाहें, कर सकती हैं, उनकी तरफ कोई उँगली नहीं उठा सकता।

क्योंकि हमारे समाज में जो स्त्री जितना अधिक पर्दा करती है, उतनी ही अधिक सती-सावित्री समझी जाती है। अधिकांश पुरुषों को यह अन्व-विश्वास है कि स्त्री जितनी ज्यादा पर्दे में रहती है, उतनी ही सांसारिक बातों से अनभिज्ञ रहने के कारण किसी पाप-जाल में नहीं फँस सकती। वे इस बात को कभी नहीं सोचते कि इस

पाप-पङ्क में फँसने का मुख्य कारण उनकी सांसारिक बातों से अनभिज्ञता ही है।

इस बात को सभी जानते हैं कि जो स्त्रियाँ घँघट निकाल कर बाहर जाती हैं, उनके पैरों के जेवरों की झनकार स्वतः ही उनकी ओर ध्यान आकर्षित करती है। फिर गुण्डे और बदमाश तो इस ताक में रहते

आगामी अङ्क से

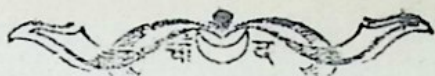
तीन धारावाही लेख प्रारम्भ होंगे

इस बार विशेषाङ्क होने के कारण कई महत्व-पूर्ण लेख प्रकाशित नहीं हो सके। आगामी अङ्क से हास्य-रस के समर्थ लेखक श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल् बी० का सुप्रसिद्ध लेख “लतखोरीलाल” का दूसरा खण्ड प्रारम्भ होगा; श्री० “पागल” महोदय का “दिल जले की आग” तथा प्रोफेसर चतुरसेन शास्त्री का “विधवा” नामक उपन्यास धारावाही रूप से प्रकाशित किया जायगा। इसके अतिरिक्त अन्य भी कई लेख-मालाएँ शुरू की जायँगी। नए होने वाले ग्राहकों को इसी अङ्क से ग्राहकों की श्रेणी में नाम लिखा लेना चाहिए, नहीं तो पछताना होगा। ‘चाँद’ के पुराने अङ्क ५०) रु० व्यय करने पर भी नहीं मिलते, यह सभी जानते हैं। जिन नए ग्राहकों को प्रस्तुत मारवाड़ी-अङ्क कमी के कारण न मिल सके, उन्हें दिसम्बर से ग्राहकों की श्रेणी में नाम लिखा लेना चाहिए। इस वर्ष अन्य कई जातीय विशेषाङ्क प्रकाशित करने की विशाल योजना हो रही है!

ही हैं। वे लोग भरसक इस बात की चेष्टा करते हैं कि किसी तरह घँघट के अन्दर से चन्द्रमुख के दर्शन हो जायँ। वे आवाज़ाकशी तक से बाज़ नहीं आते। लेखक ने स्वयं देखा है कि ५-७ स्त्रियाँ जा रही हैं और दो-चार बदमाश मिल कर स्त्रियों की बगल से निकलते हुए पीछे से कपड़ा खींच लेते हैं और घँघट हट जाता है। वे लोग उनकी बगल से ऐसे अश्लील शब्द कहते हुए निकल जाते हैं कि उनको यहाँ पर लिख सकता भी सम्भव नहीं है!

श्रावण के महीने में जहाँ देखिए वहाँ मुण्ड की मुण्ड औरतें घँघट से अपने मुखों को ढके हुए मन्दिरों की तरफ लपकी हुई चली जा

रही हैं। वहाँ पर इस पर्दे का कैसा सदुपयोग होता है, यह देखने से ही पता लगता है। बदमाशों को बदमाशी करने का अवसर अधिकतर वहीं मिलता है। परन्तु इससे समाज को क्या? उनका घँघट तो कायम है। स्त्रियाँ बेचारी तो बोल ही क्या सकती हैं। वे पलती ही ऐसे वातावरण में हैं, जहाँ ज़रा कुछ बोलना, घँघट उठाना



और दुनिया भर की दूसरी अच्छी बातें पाप समझी जाती हैं।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि सामूली घरों की तो बात ही क्या, बड़े-बड़े घरों तक की स्त्रियाँ, जो पदों की चहारदीवारी में बहुत हिक्काजत से रखी जाती हैं, अपने पुरुषों के दूकानों अथवा नौकरी पर चले जाने पर, चूड़ीगर, विलायती, रँगरेज़ या इसी तरह के अन्य सौदा बेचने वाले सौदागरों को सौदा लेने के लिए घर में बुला लेती हैं और सौदा लेते वक्त पैसे-पैसे के लिए इस कदर छीना-झुंटी करती हैं कि सर पर से साड़ी सरक जाती है। चीज़ को एक तरफ़ सौदागर खींचता है, दूसरी तरफ़ स्त्रियाँ छीनती हैं। पाठक ही सोचें कि जिन औरतों का यह व्यवहार उन सौदागरों से साथ होता है, जो घरों में सौदा बेचने को ज़रा देर के लिए आते हैं, तो दिन भर घर में रहने वाले नौकरों के साथ कैसा व्यवहार होता होगा। लेकिन इसका पता किसको लगे? जब घर के लोग आते हैं, तब तो बाकायदा पर्दा हो जाता है।

हम तो यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि मारवाड़ी पुरुष-समाज कभी भी उन्नति नहीं कर सकता, जब तक कि स्त्रियों की उन्नति की कोशिश नहीं की जाती। और स्त्रियों की उन्नति होना तभी सम्भव है, जब कि यह पर्दा-प्रथा हमारे समाज में से जड़ से खोद कर मिटा दी जावे और इसका नामोनिशान तक न रहे। अभी तक मारवाड़ी-समाज का नियम यही है कि स्त्रियों का पर्दा दूर करने वालों को बड़ा हेय, तुच्छ और घृणित समझते हैं और जाति-बहिष्कृत करने की चेष्टा करते हैं। यद्यपि वे जानते हैं कि वे लोग, जिन्होंने पर्दा-प्रथा को तोड़ दिया है, दुनिया की निगाह में हेय नहीं हैं, और जो लोग इस नाशकारी प्रथा के अनुयायी हैं, तिरस्कार और घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं। स्त्रियाँ मनुष्य-समाज का आधा अङ्ग हैं, और वे पर्दे के कारण निरक्षर और रुढ़ियों की गुलाम रह कर मनुष्य-जीवन को व्यर्थ खो देती हैं। बहुत से मारवाड़ियों का यह विश्वास है कि यदि स्त्रियाँ पर्दा नहीं करेंगी तो वे भ्रष्ट और कुलटा हो जाएंगी। उनको चाहिए कि वे दुनिया भर की सभ्य समाजों पर दृष्टिपात करें। अपने ही देश में गुजरातियों, पारसियों, मद्रासियों और दूसरी कितनी

ही जातियों को देखें, जिनमें पर्दा नहीं होता। क्या उनमें इतना व्यभिचार है? हम तो यही कहेंगे कि नहीं, और कभी नहीं। इस पर शायद यह कहा जा सकता है कि वे स्त्रियाँ शिक्षिता होती हैं। पर क्या हमारे मारवाड़ी-समाज की स्त्रियाँ शिक्षिता नहीं हो सकती? अवश्य हो सकती हैं, लेकिन तभी, जब कि उन्हें पर्दे के बन्धन से मुक्त कर दिया जाय।

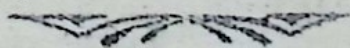
अब इस पर्दे के द्वारा होने वाले शारीरिक पतन की ओर ध्यान दीजिए। आज मारवाड़ी-समाज में संग्रहणी, तपेदिक आदि साङ्घातिक रोगों में ग्रसित स्त्रियों की कमी नहीं है। इन सबका मुख्य कारण पर्दा है। इस सम्बन्ध में कलकत्ते के हेल्थ-अफ़िसर ने लिखा है कि कलकत्ते में १५ से २० वर्ष तक की आयु के जितने व्यक्ति मरते हैं उनमें स्त्रियों की संख्या पुरुषों से छः गुनी होती है। इसका कारण बतलाते हुए वे कहते हैं :—

I am convinced that it is the retention of the Purdah System in the densely populated gullies of a congested city that leads so many young girls to an early death from tuberculosis. In a great city, it is difficult to secure absolute privacy without shutting out light and air, as houses in narrow lanes and gullies are almost certain to be over-looked. Consequently the Zenana is usually situated in the inner portion of the house, ill-lighted and ill-ventilated, but effectually screened from observation.

इसका सारांश यही है कि लड़कियों और नवयुवतियों के इस रोग का शिकार होने का मुख्य कारण पर्दा करना और स्वच्छ हवा तथा रोशनी से वञ्चित रह कर घरों के भीतर बन्द रहना ही है।

प्रत्येक स्त्री और पुरुष के लिए शारीरिक शक्ति प्राप्त करना परम कर्त्तव्य है। परन्तु बेचारी स्त्रियाँ छोटी अवस्था से ही पर्दे में रखी जाती हैं, जहाँ वे कोमल कली की तरह सुरक्षा कर पीली पड़ जाती हैं। आशा है, मारवाड़ी-समाज शीघ्र से शीघ्र इस कुप्रथा की ओर ध्यान देने की कोशिश करेगा।

—रामसरूप भालोटिया





[श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल् बी०]

पकौड़ीमल

अङ्क—१

दृश्य—१

(सेठ पकौड़ीमल के द्वार के सामने)

(केशवबिहारी आता है)

केशव—(सेठ पकौड़ीमल का द्वार खटखटा कर)
अजी सेठ जी !...ओ सेठ जी ! अरे ! भई लाल पकौड़-
मल ! (अलग) बोलते ही नहीं । अब क्या करूँ ?
(प्रकट) अजी लाला जी ! ओ सेठ जी ! (अलग)
धत् तेरे की ! पुकारते-पुकारते गज़ा बैठ गया ! बहुत
दिनों से इनसे भेंट हुई । आज ज़रा योंही मित्रने चला
आया तो द्वार ही नहीं खोलते । अब कौन चिन्ताएँ, मारो
गोली । अच्छा एक दफ़े और पुकार लूँ । (प्रकट) अजी
सेठ जी ! तो क्या मैं चला ही जाऊँ ? आप ही की मतलब
की बात कहने आया था । अच्छा जाता हूँ ।

पकौड़ी—(मकान के भीतर से) नहीं-नहीं, ठहरो-
ठहरो । अभी आया । क्या है ? कौन है ?

केशव—(अलग) ओहो ! अपने मतलब का नाम
सुन कर कितनी जल्दी चाँके ।

पकौड़ी—(हाथ में लोढ़ा लिए मकान से बाहर
निकल कर) कौन है ? बाबू केशवबिहारी ? ओहो ! जै
गोपाल की ! जै गोपाल की । कहिए-कहिए, क्या काम
है ? इस रात्रि के समय कैसे पधारे ?

केशव—तब और किस वक्त आता ? दिन भर तो
आप दूकान पर रहते हैं । वहाँ बात करने की आपको
फुरसत कहाँ ? इस वक्त आऊँ तो तीन घण्टे तक आपके
द्वार पर सर फोड़ने पर भी दरवाज़ा नहीं खुलता ।

पकौड़ी—चमा कीजिए, मैं ज़रा मसाला पीस रहा
था । इसीलिए.....

केशव—मसाला ?

पकौड़ी—हाँ, देखते नहीं हाथ में लोढ़ा अब भी
लिए हूँ । परन्तु वह मतलब वाली बात.....

केशव—क्यों ? आप इतने बड़े लखपती सेठ होकर
क्या एक नौकर भी नहीं रख सकते ? दमड़ी के फेर में
चमड़ी की ऐसी बेक़दरी ? तभी तो आप लोगों की
कोई.....

पकौड़ी—घाह ! ग़ाला है क्यों नहीं ? हाल ही में
रक्खा है ।

केशव—तो क्या उसे सूरत देखने के लिए रक्खा है ?

पकौड़ी—नहीं जी, वह सेठानी जी के पाँव दबा रहा
है । बेचारी यकी-माँदी अभी पीहर से आई है.....



केशव—पाँव दबा रहा है ! सेठानी जी के ? कौन, वह ग्वाला ?

पकौड़ी—हाँ-हाँ वही । इसमें हर्ज ही क्या है ?

केशव—कुछ भी नहीं ।

पकौड़ी—और ग्वाले होते किस दिन के लिए हैं, आप ही बताइए !

केशव—जी हाँ, मैं अब सब समझ गया ।

पकौड़ी—हम लोगों के यहाँ की स्त्रियाँ भाई बड़ी सुकमार होती हैं । उस पर हमारी सेठानी जी तो ऐसी फूल की कली हैं कि जब तक उनके पैर न दबाए जायँ, तब तक उन्हें नींद ही नहीं पड़ती ।

केशव—मगर.....मगर.....

पकौड़ी—क्या ? क्या ? कहिए !

केशव—कुछ नहीं, यही कि पहले तो शायद उनमें यह आदत न थी । क्योंकि और कभी तो आपके यहाँ कोई नौकर न देखने में आया और न सुनने में । बल्कि आप खुद ही कहते थे कि सब काम तो वही कर लेती हैं, बेकार नौकर रख कर तनझाह क्यों दूँ ?

पकौड़ी—अरे ! क्या आपको खबर ही नहीं ? अजी वह सेठानी जी तो लुढ़क गईं । तभी तो इस बार देश जाकर मुझे फिर सगाई करनी पड़ी । पूरे चौबीस हजार देकर यह सोलह बरस की छोरी लाया हूँ । हमारे यहाँ बड़े दाम खर्चने पर फिर कहीं स्त्री का मुख देखना नसीब होता है । परन्तु वह बात.....

केशव—अरे ! आपने फिर शादी की ? और इस अवस्था में ? अब तो मुझसे बिना कहे रहा नहीं जाना । अजी लाला जी, आपके दो-दो जवान लड़के कचौड़ीमल और पचकौड़ीमल हैं ही । उस पर आपके कर्मों पर रोने के लिए शायद एक जवान विधवा लड़की भी है । तब भला आपको शादी करने की ऐसी क्या पड़ी थी ?

पकौड़ी—अजी, लड़के तो ससुरे मेरे लड़कपन में ही पैदा हो गए थे । इसमें मेरा क्या दोष ? अभी मेरी उमर ही क्या है—केवल उड़नचास बरस की है; और उनसे हमें प्रयोजन ? वह अपना अलग कार-बार करते हैं । छोरी भी भक्तिन होकर भक्तराज जी की सेवा करती है और उन्हीं के यहाँ धर्म-कर्म में अपना जीवन सुधार रही है । चलो ठम रॉय से भी जुड़ी मिली । ऐसी वंशा में बिना

सगाई किए यह गृहस्थी का बोझ भला हमारे अकेले उठाए कहीं उठ सकता था ?

केशव—लड़की भक्तराज जी के यहाँ रहती है ?

पकौड़ी—और नहीं तो क्या ? उनकी वह भक्तिन ही जो ठहरी । गोपी बन कर वहाँ उनके साथ रास-लीला करती है । बड़े-बड़े घरों की स्त्रियाँ उस रास-लीला में सम्मिलित होना अहोभाग्य समझती हैं ! और क्या ? क्योंकि भक्तराज जी कहते हैं कि युवा स्त्री के लिए यही एक मुक्ति का मार्ग है । सधवा हो या विधवा, इसका कोई भेद नहीं । तभी तो हमने अपनी छोरी को उनकी शरण में भेज दिया ! किसी तरह उसका परलोक तो बने भाई ! धर्म ही साथ जाता है, कुछ चोला नहीं ।

केशव—सीताराम कहो भाई, सीताराम !

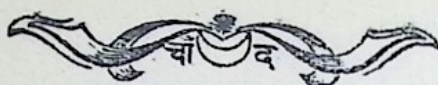
पकौड़ी—सीताराम-सीताराम ! परन्तु हमें तो कृष्ण भगवान् का नाम अधिक प्रिय लगता है । हाँ, वह बात तो कहिए जो कहने आए थे ।

केशव—आखिर यह भक्तराज जी हैं कौन बला ?

पकौड़ी—बला ? वाह जी ! वाह ! आप लोगों को अपने धर्म का भी ज्ञान नहीं ? छिः ! छिः ! तभी तो देश में अब धर्म-कर्म कुछ भी नहीं रहा । यह आप ही लोगों की बदौलत । अजी भक्तराज जी कुछ ऐसे-वैसे हैं ? वह साक्षात् कृष्ण भगवान् के अवतार हैं । उन्हीं के ऐसा मनोहर रूप है । वैसी ही सुन्दर छटा और वैसी ही बाँके-बिहारी हैं । क्यों न हो, आखिर उन्हीं की तो आत्मा उनमें दमकती है । जिस समय वह मुकुट और पीताम्बर पहन कर और सुँह पर रोगनी मल कर गोपियों के सङ्ग रासलीला करते हैं, अहाहा ! उस समय तो मेरा भी यही जी चाहना है कि मैं भी ओढ़नी ओढ़ कर उनके साथ नाचने लग जाऊँ ।

केशव—हाय ! हाय ! तब नाचे क्यों नहीं ? अपनी लड़की के बदले आप ही उनकी भक्तिन बन कर अपना जीवन सुफल करते । वह बेचारी तो इस 'बॉल-डान्स' से दूर रहती ! और तब आपको भी गृहस्थी के चक्कर में पड़ कर यह शादी न करनी पड़ती । नाहक ही तो आपने इन दोनों देवियों के जीवन सत्त्वा.....!

पकौड़ी—परन्तु यह धर्म का द्वार युवा-स्त्रियों ही के लिए है । यही तो मुशकिल है । दूसरे हमारे पास इतना समय कहाँ था ? तब हमारा कारबार कौन देखता ? यह



भी तो सोचिए ! कारवारी गृहस्थों के लिए मुक्ति का मार्ग ही दूसरा है। वहाँ बिना खी के किसी की पैठ हो नहीं सकती। शास्त्र खोल कर देखिए तो। तभी तो हमने वह सगाई की। धर्म-कर्म ही की खातिर भाई। आप लोगों की तरह कुछ अपनी खातिर नहीं।

केशव—धर्म-कर्म की खातिर ?

पकौड़ी—और नहीं तो क्या ? जब सीता जी को त्याग देने के बाद श्रीरामचन्द्र का भी बिना खी के काम न चला और उनको अश्वमेध यज्ञ करने के लिए सोने की खी बनवानी पड़ी, तब हम लोगों के काम बिना सेठानी जी के कैसे चल सकते हैं ? आप ही बताइए ! वह ईश्वर थे, उन्हें मुक्ति की जरूरत न थी, उन्हें जीवन भर में केवल अपने नाम के लिए बस यही एक यज्ञ करना था। और हमें तो नित्य ही पूजा-पाठ करना पड़ता है। क्योंकि यही अवस्था धर्म-कर्म और पूजा-पाठ के लिए है। और संसार में अब भी कहीं धर्म है तो हमी लोगों में। परन्तु हम ऐसे नादान नहीं थे कि लाख दो लाख रुपए सोने की खी बनवाने में फँकते—जब केवल चौबीस हजार में जीती-जागती, चलती-फिरती हीरा सी अनमोल खी मिल सकती है। सस्ता दाम और बोखा माल। अब ईमान से आप ही कहिए, मेरा सौदा अच्छा रहा या उनका ?

केशव—क्या कहना है, आप व्यापार के कीड़े हैं। आपका सौदा न अच्छा होगा तब भला किसका होगा ? आपको भला कौन ठग सकता है ? आप नित्य ही दूसरों को धुँदले होंगे ; क्योंकि आप तो तीन-तीन दिवाला निकाल कर सेठ हुए हैं।

पकौड़ी—पकी कही—सोलहो आने पड़ीं। अजी यह गुन तो हम माँ के पेट ही से सीख कर पैदा हुए हैं। हम भला कहीं ठगे जा सकते हैं ? तभी तो जैसे ही हमारे ममिया ससुर हमारी सगाई की बातचीत के समय उधर से आगुवा बन कर सेठानी जी का भाव करते हुए कहने लगे कि 'केवल दस-दस हजार की तो चाई की एक-एक आँख है' वैसे ही मैंने कहा कि मुझे एक ही आँख चाहिए—एक आँख उसकी आप निकाल ले जाइए। बस उनका पचास हजार का सारा हिसाब गड़बड़ा गया। और तब चट मैंने चौबीस हजार में सौदा पटा लिया और उसमें भी मैंने छ हजार दलाली और कमीशन पल्लंग काट लिए, और क्या ? ससुर जी को ससुर ही

बना कर छोड़ा और पचास हजार का माल अट्ठारह हजार में एँठ लिया। इस तरह पूरे बत्तीस हजार के मुनाफे में रहे कि नहीं—ईमान से बोलिए।

केशव—धन्य हैं आप सेठ जी ! आप लोग साँस भी लेते होंगे तो मुनाफ़ा ही समझ कर। ईश्वर करे आप इन सेठानी जी के द्वारा दोनों हाथों से खूब पुण्य लूटें, और आपकी मुक्ति की भी मनोकामना शीघ्र ही पूर्ण हो।

पकौड़ी—आहा हा हा ! आपके मुँह में घी-शक्कर।

केशव—(अलग) और आपकी अरु पर पत्थर।

पकौड़ी—अरे वह बात तो रह ही गई। आप मेरी ही सुनते जाते हैं और अपनी कुछ नहीं कहते। हाँ-हाँ, कहिए, कहिए, वह शुभ सभाचार तो सुनाइए ! क्या सेठ छजू-मल की सोने-चाँदी वाली दूकान टूट गई या सेठ नाथू-राम वहीं मोटर से दब गए। कुछ बताइए तो, इन लोगों ने ऐसा भाव बिगाड़ रक्खा है कि.....

[ग्वाला का मकान से बाहर निकलना]

ग्वाला—अजी सेठ जी, चार पैसे तो दे दीजिए।

पकौड़ी—चार पैसे—एकदम चार पैसे ? अबे कहता क्या है ?

ग्वाला—वही तो माँगता हूँ।

पकौड़ी—काहे के लिए ?

ग्वाला—सेठानी जी के सर में लगाने के लिए चमेली का तेल चाहिए।

पकौड़ी—तो बाप रे बाप ! चार पैसे का तेल क्या होगा ? क्या उसमें तू उनको डुबोएगा या उससे उनका स्नान कराएगा ? जा एक पैसे का ले आ ! और घाता माँग लेना घाता ! भूलना मत। समझे ?

ग्वाला—पैसा तो दीजिए।

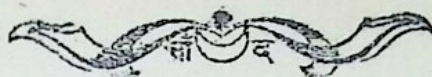
पकौड़ी—पैसा ?

ग्वाला—हाँ।

पकौड़ी—अरे ! जा उधार ले आ।

ग्वाला—उधार ही लेना है तो चार पैसे का लिए आता हूँ।

पकौड़ी—अरे ! नहीं-नहीं। ले लोड़ा पकड़। टेंट से पैसा निकालता हूँ। (ग्वाला ज्योंही लोड़ा पकड़ता है, पकौड़ी वह उसके हाथ से छुट कर गिर पड़ता है और



सेठ जी चिल्ला उठते हैं) हाय ! बाप रे बाप ! लुट गया ! हाय ! हाय ! यह क्या किया तूने पाजी ।

ग्वाला—बस, जवान सँभाल के बोलिए, नहीं बात न बनेगी ।

केशव—क्या हुआ सेठ जी ? क्या पैरों में चोट लग गई ?

पकौड़ी—नहीं जी, लोढ़े में अभी मसाला लगा हुआ था । इसने इसे जमीन पर गिरा कर सब चौपट किया । कम से कम धेले का घाटा कर दिया । हाय ! (सेठ जी लोढ़ा उठा कर मुँह से उसकी गर्द फूकते हैं)

केशव—(अलग) धत् तेरे की ! अठारह हजार फेंकने में दम न निकला और धेले में नानी मर गई । वाह री फ़ज़ूलख़र्ची और वाह री कञ्जूसी । तब क्यों न कोई इन्हें आँख दिखाए ? राम ! राम ! इन्हें ऐसे उल्लू देश और समाज दोनों के मुँह काले करते हैं । राम ! राम !

ग्वाला—अजी सेठ जी, पैसा दीजिए पैसा । हमें देर हो रही है । लोढ़ा बेकार फूकते हैं । उसमें कुछ था नहीं ।

पकौड़ी—था कैसे नहीं ? यह देख सब मिट्टी में मिला गया कि नहीं ?

ग्वाला—अच्छा लाइए पैसा तो दीजिए ।

पकौड़ी—पैसा ? ला कुप्पी मुझे दे । मैं तेल ले आऊँगा ।

ग्वाला—बहुत अच्छा । यह लीजिए ।

[ग्वाला कुप्पी देकर भीतर जाता है]

केशव—यह कौन था सेठ जी ?

पकौड़ी—यही तो मेरा ग्वाला है । परन्तु

केशव—अरे ! यही सखड़ा-मुसखड़ा, चिकना-चुपड़ा, छैल-छड़ीला गबरू जवान ? धत् तुम्हारे की ! मैं समझा कि शायद यह सेठानी जी का कोई भाई-भतीजा है, जो इतना ताव दिखा रहा है ।

पकौड़ी—अजी हम लोग बरोबर मिहनती आदमी छाँट कर रखते हैं । जिसकी देह-दसा अच्छी न होगी, वह भला क्या मिहनत करेगा ?

केशव—जी हाँ, तभी आपको खुद मसाला पीसना और खुद ही तेल लाने बाज़ार दौड़ना पड़ता है ।

पकौड़ी—अजी मसाला पीसना ठहा नहीं, महीन

काय है—सब कोई इसे नहीं कर सकता । उस पर ग्वाले तो आधा माल सिल-बट्टा में लगा ही छोड़ देते हैं । इसी तरह सौदा-सुलुफ़ करना भी हमी लोग जानते हैं । नौकरों के हाथ में पैसा देना, अपने को लुटा देना है । क्योंकि एक पैसा में वह एक धेला अपनी टेंट में रख लेते हैं ।

केशव—जब आप एक पैसा का भी एतवार अपने ग्वाले पर नहीं कर सकते, तो पचास हजार का माल आपने किस बिरते पर उसे सौंप रक्खा है ?

पकौड़ी—पचास हजार का माल कौन ?

केशव—अरे वही आपकी सेठानी जी ।

पकौड़ी—आप सेठानी जी को कहते हैं ? आहा ! आप नहीं जानते, यह उनकी बड़ी प्रिदमत करता है । जान तोड़ कर । यही तो इसमें बड़ी खूबी है । इतनी सेवा उनका सगा बेटा भी नहीं कर सकता, और मैं भी नहीं कर सकता । इसीलिए तो मैं इसे इतना मानता हूँ और इसकी बातों को चुपचाप सह लेता हूँ । बेचारा नित्य सुबह को उन्हें पीहर पहुँचा जाता है और रात्रि में जाकर ले आता है । फिर उनके घण्टों हाथ-पाँव दबाता है और कभी-कभी रात-रात भर तक उनके सिरहाने बैठे पङ्गा झुला करता है । भला ऐसा कौन कर सकेगा ?

केशव—कोई भी नहीं । मगर आपकी सेठानी जी का मैका तो आपके देश में होगा । तब यह सुबह-शाम का आना-जाना कैसे होता होगा भाई ?

पकौड़ी—देश में तो मेरी ससुराल है ही, परन्तु यहाँ भी रिश्ते में मेरे एक ससुर जी निकल पड़े । उन्हीं के यहाँ जाया करती हैं ।

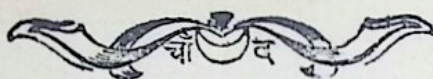
केशव—क्यों ? क्या उनके यहाँ कोई बीमार है या कोई काम-काज ठना है ?

पकौड़ी—नहीं जी ! हमारे यहाँ यही रिवाज है कि दिन भर वह मैके में रहे । ईश्वर भला करे इस रिवाज को, जिसकी बदौलत रात्रि में उनके दर्शन तो हो जाते हैं, नहीं तो वह पीहर छोड़ कर भला यहाँ क्यों आती ?

केशव—ओहो ! यह तो बड़ा अच्छा रिवाज है ।

पकौड़ी—अच्छा तो है ही । इसमें खाने की पूरी बचत होती है । क्योंकि सेठानी जी दोनों बच्चे वहीं खा लेती हैं, केवल रात भर सोने के लिए यहाँ आती हैं ।

केशव—जब सीताराम की ! जैसे किराए पर रात भर



के लिए नौकर के सज़ बीबियाँ बुलाई जाती हैं, क्यों ?
आहाहा !

पकौड़ी—क्या कहा ?

केशव—कुछ नहीं । भगवान् का नाम ले रहा हूँ ।

पकौड़ी—भगवान् का नाम ही लिया कीजिएगा या कुछ कहिएगा भी ! हाँ, वह बात तो फिर रह गई । ऐसा बातों में आपने उलझा लिया कि मैं उसका पूछना ही भूल गया । कहिए कहिए.....!

[एक कॉन्स्टेबल के साथ एक लकड़हारे का लकड़ी का बोझ लिए आना और आते ही बोझ पटक देना ।]

कॉन्स्टेबल—(लकड़हारे की तरफ़ घूम कर) क्यों वे सुअर के बच्चे, अभी घर पहुँचे भी नहीं और तूने बोझ यहीं पटक दिया ?

लकड़हारा—दुःख जाने तोहार कौने मुलुक माँ घर है । चलत-चलत तो थक गएन । हमार दाम देयो आपन लकड़ी जस बन पड़े, वस लै जाव । हमार कीन होई ।

कॉन्स्टेबल—(लकड़हारे को मारता हुआ) जानता नहीं साले, हम पुलिस के आदमी हैं । सीधे-सीधे इसे उठा कर ले चल, नहीं मारते-मारते कचूमड़ निकाल लूँगा ।

[सेठ जी के दोनों हाथों से तेल की कुप्पी और लोढ़ा छूट पड़ते हैं और मारे डर के खुद थरथर काँपते हैं ।]

केशव—(अलग) भई वाह ! मार पड़ी उस पर, और भवानी आई इन पर ! वाह री आपकी हिम्मत !

लकड़हारा—कसत उठाई ? रसरिया तो टूट गया ।

कॉन्स्टेबल—रस्सी टूट गई ? तब ? (चारों तरफ़ आँखें फाड़-फाड़ कर देखता है । जैसे ही उसकी नज़र सेठ जी पर पड़ती है, वैसे ही सेठ जी झुक कर उसे सलाम करते हैं ।)

पकौड़ी—सलाम हज़ूर !

केशव—(अलग) वाह ! वाह ! वाह रे लखपती जीव ! अपनी हैसियत की कितनी अच्छी इज़्ज़त की ।

कॉन्स्टेबल—(सेठ जी से) आहा, आप खूब मिले । ज़रा एक रस्सी हो तो दीजिए । नहीं रहने दीजिए । इसी से काम चल जाएगा । (सेठ जी के सर से पगड़ी उतार कर लकड़हारे की तरफ़ फेंकता है) ले बे लकड़ी वाले, इसी से लकड़ी बाँध ले ।

केशव—अरे ! अरे ! यह क्या बेहूदापन !

कॉन्स्टेबल—आपसे मतलब ? आप क्यों बोलते

हैं ? मुद्दई सुस्त गवाह सुस्त । देखिए सेठ जी, इनका मना कीजिए, नहीं बात बनेगी नहीं ।

पकौड़ी—(केशव से) हाँ-हाँ, आप न बोलिए । हज़ूर पुलिस के सिपाही हैं, (कॉन्स्टेबल से) परन्तु हज़ूर मेरे पास यही एक पगड़ी है । साढ़े चौदह धरस हुए जब इसे ढाई रुपए में मोल ली थी । और एक बार भी इसे धोबी को नहीं दिया कि कहीं साला मार न ले जाय । इसलिए हज़ूर हाथ जोड़ता हूँ, इसे आप ले लेंगे तो हज़ूर के चरणों पर रखने के लिए पगड़ी कहाँ से लाऊँगा ?

कॉन्स्टेबल—हाँ-हाँ, घर पर आकर ले जाइएगा । (लकड़हारे से) चल बे !

पकौड़ी—हज़ूर का बेटा जीए, मैं अभी चलता हूँ । (कॉन्स्टेबल के साथ लकड़हारा पगड़ी से लकड़ी बाँध कर ले जाता है ।)

पकौड़ी—(लोढ़ा और कुप्पी उठा कर) हज़ूर, मैं भी आपके पीछे ही हूँ । (उन्हीं लोगों के पीछे जाता है ।)

केशव—(अकेला) भई वाह, यह मार्के की दुई । धत् तेरे की ! ऐसे लोगों की क्या खाक इज़्ज़त हो सकती है ? इन्हीं अक्ल के दुश्मनों की करतूतों पर इस मुल्क की इज़्ज़त भी बेचारी रो रही है । अक्रसोस, न जाने इनकी कब आँखें खुलेंगी ।

[प्रस्थान]

* * *

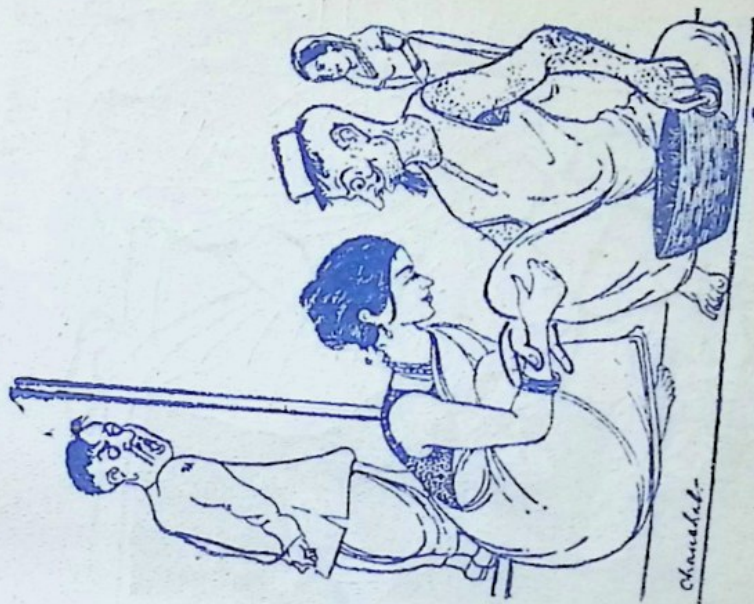
सेठ जी ग़म खा गए

‘रा’ मप्रसाद शिवदयाल लकड़वाले’ फ़र्म के स्वामी, श्रीयुक् सेठ शिवदयाल जी को ‘रामजीवण प्रेमसुख दास’ वालों पर आज दस हज़ार का दावा करना है । अर्ज़ादावा टाइप कराके तैयार कर लिया गया है । वकील साहब ने कह दिया है कि फ़रीब डेढ़ बजे कचहरी में आप मुझसे मिलें, उसी वक्त दावा दायर कर दिया जायगा । तब तक मैं और मवक्किलों से निपट लूँगा, उसके बाद सिर्फ़ आपका ही काम बाक़ी रह जायगा और मैं बहुत इतमीनान से इसे सरआम दूँगा और मैं आपसे कहे देता हूँ कि डिगरी कराके छोड़ूँगा ।

बारह बजे के फ़रीब सेठ साहब दावे का कागज़



चूँड़ बाबा करें विवाह, मौत के मुँह में जाने वाले !

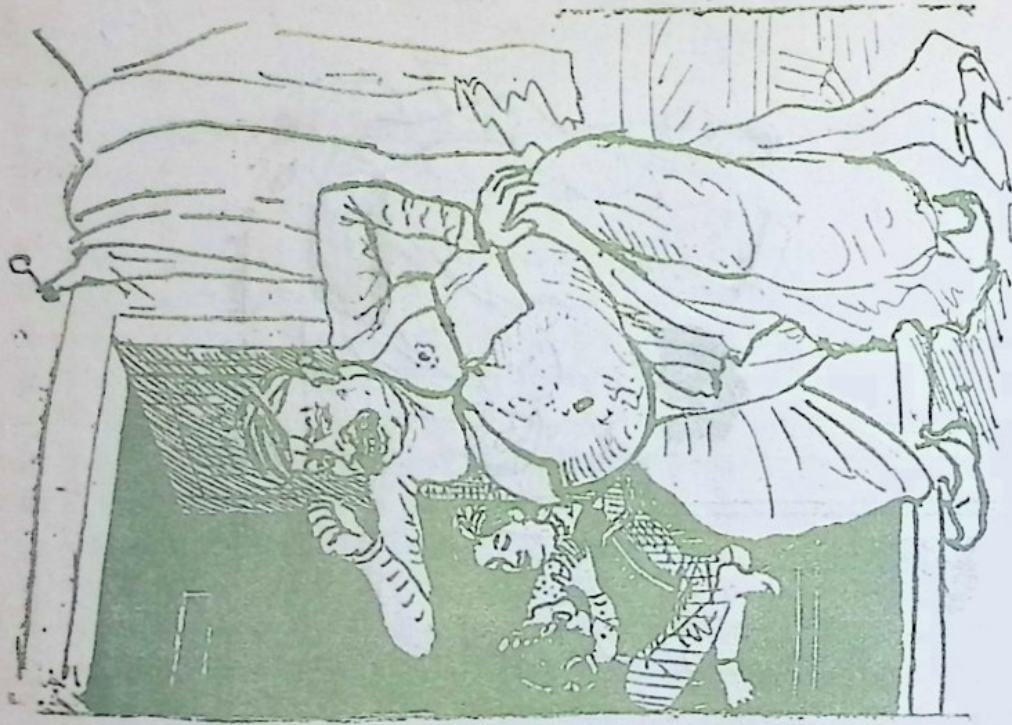


मियाँ मनिहार के पौबारह !

सेठ जी गुल खा गए !



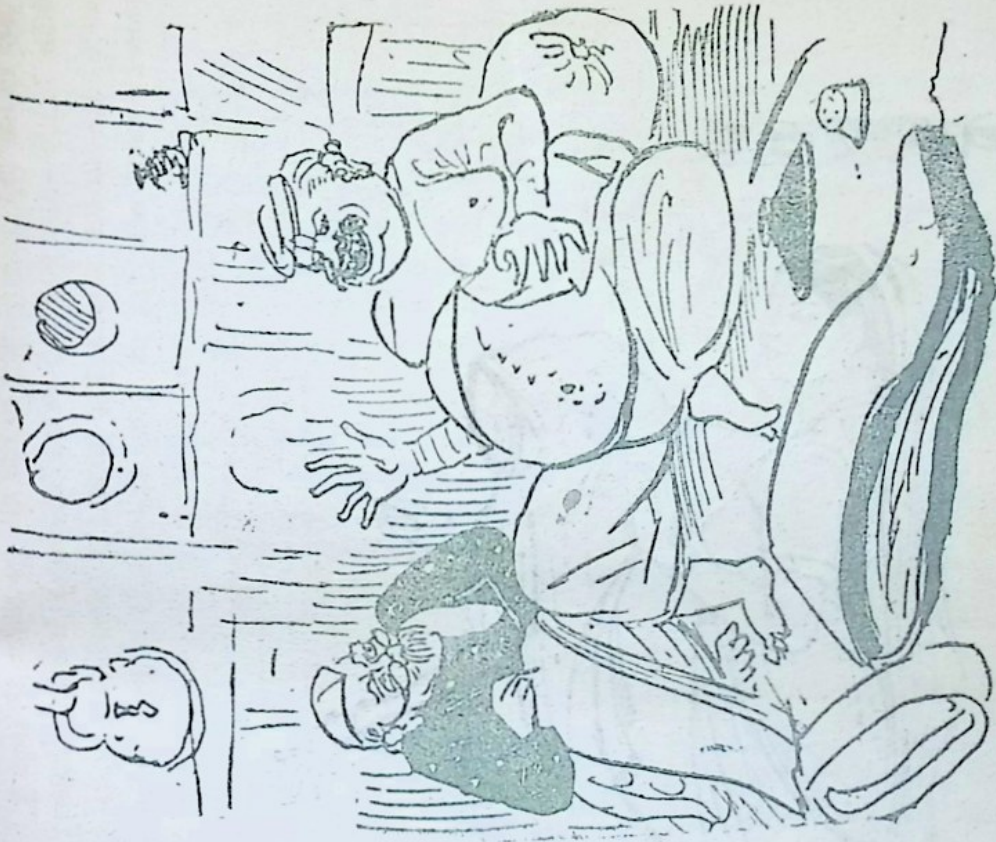
सेठानी—अवार थे आया, अवार ई चाल्या, महे कोनी जाबा देखूँ आ, म्हारो पकली को जीव पकला बैठा-बैठा कैयाँ लागे ! कोनी जाबा देखूँ ।
 सेठ—म्हारी चणीज प्यारी जी ! आज मने अदाबत में काम छै, १० हजार को सुकदमो है, म्हारो जीव भी थामें अटको रहे है, पण काँई करी, काल-काल भी करयोई बाहिजे ।



सेठ जी (स्वगत)—अरे बाप रे, आ काँई गजब !! आ बाप-बाओ र्हाले को छोरो अहमद ?? उत्तर गी, म्हारी इज्जत तो उतर गी, काँई ईने मार नाल्युँ, तलवार सँ ईको टुकड़ा-टुकड़ा कर धूँ । नमक हरास—म्हारे प् अदास में सेयो घेर रखगार करे और म्हारे घर में ही.....ईको खून कर देखूँ, आ लुची ने भी मोटो पकड़ घर बाहर कर देखूँ.....काँई कहै ? मारो गुल्लो गजब को है.....अरे हराली अहमद का बचा रे, बदमाल.....



पर, गत रातों, मने सोचा जो, आगे-पीछे सोच के काम करखो चाहिये। जो ईने में मार नाखूँ, घर भाँय खून रो पनालो यह जाली, पास-पड़ोस में घात छानी रहे कोनी, हल्ला मच जाली, पुलिस आली, गिरफ्तार कर ले जाली, जेल में रहखो पड़सी, हाकम फाँसी को हुकम... अरे बाप रे! म्हारो तो कारबार-रजगार चौपट हो जाली, घणीज बदनसी फल्ले पड़सी। काँई करूँ, घराना बदनम हो जाली, इज्जत धूण में मिल जाली। बालाँ रपिया को गरो हो जाली। आ लुगाई सब माल-याल की मालक धन मौज करसी, उतावला सो बावला, अवार तो दूकान पावें, बचटा दो बचटा में आ कमीनो आप ही खो जाली। जद देल बेरपाँ !!



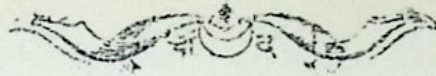
सुनीम जी—अहमद रज़ेज रे नासं दो हजार खैया आज रो मिली में मारल दियो है, व्याज काँई दीपू ?

सेठ जी—(झुग होकर) आ काम घणोई चोख्यो हुओ। अब देख लेखूँ। लवा खैया को व्याज दरव्याज माँड पो सुनीम जी ! अर वीं को आगल-पाकल हिसाब देख व्याज दरव्याज लगा दावो ठोक पो। आ शाला रज़ेज का बर्तन-भाबडा नीबाम करा ने दस लेखूँ—ईने मसल नाखूँ हाँ, बल्लू ! अब कंठे.....



खुली हवा का स्वास्थ्य !

पर्दे का स्वास्थ्य !!



हाथ में लिए रसोई जीमने पहुँचे। घर पहुँच कर कागज़ तो ताल में रख दिया और आप हाथ-मुँह धोकर रसोई आरोग्य के लिए बैठ गए। सेठानी जी ने बड़े आदर और प्रेमपूर्वक भोजन कराया, कई चीज़ें बारम्बार अनु-रोध करके परोसीं और अपने प्रेम, पति-भक्ति और पाति-व्रत-धर्म की छाप सेठ जी के हृदय पर मज़बूती से लगा दी।

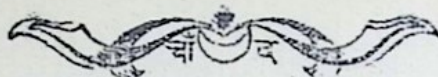
सेठ जी आनन्दपूर्वक भोजन जीम कर उठे, हाथ-मुँह धोया और सेठानी जी ने हँसते-हँसते पान का बीड़ा हाथ में दिया। सेठ जी के हृदय की कली खिल गई और बड़े प्रेमपूर्वक जल्दी में केवल कपोल-स्पर्श मात्र पर ही सन्तोष करके घर से बाहर हुए। दूकान पर आप, सुनीम जी को कुछ ज़रूरी बातें समझा कर गाड़ी में बैठ कर कचहरी को रवाना हुए। ठीक दो बजे वकील सरजूप्रसाद जी सेठ साहब की तरफ़ मुखातिब हुए, बोले लाइए अर्ज़ी-दावा साहब आ गए हैं; यही ठीक वक्त है। सेठ साहब ने जेब में हाथ डाला, दूसरी जेब में डाला, फतुई की जेब टटोली, कागज़ नदारद! इधर-उधर देखने लगे, जेब में से कहीं गिर तो नहीं गया, पर कागज़ गिरा हो तो मिले। आखिर मुँह मोंच कर, आँखें ऊपर चढ़ा कर सोचने लगे और चमक कर बोले—“अरे वकील साहब! अब याद आया, कागज़ तो मैं घर भूल आया। रोटी खाने गया था, अर्ज़ी-दावे का कागज़ ताल में रख दिया था, चलती बार याद न रहा, वहाँ से यहाँ चला आया। सोचा था अँगारखे की जेब में कागज़ है। बस बड़ी भूल हुई। खैर अभी लाता हूँ। पास ही तो घर है... यह कह कर सेठ जी पैदल ही लपके। बात यह थी कि गाड़ी उन्होंने पहले ही लौटा दी थी और कोचवान को कह दिया था कि तीन बजे गाड़ी ले आना। किराए के इक्के में पैसे खर्च करना नहीं चाहते थे, इसलिए पैदल ही लपके। दस-पन्द्रह मिनिट के रास्ते पर तो सेठ साहब की हवेली थी ही। रबड़-सोल का पग्य शू पहने हुए तेज़ी से शपाशप चलने लगे।

घर पहुँचे, साँकल खुट-खुटाने की ज़रूरत नहीं पड़ी। किवाड़ बन्द थे, पर साँकल नहीं लगी थी। आहिस्ता से किवाड़ खोला, क्योंकि उन्हें अपनी धर्मपत्नी के आराम का बड़ा ख्याल था। वह सोती होगी—जेठ का महीना—दोपहर का वक्त—गर्मी की शिखर—आग

बरस रही है। सेठानी नीचे वाले ठण्डे कमरे में शयन कर रही हैं। यही सब सोच कर आहिस्ता से रसोई घर के सामने के बराण्डे के ताल में से कागज़ उठा लिया। फिर ज़रा खड़े होकर सोचने लगे, इस समय यहाँ कोई नहीं है, टहलनी भी घर गई है—ज़रा प्राण-प्यारी के सोते समय की मुख-छवि तो नयन भर देल लें। अब उनका ध्यान अर्ज़ी-दावे की तरफ़ से हट कर इधर ही लग गया, सोचने लगे—इस समय शवरय देखना चाहिए, कितनी सुरिकलों से इसे प्राप्त किया है, ७०००) रुपए नक़द दिए हैं और ऊपर से दलालों और कितने ही लफ़्ज़ों को हज़ारों चटा दिए, तब काम फ़तह हुआ! बदमाश लौडों ने कैसे-कैसे विघ्न खड़े किए थे—कितना हज़ा मचाया था—अज़बाराँ में नोटिस तक छपा दिए थे—खाना, पीना, सोना तक हराम कर दिया था—मगर बाहरे! रुपए की ताकत!! सब सालों को परास्त कर दिया, सबके मुँह कुचल दिए। थानेदार ने वह हरदर जमाए कि याद करेंगे और फिर कभी समाज-सुधार का नाम तक न लेंगे। आगए ‘दाल-भात में मूसलचन्द’ बनने के लिए! मगर बाहरे कोतवाल भगतसिंह! क्या इन्तज़ाम बाँधा है! रुपए तो एक हज़ार लिए, मगर किसी बदमाश को नहीं फटकने दिया। सबने मुँह की खाई। आखिर यह माल, यह चाँद का टुकड़ा, यह परी मेरे हाथ लगी। क्यों न लगती? मेरे ही लिए पल रही थी—मेरे ही लिए ब्रह्मा ने निर्माण की थी—रत्न सुवर्ण में ही जड़े जाते हैं। यह सोचते हुए सेठ जी की छाती फूल उठी और देखने की अभिलाषा और बढ़ गई। आखिर आगे बढ़ कर धीरे से उन्होंने कमरे का दरवाज़ा ज़रा सा खोल कर और धीरे से झाँक कर देखा, और एकदम पीछे हट गए।

‘अर्रे!! यह क्या?’ कह कर आहिस्ता से पोल (दहलीज़) में आकर खड़े हो गए, सिर घूमने लगा। थोड़ी देर में सावधान होकर सोचने लगे—अर्रे! यह साला अहमदिया रज़रेज़ का छोकरा, जिसकी सात पुरखें हमारे टुकड़ों से पलती रही हैं, वह हमारे घर में..... अरे राम क्या होगा?

“अरे राम काँई होशी! अब मैं काँई कहूँ! अब मैं काँई करणो चाहिए—काँई ई साला नै मार नाखूँ—एक के दो करखूँ। सबवार तो लैंटी पर ही टंकी है—वह चाँदी की मूठ बाजी, जी पर हरा मज़मल की



ज्यान चढ़ी है—दाँतला ठाकुर साहब धर्मसिंह जी राठौष की दियोड़ी—मित्रता की निशानी—वीं नेऊँ बखत फर्मायो भी धो कि ईं से दुश्मन को सिर उतारनो चाहिजे ईं को उपयोग अय ही है। अब ईं दुष्ट से बड़ो दुश्मन श्मारो ग होसी—बस यही बखत है, ईं नीच नै बिना मारे नहीं छोरेणों। बस अब ही ठीक है !”—यह सोचते-सोचते उन्होंने यही निश्चय किया कि इस रज़रेज के छोकरे को यहीं हसी वक्त खत्म कर दो।

परन्तु ऐन वक्त पर साथ ही उनके मन में दूसरी बात (वणिक-बुद्धि) पैदा हुई। सोचने लगे—“पण ठैरो सोच लेवायो—बिना सोचे-समके कोई काम करणो मूरखता है। जो मैं ईं दुष्ट ने मारनाख्या—एक के दो कर दिए तो मुँड उठे पड़सी, धड़ पिलङ्ग पर रहसी—खून को पनालो वह जासी—थोड़ी ही देर में हल्ला मचसी—पुलिस आजासी—सारा शहर अठै ही भेला हो जासी—अन्त को तन्त रहै पकड़ीज जासी—पहली परथम हवालात होसी—पछे जेल खाणों जाणो पड़सी—मुकदमों चलसी, वकील बालिस्टर करने पड़सी—पहले तो पुलिस वाला ही किशा-किशा विकट सवालात करसी—हिन्दी की चिन्दी निकाजसी—काई काईं बाताँ बणासी—मेरी आ औरत भी थाणा में जासी ईं से भी भाँत-भाँत का परसन होसी—अय रज़रेज का छोकरा काईं काम आया था—थारे पिलङ्ग पर थारे साथ काईं कर रहया था—व्यभिचार—अरे राम !! अरे बाप रे !!! किसी बे-हुरमती की बात होसी—किशो निर्लज्जता को मामलो चलसी—श्हाके घराणे की, बड़-बड़ेराँ की प्रतिष्ठा लोप हो जासी—सात पुरत की नाक कट जासी—अमारा में धूल पड़ जासी और रुपया पैसा की कित्ती हाणत होसी—हज्जारों-लाखों तो वकील-बालिस्टर ही झटक लेसी—पुलिस वाला अलग मुँड फाड़सी—नहीं तो पूरा तङ्ग करसी—उधर जेलखाना का दारोगा साहब और उनके सिपाही—अरे राम लाखों पर पाणो फिर जायलो। बाब को घर खाक में मिल जायलो—सबली दुकानदारी हूय जायली—मैं तो उठे जेल में सहेँलों—डेढ़-दो बरस से कम में तो मुकदमों काईं खत्म होवे—अदालत वाला हावम धीरे-धीरे बैठ-बैठा मक्खियाँ मारा करे है—रोज देखै हूँ कि बरा-बरा सी बात ने छोटा-बोटा मुकदमा ने बरसों टालै है—ऐ खून को मुकदमों काईं जगदी

निपटसी—पूरो दो बरस लगसी। मैं तो जेल में रहूँलो और पछे मुनीम—गुमास्ता खुल खेल्सी—सामणे ही आख्याँ में धूल भोके है, पछे तो जो न करे सो थोड़ा—एक पैसा खर्च करसी और पाँच बड़ी में लिखसी—चार अपनी अन्टी में लगासी—लाखों की उगाही सब पट पड़ जायली—अभी लोग नादिहन्दी पर कमर कस रहे हैं पछे तो कुछ दिवाल है। और मैं—श्मारो काईं होसी—मनै जरूर फाँसी लगसी—किसी भाँत नहीं बचै—खून को सबूत पछो हो जासी—चाहे जित्ता रुपया खर्च करै—और यह मेरी औरत जिसे अभी ब्याह कर लाया हूँ, पूरा साल भर भी नहीं हुआ, पछला मँगसिर की तो बात ही है—दिन जाते काईं देर लगे है—कल की सी बात है—हाय ! अरे बरे—छाती पर सेल चल रही है—ईं को काईं होसी—ईं ने कुछ सजा-बजा तो होणे से रही—सुणा है राजी के मामले में कुछ नहीं होता, यह किसके हाथ पड़ेगी, मेरे घर में तो फिर कैसे रह सकेगी। जरूर ही यह मुसलमानी हो जासी और किसी मुसलमान के हाथ पड़सी—वह इसे मजा में अपने घर में रखरी—मौज कोला और श्हारी छाती पर मूँग दलसी। ओफ़ ओ कितरो भारी अनर्थ होसी। पहले जेल पछे फाँसी—जेल को खाणो धर्म-अष्ट। काईं-काईं बाताँ पर विचार करै, यह तो अनर्थ परम्परा है !” यह सब हानि-पछ सोचते-सोचते सेठ का सिर चकराने लगा। वह वहीं माथा पकड़ कर बैठ गए। (सारे मनोभाव व्यङ्ग-चित्र में देखिए)

फिर उन्होंने सोचा—“जो मैं इसे न मारूँ, यहाँ से चुपचाप चला जाऊँ तो यह सब आक्रत न होगी। यह साजा घड़ी-आध घड़ी में यहाँ से चला ही जायगा—ज्यादा देर तो ठहरने से रहा। भय तो इसे भी होगा ही—कोई आ न जाय, बेहतर यही है कि मैं दुकान चला जाऊँ—इस वक्त गम खाना ही अच्छा है। कचहरी जाना ठीक नहीं। न मालूम वहाँ वकील साहब या हाकम के सामने मेरे मुँड से घबराहट में क्या निकल जाय। ठीक जवाब न दे सकूँ। अर्ज़ावावा आज नहीं, तो कल पेश हो जायगा। उसमें क्या है—आक्रत तो टलेगी—बदनामी से तो बचैगा। अब तो कौन जानता है ? मैं, मेरी औरत और यह बदमाश अहमदिया, फिर तो सारा जगत जाय जायगा। ओफ़ ओ ! साले ने कहीं सेंध मारी है—जिस हाँडी में लाया उसी में छेद किया—इन मुसलमनों का धा

में घुसाना बहुत बुरा ! मैं क्या जानता था कि ऐसा हो जायगा । रझाई के कपड़े लेने आता था । हजारों बार आया था—कभी ऐसा नहीं हुआ था । नहीं चाचा ! ई लोगों को इतवार नहीं, ऐ साला घणा बदमाश छै—बखत पर चचा-ताऊ की बेटी-बहण नैही परण लेवै—घर में डाल लेवै—तो हमारी हिन्दुओं की बहू-बेटियाँ नै क्याँ छोड़ै । इसके मार डालने पर तो पूरी बदनामी और घर का सत्यानाश हो जासी । आपणै बाणियाँ हैं—इशो काम नहीं करणो, इज्जत नहीं गवाँणी—और बणो बणाय घर को सत्यानाश नहीं करणो । आगे की आगे देखी जासी—आगलो बन्दो-बस्त पछै करशुँ । ई बखत तो आफ़त टलै ।”

शरज़ यह सब सोच-समझ कर ऊँच-नीच, फ़ायदा-नुक़सान, भलाई-बुराई—सब बातों की पूरी विवेचना करके सेठ साहब ने यही निश्चय किया कि इस वक्त यहाँ से चुपचाप खिसक जाओ, इसी में भलाई है—यात्री फिर देखा जायगा ।

यह सब सोचने में उन्होंने चन्द सेकण्ड ही लगाए । उनकी हानि-लाभ-विवेचनी बुद्धि ने फ़ायदे-नुक़सान का कुछ नक़शा बिजली की तरह उनके दिमाग़ में

चमका दिया और उन्हें समझने में कुछ भी बाक़ी न रह गया ।

अहमद को कमरे का दरवाज़ा कुछ खुलने से थोड़ा सन्देह ज़रूर हुआ था, परन्तु बाहर बराण्डे में किसी को न देख कर, उसने समझा हवा से ऐसा हुआ है और यही उसने सेठानी को समझा दिया ।

अगले दिन कचहरी जाते हुए वकील सरज़प्रसाद खुद ही सेठ साहब की दूकान पर आकर पहुँचने लगे—मैं चार बजे तक आपका इन्तज़ार करता रहा ।

सेठ साहब—क्या बताऊँ वकील साहब ! घर आकर जो देखा तो घर में बड़े ज़ोर का ग़ुज़ार चढ़ा हुआ था, बड़ी तक्रलीफ़ हो रही थी, न मालूम लू लूग गई कि क्या हो गया—मैं घबरा गया और उनकी सेवा-शुश्रूषा में लग गया । सोचा, दावा आज नहीं तो कल दायर हो जायगा, इन्हें आराम पहुँचना चाहिए । अब आज हाज़िर हूँगा ।

वकील साहब—अब तो तबीयत ठीक है, सेठानी साहिबा की ?

सेठ—आपकी कृपा से अब तो सब आनन्द है ।

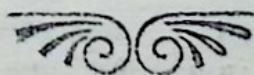
—एक सेठ का भतीजा

मारवाड़ी

[पण्डित रामनरेश जी त्रिपाठी]

बुद्धि पगड़ी सी बड़ी टीवों सा अनन्त धन,
कोमलता भूमि सी स्वभाव बीच भरिए ।
देशी कारवार में चिपकिए भल्लूट ऐसा,
ऊँट ऐसी हिम्मत सहनशक्ति धरिए ॥
दम्पति में प्रीति-रीति रखिए कबूतर सी,
मोर की सी छवि निज कीरति की करिए ।
मारवाड़ी भाइयो ! मतीरे के समान आप,
ताप-परिताप निज भारत का हरिए ॥

थोड़े में गरम, फिर शीतल सहज ही में,
रेत का सा अस्थिर स्वभाव मत करिए ।
रखिए सदैव गुणियों के अनुकूल मन,
कूप के समान दूर दान मत धरिए ॥
बाजरे सा नीरस कटीले हो न कीकर सा,
काचरे सी कटुता न मुख से उचरिए ।
मारवाड़ी भाइयो ! किसी के जो न काम आवे,
ऐसा जन्म टीबड़े सा लेकर न मरिए ॥



मारवाड़ के साधु

['एक साधु-भक्त']



समान समय में समस्त भारत-वर्ष में पण्डे-पुजारी व पुरो-हितों का आडम्बर और अप-व्यय हिन्दू-समाज को नष्ट कर रहा है। मारवाड़ में भी इन साधुओं के ऐसे कुछ फ़िरके मौजूद हैं। इनमें अधि-कांश बगुला-भगत हैं और उनका एकमात्र पेशा गृहस्थों की गाढ़ी कमाई को हरण करना, खाना-पीना, मौज उड़ाना, गृहस्थ-स्त्रियों में व्यभिचार फैलाना और लोगों में अनेक व्यसनों का प्रचार करना है। यह लोग धेले का गेरू और एक पैसा सिर-मुड़वाई का स्नान करके भूत साधु बन बैठते हैं। इन लोगों में अधिकांश दादू-पन्थी, रामसनेही, कबीर-पन्थी, निरञ्जनी आदि हैं। इन लोगों के बड़े-बड़े मठ तथा रामद्वारे हैं, जिनमें हजारों रुपय की सम्पत्ति लगी हुई है। इन बगुला-भगतों का बहुत बड़ा प्रभाव भी है। मारवाड़ी-समाज की अग्रवाल, महेश्वरी, खण्डेल-वाल आदि जातियों में छोटे-बड़े सब प्रकार के घरानों की विधवाओं को अपने माया-जाल में फँस कर यह लोग बड़ी बुरी तरह से पथ-भ्रष्ट करते हैं। इन्हीं नीच और पाखण्डी साधुओं की करतूत से हजारों की तादाद में भ्रूण-हत्याएँ सदा हुआ करती हैं। यह लोग प्रायः परिश्रमी एवं कृषक जातियों में से ही भर्ती होते हैं। साधु लोग जाट, माली, गूजर, सीरवी, बिसनोई और कलवी (कुरमी) लोगों को अधिकतर चेला मूढ़ते हैं और ये लोग भी साधु होने में बड़ा आराम समझते हैं। मेहनत से छूट जाते हैं और बौहरों के ऋणों से बच कर दूसरों के माल से स्वयं सेठ बन जाते हैं। इस सम्बन्ध में यह कहावत मशहूर है :—

माथा मुँडायी तीन गुण गई माथे री खाज ।
मलवा छोड़ा चोधर्याँ हासल छोड़ा राज ॥
माथा मुँडायी तीन गुण गई माथे री खाज ।
पट्टिलों माथे काढ़ना अब योगन जागा न्याज ॥

अर्थात्—पहले तो जीविका उपार्जन में बड़ा परि-श्रम करना पड़ता था, परन्तु अब साधु हो जाने से घर बैठे अच्छा खाने-पहनने को मिलता है और बाबा जी या महाराज की पदवी भी मिल गई है। इससे राज्य के कर से छुटकारा हो जाता है और शिर मुड़ाने से खाज मिट जाती है।

इन साधुओं की दिनचर्या सिवाय राम-राम भजने, बड़ी-बड़ी मालाएँ फेरने और दोनों वक्त अच्छे भोजन—प्रसाद जीमने के और कुछ नहीं है। किसी मारवाड़ी कवि ने ठीक कहा है :—

बाम-बाम बकता बहे, दाम-दाम चित देत ।
गाम-गाम नाखे गिंडक, राम नाम में रेत ॥
इनके चरित्र के विषय में एक कवि कहता है :—
खल तिणारी खोटी करे, पापी अन-जल पाय ।
मोको लागों मोडिया, चेली सँ चिप जाय ॥

अर्थात्—वह पुरुष दुष्ट है, जो यजमान का अन्न-जल खाकर उसकी बुराई करता है, जैसा कि इन साधुओं का हाल है। यजमान की बहिन-बेटियों व पुत्र-बधुओं को कण्ठीबन्द चेली बना कर मौका लगने पर उन्हींसे दुराचार करते हैं।

किसी अङ्गरेज विद्वान ने इनका सब रहस्य समझ कर इन लोगों को “इटेलियन स्टेलियन” कहा है। अर्थात् नरों में यह साँड हैं, जिनके द्वारा विधवाओं और बलहीन गृहस्थों की स्त्रियों में व्यभिचार फैलता है। इन लोगों में जो कोई थोड़ा-बहुत पढ़ जाते हैं, वे अपने को ‘अहं ब्रह्मास्मि’ कहते हुए अपने ही समान सबको ब्रह्म ही समझने लगते हैं। वे अपने शिष्य-शिष्याओं को सदा यही उपदेश करते रहते हैं कि “ब्रह्मनी ब्रह्म लगनम्”—स्त्री भी ब्रह्म और पुरुष भी ब्रह्म, तो गोया ब्रह्म से ब्रह्म लगा—मिला, इसमें कोई दोष नहीं है। प्रायः देखा गया है कि निरक्षर, पाखण्डी और ढोंगी साधु अपने कुकर्मों पर इसी प्रकार पर्दा डाला करते हैं। वे नाने शिष्य शिष्याओं को यह उपदेश बुरा तो मान्य



जयपुर का राजवंश

परिचय ग्रन्थ देखिए

मारवाड़ के साधु

['एक साधु-भक्त']



उत्तम भक्त में समस्त भक्त-
तपों में पहले-पुकारी व पुरो-
हितों का आदर्श और सप-
न्य किन्तु-समाज को नष्ट
कर रहा है। मारवाड़ में भी
इन साधुओं के ऐसे कुछ
फिरके मौजूद हैं। इनमें अधि-

कांश बगुला-भगत हैं और उनका एकमात्र पे-
गाढ़ी कमाई को हरण करना, खाना-पीना, मौज-
गृहस्थ-स्त्रियों में व्यभिचार फैलाना और लोगों में
व्यसनों का प्रचार करना है। यह लोग धेले का गेरू
और एक पैसा सिर-मुढ़वाई का धूर्च करके भट साधु बन
बैठते हैं। इन लोगों में अधिकांश दादू-पन्थी, रामसनेही,
कबीर-पन्थी, निरञ्जनी आदि हैं। इन लोगों के बड़े-बड़े
मठ तथा रामद्वारे हैं, जिनमें हजारों रुपय की सम्पत्ति
लगी हुई है। इन बगुला-भगतों का बहुत बड़ा प्रभाव
भी है। मारवाड़ी-समाज की अग्रवाल, महेस्वरी, खण्डेल-
वाल आदि जातियों में छोटे-बड़े सब प्रकार के घरानों
की विधवाओं को अपने माया-जाल में फँस कर यह
लोग बड़ी बुरी तरह से पथ-भ्रष्ट करते हैं। इन्हीं नीच
और पाखण्डी साधुओं की करतूत से हजारों की तादाद
में भ्रूण-हत्याएँ सदा हुआ करती हैं। यह लोग प्रायः
परिश्रमी एवं कृषक जातियों में से ही भर्ती होते हैं।
साधु लोग जाट, माली, गूजर, सीरवी, बिसनोई और
कलवी (कुरमी) लोगों को अधिकतर चेला मूढ़ते हैं
आर ये लोग भी साधु होने में बड़ा आराम समझते हैं।
मेहनत से छूट जाते हैं और बौहरों के ऋजों से वच कर
दूसरों के माल से स्वयं सेठ बन जाते हैं। इस सम्बन्ध में
यह कहावत मशहूर है :-

माथा मुँडायी तीन गुण गई माथे री खाज ।
मलवा छोड़ा चोधर्याँ हासल छोड़ा राज ॥
माथा मुँडायी तीन गुण गई माथे री खाज ।
पहिलीं माथे काढ़ना आव योगन लागी न्याज ॥

अर्थात्—यह तो जीविका उपार्जन में बड़ा परि-
श्रम करना पड़ता था, परन्तु अब साधु हो जाने से घर की
पच्चा खाने-पहनने को मिलता है और बाबा जी का
आश्रय की पदवी भी मिल गई है। इससे राज्य के घर
से भ्रष्टाचार हो जाता है और शिर मुड़ाने से भाग मिल
जाती है।

इन साधुओं की दिगम्बरी सिवाय राम-राम बोलने,
कबीर-कबीर बोलने और दोनों बगुल-भक्तों मोक्ष-
प्रसाद जीवने के और कुछ नहीं है। किसी मारवाड़ी
कवि ने ब्रीह कहा है :-

राम-नाम बकता बड़े, राम-नाम मिल देत ।
राम-नाम भाखे गिंडक, राम नाम में रेत ॥
हृणके परित के दिवस में एक कवि कहता है :-
आल सिमहरी खोटी करे, पापी अन्न-जल पाय ।
माँ की लाली मोड़िया, पैसी लूँ विप जाय ॥

अर्थात्—यह पुरुष भूट है, जो यजमान का पथ-भ्रष्ट
लाकर उसका भ्रष्ट करता है, जैसा कि इन साधुओं
का हाल है। यजमान की बहिन-बेटियों व पुत्र-पुत्रियों
को कण्ठीबन्द करी बना कर बोजन लगाने पर बल्लुमि
दुराचार करते हैं।

किसी अङ्गरेज विद्वान ने इनका सब रहस्य समझ
कर इन लोगों को "इन्डियन स्टोडियन" कहा है।
अर्थात् नरों में यह साधु हैं, जिनके द्वारा विधवाओं की
बलहीन गृहस्थों की स्त्रियों में व्यभिचार फैलता है।
इन लोगों में जो कोई ब्रह्मा-बहुत पढ़ जाते हैं, वे अपने
को 'अहं ब्रह्मास्मि' कहते हुए अपने ही समाज के
ब्रह्म ही समझने लगते हैं। वे अपने शिष्य-शिष्याओं
को सदा यही उपदेश करते रहते हैं कि "ब्रह्म ही
लगनम्"—स्त्री भी ब्रह्म और पुरुष भी ब्रह्म, तो ब्रह्म
ब्रह्म से ब्रह्म लगा—मिल, इसमें कोई दोष नहीं है।
प्रायः देखा गया है कि निरञ्जनी, पाखण्डी और बगुला-भक्त
अपने कुकर्मों पर इसी प्रकार पर्दा डाला करते हैं।
वे नारे शिष्य शिष्याओं को यह उपदेश देते हैं कि



जयपुर का राजवंश

साहित्यिक दुनिया में हलचल मचाने वाली कहानियों का
अनुपम संग्रह

मालिका

जिसके रचयिता हैं—

हिन्दी-संसार के सुपरिचित

कवि और लेखक—पं० जनार्दनप्रसाद भ्मा 'द्विज' बी० ए०

यह वह 'मालिका' नहीं जिसके फूल मुरझा जायेंगे, यह वह 'मालिका' नहीं जो दो-एक दिन में खूब जायगी; यह वह 'मालिका' है जिसकी ताज़गी सदैव बनी रहेगी। इसके फूलों की एक-एक पंखुरी में सौन्दर्य है, सौरभ है, मधु है, मदिरा है। आपकी आँखें तृप्त हो जायँगी, दिमाग़ ताज़ा हो जायगा, हृदय की प्यास बुझ जायगी, आप मस्ती में भ्रमने लगेंगे।

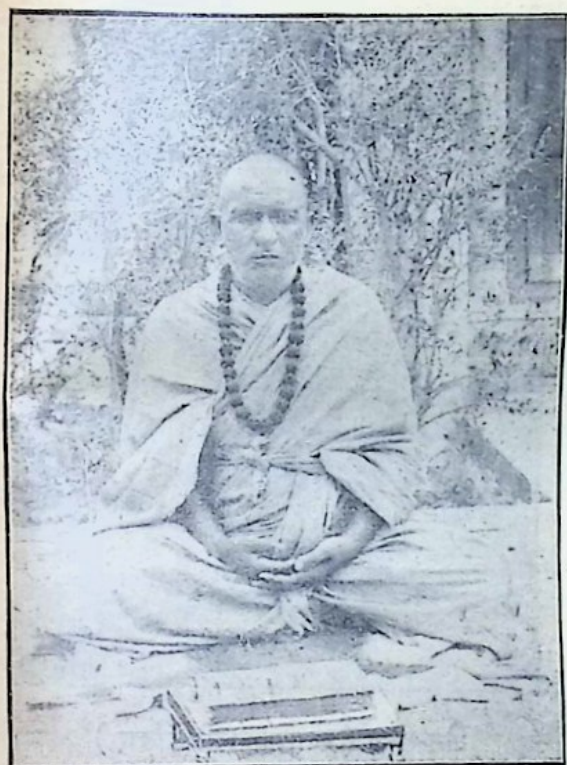
आप जानते हैं द्विज जी कितने सिद्ध-हस्त कहानी लेखक हैं। उनकी कहानियाँ कितनी कल्याण, कोमल, रोचक, घटनापूर्ण, स्वाभाविक और कवित्वमयी होती हैं। उनकी भाषा कितनी वैभवपूर्ण, निर्दोष, सजीव और सुन्दर होती है। इस संग्रह की प्रत्येक कहानी कल्याण-रस की उमड़ती हुई धारा है, तड़पते हुए दिल की जीती-जागती तस्वीर है। आप एक-एक कहानी पढ़ेंगे और विह्वल हो जायँगे; किन्तु इस विह्वलता में अपूर्व सुख रहेगा।

इन कहानियों में आप देखेंगे मनुष्यता का महत्व, प्रेम की महिमा, कल्याण का प्रभाव, त्याग का सौन्दर्य! आप देखेंगे वासना का नृत्य, मनुष्य के पाप, उसकी घृणा, क्रोध, द्वेष आदि भावनाओं का सजीव चित्रण! कहानियों के चरित्र इतने स्वाभाविक हैं कि आप उनमें अपने को, अपने परिचितों को ढूँढ़े बिना ही पा जायँगे। आप देखेंगे कि उनके अन्दर लेखक ने किस सुन्दरता और सचाई के साथ ऊँचे आदर्शों की प्रतिष्ठा की है।

इसलिए हमारा आग्रह है कि आप 'मालिका' की एक प्रति अवश्य मँगा लीजिए नहीं तो इसके बिना आपकी आलमारी शोभाहीन रहेगी। हमारा दावा है कि ऐसी पुस्तक आप हमेशा नहीं पा सकते। अभी मौज़ा है—मँगा लीजिए!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

होता है तो भी 'हरे नमः बाप जी' कह देते हैं। एक बार एक धूर्त शिष्य ने अपने ऐसे ही गुरुदेव की कृपा-पात्र



महात्मा उत्तमनाथ जी महाराज

[आप मारवाड़ के सुप्रसिद्ध महात्मा और दर्शन-शास्त्र के धुरन्धर ज्ञाता हैं।]

चेली (रामकी) पर उपर्युक्त (एक्सपेरीमेंट) का दिखाया। साधु जी ने देख लिया और बहुत ही रुष्ट होकर कहने लगे—तू बड़ा ही पामर है।

शिष्य ने कहा—महाराज! मैंने तो बकौल आपके ब्रह्म से ब्रह्म मिलाया है। अगर इसमें भी मैं बड़ा पामर हूँ तो आप न जाने कितने बड़े पामर होंगे, जो रोज़-मर्रा ऐसा ही करते रहते हैं। साधु जी चुप। चुप तो होगा, मगर मन में यह मलिनता अवश्य ही बनी रही कि कभी न कभी मैं भी इसके साथ ऐसा ही करूँ। आखिर एक दिन मौक़ा मिल गया और साधु जी ने अपने शिष्य की खी को जबरन गुरु-मन्त्र सुना ही दिया। इतने ही में शिष्य भी आगया, और जूता हाथ में ले,

लगा साधु जी की चाँद की खाज मिटाने। सिर से खून बह निकला। जब साधु जी रोने लगे, तब शिष्य बोला—“महाराज! चर्मनी चर्म लगनम्, ब्रह्मनी लगनम् किम्—जूता भी चमड़े का और सिर भी चमड़े का, इसलिए चमड़े से चमड़ा लगा, ब्रह्म को क्या लगा? आप क्यों रोते हो? क्योंकि जैसा 'ब्रह्मनी ब्रह्म लगनम्' वैसा ही 'चर्मनी चर्म लगनम्' है। अतएव आपको रोना नहीं चाहिए”, इत्यादि। इन भोंदू साधुओं में इसी प्रकार की व्यभिचार-लीलाओं का बाज़ार गर्म रहता है।

इन साधुओं में एक विशेष समूह ऐसा है, जिसको धन व स्त्रियों की अधिक चाहना रहती है। यह कहलाते



अशिक्षित जनता से अनुचित लाभ उठाने वाले मारवाड़ के डाकोत (शनिपूजक)

तो हैं साधु, परन्तु गृहस्थों से चार ऋद्धम बढ़ कर माया में डूबे रहते हैं। इनके लिए कहावत प्रसिद्ध है :—

जो तू चाहे धन और माया, दादू-पन्थी होजा भाया।
जो तू चाहे इन्द्रियाँ को भोग, जा खेड़ापै लेले जोग।
जो तू चाहे निन्दा को कोड़, शाहपुरे को होजा मोड़।
जो तू चाहे दिनज-बनजणी, तो गढ़े को होजा
निरञ्जणी।

जो तू चाहे भोजन खाया, होजा रामसनेही भाया।

मारवाड़ के चिर-परिचित महाकवि ऊमरदान 'लालस'
ने इनका चित्र इस प्रकार खींचा है :—



घर-घर आटा माँगने वाले और "ब्राह्मण-भोजन"
की ताक में धूमने वाले
श्रीमाली ब्राह्मण

साँडा ज्यूँ ये साधड़ा, भौँडा ज्यूँ कर भेस।
राँडा में रोता फिरे, लाज न आवे लेस।

x

x

x

बिदर^१ सहेल्याँ बीच में, हस-हस मारे होड।
चेली सँ चूके नहीं, मोको लागा मोड॥



जैन-साधु (स्थानकवासी हूँडिए)

[इनका आचरण बड़ा शुद्ध होता है]

और सुनिः—

मारवाड़ रो माल, मुफ्त में खावे मोडा।
सवग जोसी सेंग, गरीबाँ दे नित गोडा।
दाता दे वित दान, मोज माँगेँ मुरसण्डा।
लाखाँ ले धन लूट, पूतली-पूजक परण्डा।
जटा कनफटा जोगटा, खाखी परधन खावणौ।
मरुधर में कोड़ा मिनक, करसा एक कमावणौ॥

*

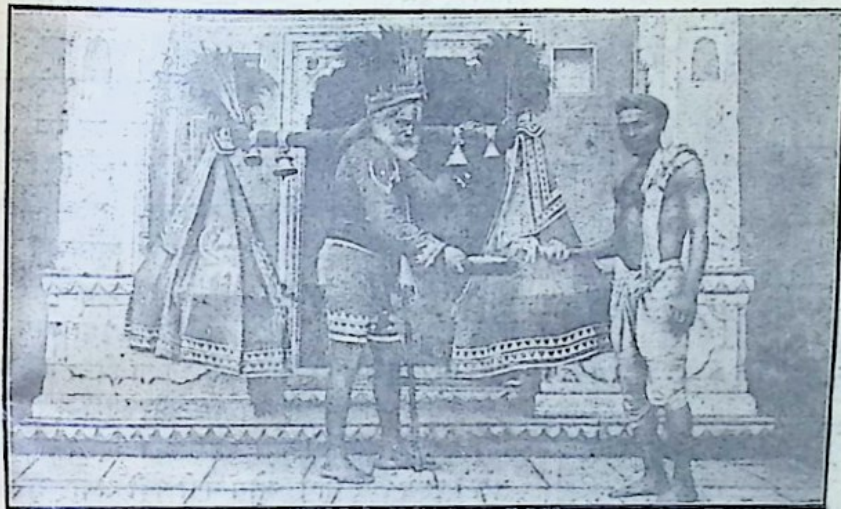
*

*

इस बात के मानने से किसी को इन्कार नहीं हो
सकता कि इन कहावतों और पद्यों में साधुओं का जो
वर्णन किया गया है, उसमें किसी प्रकार की अति-
शयोक्ति या झूठ नहीं है। आजकल अधिकांश साधु
इसी श्रेणी के देखने में आते हैं। यह सच है कि इन

साधुओं में कुछ लोग बड़े सज्जन, परोपकारी और विद्वान भी पाए जाते हैं, पर दुर्भाग्यवश मुस्टगडे साधुओं

इसलिए साधुओं पर आक्रमण या आक्षेप करना, चाहे किसी को कैसा भी बुरा क्यों न लगे, वह समाज और देश के लिए भलाई का ही काम है। ये साधु लोग बिना किसी प्रकार का परिश्रम, चिन्ता, फिक्र किए सर्वसाधारण की कमाई पर आराम से जीवन व्यतीत करते हैं। अगर वे उसके बदले में सर्वसाधारण का कुछ प्रत्युपकार न करें, उनकी हित-कामना न करें तो उनको बिना सङ्कोच के हरामखोर कहा जायगा। इतने पर भी जब यह देखा जाय कि वे बजाय प्रत्युपकार और भलाई के जनता का अहित करते हैं, लोगों को



मारवाड़ के बैरागी साधु

[काँवर लेकर घर-घर माँगना-खाना ही इनका व्यवसाय है]

की अपेक्षा उनकी संख्या इतनी कम है कि उनको अपवाद-स्वरूप ही मानना पड़ता है। उदाहरणार्थ इस लेख में जिन तीन महात्माओं—श्री० उत्तमनाथ जी, श्री० देवदान जी, श्री० परमानन्द जी—के चित्र दिए गए हैं, उनकी साधुता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। पर ऐसे साधु ममस्त राजस्थान में कितने मिलेंगे? बड़ी कोशिश करने पर शायद दस-बीस मिल सकें। पर यदि व्यभिचारी, ढोंगी और धन कमाने वाले साधु ढूँढ़ना चाहें तो उसके लिए कहीं दूर न जाना पड़ेगा। जिस शहर



मारवाड़ की प्रचण्ड शक्ति

[जयपुर के नागाओं की सेना के कुछ वीर। यदि इन सुविल्यात योद्धाओं में सङ्गठन और नेतृत्व का अभाव न हो तो ये क्या नहीं कर सकते?]

या कस्बे में आप चाहेंगे, इस प्रकार के पतित जीव पचासों मिल जायेंगे! जब चाहे परीक्षा करके देख लीजिए!

ठग कर ज़मीन-जायदाद के मालिक बनते हैं, भले घरों में गुप्त-व्यभिचार फैलाते हैं, लोगों को गाँजा, सुलका, भग

आदि हानिकारक नशों का चस्का लगाते हैं, तो उनको



आबू वाले स्वामी परमानन्द जी

[राजपूताने के प्रबल समाज-सुधारक, 'साधु' शब्द को सार्थक करने वाले कर्मवीर संन्यासी]

सिवाय नराधम के कुछ नहीं कहा जा सकता। ऐसे लोगों से सहज ही में यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि जब तुम काम, क्रोध, लोभ में इतने लिप्त हो, जब तुम्हारी भोग-लिप्सा इतनी बड़ी हुई है, तो तुम गृहस्थ ही क्यों न रहे, साधू का वेश रख कर ढोंग क्यों किया? वे इसका कुछ जवाब नहीं दे सकते क्योंकि इनके कृत्य का एकमात्र कारण यह है कि अगर वे गृहस्थ रह कर सुख भोगना चाहें तो उसके लिए पसीना बहाना पड़ता है, बीसियों तरह की जिम्मेवारी माथे पर लेनी पड़ती है, और अनेकों प्रकार के खतरों का सामना करना पड़ता है। पर साधुपने के ढोंग के द्वारा वे लोग

बिना किसी तरह के झंझट के मौज उड़ाते हैं। इससे बढ़ कर बदमाशी और नीचता क्या हो सकती है? हम जानते हैं, इसका कारण देशवासियों की मूर्खता है!

इन सब बातों के होते हुए भी एकाएक इस बात को कोई न कहना चाहेगा कि साधु-सम्प्रदाय देश में से बिलकुल ही लुप्त हो जाय। खासकर देश की वर्तमान दशा में तो साधुओं के समान स्थिति के आदमी बहुत-कुछ काम ऐसा कर सकते हैं, जो साधारण लोगों के लिए बड़ा कठिन अथवा असम्भव है। साधुओं को न जोरू और बच्चों की फ्रिक होती है, न खाने-कमाने की, न लेने-देने की। सच पूछा जाय तो उनका जीवन बड़ा ही निश्चिन्त है अथवा होना चाहिए। ऐसे लोग यदि समाज-सुधार और देश-सुधार का निश्चय कर लें तो वे क्या करके नहीं दिखा सकते? पुराने ज़माने में साधु लोग बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़े हैं। जयपुर के नागा-साधुओं की सेना का नाम अब तक प्रसिद्ध है। बङ्गाल के विद्रोही संन्यासी-दल की बात भी अनेक लोग जानते होंगे, जिसके आधार पर बक्षिम बाबू ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'आनन्दमठ' की रचना की है। यदि सभी साधु और कुछ न करके अपना इस प्रकार का सैनिक-सङ्गठन ही कर डालें, तो क्या वे देश के लिए कम



हरिभजन करते हुए जैन-मन्दिर के पुजारी सेवक (भोजक), जिन्हें शाकद्वीपी ब्राह्मण भी कहते हैं।

उपयोगी हो सकते हैं? वे इस रीति से समस्त देश को धीरे धीरे बना सकते हैं और समय पड़ने पर उसकी रक्षा कर

सकते हैं। यदि गाँवों के आस-पास रहने वाली साधुओं की मण्डलियाँ, जो गरीब गाँव वालों से एक प्रकार का वार्षिक या छःमाही कर अथवा लाग बसूल कर आराम से गुज़र करते हैं, वहाँ की जनता की शिक्षा और रक्षा आदि का प्रबन्ध अपने हाथ ले लें तो क्या वे देश के एक बड़े अभाव को पूरा नहीं कर सकतीं? यदि अकाल और हलचल आदि के समय, जब कि चोरी-डाकों की संख्या बढ़ जाती है, ये साधु स्वयं-सेवक बन कर गाँव के लोगों के जान-माल की हिफाज़त करें तो क्या वे जनता के एहसान से उच्छ्रित नहीं हो सकते? वास्तव में इन साधुओं की स्थिति ऐसी सुभीते की होती है कि वे जनता का अमित उपकार करके उसके ऋण से मुक्त ही नहीं हो सकते, वरन् अपने जीवन को सार्थक, आदर्श बना सकते हैं। हम जानते हैं कि और सब लोग बहुत बड़े महात्मा और पहुँचे हुए नहीं बन सकते, पर यदि गृहस्थी के

जज्जाल से ऊब कर या अन्य किसी कारण से घर-बार को त्यागने वाले व्यक्ति साधु बन कर



सर्व-साधारण की सेवा ही करते रहें तो उनके सब वर्तमान दोष दूर हो सकते हैं और उनको देश के लिए एक प्रकार के अभिशाप के बजाय समाज का एक उपयोगी अङ्ग समझा जा सकता है। पर ऐसा हो ना निकट-भविष्य में सम्भव नहीं दिखाई देता। जब तक हमारे देशवासी—समाज को रसातल की ओर ढकेलने वाले जाहिल हिन्दू-गृहस्थ ऐसे निष्ठलुओं का सामाजिक बहिष्कार कर, उनके कर्तव्य की ओर उनका ध्यान आकर्षित नहीं करेंगे, तब तक समाज को आर्थिक हानि के साथ ही साथ सदाचार-सम्बन्धी दिनों दिन बढ़ती हुई बुराइयों का भी शिकार होना पड़ेगा! बीसवीं शताब्दी के इन उन्नति और विकास के युग से लम्बी नाक वाले हिन्दुओं को इस ओर ध्यान देना चाहिए !!

महात्मा देवीदान जी संन्यासी

[आप एक त्यागी महात्मा हैं, आप मारवाड़ में खूब प्रसिद्ध हैं]



रामकी

[श्रीगोपाल जी कल्ला]



मकी की अवस्था समय इस २२ वर्ष जाने से भाई-भौजाई से इसकी पटरी नहीं बैठी, तब से की है। वह एक धनवान व्यक्ति की लड़की है और एक ऐसे व्यक्ति को व्याही है, जो उसके पिता से भी अधिक धनवान है। उसका व्याह नौ वर्ष की अवस्था में ही हो गया था। व्याह होने के एक साल बाद ही उसका सुहाग-सिन्दूर पोंछा जा चुका था। व्याह होने के बाद चार-पाँच साल तक तो वह अपने पिता के घर ही रही।



पाखण्ड रच कर हिन्दुओं को मूँड़ने वाले साधुओं की एक मण्डली



वह ससुराल में रहने लगी। ससुराल में इस समय सिर्फ उसके वृद्ध स्वसुर ही हैं, जिनकी अवस्था करीब ७० वर्ष के होगी। इनकी दृष्टि भी इस समय कम पड़ चली थी, सिर्फ एक आँख से बहुत ही हलका-सा दिखाई देता था, जो करीब नहीं के बराबर था। वृद्ध महा-शय दिन भर घर में बैठे राम-राम जप कर अपने दिन बिता रहे थे। रामकी ससुर की खूब टहल-चाकरी किया करती है। उसका

समाज में नाना प्रकार के अनाचार फैलाने वाले अलखधारी गोसाईं परन्तु इस बीच में उसके माता-पिता का स्वर्गवास हो चुका था अपना मानी नहीं रखता। वह जिस तरह जाती

है, उधर ही
चाहे कोई
कैसा ही
संयमी क्यों
न हो—
स ह सा
सबकी इष्टि
उसकी ओर
गए बिना
नहीं रहती।
व ह इ स
स म य
विधवा है
उ स का
सु हा ग -
सिन्दूर बहुत
काल पहले



मारवाड़ में बहुत अधिक संख्या में पाए जाने वाले तथा सदाचार-सम्बन्धी
दोषों को फैलाने वाले रामसनेही साधु

ही पोंछा
जा चुका
है। इसलिए
वह रङ्ग-
विरङ्गे कपड़े
एवं आभू-
षणादि नहीं
प ह न
सकती, उसे
विधवोचित
कपड़े पहनने
पड़ते हैं।

माता-
पि ता के
म र ने के
बाद जब से
वह ससुराल



मारवाड़ का कबीर-पन्थी साधु



साधुता का ढोंग रचने वाले
मारवाड़ के रामानुज-सम्प्रदाय का साधु

रहने लगी है तबसे वह कभी-कभी भाई-भौजाई के बुलाने पर पीहर जाया करती है और घड़ी-आध घड़ी भावज के पास बैठ कर वापस आ जाती है। इन दिनों उसकी भावज की तबीयत कुछ ठीक नहीं रहती है। इसलिए वह आजकल



पीहर अधिक जाया करती है। और वहाँ जाकर दो-दो, चार-चार घण्टे तक भावज के पास बैठा करती है। उसकी भावज का इलाज रमादास जी साध करते हैं, जो एक सावंज निक औपधालय में वैद्य हैं। ये साधु राम सनेही हैं

मारवाड़ का रक्त शोषण करने वाले मारवाड़ी भोजन-भट्ट



और एक बड़े धनवान व्यक्ति हैं। इन्होंने अपने नाम से अच्छे-अच्छे मकान और बगीचियाँ बना ली हैं, और राजा-महाराजाओं के समान ठाठ से खूब पेश करते हुए ज़िन्दगी का मज़ा लूते हैं। वैसे तो ये कोई उच्च श्रेणी के वैद्य नहीं हैं, पूरे लट्ट-भारथी हैं, परन्तु शहर में इनकी वैद्यक खूब चलती है। भगवान जानें, इसमें असली रहस्य क्या है, परन्तु इनके यहाँ इलाज कराने वालों में स्त्रियों की संख्या ही अधिक रहा करती है।

एक रोज़ रामकी अपनी भावज के पास बैठी हुई थी कि साधजी महाराज उसकी भावज को देखने आए। वे वहाँ रामकी को देखते ही चौंधिया गए। उसके खिले हुए यौवन को देख कर उनकी लार टपकने लगी। उन्होंने उसकी भावज से पूछा—क्यों काशीबाई, आज यह (रामकी की तरफ़ इशारा करके) तुम्हारे यहाँ कौन आई है; क्या यह तुम्हारी कोई लगती है? मैंने तो इसे तुम्हारे यहाँ पहले कभी नहीं देखा।

काशी—(हाथ जोड़ कर) राम महाराज! यह तो उनकी (मारवाड़ियों में स्त्री के लिए पति का नाम लेना पाप समझा जाता है। उनका यह विश्वास है कि पति का नाम लेने से उसकी आयु घटती है, और पति का नाम लेनेवाली स्त्री जल्दी ही राँड़ हो जाती है। इसी विश्वास के कारण उसने अपने पति का नाम नहीं

जोम की चिता को दहकाने वाले मारवाड़ी जैनियों के जती

लिया। और जैसा कि रिवाज है, उसने “उनकी” शब्द का प्रयोग किया) छोटी बहिन रामकीवाई है, (रोनी सूरत बना कर) आज दस-बारह वर्ष हुए पूर्व-जन्म के पापों के फल से बेचारी की यह दशा (रामकी के विधवा-वेश को लक्ष्य करके) हो गई है। हे भगवान्...! यह कहते हुए उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे और वह एक लम्बी साँस लेकर रोनी सूरत बनाए हुए चुप हो गई।

रमादास जी—(हमदर्दी प्रकट करते हुए) राम! राम!! (आँख मटकाते हुए, रामकी को सम्बोधन करके) देख बाई—राम जी की जो मर्जी होनी थी सो तो हो गई। अभी तू सयानी है, तेरी अवस्था नादान है, तेरी यह अवस्था कैसे निकलेगी। राम जी ही तेरी रक्षा करेंगे। (रामकी चुप रही, उसने कुछ जवाब नहीं दिया) राम-भजन किया कर, साधों के सत्सङ्ग से राम जी तेरे सब आनन्द हो जायें।

इस वार्तालाप के होने के बाद किसी ने कुछ न कहा; सब कोई चुप हो गए। कुछ क्षण के लिए वहाँ एकदम सन्नाटा हो गया। परन्तु बीच-बीच में रमादास जी महाराज एक लम्बी साँस अवश्य छोड़ रहे थे। करीब आध घण्टे के बाद महाराज जाने के लिए उठे और एक बहुत लम्बी साँस लेकर रामकी की ओर नेत्रों से कटाक्ष करते हुए यह कह कर चलते बने कि—अच्छा तो काशीबाई, मैं अब जाता हूँ। दवा टाइम पर ले लेना। सब ठीक हो जायगा।

महाराज चले तो गए, पर अपना कलेजा वहाँ रख गए। वहाँ से वे औपधालय न जाकर, सीधे राम-द्वारे गए और अपने शयनागार में जाकर लेट रहे। उनके मुँह से बहुत जोर-जोर से गर्म-गर्म श्वास छूटने लगे। मन ही मन वे विचारने लगे—“ओफ़, यह रूप! यह यौवन!! इतनी सुन्दरता!!! हाय, अब यह नवेली कैसे हाथ लगे, यह सोने की चिड़िया कैसे फँसे। इसके पाए बिना तो अब जीना ही दुश्वार है।” एकाएक उनके मुखमण्डल पर कुछ प्रसन्नता प्रकट होने लगी और साथ ही बड़े जोर से उन्होंने अपने एक शिष्य को आवाज़ लगाई “ओ देवा! अरे, ओ देवा!! वहाँ आ।” उसी क्षण यह कहता हुआ कि—“आया महाराज” एक हट्टा-कट्टा पहलवान-सा युवा, जिसकी उम्र करीब २५ वर्ष के होगी, सिर्फ

एक तीन इंच चौड़ी लँगोटी पहने हुए वहाँ आ उपस्थित हुआ और हाथ जोड़ कर एक किनारे खड़ा हो गया।

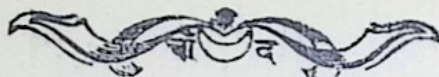
रमादास जी—“जा किसनकी को तो बुला ला। देख जल्दी से जाना, रास्ते में कहीं खड़ा मत हो जाना और उसे अपने साथ लेकर फौरन ही वापस आना।” देवा वहाँ से चला गया। वह अभी रामद्वारे का फाटक खोल ही रहा था कि बाहर से किसी ने जोर से आवाज़ लगाई—महाराज! राम महाराज!!

देवा एकाएक खुरशी से चौंक उठा। उसने आवाज़ पहचान ली। वह जिसे बुलाने जा रहा था, वह स्वयं ही वहाँ आ गई। उसने खुरशी से यह कहते हुए—“यह लो घर बैठे ही गङ्गा आ गई”—दरवाज़ा खोल दिया और किसनकी के भीतर घुसते ही, उसने उसे महाराज का आर्डर सुना कर शयनागार की ओर सञ्चेत किया। किसनकी उसे कुछ जवाब दिए बिना ही धड़धड़ाती हुई सीधी महाराज के शयनागार में चली गई। ज्योंही उसने शयनागार में पैर रक्खा, महाराज पलङ्ग पर से उछल पड़े और उसका हाथ पकड़ कर उसे बाल में दबोचे हुए पलङ्ग पर जा बैठे और उसका मुँह पकड़ कर चूम लिया। कुछ क्षण तो दोनों चुप रहे और एक-दूसरे को प्रेम-भरी निगाह से देखते रहे। इस बीच में महाराज ने दो-तीन दफ़े उसका अघर-रस पी लिया।

किसनकी—“(शान्ति को भङ्ग करके) आज इस क्रूर उतावली (जल्दी) क्यों हो रही है? कहीं कासीद नाखने जाना है क्या? (कुछ क्षण चुप रह कर) पर यह क्या महाराज! आपके चेहरे पर यह विषाद की रेखा क्यों दिखाई देती है? क्या कुछ गड़बड़ हो गई है? तबीयत तो ठीक है न? (महाराज के चेहरे को पुनः गौर से देख कर और उसी क्षण मुस्कराते हुए व्यङ्ग्यपूर्वक) मालूम होता है, आज किसी डाकण ने कलेजा काढ़ लिया।” इतना कह कर वह चुप हो गई और मुस्कराते हुए महाराज के चेहरे की तरफ़ ध्यान से देखने लगी।

रमादास जी—(एक गर्म श्वास छोड़ते हुए और पुनः उसका चुम्बन लेकर) प्यारी... (कलेजे पर हाथ रख कर)।

किसनकी—(बीच ही में) बस-बस, मैं समझ गई कि आज फिर किसी नए बुलबुल पर नज़र जमी है। हाँ, अब यह तो बताओ, वह है कौन?



रमादास जी—(एक दीर्घ श्वास लेकर) काशीबाई की ननद (किसनकी को ज़ोर से दबा कर तथा उसके गालों को ज़ोर से काट कर सिसकारी भरते हुए) रा..... (धीरे से).....की ।

किसनकी—(कुछ मुँह बना कर) कैह ! कलेजा शौंड़ डाकण ने काढ़ लिया और लगे बराबर खाने मुझे ! (पुनः मुस्कराते हुए) हौं तो, बोलो क्या हुबम होता है ?

रमादास जी—(प्रेम-भरी निगाह से) प्यारी क्या तू जान कर भी अनजान बनती है । (कुछ सँभल कर) बस जैसे बने वैसे उसको (पुनः प्रेम-भरी निगाह से देखते हुए) एक बार यहाँ लाओ, मैं तुम्हारा जन्म भर गुलाम बन कर रहूँगा । तुम्हें अपनी आँखों की पलकों पर रक्खँगा । (यह कह कर महाराज ने शयनागार का दरवाज़ा बन्द कर लिया) कुछ चण तक निस्तब्धता का साम्राज्य रहने के बाद किसनकी ने शान्ति भङ्ग की ।

किसनकी—(कुछ रुखाई से) फोड़ लिया न कर्म ! अब तो पित्त शान्त हुए । अगर मैं न आती तो अभी क्या दीवार से कर्म फोड़ते । बस कोई आँखों के सामने आना चाहिए, फिर तो चिकनी-चुपड़ी बातें बना कर कर्म फोड़े बग़ैर आपको शान्ति कहाँ ! (पलङ्ग से नीचे उतर तथा जाने को उद्यत होकर) अच्छा तो अब मैं जाती हूँ, अभी नई साड़ी पहन कर आई थी, सत्यानाश कर दिया ।

रमादास जी—(बीच ही में बात काट कर) क्या परवा है । क्या साड़ियों की कोई कमी है । अभी तुम जैसी साड़ी कहो, मँगवा दूँ । हौं, तो तुम जाओ पर (पलङ्ग से उठ कर किसनकी की ओर प्रेम-भरी निगाह से देख कर) प्यारी..... । (पुनः सँभल कर) देखो मेरी बात को भूल मत जाना और जैसे बने, काम को घनाना । यह लो (कोट की जेब से १००) रुपए का नोट निकाल कर किसनकी के हाथ में देते हुए) सौ रुपए, और जितने चाहिए ले लेना और जहाँ तक बन सके, जल्दी ही सौदा पटाना ।

किसनकी—(नोट को हाथ में लेकर) आप बेक्रिड रहें । यह बेचारी रामकी तो क्या चीज़ है, मैं अच्छी-अच्छी खानपानादियों को भी मिनटों में फँसा लाऊँ । वह तो बेचारी अभी तक भोली-भाली है, दुनिया की

अभी उसको हवा ही नहीं लगी है । और तिस पर भी वह घर में अकेली है । सिर्फ़ एक बुढ़ा ससुर है, जो आँखों से अन्धा है । देखना मैं कितनी जल्दी उसे उड़ा कर लाती हूँ । परन्तु हाँ इनाम क्या दोगे, बोलो ! (इतना कह कर वह चुप हो गई और महाराज के मुँह की ओर देखने लगी) ।

रमादास जी—(किसनकी के साथ-साथ शयनागार से निकलते हुए) इनाम ! इनाम का क्या कहना, इनाम मुँह माँगा पाओगी..... ।

किसनकी—(बीच ही में बात काट कर) लूँगी, बताऊँ ! (मुस्कराते हुए महाराज के गाल पर धीमी-सी चपत लगा कर शयनागार से लपक कर बाहर निकल गई और रामद्वारे के फाटक पर खड़ी होकर महाराज की तरफ़ देख कर ज़ोर से हँसने लगी) ।

रमादास जी—(हँसते हुए शयनागार से बाहर निकल कर, किसनकी की तरफ़ देखते हुए) अच्छा तो याद रखना, अबकी दफ़ा एक के बदले दो गुलाब के गालों पर (दाँत मँच कर) गुलाब के फूल लगाऊँगा ।

किसनकी हँसती हुई रामद्वारे के बाहर निकल गई !

२

किसनकी एक नीच जाति (मारवाड़ियों के मतानुसार) की स्त्री है । इसकी जाति के पुरुषों का काम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की टहल-चाकरी करना है, और स्त्रियों का काम उच्च जाति की स्त्रियों की टहल-चाकरी करना, उनके सिर में तेल लगाना, पाँव चापना एवं उनको नहलाना-धुलाना इत्यादि है । जिन घरों में वे जाती हैं, वे उनकी "विरत" के घर कहलाते हैं । इनकी जाति स्वभाव से ही बहुत चञ्चल एवं धूर्त होती है । ये जिस घर में टहल-चाकरी करने जाती हैं, उस घर की जवान बहू-बेटियों को इधर-उधर ले जाकर पाप-पङ्क में डुबोना तथा उस घर के मालिक वग़ैरह को अन्य स्त्रियों के साथ खड्डे में उतारना—इनका एक मुख्य व्यवसाय होता है । क्योंकि ऐसा करने से उनको काफ़ी आमदनी रहती है और उस घर पर इनका पूर्ण अधिकार-सा हो जाता है । किसनकी ने भी अपनी "विरत" के सेठ किसनगोपाल जी को अपने खुद के साथ दबोचा और तब फिर उनके लड़के की बहू को ले जाकर खड्डे में

उतारा। उस समय वह खुद नादान थी, इसीलिए पहले आप हूँ, नहीं तो ये लोग बड़ी मुश्किल से अपने आपको किसी के हाँसे में आने देती हैं। हाँ, अपनी इच्छा से अपना मतलब गाँठने के लिए ये चाहे जो कुछ कर सकती हैं। किसनकी की अवस्था इस समय करीब तीस वर्ष की है, लेकिन चटक-मटक में वह सोलह वर्ष की बालिकाओं को भी मात करती है !

किसनकी ने उस रोज़ रमादास जी महाराज के यहाँ से आने के बाद ही दूसरे रोज़ से ही रामकी के घर आना-जाना शुरू कर दिया और साधुओं के सत्सङ्ग को मीठी-सुपड़ी बातें बना कर उसे अपने फन्दे में फाँस लिया। अब वह उसे महाराज के यहाँ ले जाने का उपयुक्त अवसर देखने लगी। एक दिन वह घर से खूब बन-ठन कर निकली और रमादास जी महाराज के औपधालय में जाकर एक जुलाब की पुड़िया ले आई। वहाँ से वह रामकी के घर गई। रामकी उस समय खाकर उठी ही थी। उसने किसनकी को देखते ही पुकार कर कहा—आओ किसनकी, आज इस समय कैसे आई। क्या कोई काम है ?

किसनकी—(कुछ अनमने भाव से) नहीं तो, काम तो कुछ नहीं है, वैसे ही चली आई, (रामकी के डकार लेने पर) आज ये तुम्हें अपच की सी डकारें कैसे आती हैं। मुझे तो खुद को आजकल कुछ अपच-सा रहता है, इसलिए अभी रमादास जी के औपधालय गई थी। यह देखो (जुलाब की पुड़िया दिखाते हुए) वहाँ से दवा लेकर आई हूँ। बहिन, मुझे तो इस दवा से बहुत ही लाभ हुआ। तुम भी आज इसे लेकर (रामकी के हाथ में दवा देते हुए) देखो कैसा फायदा होता है।

रामकी—(पुड़िया न लेने के लिए हाथ खींचते हुए) नहीं बहिन, मुझे तो कुछ भी अपच नहीं है, मैं दवा-अवा नहीं लेती।

किसनकी—(उदासीन भाव से) देख बहिन, मैं तो तुम्हारे भले के लिए कहती हूँ, आगे तुम्हारी मर्जी। जैसी तुम्हारी इच्छा हो, करो। परन्तु देखो, रोग बढ़ जायगा तो मेरी तरह तुम भी फिर अस्पताल के बाहर गूती फाड़ोगी। इससे तो अच्छा है कि इसी समय तुम इस दवा को ले लो। तुम्हें मेरी सौगन्ध है।

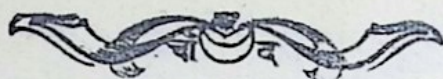
रामकी—(विवशता के भाव से) अच्छा तो लाओ, अब तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं लिए लेती हूँ !

किसनकी ने खुशी-खुशी जुलाब की पुड़िया दे दी और रामकी ने उसके कहने के मुताबिक गर्म जल से उसे खा लिया। इसके बाद कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं और तब फिर किसनकी खुशी-खुशी अपने घर चली गई। उस रोज़ शाम को रामकी को बहुत दस्त लगे, जिससे वह घबरा गई और किसनकी को बुला कर सब हाल कहा। उसने उसे अपच से पेट में आँव होना कह कर रमादास जी महाराज के यहाँ चलने को और दवाई लाने को कहा। उस समय जाने को तो वह राज़ी नहीं हुई, परन्तु किसनकी के बहुत समझाने पर प्रातः-काल जाने की बात ठहरी।

३

रामकी की तबीयत आज कुछ सुस्त है। कल शाम को बहुत दस्त लगने की वजह से वह कुछ अशक्त हो गई है। आज उसने जल्दी-जल्दी सब काम कर लिए। वृद्ध ससुर को जिमा कर चौका-वर्तन करने लगी और बर्तनों को शीघ्रतापूर्वक माँज कर यथास्थान रख दिया। यह सब कर चुकने के बाद वह अपने कमरे में जाकर बैठ गई और किसनकी के आने की राह देखने लगी। उसे बैठे हुए करीब बीस मिनट हुए होंगे कि किसनकी आ गई। कमरे में प्रवेश करते ही किसनकी की सबसे पहले नज़र उसके कपड़ों पर पड़ी। उसने रामकी के कपड़ों की ओर देख कर कहा—बहिन रामकी, तुम अभी कैसी निरी भोली है कि महाराज के यहाँ चलना है और कपड़े तुने तेलियों के से पहन रखे हैं। जल्दी से उठो और आदमी की तरह कपड़े बदल लो।

यह कहते हुए वह उत्तर की प्रतीक्षा में उसके पास जा बैठी। रामकी ने कुछ भी उत्तर न दिया। और वह वे ही कपड़े पहने चलने के लिए उठ खड़ी हुई। परन्तु किसनकी को यह कब मन्ज़ूर था। उसका तो उद्देश्य ही कुछ और था। अतः उसने रामकी को बहुत ऊँच-नीच समझाना शुरू किया। आखिरकार आध घण्टे की माथा-पच्ची के बाद रामकी ने कपड़े बदलने मन्ज़ूर किए। उसने एक नई सफ़ेद धोती और एक सफ़ेद कोट निकाला और उसे पहन कर किसनकी के साथ जाने को तैयार हो गई। वे दोनों घर से निकल पड़ीं। रामकी किसनकी के साथ चल तो पड़ी, परन्तु उसकी छाती धक्कने लगी।



वह ज्यों-ज्यों पैर बढ़ाती जाती थी, त्यों-त्यों उसकी छाती अधिक धड़कती जाती थी। किसी अदृष्ट अनिष्ट के होने की आशङ्का से उसे रह-रह कर मर्म-वेदना हो रही थी।

कुछ दूर तक तो किसनकी ने उससे कुछ नहीं कहा, चुपचाप चलती रही, परन्तु जब आधा मार्ग तय कर चुकी तब उसने रामकी से इधर-उधर की बातें शुरू कीं। बातों ही बातों में उसने रामकी को समझा दिया कि महाराज के पास प्रथम बार जाने वाली स्त्री से महाराज क्या-क्या बातें पूछा करते हैं और उसके साथ कैसा प्रेम-व्यवहार करते हैं। उसने यह भी बतलाया कि उन बातों को बिना किसी प्रतिकार के उसको क्या-क्या जवाब देना होता है। और वैसा न करने वाली स्त्री को घोर पाप होता है। रामकी ने उसकी सब बातें सुनीं और तोते की तरह अक्षरशः याद कर लीं। पर उसे यह पूछने की बिलकुल हिम्मत ही न हुई कि महाराज को ये सब बातें पूछने तथा वैसा व्यवहार करने का क्या प्रयोजन है? किसनकी की बातें खत्म होते-होते रामद्वारा आ गया और वह चुप हो गई।

जिस समय उन दोनों ने रामद्वारे के भीतर पैर रख्वा तो किसनकी मारे खुरी के फूले न समाती थी। पर रामकी की दशा उसके बिलकुल विपरीत थी। वह बहुत अधिक दहल गई और चक्कर खाकर गिरने लगी। पर तुरन्त किसनकी ने उसे धाम लिया और सीधे महाराज के शयनागार में ले गई।

आज शयनागार की छटा कुछ निराली ही है। विनायती इत्रों की सुगन्धि से सारा कमरा महक रहा है। रामकी वहाँ के झाड़ू-फ़ानूसों, बड़े-बड़े शीशों एवं मखमली गद्देदार पलङ्ग को देख कर भौंचक सी रह गई। अब उसे अपने सर्वनाश की आशङ्का प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगी। रमादास जी महाराज पलङ्ग के पास बिछे हुए गद्दे पर बैठे थे। उस पर दूध के समान सफ़ेद चाँदनी बिछी हुई थी। रामकी और किसनकी के शयनागार में प्रवेश करते ही महाराज उनकी अग्रवानी के लिए उठे और चाहा ही था कि रामकी का हाथ पकड़ उसे गद्दे पर ले जायें, परन्तु वह किसनकी के पीछे होकर दीवार के साथ सद गई, और मन ही मन वहाँ आने के लिए पछुताने लगी। मगर अब तो वह फँस चुकी थी। अतः

किसी तरह चुप रही। महाराज यह देख कर वापस गद्दे पर जा बैठे और इस प्रकार मुँह बना कर बैठ गए कि मानो उन्हें यह पता ही नहीं कि उनके शयनागार में कोई दूसरा व्यक्ति भी है। कुछ क्षण तक तीनों चुप रहे। अन्त में महाराज बोले—

“आ कुण ! रामकी आ, बाई आ” (प्रथम-मिलन के समय पति, पत्नी को अपने बाएँ अङ्ग में आकर बैठने को कहा करता है कि “बाई आ”—“अर्थात् मेरे बाएँ अङ्ग में आकर बैठ। इसी प्रकार ये साधु भी अपने दुष्ट-भाव से “बाई” शब्द की ओट में “बाई आ” कहा करते हैं) रामकी चुप रही, तब रमादास जी ने किसनकी की ओर कुछ इशारा किया और उसने रामकी का हाथ पकड़ कर उसे महाराज के पास बैठा दिया।

रमादास जी—(हँस कर तथा मुँह बना कर) “अहहहा, आ कुण ? रामकी ! आ नो साधों रे काम की। साधों बुलाई रात की और आई तू क्यूँ परभात की।” यह कह कर रमादास जी ने उसका हाथ पकड़ लिया और तब उसका अन्धे की तरह अङ्ग दटोलने लगे।

रमादास जी—(रामकी का हाथ पकड़े हुए तथा आँखों को मटकाते हुए उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गों को एक हाथ से छू-छू कर) रामकी !

रामकी—(कुछ घबराई सी होकर) राम महाराज !
रमादास जी—(रामकी की पहुँची पकड़ कर उसी प्रकार आँखें मटकाते अङ्ग-प्रत्यङ्गों को छूते हुए) ओ के ए, बाई तेरे।

रामकी—(कुछ खिसियानी सी होकर) राम महाराज ! ओ तो महाराज म्हारो पूँचों (कलाई)।

रमादास जी—(अट्टहासपूर्वक) ओ तो साधों को मन जँचो। (रामकी के हाथ में चूड़ी और कानों में बालियाँ न देख कर) ओ के ए रामकी ! तेरे बिलियों वाली कोनी के ?

रामकी—(असम्भजस के साथ) राम महाराज ! हूँ विधवा हूँ, महाराज !

रमादास जी—(पुचकारने के लिए मुँह बना कर) आछो ! आछो ! बाई आछो ! राम जी भली करी बाई। राम जी तेरे राजी हैं ए बाई ! साधों के आया कर ! साधों की सस्सज व सेवा किया कर। साधों की भाव-भक्ति ही सार है भोली। (कुछ क्षण चुप रहने के बाद) रामकी !

रामकी—राम महाराज ! जी महाराज !

रमादास जी—(उसी प्रकार आँखें मटकाते और अङ्ग-प्रत्यङ्ग टटोलते उसके स्तनों पर हाथ लगाते हुए) ए के है बाई तेरे ! ए गोल-गोल धनारों जित्यों क्या है बाई तेरे ?

रामकी—(मन्त्र-मुग्धवत्) आ तो महाराज गहारी छाती है ।

रमादास जी—(भोलेपन का भाव दिखाते हुए हँस कर आहहहा, आ तो साधों के मन भाती । (पुनः कुछ क्षण शान्त रह कर) रामकी !

रामकी—(तोते की तरह) राम महाराज !

रमादास जी—(मुँह बनाते हुए हाथों से कपोलों को छूते हुए) ए के है रामकी तेरे ?

रामकी—(उसी प्रकार मन्त्र-मुग्ध की तरह) ऐ तो महाराज गहारा गाल है ।

रमादास जी—(मुँह में पानी भर कर) आछो, बाई आछो । ए तो साधों काई माल । साधों के आया कर, साधों ने माल खवाया कर ; राम जी राजी होजासी ए तेरे भोली ! (पुनः कुछ क्षण चुप रह कर) रामकी !

रामकी—राम महाराज !

रमादास जी—(अङ्ग-प्रत्यङ्गों को टटोलते हुए कमर में हाथ डाल कर) आ काँई ए बाई तेरे ?

रामकी—(तोते की तरह) ओ तो महाराज गहारा आसो-पासो ।

रमादास जी—(उसकी कमर पकड़ कर अपनी जङ्घा-पर बैठाते हुए) जखे तो बाई साधों के मन भासो । जखेई तोथे साधों के नित आसो । (थोड़ी देर चुप रह कर पुनः) राम-भजन किया कर, रामकी साधों के आया कर, साधों री सेवा और मिले भिसरी-मेवा ।

रमादास जी ने किसनकी की ओर इशारा किया, वह शयनागार के बाहर चली गई और शयनागार का दर-वाजा बन्द कर दिया । कुछ क्षण तो रोने की आवाज़ आई, परन्तु धीरे-धीरे शान्त हो गई ।

४

उस रोज़ की घटना के बाद दो महीने तक रामकी को बहुत परचात्ताप रहा । इस बीच में किसनकी अक्सर उसके यहाँ आया करती और हर तरह से उसको समझा कर जखे शान्त किया करनी ।

पहले तो वह कई दिनों तक उससे बोली तक नहीं । परन्तु फिर उसकी मीठी-मीठी बातों में आकर, उसकी हम-दर्दी भरी बातों से जी बहलाने लगी । दो महीने के बाद रामकी महाराज के यहाँ पुनः जाने-आने लगी । अब तो दो वर्ष हुए वह निश्च नियमपूर्वक उनके यहाँ जाया-आया करती है । इस बीच में उसके एक बार पाप प्रकट हुआ, जिसे रमादास जी महाराज ने अपनी पेटेष्ट दवा से तुरन्त ही ठिकाने लगा दिया । परन्तु इससे उसके स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुँची ।

५

रामकी आजकल साधों की अनन्य भक्त है । राम-द्वारों में होने वाले प्रत्येक जागरण और उत्सवों में उसकी उपस्थिति अनिवार्य है । सिर्फ यहाँ ही क्यों, दादू-पन्थी, दम्भदास जी, सावधान राम जी के रामद्वारों में भी तो वह रामायण की कथा सुनने तथा प्रत्येक पूर्णमासी के रोज़ जागरण करने जाया करती है । कथा में वह सबसे अधिक भेंट चढ़ाया करती है ।

हालाँकि रमादास जी को रामकी के अन्य रामद्वारों में जाने, जागरण करने तथा कथा में भेंट चढ़ाने से कोई व्यक्तिगत छति नहीं थी । परन्तु उनसे सौतियाढाह नहीं सहा गया और उस रोज़ जब वह दम्भदास जी के यहाँ कथा सुनने गई तो दूसरे रोज़ सुबह ही उनकी आपस में तकरार हो गई । वास्तव में तकरार होनी भी चाहिए थी । क्योंकि रामकी उस रात को कथा समाप्त होने के बाद दम्भदास जी के यहाँ ही रह गई थी ।

दम्भदास जी वैसे तो बहुत सीधे दीखते हैं, परन्तु वे जब कथा बाँचते हैं तो श्रोता स्त्रियों को लक्ष्य कर-करके शृङ्गार-रस वर्णन करने में भर्तृहरि और कालिदास को भी मात कर देते हैं । इसीलिए तो उनकी कथा सुनने अधिकांश स्त्रियाँ ही आया करती हैं ! पुरुष तो उँगलियों पर गिनने लायक आते हैं । वे भी अधिकांश में वैसे ही लुच्चे-लबाड़े या गुण्डे-बदमाश होते हैं । हाँ, कुछ छोटी जाति के बूढ़े भलेमानुष भी आ जाया करते हैं । इनकी ज़ास कथा सुनने वालियों के लिए कथा-भवन के ऊपर के कमरे (जो हर तरह से पेश के सामानों से सजे रहते हैं) रिज़र्व रहते हैं । कथा समाप्त होने पर वे प्रत्येक

(शेष पृष्ठ २८१ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

मारवाड़ का खंग और तराजू

[ज़रवा-नरेश श्रीमान् गोपालसिंह जी राष्ट्रवर]



मारवाड़ देश के अनेक विरद हैं, जिनमें से एक विरद "नराँ समुद्र" है। यानी जैसे समुद्र का नाम रखाकर इसलिए है कि उसमें रत्न उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार मारवाड़ को भी यह उपमा इसलिए दी गई है कि यह नर-रूपी रत्नों का

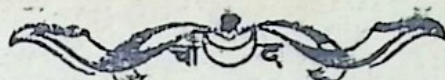
आकर था। यह विरद इस प्रान्त का बहुत प्राचीन है, जोकि यहाँ के प्राचीन साहित्य में इसके लिए उपयोग किया गया है। परन्तु खेद है कि यहाँ का साहित्य ही अन्धेरखाते में पड़ा हुआ है। क्योंकि उन नर-रत्नों की वर्तमान पतित सन्तान राजपूत लोग जब अपने उन पूजनीय पूर्व-पुरुषों का नाम भी भूल गए, तो उनसे उस साहित्य को प्रकाश में लाने की आशा कैसे की जा सकती है? इसलिए यह विरद सर्वसाधारण की जानकारी में कम आया, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि एक समय यह विरद इस प्रान्त के लिए पूर्ण रूप से घटता था। इस प्रान्त के "नराँ समुद्र" विरद के प्रमाण देकर लेख को बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह इतिहास-प्रसिद्ध मत है कि इस प्रान्त में ऐसे अनेक प्रातः स्मरणीय पुरुष हो चुके हैं कि जो मनुष्य-जाति के यश-रूपी मुकुट में मूल्यवान् उज्ज्वल रत्नों के समान सदा चमकते रहे हैं और जब तक मनुष्य-जाति का इतिहास रहेगा, सदा चमकते रहेंगे।

देश-काल-पात्र के अनुसार जिस कर्त्तव्य के पालन करने की आवश्यकता है, उसी को पालन करके जो उच्च मनुष्यत्व का परिचय देते हैं, वे ही पुरुष उच्च नर-रत्नों की गिनती में आते हैं। जिस समय वे नर-रत्न उत्पन्न हुए थे, उस देश-काल-पात्र में और वर्तमान देश-काल-पात्र में बड़ा अन्तर है। यह समय सर्वथा उसके विपरीत है। उस समय अधिकांश में विश्वासघात, धूर्तता और व्याज-व्यवहार रहित प्रत्यक्ष और नित्यात्मक जातीय सह-योग्य मूल्यमानों और हिस्दुओं के बीच में चल्ता था।

उस समय जाति-सङ्घर्षण में विजय पाने के लिए समस्त सांसारिक मोह-माया को तृणवत् त्याग कर, प्राणों को हथेली पर रख कर, हृद-हस्त से खङ्ग पकड़ कर कर्म-क्षेत्र में आगे पैर बढ़ाना ही सर्वोच्च कर्त्तव्य था। जो कर्मवीर महापुरुष इस कर्त्तव्य का पालन कर गए, उन्होंने उस महा कठिन और घोर विपत्ति के समय में आर्य-जाति, आर्य-धर्म और आर्य-देश की रक्षा की।

कोई माने या न माने, परन्तु चार वर्ष की व्यवस्था किसी एक देश व जाति के लिए ही नहीं बनाई गई। किन्तु वास्तव में यह आर्य-सिद्धान्त पृथ्वी पर प्रत्येक देश के लोगों पर घट सकता है और इसी के अनुसार कर्म-व्यवस्था चल रही है। ब्राह्मण-धर्म, क्षात्र-धर्म इन सबमें प्रधान हैं, जिनके आधार पर मनुष्य-जाति की व्यवस्था और उन्नति निर्भर है। जब तक भारतवर्ष में इन दोनों धर्मों का प्राबल्य रहा, तब तक यह देश संसार में शिरोमणि होकर रहा। इन दोनों धर्मों ने इस देश में महत् कार्य सम्पादन किए! पर परिवर्त्तनशील संसार के परिवर्त्तन-चक्र में देश-काल-पात्र के अनुसार सदा एक ही धर्म की प्रधानता नहीं रहती। देश-काल के अनुसार लोगों के सामने नवीन कार्य-क्षेत्र खुल जाता है और उस समय वही धर्म और उसके मानने वाले प्रधानता प्राप्त कर लेते हैं। अथवा यों कहना चाहिए कि जिस प्रकार के धर्म-पालन के लिए देश-काल-पात्र अनुकूल हैं और प्रकृति से ही जो लोग उसके अनुयायी हैं, वे ही उस समय में प्रधानता प्राप्त कर लेते हैं।

जब ज्ञान-विज्ञान के विकास के अनुकूल देश-काल था, तो यहाँ के पूजनीय ब्राह्मणों ने वे आविष्कार और वे कार्य कर दिखाए जिनकी समानता संसार में आज तक कोई नहीं कर सका। परन्तु आज के समय में इस देश में वास्तविक और समयोचित विद्या की उन्नति और विकास के लिए सुश्रवसर प्राप्त नहीं है। श्री० स्वामी विशुद्धानन्द जी, सर जगदीशचन्द्र वसु, सर प्रफुल्लचन्द्र राय और सर रमणा आदि विज्ञानवेत्ताओं के लिए

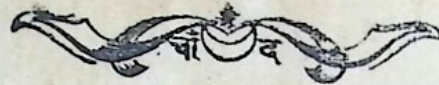


अपनी विद्या और विज्ञान के विकास के लिए वह सुभीते और सामग्री इस देश में प्राप्त नहीं हैं, जो यदि वे यूरोप में जन्म लेते तो वहाँ उनको प्राप्त हो सकते। यदि इन लोगों ने यूरोप में जन्म लिया होता तो इनका यश संसार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल जाता।

छात्र-धर्म की जब इस देश में प्रधानता थी तब ब्राह्म-धर्म भी उन्नति पर था और उस समय छात्र-धर्म के अनुयायियों ने इस देश को सर्वोपरि बना दिया था। उस समय बर्मा की पूर्वी सीमा से लेकर अफ़ग़ानिस्तान की पश्चिमी सीमा तक के समस्त प्रदेश भारतवर्ष के अन्तर्गत थे और आर्यों ने बैबिलन और कुस्तुनतुनिया तक को अपना उपनिवेश बना लिया था। पर परस्पर की फूट और विदेशियों के आक्रमणों से भारतवर्ष गिरते-गिरते मुसलमानों के आधिपत्य में आ गया और यहाँ उनका राज्य स्थापित हो गया। इस देश की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए हिन्दुओं का मुसलमानों के साथ घोर संग्राम होने लगा। हिन्दू-जाति के लिए यह बड़ी विपत्ति का समय था, परन्तु उस समय हिन्दू-जाति वर्तमान समय की भाँति छात्र-धर्म से शून्य नहीं हो गई थी। मुसलमानी राज्य-काल के आरम्भ से लेकर अन्त तक (अज़रेज़ी-राज्य आरम्भ होने तक) सैकड़ों वर्षों तक राजपूताने ने हिन्दू-जाति की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, स्वतन्त्रता के लिए आत्मत्याग, वीरता, साहस और बलिदान के अतुलनीय कार्य कर दिखाए। इन गुणों का जो श्रेय और यश राजपूताने ने प्राप्त किया है वैसा दूसरे प्रान्त प्राप्त नहीं कर सके। महाराष्ट्र प्रान्त में हिन्दू-जाति का पुनरुत्थान और भारतवर्ष से मुसलमानी साम्राज्य के उखाड़ने का श्रीगणेश करने वाले छत्रपति शिवाजी भी राजपूताने के राज्य-वंश के ही थे। यह वही समय था कि जिसमें उत्पन्न हुए नर-रत्नों के कारण ही इस प्रान्त को 'नरों समुद्र' का विरद प्राप्त हुआ। यह बात इतिहास से भली-भाँति सिद्ध है। उस समय यहाँ के राजपूतों ने उच्च उद्देश्य और सिद्धान्त को लक्ष्य में रख कर कर्त्तव्य-पालन के लिए सांसारिक वैभव को त्याग दिया था और अपने प्राणों की बलि देने में पराकाष्ठा कर दी थी। महाराणा प्रतापसिंह, राजसिंह, महाराजा जसवन्तसिंह, राव जयमल, वीर-शिरोमणि राव दुर्गादास राठौड़,

अमरसिंह आदि का वर्णन इतिहास में प्रकट हो चुका है और इस कारण लोग उनको जानते हैं। परन्तु वर्तमान राजपूतों की अकर्मण्यता से उस समय के अनेक नर-रत्नों के महत्वपूर्ण आत्म-त्याग के चरित्र और इतिहास प्रकाशित नहीं हो सके हैं और इसलिए लोगों को उनके विषय में कुछ भी मालूम नहीं है। मुसलमानों के हाथ में गए हुए मेवाड़-राज्य के ऊँटाले नामक गढ़ को पुनः हस्तगत करने के लिए जो युद्ध हुआ था, उसमें देवगढ़ और भीड़र के सरदारों ने बड़ा पराक्रम दिखाया था। कर्नल-टॉड साहब ने "टॉड राजस्थान" इतिहास में उनका जो उल्लेख किया है, वह देखने योग्य है। इस उल्लेख के अन्त में टॉड साहब ने लिखा है कि "इस प्रकार के उदाहरण मारवाड़ के वीरों के बहुत मिलेंगे।" टॉड साहब के उस कथन को स्मरण करके मैं भी एक उदाहरण यहाँ देना चाहता हूँ, जो कि परबोकवासी सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुन्शी देवीप्रसाद जी ने मेरे पास लिख भेजा था।

मारवाड़-राज्य में प्रसिद्ध राव जयमल जी की सन्तान का भकरी नाम का एक ठिकाना (जागीर) है। वहाँ के ठाकुर साहब का नाम राठौड़ दानीदास जी था। दानीदास जी एक दिन घोड़े पर सवार होकर अकेले ही अपने गाँव से मील दो मील दूरी खाने को गए थे। उस समय गुजरात से लौटती हुई बादशाही सेना वहाँ होकर दिखी जा रही थी। सारी सेना एक साथ नहीं थी, आगे-पीछे कुछ मीलों के अन्तर पर चल रही थी। दानीदास जी ने उस सेना की टुकड़ी के मुसलमान-अधिकारी और सैनिकों को यह बात करते हुए सुना कि—“इस देश (मारवाड़) में अब बादशाही तोपें खाली कराने वाला कोई योद्धा नहीं मिला। हमारी तोपें यहाँ होकर भरी हुई वापस जा रही हैं। क्योंकि इस देश में तो बादशाह से विग्रह करने वाला अब कोई बचा ही नहीं है।” (मारवाड़ के राठौड़ों में से कोई न कोई चाहे जब बादशाह से लड़ बैठते थे) दानीदास जी को यह बात असह्य हो गई। उन्होंने सेना के अधिकारी को आगे न बढ़ने को कहा और बोले—“तुम वहीं ठहर जाओ, आगे मत जाओ। हम तुमसे लड़ेंगे। अपनी तोपों को आ जाने दो, हम खाली करावेंगे।” उस सैनिक अधिकारी ने उस अकेले सवार की यह बात साधारण

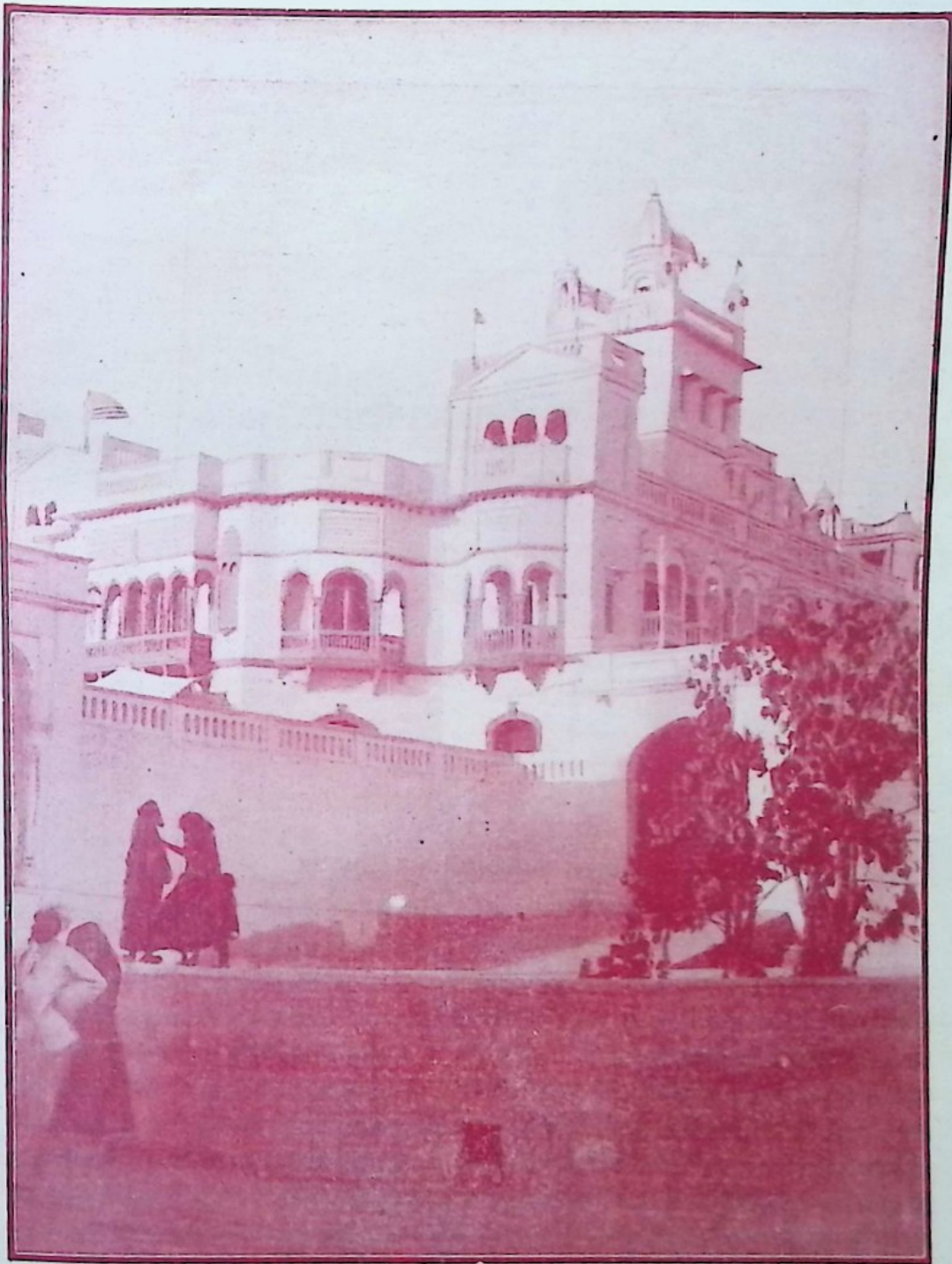


समझ कर हँसी में उड़ा दी। दानीदास जी लौट कर अपने स्थान में आगए, जोकि एक छोटा सा क़िला था, और अपने आस-पास के राजपूतों को एकत्रित कर युद्ध की तैयारी करने लगे। यह देख कर उनके निकटवर्ती हितचिन्तकों ने कहा कि आप निष्प्रयोजन यह कार्य क्यों करते हैं, आप जीत न सकेंगे। अकारण सिर पर विपत्ति लेकर क्यों प्राणों को खोते और घर को बरबाद करते हो? परम कर्तव्यनिष्ठ आत्म-न्यायी वीर दानीदास जी ने उत्तर दिया कि—“यह निरर्थक और निष्प्रयोजन कार्य नहीं है, इसमें बड़ा अर्थ है और मारवाड़-देश का बड़ा प्रयोजन भरा हुआ है। हम राठौड़ सीधी तरह मुगलों के ताबे नहीं हो गए हैं, किन्तु बहुत युद्ध होने के पश्चात् बादशाहों की अधीनता में आए हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि अपने देश और जाति का गौरव और महत्त्व हमने खो दिया है। इन मुसलमानों के चित्त में यदि इस प्रकार का भाव जम जाय कि—इस देश में बादशाह का सामना करने वाला अब कोई नहीं रहा है, अब हम मारवाड़ के लोग दीन-हीन और गरीब हो गए और हमारे भीतर राजपूती नहीं रही है, तो यह बहुत बुरी बात है। यदि यही भाव हमारे लिए बादशाह और मुसलमानों के चित्त में जमा रहे तो मुसलमानों की दृष्टि में हम गिर जायेंगे, जिससे हमारे वंश और हमारे मारवाड़ का गौरव और महत्त्व कुछ भी न रहेगा। यदि मेरे प्राण और सम्पत्ति इस युद्ध में चले जायेंगे तो मुसलमानों के हमारे प्रति जो बुरे विचार हैं, वे भी साथ-साथ चले जायेंगे और मैं अपने प्राणों के पुत्र में अपने वंश और देश की बात रख लूँगा।” अपने आदमियों को यह समझा कर दानीदास जी ने बादशाही सेनापति से कहलाया कि—“आपको हमसे लड़ कर जाना होगा?” बादशाही सेनापति ने अकारण युद्ध करना उचित न समझ कर इस सन्देश को टाल दिया। तब दानीदास जी ने सौ-पचास सवार भेज कर बादशाही सेना की एक टुकड़ी पर धावा करा दिया जिससे युद्ध प्रारम्भ हो गया। इनमें से पीछे से आने वाली दूसरी शाही सेना भी तोपों सहित आ पहुँची। दानीदास जी ने अपने क़िले से उस पर तापें चलाया प्रारम्भ कर दिया और बादशाही सेना को मार भगाया। परन्तु पीछे से सेना बराबर आकर शामिल होती रही और युद्ध जारी रहा। जब क़िले

में सामान न रहा तो वीर दानीदास जी ने स्वर्गारोहण की इच्छा से, प्रथा के अनुसार ऐसे अवसर पर किए जाने वाले पूजा-पाठ, दान-पुण्य आदि धार्मिक कार्य करके केसरिया वस्त्र पहने और चार सौ सवारों को लेकर बादशाही सेना पर धावा कर दिया। अन्त में वे अपने दादा प्रसिद्ध कृष्ण भक्त वीर-शिरोमणि राव जयमल जी के समान वीर-गति को प्राप्त हुए।

जब यह घटना दिल्ली के बादशाह और जोधपुर के महाराज को विदित हुई तो महाराज ने दानीदास जी के पुत्र को बुला कर खातिर की और बहुत सी भूमि जागीर में दी। बादशाह ने कहा कि यदि दानीदास जैसा वीर मारा न जाता और मेरे सामने आ जाता तो उसके सब क्रूर माफ़ करके अपने पास रख लेता।

आज का राजपूताना वह राजपूताना नहीं है। हममें और उसमें रात-दिन का अन्तर है। राजपूती यानी चान्न-धर्म की दृष्टि से देखा जाय, तो मनुष्यत्व की शोभा बढ़ाने में उस समय के राजपूताना के नर-रत्न उज्ज्वल मुकुटमणि थे तो वर्तमान राजपूताना के राजपूत उसके विपरीत मनुष्यत्व-सम्पादन की दृष्टि से सड़क बनाने में उपयोगी होने योग्य कङ्कड़ के समान भी नहीं हैं। परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि राजपूताने का राजपूत-समूह नितान्त निकम्मा ही बन गया है। अनेक उज्ज्वल नर-रत्न वहाँ पर अब भी दबे हुए पड़े हैं, परन्तु उनको बाहर निकाल कर और कठोर सान पर बिस कर अनमोल रत्न बनाने का कोई अवसर और साधन आजकल नहीं मिल रहा है। इस समय राजपूत-समूह की जो यह दशा हुई है, उसका मुख्य कारण देश-काल-पात्र की विपरीत अवस्था है। सैकड़ों वर्षों से जिस जाति के हाथ में उज्ज्वल कृपाण बनी रही, और जिसको रख देने के लिए कभी अवसर नहीं मिलता था, उस जाति के सामने एकाएक शान्ति-नामधारी, मोह-निद्रा से मूर्च्छित करने वाला समय आ उपस्थित हुआ और समस्त देश-काल-पात्र विपरीत हो गए। ऐसी स्थिति में उन नर-रत्नों को उस पापाण-वेर में से निकालने के लिए अनुकूल अवसर न रहा और न कठोर सान पर बिसे जाकर उज्ज्वल होने का साधन रहा। यही परिस्थिति है कि जिसने राजपूती को भुला कर आज के राजपूताने को उससे विपरीत बना दिया। वे विचार-भाव और संस्कार



बिड़ला गैस्ट हाउस (अतिथि-गृह), पिलानी



विडला बोर्डिंग हाउस, पिलानी



राजा गोविन्दलाल पित्ती (सपरिवार)

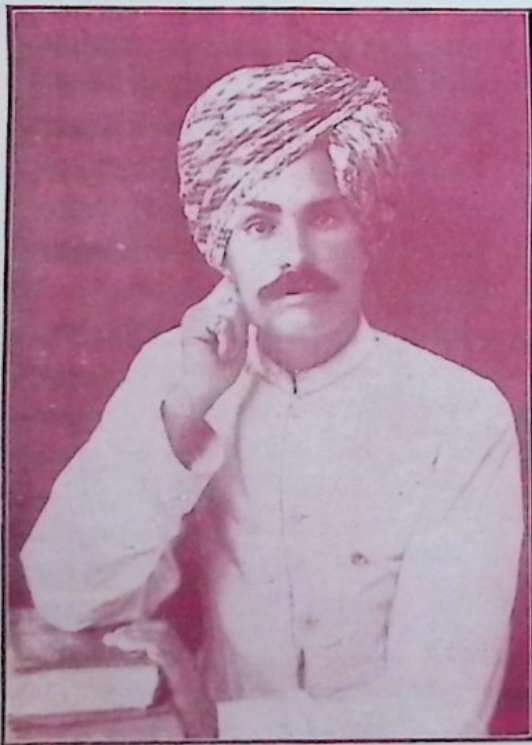
[आप बम्बई के प्रसिद्ध मारवाड़ी श्रीमन्त विद्वान्, सुधारक और रुढ़ियों के प्रबल विरोधी हैं। आप अनेकों संस्थाओं का सञ्चालन करके हिन्दू-समाज का हित-साधन कर रहे हैं।]



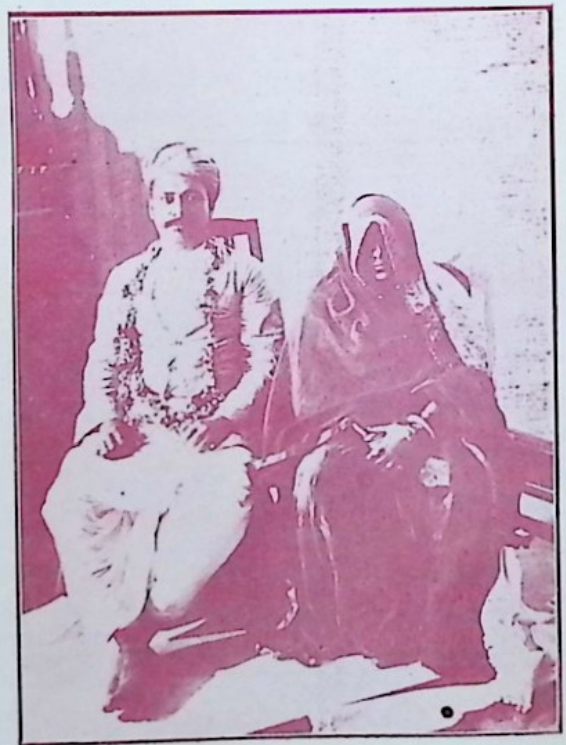
विज्ञायत में गत चार वर्षों से व्यापार तथा गीता और
शाकाहार का प्रचार करने वाले
सेठ रामेश्वर लाल जी बजाज



कला के अनन्य प्रेमी, जयपुर-राज्य के ताज़ीमी सरदार
और राजपूताना फ़ोटो आर्ट-स्टुडियो के सर्वस्व
पुरोहित रामप्रताप जी



“मारवाड़ का इतिहास” के लेखक तथा क्रान्तिकारी
सुधारों के पक्षपाती
धी० जगदीशसिंह जी गहलोत



मारवाड़ी-अग्रवालों में विधवा-विवाह
करने वाले प्रथम दम्पति
धी० नागरमल जी लील्हा और सौ० जानकीबाई

ही नहीं रहे कि जिनके आधार पर राजपूती बनी रहती। इतना ही नहीं, वरन् राजपूती यानी छात्र-धर्म भुला देने के लिए सारे विधानों की रचना कर दी गई—यह बात सभी विचारशील पुरुषों को भली-भाँति मालूम है। ऐसी दशा में आज के राजपूताने के राजपूत अपना स्वरूप, ज्ञान और कर्त्तव्य भूल कर कुछ और ही बन जायें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? सुख-शान्ति के समय में छात्र-धर्म यानी राजपूती उन्हीं देशों में बनी रह सकती है कि जो स्वतन्त्र और स्वाधीन हैं और जहाँ पर सुख-शान्ति और लोगों को कर्त्तव्य-परायण बनाए रखने का उत्तरदायित्व अपने पर ही है। सब बातों में सर्वथा पराधीन और परतन्त्र देश में उस तरह राजपूती बनी नहीं रह सकती। और राजपूती बनी रहने की दशा में देश परतन्त्र रह ही नहीं सकता।

वर्तमान विपरीत समय छात्र-धर्म को भुलाने वाला और वैश्य-धर्म की वृद्धि करने वाला है। वैश्य-धर्म की दृष्टि से देखा जाय तो राजपूताना इस कार्य में दूसरे प्रान्तों से पीछे नहीं है, किन्तु कुछ आगे ही बढ़ा हुआ है। व्यापार-व्यवसाय में राजपूताना के वैश्य-समूह के लोग श्रमों के समान चमक रहे हैं। क्योंकि आजकल के देश-काल-पात्र उनके अनुकूल और उन्हीं के उपयोगी हैं। उस समय के देश-काल-पात्र पूर्णरूप से कृपाण उठाने वालों के अनुकूल थे, तो आज के देश-काल-पात्र शस्त्र छुड़ा कर तराजू हाथ में उठाने वालों के अनुकूल हैं।

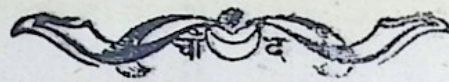
आज के समय में प्रथम तो राजपूती के संस्कार ही मन से निकाल दिए गए हैं। और यदि किसी के मन में हैं तो उनके विकास के लिए अनुकूल क्षेत्र नहीं है। अस्त्र-शस्त्र अपनी इच्छानुसार कोई रख ही नहीं सकता। अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा कहीं दी ही नहीं जाती। उच्च सैनिक-शिक्षा कोई प्राप्त कर ही नहीं सकता। विदेशों में जाकर सैनिक-शिक्षा प्राप्त करने का मार्ग आज तक सर्वथा बन्द था, अब बढ़ी कठिनता से थोड़े से आदमियों के लिए थोड़ा मार्ग खुला है, पर उससे कोई बड़ा परिणाम निकलने की आशा नहीं है। सेना में भरती होकर कोई उच्च अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता। यदि यह बातें न होती तो राजपूताने के राजपूतों में भी लॉर्ड रॉबर्ट, लॉर्ड किचनर, लॉर्ड हेग के समान वीरता दिखाने वाला कोई न कोई अवश्य निकल आता। इसके विपरीत वैश्य-धर्म

के लिए आजकल मार्ग खूब खुला हुआ है। वैश्य-धर्म के उपयोगी संस्कार बनाने और शिक्षा प्राप्त करने में कोई बाधा नहीं है। व्यापार के लिए तराजू, काँटा, कल, कारखाने इत्यादि सभी प्रकार की सामग्री प्राप्त हो सकती है। व्यापार-व्यवसाय की शिक्षा प्राप्त करने के लिए मार्ग खुला हुआ है, भारतवर्ष और विदेशों में जाकर बढ़ी से बढ़ी शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। ब्रिटिश-राज्य के किसी भी भाग में रह कर मनमाना व्यापार-व्यवसाय कर सकते हैं और लखपती-करोड़पती होकर अपनी उन्नति कर सकते हैं।

इस समय इस देश के लिए धर्म-बल, विद्या-बल और खज्ज-बल—तीनों प्रकार के बलों का प्रयोग फलीभूत नहीं हो सकता। न तो अशोक के समान कोई अपने धर्म को वैसे फैला सकता है, न रामदास व गोविन्दसिंह के समान वैसी शिक्षा दे सकता है और न दुर्गादास और शिवाजी के समान खज्ज-बल से कार्य सिद्ध कर सकता है।

उस ज़माने में भले और बुरे अधिकांश कार्य बाहु-बल या खज्ज-बल से हो जाते थे। किसी की सम्पत्ति या भूमि यदि हरण की जाती थी तो कृपाण के बल से ही, और यदि अपनी भूमि और सम्पत्ति की रक्षा करते थे तो भी कृपाण के बल से ही। परोपकार और किसी अन्य का हित-साधन आदि बड़े-बड़े कार्य भी प्रायः खज्ज द्वारा ही सम्पादन होते थे। उन दिनों में बाहु-बल ही प्रधान था। यहाँ तक देखने में आता है कि खज्ज-बल से किए हुए डाकुओं और लुटेरों के काम, जिनमें सद्-देश्य अथवा पुण्य का नामो-निशान भी नहीं, वे भी तलवार के बल से किए जाने के कारण प्रशंसनीय माने जाते थे। पुराने समय की बात तो दूर रही, किन्तु अभी अङ्गरेजी राज्य के समय में, विक्रम सम्बत् की वर्तमान शताब्दी के प्रथम भाग में, डैंगरसिंह जी और जुहारसिंह जी नाम के प्रसिद्ध डाकू शेखावादी में हो गए हैं, जिनके कार्य में किसी प्रकार का परोपकार या सद्देश्य का भाव न था, तो भी आज तक उनकी प्रशंसा के गीत गाए जाते हैं।

वर्तमान समय उस समय से सर्वथा विपरीत है और इसके अनुसार कार्य करने की राजपूतों की प्रकृति नहीं है। व्यापार, व्यवसाय और ध्याज-बड़े का काम करने की



प्रकृति राजपूतों में प्रायः न थी और न है। यह भी एक कारण इस समय उनकी अवनति का है। इस समय

द्वारा अथवा धन-बल द्वारा दूसरे का सर्वस्व हरण किए जाने के लिए पूर्ण स्वाधीनता है और मार्ग खुले हुए हैं।

बल-द्वारा परोपकार का या कोई अन्य महत्वपूर्ण कार्य सम्पादन नहीं किया जा सकता। उस समय जो बल खज्र में था, आज वह बल अर्थ (धन) में है। जो कार्य आज राजपूती नहीं कर सकती, खज्र नहीं कर सकता, वह कार्य आज धन-द्वारा हो सकते हैं। आज धन के द्वारा धार्मिक संस्कार फैलाए जा सकते हैं, धर्म का प्रचार किया जा सकता है, विद्या-प्रचार किया जा सकता है। धन के द्वारा लोगों में राजपूती यानी वीरता के संस्कार उत्पन्न किए जा सकते हैं और वीरता की शिक्षा दी जा सकती है। धन के द्वारा अख-शस्त्र चलाना सिखाया जा सकता है। धन के द्वारा देश की कला-कौशल, खेती की वृद्धि की जा सकती है। इस समय सारे सुकार्य धन से सम्पादन हो सकते हैं। इस समय खज्र-बल, या बाहु-बल से

स्वार्थ-साधन करना या किसी की सम्पत्ति हरण करना दुरवनीय और महापाप है। परन्तु युक्ति और व्याज-बड़े

कर अपने लाभ के लिए उसे इस देश में बेचने का कार्य व्यापारी-वर्ग द्वारा ही किया जा रहा है। राजाओं का

The Bombay Chronicle

THURSDAY, MAY 30, 1929

STAND BY THE "CHAND"

We note, without surprise, that the Director of Public Instruction, U. P., has issued a circular to all Inspectors of schools in the province declaring that the well-known Hindi monthly, *Chand* "is no longer approved for use in schools and should not be purchased by any recognised school under you." The latest ban is no doubt a sequel to the proscription of the book, *Bharat Men Angrezi Rajya*, which was published by the *Chand* office. In a sense the ban is a tribute to the worth of the *Chand*. In fact the *CHAND* is one of the best Hindi magazines in India and is by far the best devoted to the cause of Indian womanhood. It has therefore been a most popular magazine among Hindi-knowing people all over India. In common with various other journals we have had several occasions before to commend it to the public. We feel it necessary to say now that it is the duty of the public to help the magazine and prevent it from being victimised by Government. The U. P. Government's ban may prevent not only Government schools but all recognised schools in the provinces, including even the unaided ones, from purchasing the magazine. But it shall not prevent the senior students and teachers and the public from continuing to read it.

पाँच सौ रुपये मूल में देकर, उससे दस-बीस गुना व्याज बढ़ा कर और न्यायालयों द्वारा डिग्री प्राप्त करके किसी की सम्पत्ति हरण की जा सकती है। राजपूती यानी कृपाण-बल से प्राप्त की हुई सैकड़ों वर्षों से वंश-परम्परागत चली आती हुई भूमि, रियासतें, ठिकाने और कृषकों की भूमि आज धन-बल-सम्पन्न लोगों के हाथ में पड़ रहे हैं। इस समय राजपूती दिखा कर खज्र-बल से किसी राजपूत को एक बीघा ज़मीन प्राप्त होने का भी उदाहरण नहीं मिलता, परन्तु युक्ति और धन-बल द्वारा हजारों बीघा भूमि पर वैरियों का आधिपत्य होता हुआ निरन्तर देखने में आ रहा है। स्वदेश में उत्पन्न हुआ कच्चा माल सस्ते भाव पर खरीदा जाकर धन के लोभ से विदेशियों को व्यापारी-वर्ग द्वारा ही बेचा जाता है। विदेश से माल मंगा

स्वार्थपरता से किया हुआ अन्याय तो उनके राज्य की सीमा तक ही रहता है, परन्तु इस समय स्वार्थपरता से वैश्य-वर्ग द्वारा किए हुए अन्याय का प्रभाव राजा से लेकर गरीब तक सारे देश पर पड़ता है।

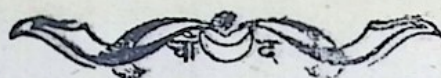
इसमें सन्देह नहीं कि उस समय राजपूती आनी खड्ग-बल से भला-बुरा जो कार्य किया जाता था, वह आज वैश्यों द्वारा धन-बल से किया जा रहा है। उस समय भू-सम्पत्ति सर्व-श्रेष्ठ और सर्व-प्रधान थी और उसी के साथ आधिपत्य, सत्ता, शक्ति, स्वत्व, अधिकार, प्रभाव आदि लगे हुए थे। परन्तु आज भू-सम्पत्ति नाम-मात्र के लिए लाभदायक रह गई है, और धन-सम्पत्ति ही सर्व-प्रधान तथा सर्व-श्रेष्ठ बन गई है और उपरोक्त सत्ता आदि सारी बातें धन-सम्पत्ति के साथ जा लगी हैं।

ऐसी दशा में भारवाड़ी-वैश्यों का कर्त्तव्य है कि जैसे भारवाड़ी-राजपूतों ने खड्ग-बल से उस समय कर्त्तव्य-पालन कर दिखाया था, वैसे ही वे लोग भी अपने धन-बल से देशोपकार का कार्य कर दिखावें। हमारे देश और जाति की आन्तरिक स्थिति देखी जाय तो इस समय राजपूत और वैश्य दो ही समूह प्रधान हैं। क्योंकि राजपूत तो हैं भू-पति और वैश्य हैं धन-पति, परन्तु राजपूत भू-पति होकर भी अधिकांश में निकम्मे बने हुए हैं। क्योंकि उनको अपने कर्त्तव्य और स्वरूप का ज्ञान ही नहीं रहा। भू-सम्पत्ति इस समय अधिक बन्धन का कारण हो रही है। आजकल एक तहसीलदार व पुलिस का थानेदार भी भू-स्वामी के विरुद्ध हो जाय तो उस पर ऐसी विपत्ति आ सकती है कि जिससे आजीवन पिण्ड बुडाना कठिन हो जाता है। इसके विपरीत व्यापार-वृत्ति इस समय अधिक स्वतन्त्र और अधिक लाभ देने वाली है। भू-सम्पत्ति-भोगी अधिकांश-वर्ग से जितने दबे हुए रहते हैं, व्यापारी-वर्ग को उतना दबना नहीं पड़ता। व्यापारियों का सम्बन्ध अपने नौकरों और दूसरे व्यवसायियों से ऐसा नहीं होता, जैसा कि भू-स्वामी और उनके इलाकों में रहने वाले लोगों का। भू-स्वामी अपने इलाके में रहने वाले लोगों के साथ का व्यवहार उस तरह से नहीं तोड़ सकते, जैसे कि व्यापार करने वाले वैश्य अपने साथियों

या नौकरों से तोड़ सकते और वृद्धि अधिकांश में वरस कि मनुष्य के हाथ के बाहर हुई तो पूरी आय हो जाती। घोर विपत्ति का सामना करने के लिए यह बात नहीं है। उन कार्यों पर निर्भर नहीं है। यदि अन्न का भाव बढ़ेगा कच्चे लो में कर्ज़ देकर और व्याज बढ़ा कर लेने का अवसर भी वैश्यों समय यदि भू-स्वामी के हाथ फिर उसे प्राप्त कर सकना मह वर्ग के लिए वैसी भयङ्कर बाधा व्यापार हाथ से निकल जाय सकते हैं; यदि एक स्थान के प्रकार की चृति पहुँचती है तो उन्नति कर सकते हैं; यदि निकल जाय तो बेटे व भाई बनावड़ी नाम से भी दूकान चा

इन थोड़े से उदाहरणों यह सिद्ध करना है कि वर्तमान ही है। इसलिए इस कर्म प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हैं आद्यों से अनुरोध है कि वे अपने समाज में जो दोष हों युक्ति और धन-शक्ति का सम भारवाड़-देश के यश को बढ़ा

उस समय भारवाड़ का समय में यश है तकड़ी तोले कर्म साधन होता था खड्ग साधन होता है तकड़ी तोले वर्तमान विपरीत समय दबी हुई राजपूती रूपी अग्नि किन्तु यह फिर प्रज्वलित दिखावेगी।



प्रकृति राजपूतों में प्रायः न थी और न है। यह भी एक कारण इस समय उनकी अवनति का है। इस समय

बल-द्वारा परोपकार का या कोई अन्य महत्वपूर्ण कार्य सम्पादन नहीं किया जा सकता। उस समय जो बल खज्ज में था, आज वह बल अर्थ (धन) में है। जो कार्य आज राजपूती नहीं कर सकती, खज्ज नहीं कर सकता, वह कार्य आज धन-द्वारा हो सकते हैं। आज धन के द्वारा धार्मिक संस्कार फैलाए जा सकते हैं, धर्म-प्रचार किया जा सकता है, विद्या-प्रचार किया जा सकता है। धन के द्वारा लोगों में राजपूती यानी वीरता के संस्कार उत्पन्न किए जा सकते हैं और वीरता की शिक्षा दी जा सकती है। धन के द्वारा अख-शख चलाना सिखाया जा सकता है। धन के द्वारा देश की कला-कौशल, खेती की वृद्धि की जा सकती है। इस समय सारे सुकार्य धन से सम्पादन हो सकते हैं। इस समय खज्ज-बल, या बाहु-बल से

स्वार्थ-साधन करना या किसी की सम्पत्ति हरण करना दुष्टनीति और महापाप है। परन्तु युक्ति और व्याज-बड़े

द्वारा अथवा धन-बल द्वारा दूसरे का सर्वस्व हरण किए जाने के लिए पूर्ण स्वाधीनता है और मार्ग खुले हुए हैं।

The Bombay Chronicle

THURSDAY, MAY 30, 1929

STAND BY THE "CHAND"

We note, without surprise, that the Director of Public Instruction, U. P., has issued a circular to all Inspectors of schools in the province declaring that the well-known Hindi monthly, *Chand* "is no longer approved for use in schools and should not be purchased by any recognised school under you." The latest ban is no doubt a sequel to the proscription of the book, *Bharat Men Angrezi Rajya*, which was published by the *Chand* office. In a sense the ban is a tribute to the worth of the *Chand*. In fact the *CHAND* is one of the best Hindi magazines in India and is by far the best devoted to the cause of Indian womanhood. It has therefore been a most popular magazine among Hindi-knowing people all over India. In common with various other journals we have had several occasions before to commend it to the public. We feel it necessary to say now that it is the duty of the public to help the magazine and prevent it from being victimised by Government. The U. P. Government's ban may prevent not only Government schools but all recognised schools in the provinces, including even the unaided ones, from purchasing the magazine. But it shall not prevent the senior students and teachers and the public from continuing to read it.

पाँच सौ रूपय मूल में देकर, उससे दस-बीस गुना व्याज बढ़ा कर और न्यायालयों द्वारा डिग्री प्राप्त करके किसी की सम्पत्ति हरण की जा सकती है। राजपूती यानी कृपाण-बल से प्राप्त की हुई सैकड़ों वर्षों से वंश-परम्परागत चली आती हुई भूमि, रियासतें, ठिकाने और कृषकों की भूमि आज धन-बल-सम्पन्न लोगों के हाथ में पड़ रहे हैं। इस समय राजपूती दिखा कर खज्ज-बल से किसी राजपूत को एक बीघा जमीन प्राप्त होने का भी उदाहरण नहीं मिलता, परन्तु युक्ति और धन-बल द्वारा हजारों बीघा भूमि पर वेश्यों का आधिपत्य होता हुआ नित्य-प्रति देखने में आ रहा है। स्वदेश में उत्पन्न हुआ कच्चा माल सस्ते भाव पर खरीदा जाकर धन के लोभ से विदेशियों को व्यापारी-वर्ग द्वारा ही बेचा जाता है। विदेश से माल मंगा

कर अपने लाभ के लिए उसे इस देश में बेचने का कार्य व्यापारी-वर्ग द्वारा ही किया जा रहा है। राजाओं का

स्वार्थपरता से किया हुआ अन्याय तो उनके राज्य की सीमा तक ही रहता है, परन्तु इस समय स्वार्थपरता से वैश्य-वर्ग द्वारा किए हुए अन्याय का प्रभाव राजा से लेकर गरीब तक सारे देश पर पड़ता है।

इसमें सन्देह नहीं कि उस समय राजपूती बानी खज्ज-बल से भला-बुरा जो कार्य किया जाता था, वह आज वैश्यों द्वारा धन-बल से किया जा रहा है। उस समय भू-सम्पत्ति सर्व-श्रेष्ठ और सर्व-प्रधान थी और उसी के साथ आधिपत्य, सत्ता, शक्ति, स्वत्व, अधिकार, प्रभाव आदि लगे हुए थे। परन्तु आज भू-सम्पत्ति नाम-मात्र के लिए लाभदायक रह गई है, और धन-सम्पत्ति ही सर्व-प्रधान तथा सर्व-श्रेष्ठ बन गई है और उपरोक्त सत्ता आदि खारी बातें धन-सम्पत्ति के साथ जा लगी हैं।

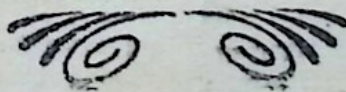
ऐसी दशा में मारवाड़ी-वैश्यों का कर्त्तव्य है कि जैसे मारवाड़ी-राजपूतों ने खज्ज-बल से उस समय कर्त्तव्य-पालन कर दिखाया था, वैसे ही वे लोग भी अपने धन-बल से देशोपकार का कार्य कर दिखावें। हमारे देश और जाति की आन्तरिक स्थिति देखी जाय तो इस समय राजपूत और वैश्य दो ही समूह प्रधान हैं। क्योंकि राजपूत तो हैं भू-पति और वैश्य हैं धन-पति, परन्तु राजपूत भू-पति होकर भी अधिकांश में निकम्मे बने हुए हैं। क्योंकि उनको अपने कर्त्तव्य और स्वरूप का ज्ञान ही नहीं रहा। भू-सम्पत्ति इस समय अधिक बन्धन का कारण हो रही है। आजकल एक तहसीलदार व पुलिस का थानेदार भी भू-स्वामी के विरुद्ध हो जाय तो उस पर ऐसी विपत्ति आ सकती है कि जिससे आजीवन पिण्ड छुटाना, कठिन हो जाता है। इसके विपरीत व्यापार-वृत्ति इस समय अधिक स्वतन्त्र और अधिक लाभ देने वाली है। भू-सम्पत्ति-भोगी अधिकांश-वर्ग से जितने दबे हुए रहते हैं, व्यापारी-वर्ग को उतना दबना नहीं पड़ता। व्यापारियों का सम्बन्ध अपने नौकरों और दूसरे व्यवसायियों से ऐसा नहीं होता, जैसा कि भू-स्वामी और उनके इलाकों में रहने वाले लोगों का। भू-स्वामी अपने इलाके में रहने वाले लोगों के साथ का व्यवहार उस तरह से नहीं तोड़ सकते, जैसे कि व्यापार करने वाले वैश्य अपने साथियों

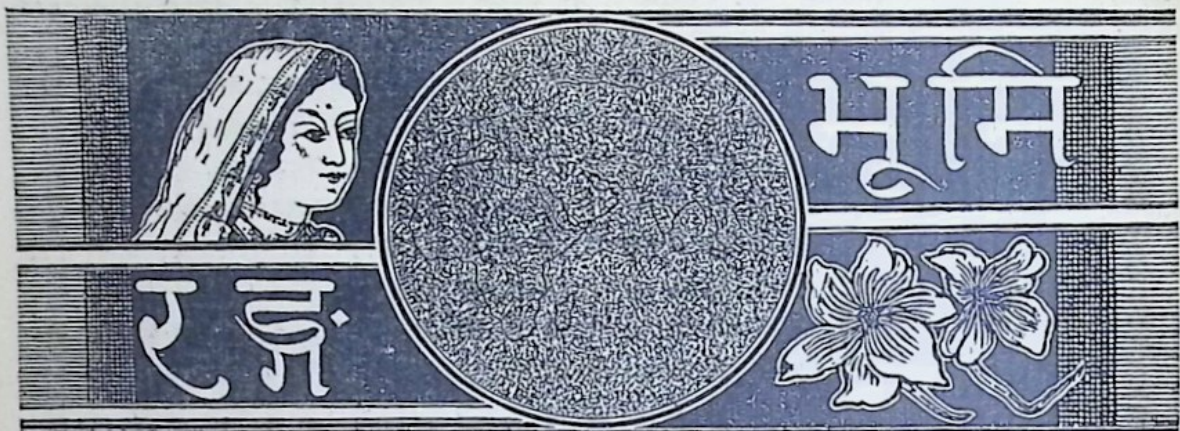
या नौकरों से तोड़ सकते हैं। भू-स्वामियों की हानि और वृद्धि अधिकांश में बरसात पर निर्भर रहती है, जो कि मनुष्य के हाथ के बाहर की बात है। अच्छी वर्षा हुई तो पूरी आय हो जाती है, यदि दुर्भिक्ष हो जाय तो घोर विपत्ति का सामना करना पड़ता है। परन्तु वैश्यों के लिए यह बात नहीं है। उनकी अधिकांश आय प्रकृति के कार्यों पर निर्भर नहीं है। यदि दुर्भिक्ष पड़ जाता है तो अन्न का भाव बढ़ेगा उनके लाभ उठा लेते हैं। ऐसे समय में कर्ज देकर और व्याज बढ़ा कर भू-स्वामी की भूमि हरस कर लेने का अवसर भी वैश्यों के हाथ आ जाता है। इस समय यदि भू-स्वामी के हाथ से भूमि निकल जाय तो फिर उसे प्राप्त कर सकना महा कठिन है। परन्तु वैश्य-वर्ग के लिए वैसी भयङ्कर बाधाएँ नहीं हैं। वे यदि एक व्यापार हाथ से निकल जाय तो दूसरा व्यापार कर सकते हैं; यदि एक स्थान में व्यापार करने में किसी प्रकार की चूति पहुँचती है तो दूसरे स्थान में जाकर उन्नति कर सकते हैं; यदि बाप के वाम से दिवाला निकल जाय तो बेटे व भाई के नाम से, यहाँ तक कि बनावडी नाम से भी दूकान चालू कर सकते हैं।

इन थोड़े से उदाहरणों के लिखने से मेरा उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि वर्तमान काल वैश्य-वर्ग के लिए ही है। इसलिए इस कर्म को करने वालों के लिए सब प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हैं। हमारा मारवाड़ी वैश्य-भाइयों से अनुरोध है कि वे इस अवसर से लाभ उठावें, अपने समाज में जो दोष हों उनको दूर करें, और अपनी युक्ति और धन-शक्ति का सम्योचित उपयोग करके अपने मारवाड़-देश के यश को बढ़ावें।

उस समय मारवाड़ का यश था खज्ज-बल में, वर्तमान समय में यश है तकड़ी तोले (तराजू) में। जैसे कि वीर-कर्म साधन होता था खज्ज से, वैसे ही व्यापार-व्यवसाय साधन होता है तकड़ी तोले या तराजू से।

वर्तमान विपरीत समय के प्रभाव से राज के ढेर में दबी हुई राजपूती रूपी अग्नि ऐसे ही नहीं दबी रहेगी, किन्तु यह फिर प्रज्वलित हो उठेगी और अपना तेज दिखावेगी।





हम और वह

हमने अपने लिए सब कुछ किया, और मरते दम तक करते रहेंगे। पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म की हमें परवा नहीं। हमारी यह अभिलाषा है कि हमारा धन बढ़े, नाम बढ़े इज्जत बढ़े, और हम जितने बढ़े बन सकें, बनें; जितने सुखी हो सकें, हों !!

यह सब हो गया, कुछ हमारी तक्रदीर ने जोर मारा; कुछ हमारे परिश्रम, सज्जनता, योग्यता ने मदद की; हम जो कुछ चाहते थे, मिला। हमारा बड़ा मान बढ़ा, राजदरबार में हमें कुर्सी मिलने लगी, बड़े-बड़े राजा और रईस हमारे मित्र हुए, लोग हमें सेठ और बड़े मानने लगे। हमने बड़ी भारी हवेली बनाई, हम करोड़पती हो गए, मोटरगाड़ी खरीदी। हमारी स्त्रियाँ हीरे-मोती से गुड़ियों की तरह सजीं। हमारे बेटे-पोते जज, बैरिस्टर और हाकिम बने। लोग हमें सरकार और हुजूर कह कर पुकारने लगे !

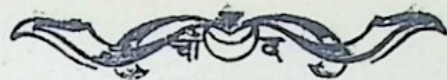
एक आदमी दुबला, मैला, नङ्गे पैर, फटे-हाल, वृद्ध, रोगी और दुःखी काँपता हुआ हमारी ज्योड़ी पर आया। हमारे मगारू नौकर ने उसे धक्का देकर निकाल दिया। इज्जतदार के द्वार पर बेइज्जत का क्या काम ? अमीर के द्वार पर शरीब क्यों आया ? जहाँ राजा और रईस दावत उड़ाते हैं, वहाँ शरीब कैसे ठुकरे खाएगा ?

सगर वह अधागा गया नहीं, बैठ गया। उसने धरना दे दिया, वह बिना मिले जाना नहीं चाहता था। नौकरों ने कहा—हुजूर ! एक शिखारी सरकार से मिलने

की ज़िद कर रहा है। हमारे घमण्डी बेटों ने जवानी के जोश में कहा—उसे धक्के देकर निकाल दो। पोते ने सरौते के समान ज़बान चलाते हुए कहा—उसे पुलिस में भेज दो। हमने मेहरबानी से कहा—उसे यहाँ हाज़िर करो। वह आकर सीधा तन कर खड़ा हो गया। न सलाम न पैगाम, वह खड़ा रहा। हमने कहा—तुम कौन हो ? उसने जवाब नहीं दिया। हमने कहा—क्या चाहते हो ? वह न बोला। हमने कहा—बैठो, वह खड़ा रहा। लड़के हँस पड़े। एक ने कहा—गूंगा है, एक ने कहा—पागल है, एक ने उसको तरफ़ मुँह विचका दिया। उसने देखा, उसके होंठ हिले, वह और सीधा तन कर खड़ा हुआ। मगारू और निर्भयता उसकी आँखों में थी, वह इस तरह खड़ा था जैसे कोई बड़ा भारी राजा किसी अपनी रिआया के घर खड़ा हो। उसे अपने फटे कपड़े और मैले वेश की परवा न थी। हमसे उसकी गुस्ताखी सही न गई। हमने कहा—जो कहना है, जल्दी कहो, ज़्यादा हमें फ़ुर्सत नहीं है।

उसने ताने के स्वर में, किन्तु दृढ़ता से कहा—क्या मैं आपको हुजूर कह कर पुकारूँ ? हमने नाराज़ होकर कहा—तुम्हारी जो मर्जी हो वही कह कर पुकारो। उसने कहा—आपके घर के नौकर-चाकर, ठाट और अमीरी को देखते, मैं शरीब अपनी मर्जी के माफ़िक आपको कैसे पुकार सकता हूँ। पर जब आप हुकम ही देते हैं, तब मैं आपको 'तुम' कह कर और तुम्हारा नाम लेकर पुकारना चाहता हूँ।

ऐसी बेअदबी ! हमारे सामने ! जिसे लाट साहब



औं कुर्सी देते हैं और हाथ मिलाते हैं। यह कैंगला हमारा नाम लेकर पुकारेगा? ताव-पेच खाकर हमने कहा—तुम हो कौन? उसने अकड़ कर ज़रा कराटे स्वर में कहा—मैं तुम्हारे बड़े भाई के जमाई का सगा बाप, तुम्हारा सम्बन्धी, तुम्हारे कुल का पूज्य हूँ। उम्र में तुम्हारे पिता से १० वर्ष बड़ा और उनका मित्र तथा रक्तक हूँ। वे मेरे पिता के सुनीम थे, उन्होंने ६ वर्ष उनकी चिलमैं भरीं और धोती धोई थी। मेरे पिता ने उनका विवाह किया था और तुमने बहुधा मेरी माता से रोटी का टुकड़ा पाया है। आज भी तुम्हारे बड़े भाई की लड़की मेरे लड़के का जूठन खा रही है। तुम अब इस गद्दी पर गोद आकर ऐसे हो गए?

हमारा मुख पहले लाल और पीछे पीला और फिर सफ़ेद हो गया। हमने बहुत कोशिश की कि उसकी आँख से आँख मिलावें, पर हो न सका, हमारी आँखें नीचे को झुक गईं।

उसने एक बार हमारी हवेली को सिर उठा कर ऊपर-नीचे देखा, नौकरों की चमचमाती वर्दी को, मोटर और गाड़ियों को देखा। फिर एक नज़र अपने फटे वस्त्र पर डाल कर कहा—आज तुम्हारे ये ठाट हैं! आज तुम बड़े आदमी बने। उसका नतीजा यह हुआ कि तुम्हारे नौकरों ने मुझे धक्के दिए! इन फटे कपड़ों की बदौलत!! गाँव से आया था, सुना तुम बड़े आदमी हो गए हो। एक बार तुम्हारा सुख आँख भर कर देखने की इच्छा थी। हम गरीब, हमारा सात पुश्त गरीब, हमारा खानदान गरीब, पर अनजान आदमी के कुत्ते को भी रूखी-सूखी रोटियाँ और ठण्डा पानी आधी रात देश में हमारे घर हाज़िर रहता है। क्या तुम सदा से ऐसे थे? तुम्हारे बाप और दादे भी क्या ऐसे थे? मैंने तुम्हारे बाप को देखा है, उनकी ज़िन्दगी मेरे-जैसे कपड़े पहनते बीत गई। पर ये नौकर उन्हें भी धक्के मारते? ओफ़! कैसा बढ़िया बड़प्पन है—कैसी बड़ी आबरू है। तुम कैसे बड़े आदमी हो! यह कह कर वह खिलखिला कर पागल की तरह हँस पड़ा। हमसे न रहा गया। हमने खड़े होकर कहा—आइए, पधारिए, माफ़ कीजिए, हमने आपको पहचाना नहीं। उसने कहा, तुमने नहीं देखा कि यह गरीब आदमी है, बूढ़ा आदमी है और किसी मतलब से हमारे पास आया है। तुम गरीबों की और

बूढ़ों की इज़्जत नहीं कर सकते? यह जान कर भी कि तुम्हारे बाप भी गरीब और बूढ़े थे! तुम आँख के अन्धे, सिर्फ़ अपना महल, धन और टीस-टाम देखते हो?

हाय! मगरूर हाड़-मांस के पुतले! तुम पर धिक्कार, तेरी धन-दौलत पर धिक्कार! हज़ारों-लाखों रोते हुआ मैं तू हँसता है, हज़ारों भूख से छटपटाते हुआ मैं तू पेट भर माल उड़ाता है, हज़ारों नज़्मों में, जो चिथड़ों से लाज ढक रहे हैं, तू रेशम और तनज़ोब पहनता है। तुझे इन पर तरस नहीं आता, दया नहीं आती। तुझे अपने ऊपर शर्म भी नहीं आती? ओफ़! पत्थर के हृदय-हीन पुतले, धिक्कार!! धिक्कार!!!

अगर मैं अपने शरीर को चीर कर उसका खून निकालूँ और तेरे शरीर के खून में उसे मिला दूँ, तब तुझमें और मुझमें अन्तर क्या है? यह तुझे मालूम हो, तेरी पुत्री और मेरे पुत्र ने आत्मा को, अपने रक्त-मांस को मिला कर एक प्यारा पवित्र बच्चा बनाया है। क्या तू उसे देख कर लज्जित होगा?

हमारे सिर में चक्कर आ रहा था। हमने देखा, यह मैले वेश में देवदूत खड़ा है। यह महान् पुरुष परमेश्वर का अवतार है। उसका वृद्ध-शरीर मैले और फटे वस्त्रों में ऐसा सज रहा था, जैसे बादलों में चन्द्रमा। हमने कहा—पूज्यवर! मान्यवर विराजिए, इस घर को अपने चरणों से पवित्र कीजिए। इस दास का जन्म सफल कीजिए, अपने चरणों की धूल इस घमण्डी सिर पर दीजिए।

उसने कुछ न सुना। वह कह रहा था, जगत् में ऐसा कौन सा पशु है, जो अपने लिए सब कुछ न करता हो। पर औरों के लिए त्यागने वाले महात्मा कहाँ हैं? नदी वह रही है, दुनिया उसका मीठा जल पीकर प्यास बुझाती है, यही उसकी शोभा है। वृक्ष फलते हैं, लोग उनकी छाया में बैठते हैं, डाली तोड़ते हैं, पत्थर मार कर फल गिराते हैं; पर वृक्ष इनके बदले मीठे फल देते हैं। यह उनका बड़प्पन है। लकड़ी जल रही है, पर लोगों की रसोई बन रही है। दिया जल रहा है, पर लोगों के घर में उजाला हो रहा है। ये छोटी-छोटी वस्तुएँ—परमेश्वर के राज्य में अपना आपा खोकर, जल-मर कर औरों के काम में आती हैं। यह उनका बड़प्पन



है, पर तेरा बड़प्पन क्या है ? तुने अपने लिए महल और सवारियाँ बनाई हैं, तेरे लाखों देश-भाइयों को जन्म भर पैर में जूते सुअस्सर नहीं होते। वे झोपड़ों में जन्म गुज़ारते हैं। तू छत्तीस प्रकार के व्यञ्जन नित्य खाता है और तेरे वे भाई केवल सूखे टुकड़ों पर सन्तुष्ट करते हैं। तू और तेरी सम्पदा किसी के मतलब की नहीं ! तेरे द्वार पर आकर तेरे भाई, तेरे मान्य, तेरे पूज्य व्यक्ति धक्के खाते हैं। मूर्ख तू अपने बड़प्पन पर फिर भी अभिमान करता है ? अभागो ! बदनसीब !!

वह देख ! तेरी चित्ता की लकड़ियाँ सूख रही हैं—वह देख ! मौत तेरी घात में है, तू अपने पथरों और सोने को देख-देख कर हँसता रह और वह अचानक तेरा गला आ दबाएगी। वह पहले तेरी आँखें छीन लेगी और तू इनमें से किसी को न देख सकेगा, जिन्हें देख कर तू इतरा रहा है। फिर वह तेरे कान छीन लेगी और तब अपने प्यारे बच्चों की आवाज़ भी नहीं सुन सकेगा। इसके बाद, धीरे-धीरे तेरी नस-नस में से प्राण खींचे जावेंगे। सब ठाट यहाँ रहेंगे। तेरे प्राण यम-पाश में बँध कर महाप्रभु के चरणों में दण्ड की आज्ञा सुनने जावेंगे। और यह अधम शरीर, जिसमें सदा धृष्टि वस्तु भरी रहती है। इसे तेरे प्यारे, जिन पर तू भरोसा करता है, फूँक कर चार कर आवेंगे !!!

महाप्रभु तेरी आत्मा को कर्म-फल देंगे। सम्भव है, तुम्हें सर्प की योनि मिले और किसी अंधेरे तहज़ाने की गन्दी और सड़ी जगह में, किसी पुराने खज़ाने की रक्षा करने का काम मिले। क्योंकि तू यहाँ भी खज़ाने से प्रेम काता है। और चँकि तू अपने भाइयों को नहीं देखता, सम्भव है तुम्हें अंधेरी सुरङ्गों का कोई अन्धा कीड़ा बना दिया जाय।

हमारा होश ठीक न था, हमने कहा—हे स्वामी ! जमा करो। हे प्रभु ! हे ज्ञानी ! सब समझ गया ! आँखें खुल गईं। रक्षा करो, रक्षा करो, हे महात्मन् ! भागं दिखाओ। मैं अधम-नुच्छा आदमी कदापि इस धन-दौलत का स्वामी नहीं। हमने धरती में गिर कर उस देव-पुरुष के चरण पड़ लिए।

वह पुरुष शान्त, अचल, खड़ा कुछ देर देखता रहा ! फिर उसने अपने होठ दिखाए और चला गया। हमें कर्तव्य की रेखा दीख गई है। हमने प्रतिज्ञा की कि जब

तक हमारा एक भाई भी दरिद्र और मूर्ख है, हम अपने को बड़ा आदमी नहीं समझेंगे। हम तुच्छाति-तुच्छ हैं। हमारा धन-दौलत, शरीर-प्राण—सब हमारी जाति और भाइयों का है। सर्व-शक्तिमान ईश्वर के सम्मुख हम यह प्रतिज्ञा करते हैं !!

* * *

विधवा

उस दिन एक स्त्री की अन्त्येष्टि में शरीक होने का अवसर मिला। मरने वाली की आयु ७५ वर्ष से भी अधिक थी। तीन मास से यह वृद्धा बीमार थी। एक बार यह मर गई थी। रात भर सुर्दा पड़ी रही। परन्तु प्रातःकाल—जब कफ़न-काठी आ गया तब स्नान करने के समय श्वास चलने लगा, उसके बाद वह नौ दिन तक जीवित रही।

यह नौ दिन उसने कैसे काटे, यह मैंने बहुत अच्छी तरह से देखा। मैं प्रायः नित्य उसे देखने जाता था। उस दिन थोड़ी चेष्टा से उसे चेतना हुई। मैंने औषधि पीने को कहा। उसने हाथ जोड़ कर जवाब दिया, मेरा धर्म मत बिगाड़ो, मैं राम जी के यहाँ जा रही हूँ। एक-दो दिन में चोला छूट जायगा। मैंने सबको दुःख दिया, अब सब दुःख दूर होंगे।

वृद्धा से मेरा सम्बन्ध था। अतएव मैं उसे खूब जानता था। यह अभागिनी अपने व्याह के २॥ वर्ष बाद विधवा हुई। उस समय इसकी उम्र १५-१६ वर्ष की रही होगी। विधवा होते समय चार मास का गर्भ था, वह गर्भ पूरा उतरा, कन्या हुई। वह कन्या अब भी जीवित है। अन्तिम समय उसे अपनी पुत्री की बहुत स्मृति थी। लड़की बुलाई गई। वह १५ वर्ष के लगभग उम्र की है। उसे पाकर वृद्धा ने फिर प्राण त्यागे।

विधवा होने के बाद यह अभागिनी अपने भाई के घर रही। उसके बाद भाई के पुत्र के। उसके मरने पर भाई के छोटे पुत्र के। सब जगह चौका-बासन करना, घर झाड़ना, वच्चों के मल-मूत्र उठाना ; प्रत्येक की थाली में बचे हुए जूठे टुकड़े खाना, या बासी, सड़ा-गला अन्न खाना ; सबकी गाली और धमकी सहना ; वच्चों से खूब तज़ की जाना, फिर भी मधुर वचन, अकपट प्रेम



और शान्ति तथा सहनशीलता बनाए रखना—यह इसका जीवन था !

इस तरह इस तपस्विनी ने अपने ५० वर्ष धीरे-धीरे काट दिए। वह प्रथम जवान हुई, फिर प्रौढ़ा और फिर वृद्धा। सब तृप्तान, सब तरङ्ग, जीवन के सब उतार-चढ़ाव इस वीर-नारी ने वीरतापूर्वक काट फेंके। यह भाग्यहीन, रूपहीन, सौभाग्यहीन, सुख और आनन्दहीन स्त्री अपने मैले वेश और महा अपवित्र जीवन में पवित्र बनी रही, शैतान को उसने इस कलिकाल में परास्त किया !

तन्दुरुस्त अवस्था में मैं उसे प्रायः देखता था। सोचता था—ओह ! कैसा कुरूप मुख और कैसा मधुर भाषण है ! कैसा उदार-प्रेम और क्षमा से परिपूर्ण हृदय है ! मैं बहुधा अपनी पत्नी से कहता था—अपना थोड़ा रूप इस बुढ़िया को दे दो और बदले में इसकी मधुर वाणी थोड़ी सी अपने लिए ले लो। मरते वक्त उस पर फूल बिछाए गए। मनों घृत-चन्दन और सुगन्धित द्रव्य के साथ वह जलाई गई।

शायद इन पचास वर्षों में आज उसे नई चूनरी और नए वस्त्र पहनने को मिले। वह ५० वर्ष तपस्या करके—फिर रङ्गीन चुनरी पहन कर—सुहागिन के वेश में परलोक को गई !

क्या परलोक कोई स्थान है ? वहाँ क्या उसका पति उसके लिए बैठा मिलेगा ? क्या इस दुःख, तपस्या और कठिन जीवन का उसे बदला मिलेगा ? उसे स्वर्ग प्राप्त होगा, उसके सञ्चित पुण्य का मूल्य मिलेगा ? मुझे इसी वृद्धा की बात का केवल विचार नहीं ! मैं कहता हूँ—ऐसी हज़ारों-लाखों अबलाएँ—बिना साँग की गाँएँ, धर्म और शान्ति के नाम पर जी रही हैं। और हम मर्द लोग उन्हें इस नारकीय, मैले और अपमानित जीवन में ज़बरदस्ती ढकेल कर, उन पर जीवन भर जुलम करते हैं—फिर भी नहीं लजाते !

‘विधवा’ एक पवित्र नाम है। ‘विधवा’ शब्द हिन्दू-धर्म का भूषण है। हिन्दू-धर्म को छोड़ कर विधवा के लिए विशुद्ध जीवन जगत् की किसी जाति में नहीं। परन्तु यह पवित्र जीवन बल और जोर-ज़लम से नहीं बनाया जा सकता। हम यह जानते और कहते हैं कि हम मर्द लोग सर्व-श्रेष्ठ हैं—रूप, विद्या, ज्ञान, अधिकार में हम स्त्रियों से बहुत श्रेष्ठ हैं। स्त्रियाँ अधम हैं, मूर्ख हैं। सदैव दबा कर

उन्हें रखना हमारा धर्म है—वे स्वतन्त्र होने के योग्य नहीं।

परन्तु हम इतना कहते हैं, फिर भी हम अपनी इन्द्रियों के दास हैं। काम, क्रोध, लोभ और मोह में हम डूबे हुए हैं। हमारी स्त्री के मरते ही श्मशान-घाट में सगाई और तेरही के दिन लग्न चढ़ जाती है !

श्रीम्र ही हम नई दुलहिन को लेकर, सहधर्मिणी को, जिसे वेद और अग्नि की साक्षी देकर जीवन की सज़िनी बनाया था, भूल जाते हैं। हम इन्द्रिय-वासना में डूबते हैं। और उधर स्वर्ग से आत्मा रोती है। हम ऐसे नीच, ऐसे स्वार्थी, ऐसे पशु, ऐसे निर्दयी और कामान्ध मर्द हैं !

मर्द कौन है ? जो पृथ्वी भर की आपदाओं से स्त्री-जाति को अभयदान देता है। उनकी रक्षा करता है। मर्द कौन है ? जो पृथ्वी भर में स्त्रियों को सर्वाधिक पवित्र, पूज्य और श्रेष्ठ समझ कर उन्हें ऐसे यत्न से रखता है, जैसे माली धूप से फूल को रखते हैं !

स्त्रियाँ लता हैं और मर्द वृक्ष हैं—वृक्ष के सहारे लता खड़ी होती है। स्त्रियाँ—दया, प्रेम और कोमलता की मूर्ति हैं, और पुरुष ज्ञान और साहस की। पुरुष का कर्तव्य है कि वह स्त्री को साथ लेकर धर्म, अर्थ और काम—इन त्रिवर्ग की प्राप्ति करे !

परन्तु ऐसा दीखता नहीं। हम जहाँ बेहया बन कर बूसरी, तीसरी, चौथी शादी बुझाते तक किए जाते हैं वहाँ निर्लज्ज बन कर छोटी-छोटी बलिका-विधवाओं को भी जन्म भर पवित्र जीवन से रहने का उपदेश देते हैं !!

अभागे मनुष्यो ! पवित्र जीवन किसे कहते हैं ? क्या तुम समझते हो ? क्या यह उचित नहीं है कि तुम जो अपने को सर्व-श्रेष्ठ समझते हो, स्वयं अपने जीवन को पवित्र बनाओ, जिन्हें देख कर स्त्रियाँ तुम्हारी नज़ल करें। क्योंकि वे मूर्ख, निर्बल और पतित हैं।

क्या यह भी सम्भव है कि तुम ज्ञानी होने पर भी इन्द्रियों के दास और पापात्मा बने रहो और स्त्रियाँ अज्ञानी बन कर भी पवित्र और धर्म को समझने वाली बनी रहें ? और यह भी क्या सम्भव है कि तुम पापी और व्यभिचारी बन कर भी श्रेष्ठ बने रहो और स्त्रियाँ धर्मात्मा और पवित्र बन कर भी, अधर्मी और नीच बनी रहें !!

क्या तुमने कोई ऐसा मर्द भी देखा है, जो ५० वर्ष तक इतने कष्ट, इतने दुःख, इतने अपमान सह कर भी मधुर-भाषी, प्रेममय और क्षमावान् तथा इन्द्रिय और मन को मन-वचन-कर्म से जीतने वाला बना रहा हो। यदि नहीं तो धिक्कार है तुम्हारी श्रेष्ठता पर, मर्दपने पर और बड़प्पन की डींग हाँकने पर !!

हे मनुष्यो ! तुम अपने को मर्द कहते हो ; मर्दपने की लाज रखने की चेष्टा करो ! तुम अपने को सर्व-श्रेष्ठ समझते हो—श्रेष्ठता की प्राप्ति करो। तुम सबके स्वामी हो, सब तुम्हारे अधीन हैं। तुम पवित्र बनो, त्यागी बनो, इन्द्रिय-विजयी बनो, मनस्वी बनो, तपस्वी बनो !

स्त्रियाँ देवी कहाती हैं। तुम्हें देव-पद मिलेगा। पहले भी संसार ने तुम्हें देवता कहा है। तुम्हारी स्त्रियाँ अब भी देवी हैं—पर तुम देवता नहीं हो ! शोक है ! आश्चर्य है !! अफ़सोस है !!!

*

*

*

बुद्ध और बाल

—००००००—

यह बात हम जान गए हैं कि जाति के बूढ़े लोग उन्नति की दौड़ में हमारे साथ नहीं दौड़ सकते। वे अविद्या और रुढ़ि के अंधेरे गढ़े में पड़े हुए, अपने दुःखदाई दिन काट रहे हैं ! यह अवश्य बड़े दुर्भाग्य की बात है, परन्तु इससे अधिक दुर्भाग्य की बात यह है कि वे मोह के कारण अपने बच्चों को भी उसी गढ़े में डाले हुए हैं। हमारी यह इच्छा है कि उनसे उनके बच्चे ज़बर-दस्ती छीन लिए जायें। उन्हें हम अपनी पीठ पर लाद कर उन्नति के मैदान में दौड़ें, उन्हें विद्या और उन्नति का मार्ग दिखा दें। हम यह समझें कि ये बच्चे हमारे बच्चे हैं, हमारी आत्मा के अंश हैं, हमारी आबरू के मोती हैं और हमारी तक्रदीर के अमिट लेख हैं !

ये बच्चे इस्पात के खम्भे हैं, ये जितने मज़बूत और बढ़िया होंगे उतना ही मज़बूत और बढ़िया महल हम आगे चल कर बना सकेंगे। हम जो कुछ हैं, गए-बीते हैं—अब हम कुछ नहीं बन सकते—परन्तु इन बच्चों को बना सकते हैं। हमने जो भूल की है, जो तजुबें किए हैं, संसार में जो धक्के और ठोकरें खाई हैं, उनसे इन बच्चों को सावधान कर देना हमारा पवित्र धर्म है।

जो अपनी आँखों के सामने अपने प्यारे बच्चों की कुर्बानी करते हैं, जो उन्हें विद्या और आनन्द की गोद से उठा कर मूर्खता और दुःख में ढकेलते हैं, वे क्या उन बच्चों के पिता कहे जा सकते हैं ? कदापि नहीं !!

उन बच्चों के सच्चे पिता वे हैं—जो उन्हें प्यार करके, उन पर तरस खाकर, उनकी धूल पोंछ कर, उनके मस्तक पर विद्या का मुकुट पहनावें; उन्हें योग्य, वीर, धर्मात्मा और बड़े आदमी बनावें; उनके ऊपर अपने तन, मन, धन को न्योछावर कर दें। निश्चय वे ही उन बच्चों के पिता हैं ! जन्म देने वाले माता-पिता तो केवल पाप के भागी हैं, जिन्होंने सिर्फ मोह या इन्द्रिय-वासना के बशीभूत होकर जीवात्मा को मनुष्य के चोले में कैद किया और उन्हें कीड़े-मकोड़ों और कौवे-कुत्तों की दूर का बना कर छोड़ दिया, कि वे बड़ी कठिनाई और बेहज़ज़ती से किसी तरह पापी पेट को भर सकें !

क्या आज मारवाड़ के वंश में ऐसे पुरुष पैदा हुए हैं, जो जाति के तमाम शरीर बच्चों के धर्म के माता-पिता बन सकें ; जो उनके दुःख पर दया करें; जो उन्हें विद्या का अमृत पिलावें और जो अपने गाढ़े पसीने की कमाई उन पर न्योछावर करें !!

ऐसे पुरुष, ऐसे देवता पुरुष !! क्या कोई हैं ? वे अपना नाम बोलें ! वे आगे बढ़ें !! आज मारवाड़ के लाखों बच्चे आँसू-भरी आँखों से, आशा भरे हृदय से उनकी ओर देख रहे हैं। क्या कोई वीर है, जो इन्हें डबने से बचावे ?

*

*

*

स्त्रियाँ

स्त्रियाँ इस संसार की सबसे बड़ी नियामत हैं ! पुरुष अनेकों प्रकार की चिन्ताओं और परिश्रम से चकनाचूर रहते हैं। यदि जगत् में स्त्रियाँ न होतीं, तो पुरुष कभी इतना कष्ट सह कर जीवित न रहते। पुरुष हिम्मत और दिलेरी का पुतला है और स्त्री दया और प्रेम की पुतली है !

जैसे शरीर में मस्तिष्क और हृदय—ये दो यन्त्र हैं, जिनसे सब ज़िन्दा रहते हैं, उसी प्रकार जाति में स्त्री हृदय है और पुरुष मस्तिष्क है। जिस आदमी का



पञ्चायत

क्रियादी—पन्चा सु म्हारी आ अर्ज है कि म्हे १४ मयनाँ तो अजमेर में रहयो, ने ७ मयनाँ सुमई रहयो, ने फेर म्हारी सुगाई रे टावर की कर हो गयो ! हमें आप पन्च-सरदार इनरो फेसबो करावें ।

(पञ्चायत में शोर)—सुनो शा ! जौ कोई बात !! म्हारी सुखों शा ! बामोश ! हाका मत करो !! सुनो शा ! सुखो शा.....

अन्तस्तल को गुदगुदाने वाली !

हृदय की कली खिलाने वाली !!

अपूर्व !

अनोखी !!

हास्य-रसपूर्ण पुस्तक !!!

[ले० श्री० प्रवासीलाल जी वर्मा, भूतपूर्व सम्पादक 'वर्माभ्युदय']



दुनिया की कान्ठों से जब कभी छापका जी उब जाय, छाप इस पुस्तक को उठा कर पढ़िए ; मुँह की सुर्वनी दूर हो जायगी । हास्य की अनोखी ज़ुदा जा जायगी । पुस्तक को श्री किष् विना छाप कभी न होंगे— यह हमारा दावा है । पुलक की ज़पाई और कानाज़ के बारे में प्रशंसा करना न्यब है । मूल्य तिक्र २)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

मस्तिष्क कमजोर होता है, वह पागल होता है। और जिस आदमी का दिल कमजोर होता है, वह आदमी मुर्दा होता है। इसी प्रकार जिस जाति की स्त्रियाँ अयोग्य होती हैं, वह मुर्दा और जिसके पुरुष अयोग्य होते हैं वह पागल।

पुरुष चाहे जैसा वीर हो—परन्तु स्त्रियों के आगे उसकी वीरता हार खाती है। जहाँ शास्त्रों में स्त्रियों को अबला कहा है, वहाँ स्त्रियों को चण्डिका-रूप भी दिया गया है। वास्तव में स्त्रियाँ जल के समान हैं—जो शान्त रहने पर अत्यन्त शीतल वृत्तों को तृप्ति देने वाली, मधुर और प्रिय होती हैं। पर जब जल में तूफान आता है, तब ऐसा भयङ्कर हो जाता है कि बड़े-बड़े भारी जहाज़ भी टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

प्राचीन धर्म-शास्त्रों में स्त्रियों का बड़ा सम्मान किया गया है, स्त्रियों को देवी कहा गया है। उन्हें पुरुषों से श्रेष्ठ, पूज्य और सम्माननीय माना गया है। 'सीताराम' 'राधा-कृष्ण' 'गौरीशङ्कर'—आदि वाक्यों में देवताओं से प्रथम देवी का नाम है। मनु कहते हैं कि जहाँ स्त्रियों की पूजा

(२६६ पृष्ठ का शेषांश)

से "भरत-भेंट" किया करते हैं और जिसको वे अपनी प्रसादी के लिए अङ्गीकार कर लेते हैं, वह जीते ही स्वर्ग चली जाती है।

उस रोज़ उन्होंने रामकी को ही अङ्गीकार किया था और इसी से रमादास जी और रामकी में तकरार हुई और तब से उनका मिलना बन्द हो गया।

आजकल रामकी स्वतन्त्र है। साधों की खूब सेवा किया करती है और दिल खोल कर खर्च करती है। अब वह पहले वाली रामकी नहीं रही। अब तो जिसकी ज़बान पर सुनो रामकी ही का नाम सुनाई देता है। कई लोग तो रमादास जी और रामकी के प्रथम मिलन के वार्तालाप की कविता भी गाते सुने जाते हैं!

बने फिरे राम-सनेही।

सरासर काम-सनेही ॥

चलावे निशि भर चरखा।

भाली जाव कुम्हार मोड बन, खूब शहद को परखा ॥

* * *

होती है, वहाँ देवता वास करते हैं और जहाँ स्त्रियाँ दुःखी रहती हैं, वह वंश नष्ट हो जाता है!

स्त्रियाँ हमारी सन्तानों की माताएँ हैं, उन्हें बनाने की मशीनें हैं, वे ही बच्चों की गुरु हैं। यदि माताएँ योग्य न होंगी तो बच्चे योग्य नहीं हो सकते। बच्चे यदि अयोग्य हुए तो कुल, गोत्र, वंश-मर्यादा सब नष्ट होगी।

क्या हम कभी विचार करते हैं कि हमारी स्त्रियाँ कैसी हैं? और हमारे ज्ञानदान के लिए कैसे बच्चे पैदा करती हैं? क्या यह सम्भव है कि हमारी स्त्रियाँ मूर्ख हों और हमारे पुत्र विद्वान् हो जायें? हमारी स्त्रियाँ मैली हों और बच्चे स्वच्छ रहना सीखें? हमारी स्त्रियाँ झूठ बोला करें और बच्चे सत्यवादी बनें?

बच्चों के हृदय में नाना प्रकार के भूत-प्रेत के कुसंस्कार, रोने और मैला रहने की आदतें केवल अयोग्य माताओं के फल-स्वरूप हैं। अगर हम अपने बच्चों को ऐसा बनाना चाहते हैं कि वे अपनी उम्र में अपनी योग्यता से हमारे कुल और वंश को ऊँचा उठावें तो हमारा सर्व-प्रथम कार्य है कि हम स्त्रियों को योग्य बनावें—उन्हें पैर की जूती न समझें!

* * *

नीच और ऊँच

मकान की मरम्मत करानी थी। एक राज और एक मज्दूर बुला कर काम शुरू कर दिया। राज साफ़-सुथरे कपड़े पहने हुए था, पर मज्दूर बड़ा गन्दा था। उसके बख़ फटे तो न थे, पर बड़े मैले और दुर्गन्धित थे! वह काम करने में भी सुस्त और बोल-चाल में बेहूदा था। राज की बोल-चाल सुसभ्य और उत्तम थी, वह नम्रता से बोलता तो था—पर उसकी नम्रता में दब्यून का भाव न था। थोड़ी-थोड़ी देर में वह मज्दूर पर बिगड़ता था, और जल्दी काम करने की ताकीद करता था। मज्दूर उसकी फटकार खाकर कुछ देर ठीक काम करता, पर फिर जी चुराता।

इस दृश्य को हम कुछ देर तक देखते रहे। वास्तव में यह कोई ऐसी घटना न थी कि जिस पर ध्यान दिया जाय। ऐसी घटनाएँ तो प्रायः होती ही हैं। परन्तु जब



कई बार फटकार खाने पर भी मजदूर अपनी मूर्खता से बाज़ न आया, तब हमने नीचे उतर कर उससे कुछ कहना चाहा। पास जाकर देखा तो उसके कण्ठ में जनेऊ। हमने उससे पूछा—तू कौन ज्ञात है? उसने कहा कि ब्राह्मण हूँ। सुन कर दिल पर चोट लगी। राज—ज्ञात का अगरिया चमार था।

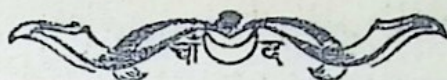
हमें एक बार ही चिन्ता के सागर में डूब जाना पड़ा। हमारी चिन्ता यह थी कि यह चमार इस ब्राह्मण पर कैसी आज़ा चला रहा है? और इसे बोलने की ज़रा भी गुज़ाईश नहीं। यह ब्राह्मण और यह चमार! पर वास्तव में इस वक्ता ऊँच कौन है? और नीच कौन है?

यह ऊँच और नीच का सवाल साधारण सवाल नहीं है। सभी जानते हैं कि गिरी से गिरी दशा का ब्राह्मण भी—चाहे वह कोढ़ी, पापी, मूर्ख, शराबी—कैसा ही क्यों न हो, अपने ब्राह्मणपने के ऊँचेपन को नहीं भूलता। हमें याद है, एक बार एक ब्राह्मण हमारे पास संस्कृत पढ़ने आया। आते वक्ता उसने दोनों हाथ फैलाकर आशीर्वाद दिया। फिर ज़मीन पर पड़ने बैठ गया। यह देख कर हमें हँसी आ गई। हमने कहा—तुमने भाई! आशीर्वाद किस नाते से दिया, गुरु को आशीर्वाद देना किस शास्त्र की शिक्षा है? ब्राह्मण ने कुछ लज्जित होकर कहा—महाराज! मैं मूर्ख हूँ, इसलिए चार अक्षर सीखने आया हूँ—पर ब्राह्मण तो हूँ ही—आप चतुरिय हैं, इसीसे आशीर्वाद दिया। अपराध हो तो क्षमा करें। हमने कहा—ब्राह्मण वही हैं, जो विद्वान्, त्यागी और सदाचारी हैं। तुममें ब्राह्मणत्व की कमी है—पर यदि तुम अपने जन्म के ब्राह्मणत्व को काफ़ी समझते हो, तो पढ़ने का ध्यान छोड़ दो। पढ़ने में ही क्या रक्खा है?

कुछ विवाद के बाद उसने क्षमा माँगी और प्रणाम किया। यह एक ऐसी घटना है, जो प्रायः हजारों मनुष्यों के सामने आती रहती है। इस विषय में सिर्फ़ यही बात नहीं है कि ब्राह्मण अपने को उच्च और दूसरों को नीच समझे। अगर ऐसा ही हो तो यह स्वाभाविक बात है; परन्तु मजदूर बात तो यही है कि अन्य जाति के लोग भी, चाहे जितने योग्य हों, अपने को महामूर्ख ब्राह्मण से नीचा ही समझेंगे। हमारे यहाँ एक चपरासी ब्राह्मण था, रसोइया ब्राह्मण रहा है। उस दिन मजदूर ब्राह्मण

था, जो चमार की अधीनता में काम कर रहा था। परन्तु इन सब में हमने ब्राह्मणपने का झूठा घमण्ड पाया। आनन्द की बात होती कि यह घमण्ड वीरतायुक्त होता और ये लोग उन्नत होकर नीच मजदूरी से घृणा करते, परन्तु यह बात न थी। कमीने काम करने में जहाँ उन्हें लज्जा न थी, वहाँ ब्राह्मण कहाने में भी लज्जा न थी। अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या यह नीच-ऊँच का मामला अभी इसी तरह चलता रहेगा?

क्या यूरोप में भी ऐसा ही है? एक बार जब बम्बई के गवर्नर साहब अपना समय पूरा होने पर विलायत जाने लगे, तब शहर के लोगों ने उनकी विदाई की खुशी में जलसा किया। उस समय उन्होंने कहा था कि मैं इतने अच्छे जूते बनाना जानता हूँ कि अगर मैं अब विलायत में जाकर यही काम करूँ तो एक जोड़ा जूता ३६ रु० से कम में न बिकेगा। लॉयड जॉर्ज, जो गत यूरोपियन युद्ध में अङ्गरेज़ी राज्य के प्रधान मन्त्री थे, एक चमार के भाजे हैं। पर चमार होने ही से क्या उनकी तरफ़ कोई निकम्मी दृष्टि डालता है? या उनका तिस्कार कर सकता है? भारतवर्ष में ही क्या रैदास, कबीर और सदन नीची जाति में नहीं पैदा हुए? क्या आज लाखों नर-नारी इन धर्मात्माओं के चरणों में सिर नहीं झुकाते? कैसे खेद और अनुताप की बात है कि हम मूर्खतावश चुपचाप झुके चले जाते हैं। अधिकार और शक्ति दो बड़ी चीज़ें हैं। जो मनुष्य अपने अधिकार और शक्ति को जान जाते हैं, और उनकी रक्षा करना अपने जीवन का मुख्य काम समझते हैं—वे ज़रूरत पड़ने पर सर्वनाश होने पर भी अपने अधिकार की रक्षा करते हैं। राजपूतों के इतिहास इस बात के साक्षी हैं, मुसलमानों की तुफ़्तानी शक्ति ने राजपूतों को कुचल डालने में कुछ कसर नहीं की, पर राजपूतों ने प्राण देकर, अधिकार की रक्षा की थी। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दू-समाज की दशा बड़ी शोचनीय है। सिर्फ़ ब्राह्मण ही इस बात के अपराधी नहीं हैं कि उन्होंने अन्य जातियों को अपने नीचे बनाए रखने के लिए अनर्थ किया है। हम तो कहेंगे कि प्रत्येक ऊँची जाति नीची जाति को दबाए रहती है। हम उच्च कही जाने वाली अनेक जातियों के व्यक्तियों से पूछना चाहते हैं कि क्या कुत्ते के पिलले हमारे घरों में गहों और कालीनों पर नहीं खेलते?



क्या हम नीच जाति के मनुष्यों को नीचे दबा कर अपना ही नाश नहीं कर रहे हैं? जब हम अपने से नीच-जाति के आदिमियों को बराबरी का दर्जा न देंगे, तो हमसे ऊँची जाति के आदमी हमें कैसे बराबरी का दर्जा देंगे?

हम इस बात से घोर घृणा करते हैं कि केवल जातीय अभिमान के कारण कोई किसी को ऊँचा-नीचा समझे। उँचाई-निचाई विद्या और योग्यता की है। विद्वान् और सदाचारी जन ही सदा उच्च समझे जाने चाहिए, चाहे वे भङ्गी ही क्यों न हों। ऐसे पुरुषों की सदा से पूजा हुई है और होगी। किसी की सामर्थ्य नहीं, जो रोक सके। वह समय दूर नहीं है, जब कोई ब्राह्मण, केवल जनेऊ गले में डाल कर और अपने को शर्मा बता कर, आदर नहीं पा सकेगा। उसी प्रकार कोई आदमी घमण्ड से अपने को क्षत्रिय या वैश्य-कुल का धनी कह कर अकड़े और गुण उसके निकृष्ट हों, तो यह सम्भव नहीं कि वह क्षत्रिय या वैश्य कहला सके।

जन्म का माहात्म्य अब खद गया, अब गुणों का राज्य है। वीरता, साहस, हिम्मत और विद्या की हवा बह रही है। हमें चाहिए कि ऊँच-नीच की पुरानी परीक्षा करना छोड़ दें। न तो हमें अपने को उच्च कह कर नीच-जाति के भाइयों के

सामने अकड़ना चाहिए और न हमें मूर्ख और पतित ब्राह्मणों के सामने सिर झुकाना चाहिए। “अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनूम्।”—यह एक प्रसिद्ध

आर्यमित्र

आगरा, गुरुवार ता० १९ सितम्बर, सन् १९२९

‘चाँद’ पर सङ्कट

प्रयाग से प्रकाशित होने वाला सुप्रसिद्ध मासिक पत्र ‘चाँद’ कुछ दिनों से सरकार का कोप-भाजन बना हुआ है। पहले उसका ‘फाँसी-अङ्क’ जन्त किया गया, फिर ‘चाँद’ कार्यालय द्वारा प्रकाशित ‘भारत में अङ्गरेजी राज्य’ जैसी अनमोल पुस्तक की बारी आई। इसके अनन्तर यू० पी० सरकार ने ‘चाँद’ का नाम स्कूल-कॉलेजों के लिए स्वीकृत पत्रों की सूची में से काटा और अब सी०पी० सरकार ने भी अपनी शिक्षण-संस्थाओं से इसका बहिष्कार कर दिया। सरकार की इस कोप-दृष्टि के कारण ‘चाँद’ को हजारों रुपयों की आर्थिक हानि उठानी पड़ी है। परन्तु यह बात अब तक नहीं मालूम हुई कि ‘चाँद’ का अपराध क्या है, जिसके कारण उसे इस प्रकार सरकारी क्रोध का लक्ष्य बनना पड़ा है। अगर सरकार की दृष्टि में उसका फाँसी-अङ्क आपत्तिजनक था तो वह जन्त कर लिया गया और वह मामला वहीं खतम हो जाना चाहिए था। परन्तु नहीं, सरकार तो चाहती है कि उसकी शिक्षा-संस्थाओं में उसका प्रवेश ही न हो। हम तो देखते हैं कि ‘चाँद’ के सञ्चालक और सम्पादक महाशय ने भारी आर्थिक हानि उठा कर भी ‘चाँद’ को बहुत उपयोगी बना दिया है। विशेषाङ्क निकालने में तो उसने कमाल किया है। सरकार ‘चाँद’ के सम्बन्ध में भले ही चाहे जो कुछ करे, परन्तु ‘चाँद’ के प्रेमियों का कर्तव्य है कि वह उसके प्रचार में बराबर सहायक बने रहें और उसे ग्राहकों की कमी के कारण आर्थिक कष्ट न उठाने दें।

वाक्य है। इसका मतलब यह है कि ब्राह्मण चाहे मूर्ख हो या विद्वान् वह परमेश्वर का श्रंश है। हम यह नहीं मान सकते कि जो रसोईगिरी करके पेट पालते फिरते हैं, जो चमारों के अधीन रह कर गारा-चूना उठाते हैं, जो गुलामगिरी की नौकरी-चाकरी करते हैं, वे बुद्ध ब्राह्मण हैं। वे ब्राह्मण नहीं, देवता नहीं, पूज्य नहीं, परमेश्वर के श्रंश भी नहीं। वे शूद्र हैं, सेवक हैं! ब्राह्मण वे हैं, जो धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, त्यागी और धर्म-शास्त्र के ज्ञाता हैं। उन्हें पूज्य समझना प्रत्येक पुरुष का कर्तव्य है—चाहे वे किसी भी नीच-जाति में उत्पन्न हुए हों। महर्षि वाल्मीकि भील होकर बड़े-बड़े महर्षियों द्वारा पूज्य माने गए। कवि कालिदास गडरिया होने पर पूज्य विद्वान् माने गए; रैदास, तुकाराम आदि सन्त चमार, डोम आदि होने पर भी सिद्ध कहलाए। व्यास धीवरी के पुत्र, वशिष्ठ वैश्या-पुत्र और पराशर

भञ्जिन के पुत्र थे। इन सभी को पूज्य श्रद्धा-यद मिता है। जगत् में गुणों की पूजा है। आजकल अनेक नीच-जाति के सज्जन हाकिम बन जाते हैं, उनके सामने बड़े-



बड़े ब्राह्मण लम्बा सलाम करते हैं। ऐसी परिस्थिति में भूठा वंश का घमण्ड रखना हास्यास्पद नहीं तो और क्या है ?

* * *

इज्जत

लो ग कहते हैं कि इज्जत भी एक चीज़ है ! वह कैसी है ? कहाँ है ? किस तरह मिलती है ?

लोग कहते हैं कि जान देकर भी इज्जत बचानी चाहिए । जब जान ही चली जायगी तो इज्जत किस काम आवेगी ?

जान है तो जहान है, दुनिया के बड़े-बड़े पाप-पुण्य जान के लिए ही तो किए जाते हैं । जान देकर इज्जत बचानी कहाँ की बुद्धिमानी है ?

परन्तु जिन्होंने सूअर और कुत्तों को पिट कर जान बचाते देखा है, गधों और बैलों पर चाबुक पड़ते और जान के भय से कड़ी से कड़ी मिहनत करते देखा है, जिन्होंने क़ैदियों की बात-बात पर खाल उड़ते देखा है, वे कह सकते हैं कि जीना तो वही, जो इज्जत का जीना हो—वे इज्जती के जीने से तो मरना उत्तम है !

रोज किसी न किसी के आत्मघात करने के समाचार सुन पड़ते हैं । लोग अपनी इज्जत के नाम पर बहुधा जान खो दिया करते हैं । जो सचे मनुष्य हैं, वे इज्जत को एक बहुमूल्य वस्तु समझते हैं ।

मारवाड़ के राजपूत, जो मृत्यु की दूकानें करते थे, इज्जत को अपने खून की बँदों से खरीदते थे, आज उनकी सन्तान के सिर पर राजमुकुट हैं ! सिर्फ़ इसलिए कि वे इज्जत के नाम पर सदा मर-मिटने को तैयार रहे थे ।

क्या फिर कभी मारवाड़ के रक्त में इज्जत की गर्मी आवेगी ? क्या अपमान और मूर्खता के कीचड़ में गिरे हुए प्राचीन मारवाड़ के वंशधर इज्जत को जान से बढ़ कर मानेंगे ?

* * *

जान-माल और आबरू

हमारी जान-माल सलामत रहे, यह हमारी सदा की अभिलाषा है । जान और माल ये—दुनिया की सबसे प्यारी चीज़ें हैं । मनुष्य से लेकर अधम सूअर तक

अपनी जान बचाने का अभिलाषी है । लोग कहते हैं कि जान है तो जहान है ।

परन्तु क्या यह सच है ? जान-माल की सलामती क्या जगत् में बहुत बड़ी चीज़ है ? इतिहास कहता है नहीं, जो जातियाँ जीवित हैं, वे आबरू को ही बड़ी चीज़ समझती हैं । आबरू के आगे जान-माल उनके लिए कुछ नहीं, वीर पुरुष क्षण भर में एक आबरू के नाम पर सौ बार जान-माल कुर्बान कर देते हैं !

गीदड़-स्यार को सबसे ज़्यादा जान का भय रहता है, पर वे ही सबसे जल्दी शिकार होते हैं । परन्तु सिंह वह है, जो गोली की गर्ज पर गर्ज करता है, और वीर की तरह निर्भय जीता और निर्भय मरता है ।

मनुष्यों में भी गीदड़ों को जान-माल का ख़तरा बना रहता है और जो शेर होते हैं, वे सदा निर्भय विचरण करते हैं । आबरू का अनमोल मोती जिसके पास है, वही जीवित है, वही धन्य है, उसी का जीवन सफल है । आबरू मनुष्य की अपनी सम्पत्ति है, अपनी वस्तु है । जो जाति जान से बढ़ कर आबरू को समझेगी, वह जगत् में बहुत बड़ी वस्तु बनेगी, पर जो सदा भयभीत रहेगी, उसका जीवन भी मृत्यु सदृश समझना चाहिए !

* * *

भाग्य



क्या यह सच है कि भाग्य मनुष्य को सब तरह के नाच नचाता है ? जीवन, मरण, सुख, दुःख, मृत्यु, धन, स्त्री, पुत्र, आरोग्य—सब भाग्य के अधीन हैं ? विधाता ने भाग्य में वे सब बातें अमिट अक्षरों में लिख दी हैं तो इस जन्म में होती हैं ! वे नहीं टल सकतीं । जिसके भाग्य में धन नहीं—वह लाख परिश्रम करने पर भी निर्धन रहेगा । जिसके भाग्य में विद्या नहीं, यश नहीं, सन्तान नहीं, उसे ये वस्तुएँ किसी तरह नहीं मिल सकतीं ।

ज्योतिषी लोग यही कहते हैं । सामुद्रिक-शास्त्री और मस्तिष्क-शास्त्री भी यही कहते हैं । ज्योतिषी लोग जन्म-कुण्डली बना कर उसके आधार पर जन्म भर का धन, स्त्री, सन्तान, आयु आदि सब भविष्य की बातें लिख

देते हैं। सामुद्रिक लोग हाथ की लकीरों को पढ़ कर हज़ारों बातें बता देते हैं। इसी प्रकार कर्म-रेखा अमिट है। प्रारब्ध प्रबल है—यह बात पृथ्वी भर के मनुष्यों में विख्यात है।

स्त्रियाँ और मूर्ख लोग तो सोलहो आना इसी अटल भाग्य-बल के विश्वासी दीख पड़ते हैं। साथ ही लाखों बुद्धिमान्, विचारवान्, विद्वान् भी इन बातों पर विश्वास रखते हैं। कुछ चमत्कारी ज्योतिषी और शकुन-शास्त्री ऐसा चमत्कार दिखाते हैं कि बुद्धि चकराती है।

मनुष्य का यह स्वभाव ही है कि जो बात समझ में नहीं आती, उसमें वह श्रद्धा करने लगता है और दैवी शक्ति की बात समझता है। एक समय था, जब सारी पृथ्वी पर जादूगर लोग बड़े शक्ति-सम्पन्न समझे जाते थे—पर ज्योंही विद्या का प्रचार हुआ कि जादू केवल खेल-तमाशे की वस्तु रह गया। प्रायः यही दशा ज्योतिषी और मन्त्र के जानने वालों की है। पहले उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी, परन्तु अब उनके प्रति उतना आदर नहीं है।

इस बात को छोड़ कर कि चमत्कार मन पर विश्वास पैदा करते हैं—इस बात पर विचार करना चाहिए कि भाग्य क्या वस्तु है, और क्या मनुष्य का परिश्रम, दान, तप, पुण्य—इनमें से कोई भी भाग्य में दखल नहीं दे सकता? क्या उद्योग से मनुष्य अपने भाग्य को नहीं हरा सकता?

हम ऐसी मिसाल दे सकते हैं कि मनुष्य अपने भाग्य-बल से नहीं—केवल परिश्रम और उद्योग-बल से उन्नत हुए। उद्योग से उन्होंने करोड़ों रूपयों की सम्पत्ति पैदा की, उद्योग से वे भिखारी से राजा हुए, उद्योग से उन्होंने संसार में अमर नाम पाया। तब क्या उद्योग ही सबसे बड़ी शक्ति है? यह बात भी मानने को तबीयत नहीं करती। क्योंकि हम बड़े-बड़े उद्योगशील पुरुषों को निराश और दुःखी देखते हैं, बड़े-बड़े धर्मात्माओं को शोक और चिन्ता में चूर देखते हैं। तब यह क्या गोरख-धन्धा है? भाग्य और उद्योग, तक्रदीर और तदबीर में प्रबल कौन है—इसका भेद खुलना चाहिए?

शास्त्रों में लिखा है कि भोग तीन प्रकार के होते हैं—प्रथम सञ्चित, दूसरा क्रियमाण और तीसरा प्रारब्ध। सञ्चित-भोग तो वे हैं, जो जन्म-जन्मान्तरों से सञ्चित रहते हैं और जिनका समय पाकर उदय होता

है। जैसे बीज समय पर हवा-पानी और काल पाकर उगते हैं, केवल हवा-पानी से ही नहीं। उसी प्रकार सञ्चित भोगों के उदय होने का जब समय आता है, तभी वे उदय होते हैं।

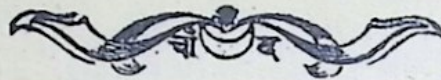
अचानक हम देखते हैं कि हमें धरती में गड़ा हुआ धन मिल गया, या किसी की सम्पत्ति मिल गई। इसी प्रकार अचानक हम पर कोई विपत्ति आ पड़ी। यह हमारा सञ्चित भोग था!

क्रियमाण वही है, जो किया जा रहा हो। जैसे चाकू से उँगली कटी और खून निकल आया। यह भोग कर्म या उद्योग के नाम से पुकारा जा सकता है। एक मनुष्य किसी भी कार्य में उद्योग कर रहा है, फिर भी फल पाना उसके अधीन नहीं। उद्योग का फल भी चँकि देवाधीन है, इसलिए वह भी क्रियमाण भोगवाद है। फिर भी एक वस्तु है, जो मनुष्य में सर्व-श्रेष्ठ है; वह है विचार-शक्ति, बुद्धि और ज्ञान—इनके आधार पर वह अपने भोग और भाग्य को नियन्त्रण में रखता है।

वास्तव में भाग्य और भोग मनुष्य के लिए पैतृक-सम्पत्ति है। अर्थात् वह उसे जन्म के समय मिली है, फिर वह चाहे कैसी ही भली-बुरी हो। परन्तु उस सम्पत्ति को चौपट करना या आगे बढ़ाना उसके लिए सरल है। इस क्रिया को उद्योग कहते हैं।

जैसे लोहे की पटरी पर रेलगाड़ी चलती है, उसी तरह भाग्य की सड़क पर उद्योग चलता है। पातकी पुरुष भी उद्योग से सूखी रोटी पाते हैं। फिर साधारण भाग्यशील क्यों न पावेंगे? इसलिए बुद्धिमान् भाग्य को प्रबल मानते हुए भी उद्योग करते हैं। और सफल होने पर गर्व न करके, ईश्वर को धन्यवाद देते हैं और निष्फल होने पर शान्ति और सन्तोष रखते हैं। ऐसे ही पुरुष बुद्धिमान् और विचारशील एवं विवेकी कहाते हैं।

प्रारब्ध उन प्रधान कर्म-समूह को कहते हैं, जिसके आधार पर यह शरीर प्रदान किया गया है। संसार में अनेक अधम और उत्तम योनियाँ हैं। प्रत्येक योनि में जीव का वास है। ऐसी भी योनि हैं, जिनकी आयु हज़ार वर्ष की है, और ऐसी भी योनि हैं, जिनकी आयु केवल तीन मिनट है। तीन ही मिनट में बाल, युवा, वृद्धावस्था हो जाती है और दो-चार हज़ार बाल-वृद्ध भी हो जाते



हैं ! प्लेग के कीटाणु और अनेक जाति के सूक्ष्म जन्तु इसी प्रकार की योनि में हैं ।

मनुष्य की योनि सर्वोत्तम है । मनुष्य पूर्ण स्वाधीन है, उसके शरीर में सम्पूर्ण अङ्ग हैं । वह जगत् के प्राणियों का राजा है ।

प्रारब्ध ने उसे यह मनुष्य-शरीर दिया है, किन्तु सन्चित और कियमाण-भोग उसे कभी-कभी पशु-पक्षियों से अधिक दुःखी, हीन और चिन्तातुर बना देते हैं । मनुष्य संसार के समस्त प्राणियों से अधिक रोगी रहता है । वह संसार के सब प्राणियों से अधिक असन्तुष्ट और व्याकुल है ।

गृध्र की दृष्टि, कुत्ते के कान, चिड़ई की नाक, सर्प का श्वास और लाखों जीवों की शारीरिक शक्ति मनुष्य से श्रेष्ठ है ।

*

*

*

मृत्यु-भोज

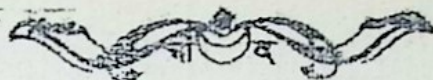
“आपके माता, पिता, भाई, पुत्र-बधू आदि मर गए हैं, इसके उपलक्ष में आप हमें एक दावत दीजिए”—यह वाक्य यदि सम्य-देश के किसी पुरुष से आप कहें तो निस्सन्देह वह आप पर मान-हानि का दावा ठोक दे—और यदि किसी देहाती उजड़ू से कहें तो वह वहीं आपकी नक्रद मरम्मत कर दे ।

मरे हुए व्यक्ति के नाम पर भोजन एक ऐसी घृणा-स्पद बात है, जिसे कोई भी बुद्धिमान् विचार ही नहीं सकता । इष्ट-मित्रों का भोजन और आनन्द शुभ अवसरों पर करना-कराना एक स्वाभाविक सी बात है । हालाँ कि फ़ज़ूलख़र्ची के नाम पर यह काम भी बहुत कम किया जा रहा है ।

कोई सम्य पुरुष यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि मरे हुए के नाम पर हज़ारों रुपए स्वाहा करने वाले बड़े-बड़े भोज किसी जाति में किए जा सकते हैं ! परन्तु मारवाड़ी-समाज में ये महा-भोज यदि दावतें मात्र ही रहतीं, तब भी शनीमत थीं । इस समाज में तो यह भयानक एवं दारुण कुप्रथा पाप-कर्म के रूप तक पहुँच गई है । श्रीमन्त सेठ लोग २०-२५ हज़ार तक का धन इस अपवित्र कर्म में फँक कर गुनाह करते हैं ! परन्तु

दरिद्रों, विधवाओं, अनाथ बच्चों को, जातीय पन्च दवाव डाल कर, भय दिखा कर, जाति-बहिष्कृत करके उनका सर्वस्व बिकवा कर उन्हें, राह का भिखारी बना कर, जब यह कुकर्म कराने को राज़ी करते हैं, तब हमारा कलेजा फटता है ! हमने अपनी आँखों से ऐसी दुखियाओं को देखा है, जिनका पति मर गया—एक बच्चा गोद में है, एक पाँच वर्ष का है—जो पँजी धी, रोग में ख़र्च हो गई, पर चौधरियों ने मकान बिकवा कर भोजन किया, विधवा को रहने की सोपड़ी न रह गई !! इस प्रकार भोजन करने वालों को राक्षस कहा जाय या मनुष्य ? एक हमारे घनिष्ट मित्र ने हमें तार-द्वारा सूचना दी कि उनके २० वर्ष के जवान, एकमात्र पुत्र का देहान्त हो गया है, और उसकी १४ वर्षीया सखी-विधवा पढ़ाई खाकर सिर फोड़ चुकी है तथा बेहोश है, उसके बचने की कम उम्मीद है, उसकी माता ने अन्न-जल त्यागा हुआ है ! ऐसा हृदय-वेधक तार पाकर जाना हमारे लिए अनिवार्य था—हमने तैयारियाँ कीं और तीसरे दिन जब हम जाने को तैयार थे, पत्र मिला । पत्र में औसर की तिथि और उसमें सम्मिलित होने का हमारे लिए निमन्त्रण था । उसे देखते ही मेरे बदन से चिनगा-रियाँ छूटने लगीं । हमने—सोचा “ह ! कैसे नीच, दुरात्मा, पापिष्ठ, घृणास्पद ये लोग हैं, ये अपने ही बच्चों का मांस खाते और खून पीते हैं । लकड़ के समान जवान बेटे की चिता भी ठण्डी नहीं हुई, लाश की धरती भी नहीं सूखी, घर में हाय और आँसू भर रहे हैं, और ये पतित, जङ्गली लड्डू-कचौड़ी उड़ाने की तैयारी कर रहे हैं ! हमने लिख दिया कि उस भाग्य-हीन मरने वाले का मांस खाना और खून पीना हमें स्वीकार नहीं । बिना बच्चे की माँ और बिना पति की बालिका विधवा के आँसुओं का आचमन तुम करो—तुम्हारे चौधरी करें, तुम्हारी ज्ञात वाले, देश वाले, गाँव वाले करें, पर हम तुम-जैसे राक्षसों का लुआ जल भी पीने में घृणा करेंगे !

हन्दौर की एक घटना हमारी आँखों देखी है । एक मृत्यु-भोज में तमाशा दिखाने एक सज्जन हमें ले गए । बेअन्दाज़ स्त्री-पुरुष बेतरतीबी से बैठे थे—सभी मानो जुलाब लेकर आए थे । ऐसा जान पड़ता था, मानो किसी सुर्द पर गृध्र टूट पड़े हों ! हमने एक कौतूहल



देखा। दो पत्तलें खाली रखी थीं। खाद्य-पदार्थ सभी परोसा जा चुका था, पर खाने वाला कोई व्यक्ति उन पर नहीं दीख पड़ता था। लोग पूछ रहे थे—इन पत्तलों के धनी कौन हैं? अरे इन पत्तलों पर कौन बैठेगा? ये प्रश्नकर्त्ता व्यक्ति वही थे, जिनके सङ्केत से वे पत्तलें रखी गई थीं। अनेकों को यह रहस्य ज्ञात था, वे मुस्करा रहे थे। जब सबका ध्यान उन पत्तलों पर आकर्षित हुआ, तब एक मुँह-फट व्यक्ति ने ऊँची आवाज़ में कहा—“साहेब, ये पत्तलें साहेब के माता-पिता के लिए हैं, वे जीमने को आने वाले हैं! आप फ्रिज मत करो—जीमो। ४० वर्ष से वे जीमते रहे, अब क्या छोड़ेंगे!” सुन कर तहलका मच गया। बात यह थी कि यह दम्पति ८ वर्ष पूर्व मर चुके थे और उनके पुत्र वहाँ भोज में डटे हुए थे। बस चारों तरफ से लानत-मलामतें पड़ने लगीं। ४० वर्ष उन्होंने खाया, अब ८ वर्ष से ये खा रहे हैं, पर खिलाया आज तक नहीं। शीघ्र ही पञ्चायत की तैयारियाँ हुईं और निश्चय हुआ कि जब तक वे न खिलावें, तब तक जाति-बहिष्कृत समझे जायँ। अन्त में उन्हें भरी पत्तल से अपमानित होकर उठना पड़ा! क्या ‘चाँद’ के पाठक कभी कल्पना भी कर सकते हैं कि जिस समाज में गुरु-जन-छी से व्यभिचार का अपराध क्षमा के योग्य है, जिस समाज में झूठ, दगा, खूदखोरी पाप नहीं, शराब पीना और वेश्यागमन क्षमा के योग्य है—उस समाज में यह अपराध क्षमा के योग्य नहीं? कहाँ तक इस पतन पर खेद प्रकाशित किया जाय !!

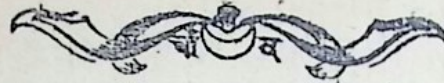
ये मृत्यु-भोज दो प्रकार के होते हैं, एक साधारण, जिनमें खाद्य और खाने वालों की परिमित संख्या होती है। दूसरे को ‘हेड़ा’ कहते हैं—यह हेड़ा बहुत बेटव है। इसमें यह आवश्यक नहीं कि निमन्त्रण देकर किसी को बुलाया जाय, तभी कोई आवे। समाचार मिल जाना ही काफी है। चौधरी-पञ्च जो दुरमनी रखते हैं, जी के फफोले फोड़ने को चार-आठ आने के कार्ड गाँठ से खर्च करके आस-पास के गाँवों को लिख देते हैं—अमुक तिथि को अमुक व्यक्ति का हेड़ा है, सबको खबर कर देना, और दो दिन पहले आ जाना। इसके फल से ऐसा कुप्रबन्ध रहता है, ऐसी हाय-हाय मचती है, भोजन ऐसा नष्ट होता है कि वह मृत्यु-भोज के सजने के योग्य ही है!

एक मज्जेदार घटना सुनिए। हम मालवे के एक क़स्बे में एक मित्र के यहाँ गए थे। बेचारे साधारण स्थिति के व्यक्ति थे। उनकी जाति में एक मृत्यु-भोज था, उस बदनसीब ने किसी अपराध पर इन्हें जाति-बहिष्कृत कर दिया था। बस इन्होंने ४-५ घरों को तोड़ कर गुट्ट बनाया और नया घड़ा बना डाला। उस घड़े में एक ऐसा भलामानुष आ फँसा जिसका कोई सम्बन्धी (?) २० वर्ष प्रथम मर चुका था। बस सबने सलाह दी कि तुम अब उसका कारज कर दो। १००-५० रुपए में ही हो जायगा—ऐसा अवसर कब मिलेगा? फलतः जहाँ सारी बिरादरी लड़क उड़ा रही थी, वहाँ ये लोग भी तर-माल तोड़ रहे थे। इस प्रकार के उदाहरणों की कहाँ तक भरमार की जाय।

क्या बुद्धिमान् पुरुषों को इस बात पर विचार न करना चाहिए कि अनुचित बातों को त्याग देने का सत्सा-हस मनुष्य में उदय होना ही चाहिए। यह असभ्य और अनुचित रीति है, फिर वह चाहे कितनी पुरानी क्यों न हो, हमें त्याग देनी चाहिए। अगर हम अपने देश और धर्म की प्रत्येक कुरीति को शाखों में ढँडने लगें तो मांस-मद्य खाने और व्यभिचार करने के भी प्रमाण मिल जाएँगे! शाखों के ही बल पर ब्राह्मण लोग पशुओं को काट-काट कर वेद-मन्त्रों द्वारा हवन करते थे और मांस-भक्षण को पवित्र समझते थे। शाखों ही के मत पर जीवित स्त्रियाँ बलपूर्वक चिता पर जला दी गईं! परन्तु ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास हुआ, धर्म और समाज का रूप-बदला, सती होना और यज्ञ में पशु मारना बन्द हो गया। कोई कुप्रथा यह कह कर कि वह पुरानी है, जारी रखना ठीक नहीं। बुद्धिमान् को अच्छी बातें सीखने और बुरी बातें त्यागने को सदैव तत्पर रहना चाहिए। हमारे विचार स्पष्ट हैं :—

१—जाति-भोजन आनन्द और खुशी के समय पर होने चाहिएँ, क्योंकि उत्तमोत्तम भोजन मिल कर करना आनन्द का चिन्ह है—शोक का नहीं।

२—जहाँ एक तरफ विधवा और अनाथ बच्चे मृतक के नाम पर रो रहे हों—शोक से उनकी छाती फटी जा रही हो—वहाँ दूसरी तरफ पकवान की कढ़ाई चढ़ना और भोजन होना हर हालत में असभ्यता है! मृत्यु होने पर तो पड़ोसी भी उपवास करने हैं !!



३—मृतक-अन्न खाना शास्त्र की दृष्टि से पतित करने वाला है। जो ब्राह्मण (आचार्य) मृतक का दान या अन्न खाते हैं, वे ब्राह्मणों में अधम समझे जाते हैं। और गया आदि के परछे जो मृतक के नाम से दान लेते हैं, निस्तेज बने रहते हैं।

४—प्रत्येक सभ्य जाति मृतक के नाम पर दान-पुण्य करती, और उपवास करती है। शास्त्रों में शोक, प्रायश्चित्त तथा अशौच में उपवास करना लिखा है।

५—व्यावहारिक दृष्टि से इस रीति में कितने ही अनाथ स्त्री-बच्चों को अपने मृत-पति या पिता की छोड़ी हुई सम्पत्ति इस काम में खर्च करके, पीछे भूखों मरना पड़ता है। जाति के बुजुर्गों का धर्म अनाथ स्त्री-बच्चों की मृत-व्यक्ति के पीछे सहायता करना होना चाहिए—यह उनका पवित्र पुण्य है !

* * *

सट्टा और फाटका

स ट्टा जुए का ही एक प्रकार है। पृथ्वी की सारी जातियों में अत्यन्त प्राचीन-काल से जुए का प्रचार रहा है। ऋग्वेद में जुए की निन्दा में बड़ी ही मार्मिक तीन-चार श्रृंखलें हैं।

“यह मेरी स्त्री मुझे कष्ट नहीं देती थी। न कभी क्रोध करती थी। अपने परिजनों के साथ तथा मुझसे प्रेम करने वाली थी। जुए के कारण वह भी मुझे गैरवानी पड़ी।”

—ऋ० १०-३४-२

“जुआ जिसका ज्ञान और धन नाश करता है, उसकी स्त्री का दूसरे ही उपभोग करते हैं। माता-पिता, भाई उसके विषय में कहते हैं कि हम इसको नहीं जानते, इसे बाँध कर ले जाओ।”

—ऋ० १०-३४-४

“ये जुए के पासे नीच होने पर भी ऊँचे हैं, इनके हाथ न होने पर भी ये हाथ वालों को हराते हैं। चौकी पर फँके हुए ये पासे जलते हुए अज्ञार हैं। जो स्वयं शीतल होने पर भी हृदय को जलाते हैं।”

—ऋ० १०-३४-६

“जब जुआरी-दूसरों की युवती-पत्नियों, महल, अटारियों और ऐश्वर्य को देखता है, तब उसे बहुत बड़ा

सन्ताप होता है। जो जुआरी प्रातःकाल सब्जे घोड़ों की जोड़ी पर सवार होता था, वह पापी आर्त्तनाद कर रात काटता है।”

—ऋ० १०-३४-११

उपरोक्त करुण-भाव अत्यन्त प्राचीन-काल के जुआरी की दुर्दशा की खेदजनक दशा को प्रकट करते हैं। यदि गम्भीरतापूर्वक देखा जाय तो सट्टेबाज़ मारवाड़ी लाखों की संख्या में अतिशय खेदजनक दशा में पड़े हैं ! हमें ऐसे पुरुषों से वास्ता पड़ा है, जो लाखों के वारे-न्यारे करते थे। पर वे कभी भी धनी न हुए। अलबत्ता बम्बई-कलकत्ते में ३-४ ऐसे प्रधान सटोरिए मिल जावेंगे, जिन्हें हानि का उतना भय नहीं। क्योंकि बाज़ार प्रायः उनके हाथ में रहता है; परन्तु विचार तो उन सहस्रों शरीबों का करना है, जो दिन-रात रोते हैं, पर हाथ कुछ नहीं आता ! उद्योग और कला-कौशल एक बड़ी चीज़ है और व्यापारी के लिए वही प्रतिष्ठा के योग्य बात भी है। सट्टा-जैसा पाजी धन्धा किसी भी जाति को पनपने दे—यह सम्भव ही नहीं है।

सर हुक्मचन्द जैसे जगद्विख्यात सटोरिए ने, जब से सट्टा छोड़ा है, सुख की नींद सोते हैं ! घुल-घुल कर मरते, विष खाकर मरते, अनेकों को हमने देखा है। दुःख की बात तो यह है कि सट्टे के सभी दोषों को ठीक-ठीक जानते हुए भी, लोग उससे अपना पिण्ड नहीं छुड़ाते ! अकस्मात्, बिना प्रयास बहुत-सा धन टूट पड़े, यह तो सभी चाहते हैं, पर यह धन आसमान से नहीं गिरता ! भाग्यहीन भाइयों की जेब से ही निकल कर गिरता है। और उन भाग्यहीनों की अवस्था पर उन भाग्यवानों की अपेक्षा अधिक ध्यान करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। क्योंकि भाग्यवान् तो कोई ही बनता है, भाग्यहीन बहुत बनते हैं—और सट्टे में भाग्यहीन बनना ही अधिक सम्भव है !!

* * *

नौटङ्गी और रास-लीलाएँ

मा रवाड़ी-समाज में प्रायः नौटङ्गी और रास-लीलाओं को बड़े भाव से देखा जाता है। इन निकृष्ट और मैले अभिनयों में धन का व्यय तो ऐसा महत्वपूर्ण विचार



वींदणी री विदाई

ऊँट पर दूल्हन और नाई बैठे हैं, ऊँट के धचकोले पर गौर कीजिएगा !

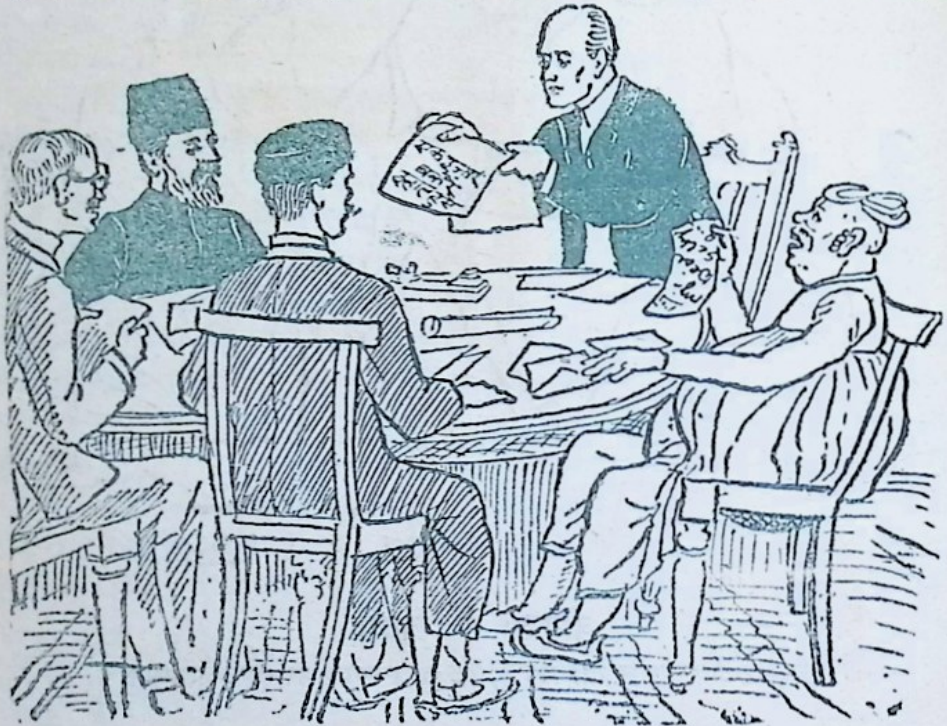


महा-वैद्य

वैद्यराज—ये ग़हरो माल जो बिगाड़ दियो। कुपथ कर लियो, रहे थाने चन्द्रोदय की मात्रा
ही ही। वीं मैं सुदों भी जी उठे है। थीं की तकदीर खोटी है। दूदी की बंदी रहे कडेऊ मैं लाऊँ।

सेठ जी की राय

शायबहादुर सेठ मुहम्मदरमल जी म्युनिसिपल कमिश्नर हैं। आप अंगरेजी नहीं जानते। जब किसी प्रस्ताव पर पहरस होती है, आप जेब से चिट्ठियाँ निकाल, पढ़ने बैठ जाते हैं। और सदा साहेब की राय में राय देते हैं।



साहेब प्रस्ताव पर राय ले रहे हैं, सेठ जी चिट्ठी पढ़ रहे हैं।



साहेब की कोई राय है ?

बकरीद के अवसर पर कितने बकरे काटे जायें—१००० या २०० यह प्रस्ताव था। प्रस्ताव पर साहेब बोल रहे थे, सेठ जी चिट्ठियों में दूब रहे थे। जब आपसे पूछा गया—सेठ जी आपकी क्या राय है, तो धनरा कर एक मेम्बर के कान में पूछा—“साहेब की कोई राय है ?”

“हाँ की राय १००० की है।”

“म्हारा की राय दो हजार की है।”
 (प्रस्ताव पास होने पर)
 मेम्बर—धिक्कार-धिक्कार ! जैनी होकर दो हजार बकरा काटने की राय दो !!



म्हारी राय दो हजार की है॥



म्हारी राय कोनी—म्हारी राय कोनी ।

सेठ जी—(धबरा कर) बकरा किशा ? किशा बकरा ??

मेम्बर—बकरीद पर काटने के लिए !

सेठ जी—म्हारी राय कोनी—म्हारी राय कोनी । मैं तो खैया खरब
 की बात समझी ही ।



रायबहादुर

सेठ जी—हुजूर गरीब परवर ! सलाम बन्दगी, सरकार म्हारी डाली मजूर कुर्मावें !

साहेब—बेल, हम एक रुपिया बखसीस डेटा हाय !

सेठ जी—सरकार ! हम माली नहीं हैं—रायबहादुर हैं, बखसीस नहीं लेगा ।

साहेब—(न समझ कर) अच्छा-अच्छा, डो रुपिया डेगा ।

सेठ जी—हुजूर हम रायबहादुर हैं, रायबहादुर, हम सेठ लोग हैं, गरीब परवर !

साहेब—डेस ! ज्यादा डेना नहीं माँगटा—ले जाओ ।

सेठ जी—हुजूर हम रायबहादुर.....सेठ.....

साहेब—(ठोकर मार कर) यू रास्केल ! नेई माँगटा—नेई माँगटा—जाओ
(जाने लगता है) ।

ब्रानसामा—हुजूर ! यह रईस सेठ हैं, माली नहीं हैं—रईस लोग बखरीश नहीं लेता ।

साहेब—ओ ! आई सी, यू आर बैङ्कर ! (आगे बढ़ कर, हाथ मिला कर) सॉरी

थेन्क यू—दुस डौलटमन्ड हाय ।



का विषय नहीं है; पर उनका प्रभाव जो युवकों पर पड़ता है, वह कभी उपेक्षा से देखने के योग्य नहीं समझा जा सकता। हमने सम्पादकीय लेख में गन्दे साहित्य की तरफ मारवादी-समाज का ध्यान आकर्षित किया है। ऐसा साहित्य ही युवकों में इन दृश्यों को देखने की कुरचि उत्पन्न करता है और यह अभिनय उन पुस्तकों को पढ़ने के लिए लाखों युवकों को प्रोत्साहित करता है। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि नीच श्रेणी के रसोइए, कढ़ार, ग्वाले आदि, जो इनमें सर्वाधिक दिलचस्पी लेते हैं, ज़्यादातर घर के धन्धे करते रहने के कारण स्त्रियों के अधिक निकट रहते हैं। और उनकी मनोवृत्तियों को गन्दी करने के लिए ही वे उन गन्दी किताबों को बहु-वेष्टियों की दृष्टि और कान तक पहुँचाते हैं। परिणाम बहुत ही भयानक होता है!

बहुधा ऐसे तमाशों में स्त्रियाँ भी आती हैं। और अभिनय में अत्यन्त गन्दी भाषा और भावों का दृश्य दिखलाया जाता है। स्त्रियों के लिए यह अत्यन्त भयङ्कर है, जबकि उनके पुरुष उनसे बहुधा पृथक् रहते और नीच नौकर हरदम घर में घुसे रहते हैं!!

इन तमाम बातों को भी छोड़ दिया जाय, तो भी युवा-बाल-वृद्ध किसी को भी उचित नहीं है कि ऐसी अश्लील बातों को देखे-सुने। यह शास्त्र की उक्ति है कि मनुष्य को मन-वचन-कर्म से शुद्ध रहना चाहिए कि वह स्वप्न में भी धर्म-च्युत न हो। धर्म की प्रबलता केवल मन्दिर में दर्शन कर आने से ही नहीं सिद्ध हो सकती; उसके लिए मन-वचन-कर्म से शुद्ध रहना अत्यावश्यक है। और यह तभी हो सकता है, जब वह शुद्ध बातों को देखें-सुनें और पढ़ें-लिखें।

*

*

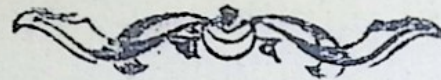
*

विलायत-यात्रा

एक समय था, जब कि भारतवर्ष एक मज़बूत क़िले के समान चहारदीवारी से घिरा था। उसके निवासियों को अपनी आवश्यकता के लिए किसी वस्तु की दरकार न थी। वह अपनी आवश्यकता से वस्तुएँ बचा कर विदेशियों को देता था जो उसके द्वार पर खड़े रहते थे। परन्तु तब और अब में अन्तर है। इस समय वह मज़बूत

दीवार ढह गई है, विदेशियों ने हमारी बगलों में और हमारे सिर पर अपने पक्षे मकान बना लिए हैं! इसके सिवा खाने-पहनने से लेकर सामूहिक जीवन निर्वाह के लिए भी, हमें विदेश का मुहताज होना पड़ा है। ऐसी दशा में हम पृथ्वी की जातियों से पृथक् रह कर जीवित रह सकेंगे, यह सम्भव ही नहीं है। धर्म के झूठे ढकोसलों की आड़ लेना व्यर्थ है।

मारवादी-समाज का व्यापारिक जीवन विदेश से बहुत सम्बन्धित है—उसे सच्चे व्यापारी बनने के लिए प्रबल-उद्योग से शिल्प, कला-कौशल की तरफ ध्यान देना होगा। हम इस बात के समर्थक नहीं कि देश के उद्धार के लिए महात्मा गाँधी के मतानुसार विधवा की तरह बैठे चरखा काता करें। हम यह चाहते हैं कि हमारे स्त्री-बच्चे भी हवाई जहाज़ों में आसमान में उड़ें और पृथ्वी की महाजातियाँ उसकी गर्द में छिप जायँ। ऐसी दशा में मारवादी-समाज के प्रमुख उद्योगी युवकों को विलायत-यात्रा का ताँता बाँध देना चाहिए। नाना प्रकार के शिल्प तथा कला-कौशल का अध्ययन करना चाहिए। गुदगुदे गहों पर सुस्त पड़े-पड़े भावों की प्रतीक्षा करना और तोंद बढ़ाना, अवश्य के उन्नत मारवादी-बच्चे पसन्द नहीं करेंगे, ऐसा हमारा मत है। वे दलाल या एजेण्ट बनना अपने लिए अपमानकारी समझेंगे! वे स्वयं अपनी करोड़ों की सम्पत्ति के सहारे महान् राष्ट्र के लिए उद्योग-धन्धों की सृष्टि करेंगे। विदेशी वस्त्रों की गुलामी से, हम विदेशी कपड़ों की ढोली जला कर पिएड नहीं छुड़ा सकते—हमें उसी कोटि के स्वदेशी वस्त्रों से देश को पाट देना पड़ेगा। हम ढाके की मलमल पहनने वालों की सन्तानें क्यों खादी पहनेंगे? हम क्यों न देश में ढाके की कला को आधुनिक मैशीनरी के ज़रिए चरम सीमा पर पहुँचावें? अलबत्ता विदेशी मलमल पहनना हमारे लिए शर्म की बात है, पर स्वदेशी मलमल बिना बनाए मोटी खादी पहनना और भी शर्म की बात है। क्या हम जङ्गलियों, गँवारों, पशुओं अथवा असभ्यों की सन्तान हैं? क्या हमें अपनी प्राचीन संस्कृति, शिल्प-वाणिज्य पर गर्व नहीं? फिर हम धन, बुद्धि, शक्ति, उद्योग रहते सुस्त क्यों पड़े रहेंगे। हमें अधिकाधिक विदेशों में जाना, वहाँ के उद्योग-धन्धे सीखना और उन्हें नष्ट करके भारत में उन्हें सुधमदों से खदे करना है।



मारवाड़ के तेजस्वी युवक यह नहीं करेंगे तो समझिए वे मुर्दे हैं। धर्म के भय से विलायत-यात्रा त्यागना महा मूर्खता है। हम चैलेज दे सकते हैं कि विलायत-यात्रा में कोई धर्म-बाधा नहीं है। प्राचीन-काल के आर्यों ने बड़ी-बड़ी समुद्र-यात्राएँ की थीं। वेद, स्मृति, पुराण, इतिहास और पुरातत्व इस बात को प्रमाणित करते हैं। ये यात्राएँ बड़े-बड़े जहाजों द्वारा व्यापारिक और सामाजिक उद्देश्यों से की गई थीं। ऋग्वेद अ० १, सू० ४६, ऋ० ८ में लिखा है :—

“तुम लोगों का अत्यन्त विस्तीर्ण जहाज समुद्र के किनारे मौजूद है, भूमि पर रथ मौजूद है...।”

ऋग्वेद मं० १, अ० १७, सूत्र ११७, ऋ० २ में और वाजसनेही संहिता में १०० पतवारों के जहाज का वर्णन है। इस जहाज का नाम “शतारिभ” है। यजुर्वेद में लिखा है—“समुद्र-यात्रा करो, आकाश-यात्रा करो, अग्निमान (इजिन) द्वारा यात्रा करो।” ऋग्वेद मं० १, अ० १०।२६।२ और ४।२५।३ में धन-प्राप्ति के लिए समुद्र-यात्रा करने वालों का उल्लेख है। इसके सिवा बौद्धायन धर्म-सूत्रों में भी समुद्र-यात्रा का जिक्र है (बौद्धायन धर्म-सूत्र १।१।२०)। मनुस्मृति में नवें अध्याय के ३३१, ३३२ वें श्लोक में; और आठवें अध्याय के ११७ वें और ४०६ वें श्लोक और ७ सातवें अध्याय के १२० वें श्लोक में देश-देशान्तरों की भारी-भारी यात्राओं का वर्णन है। यवद्वीप, चीन और सुमात्रा जाने का पता वाल्मीकि-रामायण से लगता है, (किष्किन्धा-काण्ड ४० सर्ग और अयोध्याकाण्ड, सर्ग ६३, श्लो० १४) महाभारत में भी सहदेव की जहाजी रण-यात्रा का उल्लेख है। मिताक्षरा से भी आर्यों के व्यापारी जहाजों का दूर-दूर यात्रा करने का पता लगता है। इसके सिवा समुद्री जहाजों का वर्णन वायु-पुराण, हरिवंश-पुराण, मारकण्डेय-पुराण, भागवत, हितोपदेश, शकुन्तला, रत्नावली, दश-कुमार चरित कथा, सरितसागर आदि अनेक संस्कृत-ग्रन्थों से मिलता है। मसीह के जन्म से प्रथम शताब्दी में जो पैशाचीभाषा की बृहद् पुस्तक ‘बृहत्कथा’ नाम की लिखी गई थी, जो मसीह के जन्म के बाद पाँचवीं शताब्दी तक मिलती रही—उसके आधार पर जो संस्कृत-ग्रन्थ कथासरितसागर लिखा गया है, उसके २५ वें और २६ वें तरङ्ग में बड़े-बड़े व्यापारी और रणपोतों जिक्र का

है। इसी ग्रन्थ के पचासवें तरङ्गमें एक चित्ररथ नाम के मनुष्य का जिक्र है, जो दो बौद्ध भ्रमकों के साथ विस्तृत समुद्र को पार करके प्रतिष्ठान नामक नगर में पहुँचा था और वहाँ से ८ दिन में मुक्तिपुर पहुँचा था। बाराह-पुराण में भी समुद्र-यात्राएँ हैं। केवल ये शास्त्रीय प्रमाण ही नहीं, विदेशियों ने भी इस विषय पर प्रकाश डाला है।

यूरोप के प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता सस्ट्रावो साहब ने लिखा है कि भारतवासी गङ्गा के मुहाने से समुद्र प्रवेश करते थे। वे जहाज द्वारा ‘पालीवोथा’ तक जाते थे। मैकर्सन के ‘एनल्स ऑफ़ कॉमर्स’ नामक ग्रन्थ में लिखा है कि भारतवासी अपना वाणिज्य-व्यापार दूर-दूर तक करते थे, यहाँ तक कि मिश्र देश के साथ भी जहाजों द्वारा उनका व्यापार चलता था। प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रीनी लिखता है कि छठी शताब्दी में भारत के व्यापारी फ़ारस के बन्दरों पर थे। रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के जनरल का पाँचवाँ भाग पढ़ने से पता चलेगा कि प्रसिद्ध चीनी यात्री फ़ाहियान भारतीय कर्मचारियों द्वारा परिचालित जहाज से चीन को गया था। इस पर कुछ ब्राह्मण भी सवार थे।

‘पेरी प्लस ऑफ़ दी एसीयीयन्सी’ नामक ग्रन्थ में लिखा है कि ग्रीक और हिन्दू-व्यापारी सक्रोटा नामक उपद्वीप में व्यापार के लिए जाते और वहाँ ठहरते थे।

रोम के होसिटस नामक इतिहासज्ञ ने हिन्दुओं की समुद्र-यात्रा और उनके व्यापार के विषय में लिखा है :—

“मसीह से कोई ६० वर्ष प्रथम कुछ हिन्दू-व्यापारियों के जहाज तुर्कान में पड़ कर जर्मनी के किनारे आ लगे। उस समय क्लियटस-मेटेलस और लूसियस वहाँ के अधिकारी वर्ग थे। इन्हें सलवियनस के राजा ने मेटेलस की सेवा में उपस्थित किया, जो उस समय गाल प्रदेश का गवर्नर था।”

ग्रीनी का कहना है कि ये साहसी हिन्दू एटलाण्टिक महासागर में से ‘केप ऑफ़ गुड होप’ के रास्ते आए थे। और वहाँ से उत्तर समुद्र के रास्ते गए थे। अथवा उससे भी अद्भुत प्रकार से ये वीर लोग जापान और साइबेरिया के किनारे पर से कामरु, चाट्सका, जम्बाला द्वीपों में होते हुए लेपलेण्ड और नॉर्वे के मार्ग से बाल्टिक समुद्र या जर्मन-समुद्र में पहुँचे थे।

पुराने शिला में जहाजों के चित्र हमें देखने को मिलते हैं—साँची के स्तूपों पर दो, जगन्नाथपुरी में एक, भुवनेश्वर में एक और पजेयटा की गुफाओं में चार चित्र जहाजों के मिलते हैं।

हम कहाँ तक अफसोस करें। जब कि प्राचीन हिन्दुओं ने साधारण जहाजों पर पृथ्वी को पैरों से रौंद डाला था—आज यात्रा के ऐसे सुगम और निर्भय मार्ग होने पर हम धर्म-भय से चुप पड़े रहें, तो हमारे समान भाग्यहीन और मूर्ख पृथ्वी पर कौन होगा? क्या मारवाड़ के युवक साहस करेंगे? जैसे ज़िन्दा जाति के युवक किया करते हैं। क्या लिडजे नामक १६ वर्ष के अमेरिकन बालक का साहस वे नहीं देखते? क्या उन्हें यूरोप और अमेरिका के उठते युवकों के उद्यम, साहस, वीरता, एवं दृढ़ता को देख कर उनके मन में स्पृधा नहीं पैदा होती? क्या वे मारवाड़ के नाम को उज्ज्वल न करेंगे?

खेतान-बन्धु और बिड़ला-बन्धु ने मारवाड़ी-समाज के लिए विदेश-यात्रा के मार्ग सुलभ कर दिए हैं। श्री० रामेश्वर जी बजाज लण्डन की छाती पर व्यापार करके मारवाड़ी-समाज का नाम ऊँचा कर रहे हैं। मोहता-बन्धुओं ने समुद्रीय यात्राओं को सुगम बनाने में करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति लगा दी है। अब भी क्या मारवाड़ी-वीर बच्चे, झूठे पण्डितों के पोथी-पत्रों पर विश्वास करके जीवन नष्ट करते रहेंगे?

* * *

बाल-विवाह-निषेध क़ानून

शारदा-बिल या बाल-विवाह-निषेध बिल बड़ी व्यवस्थापिका सभा की विशेष समिति द्वारा संशोधित होकर, बड़ी व्यवस्थापिका सभा तथा राज्य-परिषद् से जिस रूप में पास हुआ है, और जिस पर हस्ताक्षर करके गवर्नर जनरल महोदय ने उसे क़ानून बना दिया है, उसका आशय इस प्रकार है:—

चूँकि बाल-विवाह का निषेध आवश्यक है, इसलिये यह क़ानून बनाया जाता है:—

(१) (क) यह क़ानून सन् १९२६ ई० का बाल-विवाह-निषेध क़ानून कहलाएगा।

(ख) यह समस्त ब्रिटिश-भारत पर मय ब्रिटिश-बलूचिस्तान और सन्ताल परगने के, लागू होगा।

(ग) यह क़ानून १ अप्रैल, सन् १९३० ई० से काम में लाया जायगा।

(२) इस क़ानून में—

(क) “बाल” का अभिप्राय १८ वर्ष से कम उमर वाले लड़के और १४ वर्ष से कम उमर वाली लड़की से है।

(ख) “बाल-विवाह” का अभिप्राय उस विवाह से है, जिसमें वर या वधू दोनों में से कोई भी “बाल” हो।

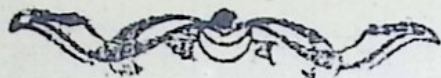
(ग) “नाबालिग” का अभिप्राय १८ वर्ष से कम उमर वाले लड़के या लड़की से है।

(३) १८ वर्ष से अधिक और २१ वर्ष से कम अवस्था का कोई पुरुष यदि किसी बालिका (अर्थात् १४ वर्ष से कम उमर की लड़की) से विवाह करेगा, तो उस पर एक हजार रुपए तक का जुर्माना हो सकेगा।

(४) २१ वर्ष से अधिक अवस्था वाला कोई पुरुष यदि किसी बालिका से विवाह करेगा, तो उसे एक महीने तक सादी ज़ैद या एक हजार रुपए तक जुर्माना या दोनों सज़ाएँ एक साथ दी जा सकेंगी।

(५) यदि कोई व्यक्ति बाल-विवाह करावेगा (पुरोहित आदि) या करने की आज्ञा देगा (वर-कन्या के माता-पिता, संरक्षक आदि), तो उसे एक महीने तक की सादी ज़ैद या एक हजार रुपए तक जुर्माना, या दोनों सज़ाएँ साथ-साथ दी जा सकेंगी। किन्तु यदि अभियुक्त यह प्रमाणित कर सके कि उसे इस बात का कोई ज्ञान न था कि यह बाल-विवाह है, तो वह दोष-मुक्त कर दिया जायगा।

(६) (क) कोई नाबालिग व्यक्ति यदि बाल-विवाह करेगा और उसके माता-पिता या अभिभावक, जिनकी देख-रेख में वह व्यक्ति हो, उस विवाह को रोकने में अपने कर्तव्य की अवहेलना करेंगे या उस विवाह को करने की आज्ञा देंगे, तो उन्हें एक मास तक की सादी ज़ैद या एक हजार रुपए तक जुर्माना



या दोनों सज़ाएँ एक साथ दी जा सकेंगी।
 स्त्रियों को कैद की सज़ा नहीं दी जा सकेगी।
 (ख) बाल-विवाह करने वाले व्यक्ति के माता-पिता या अभिभावक की ओर से यदि प्रमाण न दया जा सकेगा, तो इस प्रकार से मुकद्दमों में यह बात मान ली जायगी कि बाल-विवाह को रोकने के सम्बन्ध में उन्होंने अपने कर्तव्य की अवहेलना की है।

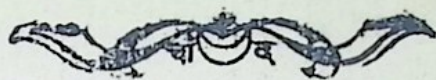
- (७) अदालत को यह अधिकार न होगा कि वह इस क़ानून की धारा ३ के अनुसार, किसी अभियुक्त के ज़रमाना न दे सकने पर, उसे कैद की सज़ा दे सके।
- (८) प्रेज़िडेन्सी मैजिस्ट्रेट या ज़िला मैजिस्ट्रेट के अतिरिक्त, अन्य किसी भी अदालत को बाल-विवाह सम्बन्धी मुकद्दमों पर विचार करने का अधिकार न होगा।
- (९) इस क़ानून से सम्बन्ध रखने वाले किसी भी मुकद्दमे पर कोई अदालत ऐसी दशा में विचार नहीं कर सकती, जब कि विवाह होने के एक वर्ष के भीतर ही मुकद्दमा दायर न किया गया हो।
- (१०) इस क़ानून सम्बन्धी किसी मुकद्दमे की जाँच या तो अदालत स्वयं करेगी, या अपने अधीन किसी प्रथम श्रेणी के मैजिस्ट्रेट से करावेगी। इस प्रकार के मुकद्दमों में पुलिस को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार न होगा।
- (११) (क) मुकद्दमा दायर करने वाले व्यक्ति का बयान लेने के बाद और अभियुक्त के नाम सम्मन जारी करने के पहले, अदालत मुकद्दमा दायर करने वाले व्यक्ति से १०० रु० का मुचलका, मध्य ज़मानत के या बिना ज़मानत के, इसलिए ले लेगी कि यदि यह प्रमाणित हो जाय कि मुकद्दमा केवल अभियुक्त को तज़ करने के अभिप्राय से दायर किया गया था, तो ऐसी दशा में अदालत अभियोग लगाने वाले व्यक्ति से अभियुक्त को हरजाना दिला सके। अदालत द्वारा निश्चिन्न अवधि के भीतर यदि ज़मानत न दाखिल की जायगी, तो बालिग़ ज़ारिज कर दी जायगी।

(ख) इस धारा के अनुसार लिया हुआ मुचलका क़ौजदारी क़ानून के अनुसार लिया हुआ मुचलका समझा जायगा।

“स्वतन्त्र” की शिष्टता

हाल ही में, हमें विवश हो कर, एक कठोर-कर्तव्य का पालन करना पड़ा है। पाठकों को स्वीकार करना पड़ेगा कि वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए हमने जो कुछ किया है, वह सर्वथा अनुचित नहीं कहा जा सकता। जनता के प्रति पत्र-पत्रिकाओं का कर्तव्य बहुत ही महान् है। यह प्रजातन्त्र का युग है; इस युग में पत्र-पत्रिकाएँ ही एकमात्र ऐसे प्रभावशाली साधन हैं, जिनके द्वारा लोकमत प्रकाशित होता है और साथ ही साथ वह पुष्ट भी होता है। पत्रों के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण पत्र-सम्पादकों का उत्तरदायित्व पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गया है। हमें दुःख के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि हिन्दी के अधिकांश पत्र-सम्पादकों को अपने इस गम्भीर उत्तरदायित्व के पालन में यथोचित कर्तव्य-ज्ञान का परिचय अभी तक नहीं हो पाया है। हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ तो उत्तरदायित्व-शून्यता के लिए एक प्रकार से उदाहरण-सी हो गई हैं! भारत के पतित वातावरण में जन-समूह के सुधार और पीढ़ियों के उद्धार के लिए लिखने का प्रचुर सामान रहते हुए भी, हिन्दी की अनेक पत्र-पत्रिकाएँ द्वेष-भाव से प्रेरित होकर एक-दूसरे के विरुद्ध विष उगलने में प्रवृत्त हो रही हैं! यह देश का भीषण दुर्भाग्य नहीं, तो और क्या है?

इस खरी समालोचना के विरोधी नहीं हैं, चाहे वह कटु से कटु क्यों न हो। निष्पक्ष समालोचक का कार्य उस चतुर माली के समान है, जो साहित्य-रूपी बाटिका से हानिकारक घास-फूस को उखाड़ कर फेंक देता है। परन्तु हमारी यह निश्चित-सम्मति है कि समालोचना होनी चाहिए सत्य और प्रामाणिक घटनाओं या बातों के आधार पर। कल्पित बातों के आधार पर और राग-द्वेष से प्रेरित होकर की जाने वाली समालोचना न तो लोक के लिए लाभदायक है और न इससे पत्र-सम्पादक



की ही सत्प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। कुछ दिनों तक तुम्हें पाठकों की सहायभूति उन्हें भले ही प्राप्त हो सके, पर इस उन्नति और विकास के युग में इस प्रकार की धाँधली अधिक दिनों तक सर्व-साधारण की आँख में भूल कदापि नहीं भोंक सकती। यही कारण है कि प्रायः नित्य ही हमें ऐसे दायित्वहीन पत्र-पत्रिकाओं की कुसमय श्रुत्य का दुःखदायी समाचार मिलता रहता है ! क्या हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ इन अकाल-बलिदानों से शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकती ?

हमें हाल में एक ऐसे ही नीचतापूर्ण आक्षेप के विरुद्ध न्याय की शरण लेनी पड़ी है। जब हमने अन्य किसी भी उपाय से न्याय की रक्षा होते न देखा, तभी दुःखद कर्तव्य समझ कर यह कार्य किया है। यदि हम ऐसा न करते तो हमारी व्यक्तिगत हानि तो होती ही; साथ ही हम निष्पक्ष समालोचना एवं कलुषित आक्षेपों को प्रश्रय देने के भी अपराधी समझे जाते।

पाठकों को याद ही होगा कि विगत मार्च में इस संस्था द्वारा प्रकाशित प्रसिद्ध ग्रामाधिक ऐतिहासिक ग्रन्थ—‘भारत में

उद्ग से जन्त कर लिया गया था ! इसी सम्बन्ध में कल-कत्ते के हिन्दी दैनिक पत्र “स्वतन्त्र” के विगत आपाद

नवीन वर्ष का स्वागत

इस विशेषाङ्क के साथ ‘चाँद’ अपने जीवन के ८ वें वर्ष में पदार्पण कर रहा है। विगत सात वर्षों में ‘चाँद’ के द्वारा मातृ-भूमि की सेवा करके हमें जो विपुल आनन्द प्राप्त हुआ है, तदर्थ हम अपने ग्राहकों, पाठकों, लेखकों एवं हितैषियों के प्रति कृतज्ञ हैं। इन सात वर्षों में हमने ‘चाँद’ को समाज के लिए उपयोगी, रोचक और सर्वजन-सुलभ बनाने का शक्ति-भर प्रयत्न किया है। इस प्रयत्न में हमें कहाँ तक मफलता मिली है—इसका निर्णय पाठकों पर ही छोड़ना उचित है। गत वर्ष हमारे ऊपर कई असाधारण विपत्तियों के आ जाने के कारण हम ‘चाँद’ को जितना उपयोगी बनाना चाहते थे, उतना नहीं बना सके, तथापि जनता को हमारी सेवाओं से सन्तोष और प्रसन्नता प्राप्त हुई है, इसमें हमें लेश-मात्र भी सन्देह नहीं। हम अपने हृदय का समस्त उत्साह और अपने ग्राहकों तथा अनुग्राहकों का सम्पूर्ण सद्भाव लेकर नवीन वर्ष का स्वागत करते हैं। मातृ-भूमि की उन्नति के पथ पर प्रेरित करने में परमात्मा ‘चाँद’ के सहायक हों !

कृष्ण ११ के सम्पादकीय स्तम्भों में “इस जन्ती में क्या रहस्य है” शीर्षक अग्र-लेख प्रकाशित हुआ था। लेख के शीर्षक से यह भापित होता है कि सम्पादक जी ने इसमें सरकारी नीति की निर्भय समालोचना की होगी ! पर दुर्भाग्यवश बात इसके ठीक विरुद्ध थी। सम्पादक जी ने सरकारी नीति की समालोचना करने के बदले, प्रकाशक पर कई निराधार आक्षेप किए थे, जिन्हें पढ़ कर हमें दुःख हुआ। किन्तु हमने अपने दुःख की चर्चा न तो “स्वतन्त्र” के सम्पादक जी से की और न ‘चाँद’-परिवार को ही यह दुःखद समाचार सुना कर उन्हें दुःखी करना चाहा। हमने इस तुच्छ प्रसङ्ग को महत्व देना सौजन्य के अनुकूल न समझ कर, इसे भूल जाने की चेष्टा की; पर खेद है कि कई कारणों से इस कार्य में हमें सफलता न मिल सकी। इसका ख़ास कारण था।

उक्त लेख के प्रकाशित होने के कुछ ही रोज़ बाद हमारे पास इस सम्बन्ध में बहुत सी शिकायतें आने लगीं। हमारे सम्बन्ध में लोगों में कई प्रकार के भ्रम फैलने लगे। हमने यह भी अनुभव

अङ्गरेजी राज्य’—किस प्रकार

यू० पी० सरकार द्वारा नाटकीय



किया कि हमारी आर्थिक अवस्था पर उक्त आक्षेपों का बहुत ही हानिकारक प्रभाव पड़ सकता है। जब हमें इस बात का हृदय निश्चय हो गया कि उक्त आक्षेपों का खण्डन करना हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है, तो हमने “स्वतन्त्र” के सम्पादक जी को पत्र लिख कर उनसे इस बात का अनुरोध किया कि कृपा कर वे ही एक वक्तव्य छाप कर उन निराधार बातों का खण्डन कर दें, जो हमारे प्रति लोगों में भ्रम फैला रही हैं। पर यह जानकर हमारे दुःख का ठिकाना न रहा कि “स्वतन्त्र” के सम्पादक जी हमारे साथ इतना भी सौजन्य दिखाने के लिए प्रस्तुत न थे! उन्हें एक सुप्रसिद्ध बैरिस्टर श्री० आर० एस० पण्डित द्वारा इस सम्बन्ध में नोटिस भी दिलाया गया, पर नोटिस तक का उत्तर नहीं दिया गया! शिष्टता का यह दूसरा नमूना है!!

अन्त में विवश होकर हमें इलाहाबाद के ज्वायंट मैजिस्ट्रेट की अदालत में “स्वतन्त्र” के सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक पर मानहानि का दावा दायर करना पड़ा। तारीख पड़ी। “स्वतन्त्र” के ‘वयोवृद्ध’ स्वनाम-धन्य सम्पादक पण्डित अश्विकाप्रसाद जी वाजपेयी तथा प्रकाशक महोदय अदालत के सामने उपस्थित हुए। वे अपने लेख के समर्थन में कोई प्रमाण न दे सके! उन्होंने अपनी इस भयङ्कर भूल को स्वीकार करते हुए इन पंक्तियों के लेखक से क्षमा की भिन्ना खुले शब्दों में माँगी। यद्यपि हमें सुलझ करने की कोई आवश्यकता न थी और यदि हम चाहते तो दीवानी मुकद्दमा दायर करके “स्वतन्त्र” से भरपूर हरजाना भी वसूल कर सकते थे, तथापि हमने इस मुकद्दमेबाजी को हिन्दी-संसार के लिए कोई गौरव की बात न समझ कर, तथा कई प्रतिष्ठित मित्रों के अनुरोध का सम्मान करते हुए “स्वतन्त्र”-सम्पादक की क्षमा-याचना को स्वीकार कर लिया और मुकद्दमा उठा लिया गया।

“स्वतन्त्र” के सम्पादक तथा प्रकाशक ने हमें मुकद्दमे के खर्च का एक अंश (१८०) २० दि० तथा क्षमा-याचना के रूप में निम्न-लिखित वक्तव्य अपनी ओर से तारीख ८ अक्टूबर, १९२६ के “स्वतन्त्र” के सम्पादकीय खम्भों में प्रकाशित करके अपने अपराध का प्रायश्चित्त किया है—

“भारत में अङ्गरेजी राज्य” के विषय में

स्वतन्त्र के गत आषाढ़ कृष्ण ११ बुधवार के अङ्क में “इस जवनी में क्या रहस्य है” शीर्षक जो अग्र-लेख प्रकाशित हुआ था, उससे यह ध्वनि निकलती है कि ‘भारत में अङ्गरेजी राज्य’ के प्रकाशक ने—

(१) संयुक्त प्रान्तीय सरकार के ऊँचे अफसरों से मिल कर “भारत में अङ्गरेजी राज्य” नामक पुस्तक, इसलिए ज्वल कर दी थी, ताकि जवनी के बाद वह अच्छे दामों में बिक सके।

(२) पुस्तक के लेखक श्रीमान् सुन्दरलाल जी को पुस्तक की लिखाई का पूरा पारिश्रमिक नहीं दिया।

(३) पुस्तक को ज्वल करके उसके प्रकाशक महाशय ने अनुचित नामवरी ही नहीं कमा ली, बल्कि मुकद्दमे की पैरवी के खर्च के लिए अपील की, जिससे उनके दोनों हाथ लड्डू रहे—इत्यादि।

(४) ‘भारत में अङ्गरेजी राज्य’ नामक पुस्तक की कॉपियाँ, जिसके दो भागों का मूल्य १६) २० था, २०-२० रुपयों में बेची गईं।

हमें खेद है कि इस तरह की बातें प्रकाशित करने के पहले इनकी जाँच नहीं की गई थी और अब मालूम हुआ कि ये समस्त बातें असत्य और निराधार थीं। इस तरह की बातें छपीं, इसका हमें अत्यन्त खेद है।

हमारे उक्त लेख से पाठकों के मन में उक्त ‘भारत में अङ्गरेजी राज्य’ के प्रकाशक के विषय में यदि कोई घृणोत्पादक भाव उत्पन्न हुआ हो तो वे उसे दूर कर दें, और प्रकाशक महाशय से भी, अपनी इस भूल के लिए हम सादर क्षमा-प्रार्थी हैं।

हमारे प्रति “स्वतन्त्र” का यह पहला ही आक्षेप न था। इसके पहले भी जब एक बार मारवाड़ी-समाज हमारी एक सत्य समालोचना से चिढ़ कर ‘चाँद’ का

(शेष मैत्र २६५ पृष्ठ के दूसरे कॉलम में देखिए)

आर्य

१५ सितम्बर, १९२९

चोट पर चोट

आलूम हो रहा है कि किसी अदृश्य-शक्ति की प्रेरणा से प्रान्तीय सरकारों ने प्रयाग के सहयोगी 'चाँद' को नेस्त-नाबूद करने का निश्चय कर लिया है। हमारी इस धारणा का हाल की एक और ताज़ी घटना है। सी० पी० के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने भी स्वीकृत समाचार-पत्रों की सूची से 'चाँद' का नाम काट दिया है, इसके फल-स्वरूप 'चाँद' अब सी० पी० शिक्षणालयों में न प्रवेश पा सकेगा। यह ठीक है कि 'चाँद' का प्रचार इस उपाय से सी० पी० में नहीं रुक सकता—'चाँद' की हस्ती को मिटाने का यह प्रयत्न विफल होगा, इसमें भी सन्देह नहीं है। पर दीखता है, सरकार ने धीरे-धीरे 'चाँद' को भारतीय समाचार-पत्र-क्षेत्र से सर्वथा हटाने का निश्चय कर लिया है। आश्चर्य नहीं, यदि हम फल सुनें कि बिहार ने भी सी० पी० और यू० पी० की सरकारों के पद-चिन्हों पर चलने का निश्चय कर लिया है। सी० पी० सरकार का यह कार्य एक सोची-समझी नीति की शृङ्खला की एक कड़ी है। सरकारी चोटों का अन्त कहाँ जाकर होगा, यह 'चाँद' की सेवा की पवित्र भावनाएँ ही बता-एँगी, पर सरकार जिस नीति को बरत रही है, उससे उसका मनोरथ सिद्ध नहीं होगा। शिक्षा-शालाओं द्वारा 'चाँद' चाहे विद्यार्थियों को न मिले, पर घरों में जाने से 'चाँद' को तो शिक्षा-विभाग नहीं रोक सकता! यदि इस प्रकार पढ़ने देने से ब्रिटिश-सत्ता कमज़ोर नहीं होती और ब्रिटिश क़ौलादी पक्ष की मज़बूती में अन्तर नहीं आता और ज़ज़्ज़ नहीं लगता तथा सम्राट् के प्रति राज्य-निष्ठा और सम्राट्-भक्ति में अन्तर नहीं आता—तो शिक्षा-शालाओं द्वारा विद्यार्थियों को 'चाँद' देने से कौन सी आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ेगा, यह समझ में नहीं आता? 'चाँद' जनता की सेवा की भावना से प्रकाशित हुआ है। यह पवित्र भावना ही उसकी सब आपत्तियों से

रक्षा करेगी। लोक-सेवा का पथ विदेशी शासन में कण्ट-काकीर्ण है—पर विजय निश्चित है।

'चाँद' पर आई विपत्तियाँ हिन्दी-पत्रकारों और सञ्चालकों को सङ्गठित होने के लिए बार-बार प्रेरणा कर रही हैं। आज जो तलवार 'चाँद' पर गिरी है, कल वह अन्यो पर भी गिर सकती है। सङ्गठित सरकार जब कुचलने को आमादा ही है, तब क्यों न जनता के सेवक भी सङ्गठित होकर सेवा के लिए आगे बढ़ें? देश का, विशेषतः हिन्दी-भाषा-भाषी समाज का, कर्तव्य है कि इस समय 'चाँद' की सेवाओं की उपयोगिता को अनुभव करे और उसे अपनाए और सरकार की इस चुनौती का सक्रिय जवाब देकर सिद्ध कर दे कि जनता के प्रिय पत्र को, जनता की इच्छा और चाह को, सरकार नष्ट नहीं कर सकती; वहाँ सारे हथियार कुण्ठित हो जाते हैं। 'चाँद' की विजय लोकमत की विजय है।

* * *

(२६४ पृष्ठ का शेषांश)

बहिष्कार करने का आन्दोलन कर रहा था, तब भी "स्वतन्त्र" ने 'चाँद' के विरुद्ध एक लेख-माला ही प्रकाशित करके अपनी सङ्कीर्णता का परिचय दिया था। इस बार जब "भारत में अङ्गरेज़ी राज्य" जैसी प्रामाणिक पुस्तक के जन्म हो जाने से हम दुःखी थे और हमें आरवासन तथा सहानुभूति की सब से अधिक आवश्यकता थी, "स्वतन्त्र" ने हमें मर्मभेदी आघात पहुँचाने की चेष्टा की है। "स्वतन्त्र" हमारे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया करता है, इस बात का ज्ञान हमें नहीं है। किन्तु "स्वतन्त्र" जिस प्रकार सर्वथा निराधार और कल्पित बातें कह कर हमें बदनाम करने की चेष्टा किया करता है, इसे हम हिन्दी के एक "व्योवृद्ध" और "अनुभवहीन" सम्पादक के लिए प्रशंसा की बात नहीं समझते। ऐसे उत्तरदायित्वहीन लेखों का प्रकाशित होना—विशेषतः सम्पादकीय लेख के रूप में—हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के लिए वास्तव में बड़ी लज्जा की बात है!!

हम "स्वतन्त्र" के इन निन्दनीय हथकण्डों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और आशा करते हैं कि 'चाँद' के ग्राहक, अनुग्राहकगण भी इन हथकण्डों को तुच्छ समझ कर, इन पर ध्यान न देंगे तथा "स्वतन्त्र" की इस भूल को क्षमा कर देंगे।



चित्र परिचय

राजपूताना के राजवंश

राजपूताना के जिन राजवंशों के तिरङ्गे चित्र हमें प्राप्त हो सके और इस अङ्क में अन्यत्र दिए जा रहे हैं, उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है। इनमें बीच-बीच में जो कई राजे-महाराजे और गद्दी पर बैठे, उनके चित्र तथा परिचय बहुत चेष्टा करने पर भी हमें प्राप्त नहीं हो सके। जो चित्र प्रकाशित हैं, नीचे उन्हीं का परिचय और शासन-काल (जो हमें मिल सका) दिया जा रहा है :—

उदयपुर-राजवंश

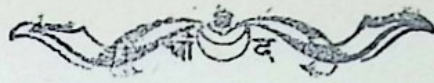
१ महाराणा उदयसिंह	१२४१
२ महाराणा प्रतापसिंह	१२७२
३ महाराणा अमरसिंह	१२६७
४ महाराणा करनसिंह	१६२१
५ महाराणा जगतसिंह	१६२८
६ महाराणा राजसिंह	१६६१
७ महाराणा जयसिंह	१६८१
८ महाराणा अमरसिंह (दूसरा)	१७००
९ महाराणा संग्रामसिंह	१७१६
१० महाराणा जगतसिंह (दूसरा)	१७३४
११ महाराणा प्रतापसिंह (दूसरा)	१७२२
१२ महाराणा राजसिंह (दूसरा)	१७२५
१३ महाराणा अरसिसिंह	१७६१

१४ महाराणा हमीरसिंह	१७७२
१५ महाराणा भीमसिंह	१७७८
१६ महाराणा ज्वानसिंह	१८२८
१७ महाराणा सरदारसिंह	१८३८
१८ महाराणा सरूपसिंह	१८४२
१९ महाराणा शिम्भूसिंह	१८६१
२० महाराणा सज्जनसिंह	१८७४
२१ महाराणा सर क्रतेहसिंह, जी० सी० एस० आई०	१८८४

* * *

जोधपुर-राजवंश

१ राव शिवाजी	१२११
२ राव रीरमल	१४१७
३ राव जोधाजी	१४२३
४ राव शुजा	१४६१
५ राव उदयसिंह	(राज्य नहीं किया)
६ राव गङ्गासिंह	१५१५
७ राव मालदेव	१५३१
८ राव उदयसिंह	(मोटा राजा) १५८३
९ राजा शूरसिंह	१५६४
१० राजा गजसिंह	१६१६
११ महाराजा यशवन्तसिंह	(पहला) १६३५
१२ महाराजा अजीतसिंह	१६७८
१३ महाराजा अभयसिंह	१७२५
१४ महाराजा रामसिंह	१७५०



१५ महाराजा वखतसिंह	१७५१
१६ महाराजा विजयसिंह	१७५३
१७ महाराजा भीमसिंह	१७६४
१८ महाराजा मानसिंह	१८०४
१९ महाराजा तख्तसिंह	१८४३
२० महाराजा जसवन्तसिंह (दूसरा), जी० सी० एस० आई०	१८७३
२१ महाराजा सरदारसिंह	१८६५

*

*

*

जयपुर-राजवंश

१ महाराजा पृथ्वीराज	१५०३—२८
२ महाराजा पूरनमल	१५२८—३४
३ महाराजा भीम	१५३४—३७
४ महाराजा रतन	१५४८
५ महाराजा आसकरन	१५४८
६ महाराजा भारमल	१५४८—७४
७ महाराजा भगवानदास	१५७४—६०
८ महाराजा मानसिंह	१५६०—१६१५
९ महाराजा भावसिंह	१६१५—२२
१० महाराजा जयसिंह (पहला)	१६२२—६८
११ महाराजा रामसिंह (पहला)	१६६८—६०
१२ महाराजा बिसनसिंह	१६६०—१७००
१३ महाराजा जयसिंह (दूसरा)	१७००—४४
१४ महाराजा ईसरीसिंह	१७४४—५१
१५ महाराजा माधोसिंह (पहला)	१७५१—६८
१६ महाराजा पृथ्वीसिंह	१७६८—७६
१७ महाराजा प्रतापसिंह	१७७६—१८०३
१८ महाराजा जगतसिंह	१८०३—१८
१९ महाराजा जयसिंह (तीसरा)	१८१८—३५
२० महाराजा रामसिंह (दूसरा)	१८३५—८०
२१ महाराजा सर माधोसिंह	

(दूसरा), जी० सी० एस० आई०

१८८०—

*

*

*

बीकानेर-राजवंश

१ राव बीका
२ राव नारा

३ राव लूनकरन
४ राव जैतसी
५ राव कल्यानसिंह
६ राजा रायसिंह
७ राजा दलपतसिंह
८ राजा सुरसिंह
९ राजा करनसिंह

१० महाराजा अनूपसिंह
११ महाराजा सरूपसिंह

१२ महाराजा सज्जनसिंह
१३ महाराजा जोरावरसिंह

१४ महाराजा गजसिंह
१५ महाराजा राजसिंह

१६ महाराजा प्रतापसिंह
१७ महाराजा सुरतसिंह

१८ महाराजा रतनसिंह
१९ महाराजा सरदारसिंह

२० महाराजा डूंगरसिंह
२१ महाराजा गङ्गासिंह (वर्तमान)

*

*

*

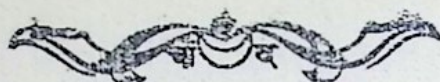
बुंदी-राजवंश

१ महाराव सुरजन	१५३३
२ महाराव भोज	१५८८
३ महाराव रतन	१६०७
४ महाराव गोपीनाथ	१६१४
५ महाराव चन्द्रशाल (कुतरशाल)	१६३१
६ महाराव भावसिंह	१६५६
७ महाराव अनरुद्धसिंह	१६८२
८ महाराव बुधसिंह	
९ महाराव उम्मेदसिंह	१७४४ मृत्यु १८०४
१० महाराव अजीतसिंह	१७७१
११ महाराव बिसनसिंह	१७७२
१२ महाराव रामसिंह	१८२१
१३ महाराव राजा रघुवीरसिंह	१८८६

*

*

*



मारवाड़ के वीर पिता और पुत्र ठाकुर केसरीसिंह जी

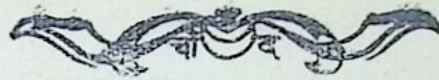
चारण-जाति सदा से क्षत्रियों के लिए, राजनैतिक-शिखा-गुरु, वीरता की प्रोत्साहक, विपत्ति में सहायक और पूज्य रही है। चारणों की ज्वलन्त वीरता के आदर्श से किसी राज्य का इतिहास खाली नहीं। चारणों में भी ५०० वर्ष पूर्व निराश महाराणा हम्मीर का छूटा हुआ चित्तौड़ अपने बुद्धि-वैभव और बाहु-बल से फिर से दिलाने वाले, इतिहास-प्रसिद्ध वीरवर "सौदा बारहठ बारू" की सन्तान वीरता में आज तक सदा अग्रणीय रही है। उसी वीर-वंश की तेईसवीं पीढ़ी में ठाकुर केसरीसिंह जी हैं। मेवाड़ के अन्तर्गत शाहपुरा-राज्य में ठाकुर केसरीसिंह के पूर्व-पुरुषों की जागीर चली आती थी। और यह घर शाहपुरा-राज्य के प्रथम श्रेणी के उमराव सरदारों से भी अधिक सम्मानित रहा है। केसरीसिंह जी के पिता बारहठ कृष्णसिंह जी ने अपने बुद्धि-वैभव से राजपूताना के समस्त नरेशों से सम्मान प्राप्त किया और वे अपने समय में राजपूताना एवं मध्य-भारत में प्रधान राजनीतिज्ञ माने गए थे।

कृष्णसिंह जी के तीन पुत्र थे—केसरीसिंह, किशोरसिंह और ज़ोरावरसिंह। केसरीसिंह जी का जन्म वै० सम्वत् १६२६ के मार्गशीर्ष कृष्ण ६ को अपनी जागीर के गाँव देवपुरा में हुआ और जन्म से एक मास बाद ही जन्मदात्री का स्वर्गवास हो गया। ये भी अपनी तरुण अवस्था में ही बुद्धि-वैलक्षण्य से महाराणा उदयपुर के सलाहकारों की श्रेणी में पहुँच गए थे। वैशाख, सम्वत् १६५६ में वर्तमान कोटा-नरेश उस्मेदर्मिह की गुण शक्ति ने केसरीसिंह को खींचा और ये कोटा आ गए और वहीं पर रहने लगे।

केसरीसिंह जी अठारह-उन्नीस वर्ष की अवस्था से ही जानीय और सामाजिक सुधारों में उत्साहपूर्वक भाग लेते रहे थे और स्वदेश की पतित दशा का भी उनको ध्यान बना रहता था। सन् १६११ में उनकी ओर से "राजपूत-जाति की सेवा में अपील" निकलते ही भारत की नौकर-शाही चौकसी हो गई। परन्तु केसरीसिंह जी शिखा और सज़्जन का ही कार्य करते थे और उनकी "स्वतन्त्र चारण-शिखा" व "चारण-शिखा-परिपद्" का ठोका इतना मज़-

बूत था कि उसे ढिगाना सहज नहीं था, क्योंकि स्वजाति-हित से प्रेरित होकर राजपूताना व मध्य-भारत के नरेश और बड़े-बड़े राजपूत उमराव और सरदार भी उसमें सम्मिलित थे। ऐसे कार्य को खतरनाक कैसे कहा जाय ?

परन्तु जब सरकार ने देखा कि भारतीय सेना में जो राजस्थानी राजपूत सिपाही और अफसर हैं, वे भी अपने असहाय बालकों के शुभ-भविष्य और जाति-गौरव के पुनर्दर्शन की आशा से केसरीसिंह जी की सेवा को अमूल्य समझ कर उत्साहपूर्वक सहयोग देने लगे हैं, तो वह व्यग्र हो उठी। सत्य की न जाँच की, न पड़ताल ! सन् १६१४ की ३१ मार्च के दिन शाहपुरा-नरेश को आगे रख कर सहसा केसरीसिंह जी को बिना कोई अभियोग लगाए गिरफ्तार कर लिया, तीन मास तक इन्दौर की छावनी में भीलों की पल्टन के बीच बन्द रखा ! उसी समय 'दिल्ली-यदुयन्त्र' 'आरा-केस' आदि चले, उन्होंने में किसी तरह फाँस देने की पूरी चेष्टा हुई, परन्तु निष्फल गई; क्योंकि वे कानूनी प्रान्त थे। तब यही उचित समझा कि सम्राट का शासन उलट देने की नीयत के अभियोग पर राजस्थान के किसी राजा के हाथ से ही सज़ा दिलाई जाय, ताकि प्रत्येक नरेश काँप उठे और चारण-शिखा का उद्योग छिन्न-भिन्न हो जाय। साथ ही राज्यों में सरकारी पुलिस का भी द्वार खुल जाय। राजद्रोह के साथ एक मर्डर (कत्ल) का पुलुल्ला जोड़ना तो कुटिल-सत्ता का सनातनधर्म है ही। कोटा को ही पसन्द किया गया, वहीं केस चला। प्रायः भारत के समस्त प्रान्तों के बड़े-बड़े अफसर पुलिस-अफिसर कोटा पहुँच गए, कई राज्यों के पोलिटिकल रेज़िडेण्ट भी कोटा में आए थे। 'पायोनियर' ने भी—अपना 'स्पेशल स्टॉफ़' यहाँ खोला। देखते ही देखते कोटा गौराज़ों की छावनी बन गया। 'पायोनियर' और 'टाइम्स ऑफ़ इंडिया' ठाकुर साहब के विरुद्ध आग उगल रहे थे। राजपूताना, मध्य-भारत के समस्त नरेशों की आँखें कोटा पर लगी हुई थीं, क्योंकि देशी राज्यों में यह अभूतपूर्व काण्ड था। राजद्रोह का कोई प्रमाण सरकार के हाथ में नहीं था, अधीन राज्य को घुड़की से मना देने की आशा थी; परन्तु केवल घुड़की से हॉ कद देने पर केसरीसिंह से सम्बन्ध रखने वाली सभी बड़ी रियासतें व्यर्थ आक्रत में पड़ती थीं। अतः साहसी कोटा-दीवान स्वर्गीय चौबे रघुनाथदास



जी ने, गला दबाए जाने पर भी, इस केस में राजनैतिक अपराध तो माना ही नहीं; अलबत्ता ठाकुर केसरीसिंह को बीस वर्ष की सज़ा ठोकर सरकार के आँसू पोंछ दिए !

सरकार तो ठाकुर साहब को भयङ्कर मानती ही रही। इसी से जगह-जगह खुले हुए राजपूत-बोर्डिङ्ग हाउस और सङ्गठन को बिखेर चुकने पर और केस के साथ ही विद्रोह भड़काने की आशङ्का मिटने पर, नौकरशाही ने ठाकुर केसरीसिंह जी को कोठे से माँग कर सुदूर हज़ारीबाग जेल में पहुँचा दिया !

ठाकुर साहब ने गिरफ्तार होकर शाहपुरा छोड़ा। उसी दिन से अन्न न लेने की प्रतिज्ञा की ! केवल दूध लेते थे। हज़ारीबाग पहुँचने पर कठिन परीक्षा शुरू हुई। वीरों को सङ्कल्प से विचलित करने में ही सरकार को मज़ा आता है। लङ्घन शुरू हुआ, निरन्तर २८ दिन निराहार बीते ! जब अधिकारियों ने देखा कि कष्ट भोगने से पहले ही कहीं पत्नी उड़ न जाय, तब उन्तीसवें दिन थोड़ा सा दूध दिया गया। प्रतिज्ञा तो अन्न न लेने की थी, दूध ले लिया गया। एक सप्ताह बाद फिर लङ्घन शुरू हुआ, महीनों तक रबर की नली से पानी में थोड़ा सा चावल का माँड मिला कर पेट में ठँसा जाना रहा। यह युद्ध अठारह मास तक चला। इतनी अवधि तक काल-कोठरी से भी वे नहीं निकाले गए। आखिर सरकार परास्त हुई। बिहार-उड़ीसा के जेलों के प्रधान अधिकारी (आई० जी०) ने आकर कहा कि केसरीसिंह ! राना प्रताप की हिस्ती से हम मेवाड़ के पानी की ताकत को पहले ही जानते थे, शाबाश बहादुर ! तुम जीत गए, सरकार हार गई, आज से दूध ही मिलता रहेगा। रहस्य दूध में नहीं, सङ्कल्प की अचलता में है।

सन् १९१६ में सरकार ने स्वयम् अपनी तरफ से केसरीसिंह जी से अपने केस की वायसराय के नाम अपील माँगी। जेल-अधिकारियों के अति आग्रह पर ही यह की गई और सन् १९१६ में जून के अन्त में ठाकुर साहब छोड़ दिए गए !!

* * *

वीर कुँवर प्रताप

जिस वीर का नाम आज भारत में विख्यात है, उस कुँवर प्रतापसिंह का जन्म राजपूताना की इतिहास-प्रसिद्ध

वीर चारण-जाति में विक्रम सम्वत् १६५० की श्रेष्ठ शुद्ध ६ को उदयपुर में ठाकुर श्री० केसरीसिंह जी के घर माता श्री० माणिकदेवी की कृति से हुआ। केसरीसिंह जी के कोठे आने पर प्रताप कोठे में शिक्षा पाता रहा। फिर दयानन्द एङ्गलो वैदिक स्कूल व बोर्डिङ्ग अजमेर में भेज दिया गया। मैट्रिक तक पढ़ा, परन्तु परीक्षा में नहीं बैठा, उसे मार्टिन्किट की इच्छा नहीं थी, अङ्गरेज़ी पढ़ा ही इसलिए था कि इसके द्वारा भारत के किसी भी प्रान्त में सेवा कर सके और अपने को खपा सके। ठाकुर केसरीसिंह जी युनिवर्सिटी की शिक्षा को दायित्व का माँचा मानते थे। अतः प्रताप को पन्द्रह वर्ष की आयु में स्वतन्त्र शिक्षण के लिए जयपुर के प्रसिद्ध देशभक्त अर्जुनलाल जी सेठी के जैन बोर्डिङ्ग में रख दिया। वह जैन बोर्डिङ्ग जब जयपुर से उठ कर इन्दौर गया, तब प्रतापसिंह दिल्ली के प्रसिद्ध देशभक्त वीर अमीरचन्द जी के यहाँ रख दिए गए। प्रताप के संसर्ग में जो कोई भी आया, सुख हो गया। ऐसी मोहिनी मूर्ति और दिव्य आत्मा कचित् ही मिलती है। अमीरचन्द जी के गिरफ्तार होने से कुछ हा दिन पहले वह अपने पितुःश्री के पास आ गया था और पिता गिरफ्तार हुए, उससे एक सप्ताह पहले अज्ञात-वास में चल दिया।

प्रताप ने अपने प्यारे चचा बलिष्ठ-वीर ठाकुर जोरावर-सिंह जी के साथ ही अपने शाहपुरा के विद्याल प्रासाद को मार्च सन् १९१४ के तीसरे सप्ताह में अन्तिम प्रणाम किया। ३१ मार्च के दिन ठाकुर केसरीसिंह जी के समस्त पुरुष-परिवार पर वारण्ट निकले। चचा-भतीजे हँदे गए, खूब ही हँदे गए, भारतीय सी० आई० डी० के दूतों ने राजपूताना और मध्य-भारत का घर-घर छान मारा, पर कहीं पता नहीं लगा।

ठाकुर साहब के मारवाड़ के अमर-काल में, जिस पोंचेटिया ग्राम में पिता के चरणों में सिर रख कर प्रताप ने विदा ली, उस ग्राम के चारण व जागीरदारों से सरकार ने यह वादा लिखाया कि यदि कुँवर प्रताप इस ग्राम में कभी आ जायगा तो वे उसे गिरफ्तार करा देंगे, वरना सर्वस्व खोवेंगे। जब सी० आई० डी० के पेटार्थी प्राणियों के पैर निराशा से डीजे हो चुके, तब एक दिन प्रताप सहसा इक़रार की कथा न जानने से, उसी ग्राम में जा खड़ा हुआ। सबके हृदयों में सन्नाह छा गया।

घुस-पुस होने लगी। किसी ने कहा दुःख है, परन्तु विवश हैं; दूसरे ने कहा, यह कभी हो सकता है कि हम प्रताप को आगे बढ़ कर सौंपें? प्रताप को मालूम होने पर उसने कहा, मेरे कारण किसी पर व्यर्थ विपत्ति आए, यह मुझे सहा नहीं, मैंने अभी किया ही क्या है? मुझे कौन खाता है? चलो मैं तैयार हूँ, सरकार के सुपुर्द करके आप लोग बरी हो जायें, यही मेरी प्रयत्न इच्छा है। अन्त में यह तय पाया कि हम प्रताप पर किसी तरह की सख्ती सदन नहीं कर सकते। अधिकारी-वर्ग को कहा जाय कि यदि प्रताप के गिरफ्तार होने पर जाँच तक हममें से कोई भी दो व्यक्ति निरन्तर उसके साथ रहने दिए जायें, ताकि उस पर पुलिस का बेजा दबाव न पड़ सके, यहा शर्त स्वीकार हो तो हम उद्योग करके वह जहाँ होगा, वहाँ से लाकर पेश कर देंगे। क्योंकि हमारा विश्वास है कि वह सर्वथा निर्दोष है, नाहक छिप कर सरकार का सन्देश सिर पर लेने का बचपन करता है। यदि यह प्रार्थना स्वीकार हो जाय तो उसे सौंप दिया जाय, वरना फिर देखा जायगा। भारतीय पुलिस के उच्च गोरे अधिकारियों ने यह शर्त स्वीकार की और पहली बार प्रताप उनके हाथ में आया। कुछ दिन इधर-उधर घुमा कर कोटे ले जाकर छोड़ दिया गया।

प्रताप कोटा रह कर, कोटा-केस में अपने परम प्यारे पिता को कैमे-कैमे प्रपञ्चों की जाल में फाँसा जा रहा है, यह सब सजगता से देखता रहा। पिता की दृढ़ता और धैर्य उसके हृदय में आनन्द, गौरव और तेज भरते थे। देशभक्ति की आग से धधकते हुए हृदय-कुण्ड में पाशविक सत्ता के मदान्ध प्राणी अत्याचारों का पेट्रोल उड़ेल रहे थे। माता का विश्वास धमनी का काम दे रहा था। बन्धन में पड़े हुए पिता को प्रताप ने सन्देश भेजा—“दाना ! (पिता को वह इसी शब्द से पुकारता था) कुछ विचार न करें, अभी प्रताप ज़िन्दा है !”

ठाकुर कैसरीसिंह जी को आजन्म कारावास की सज़ा सुना दी गई। जलूम भी सब बिखर गया। एक दिन प्रताप ने जननी से कहा—“आम्मा, धोती फट गई; कहीं से तीन रुपए का प्रस्थ कर दो तो धोती लाऊँ, आज ही आड़िए।” माता के हाथ तो सर्वथा खाली थे, कोशिश करने पर दो रुपए मिले और पुत्र के हाथ में दिए। प्रताप के लिए माता का दिया हुआ यही अन्तिम

पाथेय था। बिना कुछ कहे, मन ही मन माता को अन्तिम प्रणाम कर सायंकाल होते-वह निकल पड़ा। शहर में पिता के एक मित्र के पास पहुँचे, कहा—जो कुछ भी तैयार हो, ले आओ, भोजन यहीं करूँगा। भोजन करते समय मित्र ने कहा—“कुँवर साहब ! अब क्या इच्छा है ?” प्रताप ने कहा—“शादी करना है।” “क्या कहते हो, शादी ? आज तक स्वीकार न की, अब इस घोर विपत्ति में शादी ? यह क्या सूझी ?” “हाँ निश्चय ही शादी, लगन भी आ गई है, उम्मी के लिए जाता हूँ।” “कहाँ ?” “सब सुन लोगे”—यह कहते हुए जोर से “बन्देमातरम्” का नारा लगाया और अदृश्य हो गया ! उसके बाद प्रताप को किसी ने कोटे में नहीं देखा। बेचारा मित्र क्या समझे कि प्रताप की शादी क्या है। दूसरे दिन जब प्रताप घर नहीं लौटा, तो वही मित्र आए और शादी की बात कही। चतुर माता सब समझ गई और कहा—“ठीक है, परन्तु उसने मुझसे नाहक ही छिपाया। मैं उसे तिलक करके और चुम्बन लेकर बिदा करती।”

प्रताप कोटा छोड़ कर इधर-उधर भ्रमण करते हुए सिन्ध हैदराबाद पहुँचा और कुछ दिन वहाँ रहा। उसके साथ में उसका एक सच्चा बाराती चारण-जाति ही का वीर ठाकुर गणेशदान था। दुःख है, प्रताप के गिरफ्तार हो जाने की खबर से इसके प्रेमी-हृदय पर ऐसी चोट पहुँची कि बलिष्ठकाय को भयङ्कर संप्रहृणी एवं क्षयशील हो बाट गए। इधर-उधर छिपते-डकराते इस वीर का अवसान हो गया !

इससे पहले प्रताप ने कहाँ क्या किया, उसका आभास “बन्दी-जीवन” “पञ्जाबनं प्रचण्ड कावच” आदि पुस्तकों में एवं रासबिहारी बोस के संस्मरणों में मिलता है।

अन्त में फिर जब पञ्जाब को प्रताप की आवश्यकता हुई, तब आह्वान पाकर वह उधर लपका। हैदराबाद के कार्य को दूरों के हाथ सौंप, गरमी, भूख और चार-पाँच दिन का जागरण सहता हुआ, रेल से जोधपुर होकर निकला। जोधपुर से अगले छोटे से रेलवे स्टेशन “आसानाडा” पर स्टेशन-मास्टर परिचित था। वहाँ ठहर कर कुछ आराम कर लेने, व कुछ नई बात हो तो जान लेने के विचार से, प्रताप वहाँ उतर पड़ा। उसे क्या मालूम था कि वह विश्वासघाती के चक्कुल में जा रहा है। स्टेशन-मास्टर को इस बीच में पुलिस ने फोड़ लिया था। स्टेशन-



मास्टर ने प्रताप को देखते ही कहा—“पुलिस तुम्हारे लिए चक्कर लगा रही है, कोई देख लोग, मेरी कोठरी में जा बैठो, कुछ खाओ-पियो।” वह प्रताप को कोठरी में ले गया। प्रताप ने कहा—“निद्रा सता रही है, सोऊँगा।” विश्वासघाती ने कहा—“निःशङ्क सो जाओ। ताला मार देना हूँ, नाकि किसी को भ्रम न हो।” गढ़ निद्रा होने पर स्टेशन मास्टर ने कोठरी में से प्रताप का शस्त्र व दूसरी सब चीज़ बाहर निकाल ली, नाकि मुक़ाबले के लिए प्रताप के हाथ में कुछ न रहे। फिर उसने जोधपुर-पुलिस को टेलीफ़ोन कर दिया। बस फिर क्या था, पुलिस फ़ौजी रिसाला और दल-बल के साथ जा पहुँची। आमा-नाडा घेर लिया गया, कोठरी के द्वार और खिःकियों पर बल्ले और सझीनें अड़ा दी गईं। चुपके से ताला खोल कर, सोते हुए प्रतापसिंह पर पुलिस दूट पड़ी और बेचारा गिरफ़्तार कर लिया गया।

उस समय प्रताप की उम्र मुख-मुद्रा, जोश-भरी लाल आँखें, फड़कते हुए होंठ और उलसते हुए बाहुओं को जिनकी आँखों ने देखा है, वे आज भी कहते हैं कि वह सच्चा वीर था, सँभल जाता तो अवश्य वीर-खेत बनता।

आज भी आँखों में पानी भर कर पुलिस के काले ऑफ़िसर मुक्त-कण्ठ से कहते हैं—“हमने आज तक प्रताप-जैसे वीर और विनम्र बुद्धि का बाज़र नहीं देखा। उसे तरह-तरह से सताए जाने में कपूर नहीं रखी गई, परन्तु वाह रे धीर! उस से मय न हुआ। राजव का सहने वाला था। सर चार्ल्स क्लिवलैंड जैसे (भारत के डायरेक्टर ऑफ़ सी० आई० डी०) घाग का दिमाग़ भी चकरा गया, हम सब हार बैठे, उसी की दृढ़ता अचल रही।”

बनारस में कैसे चला और प्रताप को पाँच वर्ष की सज़ा हुई। बनारस-जेल से बरेली जेल में भेजा गया और वहीं विक्रम सम्बत् १९०५ (सन् १९१९) की वैशाखी पूर्णिमा को ठीक पच्चीसवें वर्ष की समाप्ति पर सदा के लिए गुलामी के बन्धन तोड़ कर चला गया !!

* * *

अजमेर का शारदा-परिवार

हस विद्या-व्यसनी परिवार का पुराना निवास-स्थान तो मारवाड़ (जोधपुर स्टेट) में आलनियास ग्राम है, जो मेड़ते पट्टी में है। वहाँ से उठ कर करीब साढ़े तीन सौ वर्ष

से यह अजमेर में आकर रहने लगा। इनके पुराने मकान गणपतपुर में हैं, परन्तु अब आठ-दस वर्ष से दौलतबाग़ के उत्तर आनामगार भोज के पास अपनी कोठी बना ली है और वहाँ ही रहते हैं। रायसाहब हरविलास जी ने कन्हरी के उस तरफ़ एक और बँगला बनवा लिया है और वे उसमें निवास करते हैं।

रायसाहब बाबू रामविलास जी शारदा इस परिवार के मुखिया हैं। आपने बी० बी० सी० आई० रेलवे के कैरिजशाप में बहुत असे नक़ असिस्टेंट चीफ़ क्लर्क के पद पर काम किया, अब रिटायर्ड हो गए हैं। आप करीब बीस वर्ष से ग्युनिवर्सल कमिशनर हैं, और पाँच वर्ष से ऑनररी मैजिस्ट्रेट भी हैं। आजकल वे अपना कुल समय लोक-सेवा में ही लगा रहे हैं। अजमेर में जो आर्यसमाज की बड़ी-बड़ी संस्थाएँ और इमारतें हैं, उन सबके निर्माण में आपने बचक परिश्रम किया है। हिन्दी-भाषा के आप बहुत अच्छे विद्वान् हैं। आपने स्वामी दयानन्द जी का एक प्रामाणिक जीवन-चरित्र “आर्य धर्मेन्दु-जीवन” के नाम से निकाला है, और भी कई छोट-छोटी पुस्तकें लिखी हैं। मुकुप्रकाश इशारत (सानुग्राम) लिखने का आपको बड़ा शौक़ है और अच्छी लिखते हैं।

आपके चार पुत्र हैं। सबसे बड़े श्री० कुँवर सूरजकरण जी शारदा एम० ए० एल्-एल् बी० हैं। आप चुपचाप काम करने वाले व्यक्ति हैं। आजकल आप आर्य-प्रति-निधि-सभा गजस्थान मालवा के मन्त्री-पद पर काम कर रहे हैं। आपके मन्त्रित्व-काल में सभा ने अच्छी उन्नति की है।

आप से छोटे कुँवर चांदकरण जी शारदा, बी० ए०, एल्-एल् बी० हैं। आप प्रसिद्ध ऑल इण्डिया लीडर हैं। लोक-हित का कोई काम हो, आप उसमें शरीक हैं। पिछले नानकॉपरेशन के दिनों में आप छः मास की जेल भी काट आए हैं। इधर आपको कॉङ्ग्रेस वालों की नीति नापसन्द हुई और उधर से हट कर हिन्दू-सभा में डट कर काम करने लगे। समस्त भारत का दौग किया और हिन्दू-सङ्गठन और शुद्धि का प्रचार किया। आपने शुद्धि-सङ्गठन पर एक परमोत्तम प्रामाणिक ग्रन्थ भी लिखा है।

इनसे छोटे डॉक्टर दानकरण जी शारदा, बी० एस् सी०, एम० बी०; बी०-एस० हैं। उनकी डॉक्टरी अजमेर में बहुत अच्छी चल रही है। आप चुपचाप लोक-सेवा



करते हैं। कभी लेक्चर नहीं देते। इनसे छोटे कुँवर विजयकरण जी मैकेनिकल इंजीनियर हैं और कलकत्ते की बिड़ला-मिल में काम करते हैं।

रायसाहब हरविनास जो शारदा बाबू रामबिलास जी के चचेरे भाई हैं और उनसे दो-तीन वर्ष छोटे हैं। आप अङ्ग्रेजी भाषा और इतिहास के भारी विद्वान् हैं। इतिहास पर आपने कई ग्रन्थ लिखे हैं, यथा 'हिन्दू सुपिरियॉरिटी, महाराणा कुम्भा, महाराणा सांगा, अजमेर का इतिहास आदि प्रसिद्ध हैं।

आप वपों तक अजमेर में जज रहे। इस पद से रिटायर्ड होकर लोक-सेवा कर रहे हैं। दो बार आप अजमेर-मेरवाड़ा की तरफ से लेजिस्लेटिव एसेम्बली के मेम्बर चुने गए और वहाँ कई उपयोगी काम किए। अजमेर-मेरवाड़े में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य हो, इसके लिए आपका उद्योग जारी है। शिक्षा-कमेटी गवाहियाँ ले चुकी हैं और रिपोर्ट तैयार हो रही है। सबसे उपयोगी और महत्वपूर्ण आपका बाल-विवाह-निषेध-बिल है, जो २३ सितम्बर को एसेम्बली में और उसके बाद स्टेट-काउन्सिल में भी पास हो चुका है। गवर्नर-जनरल की मन्जूरी मिल जाने पर आगामी एप्रिल सन् ३० से यह बिल क्रानून बन जायगा। इसके अनुसार १४ वर्ष से कम उम्र की किसी लड़की का और १८ वर्ष से कम उम्र के किसी लड़के का विवाह क्रानूनी जुर्म होगा और वैसा करने वालों को सज़ा मिलेगी। इस बिल का विस्तृत विवरण अन्यत्र प्रकाशित हो रहा है।

इस बिल के लिए आप कई वर्षों से बड़ी कोशिश कर रहे थे, आखिर आपका परिश्रम सफल हुआ। आशा है, यह बिल भारतवर्ष में उन्नति का गया युग लाएगा। आपके एक पुत्र और दो पौत्र हैं।

* * *

श्रीमान् पुरोहित रामप्रताप जी

आप जयपुर रियासत के ताज़ीमी सरदार और जागीरदार हैं। आपकी जाति पारीक-ब्राह्मण है। आपने जयपुर-कॉलेज में शिक्षा पाई है और कुछ समय तक आप जयपुर की काउन्सिल में जुडिशियल तथा होम मेम्बर के पदों पर काम कर चुके हैं। हिन्दी-भाषा की उन्नति का आपको सदा ध्यान रहता है। कई पुस्तकें भी आपने

लिखी हैं, जिनमें भगवद्गीता का अनुवाद, जिसका नाम 'श्रीकृष्ण-विज्ञान' है, बहुत प्रशंसनीय है। सम्भवतः इस पुस्तक का नवीन संशोधित संस्करण शीघ्र ही 'चाँद' कार्यालय द्वारा प्रकाशित हो सके।

* * *

राजपूताना फोटो आर्ट-स्टूडियो

इस स्टूडियो की स्थापना सन् १९०७ में हुई थी। इसे जयपुर के प्रसिद्ध विद्वान् और प्रतिष्ठित ताज़ीमी सरदार श्री० रामप्रताप जी पुरोहित ने आर्ट की उन्नति और अपने शौक की पूर्ति के लिए स्थापित किया था। पुरोहित जी को फोटोग्राफी और आर्ट का बेहद शौक है। इस काम में आपने हजारों रूपय व्यय किए हैं। जब इस ओर से आपका शौक हटने लगा, तब आपने स्टूडियो को बन्द करने की अपेक्षा, उसे व्यावसायिक रूप देना ठीक समझा। कला-कौशलपूर्ण जयपुर शहर में इस संस्था के सञ्चालन करने वाले योग्य कार्यकर्ता भी मिल गए। अतएव यह स्टूडियो तब से नवीन सज-धज और सुधार के साथ अपनी उन्नति कर रहा है। इसमें फोटोग्राफी, चित्रकारी और आंखलपेयिङ्ग का दर्शनीय काम होता है।

यहाँ के बने चित्र इतने सुन्दर और कलायुक्त होते हैं कि जो उनको देखता है, मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करता है। ये चित्र विलायत के बने चित्रों से मुकाबला करने पर किसी प्रकार घटिया या हलके नहीं जान पड़ते।

* * *

श्रीयुत् गुलराज गोपाल जी गुप्त

आप बड़े विद्या-व्यसनी, समाज-सेवी और कदर सुधारक हैं। आप खण्डेलवाल महासभा के प्रधान मन्त्री हैं तथा अजमेर के आर्यसमाज की संस्थाओं की जान हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती लीलादेवी जी भी आदर्श रमणी हैं। समाज-सुधार और स्त्री-शिक्षा के लिए आपने क्या कुछ नहीं किया है। आपके सुपुत्र देवराज गुप्त उच्च शिक्षा प्राप्त युवक हैं। आपका विवाह दिल्ली के प्रख्यात दानवीर स्वर्गीय सेठ रघूमल जी की इकलौती पुत्री से हुआ है। आपकी पुत्री विमलाकुमारी जूनियर कॉलेज में पढ़ रही हैं।

* * *

भैया-परिवार

बर्धा का यह भैया-परिवार मारवाड़ी माहेश्वरी जाति में प्रबल सुधारक है। इस परिवार की वृद्धा माता श्रीमती गङ्गाबाई, माताओं और दादियों की आदर्श हैं, जो अपने पुत्र-पौत्रों और वधुओं को उन्नति-मार्ग पर स्वयं चलाती हैं। आपकी पुत्री सौभाग्यवती सरस्वती देवी मारवाड़ी-महिलाओं में हर तरह अनुकरणीय देवी हैं।

* * *

राज्य-रत्न आत्माराम जी और उनका आदर्श परिवार

जिनकी जन्म-भर की विभूति बड़ौदा-राज्य में चमक रही है; बड़ौदा-महाराज से लेकर मेहतर तक जिनका आभारी है; जिन्होंने अपना जन्म सच्ची समाज-सेवा में व्यतीत किया है—वे ही पिता-पुत्र और देवियाँ इस चित्र में हैं। बीच में जो करारी मुँहों वाली सूरत दीख रही है, वे मारवाड़ के बाँके वीर कुँवर चौदकरा जी शारदा हैं।

* * *

मारवाड़ी-अग्रवालों में पहला विधवा-विवाह

माघ शुक्ला १३, संवत् १९८३, रविवार के दिन कलकत्ते में मारवाड़ी-अग्रवाल जाति में सर्व-प्रथम विधवा-

विवाह हुआ। विधवा का नाम जानकीबाई था, जो हवड़ा-निवासी गौरीदत्त जी साह की पुत्री हैं। और वर ये नागरमल जी लोहड़ा, जो झरिया के निवासी हैं। इस विवाह में विरोधियों की ओर से बहुत-कुछ रूकावटें डाली गईं, पर फिर भी विवाह वैदिक रीति द्वारा धूम-धाम से सम्पन्न हुआ। उससे के अक्सर पर कलकत्ते के प्रायः सभी सुधारक उपस्थित थे। सुनते हैं, देवी जानकीबाई बचपन में ही विधवा हो गई थीं। युवावस्था में वैधव्य को पालन न सकने के कारण उन्होंने अपनी माता से स्वयं अपने विवाह की प्रार्थना की और करीब दो वर्ष की टालटूल के बाद उन्हें विवाह कर देना पड़ा। देवी जी की स्पष्टवादिता समाज की अन्य पीड़ित महिलाओं के लिए सर्वथा अनुकरणीय है।

* * *

भूल-सुधार

पाठक, नीचे लिखी अशुद्धियों को सुधार कर पढ़ें :—

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	२	१०	रियासतें	जागीरें
४	२	११	भँवरपाल	भोमपाल
५	१	६	रघुनारायसिंह	रामसिंह



आवश्यकता

एक अनुभवशील हिन्दी, अङ्ग्रेजी तथा तिरङ्गे-चित्र की छपाई का ज्ञान रखने वाले सहकारी प्रेस-सुपरिण्टेण्डेण्ट की आवश्यकता है। प्रार्थना-पत्र व्यवस्थापक, दि फ़ाइन आर्ट प्रिण्टिङ्ग कॉटेज, २८ एड-मॉन्सटन रोड, चन्द्रलोक, इलाहाबाद—के पते से भेजना चाहिए।

उत्थान और पतन

[श्री० शोभाराम जी धेनुसेवक]

[१]

समर्थक रुढ़ियों के मारवाड़ी, आज ना होते।
हो संरक्षक दलाली के, ये सट्टेवाज़ ना होते ॥
पतनप्रद अन्ध-श्रद्धा का, सजाए साज ना होते।
तो कहता कौन है, ये देश के सरताज़ ना होते ?

[३]

इगों को मूँद करके, जिस तरह ये दान देते हैं।
नरक का कीट "हीरालाल", पर ज्यों जान देते हैं ॥
लजा गोविन्द को, गोविन्द-गृह को मान देते हैं।
स्वयं गृह-देवियों को, हाथ से विष-पान देते हैं ॥

[३]

अगर धर्म से कमाए द्रव्य का, सदव्यय इन्हें आना।
तो किस की शक्ति थी? अँगुली भी इनकी ओर दिखलाना।
अरे! ओ!! मारवाड़ी!!! कह, इन्हें जो आज घुड़काता?
वही कल मारवाड़ी के लिए, हो नम्र झुक जाता ॥

[४]

धर्म के नाम से जो द्रव्य, पानी-सा बहाते हैं।
धर्म के ढोंगियों की नित, नई संख्या बढ़ाते हैं ॥
इन्हें रख मूर्ख जो इनका, निरन्तर माल खाते हैं।
वही विषयान्ध इनके, धर्म की लुटिया डुबाते हैं ॥

[५]

यही हालत है, गौरक्षा की इनमें चाह होती है।
दुखी गौ के लिए इनके हृदय में आह होती है ॥
मरी या जी रही गौएँ, न ये परवाह होती है।
क्रूरत गौरक्षिणी के खोलने की डाह होती है ॥

[६]

सहस्रों डेरियाँ ये चाहते तो खोल सकते थे।
बधिक क्या इनके रहते, गाय को ले मोल सकते थे ॥
कभी को गाय माता की, चित्रय ये बोल सकते थे।
हलाहल-पूर्ण जीवन में, सुधारस घोल सकते थे ॥

[७]

लड़कपन से अविद्या के करों में जो नहीं बिकते।
सुधारों से नहीं कँपते, अचल हो सामने टिकते ॥
तो इनमें सैकड़ों बिड़ला वो मोहता आजकल दिखते।
न जाने कितने जमनालाल का इतिहास हम लिखते ॥

[८]

रखेंगे जब तलक गृह-देवियों का कष्टमय जीवन।
लदेगा बाल-बधुओं पर, ज़बरदस्ती का विधवापन ॥
कुरीतों का करेंगी जब तलक वनिताएँ आराधन।
पतन का ही करेंगी तब तलक अनिवार्य आवाहन ॥

[९]

हमारे मारवाड़ी बन्धु अब मैदान में आवें।
समर्थक बन सुधारों के, कुरीतों के किले ढावें ॥
तिमिर से नारियों को तार कर आलोक में लावें।
प्रगति से ना रहें पीछे, समय के साथ में जावें ॥

[१०]

न अब बेजोड़ ध्याहों से, विवश बहिनों को रोने दो।
न "कूड़ा-पंथियों" को जाति में विष-बीज बोने दो ॥
उठे उम्साह को आगे बढ़ाओ, अब न सोने दो।
विभव के साथ विद्या को भी, विकसित आज होने दो ॥

[११]

अगर है हानिकारी तो, ये परदा फाड़ कर फेंको।
नहीं पाखण्डियों के सामने, हो दीन शिर टेको ॥
ज़माने के प्रवाहों को दो बहने, भूल मत छेको।
समय के साथ तुम भी, से चलो निर्भीक अपने को ॥

[१२]

नहीं होगा कुरीतों से, कभी कल्याण, तुम समझो।
न आदम्बर से होगा, पारलौकिक त्राण तुम समझो ॥
नशोंगी रुढ़ियाँ सत्वर, इन्हें त्रियमाण तुम समझो।
बनो अब कर्मयोगी, कर्म को निज प्राण तुम समझो ॥

